※ श्रीमन्निकुञ्जविहारिणे नमः ※

॥ रसिकशिरोमणि श्री स्वामी हरिदासो विजयते ॥

सर्वोपरि-नित्यविहारिणी-

रस-सागर

(अष्टाचार्यों की वाणी)



श्रीधाम वृन्दावन

दो शब्द

परमार्थ पथ पै चलिबेवारे साधकन में, अपनो-अपनो कछु न्यारोई निरालो-पनो होय है। जैसे काहू कूँ अपने श्रीगुरुदेव में ही विशेष आसक्ति सहज-स्वाभाविक ऐसी होय है, जो वे बिनके ही श्रीमुखकमल के वचन में अधिक श्रद्धा-विश्वास राखि, बिनकी ही सेवा, तथा आज्ञा में चलै हैं। ऐसे साधक गुरु-पक्ष के कहे जाँय हैं।

याही भाँति काहू के अपनी संप्रदाय अन्तरगत किन्हीं महानुभाव-आचार्य चरणारविन्द में ऐसी अधिक रुचि होय है, जासों और औरन के वचनन द्वारा रूप रस-गुन-सिद्धान्त सुनि के हू बिनको मन बिनही के वचननि में विशेष आर्कषित रहै है। ऐसेन कूँ अपनी-संप्रदाय-आचार्य पक्ष के साधक कहे जाँय हैं।

काहू कूँ बैकुंठनाथ श्रीलक्ष्मीनारायणजू के स्वरूप में बिशेष आकर्षण होय है, वे समस्त श्रीभगवदवतारन कूँ बिनके ही अवतार माने हैं, ऐसे जन श्रीबैकुंठ परक के साधक माने जाँय हैं।

बहुत से साधकन की रुचि मर्यादा-पुरुषोत्तम अवधेसकुमार श्रीरघुनाथजी के अद्भुतातिअद्भुत भक्त-वत्सलता, दयालुता, उदारता आदि विचित्र गुणन पै अति रीझि बिनकी लीलान में अति आर्कषित रहै है। वे श्रीअवध पक्ष के साधक कहे जाँय हैं। तिनमें हू कछु-कछु मिथिलापरक के उपासक ऐसे होय हैं, जो त्रिभुवनवंद्या श्रीजनक-नंदिनीजू के रूप-गुन प्रभाव-प्रताप में अधिक रीझे हैं।

ऐसे ही बहुत से जन श्रीब्रज के वात्सल्य-रस, सख्य-रस, तथा श्रीब्रज-सुंदरीन के प्रेम विहार पै अति रीझि, बिनके ही श्रीचरन-कमलन के अनुगत होय सखीभाव की उपासना करन लगे हैं।

कोऊ-कोऊ बड़भागीजन एकमात्र श्रीवृषभानु-नंदिनीजू की ही अपने कूँ सखी या दासो समझि, बिनके ही पक्ष कूँ लै, रूप-गुन-लीला-माधुरी सुनि, बिनको मन अति हुलास माने है।

कोऊ बिरले महा बड़भागीजन केवल सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनी-पक्ष के प्रानवारे ऐसे होय हैं, जो अपनो प्रानेश्वरी श्रीस्वामिनीजू के प्राननि कौ सर्वोपरि सुख-प्रथम-समागम-महागूढ़-एकान्त-रस कौ निपट नित्यविहार कूँ समझि, वाही भाव

के दृढ़ अनन्य होय, और-और गुरु-संप्रदाय-आचार्य, एवं लोक-परलोक आदि सबनि कूँ वापै न्यौछावर करि, काहू अपराध-पाप-निंदा ते नाँइ डरि, जन्म-जन्मांतर के ताईं एकमात्र याही भाव पै बिक जाँय हैं, तेई बड़भागी प्रेम परिपाटी के साधक समझे जांय हैं। क्योंकि जो अपनी प्रानेश्वरी के सर्वोपरि-सुख की दृढ़-अनन्य-उपासना करिबे में काहू नातो-संबंध-व्यौहार-बात आदिकन ते दबि जाँय हैं, बिनकूँ प्रेम-परिपाटी ते गिरे भये ही समझनो चहिये।

(नर्क परन आछौ लगै, इक प्यारी (जू) के हेत।

× × ×

(स्वर्ग नर्क की आस-न त्रास, जे रस-रसिक विहारीदास)

ऐसे जनन कूँ ही सर्वोपरि-प्रेम-स्वरूप श्रीनित्यविहारिनी परक के कह्यौ जाय है।

यदि कोऊ ये बात कहै कि यह तो अति उत्तम प्रेम की बात है, किन्तु साधकन कूँ श्रीगुरु-संप्रदाय-आचार्य रीति कूँ त्यागिबे ते तो अपराध लगैगो ही ? ता बिषय में ऐसो समझनो कि—यावत् श्रीगुरु-आचार्य प्रेम के ही स्वरूप हैं। जीवनि कूँ माया सागर ते निकारि, श्रीभगवद् प्राप्ति कराइबे के ताईं ही पृथिवी-मंडल पै प्रगट होय हैं। ये जीव कबहूँ-कैसेहूँ-काहू स्वरूप में भाव-विश्वास-प्रेम द्वारा, श्रीहरि कूँ प्राप्त करिलेंइ, तौ समस्त श्रीगुरु-आचार्यन के मन प्रान अति प्रसन्न है जाँय हैं। ताहू में साक्षात् सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू के निज विहार सुख में लगिबे ते तो सबनि कौ मन इतेक फूलि उठै है, जाकूँ कोऊ वर्णन ही नाँइ करि सकै है। साधक केवल अपने मन की कमजोरी ते ही अपराध समझन लगै है। अपराध तो वास्तविक में श्रीगुरू-आचार्यन की आज्ञा ते विरूद्ध-धर्मविहीन कार्य एवं संसार में लगिबे ते ही होय हैं। सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू तो सबकीमूल मुकुट-मनि स्वरूप हैं, जिनके श्रीचरन-कमलनि कौ नेकहू जो कोऊ साँचो आश्रय लै लेवै, वो इतेक ऊँचो महत्पुरुष है जाय है कि समस्त संसार के अपराधनि कूँ भलीभाँति स्वयं मिटाइ सकै है।

फिर कौन से अपराध की सामर्थ्य है, जो बिनके माऊँ आंख उठाइ कें देखि सकै ? प्रेम-पथ के पथिक, अपनी प्रान-जीवनि श्रीलाड़िलीजू के निज-सुख के ताईं अपराधनि ते नेकहू नाँइ चपै हैं। ऐसे प्रेम परिपाटी के साधकन कूँ स्वयं श्रीनित्य-विहारिनीजू सर्वोच्च प्रेम प्रदान करि, शीघ्र अपने पास बुलाइ लेवैं हैं। जब ताऊँ वो साधक अपने पास नाँइ-आइ जाय है, तब ताऊँ आप प्रेम-अनुरागभरी दृष्टि ते सतत

वाके माऊँ देखती भई, वाके मन कूँ निरंतर पोषन कियो करें हैं। साधक काहू कारन सों यदि आपकूँ भूल हू जाय, तौहू आप नाँइ भूलै हैं।

दुराचार-अपराधनि के बिषय में तो स्वयं श्रीलालजू ने हीं गीता में श्रीमुख सों स्पष्ट कह्यौ है कि–जो भी जन अनन्य भाव सों मेरौ भजन करै है, वाते कदाचित् बड़े-बड़े दुराचार हू बनि जाँय, तौहू मैं बाकूँ साधु ही मानूँ हूँ। याही ते आपने श्रीगीताजी की समाप्ति में और हू जोर दै-के कह्यौ कि और-और यावत् धर्मन कूँ भलीभाँति परिस्कार पूर्वक त्यागि कें, तुम एकमात्र मेरी ही शरण आ जाओ ? मैं स्वयं ही समस्त दोषन ते मुक्त कर दउँगो, क्योंकि यावत् और धर्मन कूँ त्यागे बिना मेरी अनन्य शरनागति कैसेहू नाँइ बनि सकै है।

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यो, सम्यग् व्यवस्थितो हि सः॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

याही प्रसंग कूँ दिखाते भये "श्रीरामचरिमानस" में गोस्वामीजी महाराज ने हू स्पष्ट कह्यौ है:—

जिहि अघ बध्यौं व्याध जिमि बाली। सोई सुकंठ पुनि कीन कुचाली॥
सोई करतूत विभीषन केरी। सो रघुवर सपने हु नहिं हेरी॥

फिर सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू कूँ दृढ़ अनन्यभाव ते भजन करिबेवारेन की तो बात ही कहा है ?

रसिक अनन्य बाँह गहि राख्यौ आदर करि-करि खेत कौ।
साँचो गर्व विहारीदासै अधिक बिहारिनि केत कौ॥

इतैक पै हू जो लोग अपराधनि ते डरपि, अनन्य नाँइ है सकै हैं, बिनके हृदय में भ्रम होइबे ते बिनकूँ अपराध लगि, सर्वोपरि नित्यविहार रसमय सुख तें वे बंचित रहि जाँय हैं। याते साँचे कृपापात्र जन ही निस्संकोच सर्वोपरि नित्यविहारिनीजू के श्रीचरनकमलनि सों दृढ़ अनन्य होय अद्भुत अगाध सुख कूँ निर्विरोध-निरंतर बिलसैं-बिलसावैं हैं। ऐसे नित्यविहारिनी परक के जनन कौ स्वरूप कितेक सर्वोच्च शिखर स्वरूप है, जाकूँ या प्रकार समझनो कि–जा प्रेम-सागर के कोटानुकोटि के हू कोटानु-कोटिमो अंस की अतिसूक्ष्म फुहार सहस प्रेम ने ही स्वयं श्रीभगवान कूँ केलान के छिलकान कूँ ही अतिस्वादिष्ट बनाइ खवाइ दीने।

वा महाविचित्र प्रेम कौ मूल-केन्द्र-स्वरूप सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू कौ एकान्त-रस-विलास-निज महल में तो स्वयं श्रीभगवान को प्रवेश हू अति दुर्लभ है, तब और-और प्रेम-पथ पै चलिबेवारे साधकन की तो चर्चा ही कौन करै ?

लक्ष्मीपति व्रजपति कौ दुर्लभ इनते कौन बड़ो अधिकारी। –श्रीगुरुदेवजू

इतेक हू नाँइ जा विहार के ताईं स्वयं श्रीकुञ्जविहारी ठाकुर ने समस्त प्रभाव-प्रताप एवं भगवत्ता कूँ भली भाँति त्यागि, श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्ज महल को दृढ़ अनन्य होइ, एकमात्र याही रस-विलास-लालसा कौ स्वरूप बनि, निज प्राननि कौ पालन श्रीस्वामिनी चरणारविंद में परिबो ही माने है।

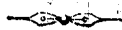
ताहि सुहाय न ठकुरई, बड़प्रताप विस्तार।
जाँचत दै दिन जिविका, सखि मोहि अहार विहार॥
प्रान पलित पाँयनि परै, परसें होत निहाल।
यहै दशा सेवत सखी, दुलह-दुलहिनि लाल॥ श्रीगुरुदेवजू

ऐसो अति अद्भुत निजमहल की उपासना कूँ स्वयं श्रीस्वामीजी महाराज ने भूमंडल पै प्रगट होइ, अपने निज अनन्य-आश्रितन कूँ सहज सुलभ प्रदान करि रहैं हैं। याते परमार्थ पथ पै चलिबेवारे प्रेम-रस के ज्ञाता पुरुष अवश्य ही श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलनि कौ दृढ़-अनन्य-आश्रय लैं, श्रीवृन्दावन में अखंड वास करि, अति-अद्भुत महासुख कूँ अनायास ही प्राप्त करि लेवैंगे।

निजु रसरीति प्रतीति विपिन वसि तौ लहै। रसिक अनन्य नृपति कौ संग समझि गहै॥
गह्यौ संग अनन्यनृपति कौ रंग लाग्यौ जब हिये।
भये साधन सिद्ध तिनके तिहीछिन अनही किये॥ श्रीगुरुदेवजू

या रस की प्राप्ति के ताईं नेम, व्रत, जप, तप, सम, दम, दान, पुन्य, विधि, विधान एवं यंत्र, मंत्र, अनुष्ठान आदिकन कूँ पुराने पत्तान सहस त्यागि, याको ही दृढ़ अनन्य होय उमँगि-उमँगि गुन गावो।

यों भजि कुंजविहारीराव। श्रीविहारनिरानी पर धरि भाव॥
मानुष तनधरि धन्य कहाव। रसिक अनन्य भये गुन गाव॥
नाहिन उद्यम और उपाव। छाँडि चतुरई चतुर रिझाव॥
यंत्र मंत्र सब दूरि बहाव। कोटिक बसीकरन सतभाव॥
साखि विहारिनिदास बताव। यह रस जस सुनि संदेह नसाव॥



विचारणीय विषय

प्रेम ही एकमात्र इहलोक-परलोक में सर्वसिरोमनि तत्व ऐसो है, जो याके बिना न तो कहूँ सुख शान्ति ही है, और न कोऊ सफलता ही। प्रेम ही सर्वोपरि सबनि कौ मूल इष्ट-स्वरूप ऐसौ है, जाकी समता को और कोऊ साध्य-साधन है ही नाँइ सकै है। और तो और समस्त श्रीभगवत्स्वरूपन में हू प्रेम के ही कारन भेद-विभेद भये हैं।

अर्थात्—कर्त्तुमकर्त्तुं-अन्यथाकर्त्तुं-सर्वसमर्थ-सर्वान्तर्यामी-सर्वव्यापक परमकृपालु-दयालु आदि समस्त गुन यावत् श्रीभगवत्स्वरूपन में एक समान ही विराजमान हैं, किन्तु जा स्वरूप में जितेक प्रेम कौ आविर्भाव भयौ है, ताही अनुसार शास्त्रकारन ने अंस-कला, एवं स्वयं भगवान् आदि वर्णन कीने हैं।

प्रेम ही एक सिंह-सदृस ऐसो महाशक्तिसाली स्वरूप है, जो ज्ञान-वैराग्य धन-संपत्ति, जन-बल काहू की अपेक्षा नाँइ करि, केवल साँचे मन-प्रानति के प्रेम पै ही रीझै है। याके बिना पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, अरोसी-परोसी, सगे-संबंधी आदि काहू सों सुख नाँइ मिलै है। दान-पुन्य-कर्मादिक हू याके बिना सफल नाँइ होइ हैं, और न कोऊ देवता ही प्रसन्न होइ हैं। यही एकमात्र सब ठौर समस्त मनोरथन कूँ पूर्ण कराइबेवारो है। प्रेम ने ही एक हाथी की पुकार सों श्रीभगवान कूँ बैकुंठ ते बुलाइ लीनौं। प्रेम ने ही महाभागवत श्रीप्रहलादजी कूँ अग्नि ते बचाइ दीनौ। या प्रेम ने ही श्रीध्रुवजी कूँ पाँच वर्ष की बाल्यावस्था में ही श्रीभगवान ते मिलाइ दीनो। श्रीगिद्धराजजू की पिता-तुल्य क्रिया प्रेम ने ही करवाई। श्रीशिबरीजू के झूठे बेर खवाये सोतो खवाये, किन्तु श्रीविदुरानीजू के तो केरान के छिलकान में ही ऐसो स्वाद करि दीनौ, जाको बारंबार आप सराहना ही करवे रह गये। याही भाँति प्रेम ने काहू के पाँव दबवाये, काहू की छान-छबाई, काहू के माँस तौलिबे के बाट ही बनाइ दीने। श्रीमीराजू के तो भोग लगायो भयो बिष कूँ ही प्रेम ने पिवाइ दीनौ।

जाके भय सों साक्षात् काल हू भयभीत रहै है, उन अखिल कोटि-ब्रह्मांड-नायक स्वयं श्रीभगवान कूँ श्रीजसोधाजी की रस्सी सों बँधवाइ, प्रेम ने ही थर-थर कँपाय दीनो। ऐसे ही श्रीव्रजसुंदरीन की छछियाभरि छाछ पै नानाभाँति नाच नच-

वाये, तथा समस्त भगवत्तान कूँ भुलाय श्रीअर्जुन के रथ के सारथी ही प्रेम ने बनाइ दीने।

श्रीभगवान ते प्रेम ने कहा-कहा ! नाँइ करायो ? कौन वर्नन करि सकै है। आज भी अनन्त प्रकार सों प्रेम कौन-कौन के प्रति-कहा-कहा कराइ रह्यौ है ? वाकूँ कहिबो तो बहुत दूर की बात है, समझिबो ही अति कठिन है।

प्रेम कौ स्वरूप अति दुराराध्य, दुर्गम, दुर्लभ एवं अति सूक्ष्म है। नित्यसिद्ध प्रेमिन की कृपा सों ही काहू महाबड़भागी के मन में आ-जाय तो, याकी रीति कूँ कछु समझि सकै है।

मायिक-संबंधन के अंतरगत नस्वर-सुखन की लालसा सों जो प्रेम करैं हैं, वे तो केवल छिनमात्र के ताँई ही सुख-स्वरूप दीखैं हैं, अंत में तो वो-प्रेमदुःख को ही रूप बनि जाय है, याते श्रीहरि-संबंधी प्रेम ही इहलोक-परलोक में सब समय सर्वप्रकार सों सुख देबेवारो होय है।

अब विचारनो यह है कि श्रीहरि संबंधी प्रेम महत्पुरुषन ने भाँति-भाँति के वर्नन कीने हैं, तिनमें कौन सो प्रेम सर्वोपरि-परम सुखदाई एवं सहज-सुलभ प्राप्त है सकै है। ताके विषय में या प्रकार समझनो कि-यावत् श्रीहरि के स्वरूपन की शुद्ध भक्ति यद्यपि अगाध सुखदाई है, तौहू श्रीहरि के एक स्वरूप में अनन्य शुद्धभक्ति कौ प्रेम, वाते कोटानुकोटि गुनौ अधिक सुखदाई होयँ है। तातेहू अति ऊँचो रसिकनि कौ रसमय-प्रेम-सुख अति सरस रसीलो मान्यौ जाय है। क्योंकि रसिक जनन के श्रीहृदय-कमल में भगवानपने के भाव नाँइ रहि, उल्टे इष्ट के स्वरूप में ईश्वरता के लक्षन हू खटकन लगैं हैं। वे केवल प्रेम-विलास को ही आस्वादन करि-करि मन में फूले नाँय मावैं हैं। याते बिनकूँ रसिक कह्यौ जाय है।

अब यह समझनो है कि-जितेक रस रसिकनि ने वर्नन कीने हैं, बिनमें कौन रस सर्वोपरि एवं समस्त रसनि कौ सारातिसार है ? या प्रसंग में बहुत से कविन ने तो रस सोरह (१६) प्रकार के बर्नन कीने हैं। तिनमें हू अनेक महानुभावन ने नव (९) रस ही मुख्य माने हैं। काहू-काहू महत्पुरुषन ने (५) पाँच ही रसन की बिशेषता वर्नन कीनी हैं :-शान्त-दास्य, वात्सल्य, सख्य, शृङ्गार। इन पाँचो रसन में हू रसिकनि ने तीन ही प्रधान माने हैं। वात्सल्य, सख्य-शृङ्गार, बिनमें हू शृङ्गार रसकी सर्वोपरिता निर्विवाद सबनि ने निरूपन कीनी है। शृङ्गार-रस कौ परिपाक मधुर, मधुर कौ महामधुर, महामधुर कौ हू पूर्णतम परिपाक सार-रस श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्ज

मंदिर में प्रथम-समागम एकान्त-रस कौ निपट निरवधि नित्यविहार ही है, जो केवल रसिक अनन्यनि कौं ही प्रानाधार है। जामें जन्म-लीलान की तो समाई कैसेहू नाँइ है सकै है। जैसे नित्यकिशोर बैस के अतिरिक्त और काहू बैस को या रस में प्रवेस नाँइ है, तैसे ही काहू प्रकार की ईश्वरता हू तहाँ प्रवेस नाँइ करि सकै है। इतेक हू नाँइ ईश्वरता के जितेक स्वरूप हैं, वे हू या महारस कूँ ग्रहण नाँइ करि सकै हैं, कारन यह रस इतेक अति अद्भुत झीनो, एवं सुकुमार है, जाकूँ एकमात्र नवदूलह-दुलहिन स्वरूप श्रीजुगल कौ प्रथम समागम एकान्तरस-विलास निजमहल ही आधार है सकै है। ताते ये निश्चय बात है कि विशुद्ध-रस कौं स्वरूप याते परे और कोऊ नाँइ है। अब विचारनो यह है कि ये महारस सहज-सुलभ कैसे प्राप्त होय ? ताके विषय में ऐसो समझनो कि-प्रेम कौ स्वभाव ही ऐसो होय है, जो कि अनन्य प्रेम करिबेवारेन ते अपने मुख कूँ कैसेहू नाँइ फेरि सकै है। याते साँचो प्रेम ही एकमात्र याको सहज-सुलभ साधन है। (विहारीदास जे चतुरमत, ते वस कीने सतभाव) जिन साधकन की साँची लालसा नाँइ होय है, वे ही जन प्रेम नाँइ करि सकै हैं, अन्यथा प्रेम सहज स्वभाव ही है जाय है। प्रेम को होइबो, वस्तु प्राप्त करिबो अभेद है।



ऐसो रसिक भयो नहिं ह्वै है भूमंडल आकाश

रसिकचूरामनि श्रीव्यासजी महाराज यद्यपि अन्य संप्रदाय के रसिकाचार्य हे, तौहू यथार्थवक्तान में सर्व-शिरोमनि होइबे के कारन आपने समस्त रसिकनि के समक्ष स्पष्ट कह्यौ कि:—अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज सदृस रसिक, पृथ्वी-मंडल की तो कहा चलाई, आकास में हू आज ताऊँ कोऊ नाँइ भयो, और न आगे कोऊ है सकै है, तामें बिचारिबे की बात यह है कि आगे हू ऐसो रसिक क्यों नाँइ है सकै है? ताके विषय में ऐसो समझनो चहिये कि–श्रीव्यासजी महाराज के हृदय में श्रीस्वामीजी की रसिकता कूँ देखि, ये दृढ़ निश्चय विश्वास है गयो कि–ऐसो रसिक कोऊ त्रिकाल में हू नाँइ है सकै है।

अब ये समझनो है कि वो सर्वोपरि रस कौ स्वरूप है कौन सो, और कैसे सबके समझ में आय सकै है? ता प्रसङ्ग में या भाँति समझनो कि–यथार्थ तो श्रीस्वामीजी महाराज के रस के स्वरूप कूँ सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू ही जाने हैं, या बिनके निज अनन्य आश्रितजन। याते बिनकी ही कृपा-बल पै यथासक्ति यहाँ विचार कियो जाय है। श्रीव्यासजी महाराज ने आपके सर्वोपरिता के स्वरूप में रसिकता की ही विशेषता बरनन कीनी है। ताते सर्व प्रथम ये समझनो है कि रसिक कासों कहैं हैं? ता विषय में सिद्धान्त विचार लीला में-श्रीध्रुवदासजी महाराज ने रस को आस्वादन करिबेवारेन कूँ ही रसिक बतायो है। रस कौन ते कहैं हैं, वाको सर्वोपरि स्वरूप कौन सो और कहाँ? तथा कैसे जान्यो जाय। ता प्रसंग में रसिकनि की कृपा बिना रस की एक हू गाँस समझि में आइबो अति कठिन है, तौहू बिनकी कृपा ते बुद्धि-विचार में जैसे आ जाय, ताही भाँति लिखिबे की चेष्टा की जाय है।

जैसे माँ अपने लाड़िले बेटा कूँ लाड़भरी बात कहि-कहि के लड़ावै, ता समय माँ के मन के भीतर जो आनन्द होय है, वाकूँ वात्सल्य रस कौ आभास कौ हू नेक आभास समझनो चहिए। ऐसेही दो-मित्रन की परस्पर सख्यता के व्यौहार-आनन्द कूँ सख्य-रस के आभास को हू किंचित् आभास समझ लेनो चहिये। याही प्रकार नायक-नायिका के व्यवहार में, सरस-रसीले प्रेम के आनन्द कूँ शृङ्गाररस-सागर के

फुहार की हू फुहार कौ किंचित् आभास समझनो चहिये। वोही प्रेम गाढ़तर होय, अनन्यता के रूप में जब परिणत है जाय, तब वाको स्वरूप मधुर एवं महामधुर बनि जाय है। तिनमें हू जो नायक-नायिका सदाकाल सों अपने-अपमें धर्म में लीन, मायिक चिन्तानृते बिहीन, नवकिशोर वैस-नवयोवन के जोर में मत्त मुदित, कोक-कला-विलास-गुनन में पारंगत, परस्पर उत्तम कुल की पतिव्रतावत् दृढ़ अनन्य होयँ, ऐसे नायक-नायिका जब पहिले-पहिल एकान्त में मिलैं, तब बिनके अति ललितकोमल सरस रसीले-आनन्द रस कूँ, महामधुर कौहू सार रस-सागर के छींट की कोटानु-कोटिमो अंस के फुहार की किंचित् आभास को हू आभास समझनो चहिये। क्योंकि श्रीयुगल कौ रस तो दिव्यातिदिव्य नित्य-सिद्ध-प्रेम कौ परमोज्ज्वल स्वरूप ऐसो है, जामें ईश्वरता को भाव लेसमात्र हू बाधक होय हैं, और निज सुख-स्वाद-स्वार्थ की तो तहाँ गंध हू नांइ पहुँचि सकै है। कहाँ तो ऐसो अति अलौकिक रस ? और कहाँ मायिक भाव-संबंधवारे जीवन को अति घृणित स्वार्थमय प्रेम ? जो परमोज्ज्वलरस की समता कैसे हू नाँइ करि सकै है। ये महारस तो एकमात्र प्रथमसमागम एकान्त रस-विलास-निजमहल श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्ज मन्दिर में ही अनादिकाल सों सुसोभित रहै है। जाके आधार केवल सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनी-नित्यविहारीजू ही हैं, और बिनकूँ ही रूख-अनुसार लाड़-लड़ाइबेवारी सखी, सहेली, सहचरि परिकर हैं। याही ते हमारे श्रीजुगल एवं सखी, सहेली, सहचरि परिकर, जन्म लीलान ते कोऊ संबंध नाँइ राखैं हैं, क्योंकि जन्मलीलान में या रस की अनन्यता बनि ही नाँइ सकै है।

उपरोक्त वर्नन द्वारा साधक सहज समझि सकैगे कि–सर्वोच्च रस के स्वरूप कौन से श्रीजुगल, सहचरी एवं धाम हैं। दूजे समस्त रसिकनि को मत है कि–जहाँ जैसो प्रेम कौ स्वरूप है, तहाँ तैसो ही रस कौ। और जहाँ जैसो रस कौ स्वरूप है, तहाँ तितेक ही श्रीलालजू की आसक्ति स्वाभाविक होय है, याते श्रीलालजू की आसक्ति श्रृङ्गार-रसविलास में कहाँ-कहाँ महतन ने कैसी-कैसी–वर्णन कीनी है, याको विचार करिबे की चेष्टा कीनी जाय है:–

सर्वप्रथम महारास में यद्यपि स्वयं श्रीलालजू ने ही अनंग बर्द्धक राग गाइ कें श्रीव्रजसुंदरीन कूँ आवाहन कीनी ही, श्रीव्रजसुंदरी हू सुनत खेम लोक लाज कूँ उल्लंघन करि, पति-पुत्रादिकन कूँ त्यागि, जैसी स्थिति में ही, तैसी ही अनुराग में भरि उठी धाईं। तौहू श्रीलालजू ने अति प्रसन्न होइ, उमँगि में भरि, अपनो बड़भाग मानि, स्वागत-सन्मान तो कीनौ नाँइ, उल्टे घर में जाइबे कूँ ही धर्मोपदेश करिबे

लग गये। बहुत बाद-बिबाद के पश्चात् जैसे-तैसे प्रसन्न होय रास-विलास आरम्भ कीनौ। जब श्रीब्रजसुंदरी श्रीलालजू कौ इतेक प्रेम पाय, अपने कूँ बड़भागी समझि, मन में अभिमान सों फूल उठीं, तब आप बिनके अभिमान निवारन करिबे के ताँई एक श्रीस्वामिनीजू कूँ संग लै अन्तर्ध्यान है गये। प्रथम तो रात को समय, दूजे श्रीयमुना-पुलिन में चलिबो, ताते सुकुमार शिरोमनि श्रीप्यारीजू जब श्रमित है गई, तब आप बोलीं कि–हे प्यारे ! अब मोते चल्यौ नाँइ जाय है ? याते आप अपने कंधे पै बिठाइ, जहाँ इच्छा हो तहाँ लै चलौ। वा समय में हू श्रीलालजू कंधा पै बिठाइबे के छल सों श्रीस्वामिनीजू कूँ वृक्ष पै चढ़ाइ आप अन्तर्ध्यान है गये। जब सब श्रीब्रज-सुंदरी आपके गुन गाइ-गाइ कें रोय उठीं, तब आप प्रगट होय, सबनि कूँ सांत्वना दै, महारास-विलास-बिलस्यौ-बिलसायो।

ऐसे ही स्वकीया प्रकास में हू श्रीलालजू ने लोकरीति-अनुसार दिनभर गैयान कूँ चराइबे, जानो, तथा संध्या कूँ आय, मैया-बाबा के पास बैठि, बिनकूँ संतुष्ट करि, फिर जैसे-तैसे रात्रि में श्रीस्वामिनीजू ते मिलन होतो।

परकीया भाव—साक्षात् श्रीवृषभानुनन्दिनीजू के स्वरूप में तो कैसे हू नाँइ बनि सकै है। प्रथम तो आपको स्वरूप इतेक ऊँचे प्रेम-रस को है, कि प्रेमप्रधान-स्वयं भगवान श्रीनन्द-नन्दनजू के अतिरिक्त और कोऊ भगवत्स्वरूप हू–आपके माऊँ कान्ता भाव सों नाँइ देखि सकै हैं। दूजे रसिकवर श्रीव्यासजी महाराज तथा वल्लभकुल भूषन श्रीसूरदासजी, नन्ददासजी, परमानन्ददासजी, कृष्णदासजी, एवं हितकुलभूषन श्रीवृन्दावनदास (चाचाजी) आदि अनेक महानुभावन ने विधिवत् स्पष्ट रूपसों श्रीनन्दनन्दनजू के साथ आपकूँ विवाह वर्नन कीनौ है।

श्रीव्यास वाणी—

चौक पूरि विधि वेदी वानि दूलह श्याम बुलाइयौ।
बैठे पंच सुजन सुख पाइ हरि कों अरघ दिवाइयौ॥
दक्षिन दिसि दुलहिन बैठारि वेद मंत्र विधि सब करी।
भयौ व्याह सबकें आनन्द साखि दुहूँदिसि उच्चरी॥
बाजत बहुविधि सबदनिशान सुर नर मुनि कौतुक देखियो।
फूले दम्पति अंग न समात जनम सुफल करि लेखियो॥
दुलहिन लै जनवासें आय कीनौ आनन्द बधावनो।
मुख देख्यौ दै रतन अमोल पायौ मन कौ भावनो॥

सूरदासजी —

ललित लाल कौ सेहरौ जगमगि रह्यौ हैरी माई ।
हरषि हरषि गोपी गावहीं यह सुख देखौ आई ॥
अलकैं झलकैं वदन पर मरबट खौर बनाई ।
सोभा सींव उलँघि कैं उमगी है सुंदरताई ॥
कुमकुम वेंदी भाल पर शशि सम उदित सुहाई ।
मुक्ता अछितन जलद मैं उडुगन देत दिखाई ॥
भृकुटि कुटिल मन मोहिनी वरुनी है सुखदाई ।
बागौ बीरा अति बन्यौ छबि सौं चतुराई छाई ॥
जननी न्यौछावर करें बाजे बजत बधाई ।
सुर बनिता जकि थकि रहीं रस मूरति है पाई ॥
धनि जसुमति सुत साँवरो दूलह कुंवर कन्हाई ।
राजकुंवारी राधिका नवल दुलहिनी पाई ॥
यह जस गावैं सारदा जिनके भाग बड़ाई ।
यह आनन्द जिनकैं हियें 'सूरदास' बलिजाई ॥

× × ×

नन्ददासजी—

अरी चलि दूलह देखन जाहिं ।
सुंदर श्याम सलौनी मूरति अँखियाँ निरखि सिराहिं ॥
जुरि आँई व्रजनारि नवेली मोहन दिसि मुसकाहिं ।
मोर बन्यौ सिर काननि कुँडल मरबट ललित सुहाहिं ॥
पहिरि जरकसी बसन आभूषन अङ्ग-अङ्ग मन उरझाहिं ।
तैसीये बनी बरात चहुँदिसि जगमग रंग चुचाहिं ॥
गोप सभा सरवर में फूल्यौ कमल प्रमल झपझाहिं ।
'नंददास' गोपिन्ति के दृग अलि लपटनि को अकुलाहिं ॥

× × ×

कृष्णदासजी—

भाँवरि भवन भानु कें सजनी होत है आज देखौ कीजै ।
जोरी गौर श्याम है सजनी निरखि निरखि नैंननि सुख जीजै ॥
मधुर मधुर पग धरति अवनि पर धन्य घरी निसि यह सुख लीजै ।

वेद विधिवत विप्र दुहुँदिसि पढ़त हैं सुनि श्रवननि सुख दीजै ॥
झुकी झरोखनि भामिनि गावैं दामिनि दुति तहाँ वारनें कीजै ।
भाँवरि लै बैठे रत्नसिंहासन ललिता आरति करि मन रीझै ॥
वरषत पुहुप देव दुंदुभि धुनि तन मन धन न्यौछावर दीजै ।
'कृष्णदास' गिरिधरन रँगीलो रगमग रँग राधा कैं रीझै ॥

× × ×

रमानन्दजी—

माँगै सवासनि बार रुकाई ।
झगरन अरत करत कौतूहल चिरजीवौ मेरौ बारौ कन्हाई ॥
चिरजीवौ वृषभाननन्दिनी रूप सील गुण सागर माई ।
निरखि-निरखि मुख जीजै सजनी यही नेग बड़ संपति पाई ॥
दीनी धौर धूमरी पीयर अरु ताकौ तीयर पहिराई ।
फिर सबहिन की महरि जसोमति मेवा मोदक गोद भराई ॥
आरति करि लिये रतनचौक में बैठारे सुंदर सुखदाई ।
'परमानन्द' आनन्द नन्द कैं भाव बड़े घर नौ निधि आई ॥

याही भाँति हितकुल भूषन श्रीवृन्दावनदास चाचाजी ने लाड़सागर-श्रीव्रज प्रेमानन्द सागर में श्रीजुगल कौ विधिवत विवाह-मंगलचार विस्तार सों वर्णन कीने हैं ।

भाँवरि विरियाँ निर्मल लगन विचारिकैं । केसर अजिर लिपायौ रहसि सुधारि कैं ॥ मोतिन चौक पुराई चित्र रचना करी । ललित रीति सौं वेदी सुहथ मुनिनु धरी ॥ धरी वेदी सुहथ मुनिजन श्रुतिन पढ़ि पट्टा धरयौ । ग्रह शान्ति हित आराधि विधि सौं अग्नि में आहुति करयौ ॥ जिते मंगल साज सबहीं मँगाइ गनि गनि धरत हैं । विधि वेद रीति विचारी गौतम गरग बैठे करत हैं ॥ दूलहु दुलहिनि इत उत सुभग सिंगारई । करत मंगली रीत जु उचित विचारई ॥ गोप सभा इत उत बैठे जु उमंग में । मागध चारन विरद पढ़त रस रंग में ॥ रस रंग में बोलैं विरद मुनि रीती चारौं जुग भनी । सिर लसत मौरी मौर बाढ़ी सेहरिनु सोभा घनी ॥ पहिले बना बैठारि पट्टा बहुर वरनी लाइयौ । जोरि अंचल छोर विप्रनि वधुनि मगंल गाइयौं ॥ रुप सिंधु मथि तत्व रची कीरत लली ।उत सौभगता सींव सुवन व्रजपति अली ॥ व्रज जन भाग्य अवधि विधि जोरी यह करी । देखि पटा दोउ बैठे धनि धनि यह घरी ॥ धनि घरी धनि यह जाम सजनी विप्र गाँठि जुराइयौ । धनि धन्य ये नर नारि जे यह व्याह मंगल आइयौ ॥

धनि धन्य मंडप भूमि सजनी कौन भागिनु सौं भरी। तापै परैंगी भाँवरी पग परसि ह्वै है हिय हरी ॥ इत उत दूलह दुलहिनि कहाइकैं। तब बैठारी कुंवरि वाम अँग लाइकैं ॥ कहतु अतिलड़ौ वचन अधर मुसिकात हैं ; मुख सोभा के वीज झरत मनु जात हैं ॥ झरत मुख ते वीज सोभा कछुक सकुचति अतिलड़ी। पढ़त चारयौं वेद रिषजन भीर भई मंडप बडी ॥ थिर चर मुदित अतिसै भयै भाँवरि विरियाँ जानिकैं। वृन्दावन हितरूप वलि कहा कहौं बैंन बखानि कैं ॥

श्रीहितवृन्दावनदास चाचाजी

उपरोक्त प्रमाणन ते स्पष्ट होय है कि–श्रीवृषभानुनंदिनीजू श्रीनंदनंदनजू कौ विवाह समस्त महतन ने निर्विबाद मान्यौ है, तब अभिमन्यु के साथ आपको विवाह होइबेको तो प्रश्न ही नाँय उठि सकै है। याते काहू अन्य गोप के घर में और कोऊ राधानाम की कन्या जन्मी होयगी, ताके साथ ही अभिमन्यु कौ विवाह भयो होयगो। बिनकी प्रीति श्रीनंद-नंदनजू ते होयगी, ताको ही ये वर्णन संभव है सकै है।

अष्टयूथेश्वरी परिकर श्रीवृन्दावन-विहार के श्रीयुगल स्वरूप में ईश्वरता को संमिश्रण होइबे ते, निद्रा-भोजन कौ अवकाश, समय-समय पै श्रीव्रजमंडल में प्रगट होय, स्थूल-रसनि के आधार बनि, नाना भाँति आपने लीला कीनी हैं।

प्रथम समागम एकान्त रस-विलास निजमहल श्रीवृन्दावन कौ महामधुर-सार रस की आसक्ति ऐसी अद्‌भुत है, कि यथावत् जाको कोऊ वर्णन नाँइ करि सकै है। महानुभावन के अक्षरन के आधार पै यत्किंचित् कह्यौ जाय है। जा रस में दोऊ श्रीजुगल अनादिकाल सों अनिमिष अँखियान ते देखते-देखँते, तथा तन-मन-प्रान एवं रोम-रोम सों मिलिते-मिलिते, न तो देखिबो ही, न मिलिबो ही बिनकूं भान होय है, उल्टे वे सतत परस्पर विरह ही बोध करैं हैं (केहरि की मिलनि है संयोगहि वियोग) निद्रा भोजन की तो जिन्हें कबहूँ सुधि हीं नाँय होय है, ऐसे महामधुरसार-रस के अनन्य विलासी श्रीजुगल के स्वरूप में श्रीलालजू की अति अद्‌भुत आसक्ति कूं दिखाते भये श्री केलिमालजू में आपने कथन कियौ है कि—

जब कबहूँ-काहू कारन वस सहज सुभाव श्रीस्वामिनीजू, श्रीलालजू के नेत्रनि ते नेकहू इत-उत में है जाँय, तब हीं लालजू व्याकुल होय, यों कहन लगे हैं कि—

"इत उत काहे कौ सिधारति मेरी आँखिन आगे ही तू आव"

याही प्रकार कबहूँ परिहास में हू श्री प्यारी जू यों कहि देवैं कि मेरी आँखिन ते लाल कहाँ निकसि जाओगे ? इतेक पै ही श्री लाल जू अति कातर होइ श्री चरन

कमलन कूँ पकरि कहन लगे हैं कि आप साँची-साँची बताओ ! जगत में मोकूँ कहूँ और हू ठौर आपने समझि राखी है कहा?

याही भाँति श्री स्वामिनी जू के सहज सुभाव ही इत-उत माऊँ आइबे-जाइबे ते श्री चरनकमलनि की नुपुर धुनि सुनि, श्री लाल जू के प्रान अति व्यथित होय कहन लगे हैं कि—हमारो-तुम्हारो न्याव दई के आगे ही होइगो।

एक समय श्री लाल जू आपके श्री मुखचंद माऊँ देखि कहिबे लगे कि– हे प्रानप्यारी जू ! आपको श्रीमुखकमल अति अद्भुत अमृत कौ दल-दल है, जामें मेरी आँखि ऐसी फँसि गई हैं, जो कैसेहू नांइ निकसि सकै हैं।

एक दिन सखी-सखी सों कहन लगी कि– हे सखि ! हमारी प्रान जीवनि प्यारी जू की नेक दृष्टि उठाइ के देखिबे में ही, ये आसक्त चूरामनि लाल ऐसे फंदा में फँसि गयो, जो श्री प्यारी जू के मन-रूपी पिंजरा को पंछी ही बनि गयो।

सखी ! ये हमारी प्रानप्यारी निकुंजमहल में एक दिन सहज स्वभाव मौन ह्वै-कें विराज रहीं। श्रीलालजू वाही कूँ मान समझि, इतेक अति अधीर भये कि श्रीमुख सों यों कहते-कहते बेसुध है गये कि—

"तोहि ऐसे देखत मोहि अब कल कैसे होइ जू प्रानधन"

ऐसे ही हमारी प्रानप्यारी समस्त नवदुलहिन ते हू अति लाड़िली सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू सहज बाँको सुभाव के कारन, छिन-छिन मान कियो करें हैं। ताते एक समय मानिनी है कें आप विराज रहीं, बिनकूँ मानिनी देखि, श्रीलालजू कहिबे लगे कि हे प्रानजीवनि निधि-परमदुलारी प्यारीजू ! मान करिबो तो आप समस्त रीति-भाँति सों छाँड़ि देउ। आपके सहज मान सों ही मेरी ऐसी स्थिति है जाय है, मानो प्रान पाये भये हू जाइ रहे होंय ? अर्थात् आपकी प्राप्ति सों तो मानो प्रान मिलि गये, किन्तु आपके मानवती होइबे ते, वो प्रान-पाये भये हू चले जाँय हैं। याते आप अति कृपा करि अपनो श्रीहस्तकमल मेरे माथै पै धरि, मोकूँ भली भाँति सों अभय करि देउ।

एक समय आप दोऊ श्रीयुगल नृत्य करि रहे। ता समय सुकुमार सिरोमनि श्रीप्यारीजू की अति अद्भुतरूप माधुरी देखि, श्रीलालजू अतिरीझि दीन ह्वै, प्यारीजू ते कहिबे लगे कि हे प्रानजीवनि प्यारीजू ! मेरे जिय में ऐसी होय है कि मेरो जिय तो आपके जिय सों मिलि जाय, और आपके श्रीअंगन कूँ मैं अपने अंग में समाय लऊँ, किन्तु मेरी आँख तरफरावें हैं कि–फिर हम देखेंगी कौन कूँ ? याते मैं अति

दीन एकमात्र आपके ही वस, बापुरो कामते दह्यौ भयो हूँ, ताते आपही अपनी कृपा द्वारा या महल में अपनो आश्रय दै-कें मोकूं जीवित राखि लेउ।

ऐसे ही एक समय श्री लाल जू प्यारी जू सों कहिबे लगे कि–हे लाड़िली जू ! आप वृथा ही मान करिकें मोकूं दुःख देवो हो। मैं तो सदाकाल आप, एवं आपकी प्रानजीवनि- समस्त सखी- सहेलिन को ऐसे रूख लियें या महल में रहूँ हूँ, जैसे पंछिन के छौने बेर-बेर अपने घोसलान कूं ही देखते रहैं हैं। लाल के ऐसे दीनताभरे वचन सुनि, सखी बोली'–हे प्रान जीवन लाल ! आप कहा चाहो हौ ? ता पै श्री लाल जू ने कह्यौ कि-मैं एकमात्र यही चाहूँ हूँ कि श्री प्यारी जू अपनी भौंहन कूं कबहूँ टेढ़ी नांइ करें, मेरो इतेक ही कहनौ है।

एक समय श्रीलाल जू ने रास-रचना कीनो। तहाँ सकल-गुन-निधान प्रेम प्रवीन श्रीप्यारी जू ने कोऊ ऐसी महाविचित्र गति लै-लै कें नृत्य कीनौ, जासों रिझवार-शिरोमनि लाल अतिरीझि, विवश होइ, जहां-जहां प्राणेश्वरी जू के श्रीचरन-कमल परे, तहाँ-तहाँ ही बिन श्रीचरन-चिह्नन पै, भावना द्वारा छत्र-छाया आप करिबे लगे ताते कछु समय ताऊँ लाल जब नाँइ बोले, तब श्रीप्यारी जू ने पूछ्यौ कि–हे प्यारे ! कहा सोच-विचार में परि रहे हौ ? तौहू लाल जू ने कछु उत्तर नांइ दीनौ, तब तो श्रीस्वामिनी जू और हू अति आग्रह सों पूछिबे लगीं। तापै श्रीलाल जू बोले कि– हे प्रानप्यारी जू ! आपके श्रीचरन-चिह्न मेरे साक्षात् इष्ट स्वरूप हैं। बिनकी भावना द्वारा मैं सेवा करि रह्यौ हूँ, तब आप बोलीं कि-हे प्यारे ! कहा-कहा सेवा करि रहे हौ ? श्रीलाल जू ने कह्यौ कि–प्रथम तो मेरौ मन अपने ठाकुरन पै छत्र-छाया करतो फिर रह्यौ है। दूजे अनेक मेरी मूरति बिनपै चँवर ढुराइ रहीं हैं। कोऊ बीरी अरोगवाइ रहीं हैं, कोऊ दर्पन दिखाइ रहीं हैं। और हू बहुत सी सेवा, जैसी कोऊ बतावै, तथा अपने ठाकुर की रूचि समझि, ताही अनुसार मैं सेवा करूँ हूँ। जब कबहूँ सेवा ते मोकूं समय मिलि जाय है, तब अपने प्राणनाथ की जय-जयकार मनायो करूँ हूँ।

हे प्यारीजू ! और एक अति आश्चर्य की बात मैं आपसों ही पूछूँ हूँ कि— जा समै अपने ठाकुर के दर्शन करूँ हूँ, वा समय बिनके रूप की छवि-छटा कछु और की और ही होती जाय है, यह कौन सी बात है ? ऐसी रूप की अद्भुत गति, पहिले हमने न तो कबहूँ सुनी न कहूँ देखी, और न आगे कहूँ ऐसी है सकै है। या प्रकार अपने इष्ट के रूप की प्रशंसा करते-करते जब श्रीलाल जू बेसुध है गये, तब श्रीस्वामीजी

महाराज बोले कि हे प्यारी जू ! ये लाल आपके श्रीचरन-चिह्नन के प्रेम रस में ही अपनी सुधि-बुधि खोइ बैठे, "यह भई और की और"।

अद्भुत आसक्त सिरोमनि लाल के आसक्ति-सागर की महाविचित्र-तरंगनि कूँ समझिबो ही अति कठिन है। एक समय दोऊ श्रीजुगल निकुंज भवन में विराजें भये सहज सुभाव परस्पर निहारि रहे। वा समय श्रीलाल जू कहिबे लगे कि—हे प्यारी जू ! आपके श्रीमुखचंद कूँ देखि कें मेरे हृदय रूपी सरोवर में कमोदिनी स्वरूप लालसा फूल उठीं, जासों अनंत मनोरथन के पुंज-स्वरूप मन में अपार तरंग चलन लगीं। और जैसे-जैसे विलास मनोरथन की तरंग अपार मेरे मन में बढ़ती जांय हैं, तैसे-तैसे ही आपके श्रीमुखचंद्र की सुंदरता हू अपार बढ़ती जाय है, किन्तु मेरे हृदयरूपी सरोवर में ही आपके कुपित होइबे को, भय रूपी ग्राह ऐसो जबरदस्त बैठ्यौ है, जो मोकूँ ग्रसे लिये ही जाय है। मैं अपने मन कूँ मुकतौ समझाऊँ हूँ कि—आप अति अद्भुत उदार सिरोमनि एवं परमप्रीति करिबे-वारी करुणासागर हैं, तौहू वो ग्राह मोकूँ कैसेहू नाँइ छाँडि रह्यौ है, मैं केवल अपनी बुद्धि-बलते ही ऐसी स्थिति में झूल रह्यौ हूँ। याते हे—करुणानिधानप्यारी जू ! अपने श्री चरनकमलनि कौ आश्रय दे-के या ग्राह ते मोकूँ छुड़ाइ लेउ। इतेक कहते-कहते प्रानजीवन लाल ! लटपटाइ श्री स्वामिनी जू की बाँह पकरि, बेसुध ह्वै गये।

अति आश्चर्य की बात तो यह है कि—न तो कोऊ विरह है, और न काहू प्रकार कौ मान ही है ?—केवल आपकी सुंदरता कूँ देखि कें ही समस्तठाकुरन कौ सिरमौर ठाकुर है-के हू, आप या भाव में ही बेसुध ह्वै गये कि-इतेक अगाध सौंदर्यरूपो महामधुरी कूँ मैं कैसे बिलसूँ ? यदि काहू बात सों आपने नेक हू भौंह टेढ़ी करि लीनी, तो मैं कैसेहू सहन नाँइ करि सकूँगो।

या भय रूपी ग्राह सों अपने मन कूँ भलीभाँति निडर नाँइ करि सकिबे के कारन ही लाल सुधि-बुधि भूलि विवश ह्वै गये। जब स्वयं श्रीप्यारीजू ने ही लाड़-प्यार करि, आपकूँ सावधान कीनौ, तब आप बोले कि—हे प्यारी जू ! एक तो स्वर्णकमल सदृश आपको श्रीमुखचंद्र, दूजे अति झीने श्रम-जलकनन की तामें अद्भुत शोभा, तापै हू तिल पै दृष्टि परत खेम तो मेरो मन ही हरन ह्वै जाय है।

इतेक वर्णन करते-करते फिर आप अचेत ह्वै गये।

श्री प्यारी जू के रूपामृत कूँ इतेक वर्णन करते-करते फिर आप अचेत ह्वै गये। परमोदार शिरोमनि श्री स्वामिनी जू ने अति रहसि-रसमय लाड़-प्यार द्वारा आपकूँ सचेत करि, जब भलीभाँति सुखी कीने, तब प्यारीजू कूँ अति प्रसन्न जानि, श्रीलालजू

प्रार्थना करते भये कहन लगे कि—हे प्यारी जू ! आज आप एक वचन मोकूँ दे-देउ कि—न तो मैं कबहूँ मान करूँगी, और न मन-बानी-देह तीनों प्रकार सों कबहूँ टरूँगी। क्योंकि आप—नेंक मानवती है जाओ तो, मेरे तन-मन-प्रान-रोम-रोम में आपको मान ऐसे व्यापि जाय है, जाकूँ मैं कैसेहू सहन नांइ करि सकूँ हूँ। फिर आपही बतावो ! आपके मान सों कैसे लरि सकूँ। ऐसे ही श्रीलालजू की आसक्ति कौ कछु लक्ष्य कराते भये श्री गुरुदेव जू ने साखिन में कह्यौ कि—

अति टोडिक अति चिकनिया, अधिक चतुर इतराय।
कितहि विभौ कित ठकुरई, जूठनि कौं ललचाय ॥
जाँचे जूठि न पाइये, पग परि हा हा खाइ।
जो ठाकुर कहि बोलिये, तौ सकुच तनक ह्वै जाइ ॥

उपरोक्त प्रकरण ते श्रीव्यासजी महाराज के कथनानुसार ये दृढ़ निश्चय भयो कि श्रीस्वामी जी महाराज के समतूल, कोउ और रसिक जगत में प्रकट नांइ भयो है ! अब विचार ये करनो है कि-श्रीव्यास जी महाराज ने ये हू कह्यौ है:—ऐसो रसिक आगेहू और कोउ नांइ है सकै है। ता विषय में या भाँति समझनो प्रेम ज्यों-ज्यौं गाढ़तर होय है, त्यों-त्यों अनन्यता हू गाढ़तर होती चली जाय है। या न्याय अनुसार जब श्रीस्वामीजी महाराज श्रीजुगल के चरम-सीमा कौ सुख—जो एकान्त-रस विलास महागूढ़-सुरत-रस है,ताकूँ ही बिलसाइबे के,कोटानुकोटि उत्तमकुल की पतिव्रतान ते हू अति दृढ़ अनन्य हैं, तब श्रीजुगल नेहू श्रीस्वामीजू को दृढ़ अनन्य होइबो अनिवार्य है।

स्वामिनि श्याम अनन्य भजें भ्रम दूरि कियो तिनकी वलिहारी। —श्रीगुरुदेवजू

गौर-स्याम के प्रान, श्रीहरिदासी में बसें। —श्रीललितकिशोरीजू

यदि कोऊ ये बात कहै कि ब्रह्मा, महादेव एवं श्रीविष्णुभगवान ते लै कें साक्षात श्रीलक्ष्मीनारायण, श्रीजानकी-प्राणवल्लभ आदि यावत् श्रीभगवत्स्वरूपन में या प्रकार की अद्भुत आसक्ति कहूँ नांइ सुनिबे में आवै है। तब श्रीनित्यविहारिणी स्वरूप में श्रीलालजू की इतेक अति-अद्भुत-अगाध आसक्ति महतन ने कैसे गाई है ? तहाँ ऐसे समझनो कि यावत् श्री भगवत्स्वरूप एक विशुद्ध प्रेम के ही आधीन होय हैं, तामें जो प्रेम शृंगार रस कौ स्वरूप है, वा प्रेम के आधीनता की अद्भुत आसक्ति कूँ शृंगार रस के रसिक जन ही समझि सकें हैं। वा शृंगार-रस की निज मूल-स्वरूपा प्रथम-समागम एकान्त रस विलास निजमहल श्रीवृन्दावन की ही दृढ़ अनन्य-

विलासिनी सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनिजू ही हैं। तब ये निर्बिबाद सिद्ध है जाय है कि प्रेम जगत में आपकी समतूल दूजो कोऊ स्वरूप है ही नाँइ सकै है। याते केवल आपके ही ऐसे अति अद्भुत-अनन्य-आसक्त, श्रीलालजू को होइबो स्वाभाविक है। तापै हू कोउ ये कहै कि-प्रथमसमागम तो समस्त श्रीजुगल स्वरूप कौ होय है। ता विषय में या भाँति समझनो कि-अति विशुद्ध पूर्नतम प्रेमीन को ही प्रथम समागम एकांत रस-बिलास-महामधुर-सार-रस कौ होय है, क्यौंकि वाही रस कौ इतेक अद्भुत स्वरूप है कि, जाके बिलासी छिन मात्र के ताई हूँ वा रस के वियोग ऐसे नाँइ सहन करि सकै हैं, जैसे मछली पानी तेः—

विहारिदास जल जंतु ज्यौं, जल बिन रहै न प्रान।
याही अर्थै समझि लै नित्य विहार निदान॥

ऐसेही या रस-माधुरी-आस्वादन में श्रीजुगल कूं निद्रा-भोजन की हू कबहूँ सुधि नाँय होय है।

जागत अनुरागत निसिवासर लगत न नैंन निमेष न आधा। —श्रीगुरुदेवजू
रोम रोम तन यह सुख विलसत भोजन भूख न प्यास। —श्रीरसिकदेवजू
पलक वोट वन बोलत डोलत व्याकुल तन मन लीन। श्रीगुरुदेवजू

ऐसी अति अद्भुत-अगाधमहामाधुरीरस-सागर की छींट, उछटि कें श्रीव्रजरस-देस में परी, तहाँ प्रेम कौ अगाधसागर बहन लग्यौ, जामें समस्त रसिक महानुभाव मनमाने पैरें हैं।

छलकत छींट जहाँ परी, तहाँ प्रेम उदगार।
गावत नृत्यत हँसत सब, हरि हित हरषि उदार॥ —श्रीगुरुदेवजू

छलकत छींट परी आनंद की व्रज में नाँहि समाई।
यह गुप्त रीति हरिदास प्रगट करी रसिकनि कें मन भाई॥ —श्रीललितकिशोरीजू

ऐसे हीं व्रजरस सागर की छींट छलकि कें श्रीमथुरा-द्वारिका में, बिनके रस सागर की छींट और-और भगवत्स्वरूपन में समझ लेनी चहिये। याही सिद्धान्त-अनुसार समस्त श्रीभगवत्स्वरूपन के प्रथम समागम कौ रस समझनो चहिये।



नम्र निवेदन

★

सतजुग-त्रेता-द्वापर में प्राय: ऋषि, महर्षि आदि समस्त परमार्थी ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के ताईं ही अष्टांग योग-यज्ञ, कठिन व्रत-तपादि एवं लम्बी समाधि आदिकन में ही पचि-पचि के लगे रहे। तिनमें विरले कोऊ महाबड़भागी कृपापात्र जन ही श्रीभगवान की भक्ति पथ पै-आरुढ़ होय, अग्रसर होते रहे। द्वापर के अंत में पूर्ण पुरुषोत्तम-प्रेमप्रधान स्वयं भगवान श्रीव्रजेंद्रनंदनजू जब श्रीव्रज में अवतरित भये, तब ही रस-घनमूर्त्ति, रसस्वरूपा श्रीवृषभानुनंदिनीजू हू श्रीवृषभान भवन में अवतरित भईं। श्रीव्रजमंडल में या जोरी के प्रगट होइबे ते ही प्रेम-रस कौ प्रवाह जगत में प्रबाहित भयो।

एक समय विहरत वन माहीं। कियौ मतौ बिबि द्रुम की छाँहीं ॥
यह निज रस कीजै विस्तारा। रसिक जननि कौ अति ही प्यारा ॥
नंदलाल वृषभानु किशोरी। रसिकनि हित प्रगटी यह जोरी॥ श्रीध्रुवदासजी

आपके रसन कूँ सर्वप्रथम परमहंस चूड़ामनि-महामुनि श्रीशुकदेवजू ने ईश्वरता-मिश्रित, वात्सल्य, सख्य, शृंगार आदि महारास पर्यन्त कूँ श्रीमद्भागवतजू में भली-भाँति वर्णन कीनो है। तत्पश्चात् नित्यधाम सों नित्यसिद्ध रसिक महत्पुरुष, या-भूमंडल पै अवतरित होय, अति कृपाकरि-वात्सल्य, सख्य मिश्रित शृंगार-रस कूँ पुन: नाना-भाँति वर्णन कीने। तिनमें काहू-काहू महत्पुरुषन ने केवल शृंगार रस की ही उपासना जगत में प्रवाहित करि, कान्ता एवं सखी भाव की ही प्रधानता बिनने राखी। ऐसेही अनेक महानुभावन ने सखी-सहेली-मंजरी-सहचरी, आदि भावन की उपासना अपने आश्रितनकूँ प्रदान करि,श्रीजुगलरस कौ महासुखसिंधु प्रवाहित कीनो।

जब जन्मलीलान ते संबंधित ही स्थूल-संयोग-वियोगात्मक रस के उपासक चारों ओर छाय गये, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतिझीनो रस निजमहल में अकुलाय उठ्यौ। ताते सर्वोपरि नित्यविहारिनीजू की दासी निज श्रीललिताजू स्वयं श्रीहरिदास-स्वरूप सों जगत में प्रगट होय, निपट-नित्यविहार रस उपासना कूँ प्रवाहित करि, अतिसूक्ष्म धर्म कूँ सुशीतल कीनो।

सूक्ष्म धर्म दुरचौ महल, रहे अधर्मी छाय।
विहारिनिदास प्रगट कियो, जब उठ्यौ धर्म अकुलाय ॥ —श्रीगुरुदेवजू

तदुपरांत आपने निजमहल के नित्यविहार उपासना की समस्त अंग-पूर्त्ति के ताँई सर्वप्रथम नित्यविहारीठाकुर कूँ श्रीबाँकेबिहारी स्वरूप सों जगत में प्रत्यक्ष प्रगट कीने। दूजे प्रेम-रस वर्णन करिबेवारे महतन ते आपने कह्यौ कि:—अति विशुद्ध प्रेम-रस ताऊँ काहू कौ सर सूधौ नाँइ परै है, कारन सब लोग ईश्वरता मिश्रित स्थूल प्रेम-रस कूँ ही निरुपन करैं हैं। याते विशुद्ध प्रेम-रस जानिबे को मार्ग ही बिनते बहुत दूर रहि गयो। वाके जानिबे कैं ताँई, और कहूँ इत-उत माऊँ नाँइ देखि कैं एकमात्र निपट नित्यविहार के ही अनन्य कुंजविहारी ठाकुर के स्वरूप कूँ भलीभाँति समझोगे, तबही निज रस-रीति उपासना कौ स्वरूप समझि में आय सकैगौ।

याही अभिप्राय सों श्रीकुंजविहारी अनन्य-उपासना कूँ अपनी निज बानी श्रीकेलिमालजू में सूत्र स्वरूप सों आपने वर्नन कियो है, जाकूँ आपके ही अनुगत अष्टाचार्यन ने अपनी निज-निज वानीन में भली-भाँति विस्तार सों कह्यौ है।

श्रीस्वामीजू के सिद्धान्त के एवं समस्त अष्टाचार्यन की वानी में वर्णित सिद्धान्त के पदन की टीका—बिनकी ही कृपा तें जैसौ कछु बुद्धि-विचार में आय सक्यौ, तैसो ही डरि-डरि कैं ढींठता सों लिख्यौ गयो है।

इतेक बड़ो दुस्तर कार्य यदि "बाबा श्रीविश्वेश्वरदासजी" का आदि से अंत ताऊँ सहयोग हमें नाँइ प्राप्त होतो तो, यह कार्य संपन्न करिबो मेरे ताईं नितांत असंभव हो। साथ ही डा. "बुद्धि प्रकास" ने हू बहुत दिन ताऊँ अधिक समय कूँ देकर इस महान् कार्य में सहयोग दीनौ है। इनके अतिरिक्त औरहू महानुभावन ने हमें परामर्श-सुझाव एवं सहयोग दिये हैं, बिन सभी के हम आभारी हैं।

ऐसे सर्वोपरि परमार्थ-पथ के वचननि पै जो कछु लिख्यौ गयो है, वो सब बालवत् भाषा ही समझनी चहिये। याते सभी महानुभावन ते करबद्ध प्रार्थना है कि—जो कछु त्रुटि होय, अपनो ही बालक समझि, क्षमा करि सुधार लेवैं।

—हरगूलाल



निज महल
श्री वृन्दावन
अष्ट सहचरी-परिकरसेवित श्री जुगलकौ रस-विलास
स्वकीया-परकीया-बहुवल्लभता, महारास-विलास आदि श्रृंगार-रस-सागर
सुबल, श्रीदाम, तोष, मना, मनसुखा आदि कौ सख्य-रस-सागर
श्री नंद-यशोधा जू की अद्भुत लाड़-प्यार-मय वात्सल्य-रस-सिंधु
श्री ब्रज-रस-उत्कर्ष, प्रकाशक श्री मथुरा-द्वारिका लीला
मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान श्रीराघवेन्द्र जू कौ साकेत धाम
ऐश्वर्य-प्रधान भगवान श्री रमापति जू कौ बैकुंठ-महाबैकुंठ आदि लोक
निरीह, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, ब्रह्मानंद-सागर
माया सबल

मानचित्र के प्रसंग में

★

श्रीगुरुदेवजू–

छलकत छीट जहाँ परी, तहाँ प्रेम उद्‌गार।
गावत नृत्तत हँसत सब, हरि हित हरषि उदार॥

× × ×

ता ब्रज के आवर्न सुनि, गोपी-गाय-गुवाल।
तिनहूँ ते विहरत दुरे, रसिकनि के प्रतिपाल॥

तीरथ सकल लोक बैकुंठ तें मधुपुरी अधिक संदेह नसानौं।
तातें अधिक निकट ब्रज वैभव ब्रह्मा वेदनि प्रगट प्रवानौं॥
श्री विहारिनिदास निकुंजनि सेवत जामें राधा रवन रमानौं।
विद्यमान हरि मंदिर राजत श्री वृन्दावन रस खान खदानौं॥

कुंजविहारी सर्वसुसार।
श्रीस्वामी हरिदास उद्धरे रसिक अनन्यनि कौ आधार॥
नित्य प्रगट गावत नहिं पावत सब श्रुति तत्व विचार।
इहि निज नाम धाम वृन्दावन निरनैं नित्यविहार॥
कामकेलि रस और न परसत प्रेम समुद्र अपार।
नित नव जोवन जोर किशोर किशोरी कंठ सिंगार॥
मत्त मुदित सहचरि सेवत नित लता ललित आगार।
जानत सबै जगत ज्यौं जुवती छुवत न भै भूप भंडार॥
जनम करम पूरन प्रभु के सब आस पास परिवार।
अंस कला सब अवतारिन कौ अवतारी भरतार॥
श्रीकृष्ण चरित्र त्रिधा त्रिभुवन बहु भक्ति भेद विस्तार।
जहाँ जु रस तहाँ तहिं वैस सुख देत सबनि उदार॥
गाय ग्वाल गोप गोपीजन न्यारौ ब्रज व्योहार।
सब ते दूर दुरचौ दुर्लभ क्यौं सुलभ होत सुकुमार॥
जो चाहै चित दै निज महलनि के अंग संग अनुसार।
श्रीविहारीदास जे यह मत गावत तिनकौ वार न पार॥

]

ामी श्रीसरसदेवजू–

कर्म धर्म अरु ज्ञान विज्ञान भक्ति न आन हृदै में आनौं।
वेद रमापति रामहि आदि दै श्रीव्रजराजहिं कोऊ जो बखानौं॥
अति दुर्लभ नित्य विहार हमारे जू श्रीहरिदास प्रगट प्रवानौं।
सरस सुसार विचारि बिहारिनिदास बिना हों बिहार न जानौं॥

वामी श्रीरसिकदेवजू–

महल तें निकसि न बाहिर आवैं। कुंज कुंज प्रति खेल मचावैं॥
वन उपवन बाहिर की लीला। नंदकुँवार करत तहाँ क्रीला॥
तिनतें अवतार हैं जिते। नारायन आदि लोक सब तिते॥
निर्गुन ब्रह्म है जाकी आभा। जातें सकल जगत है लाभा॥

स्वामी श्रीललितकिसोरीदेवजू–

हमारो महल महा सुखदाई।
प्रियालाल कों रंग बढ़ावत छिन छिन प्रीति सवाई॥
छलकत छींट परी आनंद की व्रज में नाँहि समाई॥
यह गुप्त रीति हरिदास प्रगट करी रसिकनि के मन भाई॥

स्वामी श्रीकिसोरदासजी–

एक धाम वृन्दाविपिन, पंचावरण अनूप।
जो रस ता आवरण मधि, तैसो तहाँ स्वरूप॥
अब सुनि पृथक-पृथक इतिहासा। तासु तासु मधि त्रिधा निवासा॥
एक तत्व आनंद अपारा। जैसो भाव जासु निर्द्धारा॥
सो सब सुनौ मूल इतिहासा। तेरे उर अद्भुत जिज्ञासा॥
कमलाकार सहज सुख धामा। सब पर श्री वृन्दावन नामा॥
मध्यकोश तहँ नित्य विहारा। चहुँ दिसि प्रेम समुद्र अपारा॥
रस माधुर्य्य स्वरुप अथाहा। श्रीहरिदास मीन की राहा॥
सो सब सिंधु कर्णिका रूपा। कोश चहूँ दिशि बन्यो अनूपा॥
पंचावरण तासु दल शोभा। उदित भाव रस अद्भुत गोभा॥
प्रेम सिंधु सो कर्णिका, ता चहुँदिशि अस्थान।
नित्यकिशोर निकुंज सुख, रस शृंगार निदान।

सो वह रस श्रृंगार अनूपा। नित्यबिहार मूल कौ रूपा ॥
मूल कोश मधि अद्भुत अवनी। नगमणि जटित महा मृदु कवनी ॥
विचरत युगल परत प्रतिबिंबा। निरखि रीझि युग करत बिलम्बा॥
सो प्रतिबिंब त्रिधा मणि माहीं। प्रेमसिंधु मधि ताकी झांहीं ॥
तासु सिंधु ते उठत झकोरा। अद्भुत बिंदु परत चहुँ ओरा ॥

याही भाँति निजमतकार स्वामी श्रीकिशोरदास जी ने अवसान खंड पृ. ४१ से पंचावरण को स्वरूप विस्तार पूर्वक वर्णन कीने हैं।

स्वामी श्री भगवतरसिकदेवजू–

प्रथम महातम प्रकृति ज्ञान रवि तहाँ प्रकासै।
दूजे ब्रह्म प्रकास कोटि सूरज सम भासै ॥
तीजे पंकज नाभि रमा बैकुंठ निवासी।
चौथे दशरथ सुवन राम गोपुर के बासी ॥
पाँचे व्रज के गोप नंद आदिक सब गोपी।
छठवें सखी समाज करें लीला रस ओपी ॥
भगवत सतयें आबरन करहिं केलि राधा रवन।
सर्वोपरि सर्वेश गुरु रसिकराय मंगल भवन ॥

स्वामी श्री रसरंगजी–

करि इक याद भई रे भाई कहाँ सुखन इक और।
बसरी और फुरकानि हूं की तहाँ न इनकी दौर ॥१॥
चौदह तबक हैं या विराट में तामैं तीनों देवा।
जेते जीव जहान तिते सब करत इन्हीं की सेवा ॥२॥
ता आगे सुख और बताऊं जहाँ मियां का डेरा।
आलमीन अल्लाह जहँ बैठा सबका करै निबेरा ॥३॥
ता आगे सुख और बताऊं जहाँ रमापति राजै।
वेद कितेब कहैं ह्यां ही लों फिर आगे जिय लाजै ॥४॥
ताके आगे ज्योति निरञ्जन इन सबही को मूल।
सप्त शून्य फिर और बताऊं मेटैं सबको शूल ॥५॥
ऊपर अक्षर ब्रह्म अपारा जाकर सकल पसारा।
सो तो है आभास धाम का जानत जानन हारा ॥६॥

सो तो है गोलोक अनेकन राम कृष्ण तहँ दोऊ ।
करि सतसंग जाय कोई विरला बड़ी पहुँच जो होऊ॥७॥
क्षर अक्षर निः अक्षर छांड़े तजे अक्षरातीत ।
आगे हंस हिडम्बर बैठ्यो सत्त सुकृत को जीत ॥८॥
ताके आगे और पुरुष है वाका रुप अगाधा ।
याको कोई जानत नाहीं ना काहू आराधा ॥९॥
ताके आगे और पुरुष है गहै आपनी टेक ।
इन सबहिन को करे सकेला रहै अकेला एक ॥१०॥
हद बेहद के आगे एतौ सब कहि आये ।
कोटिनब्रह्म प्रेम कोटिन पर जहँ कोऊ गये न आए॥११॥
ताके आगे रास विलासी रुप रंग अनियारा ।
रहे पास नाइब नहिं जानै यह तो अचरज भारा ॥१२॥
व्हां तो देखौ रूप सुभानी व्हां तो अजब तमाशा ।
सखी समूह रहै बीचहि में जाय न कोऊ पासा ॥१३॥
पक्षी मधुकर शब्द न पहुँचे जहँ नहिं शोर सराबा ।
बाजे जिते तहाँ नहिं बाजें ताल मृदंग रबाबा ॥१४॥
सो तो निधिवन राज बिराजै रंग महल ता माहीं ।
श्रीस्वामी हरिदास बतायौ कोऊ पहुँचत नाहीं ॥१५॥
सांची शरण लेय स्वामी की सो तो पहुँचन पावै ।
नातर रहै बीचही हिलग्यौ कोटिकल्प नहिं जावै ॥१६॥
श्रीगुरुदेव कियो निरधारा सो तो पढ़ियो वानी ।
ललितकिशोरी धरो हृदय में समझौ अकथ कहानी॥१७॥
ललित मोहिनी दया तें, दरसायो रस रंग ।
रस रंग लखी छवि बांकी, झांकी नव नव रंग ॥

★
★★

* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *

श्रीकुंजविहारीविहारिनि रूपी जो सुमेरु धीर है सो अखंडित एक रस है, ताको सरुप प्रगट श्री स्वामी आशुधीरजू ।

प्रगट परचो सुरसरी को भेंट दई ता समय में श्री स्वामीजू ने द्वै साखी कहीं सो साखी लिख्यते ।

* साखी *

बड़कुल जनमें कहा भयो कहा बसें सुरसरी तीर ।
आसुधीर सन्तन भजें पावन भयो सरीर ।।
धन्य धन्य तिहुँ पुर भयो गई विप्रन की ऐंठ ।
आसुधीर जग जानियो जब लई सुरसरी भेंट ।।

श्रीस्वामी आसधीरदेवजू दया-कृपा में विवश होइ, समस्त जीवन के प्रति-लक्ष्य करि, कथन कियोकि—हेभाई ! मानव-देह धारण करिबे को निज लाभ-न तो उच्चकुल में जन्म लेबे ते ही होय है, और न श्रीगंगा आदि तीरथन में केवल वास करिबे ते ही । मानवदेह को सफलता एकमात्र श्री भगवद् -चरणारबिंद की प्राप्ति में ही होय है । जो केवल श्री भगवद्-भक्तन की कृपा ते ही संभव है, याते जो संत भगवद्-प्राप्ति के ताईं संसार कूँ त्यागि, वैराग्य लै श्री हरि को भजन करें हैं, ऐसे महत्पुरुषन की रहनी, कहनी एवं आचरन अति उज्ज्वल होय हैं । याते बिनकी ही सेवा-संग सों भगवद्भक्ति हृदय में उदय होय, श्रीभगवद्—चरणारबिंद—मानव सहज प्राप्त करि लेवै है ।

उपरोक्त साखिन के विषय में "निजमत-सिद्धान्त" आदि खण्ड में ऐसो वर्णन है कि—एक समय गढ़ मुक्तेश्वर-परम पावनी श्रीगंगाजी के किनारे वेदपाठी ब्राह्मणन ते, महाभागवत श्रीस्वामी देवदत्तजू में बाद-बिबाद बहुत बढ़ि गयो । तब,तहाँ श्री स्वामी आसधीरदेव जू प्रगट होइ, ये निर्णय कीनो, कि जिनके हाथ को भोग लगायोभयो-महाप्रसाद कूँ श्रीगंगाजी स्वयं अपने कर-कमलन कूँ निकारि, ग्रहण

करि लेवें, बिनको ही पक्ष कूँ सत्य-समझनों चहिये। श्रीस्वामी आसधीरदेवजू के या निर्णय कूँ अति शुद्ध सर्वोपरि-मानि, दोऊ पक्षन ने शिरोधार्य करि, अपनी रीत्यनुसार-पाक बनाइ श्रीठाकुरजी कूँ भोग धरे। फिर वां महाप्रसाद कूँ श्रीगंगाजी के तट पै दोऊ पक्ष लै गये। तहाँ श्रीस्वामी देवदत्तजू ने परम भागवती श्रीगंगाजी सों प्रार्थना कीनी कि– हेभक्ति भागीरथी! आप कृपा करि अपने श्री कर-कमलन कूँ निकारि, महाप्रसाद कूँ ग्रहण कीजिये, जासों भक्तिपथ की विजय पताका समस्त विश्व में आज फहराइ उठे।

श्रीदेवदत्तजी की ऐसी प्रेम भरी प्रार्थना सुनि, श्रीगंगाजी ने अति-कमनीय सिंगार सों सुसज्जित अपने श्रीहस्तकमलन कूँ सबनि के समक्ष चौरें निकारि, महाप्रसाद कूँ ग्रहण करि लीनौ। ताही समय धन्य-धन्य की ध्वनि त्रिभुवन में छाय गई। तदुपरांत श्रीस्वामी देवदत्तजू तहाँ ते उठि, अपने गुरुदेव स्वामी श्रीआसधीरदेवजू महाराज के चरण-कमलनि में माथो नवाइ दण्डवत कीनी। उत में वेदपाठी ब्राह्मणन ने श्रीगंगाजी के किनारे अति शुद्धता ते वेद-मंत्रन कूँ उच्चारन करि-करि, संध्याताऊँ श्रीगंगाजी सों प्रार्थना कीनो, किन्तु श्रीगंगाजी ने अपने हस्तकमल नाँइ निकारे, तब विचारे निरासा ते अति लज्जित होय, अपने-अपने घरन कूँ लौट आये।

आसधीर आगम सुनि पाये। पुरवासी दर्शन को धाये॥
निरखि प्रसन्न भये सब लोगा। तिनके मिटे सकल उर सोगा॥
यह आगम विप्रन सुनि पाये। ता छिन सबै सिमिटि तहँ आये॥
लखि स्वरूप नावत भे शीशा। उर ऐश्वर्य धरचौ जिमि ईशा॥
पूछन लगे विप्र कर जोरी। बदत बैन निरखौ मम ओरी॥

हरि प्रसाद महिमा अधिक, अति पवित्र सब काल।
शिव विरंचि सनकादि मुनि, करत अशन रस व्याल॥

सो प्रसाद सबके मन भावै। कृष्ण सुखित श्रीमुख ते पावै॥
कहौ कृष्ण जेमत किहि हाथा। ह्वै निरपेक्ष सुनावहु गाथा॥
हम यह बदत पृथक मुख बानी। सो तुम सुनौ लेहु सब जानी॥
बिप्र कहत द्विज के कर पावैं। श्रुति-सम्मृति मंत्रनि को गावैं॥
तुलसी शंख घंट धुनि होई। विप्र देह सुठि करत रसोई॥
नारायण गनपति शिव सक्ती। सूरज सहित समान सुब्यक्ती॥
पंचरूप एकत करि सेवै। सो सब मन बांछित फल लेवै॥

बिप्रपाक करि भोग लगावै। ता प्रसाद को सुर नर पावैं ॥
संत बदत सति भावयुत, सेवत इष्ट स्वरूप।
प्रेम सहित अर्पन करै, सो प्रसाद सब भूप ॥
सेवत इष्ट अनन्य उपासा। स्वर्ग नर्क की आस न त्रासा ॥
जाति वर्ण नहिं तन अभिमानी। हरि गुरु भक्ति संत सनमानी ॥
अच्युतकुल तिनके पद सरणी। हरि गुरु कथा सुनत मुख बरणी ॥
कृष्ण हाथ तिनके नित पावैं। खाय सरांहि मोद उपजावैं ॥
पृथक रीति बानी मुख गाई। द्रष्टा होइ देहु समझाई ॥
आसधीर बोले मुख बैना। सत्य बात लखिये सो नैंना ॥
पृथक पृथक तुम पाक बनावो। भोग लगाय गंगतट जावो ॥
गंगा युगल काढ़ि कर लेवै। सो प्रसाद सबकौ सुख देवै ॥
तुम द्विज ये सब संत जन, ताको एह उपाव।
गंगा हरि – पादोदकी, करि हैं शुद्ध सु न्याव ॥
सब पुरजन द्विज सुभ सुनि बानी। जयति २ धुनि सब मिलि गानी ॥
विप्र प्रसन्न भये बहु भाँती। संतनि उर उपजी अति शाँती ॥
द्विबि मिलि पृथक पाक सुठिकीनो। पृथक रीति अर्पन करि लीनो ॥
लै प्रसाद—दोऊ मिलि धाये। गंगातीर संत द्विज आये ॥
देवदत्त गुरु आयसु पायो। अष्टविप्र सुरसरि तट आयो ॥
तिन कर जोरि बीनती कीनी। लै प्रसाद कर काढ़ि प्रवीनी ॥
युग कर-बर श्रृंगार अनूपा। तिन लै श्री प्रसाद रसरूपा ॥
धन्य संत निकसी यह बानी। सुनि नर नारि भये सुखदानी ॥
सब मिलि जय जय जय करी, भयो उच्च सुरनाद।
ता छिन युग कर काढ़ि कें, सुरधुनि लियो प्रसाद ॥
तहँ ते देवदत्त उठि आये। श्रीगुरु चरन कमल सिर नाये ॥
द्विज प्रसाद लै कें कर ठाढ़े। विविध प्रकार मंत्र मुख काढ़े ॥
मध्यकाल ते सायंकाला। खड़े याम युग भये बिहाला ॥
हास्य करन लागे सब लोगा। लज्जित नमि शिर उर अति शोगा ॥
लागे लरन परस्पर ऐसे। उद्यम अफल अभागी जैसे ॥
सो घर आनि हतत निजनारी। सो सबरीत द्विजन मिलि धारी ॥

अष्ट महंत तिनको तजिदीने। निरखि परम अज्ञान मलीनें।।
सो ततकाल तहाँ ते धाये। आसधीर के पद लिपटाये।।

उठि उठि अवनी पर परे, बन्दन करि सतिभाय।
करन लगे अस्तुती सुठि, प्रेम भक्ति उरछाय।।

अहो शुद्ध सर्वोपरि स्वामी। अति उदार वर उर विश्रामी।।
अखिल विश्व आत्मावत न्यारे। अकरन वरन करन करि टारे।।
उत्तम अमलप्रबल अघ नाशा। असद अलापरहित त्रयत्राशा।।
आगम अगम निगम परहेता। अनइच्छित जनते संकेता।।
अचर चरण चितके हितकारी। अज अनादिमत के अनुसारी।।
ओटरहित भवते भयहारी। आठ सिद्ध उरते जिन टारी।।
आड़रहित आतम पर बीचा। अति अनर्थ जित बसत नगीचा।।
अद्भुत अर्थ करत उपदेशा। अधम उधारि देत गुरुवेशा।।

अनर नमत पद त्यक्तमद, व्यक्तहोत जनकाज।
भक्ति ज्ञान वैराग वपु, प्रेमसिंधु की पाज।।

आप्तकाम अपरस रस स्वादी। अफल सुफल कल अतुल अनादी।।
अबलसुबलअनलेप अखण्डा। अभयकरनभ्रमनाश प्रचण्डा।।
अमर अकरु कर अछर अपारा। सारासार करन निर्धारा।।
युगकर कमल धरौ हम शीशा। करि वैराग्य भक्ति बकशीशा।।
सुनि यह मिष्ट सुष्ट मृदुबानी। आसधीर तिन मनकी जानी।।
माँगि माँगि बोले यह बैना। शुभ धरि बचन भयो चितचैना।।
अष्टमिष्ट नमि पद बद बचना। भक्तिभावयुत अति हितरचना।।
बसुयुग जोर सुकर शिरनायो। दासमानि मन बचन सुनायो।।

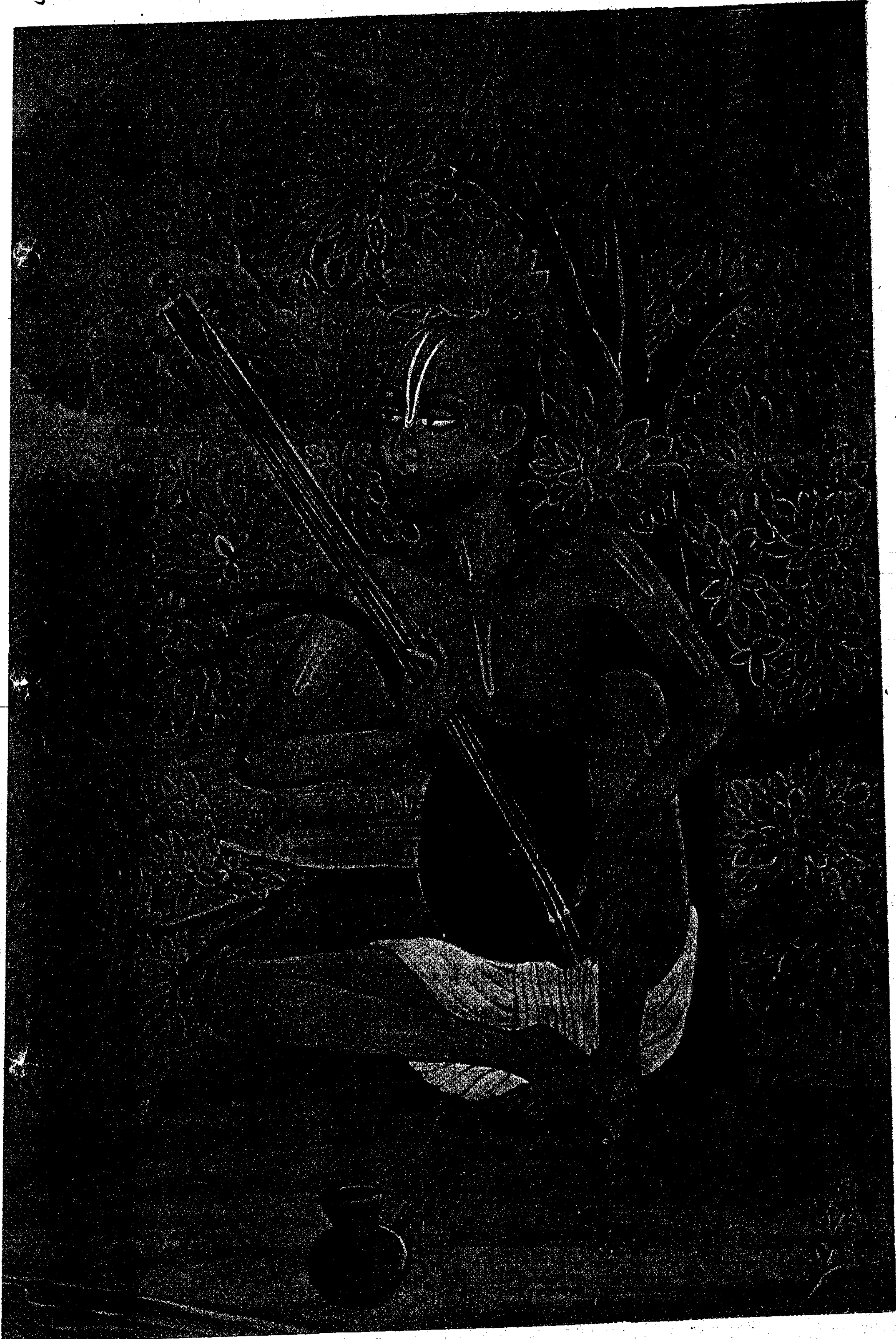
धर्म कर्म आशर्म तम, आदि मध्य अवसान।
इन बिन तुम पद कमलबल, बसौ मोर उरभान।।

निजमत सिद्धान्त आदि खंड पृ.१६७ से १७०



* श्री मन्निकुञ्जविहारणे नमः *

अखिल माधुर्यैक मूर्ति अशेष रसिक चक्रचूड़ामणि, रसिक-कमल-कुल-दिवाकर, मधुररससार-नित्य बिहार प्रकाशक, अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदासजी महाराज



विहारिदास विहार को उदय करन हरिदास ।

श्री
नमो
स्या
पर
का
श्री

रसि

अनन्य-नृपति-चूड़ामनि—
श्री स्वामीजी महाराज की प्रशंसा

श्री स्वामी अग्रदासजी महाराज—

नमो नमो श्रीहरिदास वृन्दाविपिन वास वर प्रान सर्वस बाँकेविहारी ।
स्यामा-स्याम जुगल रूप माधुर्य के रसिक रिझवार प्रेम अवतारी ।।
परम वैराग-निधि वसत निधिवन सदा भावना लीन सु प्रवीन भारी ।
कामना कल्पतरु सकल संतापहरु अग्रदास अलि कल्यानकारी ।।१।।

श्री स्वामी नाभाजी—

जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंजविहारी ।
अवलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी ।।
गान-कला गंधर्व स्याम-स्यामा को तोषैं ।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं ।।
नृपति द्वार ठाडे रहैं दरसन आसा जासु की ।
आसुधीर उद्योत करि रसिक छाप हरिदास की ।।२।।

रसिकवर श्री व्यासजी महाराज—

अनन्य नृपति श्री स्वामी हरिदास ।
श्री कुँजविहारी सेये विन छिन न करी काहू की आस ।।
सेवा सावधान अति जानि सुघर गावत दिन रस रास ।
अैसो रसिक भयो नहिं ह्वै है भुवमंडल आकास ।।
देह विदेह भये जीवत ही विसरे विस्व विलास ।
श्रीवृन्दावन रेनु तन मन भजि तजि लोक वेद की त्रास ।।
प्रीति रीति कीनी सबहिन सों किये न खास खवास ।
अपनो व्रत यह ओर निभायो जौलौं कंठ उसास ।।
सुरपति भूपति कंचन कामिनि जिनके भायैं घास ।
अबके साधु व्यास हमहूं से जगत करत उपहास ।।३।।

श्री गोविंद स्वामीजी–

जा पथ को पथ लेत महामुनि मूंदत नैन गहै नित नाँको।
जा पथ को पछितात हैं वेद लहै नहिं भेद रहै जकि जाको॥
सो पथ श्री हरिदास लह्यौ रसरीति की प्रीति चलाय निसांको।
निसाननि बाजत गाजत गोविंद रसिक अनन्यनि को पथ वांको॥४॥

श्री लालस्वामीजी–

रवनि रसायन परिहरी; साहि न मानत कौन।
आसू के हरिदास की, लगौ लाल पग पौन॥५॥

श्रीहित कुलभूषण ध्रुवदासजी–

रसिक अनन्य हरिदास जू, गायौ नित्यविहार।
सेवाहू में दूरि किये, विधि-निषेध जंजार॥६॥
सघन निकुंजन रहत दिन, बाढ्यौ अधिक सनेह।
एक विहारी हेत लगि, छांडि दिये सुख देह॥७॥
रंक छत्रपति दुहुन की, धरी न मन परवाह।
रहे भीजि रस-माधुरी, लीने कर करवाह॥८॥

श्री स्वामी प्रियादासजी–

स्वामी हरिदास रस-रास को बखान सकै रसिकता छाप जोई जाप मध्य पाइये। लायो कोऊ चोवा वाको अति मन भोवा वामें डारचौ लै पुलिन यहै खोवा हिये आइये॥ जानिकै सुजान कही लै दिखावो लाल प्यारे नेसुक उघारे पट सुगंध उडाइये। पारस पखान करि जल डरवाइ दियो कियो तब सिष्य ऐसे नानाविधि गाइये॥९॥

श्री किसोरी अलीजी–

श्री हरिदास कृपानिधि सागर हैं।
निसिदिन नैंननि के डोरनि सों, झुलवत नागरि नागर हैं॥
सरस गान करि रिझवत दंपति, सब रसिकन तें आगर हैं।
ललितकिसोरी बिजै रूप धरि, निधिवन वास उजागर हैं॥१०॥

चाचा श्री वृन्दावनदासजी–

महामहिमा युगल जासु रसना फुरी। भानुजा तट निकट निपट कमनी भवन, मिथुन रस रवन बरनी कला चातुरी। आसुकुल धीर अति वीर रस भजन पथ, जयति हरिदास जन सुमति अनुभव ढुरी। ढारि सौरभ पुलिन जाय विवि तन सनी, दई दरसाय प्रभु भावना हूँ दुरी॥ विकट वैराग अनुराग दंपति चरन, सुपद रसना कथन रूप रस माधुरी। वृन्दावन हित सकल गुननि कौ गहर अति, कृपा सींच्यौ हियौ कुँवर विपिनेश्वरी॥११॥

श्री स्वामी हरिदास उदधि सम आसय भारी।
सौरभ ढारी पुलिन बसन तन सने बिहारी॥
सींव महा बैराग्य की दंपति रिझये गान।
जुगल केलि रस माधुरी हो कियौ अलि ह्वै पान॥१२॥

नमो नमो बाँकेबिहारी।
श्री हरिदास भाव अलि सेये रस लीला नैंन निज निहारी॥
परचे हिय की हिलग माहिली मिष्ट जस बरन्यौ भारी।
वृन्दावन हित रूप रसिक प्रिया, राधापति जस गान अहारी॥१३॥

नमो नमो हरि प्यारौ निधिवन।
श्री हरिदास भावना कौ थल, निरखैं तहाँ गौर-साँवल तन॥
ताके मध्य कुंज अति कमनी दुलराये जु विहारी।
वृन्दावन हित रूप रिझये गान कुसल लह्यौ भक्ति अनन्य धन॥१४॥

× × ×

श्रीहरिदास गुननि के सिरमौर, भरे महाभाव लखि स्याम गौर।
चित वृत्ति करें रस कुंज दौर, नित फाग खेल रचें और-और॥१५॥

× × ×

नव-नव क्रीड़ा रतन मृदुल हित डोर सुहाई।
रसिक सुघर हरिदास केलि कलमाल बनाई॥

बिहारी बिहारिनि हुलसि बिलसि बतरस रंग भीने।
लटपटात अंग - अंग संग गावत सुर लीने ।।
कुंज पुंज रस माधुरी गूढ़ रहसि को कहि सकै।
श्री स्वामी की कृपा बिन वृथा बावरौ सौ बकै ।।१६।।

श्री रूपसखीजी–

श्री हरिदास अनूपम स्वामी।
रसिक अनन्यनि के चूड़ामनि अखिल लोक मैं नाँमी ।।
श्री वृन्दावन रंगमहल कल ललित लता छवि धाँमी।
गौर-स्याम दंपति छवि निरखैं रूप अमित अभिरामी ।।१७।।

श्री हरिदास रसिकवर अंसी।
अनमिष सुख रस रंगमहल को केलि कलोल प्रसंसी ।।
रति संग्राम वांम पिय उर पर लसनि प्रीत अवतंसी।
अधरपान उरजनि मैं मोहन भुज सों भुज मिलि गंसी ।।
अपनें चरन कमल दरसावो मिटै रूप की गंसी ।।१८।।

श्रीहरिदास रसिक अवतारी।
वंछित जिनकी मया विहारी ।।
अतिउदार करुनानिधि स्वामी सरवर को करि सके तिहारी।
कुंजकेलि रस रंगमहल छवि दंपति रूप सु आनन्दकारी ।।१९।।

जै श्री हरिदास रसिकवरकी।
परम अनन्य सुधरम बतायो करमनि की छाती धरकी ।।
नित्यविहार निरंतर निरखैं जहाँ नहीं गम विधि-हरकी।
रूप रंग रस जस कल गावै तिनुका लौं माया तरकी ।।२०।।

अहो रसिकपति तुम मेरी गति।
पूरन दृष्टि इष्ट मेरे स्वामी श्री हरिदास दीनी' सुंदर मति ।।
निरखत महल निकुंज सुदंपति जुगल चरन पंकजसौं कल रति।
श्रीवृन्दावन वास दयो सुख कहा कहै रूप अद्‌भुत करुना अति ।।२१।।

रसिकपतिराय हमारी लाज ।
सरनागत आरत प्रतिपालत सुंदर चरन जिहाज ।।
आचारज अद्‌भुत वृन्दावन तुम त्रिभुवन सिरताज ।
रसिक रूप सखी वलि छवि ऊपर चाहत सुधा समाज ।।२२।।

रसिकवर मोहि सनाथ कियो ।
महाप्रसाद दरस चरनामृत माँथे हाथ दियो ।।
नेह भरे दंपति दरसाये सीतल करचो हियो ।
विपुन सुवास रूप कौं दीनों इनसौं कौन वियो ।।२३।।

सुमरि मन हरिदासी हरिदासी ।
कुंजमहल निरखति दंपति दुति सुंदर वर सुखरासी ।।
करुनासिंधु उदार दीनबंधु महा प्रेम रस रासी ।
श्रीवृन्दावन नित्य रसिक रूपसखी अद्‌भुत छवि पासी ।।२४।।

रसिक हरिदास हिये में धारैं ।
महा अगम निगमनि तैं दुर्लभ नित्यविहार निहारैं ।।
श्रीवृन्दावन घन दंपति राजत यह रति महा बिचारैं ।
विहरत अंग संग सुख साजित सुंदर रूप तिहारैं ।।२५।।

स्वामी आचारज अचिरज के ।
अवतारी अवतारनि गावै भेद न पावै ते अजके ।।
नित्यविहार निरंतर निरखैं ताकौं तरसत वृजके ।
हौंस करै न लहैं मधुरैं रस रूप सनेही सजके ।।२७।।

स्वामी श्रीपीताम्बरदेवजू—

हरिदासी कुल कों बिबि चाहत । जानि अजान आप निरबाहत ।।
इनकौ सर्वसु ए भल जानैं । और न काहू भूलि पत्यानैं ।।
ज्यौं राजा को निजु भंडारी । भूलि न काहू सौंपे तारी ।।
ताके कुल सोई जु सपूत । ताही कों फिर दई बिभूत ।।
राजा स्याम राधिका रानी । जिनके श्री हरिदास दिवानी ।।

श्रीबीठलबिपुल विहारिनि मानी। सरस नरहरी रूप लुभानी ।।
रसिक प्रबीन आप अवतरी। त्रय मूरति की एकै करी ।।
ताहि चित चित छिन पल घरी। जे अगाध सुख सो सब करी ।।
कुल अपनें सर्बस रस सचै। आन उपासिक सबरे बचै ।।
श्री वृन्दावन महलिन कौ धाँम। परसत दरसत नाँहि सकाँम ।।
जिनपैं कृपा करैं हरिदासी। कुंजमहल सेवत दिन रासी ।।२८।।

श्री सीलसखीजी–

जय जय श्रीहरिदास सकल रसिकनि मनि स्वामी।
श्रीकुंजविहारी विहारिन के नित अंतरयामी ।।
परम उदार उजागर गुरुमनि गुरुवो।
जिनकौ रस जस पिवत और सुख लागत करुवो ।।
करुवो लगै सुख तीनि पुर हरिदास रस जे चाखहीं।
छाँड़ि विविध प्रपंच नश्वर नित्य कौ सुख भाषहीं ।।
हरिदास विमल विभूति विलसत रहत नित आनंद भरे।
तेई भये सर्वोपरि सुखी हरिदास जे अपने करे ।।२९।।

जय जय श्री हरिदास अनूपम साहिबी।
तिनकी समसरि और बताऊँ काहिबी ।।
ऐसौ न है नहीं ह्वै है इहि जग कोई।
जा ऊपर कर धर्यौ कर्यौ आपुन सम सोई ।।
सोइ जानि हैं हरिदास जू कौ मर्म अति ही निगूढ है।
सूझै तिन्हिं क्यौं कर्मजाल परे महामति मूढ है ।।
हरिदास नौका नाम चढि जे उतरि गये भव पार ते।
दरसी अनूपम माधुरी मन मुदित नित्य विहार ते ।।३०।।

जै जै श्री हरिदास रसिक चिंतामनी।
महिमा अपरंपार सकल रसिकन भनी ।।

श्रीकुंजबिहारिनि अंग संग नित रमि रह्यौ ।
प्रीतम कुंजविहारी जहाँ अनुचर भयो ।।
अनुचर भयो पिय साँवरो इहि प्रीति रीति प्रगट करी।
मन एक तन द्वै केलि विलसत हँसत नागर नागरी ।।
सुखद श्रीहरिदास बिनु सुखहि क्यों कोई जानि हैं ।
कृपा होय रसिक नरेस जू की तबही उर मधि आनि हैं।।३१।।

जय जय श्रीहरिदास भजन सुख सार है ।
अद्भुत अघट अलौकिक विशद विहार है ।।
हौं बलि बलि हरिदास छबीले नाम की ।
जिन यह संपति प्रगट बताई धाम की ।।
धाम वृन्दाविपिन घन हरिदास विन को पाइ है ।
नागर सिरोमनि जुगलवर इहि भाँति को दुलराइ है ।।
हरिदास प्रेम समुद्र वीचिन बीच मीन भयौ जियै ।
हरिदास नाम सुधा रसाइन अमर भयौ हित नित पियै।।३२।।

श्री किसोरदासजी–

तत सुख मधि छिन छिन सुखित,अपसुख गंध न लेस ।
किशोरदास या भाव को, सूक्षम दुर्गम देस ।।३३।।
सूक्षम दुर्गम देस के, श्रीहरिदास नरेस ।
कियें दृगन कूँ आरसी, सजत सिंगार सुपेस ।।३४।।
सखी भाव के मुकटमनि, श्रीस्वामी हरिदास ।
किसोरदास तिन निर्मयो, नित्यविहार उपास ।।३५।।
स्वामी से स्वामी भये, इन सम और न कोय ।
किसोरदास तिन सरनि तैं, तिनही सम जन होय ।।३६।।
भाव भक्ति सिर मुकट मनि, महामधुर रस सार ।
श्री हरिदास कृपा विना, होत नांहि निरधार ।।३७।।

श्री नागरीदासजी-

जै जै श्री हरिदास रसिक सिरमौर हैं।
अनन्य नृपति रस- सिंधु नाहि सम और हैं ॥
प्रेम मगन रस मत्त विहार स्वरूप हैं।
प्रगटे भूपर आइ रसिकमनि भूप हैं ॥
रसिक जननि मैं भूप स्वामी नित्यविहार प्रकासियो ।
जै जै श्री हरिदास सु प्रेम अभासियो ॥३८॥
काम क्रोध मद लोभ भये सब लीन हैं।
फूले रसिक सरोज सु सागर मीन हैं ॥
श्री आसुधीर-कुल उदै भान आनन्द को।
छायो रसिकन हिय नेह रस-कंद को ॥
छाइ रसिकन हिय मैं रह्यो गुप्त विहार अब जगमगै ।
जै जै श्री हरिदास वांछित सुख फल लगै ॥३९॥

स्वामी श्री भगवतरसिकदेवजू-

सुन्दर रज तिलक भाल बाँकी भृकुटी विसाल रतनारे नैन नेह भरे दरस पाऊँ। बारौं छबि चंदबदन सोभा सुखसिंधु सदन नासाबर कीर कोटि काम को लजाऊँ ॥ अधर अरुन दसन पाँति कुंद कलिका विसाँति कमल कोस आनन दृग मधुप लै बसाऊँ। मधुर बचन मंद हाँस होत चाँदिनी प्रकास जै जै श्री हरिदास रसिक भगवत गुन गाऊँ ॥४०॥

× × ×

कंबु कंठ मंजु दाम गौर अंग छबि सुधाम कुंदन तैं सरस मृदुल मोहन मन भायो। नाल सहित कंज पान देत सदा अभय दान तजि कै अभिमान साह अकबर सिर नायो ॥ चरनकमल कामधेनु सकल कामना सुदेन दरसैं दृग होत चैन आपदा भगायो। करुवा गूदरा पास वृन्दावन करैं बास जै जै श्री हरिदास रसिक भगवत अपनायो ॥४१॥

कुंजविहारी एक आस और सकल तजि दुरास असन वसन तें उदास बाँके व्रतधारी। गान दया गुन निधान रसिक मुकटमनि प्रधान राग भोग

बखत जानि तोषत पिय प्यारो ।। तिमिर हरन को दिनेस ताप हरन को निसेस पाप दहन पावकेस गुरुता मुख चारी । निधिवन आसीन नित्त बर विहार सरस बित्त जय जय श्री हरिदास रसिक भगवत बलिहारी ।।४२।।

पारस सों धन परिहरचो सेवक अकबर शाहि ।
श्री स्वामी हरिदास सम और बताऊँ काहि ।।
और बताऊँ काहि अवधि वैराग्य ज्ञान की ।
भक्ति सुमूरतिवंत प्रेमनिधि दसा ध्यान की ।।
नित्यविहार अधार प्रगट सेवा नहिं आरस ।
भगवत रसिक नरेस मिले गुरु पूरे पारस ।।४३।।

श्री जुगलदास जी

जै जै श्री हरिदास चरन सिर नाऊँ ।
रसिक सिरमौर प्रथम जस गाऊँ ।।
विपिन विहार सार सुख गावहीं ।
श्री कुञ्जविहारी विहारैं लाड लडावहीं ।।
लडावहीं नित लाड सुन्दर प्रेम सम्पति सर्वदा ।
धर्म धीर उदारमनि अति सहित संपति नर्मदा ।।
कुञ्ज केलि विलास रस इह रसिकनि हित दरसाइयो ।
गुन निधान श्री ललित वपु धरि लखि जुगल मन भाइयो ।।४४।।

जै जै श्री हरिदास रसिक दुलराइ हैं ।
अंग संग नित्य विहार जु मन के भाइ हैं ।।
जानि समैं सुख सम्पति गावत रंग भरें ।
सप्त सुरनि रस तान मधुर नव नव करें ।।
नव नव ताननि रसभरी सुनि नित्यकिसोर अति सुख लहैं ।
श्री हरिदासि स्यावासि तुमकों रीझि रीझि अंक भरि कहैं ।।४५।।

श्री विहारीवल्लभ जी

सुजस स्व इच्छा स्वयं सरूप । प्रगटे स्वामी परम अनूप ।।४६।।

श्रीवन निधिवन नित्य रस, प्यारी प्रिया निवास।
सर्वसु निजु ललिता सखी, प्रगटे श्री हरिदास ॥४७॥
स्वामी श्री हरिदास निजु महल विराजत आप।
ईसनि-ईसनि ईस पर शीस विराजत छाप ॥
शीस विराजत छाप साहिबी इनकी देखौ।
निज सकार ते खेल निकसि न्यारौ सब लेखौ ॥
धार सबै मर्याद रहे निज न्यारे नामी।
नित्यविहार अखंड सार सुख सर्बस स्वामी ॥४८॥

श्री सहचरि शरनदेव जू

धर्म धीर ऊद्धरिव सुद्ध सुख जुगल अलंकृत।
ललित लडावत लाड चाड चित चाव सरस वृत ॥
अद्भुत सुरति प्रसंस वंस रसिकनि कौ राख्यौ।
अप्राकृत गुन रम्य अमित उत्तम रस भाख्यौ ॥
बाजत निसान घूमत घनें सरबोपरि वन वास कौ।
बाढ़त प्रभाव जस दशहुँ दिसि जय जय श्री हरिदास कौ ॥४९॥

प्राचीन वाणी से उद्धृत :—

महा मिही रस के फल फलित भये कल्पद्रुम,
ऐसे श्री स्वामी हरिदास जू के पद हैं।
जामें न बकुल बीज लीला ओ महातम के,
वर विहार माधुरी के सारको जो सद हैं ॥
दंपति आसक्तताइ प्रगट करत छिन-छिन प्रति,
नव रस सिंगार आदि कीने सब रद हैं।
पीवे रसिक सोइ जाको न सुहात और,
दंपति वस करिबे को मादिक बेहद हैं ॥५०॥

सहेला के प्रेम को गावत ललना लाल । छिन्-छिन प्रति रति बिस्तरत करत प्रान प्रतिपाल ।।

सहेली

सखी

सहचरी

श्रीनित्यबिहारी

श्रीनित्यविहारिणी

श्री प्रेम सहेली

मूल स्थूल लों द्वै स्कन्ध सम वैस । सेवत सखी सघन सबै जाँन समो जस जैस ।।

43

※ श्रीमत्कुञ्जविहारिणे नमः ※

॥ श्रीहरिदासः शरणं मम ॥

सर्वोपरि नित्यविहारिणी-रस-सागर

श्री केलिमाल जी

★

रसिक-अनन्य-सिरोमनि, अनन्यनृपति, निजप्रेमावतारी श्रीप्रेमसहेली स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज कृपा-उदारता में बिवस सूक्ष्माति-सूक्ष्म, महा-मधुररस कोहू सार, सर्वोपरि नित्य-विहार रस कूँ प्रगट करिबे के ताईं भूमंडल पै अवतरित होइ, सर्वप्रथम आपने कथन कियो—

※ राग विभास ※

ज्यौंही ज्यौंही तुम राखत हौ त्यौंही त्यौंही रहियतु है हो हरि। और तौ अचरचे पाँय धरौं सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि॥ जद्दपि कियौ चाहौं अपनौ मन भायौ सो तो क्यों करि सकौं जो तुम राखौ पकरि। कहें श्रीहरिदास पिंजरा के जनावर लौं तरफराइ रह्यौ उड़िबे कौं कितोक करि॥१॥

आप जीवन को स्वरूप दिखाते भये साक्षात श्रीहरि सों ही कहिबे लगे कि जैसे-जैसे आप हमें राखौ हो, तैसे-तैसे ही हम रहें हैं यद्यपि आपकी इच्छा के प्रतिकूल हम एक पैंड पग धरि नाँइ सकैं हैं, तौहू हम अपने मनभाये संकल्प सतत करते ही रहें हैं। यदि आप हमें पकरि के राखौ तो हम अपनो मन भायौ करि ही कैसे सकैं हैं। याही बात कूँ श्रीहरि के दास हू कहें हैं कि अपनो मनभायो करिबे के ताईं जैसे पींजरा को पंछी उड़िबे कूँ तरफरावै है, तैसे ही यह जीवहू फड़फड़ायो करै है।

जीव जगत में दो प्रकार के हैं। भगवत-सन्मुख एवं बहिर्मुख। बहिर्मुख जीवन के संकल्प-विकल्पात्मक संस्कार बनि जाइ हैं। संस्कार अनुसार कार्य होइबे ते प्रारब्ध बनिजाइ हैं, फिर प्रारब्ध अनुसार सतत सुख-दुख, जन्म-मरन वो भोगतो रहै है।

सुदृढ़ बासना बीज बिसाला। ताते उपजि परयौ जंजाला॥ —श्रीगुरुदेवजू

सन्मुख जीवन के अनुकूल संकल्पन के आप सतत सहयोगी बने रहें हैं। प्रतिकूल संकल्पन ते आप वाकूँ सदाकाल पकरि कें राखैं हैं।

श्रीबिहारीदास कैसे डिगैं, राख्यौ गहि बल बाहु।

× × ×

बहे जात संसार सिंधु में, स्याम सुकर गहि काढ़े।
माया काल बिघन न करि सकै, चितवत ही उत ठाढ़े॥ —श्रीगुरुदेवजू

हौं बूड़न को बहु चहौं, हरि नहिं बूड़न देहिं।
ज्यौं ज्यौं उझकों कूप में, त्यौं त्यौं करि गहि लेहिं॥—श्रीललितमोहनीदेवजू

यद्यपि साधक स्वभाव बस पींजरा के जनावर की नाईं मायिक लालसान में फड़फड़ावैं है, तौहू आप बहिर्मुखता माऊँ नाँइ जावन दें हैं।

अथवा आप रसिक अनन्य उपासकन कों स्वरूप दिखाते भये बोले कि हमारो तन, मन, प्रान, रोम-रोम समस्त रीति भांति सों आपके ऐसे आधीन है कि आपकी इच्छा के बिपरीत पैंडभर हू हम कैसेहू नाँइ चलि सकैं हैं।

तीसरी तुक में "यद्यपि" शब्द प्रयोग करिबे को आपको अभिप्राय ये है कि जब समस्त रीति-भांति सों हम आपके आधीन हैं तथा आपकी प्रसन्नता में ही अपने जन्म कूं सुफल मानैं हैं, तब हमें अपनो मनोरथ कोऊ करनो ही नाँइ चहिये, तौहू आपसों मिलिबे एवं लड़ाइबे के ताईं अनन्त मनोरथ मेरे मनमें उठे बिना नाँइ रहें हैं पींजरा के जनावर की नाईं आपकी इच्छामें परवस होइ सतत हम तरफराते ही रहें हैं।

ये सांचे सर्वोपरि प्रेम की अद्‌भुत बात है कि मिलते-मिलते तो मिलिबो भान नाँइ होइ है, लड़ाते-लड़ाते लड़ाइबो भान नाँइ होइ है, सतत अभाव ही बन्यौ रहै है। याते मन फड़फड़ायो करै है।

मिलत-मिलत मिलिबो चहैं, मिलै मिलन की भूल।—श्रीललितकिशोरीदेवजू

जारौं जीवन प्रेम बिन, जे जीवत निसुगे लोग।
श्रीबिहारीदास पसु ते बुरे, दुखित न भये वियोग॥
बैसत उघसत वहो ढरे. पसु प्रीति पहिचान।
श्रीबिहारीदास जे प्रेम बिनु, ते प्रान अछत जड़ जान॥

× × ×

प्रेम आहि कहै कोऊ यह, सुख-दुख लाभ की हानि।
रसिक में ही हांसी आवे, हौं कहत नहिं कछु बानि॥ —श्रीगुरुदेवजू

काहू को बसु नाँहि तुम्हारी कृपा तैं सब होइ बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे कों भाषियै सु तौ है हारिनि॥
जाहि तुम सौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी प्राननि के आधारनि॥२॥

मानो फिर अपनी प्रान लाड़िली सहेली के मुख सों अपने मिलिबे को उपाइ सुनिबे के अभिप्राय ते श्रीबिहारीजी महाराज ने यह इंगित कियो कि सास्त्रन ने हमारे मिलिबे के ताईं अनेक साधनन कूँ बर्नन कीन्यौ है, जिनके द्वारा भलीभांति हमें जीव प्राप्त करि सकै है; ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि—श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर में महामधुर-सार-रस बिहार के दृढ़ अनन्य आप श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कूँ यावत जीवन ते लैकैं श्रीभगवत-स्वरूपन पर्यन्त काहू के बस प्राप्त करिबो नाँइ है। याते और-और साधन कहिबो तो एकमात्र मिथ्या प्रपंच ही है, क्योंकि आपके निज महल ताऊँ कोऊ साधन पहुँच ही नाँइ सकै हैं। केवल आप श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की कृपा सों ही सब कछु होइ है।

लक्ष्मीपति ब्रजपति को दुर्लभ, इनते कौन बड़ो अधिकारी।

× × ×

साधन श्रम ना कछु कियो, ना कछु करिबे जोग।
कृपा बिहारनिदास की, सहज संयोगी भोग॥
सांचो बिरद बिहारीजू को, सब दिन करत सहाउ।
मैं श्रम क्रम कछु न कीनौं, करुनानिधि तिहारीये कृपा उपाव॥

× × ×

मेरी चतुरई कछु नाहीं। तुम्हरी कृपा बिनु लागै काहीं। —श्रीगुरुदेवजू

बिहार है आगार रस को, रसिक अनुग्रह सों लहै।
नाहिं साधन आन कोऊ, बिना समझे को कहै॥
कहै यह सुख लहै मरमी, धरम धरमी को यहै।
देहिं कृपा करि श्रीरसिक स्वामी, पीतांबर पद में रहै॥—श्रीपीतांबरदेवजू

ये तुक रस के उपासकन कूँ बड़ी गंभीरता ते समझिबे की बात है कि जब आपने इतेक कहि दीन्यौ कि "काहू को बस नांहि तुम्हारी कृपा ते ही सब होइ" फिर श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को नाम निर्देस करिबे की कहा आवश्यकता ही। याते

यह स्पष्ट होइ है कि आपकूँ यह दिखानो हो कि सर्वोपरि नित्यबिहार एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की कृपा ते ही प्राप्त होइ सकै है।

तीसरी तुक में आपने और हू स्पष्ट करि दीन्यौ कि जाको केवल आपसों ही अनन्य हित है, ताही सों ही आप हित करौ हो। जाको हित मायिक जगत सों लैकें समस्त भगवत स्वरूप एवं और-और धर्मन में बँटि रह्यौ है, ताकूँ आप साँचो अपनो जन मानों ही नाँइ हो। याते आपने स्पष्ट कथन कियो कि मेरे प्रानन के आधार एकमात्र श्रीस्यामा-कुंजबिहारीजू ही हैं। यदि कोऊ ये कहै कि आपके प्रानाधार श्रीस्यामा-कुंजबिहारी ही क्यों हैं ? और-और भगवतस्वरून कूँ क्यों नाँइ मान्यौ जाइ सकै है ? ताके विषय में या प्रकार समझनो कि श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर के ही अनन्य प्रेम-बिलासी श्रीस्यामा-कुंजबिहारी ही अति बिशुद्ध पूर्नतम प्रेम के स्वरूप हैं।

पूरन प्रेम प्रकासिनी, श्रीस्यामा अति सुकुमारि।
मोहनजू के नैन चकोर लों, ससि जीवत बदन निहारि॥ —श्रीगुरुदेवजू

याते इन श्रीजुगल के परस्पर प्रेम सों ही दृढ़ अनन्य प्रेम करिबेवारो सर्वोपरि साँचो रसिक अनन्य उपासक मान्यौ जाइ है, कारन बिशुद्ध सांचो प्रेम वाही को कह्यौ जाइ है, जामें काहू प्रकार की स्थूल-झीनो निज स्वार्थ की गंध ही नाँइ होइ, और न कोऊ दूसरो इहलोक-परलोक में अपनो दीखै ही है, जितने श्रीभगवत-स्वरूपन ते प्रेम करिबेवारे भये हैं, तथा हैं, तिन सबन की आस्था अति झीनो स्वार्थपने में है, यदि श्रीभँगवान में भगवानपने के गुन न होते तो बिनके प्रेम की स्थिति ठहरनी कठिन ही, और तो और स्वयं श्रीभगवत-स्वरूपन में हूँ भगवानपने को आवेस होइबे के कारन पूर्नतम बिसुद्ध निकुंज मंदिर के अनन्य प्रेम-बिलासी श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रस कूँ वे प्राप्त नाँइ करि सकै हैं।

याही ते दुर्लभता सबको, लक्ष्मीपति ललचात।
यद्यपि राधा-कृष्ण बसत ब्रज बिन बिहार बिललात॥ —श्रीगुरुदेवजू

पूर्नतम प्रेम को स्वरूप ही ऐसो होइ है कि वाके प्रेमी सतत प्रेम के ही आवेस में निमँग्न रहें हैं। भगवानपने को आवेस वा स्वरूप में होइबो तो बहुत दूर की बात है बिनकूँ भगवानपनों सुनिबो हू नाँइ सुहावै है।

ताहि सुहाइ न ठकुरई, बड़ प्रताप विस्तार।
जाँचत दै दिन जीविका सखि मोहि अहार बिहार॥

अति टोंडिक अति चिकनियां अधिक चतुर इतराइ।
कितहि विभव कित ठकुरई जूठन को ललचाइ॥
जाँचे जूठ न पाइये पग परि हा हा खाइ।
जो ठाकुर कहि बोलिये तो सकुच तनक ह्वै जाइ॥ —श्रीगुरुदेवजू

याते यह निश्चय बात है कि सांचो विशुद्ध प्रेम एकमात्र विशुद्ध प्रेम पै ही रीझै है। प्रेम ही वाको प्रानाधार होइ है, याते आपके प्रानाधार साँचे अति विशुद्ध प्रेम स्वरूप श्रीस्यामा-कुंजबिहारी ही हैं।

प्रेम प्रेम को पाहुनो, प्रेम प्रेम के जाइ। —श्रीगुरुदेवजू

अब प्रश्न यह उठै है कि जगत को जीव, कर्म, धर्म, ग्यान अनेक प्रकार की भक्ति तथा समस्त और-और रसन तें भलीभाँति मन हटाइ कें श्रीवृन्दावन नव-निकुंज बिहार सों ही अनन्य हित कैसे करि सकैगो ? ताके विषय में श्रीगुरुदेवजू ने ही साखीन में स्पष्ट आज्ञा कीनी—जाने पहिले कोऊ गुरु तथा सत्संग करिके परमार्थ को कछु आस्वादन नाँइ करचौ है, वाकूँ रसिक अनन्य गुरु करिबे की लालसा उदय होइ ही कैसे सकै है ?

जो गुरु करि खैये नहीं, तो गुरु करै न कोइ। —श्रीगुरुदेवजू

क्योंकि यह निश्चय बात है कि उपदेस-सत्संग द्वारा समझते-समझते जब कछु रस को ग्यान होइगो, तब ही रसिक-अनन्य-सिरोमनि श्रीस्वामीजू की सांची सरन आइकें रस के ग्यातान कूँ गुरु करैगो।

प्रथम रसिक ह्वै आपुन, तब रस की रसिकन पै सुनि बात।—श्रीगुरुदेवजू

बिनकी कृपा तें सूक्ष्म रस की स्थूल-झीनी समस्त गाँसनि को समझि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू ते अपने प्रानन के हू प्रान ते अधिक स्वाभाविक अनन्य हित करिबे लगैगो।

जब रसिकन पै रस सुनि पायौ। रसै समझि रसिकन पै आयौ।
रस स्वादी रस स्वाद बतायौ। स्वाद पाइ रस गाइ गवायौ।
रसिक अनन्यन के पग परै। तौ टूटो गोड़ बज्र होइ जुरै। —श्रीगुरुदेवजू

कबहूँ-कबहूँ मन इत-उत जात यातेंव कौंन अधिक सुख।
बहुत भांतिन घत आनि राख्यौ नाहिं तौ पावतौ दुख॥

कोटि काम लावन्य बिहारी ताकें मुहाँचुहीं सब सुख लियें रहत रुख।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कौ दिन देखत रहौं बिचित्र मुख ॥३॥

निज आश्रित साधकन पै दया-करुना में बिबस आप बोले–हे भाई ! कबहुँ-कबहुँ तुम्हारो मन मायिक तथा और-और परमार्थन के सुखन माँऊ चल्यौ जाइ है, तुम्हें यह बिचारनो चहिये कि सर्वोपरि नित्य बिहार सुख सों वह कौन अधिक सुख है ? वाही बात कूँ समझाइबे के ताईं आप बोले कि हमने अपने चित्त कूँ अनेक प्रकार की प्रलोभन रूपी घात दै-दै कें याही महामधुर रस में डुबोइ के राख्यौ, अन्यथा बहुत दुख पावतो। अब हम सदाकाल एक रस नित्य दोऊन को अद्भुत अनूप रूप, महामधुर-मुसिक्यान, हास-परिहास, चोज-चाव, नृत्य-गान आदि कोटिकाम लावन्य महामाधुरी ते भरे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अति विचित्र श्रीमुखचन्द्रन की परस्पर मुँहाचुहीं के सर्वोपरि सुख कूँ निहारैं हैं तथा ऐसी स्थिति में बिनके स्वांसनि के स्वांसनि कोहू मर्म समझि रुख लिये सदाकाल लाड़-लड़ावैं हैं।

सुनि मन आपनो परसंग।
एक मन एकै मनोहर एक लगौना रंग॥ –श्रीगुरुदेवजू

हरि भजि हरि भजि छाडि न मान नर-तन कौं।
मत बंछै मत बंछै रे तिलु-तिलु धन कौं॥
अनमाँग्यौ आगैं आवैगौ ज्यौं पलु लागत पलु कौं।
कहें श्रीहरिदास मीचु ज्यौं आवै त्यौं धन ह्वै है आपुन कौं॥४॥

अपने आश्रित जनन ते आज्ञा करते भये आपने कह्यौ कि तुम श्रीहरि को ही निरंतर भजन कियो करौ। हरि के भजन कूँ प्रानन ते प्यारो अलौकिक निज धन अपने मनमें समझि के राखो। क्योंकि या भजन के प्रताप ते ही साक्षात श्रीहरि कूँ प्राप्त करि सकोगे और ये भजन एकमात्र मानव देह सों ही बनि सकै है।

श्रीबिहारीदास दुर्लभ लह्यौ, तन पुरवै सब काम।
ना तर जे हैरायगो भजि ले स्यामा-स्याम॥ –श्रीगुरुदेवजू

याते छिन कालहू भजनकूँ मति छाँड़ो। या भजनमें सर्वोपरि बाधक धन लालसा ही है। या बात कूँ श्रीहरि के दास जोर देते भये कहें हैं कि भजन करिबेवारेन के ताईं धन मौत के बराबर बाधक होय है, ताकूँ संग्रह करिबे की लालसा तिलमात्र हू अपने मनमें नाँइ राखनी चहिये। देह निर्बाह के ताईं जो भी कछु आवश्यक है, वो

बिना ही चेष्टा किये, सहज सुभाव ही अनायास ऐसे प्राप्त है जायगो, जैसे अपने नेत्रन की पलक बिना ही चेष्टा सहज सुभाव लगती रहें हैं।

अनमांग्यौ आगे आवत अनभांवतो गरे परै।

× × ×

भक्त न सोहत माँगत भीख।
आपुन लजत लजावत हरि गुरु जिनकी भुलई सीख॥
जितनीये आउ अहार तितनोइ सब दिन समौ दुभीख।
इन बचननि परतीत करत रहि इत-उत चितवत खीख॥
अष्ट-सिद्धि नव-निद्धि मुक्ति पद दे बौरावत दीख।
श्रीबिहारीदास अनन्य न टरि हैं तजि वृन्दावन बीख॥
अपने हरि भजि प्रान पियारे।
ममता काल व्याल भूल्यौ तू बड़ौ निलज मतवारे॥
अपने जाये जारे जींवत जिन जायो ते जारे।
डार चढ़्यो पेड़े काटत तू क्यों जी है दई मारे॥
मोह करत जे दोह करत हैं ते सत्रु मित्र बिचारे।
तिनको संग करि-करि न तज्यौ तैं जन्म अनेक बिगारे॥
जम को श्रम जागत नहिं सोवत राखत नर्क उघारे।
श्रीबिहारीदास ह्वै सक्यौ न सठ हम कहि-कहि हित हठि हारे॥

× × ×

मन मेरे तू जिन भुलवै ताहि।
पायो रतन अमोलक भागनि गये पूंछि है काहि॥
मन क्रम बचननि राखि हिरदै धरि कृपननि ज्यों जड़ताहि।
छिन-छिन गनत बिचारत आरत आलस जिन लपटाहि॥
अपने संत सजातिन सों मिलि कहि सुनि आनंद बढ़ाहि।
यहै सुहृद ह्वै सुनि सिख मेरी विमुखन संग जिन जाहि॥
निर्भै भये गयौ भै सबको अब जिन जिय अकुलाहि।
श्रीबिहारीदास प्रभु सब सुखसागर लैहैं स्याम निबाहि॥

× × ×

देस द्रव्य थल काल जल कछु न उपेक्षा जाहि।
रोग भोग सुचि असुचि में पावन प्रभु भजि ताहि॥ -श्रीगुरुदेवजू

दीन दुखी बपुरा भ्रम भूखे ते देहि कहाँ मन मांगि लजैये ॥
एक गुदरी सेरक अन्न या देह को बांध दियो सु जहाँ तहाँ हैये ।
सुकदेव रमापति को सुख दुर्लभ सुल्लभ पाइ सु क्यों न लड़ैये ॥
श्री सरसहिं देत अभै दिन दान दिये श्रीबिहारिनिजू के अघैये ॥

× × ×

अबकी बनी है बात औसर समझि घात तऊ न खिसात बार सौक समझायो है ॥
आज काल जैहै मरि काल व्यालहू ते डरि भौंडे भजन करि कैसो संग पायो है ।
चित-बित इत देहु सुखहि समझि लेहु सरस गुरुन ग्रन्थ पंथ यों बतायो है ॥
चरन सरन भय हरन करन सुख तरन संसार कौं तू मानस बनायो है ॥
—श्रीसरसदेवजू

तन दीनो हरि मिलन को ताको वृथा न खोइ ।
ब्रह्मादिक वांछित रहैं सो सुर्लभ भयो तोहि ॥

× × ×

सकल झूठ प्रपंच तजि हरि भजि लाहो लेहि ।
ऐसो समौ न बहुरि है पाई दुर्लभ देह ॥—श्रीललितकिशोरीदेवजू
सौ पापनि कौ मूल है, एकहि पैसा रोक ।
हरिजन बांधै गांठ सो, तो छुटै हरि सों थोक ॥—श्रीललितमोहनीदेवजू
पैसा पापी साधु को परसि लगावै पाप ।
बिमुख करे गुरु इष्ट ते उपजावै संताप ॥
उपजावै संताप ग्यान बैराग्य बिगारै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह मत्सर सिंगारै ॥
सब द्रोहिन में सिरै भक्त द्रोही नहिं ऐसा ।
'भगवत रसिक' अनन्य भूलि जिन परसो पैसा ॥—श्रीभगवतरसिकदेवजू

ए हरि मो सौ न बिगारन कौ तो सौ न सँवारन कौं मोहि तोहि परी होड ।
कौंन धों जीतै कौंन धों हारै पर बदी न छोड ॥
तुम्हारी माया बाजी बिचित्र पसारी मोहे सुर मुनि काके भूले कोड ।
कहैं श्रीहरिदास हम जीते हारे तुम, तऊ न तोड ॥५

जीवन की चर्म सीमा की अति बहिर्मुखता और श्रीहरि की अति अद्भुत दयालुता कूँ दिखाते भये साक्षात् श्रीहरि सों ही आप कहिबे लगे कि हमारो स्वभाव

सहज ही आपसों ऐसो अति विचित्र विमुख है रह्यौ है कि आपके सुधारिबे पै हू हम उल्टे विपरीत कार्यन कूँ ऐसे करें है, जैसे अखाड़े में मल्ल होड़ बदिकें लरें हैं। आपहू हमें या प्रकार सों सुधारिबे में लगि रहे हो, जैसे कोऊ होड़ बदिकें सुधारै, अब मेरी आपसों प्रार्थना है कि जो आपने होड़ बदि लीनी है, वाकूँ न छोड़िकें निभाते ही रहियों। तापर मानो श्रीबिहारीजी महाराज ने इंगित कियो–"तुम बिगारिबे की होड़ काहे कूँ बदो हो ?" तब आपने स्पष्ट कह्यौ कि तुम्हारी माया ने ऐसी महाबिचित्र बाजी जगत में पसार राखी है, जामें महामुनि, देवगन हूँ भूलि रहे हैं। हम जीव तो या माया की गोद में ही बैठे हैं, हमारी तो बात ही कहा है ? याही ते आपके दासहू कहि रहे हैं कि या बाजी में जीवन की ही जीत है रही है, कारन प्रभु के इतेक सुधारिबे पै हू जीव बिगारिबे में ही लगे भये हैं। जीवन की अति अगाध दुख में प्रवृत्ति देखि आप श्रीहरि सों फिर बोले—"कहें श्रीहरिदास जीते हम, हारे तुम तऊ न तोड़"।

अद्भुत नटनागर जग बाँध्यौ जंजारा।
× × ×
बाजी हरि साजी बहु रूप रच्यौ संसारा॥ —श्रीगुरुदेवजू

बंदे अखतियार भला। चित न डुलाउ आव समाधि भीतर न होहु अगला॥ न फिरि दर-दर [1]पै दर-दर न होहु अँधला। कहैं श्रीहरिदास करता किया सो हुवा सुमेरु अचल चला॥६॥

निज अनन्य जनन पै दया-ममता तथा अद्भुत उदारता में बिबस होइ आप स्पष्ट बोले कि–हे भाई ! अब तुम्हें सुन्दर तेहू अति सुन्दर मोंकौ मिल गयौ है, तुम अपने चित्त कूँ इत-उत माऊँ कहूँ न डुलाइ कें एकमात्र सर्वोपरि समाधी रस में ही निमग्न है जावो। अपनी चलहु गैल पहिचानी। —श्रीगुरुदेवजू

अर्थात् अपनो प्रानधन सर्वोपरि नवनिकुंज मंदिर श्रीवृन्दावन प्रथमसमागम, एकान्त रस बिलास को नित्य-बिहार समाधि रस ऐसो है, जामें यावत कर्म-धर्मन ते लेकें गैरसाल रस पर्यन्त, काहू की समाई नेकहू नाँइ है सकै है।

श्रीहरि के दास या बात कूँ कहै हैं, कि तुम उत्तम कुल की पतिब्रतावत अपने इष्ट को ही समस्त रीति-भाँति सों पूरो बल-भरोसो राखो। बिनकी इच्छा सों अचल सुमेरु हू चलाइमान है जाइ है। याते इहलोक तथा परलोक में औंधरेन की

मू० १ पिदर। नाँई काहू के दर-दर पै आशा लगाय के मत डोलो।

एकै मन एकै परमेश्वर एकै ताकि रहे दिन मान।
तो पै काज सरै काहे न श्रीबिहारनिदास यों बरनि बखान ॥ –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

लगी समाधि बिहार की छुटै नहिं दिन रैन।
गौर स्याम बिहरैं सदा श्रीहरिदासी ऐंन ॥–श्रीललितकिशोरीदेवजू

हित तौ कीजै कमल नैंन सों जा हित के आगें और हित लागे सब फीकौ।
कै हित कीजै साध संगति सौं ज्यौं कलमष जाइ सब जीकौ ॥
हरि कौ हित ऐसो जैसो रंग मजीठ संसार हित रंग कसूँभ दिन दुती कौ।
कहें श्रीहरिदास हित कीजै श्रीबिहारीजू सों ओर निबाहू जानि जीकौ ॥७

सर्व सारातिसार जगत में एकमात्र हित ही है, यातें आप बोले कि–हे भाई! हित-प्रेम तो तुम अति बिसुद्धतम प्रेम-रस के अनुराग सों रंजित कमलनैंनवारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सों ही करो। क्योंकि वेहू हित-करिबेवारेन ते छिन-छिन नयो-नयो अगाध हित करें हैं। और-और यावत हित, बिनके हित के आगें सब फीके परि जाँइ हैं। मायिक जगत को हित तो पहिले-पहल कछु दिन रंगीलो सो दीखै है, किन्तु ज्यों-ज्यों बाधा आवै, त्यौं-त्यौं कुसुम के रंग की नाईं फीको ही परतो जाइ है। श्रीहरि के हित में ज्यों-ज्यों बाधा आवें हैं, त्यौं-त्यौं मजीठ के रंग सदृस और हू उज्ज्वल होतो जाइ है। इतेक हू नाँइ श्रीहरि के दास कहें हैं कि हित श्रीबिहारीजी महाराज सों करौ, जोकि मायिक लोक ते लैकें श्रीनिकुंज मंदिर ताऊँ ऐसे जी-जान ते निभावें हैं कि हित में बिबस होइ सदाकाल अपने प्रेमी के रुख अनुसार ही चलै हैं। अब प्रश्न यह उठै है कि अनादिकाल सों मायिक बासनान ते पिसो भयो यह जीव श्रीबिहारीजी महाराज सों हित करि ही कैसे सकै है? ताको लक्ष्य करि आप बोले कि–श्रीबिहारीजी महाराज सों हित करिबेवारे संतन को जहाँ सत्संग होतो होइ वा सत्संग ते दृढ़ हित करो, जासों तुम्हारे हृदय के यावत कलमष क्रम-क्रमसों सर्वथा मिटिकें श्रीबिहारीजी महाराज सों हित उदय है जायगो।

कहियत पैयत स्याम सुजान।
मन क्रम बचन किये कहत तू करि सत्संग गुरु आन॥
सुलभ संग समाज समझि सुनि श्रीभागवत पुरान।
तू नर वे नागर सुखसागर श्रीहरिदासनि मन मान॥

बांदर, रीछ, गीध, गज, गनिका इते साखि सुनि कान।
श्रीबिहारीदास संदेह न राखौ श्रीमुख बचन प्रमान॥

× × ×

मैं संग पायो ओर निबाहू।
रसिक अनन्यनि सों मन मान्यौ अब न बूझि हौं काहू॥
छाड़े क्रूर कृपन करमठ सठ जिनके मन न उमाहू।
मारग बिबिध बहत बहकावत उपजावत दुख दाहू॥
श्रीवृन्दावन धन धर्म राधिका लीनै गहि बल बाहू।
श्रीबिहारीदास कौ सुलभ भयौ सुख दुर्लभ अगम अगाहू॥ —श्रीगुरुदेवजू

तिनुका ज्यौं बयारि के बस। ज्यों चाहे त्यों उडाय लै डारै अपने रस॥ ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस। कहै श्रीहरिदास बिचार देखौ बिना बिहारी नाँहि जस॥८॥

जैसे तिनका सम्यक प्रकार पवन के ही बस होइ है, पवन जित माऊँ चाहै, तिनका कूँ उतमाऊँ ही उड़ाइ लै जाइ है, ऐसे ही ब्रह्मलोक, शिवलोक ते लैकें, ऊपर नीचे के समस्त लोक एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज की इच्छा के ही आधीन हैं। याते श्रीहरि के दास कहें हैं कि हे भाई! तुम अपने मनमें भली-भाँति विचारि कैं देखि लेउ, श्रीबिहारीजी महाराज की अनन्य सरनागति के बिना सम्यक प्रकार सर्वोपरि नित्य जस काहू को हो ही नाँइ सकै है? क्योंकि श्रीबिहारीजी महाराज एकमात्र बिसुद्धतम नित्य सर्वोपरि प्रेम के ही स्वरूप हैं। प्रेम को यह सहज सुभाव होइ है कि अपने प्रेमी कूँ आँखिन को गहनों बनाइ के ही सतत राखै है।

बाँके बिरद बुलावत साँचे।
सर्वस रीझि देत रसिकन कौं गुन गावें अरु नाचे॥
आपुन हूँ मिलि हँसत हँसावत सुख पावत रुचि राचे।
श्रीबिहारीदास प्रेम की परिपाटी कबहुँ उमचि न माचे॥

× × ×

ऐसो हो सब ही को साँई।
आदि मध्य अवसान एकरस संतत सुखद गुसाई॥
नये नेह नित राखत ज्यौं दूलह दुलहिन दुलराई।
गुप्त मते की बात मनोहर कहत रहत सुखदाई॥

साहिबन के साहिब भजि सबनि को सिरताज।
श्रीबिहारीदास भये धन्य-धन्य अनन्य भजन विराज॥

× × ×

साँचो विरद बिहारीजू को अपनो विरद न हीनो।
श्रीबिहारीदास प्रभु जान न दीनों यद्यपि हुतो कमीनो॥ —श्रीगुरुदेवजू

संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीव बहु बंदसि।
मन बयारि प्रेरे स्नेह फंद फंदसि॥
लोभ पिंजर लोभी मरजिया पदारथ चारि खंद खंदसि।
कहें श्रीहरिदास तेई जीव पार भए जे गहि रहे चरन आनंद नंदसि॥९॥

फिर आपने कह्यौ कि या संसार सागर के जल-थल में मनुष्य, पसु, पक्षी, अनंत प्रकार की बनावट के जीव हैं और प्रायः मनरूपी पवन की प्रेरना सों परस्पर मोह के फंदा में ऐसे फँसि रहे हैं, जोकि परमार्थ के माऊँ लगिवे की लालसा हू बिनें नाँइ होइ है, काहू के कछु-कछु लालसा होय हू है, तौहू मायिक अभिनिवेस होइबे ते सर्वथा मन हटाइ कें लगिबो कठिन परि रह्यौ है, क्योंकि निजसुखरूपी लोभ के पींजरा में पंछीन की नाँई फँसि रहें हैं। श्रीभगवान ने हू धर्म-अर्थ-काम-मोक्षस्वरूप चारों पदार्थन के अनंत प्रकार सों टुकड़े करि-करिकें बिनकें आगे डारि दीने हैं। याते श्रीहरि के दास स्पष्ट या बात कूँ कहें हैं कि वे ही जीव या माया-सागर ते पार जाइ सकेंगे जिनने आनंद-सागर लाल कूँ हू अति सरस-रसीले आनंद देवेवारे जावक सों रंजित श्रीस्वामिनीजू के श्रीचरनकमलन कूँ भलीभाँति गहि राख्यौ है।

यों भजि कुंजबिहारी राव, श्रीबिहारिन रानी पर धरि सतभाव।
मानुष तन धरि धन्य कहाव, रसिक अनन्य भये गुनगाव॥ —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

लड़ैती तेरे चरन महा सुखदाई।
इनहिं निरखि लाल भये प्रीतम करत केलि मन भाई॥
कबहुँक सपरस करि आनंद में राखत कंठ लगाई।
तेई चरन हमारे मस्तक अब डर करत बलाई॥ —श्रीललितकिशोरीदेवजू

जावक जुत जुग चरन ललीके।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मोहन मानस कंज कली के॥

मंजुल मृदुल मनोहर सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंज गली के ।
सुरतरु कामधेनु चिन्तामनि भगवतरसिक अनन्य अली के ॥—श्रीभगवतरसिकदेवजू

हरि के नाम कों आलस कत करत है रे काल फिरत सर साँधें । बेर कुबेर कछू नहिं जानत चढ्यौ फिरत है काँधें ॥ हीरा बहुत जवाहर संचे कहा भयो हस्ती दर बाँधें । कहें श्रीहरिदास महल में बनिता बनि ठाढ़ी भई एकौ न चलत जब आवत अंत को आँधें ॥१०॥

समस्त दयालुन के सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज जीवनकूँ अति आवश्यक कर्तव्य बताते भये बोले कि—हरि के नाम लेंबे के लिये तुम आलस काहे कूँ करि रहे हो । तुम्हें भलीभाँति यह सोचनो चहिये कि काल समय-असमय को कछु बिचार नाँइ करि, अपने धनुष पै बान साँधे, तुम्हारे कंधा पै ही बैठ्यौ है, जाके आगे न तो तिहारे बिसाल धन की और न महल में रूप जौवनभरी बनिता आदि काहू की, नाँइ चलैगी । याते नाम सहस महाविचित्र धन कूँ कबहुँ मत भूलो । आपके कथन सों यह स्पष्ट होइ है कि हरि को नाम लेते रहोगे तो, कालहू तुम्हारो कछू बिगार नाँइ करि सकैगो, और साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज कूँहू सहज प्राप्त करि लेवोगे।

मैं पायो हरि धन नाम मेरे कहा चहिये ।
और श्रीवृन्दावन धाम मेरे कहा चहिये ॥
बिनु विवेक भ्रम भूलि स्याम तजि कत वृथा दुख सहिये ।
सेवँत सदा बढ़ै न घटै व्यापै आपु अगनि न दहिये ॥
तसकर त्रासन बास बसै चहिये न कछु गहिये ।
निर्भै प्रगट पुकारत मुनिगन इहि अवलंब निबहिये ॥
नित संपति दंपति दुलरावत सुजस बखानत रहिये ।
वेद पुरान प्रमान नाम गुन उपमा अमित कहा कहिये ॥
श्रीबिहारीदास विस्वास भगति ही श्रीगुरु प्रताप सुख लहिये ॥

× × ×

जे कोऊ गुरु गोविन्द नाम गुन गावत गुनत बिचारि-बिचारि ।
सेवत सहज सदा वृन्दाबन मन क्रम बचन चरन चितधारि ॥

× × ×

नाम निरादर मत करौ आदर दिन दुलराइ ।
श्रीबिहारीदास ममता बिना नामै बेचै खाइ ॥

श्रीबिहारनदास को यहै बिसन राधा नाम हृदय धरि बसि रहैं वृन्दावन ।

× × ×

हरि पथ चलहि न समझि सबेरों ।
व्यालसिकाल अलूकलागि है आलस होत अबेरो ॥

× × ×

और कछु जो ना बने एक नाम निज टेक ।
श्रीबिहारी-बिहारनिदास रटि साधन सधें अनेक ॥ —श्रीगुरुदेवजू

देखौ इन लोगनि की लावनि ।
बूझत नांहि हरि-चरन-कमल कों मिथ्या जनम गँवावनि ॥
जब जमदूत आइ घेरत हैं तब करत आप मन भावनि ।
कहें श्रीहरिदास तबहि चिरजीवौ जब कुंजविहारी चितावनि ॥११॥

आपने जगत के जीवन माऊँ देखि कें बड़ो पश्चाताप करते भये कह्यौ कि लोगन की आसक्ति माऊँ देखौ कि इनके अनंत जन्म संसार में अगाध दुख भोगतें-ते है गये, तौहू सहज दयालु-कृपालु अद्भुत प्रभावसाली श्रीहरि के चरन-कमलन बेचारिबो, लगिबो तो दूर रह्यौ, बिनकूं बूझें तक हूँ नांइ हैं। देवतान कूं हूँ अति म ऐसो उत्तम ते हू उत्तम मानव जनम कूं मिथ्या ही गँवाइ रहे हैं, इन लोगन कूं क हू ग्यान एवं बिचार नांइ होइ है कि जा समय जमदूत आइकें घेर लेवेंगे, वा य बिनके मनमें जो आवेगी सोई करेंगे। याही ते श्रीहरि के दास पुकारि-पुकारि कहें हैं कि हे भाई ! तुम तबहीं चिरजीवोगे जब श्रीकुंजबिहारी तुम्हारे चित में भाँति आइ जायेंगे।

स्याम के सरन जे सुख न सिराने।
तिनको सुख सुपनें न लिख्यौ जे फिरत बिबिध बौराने ॥
करि अहंकार बँधत छूटत सठ अपने ही अज्ञाने।
बाँधि रहे अविवेक बड़ाई टेरे सुने न काने ॥
सींचत अरंड आम की आसा फूले फरे न पिछाने।
दरसत परसत खात न जानत आँखि अछत अँधराने ॥
बहुरचौ उद्यम करत निलज ह्वै इन्द्र भये न अघाने।
ताहू भये अनभये निरधन निघट गये न छिमाने ॥

जरत रहत गीली लकरी लौं तन मन मलिन धुंधाने।
ते जानो आतमहत पसु संसार सोक में साने॥
थोरी आउ मनोरथ लांबे बिना बाहु बल ताने।
श्रीबिहारीदास बिनु भये बौरिया बूड़े सबै सयाने॥

× × ×

जम को श्रम जागत नहिं सोवत राखत नर्क उघारे।
श्रीबिहारीदास ह्वै सच्यो न सठ हम कहि-कहि हित हठि हारे॥–श्रीगुरुदेवजू

मन लगाय प्रीति कीजै कर-करवा सों ब्रज बीथिनि दीजै सोंहनी।
वृन्दावन सों बन उपबन सों गुंज-माल हाथ पोंहनी॥
गो गो-सुतन सों मृगी मृग-सुतन सों और तन नेकु न जोंहनी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों चित्त ज्यों सिर पर दोंहनी॥१२

नित्य-विहार के लालायित उपासकन कूँ सर्वोपरि रहनी की आप आज्ञा करते भये बोले कि–तुमने अति निश्किचन, निरभिमान एवं दीनताभरी करुवा-गूदरी की रहनी सों मन लगाइ कें प्रीति करनी चहिये। कारन करुवा-गूदरी की रहनी सों जागतिक एवं और-और परमार्थिन ते, तथा जाति-पांति के यावत संबंध सम्यक प्रकार तुम्हारे टूट जाँवेंगे। श्रीब्रज की बीथिन में नित्य सोंहनी सेवा करनी चहिये, क्योंकि श्रीब्रज में महतपुरुष विहारिदास निरंतर बिचरैं हैं, या भाव सों सर्वोपरि सेवा तुम्हारी सहज में बनि जावेगी। साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज के ताईं श्रीवृन्दावन एवं आसपास के बन, उपबनन ते गुंजा ल्याइ कें माला गूँथि, आपकूँ धारन करावो। जैसे गइयान कें बच्चा अपनी माँ को ही दूध पीवें हैं, तैसेंही अपने नित्य-विहार रस के उपासकन ते ही तो रस को पान करो और जैसें मृग के बच्चा मृगीन के टोल के ही संग रहें हैं, तैसेंही अपने सजातीय नित्य-विहार उपासक संतन के संग रहौ, और हमारे श्रीनित्य-विहार के ही अनन्य श्रीस्यामा-कुँजबिहारी के श्रीचरन-कमलन में ऐसे सतत मन लगाइ कें राखौ, जैसे काहू के मस्तक पै दूध की दोहनी रक्खी होइ है, वाको मन वा दोहिनी में हीं ऐसो लग्यो रहै है, जोकि अपने संगवारेन ते अनेक बातहू करै है तोहू वाको मन दोहनी ते नाँइ हटै है।

चुनैं चितारे फिर चुनैं चुनि-चुनि चितारेह।
कुंजा लाल बसाइयाँ छिन न बिसारै नेह॥

संग्रह करियो गूदरी खइयो माँगि मधूकरी।
सेइयो नित्यप्रति सुन्दरी रहियो पूता दूरादूरी॥

× × ×

अखिल अमृत ते अधिक स्वाद रस मीठौ मैं दीठौ गुन गरुवा।
अंचवत गहत बहत पावन पथ तृन हू ते लागत जग हरुवा॥
श्रीबिहारीदास बिनु भये बिगुचत नहिं रुचत मूचत भ्रम भरुवा।
सूरन के सिंगार सुख राजत भाजत कूर कृपन सुनि करुवा॥

× × ×

भै भ्रम भूख भजावन गूदर।

× × ×

काँध कमरिया फाटरी हाथ करवरा फूट।
श्रीबिहारीदास निर्भय भये सुख ज्यौं भावै त्यौं लूट॥ –श्रीगुरुदेवजू

लै करुवो कोपीन कामरी कुंजनि-कुंजनि कूल बिलास।
तब मिलिहैं मीत मन मुदित श्रीबिहारी-बिहारिनदास खवास॥–श्रीनागरीदेवजू

परम पावन करुवा को पानी।
जाके पियत हृदय में आवत मोहन राधारानी॥
अनुभव प्रगट होत क्रीड़ा को मोद विनोद कहानी।
भगवत रसिक निकुंजमहल की टहल मिलै मनमानी॥–श्रीभगवतरसिकदेवजू

हरि कौ ऐसोई सँब खेल।
मृग-तृस्ना जग व्यापि रह्यौ है कहूँ बिजौरो न बेल॥
धन-मद जोबन-मद राज-मद ज्यों पंछिन में डेल।
कहें श्रीहरिदास यहै जिय जानौं तीरथ कैसौ मेल॥१३॥

आप बोले कि–मायिक जगत में श्रीहरि को ऐसो ही सब बिचित्र खेल है, ...में कहूँ सुख को न तो बीज ही है, न बेल ही है। अर्थात् जगत में कछुक पौदे बीज ...दा होइ हैं, कछुन की बेल लगि जाइ हैं। जब दोनों ही नाँइ हैं, तब सुखरूपी ... प्राप्त होइबे की बात ही कौन कहि सकै है। ताहू पै प्रायः सब जीव सुखी होइबे ...ताईं मायिक पदार्थन के लिये ऐसे लालायित है रहे हैं, जैसे सूर्य की चमकसों ...ुका में ही पानी समझि, प्यासो मृग भाग्यौ जाइ है, किन्तु तहाँ पानी की बूंद हू ... होइ है। तैसेही भगवत-माया की बैचित्री सों दुखदाई धन, धाम, स्त्री, पुत्रादिक

एवं राज्य कूँ पाइ, अभिमान में भरि, अति सुख मानें हैं, किन्तु ये सब मद नेक धक्का पै ही ऐसे उड़ि जाँइ हैं, जैसे अनेक पंछी एक डेली के फेंकिबे ते ही फुर्र उड़ि जाइ हैं। याते श्रीहरि के दास करुना में बिवस होइ, जीवन ते कहैं हैं कि हे भाई ! तुम अपने जिय में मायिक-सुख-संबंध कूँ ऐसे जानो जैसे तीरथ पै अनेक ठौरन ते यात्री आइकें एकत्रित होइ, परस्पर प्रेमभाव बनाइ लेवैं हैं, किन्तु दो-चार दिन में ही सब अपने-अपने घर चले जाँइ हैं।

माया महामद मोह विषय लिये लोभ की लाठ फिरै अररानी।
कहुँ धीरज धर्म बिवेक रह्यौ नहीं मार किये सब कीच की घानी ॥
जीव सु रंक कहा बपुरा सुक सनकादिक नारद हू भय मानी।
'सरस' सु दास गरीब भले लिये राखि कृपा करि कुंज की रानी ॥ –श्रीसरसदेवजू

आये संग नहिं संग गये मग में भयो मिलाप।
मोह फाँस जग बँधि रह्यौ बिछुरे करत बिलाप ॥
बिछुरे करत बिलाप मानि सुत पितु पति माता।
स्वसुर जमाई जुवति सुहृद गुरु सिष्य धन भ्राता ॥
निज अनुभव की भूल बिभव भगवत बिरमाये।
को हम कहँ को जात कहाँ ते किहि लगि आये ॥–श्रीभगवतरसिकदेवजू

झूठी बात साँची करि दिखावत हो हरि नागर।
निसि-दिन बुनत उधेरत जात प्रपंच कौ सागर ॥
ठाट बनाय धरयौ मिहरी कौ है पुरुष तें आगर।
सुनि श्रीहरिदास यहै जिय जानों सपने को सो जागर ॥१४॥

या मायिक जगत में ही जीवन की अगाध आसक्ति कूँ देखि, श्रीस्वामीजी महाराज साक्षात श्रीहरि सों ही कहिबे लगे कि आप ऐसे अद्भुत नट-नागर-सिरोमनि हो, जोकि एकमात्र अति झूठे मायिक जगत कूँ ही साँचो सदृस दिखाइ रहे हो, और रात-दिन या प्रपंच सागर कूँ बुन उधेर हू रहे हो, तौहू आपकी माया इतेक जबरदस्त बलवान है, कि आपते हू अधिक प्रभावसाली, या मायिक जगत कूँ ही जीव मान रहें हैं। याही ते माया में ऐसे लिप्त है रहै हैं, जो आपकूँ हू नाँइ चाहें हैं। फिर आप आश्रित-जनन ते कहिबे लगे कि–हे भाई जैसे सपने में जीव जाग्रित सदृस देखतो भयौ वाको साँचो मानै है, आँख खुलिबे पै फिर कहूँ कछू नाँइ दीखै है, तैसे ही लोग सुपनवत या जगत कूँ साँचो मानि रहें हैं।

धन धूवां कौ धौरहर, सुपने पायौ राज।
श्रीबिहारीदास ममता तजो, भुस कूटत बिन नाज ॥

× × ×

भजसि रे मन मनहि बिचारै। भुलवत कत प्रभु के उपकारै।
काम क्रोध मद मोह मुदित मन, धन दारा संग्रहत बिकारै ॥
कीनो श्रम सब दिन बिवेक बिनु, सुख सपने न लिख्यौ संसारै ॥
ब्रह्मा इन्द्र कीट पसु पंछी, को गनि सकै भयौ कै बारै।
श्रीबिहारीदास बड़ औसर मौसर, पाय सुलभ तन जनम न हारै ॥ –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

लैना एक न दैना दोइ। झूठी धामस धूमस होइ ॥

× × ×

झूठो हैं संसार यह झूठी है यह देह।
श्रीबिहारीदास को सुख चहौ, तौ यासों तजो सनेह ॥

× × ×

ऊपर तो फूलें फिरैं, भीतर नाचैं भूत।
बाजीगर को पेखनों, मिहरी नाती पूत ॥ –श्रीगुरुदेवजू

सबही सुपनो जानि श्रीस्वामी हरिदास बिनु।
हरष सोक नहिं मानि रूठे तूठे जगत के ॥

× × ×

सुपने लागी हाट, ताही में हरि पाइये।
संतन पकरी बाट, चरन कमल सेवैं सदा ॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

साँचे श्रीराधारमण झूंठो सब संसार।
बाजीगर को पेखनो मिटत न लागै बार ॥
मिटत न लागै बार भूत की संपति जैसे।
मिहरी नाती पूत धुवां कौ धौरहर तैसे ॥
भगवत ते नर अधम लोभबस घर-घर नांचे।
झूठे गढ़ै सुनार मैन के बोलै साँचे ॥–श्रीभगवतरसिकदेवजू

जगत प्रीति करि देखी नाहिनें गटी कौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौं देखे प्रकृति बिरोध बन्यों नहिं कोऊ ॥

दिन जो गये बहुत जनमनि के ऐसें जाउ जिनि कोऊ ।
कहें श्रीहरिदास मीत भले पाये बिहारी ऐसौ पावौ सब कोऊ ॥१५॥

मायिक जगत की प्रीति को स्वरूप बताते भये आप बोले कि–हे भाई ! जगंत में बिसुद्ध साँचो प्रीति की गटीवारो कोऊ नाँइ मिलै है। यदि कोऊ ये बात कहै कि बड़े आदमी काहू सों प्रीति करिबो नाँइ जानै हैं, गरीब आदमी अवश्य प्रीति करिबेवारे मिलि जायँगे, ऐसे ही कोऊ ये कहै कि गरीबन के प्रान तो बहुत छोटे होइ हैं, राजा-महाराजा अवश्य प्रीति करि सकेंगे, ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि–हमने छत्रपति सों लैकें रंक-पर्यन्त सबन सों प्रीति करिकें देखि लीनी, किन्तु साँची प्रीति सों मन मिलाइबेवारो कोऊ नाँइ मिल्यौ। समस्त जीव साक्षात श्रीभगवान के अंस होते भये हू माया को अरस-परस होइबे ते, इनकी प्रकृति में स्वसुखता की अति झीनी बासना सनि रही है, और प्रेम-प्रीति को स्वरूप अति बिसुद्ध तत्सुखमयी होइ है, याते यह जीव अपनी प्रकृति सों भलीभाँति विरोध करि ही नाँइ सकै है, और स्वसुखता के स्वभाव में प्रेम को प्रवेस ही नाँइ होइ है। यदि कोऊ ये कहै कि मायिक यावत ब्रह्मांडन में कहा काहू ने आज ताऊँ परस्पर प्रेम करचौ ही नाँइ है ? ताके लिये ये समझनो कि जिनकी परस्पर प्रेम श्रीठाकुरजी महाराज के संबंध ते होइ है, बिनको ही साँचो प्रेम है सकै है, और सदा सनातन रहैगो, अन्यथा काहू को प्रेम काहू सों साँचो हो ही नाँइ सकै है। याते आपने स्पष्ट आज्ञा करी कि अपनी प्रकृति सों बिरोध करिबेवारो कोऊ जीव हमें मिल्यौ ही नाँइ।

जिन सों प्रकृति विरोध न बनई ते धर्म विरोधी जानो। –श्रीगुरुदेवजू

याते श्रीहरि सों हमारी यही प्रार्थना है कि अनन्त जन्म जगत में ऐसे ही प्रीति करि-करिकें हमने खोये हैं। अब हमारो एक छिन कालहू जगत की प्रीति में नाँइ बीतै। क्योंकि श्रीहरि के दास कहें कि सर्वोच्च प्रेमिन को चूरामनि निरंतर प्रेम-बिहार में ही निमग्न श्रीबिहारीजी महाराज ऐसी अद्भुत प्रीति करिबेवारे हमें मिले हैं, ऐसे सब जीवन कूँ मिलियौ।

हरि को सो हित न करत माँ बाप।
प्रथम प्रीति पहिचान दरस दै मेटि सकल संताप॥
सिव को क्रोध निवारि लियौ जन आपुन मानि सराप।
दस औतार धरे ताके हित आनंद निधि निहिपाप॥

सरन आये को अभय करत हरि भीर सहत सब आप ।
श्रीबिहारीदास प्रभु पावन गुन को आरति हरत अलाप ॥

× × ×

प्रीति न भली भजन बिनु और ।
कहा कहों काहू सुख पायो एक मन धरि द्वै ठौर ॥
श्रीबिहारी-बिहारिन के चरनकमल तजि अनत देत चित तेई महामति बौर ।
श्रीबिहारीदास थोरे मन उबर्‌यौ कृपा करी सिरमौर ॥

× × ×

तुम तजि कौन सुखनि कौ दाता ।
सबै स्वारथी सहाय न कोऊ बंधु पिता सुत माता ॥
तुम निरपेक्ष निबाहत सब दिन पूरन त्रिभुवन त्राता । ताता
तुम से प्रभु तजि अनत करत रति ते पसु प्रानिनि घाता ॥
तुम उदार सुकुमार सहज सुन्दरबर मुरि मुसिकाता ।
श्रीबिहारीदास छबि निरखि मनोहर गौर स्याम रंग राता ॥—श्रीगुरुदेवजू

× × ×

साँचे मीत बिहारी पाये ।
जब ही ते वे तब ही ते हम करत सु मन के भाये ॥
लिये सुभाउ रहत निसि बासर अति आनंद बढ़ाये ।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि हँसि हँसि कंठ लगाये ॥—श्रीललितकिशोरीदेवजू

ोग तौ भूलैं भलें भूलैं तुम जिन भूलौ मालाधारी ।
ापनों पति छाँडि औरनि सों रति ज्यौं दारनि में दारी ॥
याम कहत तेई जीव मोते बिमुख भये सोऊ कौन जिन दूसरी करि डारी ।
ऱ्हें श्रीहरिदास जग्य देवता पितरनि कों स्त्रद्धा भारी ॥१६॥

फिर आपने कंठीदीक्षावारे आश्रितन के प्रति ममता बिबस होइ स्पष्ट कह्यौ क हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज की अनन्य आश्रितता कूँ और लोग भूलि रहे हैं ो भलें भूलैं, बिनकी वो जानें, किन्तु तुम हमारे है गये हो, याते कबहूँ, काहू कारन ते म्हें नाँइ भूलनो चहिये; क्योंकि जो स्त्री अपने पति कूँ छाँड़ि, और-औरन ते प्रेम रै है, वह स्त्रियों में व्यभिचारिनी समझी जाय है । वाकी ऐसी दुर्दसा होइ है, जैसे ानेक भड़वान में एक व्यभिचारिनी की होइ है । स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज हू

जोर देते भये या बात कूँ कहि रहे हैं कि–वेईजन मोते बिमुख है गये हैं, जो लोग श्रीगुरुन द्वारा हमारी दीक्षा लैकें हू और-और धर्मन कूँ अपनो रक्षक मानिकें नानाप्रकार की आसान सों बिनकूँ माथो नवावें हैं। बहुत से लोग ये बात कहें हैं कि यावत धर्म श्रीबिहारीजी महाराज के ही बनाये भये हैं, याते उन्हें मानिबो ही श्रीबिहारीजी महाराज की आज्ञा में चलिबो है, ये समझि के ही हम और धर्मन कूँ करै हैं, बिनके फल की इच्छा अपने मनमें कबहूँ नाँइ राखैं हैं। ताके बिषय में या प्रकार समझनो चहिये कि श्रीभगवान के चरणारविंद की अनन्य-सरनागति के अतिरिक्त और-और जितेक धर्म आपने बनाये हैं, वो सब तब ताईं के लिये ही हैं, जब ताऊँ श्रीठाकुरजी की अनन्य सरनागति में जीव को विस्वास नाँइ होइ है। जब जीव ने श्रीगुरुदेव कूँ बीच में राखिकें श्रीहरि की सरनागति की दीक्षा ग्रहन करि लीनी, तब वाकूँ और काहू धर्म में चलिबे की आवश्यकता ही नाँइ रहै है। इतेक ही नाँइ और धर्म में प्रवृत होत खेम, श्रीबिहारीजी महाराज की अनन्य सरनागति धर्म वाही समय ऐसे खंडित है जाइ है, जैसे पतिब्रता स्त्री ने परपुरुष को मनमें लावत खेम ही वाको पातिब्रतधर्म से पतन है जाइ है।

सौ मन रासि सकेलि उठाई। एक कन आस अनत नसि जाई॥ –श्रीगुरुदेवजू

याही बात कूँ श्रीगीताजी में श्रीठाकुरजी महाराज ने सर्वोच्च गूढ़ रहस्य कूँ अपने हृदय में छुपाइ राख्यो हो, अपने प्रानप्यारे सखा श्रीअर्जुन सों प्रेम बिबस, बिना ही पूछे बोले कि–हे भाई! सबसों छुपी भई मेरी अति प्रभावसाली रहस्यमय सर्वोपरि बात कूँ तू सुनि–तू एकमात्र मेरे को ही तो दंडौत कर, मेरी ही पूजा करि, सर्वप्रकार सों मेरो ही अनन्य भक्त है जा, ये सुनि मानो श्रीअर्जुनजी ने कह्यौ कि और-और जितेक धर्म आपने कहें हैं, बिनकूँ छाँड़ि दूँगो, तो मोकूँ कहा अपराध नाँइ लगैगो? ताको लक्ष्य करि आप बोले कि–यावत धर्मन कूँ भलीभाँति परिस्कारपूर्वक (मन, क्रम, बचन ते) छाँड़ि एक मेरी ही दृढ़ अनन्य शरणागत है-जा, तब यावत अपराधन कूँ मैं छुड़ाइ दूँगो, फिर बिनकी तुमकूँ नेकहू चिन्ता करिबे की आवश्यकता नाँइ है। या प्रकार श्रीमुखकमल के वचन सुनि, अर्जुन के समस्त मोह-भ्रम दूर ह्वै, बोले–अब आप जो कछु आज्ञा करौगे वही मैं करूँगो।

सर्व गुह्यतमं भूयं शृणु मे परमं वचः

इष्टोसि मे दृढ़मिति ततो वक्षामि ते हितम्

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोसि मे

× × ×

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

× × ×

नष्टो मोहः स्मृर्ति लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये बचनं तव॥

चौथी तुक मैं आपने कथन कियो कि श्रीहरि के दासहू ये कहें हैं कि– सर्वाधार, सर्वसमर्थ, सर्वनियन्ता, सर्वोपरि सुखदाता, साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज की गुरुन द्वारा दीक्षा लैबे पै हू जज्ञ, देवता, पितरन में इनकी इतेक भारी श्रद्धा है, जो कैसेहु नाँइ छुटै है।

रसिक अनन्य भये सुख पैये।
जो जुग सहस जनम कोटिक धरि और उपाइ न हैये॥
तपतीरथ ब्रत नेम होम संजम के श्रम उपजैये।
मथत कपास निरास मंदमति कहत काढ़ि घ्यौ खैये॥
बाढ़ै भले भूख भरमनि की फल पाये न अघैये।
यह दृष्टान्त प्रकट कर कंकन दर्पन काहि दिखैये॥
श्रीबिहारीदास लीजै तब कहा लुनि जो कल्लर भुसवैये॥

× × ×

कर्म धर्म सों नाहीं काम। निर्भै भजि श्रीस्यामा-स्याम॥
विधि निषेध सों को पचि मरै। प्रेम भक्ति में अन्तर परै॥

× × ×

कहुँ कहुँ विरले इक कोटिक में भगवत भक्ति सुद्ध जिन साधी।
तिनमें रसिक अनन्य धनि-धनि जिनकैं यह रस रीति अगाधी॥
श्रीबिहारी ^हरिदास कृपा बिनु छाँड़ि प्रसाद भये अपराधी।
ये खात फिरत करमठ कौवनि लौं ह्वै गयौ सब संसार सराधी॥

× × ×

बोलत काग करिटिहनि न्यौतत निहुरे फिरत निहोरत भूतनि।
खग की खाल खटीकन कौ मत भक्त पिता किये प्रेत अऊतनि॥

रसिक अनन्य निकसि न्यारे ह्वै राख्यौ ब्रत हरिदास सपूतनि।
भगवत धर्म छाँड़ि छुतिहा भये बाँध्यौ गाँठि कुकर्म कपूतनि॥

× × ×

डहक्यौ जग जग्यनि अज्ञ सबै भ्रम भूलि परचौ मन ज्यौं मृग धूपै।
करम धर्म की आस हरे तृन हीन हिये जु परचौ पसु कूपै॥
स्याम बिमुख करैं निदरैं बिगरैं सब काज परत अपूठै।
पुन्य छीन गिराइ दिये मृतलोक कियो तर सीस उठाइ अंगूठै॥
श्रीबिहारी-बिहारनिदास भनैं भजनैं सब भाँति रुठे अरु तूठे।
भूमि भरम भजौ जिन कोइ श्रीकुंजबिहारी बिना सब झूठे॥

× × ×

गायत्री संध्या तर्पन तजि भजि माला मंत्र सजाति।
श्रीबिहारीदास को सुख सर्वोपरि वेद बिदित बिख्याति॥

× × ×

श्रीबिहारीदास पतिब्रत खसै वह सबहिन की जोइ।
सबके पाँइन सिर घसै अपनी कहै न कोइ॥
अनन्य पतिब्रत कुल बधू सेवत धर्म बिचार।
श्रीबिहारीदास ताको सुजस सुनि सुनि जरत छिनार॥
पतिब्रता के देह में, बसत पियारो पीव।
पति उपमा चितवै—नहीं, जो मिलै घनेरे जीव॥
सुन्दर नार सुलक्षनी पर घर परसी जाइ।
पतिव्रता के सभा में, बैठी नारि नवाइ॥

× × ×

सुद्ध भक्ति सेवै नहीं, सेवै कर्म कुम्हार।
तातो भात जड़नि तज्यौ, सिर धरि चल्यौ पयार॥

× × ×

भक्ति भाव विस्वास न उपजै घर-घर रसिक कहाँही।
बिनु अनन्य संसार सिंधु में फिर-फिर गोता खाँही॥ —श्रीनागरीदेवजू

× × ×

द्वै प्रकार है हरि की बानी। एक बेद भागवत बखानी॥
बेद के थापे जे सब धर्म। ते सब कहियत बंधन कर्म॥

वेद कही हरि बानी फूली । तामें जीव रहे सब भूली ॥
बिना बिवेक न समझी जाई । कामी कर्म रहे अरुझाई ॥
स्वर्ग भोग सौ जे हैं राँचे । हरि के बचन न मानत साँचे ॥
बेद के कहे कर्म जें करत । छीन पुन्य फिर भू पर गिरत ॥
अर्जुन के ते धर्म छुड़ाये । गीता में श्रीकृष्ण बताये ॥
सर्व धर्म तजि शरन मम आवो । सर्व पाप तजि मुक्ति ध्यावो ॥
कर्म धर्म करत परत जे चूक । ताहि मारि जम करै जु टूक ॥
स्याम को होइ भक्त अपराधी । हरि तारन कों फेंट जू बाँधी ॥
मेरो भक्त नाश नहि जाइ । श्रीभगवान जू कही बजाइ ॥
वैष्णव होइ संकलपै गाइ । जम के दूत ताहि लै जाइ ॥
जयपुर एक नदी बैतरनी । गौ की पुच्छ तहाँ है धरनी ॥
नदी उतरि भये जब पार । ठाड़े करे जम के दरबार ॥
तिनहिं देखि धर्मराज हँसे । तुम क्यों आन फिर इत फँसे ॥
हरि को सरन जबहिं तुम लीनों । कागद छेक तुम्हारो दीनों ॥
अनन्य होइ हरि भक्ति न करी । कर्मठ बुद्धि न तुम्हरी टरी ॥
अब तुम जाइ भुगतौ संसार । जाको कछु न पारावार ॥ –श्रीरसिकदेवजू

जो हरि कौ तू दास है, तौ हरि ही कौ आराधि ।
और जिते देवी देवा, तिन्हें न भूले साधि ॥
इह अनन्यता जानिये, अपने इष्टहिं सेइ ।
और आराधन जो करै, तौं व्यभिचारिनि की गति लेइ ॥
जन्म मरन जासों गयो, सोई साँचो इष्ट ।
देवी देवा थिर नहीं, तू क्यों भरमत धृष्ट ॥
पूजै देवी देवता, छाड़ै हरि गुरु संत ।
तन मन राचै झूठ सों, तिनके दुखहि न अंत ॥
जे हैं हरि के आसरे, तिनको विघ्न न कोइ ॥
जिन हरि सों दूजी करी आतमघाती सोइ ॥
अपने पति को छाँड़ि कै, औरन को मन दीन ॥
सबहीं मानै एक करि, गनिका की गति लीन ॥
गनिका की गति लिये तो, लोक परलोक नसाँहि ॥
हरि गुरु को भेटैं नहीं, जन्म - जन्म पछितांहि ॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

जप तप पूजा नेम व्रत जोग जज्ञ आचार।
भगवत भक्ति अनन्य बिनु जीव भ्रमत संसार॥–श्रीभगवतरसिकदेवजू

× × ×

देवर्षि भूतात्म-नृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कृत्यम्॥–श्रीमद्भागवत ११स्कंध

जो भक्त सब कृत्यन कूँ छोड़कें सर्वात्मभाव सों सरनागतवत्सल श्रीस्यामसुन्दर की सरन चल्यौ गयो, तब हे राजन वो वैष्णव भक्त देवता, ऋषि, पितर आदि काहू प्राणी को ऋणी, किंकर नाँइ रहै है, अर्थात ऐसे सरनागत के ताईं कोऊ कर्तव्य सेष नाँइ रहै है।

स्मृति-वाक्य

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधि-निषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः॥

अपनो कल्याण चाहिबेवारेन कूँ प्रतिक्षण श्रीहरि को ही स्मरण करते रहनो चहिये। कारण कि या संसार में जितेक विधि-निषेध हैं, वे सब इनके ही किंकर हैं अर्थात प्रभु के स्मरण ते तो सम्पूर्ण विधि वाक्यन की पूर्ति हो जाइ है, और श्रीस्यामसुन्दर को विस्मरण होइबे पै समस्त निषेधाचरण को फल है जाइ है।

सुद्ध भक्ति के लक्षण

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम् भक्तिरुत्तमा॥
–श्रीमद्रूपगोस्वामीपाद, श्रीभक्तिरसामृतसिंधु

× × ×

तब लगि जोग जज्ञ व्रत तीरथ भावत पावक पानी।
जब लगि गुरु उपदेस न जान्यौ प्रेम भक्ति हू बानी॥

× × ×

कर्म करै भव तरन को उलटे पर भव माँहि।
पैड़े 'व्यास' अनन्य को जो पै जान्यौ नाँहि॥
बेद पुरानन हूँ पढ़े करै सुकर्म संजोइ।
व्यास सु जन्म अनन्य बिनु एकौ गति नहिं होइ॥
आन धर्म में मिलि करै श्रीहरि भजन समान।
जैसे रतन अमोल कर जानत नाहिं अजान॥

तजि के रसिक अनन्यता विधि निषेध लई घेरि ।
व्यासदास के भाव ते भक्ति गई दै टेरि ॥

× × ×

पितर शेष जड़ स्यामहिं देत ।
तिहिं पापी अपने पितरनि के मुख में मेली रेत ॥
सो ठाकुर सेवक न जानिबो जो अधमनि को जुठनि लेत ।
तिनकी संगति पति गति जैहै मेरे चित यह चेत ॥
स्याम केस सित होत न धोये कोइला राते सेत ।
सहज भक्ति बिनु 'व्यास' व्यास नहिं कित सेवत ऊसर खेत ॥

× × ×

साँचोई गोपाल गोपाल रटिबो ।
रूप-सील गुन कौन काम कौ हरि की भक्ति बिनु पढ़िबो ॥
जोग जज्ञ जप तप संजम ब्रत कलई को सौ मढ़िबो ।
नाम कुठार बिना को काटै पाप वृन्द को बढ़िबो ॥
जैसे अन्न बिना तुष कूटत वारू में तेल न कढ़िबो ।
ऐसे ही कर्म धर्म सब हरि बिनु बैसांदर दढ़िबो ॥–श्रीव्यासजी

संयम ब्रत सतमख करत वेदपाठ अरु नेम ।
इन करि हरि पैयत नहीं बिनु आये उर प्रेम ॥
कर्म धर्म मत अमित कै त्यागि सांख्य बिधि जोग ।
माया उदधि प्रवाह में दिये बहाइ सब लोग ॥
कर्म श्राद्ध में कुसल जे पितर लोक ते जाँहि ।
भक्त गनत नहि मुक्ति को और लोक किहिं माँहि ॥
कर्म धर्म में करहु जिन भगवत भक्ति मिलाइ ।
सिंह सरन गहिं मूढ़मति स्यार सरन जिनि जाइ ॥
बिधि निषेध के बंद हैं और धर्म मृग मानि ।
केहरि पुनि निर्बन्ध है भगवत धर्महिं जानि ॥
यद्यपि विषय इन्द्रियन बस भक्त अनन्य जो होइ ।
कर्मठ कोटि जितेन्द्रिय तेहिं सर सम नहिं होइ ॥
पाँचो इन्द्रिय साधि के जोग मौन ब्रत लीन ।
देखौ भजन अनन्य बिनु ब्राद वृथा श्रम कीन ॥

ह्वै आवै या देह ते कैसेहु दोष बिसाल।
जे हैं एक अनन्य ब्रत तजत न ताहि गोपाल॥
ज्यौं घरनी है अति बुरी पति नहिं छाँड़त ताहि।
देखत ही पर पुरुष तन तजत तिहीं छिन जाहि॥—श्रीध्रुवदासजी

बिधि निषेध आदिक जिते, कर्म धर्म तजि तास।
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निज दास॥
जो कोऊ प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिटकावै॥
बिधि निषेध के जे जे धर्म। तिनको त्यागि रहै निष्कर्म॥—श्रीमहावाणीजी

जौलों जीवै तौलों हरि भजि रे मन और बात सब बादि।
द्यौस चारि के हला भला में तू कहा लेइगो लादि॥
माया-मद गुन-मद जोवन-मद भूल्यौ नगर विवादि।
कहें श्रीहरिदास लोभ चरपट भयौ काहे की लगै फिरादि॥१७॥

समस्त जीवन के माऊँ लक्ष्य करते भये अपने मनसों ही आप कहिबे लगे कि—जब ताऊँ जगत में तू जीवै है, तब ताऊँ और सब बातन कूँ भलीभाँति त्यागि, एकमात्र श्रीहरि को ही भजन कर। क्योंकि तू जगत की थोड़े दिन की भलाई-बुराई तथा वाह-वाह सों, परलोक में कहा लाद लै जावैगो ? और नगर-बिवाद एवं नश्वर-मायिक धन, गुन, जोवन आदिके मद में तू इतेक भूलि रह्यौ है कि साक्षात दया-करुना के समुद्र, अद्भुत सुख-स्वरूप श्रीहरि के नामहू लैबे के ताईं तेरो मन नाँइ करै है। श्रीहरि के दास या बात कूँ कहें हैं कि जीवन के मन-बुद्धि में लोभ सनिकें ऐसो चरपट है गयो है कि काहू कौ उपदेस, इनकूँ नाँइ लगै है।

माया मद मोहे अभिमान।
थोरे ही सुख सहत दुसह दुख जो गुरु कह्यौ सु कियौ न कान॥
श्रीभागवत चलत दै बाँये अपनी उक्ति आचरत आन।
कुंजर सौच असौच सदा श्रम समझत नाहिन अधम अज्ञान॥
संगु किये समिलित लोगन सों घटत प्रेम यह प्रगट प्रमान।
कहा कहौं साधक बपुरा की सिद्ध बिगूचे भरत समान॥
एकै मन एकै परमेस्वर एकै ताकि रहै दिन मान।
तोपै काज सरै काहे न श्रीबिहारिनदास यों बरनि बखान॥

जो दिन सो दिन जीवहि तू ह्वै रहि हरिदासन को चेरो।
श्रीबिहारीदास बल तिनहिं भरोसो स्याम चरन रति केरो॥

यह जोवन जल बरषि ज्यौं नदी उमड़ि करारे ढाहि।
जल सूकै जोवन घटै त्यौं गये आत्र पछिताहि॥
त्यौं गये आव पछिताहि काहि पूछै बिन स्यामहिं।
मिथ्या सब दिन खोइ जोइ दारा धन धामहिं॥
दुर्लभ तन तूँ सोधि मन भजि बड़ औसर जानि यह।
नित्य कित चूकत तहाँ तू सुनि सठ नागरीदास कहि॥

× × ×

लोभ है सर्व पाप कौ मूल।
जैसे फल पाछे को लागै पहिले लागै फूल॥ —श्रीभगवतरसिकदेवजू

प्रेम समुद्र रूप रस गहरे कैसें लागैं घाट।
बेकारयौंदै जान कहावत जानिपन्यौं की कहाँ परी बाट॥
काहू कौ सर सूधौ न परै मारत गाल गली गल हाट।
कहें श्रीहरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत ओटपाट॥१८॥

—रसिक-अनन्य-नृपति-चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज ने अपने सिद्धान्त के सत्रह पदन में जीवन कूँ बिभिन्न प्रकार ते उपदेस दै, या अंतिम पद में सर्वसारातिसार, बिसुद्धातिबिसुद्ध, परिपूर्नतम सर्वोपरि प्रेम के स्वरूप कूँ निरूपन कियो है, या अद्भुत प्रेम कूँ प्रकास करिबे के ताईं ही एकमात्र आपको या धराधाम पै प्राकट्य भयो है।

सर्वप्रथम प्रेम के अगाध असीम स्वरूप कूँ उल्लेख करते भये आपने कथन कियौ कि—जैसे समुद्र की अगाधता को कोऊ ओर-छोर ही नाँइ है, तैद्वत महामहिम प्रेम समुद्र, जामें एकमात्र रूप, रस की ही गहराई है, तासों कोऊ घाट लगि ही कैसे सकै है ? यदि कोऊ ये बात कहै कि घाट लगिबो कैसे समझौ जाइ ? या बिषय में यों समझनो चहिये कि जैसे बिषयानंद रस की गहराई में जीव ज्यौं-ज्यौं प्रवृत होइ त्यौं-त्यौं अधिकतर डूबतो जाय है, किन्तु ज्ञानरूपी नौका मिलिबे ते वो घाट लगि जाइ है। ऐसे ही ज्ञान-सागर में यद्यपि ब्रह्मानंद की गहराई है, तौहू अनंतकोटि ब्रह्मांड-नायक सच्चिदानंद भगवान की दासभावमय भक्ति प्राप्त होइबे पै ब्रह्मानंद सुख

सों ऐसे पार है जाइ है कि फिर वो मोक्ष शब्द ते हू भय मानन लगै है। याही भाँति दासभाव के भक्ति-सागर में इष्ट की ममता और अपनी दासता रूपी सेवा-सुख संबंध की दल-दल सदृस इतनी गहराई है, कि जामें फँसिबे पै साधक जितेक निकसिबे की चेष्टा करै उतनौ ही अधिक धँसतो जाइ है।

श्री ब्रज-रस-देश के वात्सल्य-रस-सागर में प्रेममय लाड़-सुख की अद्‌भुत गहराई होइबे के कारण वामें डूबिबेवारे रसिक, भगवत्ता एवं दासता कूँ भलीभाँति भूलि, स्वयं भगवान कूँ हू ऐसो अपनो बनाय लैं हैं कि वाके नेक ऊधम करिबे पै रस्सी सों बाँधि, हाथ में छरी लै डाँटबे लगैं हैं, और भगवान हू मारिबे के भय सों आँसू डारि-डारि रोमन लगै हैं। वात्सल्य-रस को इतेक प्रभाव होते भये हू सख्य-रस समुद्र में मित्रता की अद्‌भुत-अगाध गहराई होइबे के कारन, लालजू मैया के लाड़-प्यार में निमग्न, भोजन करते समय हू, यदि कोऊ सखा कौ बोल सुनि लें तो भोजन छाँड़ि, ताही समय उठिकै भाग जाँइ हैं, सखान के संग खेलते भये चाहे कितेक हू अबेर भोजन के लिये क्यों न होइ, और मैया हू लाड़-भरे वचनन ते बेर-बेर क्यों न टेरती होइ, तौहू आप सखान कूँ छाँड़िकै नाँइ जाइबो चाहें हैं। यदि जाँइ तो मन मारकै ही जाँइ हैं, इतनो हू नाँइ काहू नायिका सों आपकी जो रहस्यमय निजहृदगत अति गोपनीय प्रीति है ताकूँ हूँ प्रिय नर्म सखान सों निसंकोच प्रकास करि देइ हैं। सखाहू अनेक युक्तिन ते जब ताऊँ दोऊन कौ कुंज में मिलन नाँइ कराइ दैं, तब ताऊँ सुखी नाँइ होइ है। ऐसी बिसाल मित्रता की गहराई होइबे पै हू परस्पर प्रेम-बिलास के पूर्न अंगन कौ अभाव होइबे के कारण बिलास नाँइ होइ सकै है। याते सर्वाङ्गपूर्ण शृङ्गार-रस समुद्र में प्रेममय काम बिलास सुख की गहराई ऐसी है, जामें आपकूँ न तो मैया को ही लाड़-प्यार रुचै, और न सखान के संग खेलिबो ही सुहावै है। आप तोतरी-तोतरी बोली में सगाई-व्याह आदि की उत्कंठामई चर्चा करिकें ही मैया के पास समय व्यतीत करै हैं, और सखान ते हू याही प्रकार की चर्चा करिके ही सुखी होइ हैं। याही उत्कंठा में बिबस होइ, माखन चोरी के बहाने गोपीन के घर में जाइबो, दानी बनके मारग में दान माँगिबौ, पनघट पै जाइ अनेक हास-परिहास करते भये बिनकी गागर उचाइबो, समय-असमय अनेक बहानेन ते बिनके ही घरन के आगे डोलिबो आपकूँ सुहावै है।

या प्रकार के शृंगार रसमय अद्‌भुत प्रेम चरित्रन कूँ कोऊ कहाँ तक कहि सकै है? तन, मन, प्रान, रोम-रोम में व्याप्त शृंगार रस के प्रभाव कूँ प्रेम के ग्याता

ष सब जानें ही हैं। श्रीगोपीजन हूँ घर में रहिकें वा माखन चोर की छिन-छिन ट जोह्यौ करें हैं, और बाकी ही परस्पर चर्चान सों दिन व्यतीत करें हैं। संध्या मय जब आप गइया चराइकें आमते, तब गोखा-मोखा जारी-झरोखा अटा-अटारी री, पौरीन में ठाड़ी होइ, चकोरवत अनिमिष दृष्टिसों वा प्रान जीवन की छबि-छटा धुरी कूँ निहारि-निहारि दिन-भर को विरह ताप बुझामतीं हीं। जब कबहूँ बिरह हन नाँइ होमतो, तब फूल बीनबे, दही बेचिबे आदि अनेक-अनेक बहानेन ते जाइ, रूप-रस माधुरी कूँ पान करिकें ही सुखी होमती। श्रृंगार रस कौ ऐसो अद्भुत भाव है कि जामें लोक-वेद मर्यादा के अति दृढ़ बंधन हू तृनवत टूट जाइ हैं।

जब लाल ने रास-बिलास सुख के हेतु, महामधुर अनंग-बर्धक गीत कूँ वंशी में ायो, तब तौ यावत लोक-वेद मर्यादान की श्रृङ्खलान कूँ तृनवत तोरि, पति-पुत्रादिकन ँ त्यागि, श्रीब्रज सुन्दरी अर्धरात्रि में ही ऐसे धाईं जैसे नदी समुद्र की ओर धावै है। ब्रजसुन्दरीन के इतेक उत्कट अनुराग उमंग द्वारा आयबे पै हू, लालने रास-बिलास कीन्यौ नाँइ, उल्टे धर्म उपदेस द्वारा घर ही जाओ, ऐसे कठोर बचन कहिबे लगे। हू गोपिन कौ प्रेम न तौ सिथिल ही भयौ, और न लाल के प्रति घृना ही भई, उल्टी रहातुर है गईं। श्रीब्रजसुन्दरीन की विरह-व्यथा देखि, प्रेमातुर होय लाल ने स-बिलास प्रारंभ कीनौ।

प्रान-जीवन परम सनेही लाल के संग रास-बिलास सुख पाइबे पै, जब ब्रज- न्दरीन कूँ सहज सुभाव अभिमान आइ गयौ, तब बिनके अभिमान कूँ लाल नाँइ लि, रात्रि के समय सबकूँ बनमें छाँड़ि, अर्न्तध्यान है गये। वा समय समस्त श्रीब्रज- न्दरी विरह में अति व्याकुल होइ, पुलिन में बैठि, लालजू के ही गुन गामते-गामते इ उठीं। तब लालजू नै प्रगट होइ, प्रत्येक गोपी के संग, अनंत स्वरूप सों हारास बिलास सुख बिलस्यौ-बिलसायो। श्रीव्रजसुन्दरीन के प्रेम के आगे पने कूँ इतेक अधिक ऋणी स्वीकार कीन्यौ, कि देवतान की आयुवारे अनेक न्म धारन करिबे पै हू मैं उऋण नाँइ होइ सकूँ हूँ। याते विषयानंद समुद्र ते कें श्रृंगार-रस-सागर पर्यन्त के समस्त प्रसंगन ते यह जान्यौ गयौ कि, जो सुख हिले सुख कूँ भुलाइकें चित्तवृत्ति को अपने माऊँ आकर्षित करि लेइ, वोही यौ पहिली गहराई ते घाट लगिबो। ये स्पष्ट है कि ब्रजकौ श्रृङ्गार-रस ही र्वोपरि सुख बिलास कौ स्वरूप है, जाकी एकमात्र आधार स्वरूपा श्रीब्रज- न्दरी ही हैं। याही ते महतजनन ने गोपीन कूँ प्रेम की धुजा स्वरूप वर्णन

कीनौ है। शृङ्गार-रस को परिपाक मधुर-रस, जाको आधार स्वरूप–श्रीनंदनंदन-वृषभानुनन्दिनीजू की अनन्य प्रीति है, ता मधुर-रस को सार महामधुर-रस है, जाको आधार श्रीवृन्दावन-विलासी श्रीजुगल, अष्ट यूथेस्वरी परिकर, समय-समय पै श्रीब्रज में प्रकट होय, समस्त रसन कूँ विलसैं-विलसावैं हैं। ऐसे महामधुर रसके हू पूर्ण परिपाक-रस के आधार, प्रथम-समागम-एकान्त-रस-विलास-निज-महल में अविछिन्न एक रस सर्वोपरि नित्य-बिहार-विलासी एकमात्र श्रीनित्यबिहारी-नित्यबिहारनीजू ही हैं।

गाय ग्वाल गोप गोपीजन न्यारौ ब्रज व्यौहार।
सबते दूर दुरचौ दुर्लभ क्यौं सुलभ होत सुकुमार॥ –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

श्रीवृन्दाबिपिन बिनोद कौन सुख सिंधु तरै री। –श्रीनागरीदेवजू

श्रीस्वामीजी महाराज ने दूसरी तुक में विधि, ग्यान, ईश्वरता आदि तत्वन सौं मिलाइ, प्रेम-रस प्राप्ति के साधन बर्नन करिबेवारेन के माँऊ लक्ष्य करि कह्यौ कि–बिसुद्ध सर्वोपरि निज-प्रेम प्राप्ति के मार्ग कूँ ये लोग जान ही नाँइ सकैं हैं। अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-सागर जानिबे, एवं प्राप्त करिबे की, गैल ही इन सबन ते अति दूर है। अर्थात–विधि, ग्यान, ईश्वरतामय तत्व-सिद्धान्त, संबंध एवं साधन तथा प्रमानन कूँ पुराने पत्तान सदृस सम्यक प्रकार त्यागि, प्रथम-समागम-निज-महल में परम अनुरागवती उत्तम-कुल की पतिब्रतावत सहचरि-भाव सौं हरे-भरे फरे-फूले वृक्ष की नाईं बिसुद्ध प्रेममय साधन एवं कृपा द्वारा ही निज प्रेम की प्राप्ति है सकै है।

साधन सबै प्रेम के तरुहर।
निकसत उमंग प्रगट अंकुर बर पात पुराने परिहर॥

× × ×

प्रेम प्रेम ही पाइये जो करै प्रेम कों अंग।
प्रेमहिं प्रेम पिछानि हैं झूठौ साँचौ संग॥
प्रेम बिना प्रेमैं नहीं प्रेम प्रेम ही होइ।
जो प्रेमै प्रेमी मिलै तो भर्म दुहुन कौ खोइ॥
प्रेम प्रेम ही ऊपजै जो करै प्रेम की वारि।
तब ही प्रेम फूलै फरै यों प्रेमिन कह्यौ पुकारि॥
प्रेमै बनिजन हौं चली आगे मिलियो प्रेम।
प्रेम प्रीति गति पाइ सखि मोहि प्रेम कौ नेम॥

प्रेम बिछौना ओढ़ना अचवन भोजन प्रेम।
प्रेम प्रेम के पाहुनौ प्रेम प्रेम को नेम॥

× × ×

मिश्रित और उपास बनै नहीं ज्यौं बिन भैं-न पखावज बाजै।
पिय के मन प्रीति प्रतीति नहीं अनभाँवतौ बादि सिंगारहि साजै॥
श्रीबिहारिनदास अनन्य सभा धनि कौन कहै सुनि लाजन लाजै।
सत्पति भजै सत कामिनि यों श्रीहरिदास बिहारिनि राजै॥

× × ×

कोऊ विद्या विधि वेद बँध्यौ बल कोऊ धन धर्म कर्म कृत पास।
कोऊ जम नेम कोऊ व्रत संयम कोऊ जप तप कोऊ भ्रमत उदास॥
कोऊ कातिक अगहन मकर सीत सहि कोऊ त्रैसार्खी ग्यास उपास।
संतत सुखद बिहारिनिदास कैं श्रीहरिदास से श्रीहरिदास॥

फिर आप तींसरी तुक में स्पष्ट बोले कि—जितेक आज ताऊँ प्रेम-रस बिलास-स्वरूप निरूपन-करिबेवारे भये हैं, काहू को लक्ष्य बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-रस ताऊँ गयौ ही नाँइ। अर्थात काहू ने—मूल प्रकृति श्रीस्वामिनीजू, पूर्न पुरुषोत्तमलालजू, एवं काहू ने जीव कोटि में भक्त-सिरोमनि मादनाख्य महाभावस्वरूपा श्रीस्वामिनीजू कों, रसराज श्रीलालजू कूँ, ऐसे ही काहू ने संक्ति-सक्तिमान श्रीयुगल कूँ निरूपन कीन्यौ है। काहू ने श्रीस्वामिनीजू कूँ प्रेम-स्वरूप मानिकें हू, श्रीलालजू कूँ पूर्न ऐस्वर्य, माधुर्य को स्वरूप मान्यौ है, बिनके वर्नन में हू श्रीजुगल के प्रेम-बिलास में नाना जाति के रसन की मिलौनी हू स्पष्ट दीखै है।

इन सबन ते अति दूर, महामधुर-प्रेम-रस कोहू सार रस की एक-प्रान दो-देह स्वरूप श्रीयुगल को सर्वोपरि अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम के बिलास ताऊँ काहू को लक्ष्य पहुँच ही नाँइ सक्यौ। जब श्रीस्वामिनी स्वरूप एक तत्व, और लालजू स्वरूप दूजो तत्व, फिर एक-प्रान द्वै-देहवत बिनको नित्य-बिहार बन ही कैसे सकै है?

इत मन उतहि सबाइ मन, ऊँचो नीचो होइ।
जो मन सों मन तोलिये, तो मन पूरो होइ॥

× × ×

पूरन प्रेम प्रकासिनी श्रीस्यामा अति सुकुमारि।
मोहनजू के नैंन चकोर लों ससि जीवत बदन निहारि॥

नख-सिख सुन्दर सोहई दोऊ अद्भुत रूप अपार।
एक प्रान तन द्वै धरें अति मधुर प्रेम रस सार॥

× × ×

श्रीहरिदास रसिक बिनु कापै परत बिहार बखान्यौ।
कर्म ग्यान अरु भक्ति ब्रज बिभो बाकस छाँड़ि मधुररस छान्यौ॥
साधक सिद्ध प्रसिद्ध प्रसंसित जहाँ-तहाँ सब जग जस जान्यौ।
ललिता रूप पलटि प्रगटे श्रीबिहारनदास कृपा पहिचान्यौ॥

× × ×

श्रीबिहारन बल्लभ दुर्लभ ये भये सुल्लभ श्रीहरिदास किये।
धनि-धनि अनन्य जननि भजें जिन प्रेम के नेम लड़ाइ लिये॥
रस-रीतिसों प्रीति-प्रतीति नहीं तो कहा निरखें हरषें न हिये।
बाँके बिरद बुलाइ न्याइ निगम अगम न जात छिये॥—श्रीगुरुदेवजू

फिर चौथी तुक में आप अति अद्भुत उदारता में बिबस होइ प्रेम-रस-पथ के उपासकन सों बोले कि—हे भाई ! साक्षात श्रीहरि की दासो ये बात कहें हैं कि तुम बिधि, ग्यान ईश्वरतामय तत्व आदि मिश्रित प्रेम-बिलासन माऊँ ओट-पाट (इत-उत माऊँ) देख रहे हो, किन्तु जो ठाकुर जन्म-लीला सों रहित, सदाकाल एक रस, नव-जौवन के जोर में बिभोर, छिन-छिन नव-नवाइमान उन्नत-नव-किसोर बैस सों प्रथम-समागम एकान्त-रस-विलास-निज-महल श्रीवृन्दावन में ही निरंतर नित्य-विहार परायण है—उन-श्रीबाँकेबिहारी ठाकुर के स्वरूप कूँ, मन लगाइ, बिचारि-बिचारिकें समस्त रीति-भाँति सों भलीप्रकार समझो। जो ठाकुर श्रीलक्ष्मीपति एवं श्रीब्रजपति कूँ तो सर्वथा दुर्लभ है, और श्रीहरिदास दुलारी सर्वोपरि नित्य-बिहारिनीजू कूँ दृढ़ अनन्य होइ, अद्भुत महा आसक्ति सों निरंतर सेवैं है, याही ते बाँको विरद समस्त जगत में जिनको विख्यात है।

इच्छा बिग्रह धरि लीला बपु सब अवतारिन पर अवतारी।
लक्ष्मीपति ब्रजपति को दुर्लभ इनते कौन बड़ो अधिकारी॥
नित्य किशोर निरंतर बिहरत सेवत श्रीहरिदास दुलारी।
ऐंडिल ऐंडाइल अरुन कमल बाँके बिरदनि बिदित बिहारी॥—श्रीगुरुदेवजू

बिनकी महा बिचित्र चरम सीमा की आसक्ति-स्वरूप को कछु चित्र वर्नन करते भये, श्रीकेलिमालजी में ही आपने बतायो कि—हमारी प्रान सर्वस्व श्रीनित्य-

बिहारिनीजू के श्रीचरन-चिन्हन कूँ ही बाँकेबिहारीलाल अपनो इष्ट समझि, भावना करते भये नानाप्रकार सों लाड़-लड़ावैं हैं, तब ये समझिबे की बात है कि साक्षात श्रीस्वामिनी स्वरूप कूँ कौन महा-बिचित्र आसक्ति सों अपने हृदय-कमल में विराजमान करिकें राखै हैं।

जहाँ-जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे तहाँ-तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँही।
बहुत मूरति मेरी चँवर ढुरावत कोऊ बीरी खवावत एक व आरसी लै जाँहीं॥
और सेवा बहु भाँतिन की जैसी ये कहें कोऊ तैसीये करौं ज्यौं रुचि जानौ जाहीं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कौ भलौ मनावत दाउ उपाहीं।

श्रीलालजू की अगाध आसक्ति कूँ प्रकाश करते भये औरहू आपने कह्यौ कि एक समय श्रीलालजू के हृदय में अपनी प्राण-प्यारीजू के मुखचंद्र कूँ निहारते-निहारते आसक्ति सागर नाँइ मायो, तब आप कहन लगे कि हे प्रान-प्यारीजू मेरे मनमें ऐसी आवै है कि आपके जिय सों तो मेरो जिय मिलि जाइ, और अपने अंगन में आपके श्रीअंगन कूँ समाइ लऊँ, लाल के ऐसे अद्भुत आसक्ति के वचन सुनि, मानो श्रीस्वामिनीजू ने इंगित कीनों कि हे प्राण-प्यारे ! जैसे आप सुख पावो, ताही भाँति करिलेवो, तापै श्रीलालजू ने कह्यौ कि ऐसो करिलऊँ, तो मेरी आँख अति आकुल होय, फड़-फड़ावन लगेंगी, कि फिर हम देखेंगी कौन कूँ ? तापै मानो प्यारीजू ने कह्यौ कि हे प्यारे या बात कूँ आप अपने मनमें ही निश्चय करो। — —

तब लाल अनेक प्रकार सों सोचि-समझि बोले कि–प्यारीजू ! निरंतर आपके श्रीमुखचंद को तो निहारतो रहूँ, और एकमात्र आपसों ही मेरी हिलग लगी रहै, तो मैं अपने जीवन कूँ सुफल मानूँ। यदि कोऊ ये कहै कि कहा लालजू की हिलग एकमात्र श्रीस्वामिनीजू सों नाँइ ही ? ताके विषय में समझनो चहिये कि प्रेमी अपनी हिलग कूँ कबहुँ बोध करें ही नाँइ हैं, सदाकाल अभाव ही मानै हैं, जापै हमारे श्रीलालजू तो यावत प्रेमिन के चूरामनि ही हैं, बिनके मनमें सदाकाल अभाव रहिबो स्वाभाविक ही है। आप औरहू अधीर होइ बोले कि–हे प्यारीजू ! हौं तो अति दीन, एकमात्र आपके ही आधीन हूँ, ताहू पै कबहुँ-कबहुँ आप भौंहन ते आक्षेप करि देवो हो, ताकूँ तो काहू रीति सों मैं सहन करि ही नाँइ सकूँ हूँ, मोमें इतेक सामर्थ ही नाँइ। यों कहि औरहू अपनी आसक्ति कूँ प्रकास करतो भयो रसिक-सिरोमनि लाल बोल्यौ ? हे अद्भुत उदार चूड़ामनि लाड़िलीजू मैं बपुरा, अतिदीन एकमात्र प्रेममय काम ते दह्यौ भयो, आपके ही आश्रित हूँ, आप दया-करुणा

को अगाध सागर हो, याते अपनी बाहु-बल सों ही मोकूँ या निज-महल में जिवायकैं राखिलेउ।

ऐसी जिय होत जो जिय सों जिय मिलै तन सों तन समाय लेउँ तौ देखों कहा हो प्यारी।
तोहीं मो हिलग आँखि आँखिन सों मिली रहैं जीवत को यहै लहा हो प्यारी॥
मोकूँ इतो साज कहाँ री प्यारी हों अति दीन तुव बस भुव क्षेप न जाइ सहा हो प्यारी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत राखि लै बाँहु बल हों बपुरा काम दहा हो प्यारी॥

× × ×

अवधि प्रेम की साँवरो मिलि करत नई नित केलि।
या रस ते नेकु न टरैं हम दोऊ नवल नवेलि॥

× × ×

रहि न सकत निमिष न न्यारे प्रानपति प्रेम भरे री।
नैंन बैंन श्रवन सखी राखे उर पर धरि मैं पिय परखि खरेरी॥
मैं ज्यौंही ज्यौंही कसै त्यौंही त्यौंही बसे मन सन्मुख चितै इत उत न टरेरी।
श्रीबिहारिनिदास की स्वामिनी बचन सुनत अनुकूल भई फूल अंग अंग रसरंग ढरेरी॥

श्रवन सुजस रसना रसौं तुव करत रहौं गुनगान।
जाँचत ज्यौं जल मीन लौं तुव दरस परस अध्रान॥ –श्रीनागरीदेवजू
प्यारी दरस रूप सुख नैंन है परस बिना नहिं चैंन।
सकल अंग सुखदान दै यह भाषौं दिन रैंन॥
करुना रस बरषत रह्यौ स्वामिनि परम उदार।
राखो अपने बाहुँ बल दै अधर सुधा आधार॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

जब श्रीस्वामिनीजू ने प्रान जीवन लाल के प्रानन कूँ अपने प्रेम में अति कातर देख्यौ, तब मानो आप अगाध रहसि रस-भरे भावन ते लालजू के माऊँ मुस्काईं, प्रानप्यारीजू की प्रसन्नताभरी मुस्कुराहट कूँ देखि, लालजू बोले–हे प्यारीजू ! आप ऐसें ही प्रसन्न मुखारविंद सों मेरे माऊँ सदाकाल देखती रहोगी, ये हमें आप लिख के दै देउ।

आज रहसि में देखियत प्यारीजू एक बोल माँगों जो लिख देउ।

एक समय प्यारीजू सहज सुजाव मौन ह्वै, विराज रहीं। श्रीलालजू मान समझि, अति कातर होइ बोले–हे प्यारीजू ! आप मोते मान तो कबहुँ भूल की हू भूल में मत करौ। क्योंकि आपकी भौंहन कूँ नेक मैली देखत खेम मेरी देह सों प्रान ही

चले जाँइ हैं, मानो श्रीस्वामिनीजू इतेक सुनिकें हू कछु नाँइ बोली, तब लालजू श्रीहरिदासीजू सों यों कहते-कहते बेसुध है गये, कि आपहू इन्हें क्यों नाँइ समझावो ये मान करिबे के अपने सुभाव कूँ छोड़ दें।

भूले-भूले हूँ मान न करि री प्यारी तेरी भौहैं मैली देखत प्रान न रहत तन।
ज्यों न्यौछावर करौं तो पै काहे ते तू मूकी कहत स्याम घन॥
तोहि ऐसे देखत मोहि अब कल कैसे होइ जू प्राँन धन।
सुनि श्रीहरिदास काहे न कहत या सों छाड़िव छाड़ि अपनो पन॥

प्रान जीवन लाल कूँ बेसुध देखि, श्रीहरिदासीजू व्यथित होइ, प्यारीजू सों कहिबे लगीं कि–हे प्यारीजू प्यारे सों—

बात तो कहत कहि गई अब कठिन परी बिहारी।
प्रान तो नाहिने तन अस्त व्यस्त भयौ कहैं कहा प्यारी॥

श्रीप्रान-लाड़िलीजू प्रीतम की अति अगाध एवं अद्भुत आसक्ति कूँ देखि, अपने हृदय-कमल में बहुत ही परिश्रम बोध करती भईं, अति शीघ्रता सों लालजू कूँ हृदय सों लगाइ, समस्त रीति-भाँति सों सुखी कीन्यौ।

भाँवते की प्रकृति देखत जो श्रम भयौ बहुत हियारी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा बाहु सों बाहु मिलाइ रहे मुख निहारी॥

ऐसे हीं श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू ने मान को आभास मात्र में ही कह्यौ कि–एक समय हमारी प्रानप्यारीजू रसिक-चूरामनि लाल के संग खेलती भईं, अति लाड़िलेपन के सहज सुभाव सों मोंन है गईं। इतेक ही में प्रीतम अति व्यथित होइ, श्रीललिताजू सों कहिबे लगे कि–हे सखी ! प्रान-जीवन प्यारीजू आज बहुत ही हठ करि रही हैं, जो एक बात हू नाँइ बोलें हैं, आप कोई ऐसो जतन करो, याते ये रस ज्यौं को त्यौं बनो रहै। मैं इनके एक रोम पै ही अपनो तन-मन-प्रान सर्वस्व न्यौछावर करू हूँ, जो नेकहू मेरे माऊँ अपने श्रीनेत्र-कमलन कूँ उठाइकें देखि लेवें।

हठ करि रही प्रिया बातौ न कहई।
ललिता तू समझाइ जुगति करि जैसे रस रहई॥
तन मन वारौं एक रोम पर जो नेंक इतै चितई।
श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी कहत सखी सों करि जतन ज्यों रस रहई॥

ऐसे अति अद्भुत प्रेमासक्ति के आधार स्वरूप-श्रीनित्य-बिहारी-बिहारिनीजू

के रस-बिलास में स्थूल-विरह की तो आभास-मात्र हू समाई नाँइ होइ सकै है कारन जहाँ संयोग ही अगाध बिरह को स्वरूप है। या बिषय में श्रीगुरुदेवजू ने "रसभींने बिहारी" के पद में स्पष्ट दिखायो है कि–एक पलक प्यारीजू ओट में है गईं ताही ते श्रीलालजू अति व्याकुलता में लीन होइबे के कारन, बिनको समस्त श्रीअंग स्वेद परि गयौ, दसा कछु की कछु ऐसी है गई, जाकूँ श्रीप्यारीजू अपने मुखसों कहि ही नाँइ सकीं। या प्रकार को सर्वोच्च लाल के प्रेमस्वरूप में और-और प्रेम रस एवं तत्वन को मिश्रण करिबो कितेक असह्य मालुम परै है, याकूँ विसुद्ध प्रेम के ज्ञाता रसिकजन ही समझि सकेंगे।

हों ही लेति प्रीति परचो आली ये अति प्रेम प्रबीन।
पलक ओट बन बोलत डोलत व्याकुल तन मन लीन॥
औचक अचक आइ उभै भये हों ही सहज सुभाइ।
कह्यौ कछु न लह्यौ मन कौ मतौं दरस परस अकुलाइ।
कंप पुलक तन स्वेद भयौ भ्रम मोपै कह्यौ न जाइ॥

× × ×

श्रीबिहारीदास रस में रिसै राखत कुमति कुलोग॥
केहरि की सी मिलन है संयोग ही वियोग।

अनुराग के बिषय में श्रीगुरुदेवजू ने स्पष्ट बर्नन कीनौ है कि हमारे श्रीनवल-किसोर-किसोरीजू को इतेक अद्भुत अनुराग है कि–अनंत-कोटि महा-प्रलय व्यतीत हैबे पै हू अनादिकाल सों आधे निमिष के ताँईं पलक सों पलक लगाइकें नाँइ सोये हैं।

को सरि करै हमारी राधा।
यद्यपि नाम महातम सेवत और वैस या रस में बाधा॥
अंग-संग नवलकिसोर-किसोरी एक वैस रस सिंधु अगाधा।
जागत अनुरागत निसिबासर लगत न नैंन निमेष न आधा॥
नित्य-बिहार अधार हमारे एक प्रेम निज नेम अराधा।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुल बल सब अभिलाष मिली सुख साधा॥

और न इन्हें एकहू ग्रास आरोगिबे की सुधि होइ है। याही महारस-बिलास के आनंद में सदाकाल तुष्ट-पुष्ट फूले-दूले रहैं हैं।

खान पान गुन ग्रहै न ग्रासा, आनंद बिग्रह बड़ा तमासा।

× × ×

यहि रस तुष्ट पुष्ट मेरे प्यारे, करत न पाक परेखों। –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

रोंम-रोंम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास।
रसिक विहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास॥

इन्हें दिन-रात को ही भान नाँइ होय है, और न कबहुँ ये मिलिबो ही अपने मनमें बोध करें हैं।

गावत गौरी राग बिभासा। नहि जनियत अथवत सु प्रकासा।

× × ×

मधुर प्रेम रस सिंधु बढ़यौ गई निस नसि भयौ भोर।
बिलसत हँसत न जानहीं भोर हु जुगलकिसोर॥ –श्रीगुरुदेवजू

तुव मुखचंद चकोरी ये नैंना।
अति आरत अनुरागी लंपट भूलि गये गति पलहु लगैंना॥
अरबरात मिलिबे को निसदिन मिलेई रहत मानो कबहुँ मिलैना।
श्रीभगवतरसिक रस की ये बातें रसिक बिना कोऊ समझि सकैना॥

अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम के बिचित्र आवेस कूँ, प्रेम के ग्याता सभी जानें हैं कि निद्रा, भोजन, दिन-रात को भान, यामें होइ ही नाँइ है, और निहारते-निहारते तथा बिलसते-बिलसते इतेक अगाँध लालसा बढ़ि जाइ है, कि हम कछु मिले एवं बिलसे हैं, याकूँ मन बोध करै ही नाँइ है। जा प्रेम में प्रेमी बिछुरि जाँइ हैं एवं कछु निद्रा भोजन कोहू अवकास मिलि जाइ है, वा प्रेम कूँ पूर्नतम प्रेमावेस कैसे कह्यौ जाइ सकै है?

तहाँ न कछु श्रम तम न गम बिरह भ्रम मान लवलेस प्रवेस न प्रसंगी। –श्रीगुरुदेवजू

उमड़यौ सागर बिरह को रोम-रोम झरनीर।

× × ×

मिलत मिलत में चाह अति मिले मिले अकुलाहिं।
सुपन किधों सतभाव यह सोचत हैं मनमाँहि॥–श्रीललितकिसोरीदेवजू

एक ये हू बात समझिबे की है कि अति बिसुद्धतम सर्वोपरि प्रेम में न तो रूप-गुन ही कारन होइ है, न ईस्वरता ही। जिनको प्रेम, सहज स्वभाव ही प्रेम पैं

रीझकै होइ है, बिनको ही बिसुद्ध प्रेम मानौं जाइ है। या प्रेम के स्वरूप कूँ दिखाते भये साक्षात श्रीस्वामीजी महाराज ने ही सर्वप्रथम मूल "श्रीकेलिमालजू" के पदन में बर्नन कीनौ है कि सर्वोपरि निज-प्रेमरस की यह सहज जोरी एकमात्र रसरंग की ही-स्वरूप-घन-दामिनिवत सतत संग रहिबेवारी, नित्य-बिहार-परायन ऐसी है, जो अनादिकाल ते एकरस खेल रही ही, और खेलि रही है, एवं खेलती रहेगी। और-और जोरीन की नाईं ये जोरी कबहुँ नाँइ टरै है, यह इनको अकाट्य लक्षन है। जिनको श्री अंग-अंग अति सुघरता, चतुरता एवं अद्भुत सुन्दरता-उज्ज्वलता ते भरचौ-पूरचौ सतत सुशोभित रहै है।

दोऊन को एक समान तो श्री अंग वैस, एवं परस्पर की प्रेम-रसभरी एक समान रहसि-रस-बहसे हैं।

गुन तो कछु बरनौं पै रूप की निकाई न जात कही।
अंग अंग माधुरी मनोहर कापै परत लही॥
करत केलि भुज कंठ मेलि भेलि सुरत सिंधु सुख देत लाल ललना प्रेम उमही।
श्रीबिहारिनदास पिय रसिक सिरोमनि आदि मध्य अवसान एकरस दंपति सुरति निबही॥

× × ×

माईरी सहज गोरी प्रगट भई जु रंग की गौर-स्याम घन-दामिनी जैसे।
प्रथम हू हुती अबहूँ आगे हूँ रहि हैं न टरि हैं तैसे॥
अंग अंग की उजराई सुघराई सुन्दरता ऐसे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी समवैस वैसे॥

सहज जोरी कौ यहै सुभाउ, आदि मध्य अन्त ठहराउ। -श्रीपीतांबरदेवजू

सहज जोरी अनादिकाल ते सतत एकरस रहिबेवारी वे ही है सकैं हैं, जिनके तन-मन-प्रान रोम-रोम एकमात्र महामधुर-सार के हू सार रस के हैं, क्योंकि महा-मधुर सार रस ही अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम कौ निज-स्वरूप है। और-और समस्त रसन में कछु न कछु ईश्वरता एवं स्थूल रसन की मिलौनी होइबे के कारन, वे रस महामधुर रस के सार स्वरूप नाँइ है सकैं हैं। याही ते ये रस एकमात्र नव-योवन के जौर में बिभोर छिन-छिन नव-नवाइमान, उन्नत नवकिसोर वैस सों प्रथम समागम एकान्त रस-बिलास निज-महल श्रीवृन्दावन में ही दृढ़ अनन्य भाव ते सुसोभित रहै है। याही रस के अनन्य विलासी बिहारी-बिहारिनीजू कूँ श्रीस्वामीजी महाराज ने सहज जोरी वर्नन कीनौ है।

जैसे-जैसे दोऊ श्रीजुगल की रुचि होइ है, तैसे-तैसे ही ये परस्पर खेलें हैं। अनंत-अनंग रंग-भाव-भंगिन ते भरी दृष्टि, महामधुर मुसिक्यान, बतरान, हास-परिहास अलौकिक राग-रागनीन द्वारा गान, तान, नृत्य-संगीत एवं कुंज-कुंज प्रति डोलन आदि अनेक प्रकार की महामाधुरी रंग सागर में ये दोऊ सतत झागे रहें हैं। चौथी तुक में आप स्पष्ट बोले कि—मेरी स्यामा-कुंजबिहार के ही दृढ़ अनन्य बिहारी ठाकुर समस्त रीति-भाँति सों, एकमात्र अति बिसुद्ध सर्वोपरि बिहार रस में ही निरंतर ऐसो पग्यौ रहै है, जोकि और-और रस एवं तत्वन कूँ कबहूँ स्पर्स हू नाँइ करै है।

रुचि के प्रकास परस्पर खेलन लागे।
राग रागनी अलौकिक उपजत नृत्य संगीत अलग लाग लागे॥
राग ही में रँग रह्यौ रंग के समुद्र में ये दोऊ झागे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पै रँग रह्यौ रस ही में पागे॥

याही प्रकार प्रेम-रस रंग-सागर में दोऊन कूँ खेलते भये सतत देखते रहें, तबहीं हम अपने जन्म कूँ सुफल मानें हैं। एकमात्र श्रीलालजू के प्रान-मन-भाँवती तो श्रीप्यारीजू, तथा प्यारीजू को प्रान-भाँवतो प्रान प्यारो लाल, ऐसे नित्य-किसोर बैस जोरी कूँ ही हम जानें हैं, और इनके ही हितरूपी ताना में सतत या भाँति तने रहें हैं कि छिन मात्र के ताईं हू हमारो मन इनसों इत-उत माऊँ नाँइ जाइ है, और पल मात्र हूँ हम इनते नाँइ टरें हैं। हमारे मनके राजा स्वरूप येही श्रीस्यामा-कुंजबिहारी हैं। मेरो मन हू इनके सम्यक प्रकार ऐसे आधीन रहै है, जैसे राजा के आधीन प्रजा।

ऐसे ही देखत रहौं जनम सुफल करि मानौं।
प्यारे की भाँवती भाँवतीजू के प्रान प्यारे युगलकिसोरहिं जानौं॥
छिन न टरौं पल होंहु न इत उत रहौं एक तानौं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी मन रानौं॥

फिर आपने चौथे पद में बर्नन कीन्यौ कि अति अद्भुत सर्वोपरि निज प्रेम-रस ने या जोरी कूँ ऐसों अति बिचित्र बनाइ दीन्यौ है, जिनकूँ देखत खेम, तन, मन, प्रान, रोम-रोम सम्यक प्रकार हरन होइ, दृष्टि नेकहू इत-उत माऊँ नाँइ टरै है, और ये मनमें आवै है कि मन, क्रम, बचन समस्त रीति-भाँति सों इन्हीं के संग ऐसो भर जाऊँ, जैसे निरन्तर घन-दामिनी एक संग रहिकें, और काहू कूँ बरन करिबे के ताईं बिछुरै ही नाँइ है। यदि कोऊ ये प्रस्न करै कि आप तो सदा संग रहोगे, किन्तु यह जोरी काहू कारन ते परस्पर बिछुरि गईं तौ, कैसे संग रहि सकोगे?

ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि—मेरे प्राननाथ श्रीस्यामा-कुंजबिहारी कबहूँ, काहू कारन ते छिन-मात्र के ताईं नेकहू नाँइ बिछुरि सकें हैं।

जोरी बिचित्र बनाई री माई काहू मन के हरन कौं।
चितवत दृष्टि टरत नहिं इतउत मन बच क्रम याही संग भरन कौं॥
ज्यौं घन दामिनि संग रहत नित बिछुरत नाहिन और बरन कौं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी न टरन कौं॥

× × ×

यह जोरी अबिचल श्रीवृन्दाबन नाँहि आन सों काज।—श्रीबीठलबिपुलदेवजू

या रस देस के प्रसंग में श्रीगुरुदेवजू ने प्रथम चौबोला बर्नन करते भये कह्यौ कि—श्रीस्वामीजू एवं श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू ने या अद्भुत प्रेम कूँ जगत में प्रकास कीनौ है। जामें एकमात्र नव-निकुंज-केलि-बिलास या प्रकार को है, जोकि समस्त श्रीवृन्दावनबासी उपासकन कूँ अतिसुख देबेवारो है। निज-महल दरीची में रसिक-रस-रास श्रीस्वामिनीलाल की सखी समाज निरंतर खवासी करैं हैं, तथा प्रेम के दाव पै दाव दिवाइ-दिवाइकें दोऊन कूँ ऐसे महारंग सागर में खिलावैं हैं, जैसे कोई अति-उन्मत्तन की तो होइ बिसाल मजलिस, फिर बिनको होइ परस्पर हास-परिहासमय अद्भुत रंग, जा रंगसागर में सतत दोऊ इतेक झागे रहें हैं, कि बिनकी वा रंग में समाधी ही लगि गई है। ऐसी अद्भुत रसमय समाधी में खान-पान की सुधि हो ही कैसे सकै है। संध्या समय को गौरी राग गाते-गाते जिनको बिभास को समय ह्वै जाइ है। ऐसे महाबिचित्र तमासा स्वरूप आनंद-बिग्रह श्रीजुगल या रंग में सतत खेलते रहें हैं। बिनके श्रीचरन-कमलन के अति निकट रहि, देखि-देखि, सपरस करि-करि, इतेक अगाध आनंद को हुलास मेरे मनमें है रह्यौ है, जाकूँ मैं काहू भाँति बर्नन करि ही नाँइ सकूँ हूँ। ताही समय हमारी प्रान-जीवनधन प्यारीजू श्रीमुखकमल कूँ बिकसित करि, हँसती भईं, मोते बोलीं—हे सखि! या रस के अतिरिक्त यावत रस हमें ऐसे नीरस लगै है, जैसे कोई एक तो होइ पसु, फिर होइ अति प्यासो, ताहू पै बाकूँ धूप में बाँधि दियो जाय, जैसे वो अति रुक्षता को स्वरूप ह्वै जाइ है, तैसे ही हमने या रस के बिना सब रस रूखे लगैं हैं।

या रस बिनु सब निरस निरासा ज्यौं पसु प्यासो घाम।

फिर श्रीगुरुदेवजू याही चौबोला में श्रीजुगल को रसमय स्वरूप बताते भये बोले कि—यह जोरी एकमात्र प्रेम-काम-रस में निरंतर बिबस रहै है, जिनके संग-संग

चर्या करिबेवारी सुकुमार-सिरोमनि सहचरी सब समय अति सावधान रहि, मनके हू मर्म कूँ पिछानि, स्वाँसन के हू स्वाँसन कूँ समझि, रुख अनुसार याही रस-रीति सों सतत लाड़-लड़ावें हैं।

मेरे लाल प्रिया की भाँवती।
रहति कुंज सुख पुंज रहसि रति मधुर-मधुर सुर गावती ॥
अपने कर कोमल अंग-अंग प्रति भूषन बसन बनावती।
नैन श्रवन मन दिये रहति उत छिनक न छबि बिसरावती ॥
अति प्रबीन सब भाइ सहज सखी मध्य सुरस उपजावती।
श्रीबिहारनदास बलि बैस किसोरनि आपुन रीझ रिझावती ॥

× × ×

कामकेलि रस-रीति कही हरिदास है।
गौर-स्याम सुखरासि यही निज आस है॥
श्रीहरिदास से श्रीहरिदासहि गाइ हौं।
कामकेलि रस-रीति यहै दृढ़ ध्याइ हौं॥–श्रीललितकिशोरीदेवजू

× × ×

प्रथम सुमरि श्रीगुरु हरिदासा। बिपुल बिनोदनि प्रेम प्रकासा ॥
सबै सुखद वृन्दावन बासा। नव निकुंज कल केलि विलासा ॥
सखी समाज रसिक रस रासा। महल दरू में खास खवासा ॥
खेलत परा प्रेम को पासा। मजलिस भली परस्पर हासा ॥
अंग-अंग सौरभ सहज सुवासा। मत्त रहत पीवत सुर स्वासा ॥
खान पान गुन ग्रहै न ग्रासा। आनंद बिग्रह बड़ा तमासा ॥
गावत गौरी राग बिभासा। नहिं जनियत अथवत सु प्रकासा ॥
चरन कमल निजु निकट निवासा। दरसत परसत हिये हुलासा ॥
हँसि बोली मुख कमल बिकासा। या रस बिनु सब निरस निरासा ॥
श्रीबिहारिनदासहिं दई दिलासा। लाड़ लड़ावो छाँडि लिवासा ॥
जाँचत जगत रती पल मासा। दीना खोलि खजाना खासा ॥
जिनके मन आनंद आभासा। ते सहज सिद्ध भये जगत उदासा ॥
आगे आस न पीछे साँसा। मन संदेहु दुहुँ दिसि नासा ॥
निकसि गई सब दुरी दुरासा। कौन फिरै लीनें कर कांसा ॥

भोजन जूठ उतीरन बासा। माया तरन सहज अनियासा॥
रसिक अनन्य बड़ा घर बासा। जिहिं रस बिसरी छुधा पिपासा॥
निस्पृह भुव मंडल आकासा। सेवत इष्ट अनन्य उपासा॥
सावधान मन मगन प्रवीना। करत केलि निसदिन रँगभीना॥
तृष्णा तरल तमाल लाल के। बाढ़त नव नव बेलि बाल के॥
कुसुमित ईषद हास्य परस्पर। अँगुरी दल फल परसि उरजकर॥
इनके मल मैथुन कछु नाँही। ये दिव्य देह बिहरत बन माँही॥
काम प्रेम रस बिबस बिहारी। सावधान सहचरि सुकुमारी॥
बिपुल बिनोद मोद मनुहारी। बिनु ब्रीडा क्रीडा बिस्तारी॥
बिहरत भूमि व्योम उजियारी। इन बिनु बिस्व अमावस कारी॥
कागद मसि लिखि लीक निवारी। बहु मत रत पंडित पटवारी॥
महातम मिश्रित अरु रुजिगारी। जना जाति ब्रंचक जंजारी॥
कहि सुनि समझि न बस्तु बिचारी। सुद्ध सरूप न ठीक सँभारी॥
कोऊ साधारन कोऊ बिभचारी। कोऊ अनन्य धरैं ब्रत भारी॥
जैसे दारु द्रवै करि आरी। खंड खंड पाखंड बिदारी॥
राजबँस रसराज संभारी। सुख बरसत श्रीहरिदास दुलारी॥
श्रीवृन्दावन रस सिंधु अपारी। सकल धाम धामी अवतारी॥
श्रीबिपुल बिनोदनि पर बलिहारी। श्रीबिहारी-बिहारिनदास तुम्हारी॥

सब रसन को राजरस या बिनु न हियो सिराय।
देखि यह सुख जियें हम सब सुख दियें समुदाय॥

× × ×

स्यामा को आधार राजरस तौ कह्यौ।
सब रस को रस सार बिहार बिसद गह्यौ॥ —श्रीगुरुदेवजू

श्रृङ्गार-रस-स्वरूपकूँ भलीभाँति निर्नय करते भये श्रीस्वामीललितकिसोरीदेवजू ने बर्नन कीन्यौ है कि :—

षोडस बिधि श्रृंगार की कबि सो बर्नत ताहि।
ब्रज सुन्दरि गोपिन रमैं किधों बखानत आहि॥
इक नाइक बहु प्रीति जहँ एक श्रृंगार रस नाँहि।
इक चकोर चंदा बहुत निरखि सकै कहि काहि॥

कुँजबिहारिन बदन बिधु अगनित चंद्र प्रकास।
बरसत सुधा समूह रस पियं चकोर बहु प्यास॥
एकहि चंद चकोर इक दृढ़ पतिब्रत बिचार।
कुँजबिहारी एक रस कुँजबिहारिन य़ार॥
रस शृंगार कहें एक रस दूजै दरसे नाँहि।
तन मन प्रानन एकता हम सुमिरत हैं ताहि॥
रस शृंगार हरिदास को गौर स्याम एक प्रान।
तन मन अरुझे कामरस पोषत रसिक निधान॥
इक रस कहियत ताहि को जहँ दूजो रस नहिं होइ।
काम प्रेम जहँ एक रस तन मन प्रान समोइ॥
इक रस बिनु जे रस कहैं सो रस नीरस जान।
श्रीहरिदासी एक रस कामकेलि रस खान॥
कोऊ बरने ब्रजराज को कोऊ रास बिलास।
अनंग रंग हरिदास के एक सेज की आस॥
यहि रस बिलसत प्रान दोऊ नव जोवन रति जोर।
काम प्रेम रस में रसिक पइये ओर न छोर॥
आदि अंत जाको नहीं गौर स्याम रति काम।
बहु बिधि केलि बिहार फिर आनंद लै बिश्राम॥
इक नायक बहु नायिका सबै कामिनी काम।
भाव काम ताकों कहत ब्रज-बधु पोषत स्याम॥
कुँजबिहारी कुँज में बिहरत सेज बिहार।
कुँजबिहारिन लाड़िली करि राखी उर हार॥
प्रथम समागम रैन दिन अंगनि अंग समाहिं।
अनंग रूप बाढ़त रहै निरखत नैंन सिराहिं॥
बसन सँवारत भूषन सजैं गावत जुगल बिहार।
कामकेलि बिलसत रहौ मम जीवन प्रान अधार॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

प्रथम समागम स्याम दिनहि दिन दूलह दुलहिन स्यामा। –श्रीगुरुदेवजू

उपरोक्त यावत प्रसंगन ते भलीभाँति निश्चय भयौ कि–सर्वोपरि अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम सागर स्वरूप-श्रीनित्य-बिहारिनीजू के रूप-रस की गहराई सों साक्षात

श्रीनित्य-बिहारी ठाकुर ही जब घाट नाँइ लगि सक्यौ, तब और-औरन की तो बात ही कौन कहि सकै है ?

ऐसे अद्भुत प्रेम-बिलासी श्रीनित्य-बिहारिनी-नित्य-बिहारीजू के नित्य-बिहार-रसमय लाड़-लड़ाइबे की अनन्य-उपासना, इन माया-मुग्ध जीवन कूँ सहज कृपा बल सों ही दैबे के ताईं, साक्षात श्रीप्रेम-सहेलीजू या धराधाम पै अनन्य-नृपति श्रीस्वामीजी स्वरूप सों प्रगट होय आपने कथन कियो कि—जैसे उत्तम कुल की पतिव्रता स्त्री सम्यक प्रकार अपने पति के आधीन रहै है, तैसे ही तो तुम अपने कूँ श्रीबिहारीजी महाराज के आधीन समझो, और बिनके ही मन-अनुसार लाड़-लड़ाइबे के ताईं पींजरा के पंछी की नाईं फड़-फड़ाते रहो। बिनकी ही कृपा ते सब कछु होइगो, या बात कूँ दृढ़ बिस्वास राखो। जोभी जन श्रीनित्य-बिहारी-बिहारिनीजू सों अनन्य हित करैं हैं, बिनसों ही वो अवश्य हित करैं हैं। कबहुँ-कबहुँ तुम्हारो मन इत-उत माऊँ चल्यौ जाइ है, ताकूँ अनेक प्रकार सों समझाइ, बिनके ही प्रेम, रस, लाड़ एवं बल-भरोसो-संबंध में लाइकें राखो। क्योंकि ये भजन एकमात्र मानव देह में ही होइ सकै है। जागतिक धन कूँ तौ अपनी मौत के बराबर समझो। यद्यपि जीव माया के बसीभूत होइबे के कारन, अपनो बिगार करिबे के ताईं, स्वाभाविक होड़ बदि, कमर कसिकें लगि रहें हैं, याते आप अति उदारता-पूर्वक करुना में बिबस होइ, श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये कहें हैं कि—आपहू ऐसे ही होड़ बदिकें या जीव कूँ सुधारिबे में कृपा करिकें सतत लगे रहो। फिर आश्रित जनन ते कहिबे लगे कि—हे भाई ! तुम्हें या समय बहुत ही अद्भुत सुन्दर मौकौ मिल्यौ है, श्रीबिहारीजी महाराज तो कमर कसिकें तुम्हारे सुधारिबे में लगे भये हैं। मैं निज-महल ते तुम्हें लैबे के ताईं आयो हूँ, तुमने हू हमारी दीक्षा लै लीनी है। अब तुमने मायिक-जगत के सुख-संबंध ते लैकें, यावत परमार्थ-सुख-संबंधन ताऊँ, और काहू के दर-दर पै न डोलिकें, एकमात्र हमारी सर्वोपरि समाधी रस के ही दृढ़ अनन्य है जावो। क्योंकि नित्य निरंतर हित स्वरूप एवं हित कूँ भलीभाँति निबाहिबेवारे सर्वोपरि सुखदाता कमलनैंन श्रीबिहारीजी महाराज ही हैं। इतेक पै हू यदि तुम्हारो मन कलुषित होइबे के कारन श्रीबिहारीजी महाराज में नाँइ लगतो होइ, तो या समाधी रस के ही रसिक अनन्यन के सत्संग सों दृढ़तापूर्वक हित करो। जासों तुम्हारे मन के समस्त कलमष दूर होइ, श्रीबिहारीजी महाराज तुम्हें प्रानन हू ते प्यारे लगन लगेंगे। ब्रह्म-लोक, शिव-लोक

आदि समस्त लोक, श्रीबिहारीजी महाराज की इच्छा के ऐसे आधीन हैं, जैसे तिनका कूँ पवन जितमें चाहै उतमें उड़ाय लै जाइ है। याते स्पष्ट है कि बिना श्रीबिहारीजी महाराज के श्रीचरन-कमलन में लगे तुम्हारो सर्वोपरि जस कैसे हू नाँइ है सकै है।

समुद्र स्वरूप संसार में अनेक प्रकार के जीव, लोभ-मोह के फंदा में सब फँसि रहे हैं। श्रीबिहारीजी महाराज के चरन-कमलन को सहारा लिये बिना कैसे हू नाँइ निकसि सकै हैं। याते तुम्हें श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को नाम लैबे में आलस तो कबहुँ करनो ही नाँइ चहिये। समय-असमय को कछु बिचार नाँइ करिबेवारो कराल-काल अपनो बान साँधे तुम्हारे कंधा पै ही सतत बैठ्यो रहै है, वाते तुम्हारे धन स्त्री आदि कोऊ नाँइ बचाइ सकै हैं। इतेक पै हू तुम्हारी लगन मायिक पदार्थन माऊँ ऐसी बिचित्र लग रही है कि, जो अद्‌भुत सुखदाता श्रीबिहारीजी महाराज के चरन-कमलन कूँ तुम पूछो तक नाँइ हो। तुमसों मैं स्पष्ट कहूँ हूँ कि—बिन श्रीचरन-कमलन में लगे बिना चिरजीवी कैसे हू नाँइ है सकोगे। बिन श्रीचरन-कमलन में लगिबे के ताईं एकमात्र करुवा-गूदरी की रहनी सों मन लगाइकें, प्रीति करनी चहिये। ब्रज वृन्दावन की बीथिन में या भाव सों नित सोहनी लगावो, कि हमारी समाधी रस के दृढ़ अनन्य महत-पुरुष एवं साक्षात श्रीबिहारी-बिहारिनीजू यहाँ बिचरें हैं। बन-उपबन ते गुंजा लाइकें, श्रीबिहारीजी महाराज को माला पहिरावो। समाधी रस के ही उपासकन के संग रहो, और बिनके श्रीमुख सों समाधी रस को सुनि-सुनिकें पियो करो। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सों सदाकाल ऐसे चित लगाइकें राखो, जैसे काहू के माथा पै दूध की दोहनी धरी होइ, और वो अपनी संग-साथिन तें बात करते भये हू वाको मन वाही में लग्यो रहै है।

श्रीबिहारीजी महाराज ने संसार कूँ हूँ या प्रकार की बिचित्रता सों रचना कीनी है, कि जामें सुख को कहूँ न बीज है, न बेल है। तौहू सुख के ताईं जीव ऐसे दौरि रहे हैं, जैसे बालुका में पानी समझि, मृग भाग्यौ जाइ है। श्रीहरि ऐसी झूठी चीज कूँ साँचीवत दिखाइ रहे हैं, और रात-दिन बुनते-उधेरते हू जाइ हैं, तौहू जीव वाही में सनि रहे हैं।

साँची प्रीति करिबेवारो जगत में एक हू जीव नाँइ मिलै है, क्योंकि अपनी-अपनी प्रकृति के सब बसीभूत है रहे हैं। याही जगत में निज कृपा-पात्र भाग्यवान जीवन कूँ साँची प्रीति करिबेवारे श्रीबिहारीजी महाराज हू मिल जाइ हैं। या सों मैं तुमते कहूँ हूँ कि—हे भाई! और जगत के जीव—श्रीबिहारीजी महाराज को भूलैं तो

भलें भूल जाँइ, किन्तु तुमने हमारे संबंध की दीक्षा ग्रहन करि, कंठी बँधाइ लीनी है, याते तुम्हें कदापि नाँइ भूलनो चहिये। जो स्त्री अपने पति को छाँड़िकें औरन सों प्रेम करि लेइ है, वाकी बड़ी फजीती होय है। श्रीबिहारीजी महाराज हू या बात कूँ कहें हैं कि वे ही जन सम्यक प्रकार मोते बिमुख हैं, जिनने दूसरेन में श्रद्धा प्रेम करि लीनी। याते तुम जब तक जीवो साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज को ही भजन करो। साँसारिक कार्यन में तो केवल दो-चार दिन की वाह-वाही है, जासों अपनों कछु काम बनैगो ही नाँइ।

तदुपरांत आपने समाधी रस के ही अनन्य होइबे की आज्ञा क्यों कीनी—ताकूँ स्पष्ट करते भये कह्यौ कि—हे भाई! सर्वोपरि हमारी श्रीनित्य-बिहारिनीजू को अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-सागर-स्वरूप ऐसो है, जामें एकमात्र रूप-रस की ही गहराई—अति अगाध या प्रकार की है कि आज ताऊँ जासों कोऊ घाट लगि ही नाँइ सक्यौ। जिन लोगन ने प्रेम-सागर कूँ जानिबे को दावा कीन्यौ है, बिनको यह कहिबो एकमात्र बेकार है। क्योंकि जितेक प्रेम के बर्नन करिबेवारे भये, ईश्वरतारूपी तत्व कूँ काहू-न काहू प्रकार सों मिलाइ के ही प्रेम कूँ बर्नन कीन्यौ है। बिसुद्ध पूर्नतम सर्वोपरि निज-प्रेम-देस ताऊँ काहू को लक्ष्य गयौ ही नाँइ, यातें तुम इत-उत माऊँ कहूँ नाँइ देखिकें, एकमात्र श्रीनित्य-बिहारी ठाकुर के स्वरूप कूँ भली प्रकार समझो, जाकी नित्य-बिहारिनी-रूप-रस-सागर में समाधी लगि रही है।

अर्थात श्रीस्वामिनी-नित्य-बिहारिनीजू को ही लाल-अनादि-काल सों मन, क्रम, बचन, रोम-रोम ते ऐसो दृढ़ अनन्य है रह्यौ है, जोकि अनमिष अँखियान ते प्यारीजू कों निहारते-निहारते तो निहारिबो बोध नाँइ करि रह्यौ है, बिलसते-बिलसते-बिलसिबो बोध नाँइ करि रह्यौ है, रात-दिन की जाकूँ सुधि ही नाँइ होइ है। तौहू हमारी प्रान-प्यारी श्रीनित्य-बिहारिनीजू के प्रेम, रूप-रस-सागर को जिन्हें ओर-छोर हू नाँइ मिलै है, ऐसे बाँकेबिहारी ठाकुर के अति अद्‌भुत स्वरूप कूँ समझिबे ते ही बिसुद्ध प्रेम को स्वरूप तुम्हारे हृदय में आवैगो।

ऐसो अति-अद्‌भुत-प्रेम-बिहार कूँ—प्रेमावतारी अनन्यनृपति-श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरन-कमलन को अनन्य आश्रित होइ, निजधाम श्रीवृन्दावन में अखंड बास करिबे ते ही सहज प्राप्त करि सकोगे।

निज रस रीति प्रतीति बिपिन बसि तौ लहै।
रसिक अनन्य नृपति को संग समझि गहै॥

गह्यौ संग अनन्य नृपति कौ रंग लाग्यौ जब हिये।
भये साधन सिद्ध तिनके तिहीं छिन अनहीं किये॥

× × ×

जै श्रीवृन्दावन नव निकुँज में संतत सहज बिराजत जोरी।
अति अगाध महिमा रस जिनको सो पैयत इक कृपा किसोरी॥
सुक नारद से भक्त मुक्त सनकादिक सुहृदन हूँ ते चोरी।
श्रीबिहारिनदास जस कहाँ लौ बखानै रसना सहस तऊ मति थोरी॥

× × ×

यह रस रसिकन कियो निदान।
यह रस सुनहु तजि अभिमान॥
अभिमान तजि भजि सुनहु प्रानी जन्म जन्म के श्रम मिटैं।
प्रगट ललिता रूप श्रीहरिदास निज नामै रटै॥

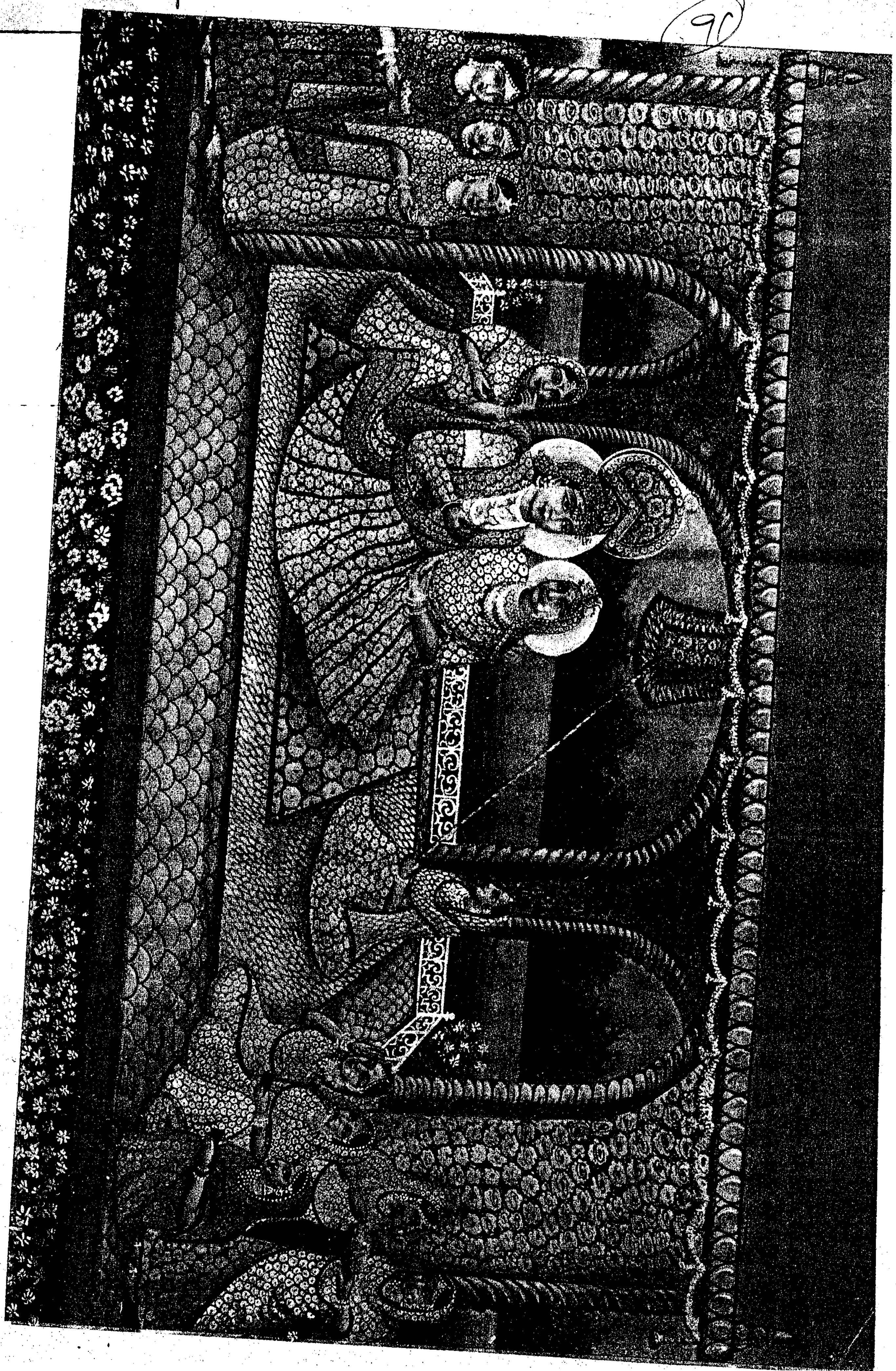
× × ×

श्रीबिहारी बिहारिन को जस गावत रीझहिं देत जु सर्वस स्वामी।
अमनेक अनन्यन को धन धर्म मर्म न जानत कर्मठ कामी॥
श्रीबिहारिनदास बिस्वास बिना ललचात लजात लहै नहिं तामी।
और कहा बरनें बपुरा कबि बादि बकैं श्रम कै मति भ्रामी॥

रसिक सिरोमनि कृपा को जानों यहै उपाव।
कुँजबिहारिन लाल के उमँगि उमँगि गुन गाव॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

श्रीबिहारीजी से बिहारीजी, श्रीस्वामीजी से स्वामीजी।
औरनि तें आँखि मूँदि इनहिं निहारी जी॥ –श्रीललितमोहनीदेवजू





उज्ज्वल रस के पद

★

* राग कान्हरौ *

माईरी सहज जोरी प्रगट भई जु रंग की गौर-स्याम घन-दामिनि जैसें। प्रथमहूँ हुती अबहूँ आगें हूँ रहि हैं न टरि हैं तैसें ।। अंग अंग की उजराई सुघराई चतुराई सुंदरता ऐसें। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी समवैस वैसें ।।१।।

रुचि के प्रकास परस्पर खेलन लागे। राग-रागिनी अलौकिक उपजत नृत्य संगीत अलग लाग लागे।। रागु ही में रंगु रह्यौ रंग के समुद्र में दोउ झागे। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पै रंगु रह्यौ रस ही में पागे ।।२।।

ऐसेंही देखत रहों जनम सुफल करि मानों। प्यारे की भाँवती भाँवतीजू के प्रान प्यारे जुगलकिसोरहि जानों ।। छिन न टरों पल होंहु न इत-उत रहों एक तानों। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी मन रानों ।।३।।

जोरी बिचित्र बनाई री माई काहू मन के हरन कौं। चितवत दृष्टि टरत नहिं इत-उत मन-बच-क्रम याही संग भरन कौं।। ज्यौं घन-दामिनि संग रहत नित बिछुरत नाँहिन और बरन कौं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी न टरन कौं।।४।।

इत उत काहे कों सिधारति आँखिन आगें हीं तू आव। प्रीति कौ हित हौं तौ तेरौ जानौं ऐसौ ही राखि सुभाव ।। अमृत से बँचन जिय की प्रकृति सों मिलि ऐसोई दै दाव। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी प्रीति कौ मंगल गाव ।।५।।

प्यारी जू जैसें तेरी आँखिन में हौं अपनपौ देखत हौं ऐसें तुम देखति हौ किधौं नाँही। हौं तोसों कहौं प्यारे आँखि मूँदि रहों तो लाल

निकसि कहाँ जाँही ।। मोकों निकसिबे कौं ठौर बतावौ साँची कहौ बलि जाँउ लागों पाँही । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तुमहि देख्यौ चाहत और सुख लागत काँही ।।६।।

प्यारी तेरो बदन अमृत की पंक तामें बींधे नैन द्वै । चित चल्यौ काढन कों बिकुच संधि संपुट में रह्यौ भ्वै ।। बहुत उपाइ आहिरी प्यारी पै न करत स्वै । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत ऐसें ही रहौ ह्वै ।।७।।

आवत जात बजावत नूपुर । मेरौ तेरौ न्याव दई के आगें जो कछु करौ सो हमारे सिर ऊपर ।। निपट निकट मवास ह्वै रही प्यारी पैंड दूपर। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी विलसौ निहचल धूपर ।।८

दृष्टि चेप वर फंदा मन पिंजरा राख्यौ लै पंछी बिहारी । [1]चुनों सुभाव प्रेम-जल अंग श्रवत पीवत न अघात रहे मुख निहारी ।। प्यारी प्यारी रटत रहत छिन ही छिन याकें और न कछू हियारी । सुनि हरिदास पंछी नाना रंग देखत ही देखत प्यारी जू न हारी ।।९।।

भूलै भूलै हूँ मान न करि री प्यारी तेरी भौंहें मैली देखत प्रान न रहत तन । ज्यौं न्यौछावर करौं प्यारी तो पर काहे तें तू मूकी कहत स्याम घन ।। तोहि ऐसें देखत मोहि अब कल कैसें होइ जू प्राँनधन । सुनि श्री हरिदास काहे न कहत यासों छाँड़िव छाँडि अपनोपन ।।१०।।

बात तौ कहत कहि गई अब कठिन परी बिहारी । प्राँन तौ नाँहिने तन अस्तबिस्त भये कहैं कहा प्यारी ।। भाँवते की प्रकृति देखत जो श्रम भयौ बहुत हियारी । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी बाहु सों बाहु मिलाय रहे मुख निहारी ।।११।।

कुंजबिहारी हौं तेरी बलाइ लेउँ नीके हो गावत । राग रागिनीन के जूथ उपजावत ।। तैसीयै तैसी मिली जोरी प्रिया जू को मुख देखत चंद्र लजावत । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कौ नृत्य देखत काहि न भावत ।।१२

१ चुगो

एक समें एकांत बन में करत सिंगार परस्पर दोई। वे उनके वे उनके प्रतिबिंबनि देखत रहत परस्पर भोई ।। जैसे नीके आजु बनें ऐसे कबहूँ न बनें आरसी सब झूँठी परी कैसीयोव कोई। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि परस्पर प्रीति नोई ।।१३।।

राधे चलिरी हरि बोलत कोकिला अलापत सुर देत पंछी राग बन्यौ। जहाँ मोर काछ बाँधे नृत्य करत मेघ मृदंग बजावत बंधान गन्यौ ।। प्रकृति की कोऊ नाँहीं यातें सुरति के उनमान गहि हौं आई मैं जन्यौ। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की अटपटी बानि औरै कहत कछू औरै भन्यौ ।।१४।।

तेरौ मग जोवत लाल बिहारी। तेरी समाधि अजहूँ नहीं छूटत चाहत नाहिनें नेंकु निहारी।। औचक आय द्वै कर सों मूँदे नैंन अरबराय उठी चिहारी। श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा ढूँढत बनमें पाई प्रिया दिहारी ।।१५

मानि तू अब चलिरी एक संग रह्यौ कीजे। तौ कीजै जो बिन देखैं जीजै ।। ये स्याम घन तुम दामिनी प्रेम पुञ्ज बरषा रस पीजे। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों हिल मिलि रँग लीजे ।।१६।।

तू रिस छाड़ि री राधे-राधे। ज्यौं ज्यौं तोकों गहरु त्यौं त्यौं मोकों बिथा री साधे-साधे ।। प्राननि कों पोषत है री तेरे बचन सुनियत आधे-आधे। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी प्रीति बाँधे बाँधे ।।१७।।

आजु त्रन टूटन है री ललित त्रिभंगी पर। चरन-चरन पर मुरली अधर धरैं चितवनि बंक छवीली भुव पर।। चलहु न बेगि राधिका पिय पै जो भयौ चाहत हौ सर्वोपरि। श्री हरिदास के स्वामी कौ समयौ अब नीकौ बन्यौ हिलि मिलि केलि अटल रति भई धूपर।।१८।।

दिन डफ ताल बजावत गावत भरत परस्पर छिन-छिन होरी। अति सुकुमार बदन श्रम बरषत भले मिले रसिक किसोर किसोरी।। बातनि बतबतात रागु रँग रमि रह्यौ इत उत चाह चलत तकि खोरी। सुनि श्रीहरिदास तमाल स्याम सों लता लपटि कंचन की थोरी ।।१९।।

द्वैलर मोतिन की एक पुँजा पोति कौ सादा नेत्रनि दृष्टि लागौ जिनि मेरी। हाथनि चारि-चारि चूरी पांइन इकसार चूरा चौपहलू इकटक रहे हरि हेरी ॥ एक मरगजी सारी तन तें कंचुकी न्यारी अरु अँचरा की बाँई गति मोरि उरसनि फेरी। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी या रस ही बस भये हरे-हरे सरकनि नेरी ॥२०॥

जोवन रंग रंगीली सोनें से गात ढरारे नैंना कंठ पोति मखतूली। अंग-अंग अनंग झलकत सोहत कानन बीरैं सोभा देत देखत ही बनै जोन्ह में जोन्ह सी फूली ॥ तनसुख सारी लाही अँगिया अतलस अतरौटा छवि चारि-चारि चूरी पहुँचनि पहुँची खमकि बनी नकफूल जेब मुखबीरा चौंका कौंधैं संभ्रम भूली। ऐसी नित्यबिहारिनि श्रीबिहारीलाल संग अति आधीन आतुर लटपटात ज्यौं तरु तमाल कुंजमहल श्रीहरिदासी जोरी सुरति हिंडोरैं झूली ॥२१॥

राधे दुलारी मान तजि। प्राँन पायौ जात है री मेरौ सजि ॥ अपनों हाथ मेरे माथैं धरि अभैदान दै अजि। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत री प्यारी रंग रुचि सों बलि लजि ॥२२॥

गुन की बात राधे तेरे आगैं को जानैं जो जानैं सो कछु उनहारि। नृत्य गीत ताल भेदनि के बिभेद जानैं कहूँ जितेक ते देखे झारि ॥ तत्व सुद्ध स्वरूप रेख परमान जे बिज्ञ सुघर ते पचे भारि। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी नैंक तुम्हारी प्रकृति के अंग-अंग और गुनी परे हारि ॥२३॥

सुघर भये हो बिहारी याही छाँह तें। जे जे गटी सुघर सुर जानपनैं की ते ते याही बाँह तें ॥ हुते तौ अधिक बड़े सबही तैं पै इनकी कस न खटात याँह तें। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी जकि रहे चाँह तें ॥२४॥

राधा रसिक कुंजबिहारी कहत जु हौं न कहूँ गयौ सुनि सुनि राधे तेरी सौं। मोहि न पत्याहु तो संग हरिदासी हुती पूछि देखि भद्र

कहि धौं कहा भयौ मेरी सौं ।। प्यारी तोहि गठोंधन प्रतीति छाँडि छिया जानदै इतनी व एरी सौं । गहि लपटाइ रहे छैल दोउ छाती सों छाती लगाय फेराफेरी सौं ।।२५।।

प्यारी तेरी महिमा बरनी न जाय जिहिं आलस काम बस कीन । ताकौ दंड हमैं लागत है री भए आधीन ।। साढे ग्यारह ज्यौं औंटि दूजे नव सत साजि सहज ही तामें जवादि कर्पूर कस्तूरी कुमकुम के रंग भीन । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रस बस करि लीन ।।२६।।

श्रम जलकन नाँही होत मोती माला कों देहु । देखे बहुत अमोल मोल नाँहीं तन-मन-धन न्यौछावरि लेहु ।। रति बिपरीत प्रीति कौ आलस तेरे मधि नाइक एहु । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्रीति वर मलय वेहु ।।२७।।

नील लाल गौर के ध्यान बैठे श्रीकुंजबिहारी । ज्यौं-ज्यौं सुख पावत नाँहीं त्यौं-त्यौं दुख भयौ भारी ।। अरबराइ प्रगट भई जु सुख भयौ बहुत हियारी । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी करि मनुहारी ।।२८।।

आजु की बानिक प्यारे तेरी प्यारी तुम्हारी बरनी न जाइ छबि । इनकी स्यामता तुम्हारी गौरता जैसे सित असित बैंनी रही भुवंगम ज्यौं दबि ।। इनकौ पीतांबर तुम्हारौ नील निचोल ज्यौं ससि कुन्दन जेबरबि । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की सोभा बरनी न जाय जो मिलैं रसिक कोटि कबि ।।२९।।

देखि-देखि फूल भई । प्रेम के प्रकास प्रीति के आगै ह्वै जु लई ।। सुनि री सखी बागौ बन्यौ आजु तुम पर त्रिन टूटत है जु नई । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सकल गुन निपुन ताताथेई ताथेई गति जु ठई ।।३०।।

* राग केदारौ *

ऐसी तौ बिचित्र जोरी बनी । ऐसी कहूँ देखी सुनी न भनी ।। मनहुँ कनक सुदाह करि करि देह अद्‌भुत ठनी । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम तमालै उठँगि बैठी धनी ।।३१।।

हँसत खेलत बोलत मिलत देखौ मेरी आँखिन सुख । बीरी परस्पर लेत खवावत ज्यों घन दामिनि चमचमात सोभा बहु भाँतिनि सुख ।। श्रुति घुरि राग केदारौ जम्यौ अधराति निसा रोम-रोम सुख । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कें मिलि गावत सुर देत मोर भयौ परम सुख ।।

अद्भुत गति उपजति अति नृत्तत दोऊ मंडल कुँवर किसोरी । सकल सुधंग अंग भरि भोरी पिय नृत्तत मुसकनि मुख मोरी परिरंभन रस रोरी ।। ताल धरैं बनिता मृदंग चंद्रागति घात बजै थोरी-थोरी । सप्त भाइ भाषा विचित्र ललिता गाइनि चित चोरी ।। श्रीवृन्दाबन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि त्रिविध पवन बहै थोरी-थोरी । गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ।। श्रीजमुनाजल विथकित पुहुपनि बरषा रति-पति डारत त्रिन तोरी । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कौ रस रसना कहै कोरी ।।३३।।

प्यारी जू जब-जब देखौं तेरौ मुख तब-तब नयौ-नयौ लागत । ऐसो भ्रम होत मैं कबहूँ देखी न री दुति कौं दुति लेखनि न कागत ।। कोटि चंद्र तैं कहाँ री दुराये नये-नये रागत । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत काँम की सांति न होइ, न होइ त्रिपति, रहौं निस-दिन जागत ।।३४।।

ऐसी जिय होत जो जिय सों जिय मिलै तन सौं तन समाइ ल्यौं तौ देखों कहा हो प्यारी । तोही सों हिलगि आँख आँखिन सों मिली रहैं जीवत कौ यहै लहा हो प्यारी ।। मोकों इतौ साज कहाँ री प्यारी हों अति दीन तुव बस भुवछेप न जाइ सहा हो प्यारी । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत राखि लै बाहु-बल हों बपुरा काम दहा हो प्यारी ।।३५।।

आजु रहसि में देखियत प्यारीजू एक बोल माँगौं जो लिखि देहु । साखी तेरे नैंन दसन कच कुच कटि नितंब जो लिखि देहु ।। प्रीति द्रब्य रुचि व्याज परस्पर मन-बच-क्रम जो लिखि देहु । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा प्यारी पै बोल बुलाय लियौ लिखि देहु ।।३६।।

प्यारी तेरी बाँफनि बान सुमार लागे भोंहैं ज्यों धनुष । एक ही

बार यों छूटत जैसें बादर वरषत इन्द्र अनख ।। और हथियार को गनैं चाहनि कनख । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों प्यारी जब तू बोलत चनख-चनख ।।३७।।

काहे तें आजु अटपटे से हरि । लटपटी पाग अटपटे से बंद अटपटी देत आगें सरि ।। अटपटे पाइ परत में परखे जब आवत हौ इत ढरि । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम जानि हों पाये आज लाल औरे परि ।।३८।।

काहे कों मान करत मोहि वकत दुख देत । बासे कीसी दृष्टि लिये रहों तेरी जीवनि तोहि समेत ।। अब कछु ऐसी करौ भौंहन टाटी जिनि देहु कहत इतनेत । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा छलकैं गरैं लगायो भई रमेत।।

रोंम रोंम जो रसना होती तऊ तेरे गुन न बखाने जात । कहा कहों एक जीभ सखी री बात की बात-बात ।। भाँन श्रमित और ससि हूँ श्रमित भये और जुवति जात । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी तू राखत प्राँन जात ।।४०।।

तुव जस कोटि ब्रह्मांड बिराजै राधे । श्री सोभा बरनी न जाय अगाधे ।। बहुतक जनम बिचारत ही गये साधे-साधे । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत री प्यारी ए दिन मैं क्रम-क्रम करि लाधे ।।४१।।

[1]भूलीं सब सखी देखि-देखि । जछि किन्नर नागलोग देवस्त्री रीझि रहीं भुव लेखि-लेखि ।। कहत परस्पर नारि नारि सों यह सुंदर्यता अवरेखि-रेखि । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ए कैसे हूँ चितबैं पै रेखि-रेखि ।।४२।।

पिय सों तू जोई जोई करै सोई छाजै । और संघ करै जो तेरी सोई लाजै ।। तू सुर ज्ञान सब अंग सखी री माँन करत बेकाजै । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम को ज्यो तो में बसै तू नित्त-नित्त बिराजै ।।४३।।

सोई तौ बचन मोसौं मानि तैं मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ । नव निकुंज सुख पुंज महल में सुबस बसौ यह गाँवरौ ।। नव-नव लाड लडाय लाडिली नहिं-नहिं यह ब्रज जाँवरौ । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पै बारोंगी मालती भाँवरौ ।।४४।।

१ फूलीं

जो कछु कहत लाडिलौ लाडिली जू सुनिये काँन दै। जो जिय उपजै सो तिहारेई हित की कहत हों आँन दै।। मोहि न पत्याहु तौ छाती टकटोरि देखौ पाँन दै। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी जाचक कों दान दै।।४५।।

प्यारीजू आगें चलि आगें चलि गहबर बन भीतर जहाँ बोलै कोइल री। अति ही बिचित्र फूल पत्रन की सेज्या रची रुचिर सँवारी तहाँ तुव सोइल री।। छिन-छिन पल-पल तेरीयै कहानी तुव मग जोइल री। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत छबीलौ काँम-रस भोइल री।।४६

प्यारी अब सोइ गई। ज्यौं ज्यौं जगावत त्यौं त्यौं नहिं जागत प्रेम रस पान करि भोइ गई।। जागत होइ तौ जगाउँ प्यारे तातैंव परम सचु रस ही रसिक रस बोइ गई। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी उठिकैं गरें लगाई नवल प्रीति सों नोइ गई।।४७।।

डोल झूलत दुलहिनी दूलहु। उडत अबीर कुमकुमा छिरकत खेल परस्पर सूलहु।। बाजत ताल रबाब और बहु तरनि तनैया कूलहु। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कौ अनतव नाहिनें फूलहु।।४८

प्यारी पहिरें चूनरी। तैंसोई लँहगा बन्यो सिलसिलौ पूरनमाँसी को सो पूनरी।। हौं जु कहत चलिये मनमोहन मानैंगी नहिं घूनरी। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी चरन लपटाने दुहूँनरी।।४९।।

बनी री तेरे चारि-चारि चूरी करनि। कंठसिरी दुलरी हीरनि की नासा मुक्ता ढरनि।। तैसोई नैननि कजरा फबि रह्यो निरखि काँम डरनि। श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि-रीझि पग परनि।।

प्यारी अब क्यौं हूँ क्यौं हूँ आई है। इत तुम श्रमित अधिक मनमोहन मैं कोटि जतन समझाई है। उत हठ करति बहुत नव नागरि तैसोयै नई ठकुराई है। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कर जोरि मौन ह्वै दूबरे की राँधी खीर कहौ कौनै खाई है।।५१।।

सुनि धुनि मुरली बन बाजै हरि रास रच्यौ। कुंज-कुंज द्रुम बेलि

प्रफुलित मंडल कंचन मनिन खच्यौ ।। नृत्तत जुगलकिसोर जुवतिजन मन मिलि राग केदारौ मच्यौ । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी नीकैं री आजु प्यारौ लाल नच्यौ ।।५२।।

* राग कल्यान *

जहाँ-जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे तहाँ-तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँहीं । बहुत मूरति मेरी चँवर ढुरावत कोऊ बीरी खवावत एकव आरसी लै जाहीं ।। और सेवा बहुत भाँतिन की जैसीये कहै कोऊ तैसीयै करों ज्यौं रुचि जानों जाहीं । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कों [1]भलौ मनावत दाइ उपाहीं ।।५३।।

यह कौन बात जु अबही और अबही और अबही औरै । देवनारि नागनारि और नारि तें न होंहि और की औरै ।। पाछें ना सुनी अब हूँ आगें हूँ ना ह्वै है यह गति अद्‌भुत रूप की और की औरै । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी या रस ही बस भये यह भई और की औरै ।।५४

माई री ये बसीठ इनके ये इनके और धौं को परै बीच । हाथापाई करत जु श्रम भयौ अंग अरगजा की कीच ।। प्यारी जू के मुख अम्बुज कौ डहडहाट ऐसौ लागत ज्यौं अधरामृत की सींच । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी के राग रंग लटपटानि के भेद न्यारेई न्यारे जैसे पानी में पानी नरीच ।।५५।।

कस्तूरी कौ मर्दन अंग में कियें मुरली धरें पीतांबर ओढ़ें कहति राधे हौं हीं स्याम । किसोर कुमकुम को सिंगार कियें सारी चुरी खुभी नेत्रनि दियें स्याम ।। बाँह गहि लै चले चलियै जू कुंज में चितै मुख हँसैं मानौं येई स्याम । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छाती सों छाती लगायें गौर स्याम ।।५६।।

प्यारी तेरौ वदन चंद्र देखें मेरे हृदय सरोवर तें कमोदनी फूली । मन के मनोरथ तरंग अपार सुंदर्यता तहाँ गति भूली ।। तेरौ कोप ग्राह ग्रसैं लियें जात छुडायौ न छूटत रह्यौ बुधि बल झूली । श्रीहरिदास के स्वामी

१ भलें

स्यामा चरन बनसी सों काढि रहे लटपटाइ गहि भुजमूली ।।५७।।

प्यारी तेरौ बदन कनक कोकनद श्रम जलकन सोभा देत री। तामें तिल दृष्टि परत ही मन हरि लेत री ।। उर तन जाति पाँति प्रानन कों कटि सों करि संकेत री। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत अचेत री ।।५८।।

बचन दै मान न करौं। मन-बच-क्रम तीनि हूँ तें न टरौं ।। तेरे ही कियें मान व्यापु होत तन कहि कैसें कै भरौं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत री प्यारी कैसें कै लरौं ।।५९।।

कुंजबिहारी नाँचत नीकैं लाडिली नचावत नीकैं। औघर ताल धरैं श्रीस्यामा ताताथेई ताताथेई बोलत संग पीकैं ।। तांडवलास और अंग को गनें जे-जे रुचि उपजत जीकैं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कौ मेरु सरस भयौ और रस गुनी परे फीकैं ।।६०।।

डोलत झूलत बिहारी बिहारिनि रागु रनि रह्यौ। काहू के हाथ अधोटी काहू के बीन काहू के मृदंग कोऊ गहै तार काहू कैं अरगजा छिरकत रंग रह्यौ ।। डाँडी छाडैं खेलु बढ्यौ जु परस्पर नहिं जनियत पगु क्यौं रह्यौ। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कौ खेल खेलत काहू ना लह्यौ ।।६१।।

हमारौ दान मारचौ इनि। रातिनि बेचि-बेचि जात घेरौ सखा जान ज्यौं न पावैं छियौ जिनि ।। देखौ हरि के उज उठाइबे की बात राति बिराति बहू बेटी काहू की निकसति है पुनि। श्रीहरिदास के स्वामी की प्रकृति न फिरी छिया छाँडो किनि ।।६२।।

गुनरूप भरी विधिना सँवारी दुहूँ कर कंकन एक-एक सोहै। छूटे बार गरें पोति दिपति मुख की जोति देखि-देखि रीझे तोहि प्राँनपति नैन सलौनी मन मोहै ।। सब सखि निरखि थकित भई आली ज्यों-ज्यों प्रान प्यारौ तेरौ मुख जोहै। रस-बस करि लीनें श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी उपमा कों कहिधों को है ।।६३।।

अजहूँ कहा कहति है री मारे नैंन आरनि। भौहैं ज्यौं धनुष चितवनि बान बाँफिन फोंक धरें कहत स्याम प्यारनि ॥ तूही जीवनि तूही भूषन तूही प्राँनधन वारनि। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों मेरु भयौ बिहारनि ॥६४॥

* राग सारंग *

प्यारी तू गुननिराइ सिरमौर। गति में गति उपजत नाना राग रागनी तार मँदिर सुर घोर ॥ काहू कछू लियो रेख छाया तौ कहा भयौ झूठी दौर। कहें श्रीहरिदास लेत प्यारी जू के तिरप लागनि में किसोर ॥

प्यारी तौपै कितौक संग्रह छबिन कौ अंग-अंग प्रति नाना भाइ दिखावति। हाथ किन्नरी मध्य सचुपाइ सुलप राग रागिनी सौं तू मिलि गावति। कहा कहों एक जीभ गुन अगनित हारि परयौ कछू कहत न आवति। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत री प्यारी तू जे-जे भाइ ल्यावति ॥६६॥

परसपर राग जम्यौ समेत किन्नरी मृदंग सुर तार। तीन हूँ सुरन के तान बंधान धुर-धुरपद अपार ॥ बिरस लेत धीरज न रह्यौ तिरप लाग डाट सुर मोरनिसार। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा जे-जे अंग की गति लैंत अति निपुन अंग-अंग अहार ॥६७॥

तोकों पिय बोलत हैं री लाल ठाढे कदंब तर। अबकें ऐसो ज्यौ कियें कहा होत है री मारि रही कुसुम सर ॥ कुंजबिहारी अपनो अंस तासों क्यौं कीजै छदम वर। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ढूँढत बन में पाई क्रम-क्रम बिषम डर ॥६८॥

चलिये छबीली छबीलो बोलत। आजु की बानिक पर त्रन टूटत है कही न जाय कछू स्याम तोहि रत ॥ सखी लै चली मनाय ज्यौं हित की आई घत। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम बीच ही आइ मिले तन की सुबास सकल भँवर कलमत ॥६९॥

बैनी गूँथि कहा कोऊ जानें मेरी सी तेरी सौं। बिच-बिच फूल

सेत पीत राते को करि सकै एरी सौं ।। बैठे रसिक सँवारन वारनि कोमल कर ककही सौं । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा नख-सिख लौं बनाई दै काजर नख ही सौं ।।७०।।

प्यारी तेरी पुतरी काजर हूँ तें कारी मानों द्वै भँवर उडेरी बराबरि। चंपे की डार बैठे कुंद अलि लागी है जेब अरा-अरि ।। जब आनि घेरत कटक काम कौ तब जिय होत डरा-डरि । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा दोउ मिलि लरत झरा-झरि ।।७१।।

स्यामकिसोर जू तुम कों दोउ रंग रंगित पीतांबर चूँनरी। ऐसौ रूप कहाँ तुम पायौ अहरनिस सोच उधेराबूँनरी ।। मनमोहन सुर ज्ञान सिरोमनि सब अंगनि अंग कोक निपूनरी। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम तुम्हारी विचित्रताई प्रेम सों पाईयत रस सूनरी ।।७२।।

चौकी कहाँ बदल परी हो प्यारे हरि। लाल पाट की हुती जंगाली ल्याये बरि ।। बह तौ हुती हीरनि खचित पै यह दुरंग पन्ना लालहि मिलि लैहों लरि । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की चतुराई रही भरि ।।७३।।

आवौ लाल ऐसें मद पीजै तेरौ झगा मेरी अँगिया धरि। कुच की सुराही नैननि के प्याले दारु द्योंगी ज्यौं अंकों भरि ।। अधरनि चुवाइ लैउ सब रस तनकौ न जान दैउ इत उत ढरि । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की सुहबति असर जहाँ आपुन हरि ।।७४।।

डोल झूलत बिहारी बिहारनि पुहुप बृष्टि होति। सुरपुर पुर गंधर्ब और पुर तिन की नारि देखति वारति लर मोति ।। घेरा करति परस्पर सब मिलि कहूँ न देखी ऐसो जुवती जोति। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारिनि सादा चुरी खुभी पोति ।।७५।।

* राग विभास *

प्यारी जू बोलत नाहीं कै तू सोवत उनींदी किधौं काहू कछू कह्यौ कै तेरौ ऐसोई सुभाव । मोहि तेरे देखें बिन कल न परै कै तू छाँडि कुभाव ।।

काहू की झुकि हमें देत री उपजत दुभाव। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत ताके बस परे प्रगटत जु भाव ।।७६।।

आलस भीजेरी नैंन जँभाति आछी भाँति सुदेस। कर सों कर टेक अँगुरिन पेच मानों ससि मंडल बैठ्यौ अति भाँति सुदेस।। मनके हरिबे कौं और सुख नाहिनें कोउ प्यारी नखसिख भाँति सुदेस। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छाती सों छाती लगाए अंग-अंग सुदेस ।।७७।।

प्यारी जू एक बात कों मोहि डर आवत है री मति कबहूँ कुमया करि जाति। पलु-पलु हित बंछत हों री मति परै भाँति ।। यह सचु ऐसें ही रहौ री जिनि टरौ तेरी घाति। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत यों बाढौ ज्यौं पुरइनि जल की रीति तोहि लौं साँति ।।७८।।

प्यारी जू हम तुम दोऊ एक कुंज के सखा रूठे क्यों बनैं। इहाँ कोउ हितू मेरौ न तेरौ जो यह पीर जनैं।। हों तेरौ बसीठ तू मेरी और न बीच सनैं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत प्रीति पनैं ।।

चूनरी में जाडौ लागतु है री कीजिये सुख सैंन। घरी-घरी कै रूसनें पहर मनावत जात मीठे-मीठे बैंन।। उठि सदकें बलाइ लैंउ प्रकृति यों न चाहियै चाहियै ज्यों मैंन। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लपटाइ रहे मानि सबै सुख चैंन ।।८०।।

दुहूँन की सहज बिसाति दोऊ मिलि सतरंज खेलत। उर रुख नैंन चपल अस्व चतुर बराबरि झेलत।। आतुरता फील पयादे निग्रह फरजी चोंप अनूपम पेलत। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सहसा राखें खेलत ।।८१।।

होड परी मोरनि अरु स्यामेंहि। आवहु मिलहु मध्य सचु की गति लेंहि रंग धौं कामेंहि।। हमारे तुम्हारे मध्यस्थ राधे और जाहि बदौ बूझि देखौ त्रिनु दै कहा है यामेंहि। श्रीहरिदास के स्वामी कौ चौपरि कौ सौ खेल इकगुन दुगुन त्रिगुन चतुरगुन री जाकें नामेंहि ।।८२।।

कहो यह काकी बेटी कहा धौं कुंवरि को नाँउ। तुम सब रहौ री हों

उत्तर देहों चलै किनि जाहु ढोटा बाइ बाबरौ गाँउ ।। सब सखि मिलि छिरका जु खेलन लागी तौलौं तुम रहौ री जौलौं हौं न्हाँउ । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लै बुडकी गरें लागि चोंकि परी कहाँ हौं जाउँ ।।

एक समें एकांत बनमें डोल झूलत कुंजबिहारी । झोटा देत परस्पर सब मिलि अबीर उडावत डारी ।। कबहुँक वे उनके वे उनके हों दुहुन की एक सारी । श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी बाढ्यौ रंगु भारी ।।८४

कुञ्ज-कुञ्ज डोलनि मृदु बोलनि टूटी लर छूटी पोति अति छबि लागत । भँवर गुंजार करत संग डोलत मानों मेर रागनी के संग लियें रागत ।। जूथ अनेक सुघर जुवतिन के तुम्हारी रीझि पलव नहिं लागत । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पर तन-मन-धन न्यौछावर करौं का गत ।।८५।।

* राग बिलावल *

प्रिया पिय के उठिबे की छबि बरनी न जाय सब तें न्यारे । मानों द्यौस रैनि इक ठौरे सोये न भये न्यारे ।। बार लटपटे मानों भँवर जूथ लरत परस्पर कमल-दलनि पर खंजरीट सोभा न्यारे । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पर कोटि-कोटि अनंग कोटि ब्रह्मांड वारि किये न्यारे ।।८६।।

स्यामा स्याम आवत कुञ्ज महल तें रगमगे-रगमगे । मरगजी बनमाल सिथिल कटि किंकिनि अरुन नैंन चारौं जाम जगे ।। सब सखी सुघराई गावत बीन बजावत सब सुख मिलि संगीत पगे । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की कटाछि सों कोटि काम दगे ।।८७।।

* राग मलार *

हिंडोरें व झूलत लाल दिन दूलह दुलहिनि बिहारिन देखौ री ललनाँ । गौर स्याम छबि अति दुति बहु भाँति री बलनाँ ।। नीलांबर पीतांबर अंचल चलत धुजा फहरात कलनाँ । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी बिहारनि अविचलनाँ ।।८८।।

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहै बोलत मोरनि। नीके बादर नीके धनुष चहुँदिस नीकौ श्रीवृन्दाबन आछौ नीकी मेघनि की घोरनि।। आछी नीकी भूमि हरी-हरी आछी नीकी बूढनि की रेंगनि काँम किरोरनि। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कें मिलि गावत राग मलार जम्यौ किसोर किसोरनि ।।८९।।

सुबोल बोलिये जु मान न करि हौं आये दिन पावस के सचु के। घरी-घरी के रूसनें क्यों बनें ते बोल बोलिये जु मन-क्रम-बच के ।। भयौ है बंधान बहुत जतननि करि बिसरे गुन गस के। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्यारी बस के ।।९०।।

यह अचिरज देख्यौ न सुन्यौ कहुँ नवीन मेघ संग बीजुरी एक रस। तामें मौज उठति अधिक बहु भाँति लस ।। मन के देखिबे कों और सुख नाहिनें चितवत चितहि करत बस। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी बिहारनि जू कौ पवित्र जस ।।९१।।

बूंदें सुहावनी री लागत मति भीजै तेरी चूँनरी। मोहि दै उतारि धरि राखों बगल में तूँनरी ।। लागि लपटाइ रहे छाती सों छाती लगाय ज्यौं न आवै तोहि बौछार की फूँनरी। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत बीजुरी कौंधै करि हाँ हूँनरी ।।९२।।

भींजन लागेरी दोऊ जन। अँचरा की ओट करत दोऊ जन ।। अति उन्मत्त रहत निसि-बासर राग ही के रंग रँगे दोऊ जन। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्रेम परस्पर नृत्य करत दोऊ जन ।।९३।।

नदित मन मृदंगी रास भूमि सुकांति अभिनैं सुनव गति त्रिभंगी। धापि राधा नटति ललिता रसवती नागरी गाइतेग्र नाभि तान तुंगी ।। रसद बिहारी वंदे वल्लभा राधिका निसिदिन रंग रंगी। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी संगीत संगी ।।९४।।

दाँमिनि कहत मेघ सों हमारी उपमा देंहि ते झूठे येई मेघ येई बीजुरी साँची। जिन-जिन हमारी उपमा दीनी तिन-तिन की मति

काँचो ।। ऐसी कहूँ सुनी जु बूँद ते कन न्यारौ ता पटतर क्यौं दीजै समुद्र राँची । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की अटल-अटल प्रीति माँची ।।९५।।

* राग गौडमलार *

नाँचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत । तैसीयै कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तैसेई मेघ गरजि मृदंग बजावत । तैसीयै स्याम घटा निसि सी कारी तैसीयै दाँमिनि कौंधि दीप दिखावत । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि राधे हँसि कंठ लगावत ।।

हरि के अंग कौ चंदन लपटानों तन तेरे देखियत जैसे पीत चोली । मरगजे अभरन बदन छिपावत छिपै न छिपाये मानों कृष्ण बोली ।। कहुँ अंजन कहुँ अलक रही खसि सुरति रंग की पोट खोली । श्रीहरिदास के स्वामी स्याम मिलत बिहारनि हार न रह्यौ कंठ बिच ओली ।।९७।।

* राग बसन्त *

कुच गडुवा जोबन मौर कंचुकि बसन ढाँपि लै राख्यौ बसंत । गुन मंदिर रूप बगीचा में बैठी हैं मुख लसंत ।। कोटि काम लावन्य बिहारी जाहि देखत सब दुख नसंत । ऐसे रसिक श्रीहरिदास के स्वामी तिनकों भरन आईं मिलि हसंत ।।९८।।

कुंजबिहारी कौ बसंत सखि चलहु न देखन जाँहि । नव बन नव निकुंज नव पल्लव नव जुवतिनि मिलि माँहि ।। बंसी सरस मधुर धुनि सुनियत फूली अंगन माँहि । सुनि श्रीहरिदास प्रेम सों प्रेमहि छिरकत छैल छुवाँहि ।।९९।।

चलिरी भीरतें न्यारेई खेलैं । कुञनि कुञ मंजु में झेलैं ।। जहाँ पंछिन सहित सखी न संग कोऊ तिहिं बन चलि मिलि केलैं । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा प्रेम परस्पर बूका बंदन मेलैं ।।१००।।

अबकें बसंत न्यारेई खेलैं काहू सों मिलि न खेलें री तेरी सौं । दुचिते भये कछू न सचु पैइयतु तू काहु सखी सों मिलि न मेरी सौं ।। देखैंगी

जो रंग उपजैगौ परस्पर राग रागनीन के फेराफेरी सौं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी राग ही में रंग उपजैगो एरी सौं ॥१०१॥

रहौ-रहौ बिहारी जू मेरी आँखिन में बूका मेलत हौ कित अंतर होत मुख अवलोकन कों। और भाँवती तिहारी मिल्यौ चाहत मिसकें पैयाँ लागो पन-पन कों॥ गावत खेलत जो सुख उपजत सुतौ कोटि बर है तन कों। श्रीहरिदास के स्वामी कौ मिलत खेलत कौ सुख कहाँ पाइयत ऐसौ सुख मन कों ॥१०२॥

* राग गौरी *

सौंधे न्हाय बैठी पहिरि पट सुंदरि जहाँ फुलवारी तहाँ सुखवति अलकैं। कर नख सोभा कल केस सँवारति मानों नव-घन में उडगन झलकैं॥ बिबिध सिंगार लियें आगैं ठाढी प्रियसखी भयौ भरु आनि रतिपति दल दलकैं। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छबि निरखत लागत नाँहीं पलकैं ॥१०३॥

चलौ सखी कुंजबिहारी सों मिलि चित दै देखैं उनकी भाँवती। सुंदर सों सुंदरि मिलि खेलत कैसे धौं गाँवती॥ औचक आइ परी सखी तहाँ पिय पै पाइ चँपावती। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों मिलि पौढी तन-मन राँवती ॥१०४॥

राधा-रसिक कुंजबिहारी खेलत फागु सब जुवती जन कहत हो हो होरी। भरत परस्पर काहू की काहू न सुधि हँसिकें मन हरत मोहन गोरी॥ करसों करव जोरि कटि सों कटिव मोरि करत नृत्य काहू न रुचि थोरी। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी फिरत न्यारेई न्यारे सब सखीयन की दृष्टि बचावत तकितव खोरी ॥१०५॥

नव निकुंज ग्रह नवल आगैं नवल बीना मध्य राग गौरी ठटी। मनों दस इंदु पीयूष बरषत सुखद चपल करजावलि दृष्टि पिय की जटी॥ रीझि-रीझि पिय देत भूषन बसन दाम उर रसन दसननि धरत निरखि

सारंग कटी। रसद श्रीहरिदास बिहारी अंग-अंग मिलत अतन उदोत करत सुरति आरंभटी।।१०६।।

झूलत डोल दोउजन ठाढे। हांघत जोर सहित जैसो जाकैं डाँडी व गहें गाढे। बिच-बिच प्रीति रहसि रस रीति की राग़ रागनीन के जूथ बाढे। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी राग ही के रंग रँगि काढे।।

झूलत डोल श्रीकुंजबिहारी। दूसरी ओर रसिक राधाबर नागरि नवल दुलारी।। राखे न रहत हँसत कहि-कहि प्रिया बिलबिलात पिय भारी। श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी अबकें राखि हाहारी।।१०८।।

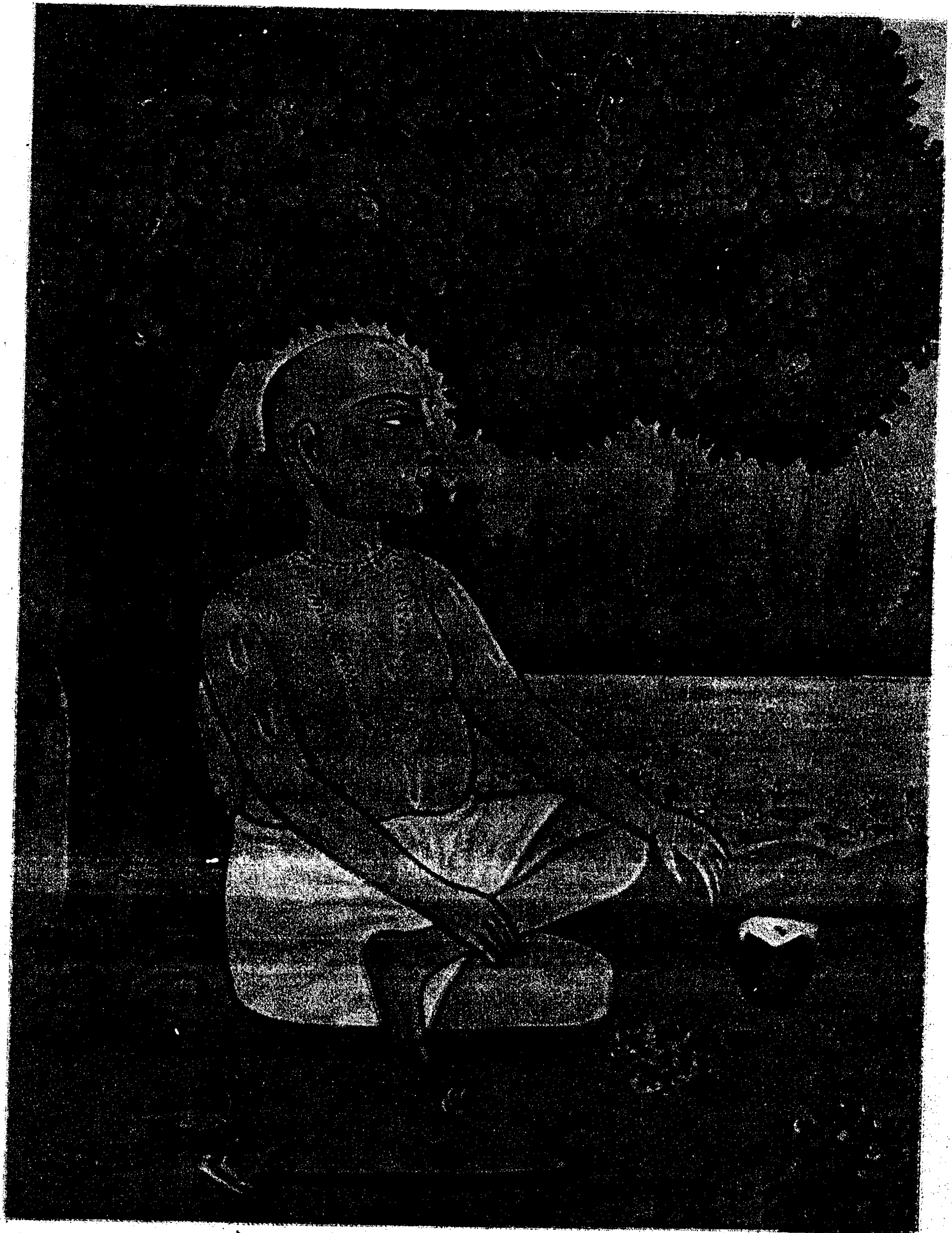
कौंन प्रकृति तिहारी [1]पिया तुमही मिलत बेगि भोर ह्वै जात। अथवत निमिष होइ पहफाटी देखियत पहिली सहि मात ह्वै जात।। आवत जात भारो परै पीतौ मरि जात। श्रीहरिदास के स्वामी तुम्हारे माथै त्रिन कितौक सुख जात।।१०९।।

* राग नट *

जुग कवनी बैस किसोर दोउ निकसि ठाढे भये सघन बन तें। तन-तन में बसत मन-मन में लसत सोभा बाढी दुहुँ दिस मानों प्रगट भई दाँमिनि घन-घन तें।। मोहन गहर गंभीर बदत पिक बानी उपजत मानों प्रिया के बचन तें। श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी ऐसौ को जाकौ मन लागै अन तें।।११०।।



1 छिया



रस-सागर स्वामी श्री बीठलविपुल देवजू

रस-सागर स्वामी श्री बीठलविपुलदेवजू की प्रशंसा

श्री स्वामी नाभाजी–

श्री बीठलविपुल रस सागर ।।१।।

श्री ध्रुवदासजी–

श्री बीठलविपुल विनोद रस, गाई अद्भुत केलि।
विलसत लाडिलि-लाल सुख, अंसनि पर भुज मेलि ।।२।।

श्री स्वामी प्रियादासजी–

स्वामी हरिदासजू के दास नाम बीठलविपुल गुरु के वियोग दाह उपज्यो अपार है। रासके समाज में विराजे सब भक्तराज बोलिके पठाये आये आज्ञा बड़ो भार है।। जुगल स्वरूप अवलोकि नाना नृत्य भेद गान तान कान सुनि रही न संभार है। मिल गये वाही ठौर पायो भाव तन और कहे रस सागर ताको यह विचार है ।।३।।

सेवैं हैं प्रत्यक्ष स्वच्छ रूप अवलोकत हे गुरु के विछोह कहैं कहा धौं हिराने हैं। प्रेम की अवधि सिन्धु सर्वस निदान स्वामी जल बिन मीन मानौ तलफे प्रमाने हैं।। बीते दिन सात कछु लेत ना सुहात और बांधी दृग पट्टिका सुभाव उरझाने हैं। व्याकुल वियोग सुनौ बीठलविपुल जी को रसिक अनेक जन सोच में समाने हैं ।।४।।

मंजुल जुगल रास रचि के रसिक जुदौ व्यास पठवाए जाहु लावौ अभिलाषी है। लै गए लिवाय बिनै बीठलविपुल जी कौं लाडिली वेहि बोले दृग भाषी है।। प्यारी अनुहार तन तबतौ दिखायो दिव्य सकल विमोहे कहै लोक लोक नाखी हैं। मनके अनेक भ्रम तम ज्यौं नसाने बंद जयति अनन्य धन आज रज राखी है ।।५।।

प्राचीन वाणी से उद्धृत :—

श्री बीठलविपुलवर रस रूप सुख सर्वोपर विपुन विहार सार रस बरसायो है। श्री स्वामी को सरूप भाव अति ही अगाधि जानि ताके

परबानबे को ध्यान मन लायो है ।। गायो विपुन विनोद दुहूँ कोद समान सुख सुजस भक्ति वृंदनि में वितान सम छायो है । श्री विहारी विहारनि जू के नेह ही की मूरति सुपूरति रस रास मांहि प्रीतम रिझायो है ।।६।।

प्रगट्यो विपुल रसन को सागर ।
श्री हरिदास प्रेम की मूरति बीठल नाम उजागर ।।
फूले रसिक नरेस भ्रमर जन गावत रस जस गुन के आगर ।
अगहन सुकल पंचमी को सुख दियो है नागरी नागर ।।६।।

मंगल कुंज भवन मधि आज ।
श्री हरिदास वंस की सोभा श्रीमुख गावत करत समाज ।।
बीठलविपुल बिनोद पंचमी सहचरि कुल को दीनो राज ।
रसिक रसिकनी रसिक सहेली प्रगट भई सिरताज ।।८।।

श्री जुगलदासजी—

जै जै श्री बीठल विपुल सुजग पावन कियो ।
श्री स्यामा को अनुराग प्रिया - पिय को हियो ।।
धर्म महल औतार धरन बड धीय है ।
सुनत सकल जकि रहे कौन सम वीय है ।।
कौन करि है तासँ की सरि मन वचन क्रम वर वरे ।
अनन्य एक उपास श्री गुरु कुंज नाइक वस करे ।।
विपिन मंगल कुंज आलय परस्पर क्रीड़ा करैं ।
श्रीहरिदासिजू के संग सहचरि निरखि हँसि अंकों भरैं ।।९।।

सहज विहार सुसार केलि कल मधुरता ।
अति उनमत्त छके रस प्रेम जु सरसता ।।
छाडि छिया करि सकल विस्व सुख जे रहैं ।
सील सुभाव दया के सिंधु सबै चहैं ।।
दया के सागर सबनि कों सहज जुगल रस बरषहीं ।
महामधुरे सुरनि गावत निरखि छवि अति हरषिहीं ।।१०।।

जै जै श्री बीठलविपुल दयाल कृपालजू ।
प्रेम मगन सुख संपति करत निहालजू ।।
परम कृपा-वपु धारि रस वरिषा करी ।
अंग संग केलि करावत भावत रस भरी ।।
रस भरी नव केलि नित्य अवलोकि और न भावहीं ।
रास में लई बोलि आपुन दुहनि सहज लडावहीं ।।११।।
श्री बीठलविपुल चरन मो सीस ।
श्री हरिदास सरनि अनुरागी सब अनन्य के ईस ।।
सहचरि रूप रास मधि धरि दुति निरषि लये वनधीश ।
दासकिसोर दान यह मांगत करो कृपा बकसीस ।।१२।।
श्रीमत बीठलविपुल अनन्य ।
स्वामी विरह तुरत तन त्याग्यौ अद्‌भुत परम प्रपन्य ।।
रसिक सभा शृङ्गार सार छबि निरषि कहत जन धन्य ।
दासकिसोर वोर चितवनि करि तुद सुख चरन सरन्य ।।१३।।
श्री बीठलविपुल चरन भव पोत ।
भक्ति विवेक भाव धीरज अमृत के अद्‌भुत श्रोत ।।
तुमरी सरि को करैं कौन अस सूरज ढिग षिद्योत ।
दासकिसोर जोरि कर नमि सिर पसरि करत डंडोत ।।१४।।

श्री सीलसखीजी–

जय जय विपुल विनोद मोद मूरति बनी ।
स्वामी जू के रूप रंग रस में सनी ।।
जिनकी रहनी देखि सत्व गुन लाजहीं ।
रागादिक सब दोष निरखि बपु भाजहीं ।।
भाजत सकल कलि कलुषता बाढत अनूपम माधुरी ।
रस मगन रहत उदारमति निसि-दिन रहैं श्यामा ढुरी ।।
गुरु विरह नहिं सहि सके तनु तजि गये महल आनन्द सों ।
जो लेय इनको नाम दृढ मन छुटै जग के फंद सों ।।१५।।

श्री नागरीदास जी–

जै जै श्री बीठल विपुल कृपा कौ वपु धरचौ।
अङ्ग सङ्ग श्री हरिदास केलि जस विस्तरचौ ।।
प्रगट सहचरी रूप सरूप अनूप हैं।
गायो विपुल विनोद रसिक रस भूप हैं ।।
रसिक रस के भूप रसनिधि दुहुनि सहज लडावहीं।
महारस अनुराग कौ निरखि सहचरि गावहीं ।।१६।।

श्री स्वामी सहचरिशरणदेव जी–

स्वामी हरिदास जू को नाम लेत आठोयाम स्वामी हरिदास सोत पावैं प्रीति पन में। स्वामी हरिदास को विलोकें नित नैनन सों स्वामी हरिदास गुण सुनै मोद घन में ।। स्वामी हरिदास अंग अंग की सुवास पाय नासिका प्रमत्त भई वास कीनो मन में। स्वामी हरिदास के विलासी रूप सागर श्री बीठलविपुल जू के छाय रही तन में ।।१७।।

स्वामी हरिदास जू को वदन मयंक वर अति ही अनूप रूप कापै जात गायो जू। ताके अविलोके विनु भयो है वियोग भारी भूलि गये खान-पान महा खेद पायो जू ।। बांधि लई आंखैं अभिलाखैं कबै जाय मिलैं छाय रह्यौ प्रेम उर बोलिबो गमायो जू। बीठलविपुल नाम तिनको निहारि गति चकित चकोर चित सोच में समायो जू ।।१८।।

स्वामी हरिदास जू को आशय गम्भीर धीर जुगल नवेलि केलि तामें रही आयकैं। अमल आसक्ति अहलाद को निकेत नव प्रगट्यौ विपुलदेव सोई सुख पायकैं ।। वृन्दावन वास करि रस को विकास करि श्यामा श्याम कीरति अनूप रूप गायकैं। आली के सरण अदेख भयो रास मध्य रसिक-सभा में जाको जस रह्यौ छाय कैं ।।१९।।

★★

श्री स्वामी बीठलबिपुलदेवजी की बानी

★

* राग बिभास *

प्रात समय आवत जु आलस भरे जुगलकिशोर देखे कुंजन की खोरी। लटपटी पाग छूटे बंद पिय के प्रियाजू की बैंनी बिथुरी छूटी कच डोरी।। श्रीललितादिक देखत जु नैंन भरि अति अद्भुत सुन्दर वर जोरी। श्रीबीठलबिपुल पुहुप वरषत नभ त्रन टूटत है अब हो हो होरी ।।१।।

आज बनी लाडिली प्रीतम संग आवति। सोंधें भींजी लट छूटी पिय के अंस भुज पाछें सखी सुघर विभासहिं गावति। श्रम जल बिंदु निसि के सुख सूचत मोहन बदन सों वदन मिलावति। श्रीबीठलबिपुल कल रसिक बिहारी लाल आनंद समुद्र मथि मदन झिलावति ।।२।।

आवत लाडिली लाल फूले। कुंज केलि नव रंग बिहारी सुरति हिंडोरे झूले।। निसि जागे अलसात रगमगे पट पलटे गति भूले। श्रीबीठलबिपुल पुलकि ललितादिक दिन देखत द्रुम मूले ।।३।।

आवनि कुंज ते पहपीरी। प्रिया जँभाति कर जोरि रसमसी ललन खबावत बोरी।। सुरति श्रमित अँग-अंग सिथल अति भुज भरि स्याम रसीरी। श्रीबीठलबिपुल बिनोद करत मिलि नहिं ललितादिक नीरी।।

आई भोर भयें प्यारी छूटी लट बगरी। बाँहाँ जोरी लाल संग निसि कियें कुंज रंग सुबस किये बिहारी कुँवरि अचगरी।। निसि के चिह्न फवें गौर स्याम तन छवि पद नख पर बारों जेती केतो नगरी। श्रीबीठलबिपुल केलि मनहुँ कंचन बेलि अरुझी स्याम तमालैं आवें कुंज डगरी ।।५।।

प्यारी तेरी चाल चितवन बाँकी। बाँके बसन आभरन बाँके बंक रेख उर आँकी।। बंक सुभाव मिलन बाँकी प्रिया बंक कोर रहि झाँकी। श्रीबीठलबिपुल बिहारी बाँके मिले तातें तू फिरत निसाँकी ।।६।।

* राग भैंरों *

प्रातहीं किसोर जोरि कुंज केलिनी। अंग-अंग गुन तरंग गौर स्याम रूप रासि मदन केलि सुरति सिंधु पुलकि झेलिनी ।। तरनिनंदिनी सुतीर गावत पिक भृंग कीर त्रिगुन मरुत माधुरी श्रमंबु पेलिनी। वरु बिहार राजनी सु नूपुरादि बाजनी श्रीबीठलबिपुल वारनें भुज कंठ मेलिनी।।

* राग विलावल *

लालहि बस करनी मदन मद हरनी मल्हकि पग धरनी उरज उदित री। हेमलता की फरनी श्रमजल की झरनी निकट सुता तरनी बदन मुदित री ।। रूप सुधा की भरनी मोपै क्यों आवै वरनी पिय टकटरनी त्रिबित छुधित री। रस बस कै बरनी बिपुल प्रेम परनी श्रीबीठल कुंज घरनी बिहारी बुधित री ।।८।।

प्रिया स्याम सँग जागी हैं। सोभित कनक कपोल ओप पर दसन छाप छबि लागी हैं ।। अधरनि रँग छुटी अलकावलि सुरत रंग अनुरागी हैं। श्रीबीठलबिपुल कुंज की क्रीडा काम-केलि रस पागी हैं ।।९।।

रसिक रसीली भाँति छबीली नैंन रँगीली तू पिय पै ते आई। अलक कंचुकी छूटी चारि-चारि चूरी टूटी आलस मदन लूटी लेत जँभाई ।। कहा रहो मुख मोरि नागरि नव किसोरी त्रिनु टूटत हो हो होरी ललन बनाई। श्रीबीठलबिपुल वेष उर बनी नव रेख रजनी के अवसेष जानि मैं पाई ।।

स्यामा चलहु लडैती प्रिया कुंजनि करहु केलि। स्याम तमाल लाल नवलकिसोरी बाल तुम जु नवल नव कनक बेलि ।। बिविध कुसुम घन रचित श्रीवृन्दावन बोलत सुहाये पिक मधुप रहे झेलि। श्रीबीठल-बिपुल रस बिहारी तिहारे बस जमुना के तीर सुख बिसद बिलास खेलि ।।

हों तेरे वारनें मंद गति चलि पिय सोंहीं। मेरे पाछे दुरि मुरि नीलाम्बर ओढि सखी अबही मिलऊँ लालहि गुपत की गौंहीं ।। आतुर ह्वै आवैंगे तब न बनैंगो मेरौ कह्यौ मानि प्यारी कहत हों तोहीं। श्रीबीठल-बिपुल विनोद बिहारी सों हिल मिलि कै तेरौ ज्यौ जानें कै हौं हीं ।।१२।।

सुनहु रसिक श्रीवृन्दावन को जस। कुंज केलि मानिनी मनोहर परबस भये नाँहिने अपने बस ।। इहि बन नित्य नवीन युगल वर द्रुम दल दिव्य श्रवत सलिता लस। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी कौ पाँन कियौ चाहत रसना रस ।।१३।।

* राग बसन्त *

सजनी नव निकुंज द्रुम फूले। अलि कुल संकुल करत कुलाहल सौरभ मनमथ मूले ।। हरषि हिंडोरें रसिक रासि वर जुगल परस्पर झूले। श्रीबीठलबिपुल बिनोद देखि नभ देव बिमाननि भूले ।।१४।।

जुगल किसोर मेरे कुंजबिहारी प्यारी बन बिहार बिहरत नव रंगा। अरुन हरित मुकलित द्रुम पल्लव अलिकुल गुंज अनंग तरंगा ।। सोंधे बहुत अबीर अरगजा खेल परस्पर छिरकत अंगा। श्रीबीठलबिपुल बिनोद रीति रस सुख देखत ललितादिक संगा ।।१५।।

* राग सारंग *

डोल झूलैं स्यामा स्याम सहेली। नव निकुंज नव रंग पिया सँग बिहरत गर्व गहेली ।। कबहुँक प्रीतम रमकि झुलावत कबहूँ प्रिया नवेली। श्रीबीठलबिपुल पुलकि ललितादिक देखत आनँद केली ।।१६।।

रस बस होत लाल प्यारी तेरी बदन झलक। अपनें सहज सुभाव की माधुरी बनी है ललाट पर पतरी अलक ।। कौन हूँ भाँति चितवनि चितयौ तबतें मोहनजू की न लागें पलक। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी सों हिल-मिलि जैसे बाढै छिन-छिन मदन ललक ।।१७।।

तैं मोह्यौ प्यारी मेरौ लाल। जिहिं गुन सर्वसु चोरि लियौ नागरि ते गुन अब प्रतिपाल ।। तैं कछु प्रेम ठगौरी मेली तुव मुख जोवत नैंन बिसाल। भाँमिनि कनक लता ह्वै लपटी श्रीबीठलबिपुल उर स्याम तमाल ।।

प्यारी नैंकु निरखौ नव रंग लालै। तुव पद-पंकज-तल-रज वंदत तिलक बनावत भालै ।। तेरे वरन बसन आभूषन उर धरि चंपकमालै। श्रीबीठलबिपुल बिनोद करहु मिलि भुज भरि बाहु विसालै ।।१९।।

लालनु तेरेई आधीन। सुनि री सखी हों साँचि कहति हौं तू जल है ये मीन ।। तेरे रस-बस स्यामसुंदर वर जाचत हैं ज्यौं दीन। श्रीबीठल-बिपुल बिनोद बिहारी होत मनावत लीन ।।२०।।

लालु करत तेरे गुन गानें। जो न पत्याहु सपत नहिं मानति चलि सुनि अपने कानें ।। जो तुम स्याम होहु वे स्यामा तौ यह वेदन जानें। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी सों बादि रूसनों ठानें ।।२१।।

प्रिया पाँउ धारिये पिय पहियाँ। कुंज भवन के द्वारें ठाढे कुँवर कदँब की छहियाँ ।। सुनत बचन हँसि बिलम न कीनों चली अली गहि बहियाँ। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी लाइ लई उर महियाँ ।।२२।।

मेरौ लाल रँगीलौ रँग भरचौ। जो भावै सो करहु किसोरी मोहन तेरे बस परचौ ।। जमुना पुलिन निकुंज भवन में सर्वसु सचि तो कौं धरचौ। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी सुगुन गाँठि दै वर जु वरचौ ।।२३

नैंना प्रगट करत पिय प्रेमैं। झूठें हीं उत्तर कत ठानति छाँडि स्रान के नेमैं ।। कोप कपट कौ अधर कंप सखी अति हुलास हृदै मैं। श्रीबीठल-बिपुल बिहारी नग बर जटित सु तुव तन हेमैं ।।२४।।

प्यारी तेरे नैंना री अति बाँके। ललित त्रिभंगी बिहारी नागर तें अपने करि आँके ।। कहिधौं कुँवरि किसोरी कोक गुन सिखये इनहिं कहाँ के। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी पिय प्राँननि में ढाँके ।।२५।।

प्यारी तेरे नैंननि पर त्रिन टूटत। मानौं कुंदकली पर भौंरा हित अमृत रस घूँटत ।। कहा री कहों इन बान बिसेखे इत लागत उत फूटत। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारिनि पिय कौ सर्वसु लूटत ।।२६।।

* राग मलार *

हमारें माई स्यामा जू कौ राज। जाके आधीन सदाई साँवरौ या ब्रज कौ सिरताज ।। यह जोरी अविचल वृन्दावन नाहिं आनि सों काज। श्रीबीठलबिपुल बिहारिनि कें बल दिन जलधर ज्यौं गाज ।।२७।।

जमुना तट स्याम घटन की पाँति। हरित भूमि बन हरित सिखंडी

लियो

बोलत अति रसमाँति ।। सुरँग चूनरी की छबि दुलहिनि अभरन नाना भाँति । श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी सों मिलि बिलसत किलकाँति ।।

नीके द्रुम फूले-फूल सुभग कालिंदी कूल इंद्र धनुष राजैं स्याम घटनि में । नीके ग्रह लता कुंज नीकी आली अलि गुंज नीकौ राग रंग रह्यौ पिकनि की रटनि में ।। नीकी गति मंद-मंद बिहारी आनंद-कंद नीकौ भेद बन्यो अरुन पीत पटनि में । श्रीबीठलबिपुल रंग ललिता के फूले अंग मिलते देखौंगी नैंन नीकी विधि छटनि में ।।२९।।

* राग कल्यान *

नव निकुंज मंदिर में प्यारी पियहिं सिखावति बीना । ताँन बंधान कल्यान मनोहर इत मनदेहु प्रवीना ।। लेत सँभारि-सँभारि सुघर वर नागरि कहत फबीना । श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी कौ जानत भेद कवीना ।।

* राग कान्हरौ *

मिलि खेलि मोहन सों करि मन भायौ । कुंजबिहारी लाल रस बस बिलसत मेरे तन मन फूल अपनों करि पायौ ।। तुम दिन दुलहिनि ए दिन दूलहु सघन लता ग्रह मंडप छायौ । कोकिल मधुपगन परेंगी भाँवरि तहाँ श्रीबीठलबिपुल मेघ मृदंग बजायौ ।।३१।।

* राग केदारौ *

बिलसत प्यारी लाल कुंज रजनी । बदन-बदन जोरें मदन लडावत नूपुर के सुर मिलि वलया की बजनी ।। पुलकि-पुलकि तन आनंद मगन मन मधुरे बचन श्रवन सुनि सजनी । श्रीबीठलबिपुल रस रसिक बिहारी बस नव त्रिया तिलक सुरति जीति गजनी ।।३२।।

तेरे नूपुर धुनि री प्यारी श्रवन सुनी । अचल चले चल रहे री रहित गति खग-मृग ब्रत मानों धरचौ है मुनी ।। नव निकुंज वर सुहस्थ साँवरो लाल सेज्या रचित बहु कुसुम चुन चुनी । श्रीबीठलबिपुल की रीति मिली हैं मदन जीति तू सिरमौर सब गुननि गुनीं ।।३३।।

जिन रूठौ लागौं तिय पैंयाँ । तेरे तन की सोभा सुंदरि मेरे उर

लागति है झैयाँ ।। तन-मन वारौं एक रोंम पर मेरौ मन लाग्यौ तो तैयाँ। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी संभ्रम गयौ लाइ उर लैयाँ ।।३४।।

नव बन नव निकुंज नव बाला। नव रंग रसिक रसीलौ मोहन बिलसत कुंजबिहारी लाला ।। नव मराल जित अवनि धरत पग कूजित नूपुर किंकिनि जाला। श्रीबीठलबिपुल बिहारी के उर यों राजत जैसे चंपे की माला ।।३५।।

नव निकुंज नव भूमि-रगमगी। नवल बिहारीलाल लाडिलौ नवल सरद की जोन्ह जगमगी ।। नव सत साजि सकल अंग सुंदरि नवल बदन पर अलक सगबगी। श्रीबीठलबिपुल बिहारी के अंग लाडति लाडिलो सहज उर लगी ।।३६।।

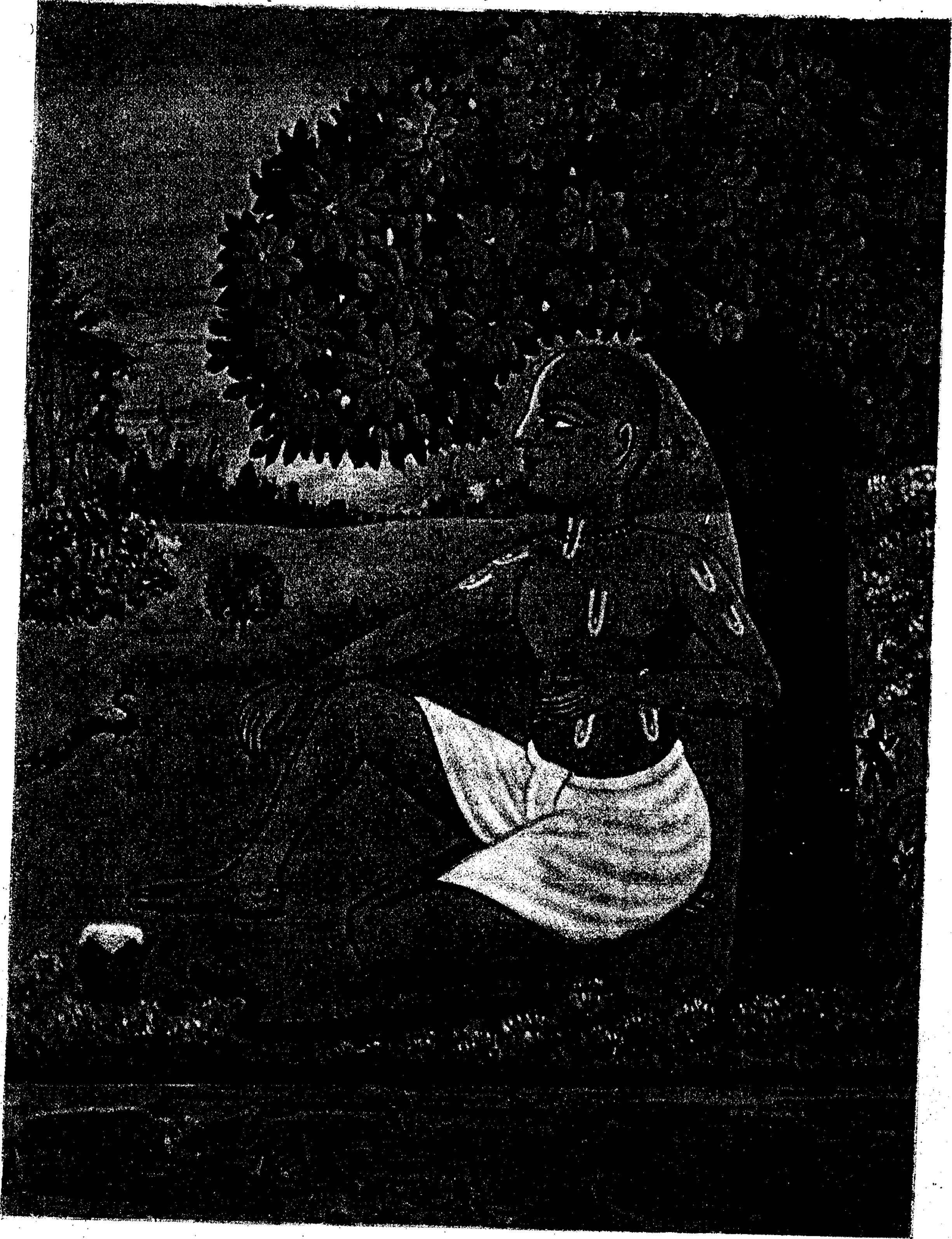
रसिक लाल के अंग संग सुख सेज पौढी भाँमिनी। सुरत रंग वर चपल अंग-अंग लज्जित नव घन दाँमिनी ।। सुंदरता की रासि किसोरी नहिं उपमा कों काँमिनी। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी सों इहि रस बिलसत जाँमिनी ।।३७।।

हठ करि रही प्रिया बातौ न कहई। ललिता तू समझाइ जुगति करि जैसें रस रहई ।। तन-मन वारों एक रोंम पर जो नेंक इतै चितई। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी कहत सखी सों करि जतन ज्यौं रस रहई ।।

बदी पिय आजु प्रिया सों होड। उमँगि-उमँगि सुर भेद मिलावत नव निकुंज वर कोड ।। कर तारी दै कहत लाडिली हारे कुंवर निरोड। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारी जीती है कुंवरि व छोड ।।३८।।

प्रिया पीतांबर मुरली जीती। हा हा करत न देत लाडिलो चरन लुठत निसि बीती ।। राखौ याहि दुराइ सखी ललितादिक रहौ सचीती। श्रीबीठलबिपुल बिनोद बिहारिन प्रगट करत रस रीती ।।४०।।





अनन्य मुकुटमणी स्वामी श्री बिहारिनि देवजू

अनन्य-मुकट-मनि श्री गुरुदेव जू की प्रशंसा

श्री व्यास जी महाराज–

साँची प्रीति विहारिनदासै ।
कै करवा कैं कुंज कामरी कै थर श्री स्वामी हरिदासै ।।
प्रतिबाधिक सहि सकत न तिनको जानत नहीं कहा कहि त्रासैं ।
महामाधुरी मत्त मुदित ह्वै गावत रस जस जगत उदासै ।।
छिनहीं छिन परतीति बढत रसरीति निरखि बिबि वदन विलासै ।
अंग संग नित्यविहार विलोकत यहै आस निजु वन वसि व्यासै ।।१।।

श्री नाभा जी महाराज–

दासविहारी अमृतदा ।।२।।

श्री ध्रुवदास जी–

श्रीविहारीदास निज एक-रस, ज्यों स्वामी की रीति ।
निरबाही पाछे भलो, तोरि सबनि सों प्रीति ।।
मत्त भयो रस माधुरी, करी न दूजी बात ।
बिन विहार निजु एकरस, और न कछु सुहात ।।३।।

श्री व्रजदास जी–

अँडो अँडो फिरै विपुल बल रस को पीये ।
बानी जाकी सुनत छुटैं सब साधन हीये ।।
कुंजविहारी वर विहार कुंजनि वसि गायो ।
इहि बल गरजत रह्यो लरजि रसिकन सिर नायो ।।
रस भूमि उपासिक रहसि कौ अैसो को ह्वै है सुभट ।
सपूत पूत श्रीहरिदास को श्रीविहारीदास अनन्यनि मुकट ।।४।।

प्राचीन वाणी से उद्धृत–

गायौ नित्यविहार रीति सबही तें न्यारी ।
स्यामा स्याम उपास महा बांध्यौ व्रतभारी ।।

श्रीजुत बोठलविपुल सु गुर वर सिष्य उजागर।
तिनकी कृपा सुपाय गाय गोविन्द गुणागर ।।
एक टेक नित निरबही राव रंक तजि आस।
श्री हरिदास प्रसाद गुण भयो विहारीदास ।।५।।

ज्ञान कौ सरूप रूप भूप भक्तिनि को जक्त जाल तोरिबे कौं प्रगट बडी बुद्धि धीर की। भीनौ रस माधुरी में लीनौ प्रन सहचरि कौं, अति ही प्रवीन सेवा सुख सार सीर की ।। नागरी लडावै भावै पीउ प्राणकौं रिझावै गावै गुण गाथा जमुन कल तीर की। अनन्य सिरमौर जू कौ लाडिलौ विहारीदास महामतवारौ जाहि सुधि न सरीर की ।।६।।

श्री नागरीदास जी–

श्री वृन्दावन सुखरूप सरूप सुहाग कौ।
जामें निधिवन राज हिये अनुराग कौ ।।
सोभित सो वन श्रीमुख फूले कमल हैं।
सब वन के जे पत्र द्रगनि करि अमल हैं ।।
अमल कमल मुख डहडहे लखि सहचरी अंग संग हरी।
देखि वन तन जुगल सोभा प्रान प्रीतम में परी ।।७।।

श्री हरिदासी विपुलजू सहज सुहावने।
लाडिली-लाल जू कहत वचन बधावने ।।
थम सावन तीज भीज रस रंग मैं।
सुभ दिन मंगल रूप सबनि अंग अंग मैं ।।
सबै अंगनि रूप मंगल निरषि सहचरि आवहीं।
प्रगट भूतल बदन सोभा रीझि हिये लगावहीं ।।८।।

श्री विहारी विहारनिदासी प्रगटी।
महामत्त रस प्रगट सखी सुख मैं जटी ।।
श्रीललित विहार सुसार सहज दरसावहीं।
निरनै करि जस गाइ उमगि दुलरावहीं ।।

उमँगि उमँगि दुलराइ विहारैं हेत अद्भुत हीय को।
रसिकन की रस रीति कारन प्रगट्यौ यह सुख पीय को ॥९॥

श्रीललितादिक मिलि मंगल गान सुगावहीं।
बाजे विविधि बजावत राग सुनावहीं ॥
नव नव सखियनि दरसि रूप बलि बलि कहैं।
धन्य धन्य बडभाग जु हम सुख यह लहैं ॥
लहैं सब सुख सब सखीरी फूलि तन मन में बढी।
महारसनिधि-वंस श्री हरिदास के मुख तैं पढी ॥१०॥

अनन्यनृपति श्री स्वामी वंस उजागर।
श्री बीठलविपुल सुहागनि रस की सागर ॥
धन्य धन्य तुम प्रान प्रिया जू की प्यारी।
सब मिलि नाम धर्‌यौ श्रीविहारनिदासि दुलारी ॥
श्री विहारिनदासि दुलारी निरखि मुख छबि जोजिये।
नित्यविहार सरूप को वपु द्रगनि हिये में लीजिये ॥११॥

श्री हरिदासि विहार बधाई देत हैं।
विपुल भूमि अनुराग परस्पर लेत हैं ॥
बाढो निजु रस-रीति रह्यौ रंग छाइ कैं।
रहे किशोर किशोरी रूप लुभाइ कैं ॥
लुभाइ विनोद बड मोद फूले अंग अंगनि मावहीं।
महासुख-निधि प्रगट अवनि पै सहचरी दुलरावहीं ॥१२॥

घमड्यौ घन रस महल रह्यौ झरलाइ कैं।
रसिकनि हिय सब भीजि आनन्द बढाइ कैं ॥
गावत भावत रसिक जु नित्य बधावनें।
परम रसिक-सिरमौर के मौर सुहावनें ॥
सिरमौर श्री हरिदासि जू को श्री विहारनिदासि लडाइये।
श्री सरसदास के भाग की कछु सोभा बरनी न जाइये ॥१३॥

प्रगटी दास विहारिनि रानी ।
निरसंदेह किये रसिकनि कों महाप्रेम सुखदानी ।।
गुप्त रीति संतनि दरसाई अद्भुत रस की खानी ।
श्री हरिदास प्रान धन जीवनि इनही के सहज समानी ।।१४।।

श्री रूप सखी जी–

श्रीजुत श्री गुरुदेव जू, सोभा सिंधु समान ।
विदित विहारनिदासि सखी, मनों बिहारनि प्रान ।।१५।।

ललित सु हेम पगी आछे नग जगमगी अति रंग रँगी सुधा सोंधै रूप सानी है। वस्तर सु अलंकार अद्भुत अमित सार दंपति को उर हार केलि की निसानी है।। परम प्रवाह पूरे आनन्द जस मूरति उमड्यौ समुद्र सब सलिता समानी है। रसिक सिरोमनि उदार गुरुदेव जू की प्रेमपुंज प्रगट प्रकासवान बानी है ।।१६।।

श्री शील सखी जी–

जय जय विहारिनिदास विहारिनि स्वामिनी ।
नाना केलि प्रसंग लडाई भामिनी ।।
वचन प्रचण्ड दिवाकर तमहर जक्त के ।
सुखद मरीचनि सींच कमल मन भक्त के ।।
भक्तजन पोषे कृपा करि त्रिविध विध जिन पद गहै ।
छूटे जगत प्रपंच तें जे सरन दंपति के रहै ।।
अंग संग जिनकी छाप ऐसो कौन त्रिभुवन ह्वै सकै ।
बडभाग जाही के सदा पदकमल जो इनके तकै ।।१७।।

बन्दौं श्री हरिदास चरन पंकज सुखरासी ।
श्री बिपुल विहारिनिदास कृपा हिय मद्धि प्रकासी ।।
जै जै श्री गुरुदेव मोद मंगल सुखकारी ।
अभयदान दातार सदा प्रणतारति हारी ।।
हरी जन की विषम विपदा कुटिल मन साँचे करे ।
भये कुंज केलि कलान कोविद कमलकर तिन पर धरे ।।

सूर श्री हरिदास कौ इक प्रगट महि मंडल भयो।
विध्वंस अखिल अभय विलसत जुगल कौ रस नित नयो ।।१८।।

जै जै श्री गुरुदेव कौन सरि करि सकै।
जिनकी रीति सुनत मन सबही कौ जकै ।।
मन बुधि चित्त अगोचर अनुपम अति खरी।
आनन्दसिंधु अगाध सु दम्पति जस भरी ।।
भरी दम्पति रूप अति अनुराग भागनि पाइये।
जै श्री वर विहारिनिदासि पद पंकजनि मनहि रचाइये ।।
बानी अनादि अभूत परम पवित्र जो जन जानि हैं।
जै श्री वर विहारिनिदासि कौ भजि विमल सुख जग मानि हैं ।।१९।।

जै जै विचित्र विहारिनिदासि प्रिया प्राननि की प्यारी।
रूपसील गुन वैस किसोरी तन अनुहारी ।।
छिन छिन केलि बढावत अन्तर नहिं कदा।
जिनके वस पिय कुंजविहारी सर्वदा ।।
सर्वदा वस कुँवर मोहन कुँवरि सों हँसि यों कहै।
हितकरन इन सम और नाहिन सुख समाजनि लै बहै ।।
इह गर्व मद माते रहैं नित चित्त और न आवहीं।
जै श्री वर विहारिनिदासि की कौन समसरि पावहीं ।।२०।।

जय जय श्री गुरुदेव प्रेम सागर अति नागर।
श्री हरिदास रसिकवर कौ वर कुँवर उजागर ।।
श्री वृन्दावन दृढवास रहसि की बात बतावैं।
जो सुख सबतें दूर सु हस्तामलक दिखावैं ।।
दिखराइ दीनी सहज निधि बिनु कृपा कोऊ न पाइ हैं।
पावै सोई सो वर विहारिनिदासि कौ दुलराइ हैं ।।
हरिदास प्रेम समुद्र वीचिन में मगन जे ना भये।
यह सन्धि अति बाँकी जगत जन बहुत नागर पचि गये ।।२१।।

जै जै श्री गुरुदेव विमल वैराग्य विराजैं।
रसिकनि की मनि मौलि सदा सर्वोपरि गाजैं॥
कुंजकेलि भुजमेलि प्रिया अंगसंग सुहाई।
महामाधुरी मत्त तान कल कोविद गाई॥
गाई मनोहर तान सों छवि देखि छकि चषि थकि रहे।
आवत न जानत जात तीनौ काल ऐसी विधि गये॥
कल्यान हेत प्रकास करि जग प्रगट भई अद्भुत अली।
विपुल श्री हरिदास जू की रीति निर्बाही भली॥२२॥

जै जै श्री गुरुदेव रसिक हरिदास पियारौ।
धर्म अनन्य प्रकास कियो जिन हंस उज्यारौ॥
दीनन के प्रतिपाल त्रिविध भव-ताप निवारी।
बरनी रीति यथामति जानि विरद बल भारी॥
बिरदबल जानि यह चित मानि करुना कीजिये।
जय श्री वरविहारिनिदासि जू मोहि दासि अपनो कीजिये॥
हीन हौं सब अंग सब विधि नाम निश्चै हिय धरचौ।
जय श्री वरविहारिनिदासि जू सखि सील चरननि तर परचौ॥२३

जै जै श्री गुरुदेव कृपा हि मनाऊँ।
अपनी बुद्धि प्रमान कछु गुन गाय सुनाऊँ॥
मंगल नाम अनूप विहारिनिदास कौ।
कलिमल खंडन मंडन विमल प्रकास कौ॥
परकास कीनौ हंस ह्वै कै द्वन्द तम जिनके गये।
जय श्री वर विहारिनिदास पद पंकजनि जे मधुकर भये॥
अद्वैत विमल विहार दरसे परस दंपति कौ करै।
बाढै विशद बल्ली महामाधुर्य रस मन अनुसरै॥२४॥

जय जय श्री गुरुदेव जगत जस जगमग्यौ।
जो पद सब ते दूरि तहाँ तनु मन लग्यौ॥

अति चाहत प्रिया लाल सदा तिनकी मया।
विलसत केलि विहार विहारिनि की दया।।
दया बल गरजत विपिन हरिदास प्रभुकौ लाड़िलौ।
सुख सिंधु सीमा प्रेम की गुण-खानि मन कौ चाडिलौ।।
गम्भीर मन बानी विमल रानी किशोरी पाय कैं।
विपुल श्री हरिदास कौ रस पियत नैंन अघाय कैं।।२५।।

जय जय श्री गुरुदेव महानिधि अवतरी।
अघट अलौकिक प्रीति रीति सब तें खरी।।
यह निधि जग में बुधि बल क्यौं करि आवहीं।
उनकी विमल कृपा बिन कोऊ न पावहीं।।
पावत न शंकर शेष अज श्रीपति सदा ललचावहीं।
जय श्री वरविहारिनिदास लीला कौन कोविद गावहीं।।
उत्कर्ष आनन्द भूरि भाग्यनि भूरि जो जन जानि हैं।
सोई सुघर सूर प्रवीन मन वच कर्म करि नित मानि हैं।।२६।।

जय श्री विचित्र विहारिनिदास रास रस ते मति आगे।
व्रज की रीति न प्रीति सदा इकरस अनुरागे।।
ज्ञानैस्वर्य महातम विधिनिषेध सब नाके।
रूप रसासव पान करैं निसिदिन चष छाके।।
छके दृग दम्पति विमल रस कलप पल सम मानहीं।
अपनी किसोरी कृपा - बल और चित नहिं आनहीं।।
वैराग्य की दृढ सींव सागर प्रेम को नागर महा।
जय श्री वर विहारिनिदास गुन बरनै कोऊ कहाँ लौं कहा।।२७।।

जय जय श्री गुरुदेव सदा सुख विरद विराजै।
बाणी मृदुल अनादि सिद्ध सर्वोपरि गाजै।।
जाके पिय वस स्याम सदा वृन्दावन रानी।
राखे प्रान समान सखी निजु अपनी जानी।।

जानि सहचरि आपनी नित केलि रस पोषैं हियौ ।
हँसि कहत पिय सों हितकरन ऐसो नहीं कोऊ वियौ ।।
चतुर पिय नागर सिरोमनि जानि प्रिय की लाडिली ।
छिन छिन कहत मेरी विनय कीजौ तुम सदा सु चाडिली ।।२८।।

जय जय श्रीगुरुदेव सदा प्रणतारति हारी ।
मोसौं पतित पतंग कियो छिन में सुखकारी ।।
नाम महाधन ललितकिसोरीदास कृपा वल पायो ।
अति अगूढ तुव हेत यथामति गाय सुनायो ।।
सुनाय बहुविधि कहत हौं निजदासि अपनी कीजिये ।
प्रिया हरि हरिदास रति दृढ वास वन में दीजिये ।।
अति दीन छीन मलीन मेरे सकल कलिमल सोषिये ।
जय श्री वर विहारिनिदास जू सखि शील तन अवलोकिये ।।२९।।

श्री किसोरदासजी–

बसो मो सीस विहारनिदास ।
नित्य निकुंज विहार सार सुख कीनों प्रगट प्रकास ।।
बानी सुनत सनत दंपति पद दरसि परत रस रास ।
दास किसोर नमित अंघ्री सिर धरत भरत विस्वास ।।३०।।

विहारिनदास बसो मो सीस ।
मैं हूँ दास नित्य इनकेरो यह स्वामी मो ईस ।।
इनके पद पंकज अलि मो मन जन अनन्य के धीश ।
दासकिसोर कहत तुमसे तुम और करत किम रीस ।।३१।।

श्री सहचरिशरण जी–

जाकैं सुख संपति अपार छवि श्यामा श्याम बारैं सब तापर विभूति सुरराज की । कबहुँक नैंन मूँदि खोलैं पुनि बोलैं बैन आनन अनूप जोति आभा द्विजराज की ।। छकित छबीलो छैल डोलत निकुंजनि में प्राण के समान मानी रज वन राज की । रसिक अनन्य जन धावत विलोकिबे को धारी है विहारिदास गति गजराज की ।। सब सुख मूल अनुकूल उर

छाय रह्यौ सरस विहार बर बानी विच गायौ है। जुगल किशोर चितचोर मुख देखैं नित भावना मगन मन भाव दरसायौ है ।। स्वामी हरिदास जू कौ वंश अवतंस यह धर्म के प्रकासिबे कौ आसु चलि आयौ है। रहनि कहनि ताकी बाँकी को बखानि सकै नाम श्री विहारिदास दासनि कौ भायौ है ।।३२।।

श्री नवलदास जी–

एक ही सिंगार तन एक प्रान एक मन एकही स्वरूप कापै परत बखानी है। एक ही बरन अंग भूषन वसन सुरंग एक ही सुभाव राग रंग सुखदानी है ।। एकही सुदृष्टि सखी नैननि सों नैन जोरैं एक ही समान राग रंग सुखदानी है। नवल विहार दोऊ पटतर कौ न कोऊ श्री विहारिनिदास किंधौ विहारिनि रानी है ।।३३।।

सुखनिधि प्रगटी विहारनि रानी।
श्री विहारनिदासि रसिकमनि भूपै नित्यविहार सुखदानी ।।
सावन तीज रस भरी सहचरी विपुल विनोदनि आनी।
श्री हरिदासि उदार धीरवर श्री किशोरीदास जस गानी ।।३४।।

लाड़िलीलाल के प्रेम सहाइक दायक सुख सबै गुन रासी।
राग के रंग रिझावत गावत भावत हैं नित श्री हरिदासी ।।
अंग संग रहें मन श्वास लहें रस रीझि प्रिया पिय देत स्यावासी।
वलि नागरीदास लडावत यों धनि धन्य अनन्य विहारिनिदासी ।।३५।।

दास विहारिनि लाडिली, सब रसिकनि शिरमौर।
सपने हूँ जानें नहीं, श्री स्वामी बिनु और ।।३६।।
रसिक रीति हरिदास की, विरलो कोऊ बूझ।
पूछ विहारिनिदास को जिन समझायो मूझ ।।३७।।
श्री स्वामी के लाड़िले गुरुदेव उदार।
अंग संग केलि विलोकहीं विलसैं सुखसार ।।
उमंगि उमंगि अंको भरैं प्रिया प्रान अधार।
ललित किसोरी प्रेम सों अतिरंग अपार ।।३८।।

(131)

गूदरी कमंडल कोपीन आडबंध व्रजमंडल अखंड दृढ श्रीवन निवास है। अद्भुत अवधूत कोउ कहा तिन्हें जानि सकै चुवत मुखारविंद दंपति विलास है।। वृक्षनि निहारि कुंज-कुंज में प्रचार करि भावना विचारि कै विहार कौ प्रकास है। आये नन्दलाल संग ग्वाल लखी चाल दृग खोलि मैं गुपाल, हरिदास पद आस है।।३९।।

अंतर में भाय दंत धावन कूँ धाय पद एक तुक गाय चित चाय न संभार है। बीते तीन काल रूप जाल फँसे लालन के मदनमोहन लाल हेरि कै अपार है।। सेवक के हाथ दे प्रसाद सो पठाय दियो लियो कहि छीयो हरिदास ही उदार है। एक व्रजवासी हो उपासी इन चरननि कौं सोहू फिरि आय लखे गावत सुसार है।।४०।।

बानी रस सानी नहिं जानी न जनाये बिन जानै मन आनी मति सानी जुग रंग है। गाय गाय चायन तैं भायन के भार भरे नैंननि प्रवाह उर उठत उमंग है।। रसिक अनन्य हू प्रसन्न भये धन्य कहैं अन्य की न आस हरिदास श्याम संग है। महिमा अपार पार पावत न कोऊ निरधार हू न होत मति हारि होत दंग है।।४१।।

श्री जुगलप्रिया शरण जी–

उत्तम तत्सुख देत विरह भ्रम समुझौयो।
महा मधुर शृङ्गार भक्ति वर कथन सुहायो।।
राधाकृष्ण निकुंज केलि के पर अधिकारी।
गौर स्याम छबि नैन, बैन भक्तन सुखकारी।।
श्री वृन्दावन बास थल बढ्यौ जहाँ रसराज हिय।
श्री बिहारिनिदास की बानी रसिक समाज प्रिय।।४२।।



(132)

श्री स्वामी बिहारिनदेव जू की बानी

★

सिद्धान्त

रसिक-अनन्य-नृपति-चूरामनि श्रीस्वामीजू महाराज के निज-कृपा-पात्र रस-सागर श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू, तिनके परमप्रिय-सिष्य, अनन्य-मुकुट-मणि सहज-कृपा वपु श्रीगुरुदेवजू ने अपनी अमृतदा वाणी द्वारा परमार्थ को आधार एवं मूल स्वरूप श्रीगुरुन के सर्वोच्च स्वरूप कूँ वर्नन करते भये कह्यौ—

प्रथम लडाऊँ श्रीगुरु बंदन करि श्रीहरिदास।
बिपुल प्रेम निजु नेंम गहि कहि सुजस बिहारिनदास ।।१।।

निपट नित्य-बिहार रसोपासना के स्वरूप कूँ वर्नन करते भये, श्रीगुरुदेवजू बोले कि—मैं सर्वप्रथम अपने श्रीगुरुन कूँ ही लाड़-लड़ाऊँगो, जिनने अति माया-मुग्ध मृतक समान मो सरीखेन कूँ, सर्व-सारातिसार-प्रेमरस-दान दैंकें, इहलोक-परलोक में मेरो रोम-रोम अद्भुत सुखसों सुखी करि, समस्त रीति-भाँति सों निहाल करि दीनों। अब प्रस्न यह होइ है कि ऐसे अति-विचित्र उदार-चूरामनि-रस-सागर श्रीगुरुन को लाड़ कैसे लड़ायो जाइ ? जा लाड़सों बिनको रोम-रोम आनंद में भरि, पुलकित होइ, फूल उठै, ताको लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—हमारें श्रीगुरुन के तन-मन-प्रान रोम-रोम श्रीस्वामीजू महाराज कूँ लड़ाइ-लड़ाइकें ही अति सुखी होंइ हैं, याते मैं हूँ श्रीस्वामीजी की बन्दना-स्वरूप, नाम, गुन, रस-जसकूँ लड़ाय-लड़ाय, बड़े अनुरागसों गाऊँगो। अब यह प्रस्न होइ है कि—साँचो अनुराग एकमात्र प्रेम-रस ते ही उदय होइ है। प्रेम-रस अनेक जातिके हैं, हमारे श्रीगुरुदेव कौन प्रेम-रस ते रीझे हैं ? ता लक्ष्य सों आप स्पष्ट बोले कि—मेरे रस-सागर श्रीगुरुदेव स्वामी श्रीबीठलबिपुलदेवजू के हृदय-कमल में एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज को नित्य-बिहार रस-जस ही निरन्तर खेलै है, ताही रस-जस कूँ निज-नेम-पूर्वक अपनी वाणी में समस्त रीति-भाँति सों वर्नन करूँगो। यदि कोऊ ये बात कहै है, कि सर्वोपरि तो श्रीबिहारी-बिहारिनीजू ही हैं, सर्वप्रथम बिनकी ही बन्दना क्यों नाँइ कीनी जाइ ? ताको लक्ष्य करि आप बोले कि—अगाध माया-सागर में निमग्न मोकूँ देखि, दया-करुना में बिबस होइ, मायिक लोकन के यावत् पदार्थ एवं सुख सम्बन्धन कूँ अनित्य एवं सतत दुखदाई समझाइ, तहाँ ते निकारि, महासुख-स्वरूप अति उज्ज्वल प्रेम-रस मेरे हृदय में भरि दीनौ।

जब कबहूँ मोकूँ उदास देखैं, तब मेरे ताईं श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना हू करैं हैं। और मोते हित ममता ऐसे राखें हैं, मानो मेरे हित के ही आप स्वरूप है रहे हैं, बिनकी कृपा ते ही आज मोकूँ अद्भुत सुख-स्वरूप नित्य-बिहार-रस स्पष्ट दरसन लग्यौ है, याते श्रीगुरुदेव मोकूँ अपने प्रानन ते हू कोटि-कोटि गुने प्यारे लगै हैं। और बिनके ही प्रान-स्वरूप श्रीबिहारी-बिहारिनीजू हैं, जासों वे मोकूँ बिनते हू अति प्यारे लगे हैं।

जब ते प्रभुहि नवायो माथ।
तब तें सुख ही में सुख दीन्यौ लीन्यौ गहि हरि हाथ॥
आज्ञा हीन दीन न भयौ पै तज्यौ न स्वामी साथ।
श्रीबिहारीदास चेरे सों राच्यौ सहज सनेही नाथ॥

ज्यौं गुरु त्यौं गोबिंद, बिन गुरु गोबिंद किन लह्यौ।
ज्यौं मावस्या इंदु, त्यौं निगुरा पंथ न पावहीं॥२॥

यदि कोऊ ये बात कहै है कि—जब सर्वोपरि सबके हर्त्ता-कर्त्ता श्रीबिहारीजी महाराज ही हैं, तब बीच में श्रीगुरुन कूँ लेबे की कहा आवश्यकता है? क्योंकि श्रीगुरुदेव याही जगत के मानव होइबे के कारन, बिनके स्वभाव सों स्वभाव मिलाइबो, एवं बिनकी रुचि अनुसार चलिबो, आदि अनेक प्रकार की विघ्न-बाधा आवें हैं, ताको लक्ष्य करिकें आपने कह्यौ कि—हे भाई! तुम भली-भाँति सोच-बिचारिकें देखो, श्रीगुरुन के चरन-कमलन को आश्रय लिए बिना, आज ताऊँ श्रीगोबिन्द कहा काहू को मिले हैं? श्रीगोबिन्द को मिलिबो तो बहुत दूर की बात है, बिनके मिलिबे की गैल हू ऐसे प्राप्त नाँइ होइ सकै है, जैसे मावस की रात्रि में चन्द्रमा के दर्सन—कैसेहू नाँइ है सकै है।

गुरु सेये हरि सेइये, हरि सेये गुरु नाँहि।
गुरु छाँड़े हरि की भजै, तिन ते दोऊ जाँहि॥—श्रीललितकिसोरीदेवजू

गुरु सेवत गोबिंद मिल्यौ, गुरु गोबिंदै आहि।
श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, जीवत है मुख चाहि॥३॥

श्रीगुरुन कूँ प्रेम सों सेवन करिबे ते ही, श्रीहरि की प्राप्ति होइ है। इतेक ही नाँइ, श्रीगुरुदेव ही साक्षात् बिहारीजी महाराज दरसन लगै हैं, या विषय में अपनो ही दृष्टान्त दैकें आप बोले कि—श्रीगुरुन कूँ सेवन करते-करते ऐसो प्रेम उदय है गयौ

कि श्रीस्वामीजू महाराज के मुखचन्द्र कूँ देखि-देखिकै ही हम सतत जीवें हैं।

श्रीबिहारीदास श्रीगुरु सेवन बिनु नाहिन भजन बियो।

× × ×

श्रीगुरु सेवत सबै सहाइ।
ज्यौं जल मूल दिये फल फूलनि उमंगि चलत अरुनाँइ॥
साधन सिद्ध होत ताही छिन भ्रम तम श्रम नसि जाइ।
तिनसों प्रीति प्रतीति बढ़त छिन ही छिन सहज सवाइ॥
श्रीवृन्दावन घन नव निकुंज दंपति संपति सुखदाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा ते हस्तामल बिमलाइ॥

गुर मीठौ संसार में, गुरु मुख मीठौ होइ।
रस ही रस गुरु सेइयै, तौ गुर तैं मिश्री होइ ॥४॥

जैसे संसार में गुर मीठो होय है, तैसे ही श्रीगुरु के श्रीमुख कमल सों निकसे भए बचन अति प्रभावसाली एवं मीठे लगै हैं। अर्थात् बिनके बर्नन तें श्रीजुगल की अनन्त प्रकार की देखन, मिलन, बोलन, हंसन, चितवन आदि प्रेम-माधुरी कूँ सुनिकें सिष्य कूँ बिनके वचन अमृत ते हू मीठे लगन लगै हैं। सुद्ध श्रद्धालु सिष्य कूँ श्रीगुरून कौ प्रेम-रस सों सतत सेवते-सेवते, श्रीगुरुदेव ही साक्षात् रस के स्वरूप दीखन लगै हैं।

अब प्रस्न यह होइ है कि—ऐसे रसदाता श्रीगुरुदेव कैसे प्राप्त होंइ? ताको लक्ष्य करिके आप बोले —

जद्दपि गाँडे गुर बसै, बहुत जतन रस होइ।
छाँनि ताइ गुरु कीजियै, तौ भक्ति देइ भ्रम खोइ ॥५॥
जोति बाहि पचि ईखबै, इतौ श्रम सहि रस होइ।
जो गुर करि खेंयै नहीं, तौ गुरु करै न कोइ ॥६॥

जैसे गुर गाँड़ेन में ही होइ है, किन्तु बहुत जतन करिबे पै ही रस प्राप्त होइ सकै है। तैसे ही इन समस्त परमार्थी—महापुरुषन में ही श्रीगुरुदेव हैं, तौहू सत्संग द्वारा—बिनके स्वभाव, प्रकृति तथा उपासना—उद्देश्य आदि समस्त बातन कूँ भली-भाँति समझि लेउ, और रस-देस में कहाँ ताऊँ बिनको प्रवेस है? काहू प्रकार को जागतिक लोभ, लालच, अभिमान आदि तौ नाँइ है? तथा यावत् भ्रमन कूँ

समन करि, सुद्ध भक्ति महारानी को ही स्वरूप बिनके उपदेस में दरसतो होय, या भाँति भली प्रकार ताय-छानिकें, बिनके श्रीचरन-कमलन को साँचो आसरो लेवोगे, तबहीं रस प्राप्त होइ सकैगो। अब प्रस्न यह होइ है कि–सिष्य में इतेक ज्ञान पहिले कैसे उदय है सकैगो ? जासों समस्त भ्रमन को समाधान करि, भक्ति एवं रसके स्वरूप कूँ समझि सकै, ताको लक्ष्य करिकें आप बोले कि–हे भाई ! जब ताऊँ पहिले कोऊ गुरु एवं सत्संग द्वारा परमार्थ के स्वरूप को कछु आस्वादन नाँइ है जायगौ, तब ताऊँ इतेक समझिबो कठिन है।

याते और-और परमारथन को आस्वादन करते-करते जब साधक कूँ कछु रस को ग्यान होइगो, तब हीं रसिक-अनन्य उपासना की सर्वोपरिता बाकूँ दरसैंगी। जब रसिक-अनन्य उपासना में वाकी रुचि उदय है जाइगी, तबहीं रसिक-अनन्य गुरुन के सरन जाइकें, अपने मनभामते मनोरथन कूँ सफल करि सकैगो।

जैसे गन्ना बोइबे के ताईं किसान बड़े परिश्रम सों खेत कूँ जोत-वायकें गन्ना बोवै है, तैसे ही साधक अपने हृदय कूँ मायिक विषय, सुख-स्वाद एवं संबंध-रूपी झार-झंखारन कूँ उखारि, साँची श्रद्धा कोमल-भाव सों श्रीगुरुन को आसरो लेइगो, तबहीं श्रीगुरुन की कृपा ते उज्ज्वल बुद्धि में भक्ति-भाव को अंकुर उदय होइगो।

घर ही में गुर घोरियै, मुख मेंकु मिठाई नाँहि।
पासंग चढै न लाट कैं, ताहि चैंटा माखी खाँहि ।।७।।

जो लोग घर में ही भाई, बन्धु, चाचा, ताऊ, पिता आदि कूँ ही गुरु करै हैं, बिनकूँ परमार्थ को स्वाद आइबो ही कठिन है। क्योंकि बिनमें गुरुन सदृस साँचो भाव उदय होइ ही नाँइ सकै है, और वेहू साँचे वैराग-त्याग के उपदेस दैबे में संकोच करेंगे। याते हम गुरुन के नाम एवं गुन तुम्हें बतावै हैं। बिनके उपदेस ते ही गुरुन के स्वरूप कूँ भलीभाँति पहिचान सकोगे।

सुनि लै गुरु के नाम गुन, स्वाद भेद पहिचाँनि।
खारे कारे किरकिरे, करर करुवे हाँनि ।।८।।

जैसे जगत में कोऊ गुर खारो होइ है, तैसे ही विसुद्ध भक्ति में कर्मादिकन कूँ मिलाइकैं उपदेस दैबेवारे गुरुन को स्वरूप खारो समझनो चहिये।

भक्ति-विहीन केवल कर्मादिकन के उपदेष्टा गुरुन को स्वरूप कारो गुर सदृस होइ है।

श्रीभगवान की भक्ति में बर्नाश्रम मिश्रित उपदेस दैबेवारे–गुरुन कूँ किरकरो माननो चहिये।

अति सुष्क ब्रह्म-ज्ञान के उपदेष्टा गुरु कर्‌रा गुर के समान होइ हैं।

तमोगुनी देवतान की उपासना बताइबेवारे गुरुन कूँ करुवे गुर सदृस समझनो चहिये।

उपरोक्त गुरून कूँ करिबे तें सर्वोपरि सुखदाई रसिक-अनन्य-उपासना में हानि होइ है।

कर्मठ पै भागवत सुन्यौ सठ, ज्ञानी गुरु पै लीनी दीक्षा।
आपुन रसिक अनन्य कहावत, सुफल होय क्यों शिक्षा॥
मिहरी के स्यौराति सीतरा, पूतहिं पितर अपेक्षा।
बारह बाट अठारह पैडे, क्यों पूजै मन इच्छा॥
अटवट गोत कनावड़ो सबको, कौन करि सकै रक्षा।
श्रीबिहारीदास हरिदास भजै सुख, यह निज प्रेम परीक्षा॥

इक गुर खैयै नाजसों, इक खैयै घी साँनि।
इक गुर में सब माधुरी, सो मुख स्वाद पिछाँनि॥९॥

एक गुर ऐसो होइ है, जाको नाज के संग ही खाइकें आस्वादन कियो जाइ है, तैसे ही प्रेम-रस-विलास कूँ–लोक-वेद तें मिलाइ कें वर्नन करिबेवारे श्रीगुरुन के स्वरूप कूँ समझनो चहिये।

एक गुर ऐसो हू होइ हैं, जाकूँ केवल घी के संग आस्वादन कियौ जाइ है, तैसे ही लोक-रीति सों परे ईस्वरता-मिश्रित, प्रेम-रस-विलास को वर्नन करिबेवारे गुरुन के स्वरूप कूँ समझनो चहिए।

एक गुर में केवल माधुरी-माधुरी ही भरी भई होइ है, जाको स्वाद बढ़ाइबे के ताईं, और कोऊ वस्तु मिलाइबे की आवश्यकता ऐसे नाँइ होइ है, जैसे मिश्री में। तैसे ही रसिक-अनन्य गुरुन के उपदेस में केवल माधुरी-माधुरी ही भरी भई होइ है, अर्थात् जामें लोक-वेद, विधि-विधान, ईश्वरता, और-और प्रेम-रस माधुरी आदि काहू की नेक हू मिलौनी नाँइ होइ है। उपरोक्त लक्षनन ते श्रीगुरुन के स्वरूप कूँ नीकी भाँति पहिचान लेनों चहिये।

पैसनि के भूखे फिरें, परमारथ के दाँनि।
श्रीबिहारीदास धनधर्म बिनु, ते गुरु दालिद्री जाँनि॥१०॥

कोऊ गुरु-सिष्य ते, केवल अर्थ प्राप्ति के ताईं ही दीक्षा, उपदेश आदि देवें हैं। ऐसेन कूँ तो आप कौ कथन है कि–दारिद्री ही समझो, कारन बिनके हृदय में परमारथ धर्मरूपी-धन है ही नाँइ।

निस्प्रेही उपकारि गुरु, सिष्य सुद्ध सर्धाल।
राँभत ही थन च्वै चलै, ज्यौं गऊ बछा पाल ।।११।।

जो श्रीगुरु तो एक मात्र निस्प्रेही, और सिष्य सुद्ध श्रद्धालु होइ हैं, वेई गुरु-सिष्य परमार्थ को आस्वादन करि सकें हैं, कारन कि सुद्ध श्रद्धालु सिष्यन की साँची जिज्ञासा-रूपी-लालसा देखि, निस्प्रेही गुरुन को हृदय ऐसे उमड़ परै है, जैसे लबारा के नेक रँभाते खेम, गैया के थनन में दूध चुचावन लगै है।

उपदेसत गुरु रूप होइ, सिषि सुनि करै बिचारि।
सनमुख भयें न सहि सकै, गुरु किधौं बटपार ।।१२।।

कोऊ गुरु ऐसेहू होइ हैं कि–सिष्य कूँ जागतिक सुख-सम्बन्धन कूँ नासवान् एवं दुःखदाई समझाइ कें, परमार्थ कूँ अद्भुत-सर्वोपरि नित्य-सुख-स्वरूप निरूपन करें हैं। जब सिष्य संसार त्यागिबे के ताईं तैयार होइ है, तब अपने प्रति क्लेस एवं स्वार्थ की क्षति समझि, उलटे घर में ही रहिबे कूँ समझावन लगै हैं। ऐसे गुरुन के प्रति तो आपने स्पष्ट कह्यौ कि–तिनकूँ रास्ता के लुटेरा ही समझो।

सिषिहि परमारथ रुचै, गुरुहि रुचै रुजिगार।
श्रीबिहारीदास अनखावनौं, ज्यौं दालिद्र में त्यौहार ।।१३।।

सिष्य कूँ तो परमार्थ की मन में लालसा है, और गुरुन कूँ गुरु-गिरी द्वारा रोजगार करिबो सुहावै है, ऐसे गुरुन ते सिष्य कूँ या प्रकार को क्लेस मालूम परै है, जैसे काहू अति दारिद्री के घर में त्यौहार के आइबे ते होय है। अर्थात् श्रद्धालु सिष्य कूँ गुरुन ते अभाव करिबो हू नाँइ बनै है, और गुरुन के रोजगारीपने को स्वभाव हू अच्छो नाँइ लगै है, याते वाके मन की अति विषम स्थिति बनी रहै है, न तो उमँगि कै गुरुन की लाड़-सेवा ही करि सकै है, और न त्यागि ही सकै है।

जो गुरु करै सिष्य की आस, स्याम भजन तें होय उदास।
स्वाँन समान जगत उपहास, ऐसी कही बिहारीदास ।।१४।।

जो गुरु-धन, सम्पत्ति तथा अपनी सेवा आदि, काहू प्रकार की स्वार्थमय

सिष्य तें आसा राखै हैं, वह निस्चय ही भजन-भाव ते उदास है जाइ हैं, और जगत में विनको उपहास अनादर हू होय है।

जाकौ गुरु जु भिखारिया, सिष्य सु मचला जाँनि।
भलौ बुरौ छाँडै नहीं, समझै नफा न हाँनि ॥१५॥

जिनके गुरु भिखारी सदृश जगत में जहाँ-तहाँ माँगते डोलै हैं, बिनके चेला तो धरनो ही दियो करेंगे। ऐसे लोग भलो-बुरो, आदर-अनादर ते जैसौ-तैसो दान लेबे में अपनौ हाँनि-लाभ कछु समझै ही नाँइ हैं।

जाकौ गुरु भटकत फिरै, सिष्य बघूरौ बाइ।
धूरि उडावै देस की, घर बाहिरि खर खाइ ॥१६॥

जिनके गुरु मायिक लालसान में अति विवस, जहाँ-तहाँ भटकते डौलै हैं, बिनके शिष्य अपने मनोरथ सिद्ध करिबे के ताईं, अनेक प्रकार के खडयंत्र रचि, देस-देसान्तरन में धक्का खाते फिरेंगे।

गुरु तें घर न छिपाइयै, गुरु गोबिंद के दाँनि।
कल्लरु बयौ न नीपजै, श्रम बाढै धन हाँनि ॥१७॥

परमारथ के लालायित जनन ते आप बोले—कि हे भाई! गुरुन ते अपनौ घर, सम्पत्ति, हाँनि, लाभ, गुन, दोष आदि काहू बात कूँ छुपाइबे की चेष्टा मत करो, क्योंकि गुरु साक्षात् श्रीबिहारीजी महाराज कूँ प्राप्त कराइबेवारे हैं, यदि ऐसे भाव-रूपी बीज अपने श्रद्धालु-हृदय में नाँय बोइ कें राखोगे, तो तुम्हारो हृदय कल्लर-सदृश निष्फल है जायगो, और जो कछु ऊपर से तुम सेवा-व्यवहार करोगे, वाते केवल परिश्रम और तुम्हारे धन की हाँनि ही होइगी।

ज्यौं राजा गज दानु दै, यों गुरुहि समर्पै प्राँन।
मिहरी अंकुस लोह की, ताकौ करै न दाँन ॥१८॥

जैसे राजा हाथी को तो दान करि देवै, और लोह को अँकुस देबे में विचार करै, ऐसे ही तुम हाथी स्वरूप अपने प्रान तो गुरुन कूँ भेंट करि देवोगे, और अंकुस स्वरूप मायिक-पदारथन कूँ देबे में विचार करोगे, याते तुम्हें सोचनो चहिए कि—साक्षात् श्रीविहारीजी महाराज ते सम्बन्ध-सेवा-सुख बताइबे, एवं प्राप्त कराइबेवारे श्रीगुरुदेव सों कैसो भाव राखनो चहिए?

गुरुन दई जो वस्तु है, जुगल प्रेम को बोल।
तीन लोक कों को गनें, तन, मन, प्रान अमोल ॥—श्रीललितकिसोरीदेवजू

गुरु अचवावै माधुरी, सिष्य दुरावै साग।
श्रीबिहारीदास सत भाइ बिनु, बाँडाइ अनुराग॥१९॥

श्रीगुरुदेव तो सिष्य कूँ दया-ममता में विवस, बड़े अनुराग सों प्रेम-रस महा-माधुरी पान करावैं, और समय-समय पै बहिर्मुखता ते बचाइकें राखैं, तौहू सिष्य साग-सदृश अपने मायिक-पदारथन कूँ या भाव ते छुपाइके राखै है कि—आप कछु मोते माँग न लेवैं। ऐसे सिष्यन कूँ साँचो भाव न होइकें, बिनकी ऊपर की ही दंडवत मात्र है।

स्वाँन ससे की लगन ज्यौं, बनी लँगरचौ आँनि।
सिष्य सूम गुरु लालची, दोऊ भोंडे जाँनि॥२०॥

कोऊ २ गुरु-शिष्य, दोनों ही ऐसी प्रकृति के होय हैं, जैसे खरगोस-स्वान की प्रीति होइ है। गुरु चाहें हैं कि चेला प्रेम में आइके, कछु श्रद्धा में आगे बढ़ि जाय, तो याते इतेक भेंट करवाइ लैं, और चेला केवल बातन की ही चतुराई लगायौ करै ऐसो सूम तौ सिष्य और लालची गुरु, दोऊन कूँ ही परमार्थ तें बहिर्मुख समझनो चहिए।

सूमहि निस्प्रेही बनैं, लोभी लपरा रंग।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिनु, और सुहाय न संग॥२१॥

कोऊ-कोऊ सूम प्रकृति के होइबे पैहू ऊपर ते निःस्पृहता दिखावैं हैं, और कोऊ लोभी प्रकृति के तो हैं, किन्तु लपरापने के रंग बाँध्यौ करैं, याते हमने साँचे श्री हरि के दासन के अतिरिक्त और काहू को संग सुहावै ही नाँइ है।

दरबराय गुरु सिष्य कौं, बहुत पच्यौ सिर खोइ।
नाँतरु तोहिं डँडाइहों, कै मेरौ सेवक होइ॥२२॥

कोऊ-कोऊ गुरु जगत में ऐसे हू होय हैं, जौ कछु बाना-बन्दी के जोर हू अपने मन में राखें हैं, याते सिष्य करिबे के ताईं डाट-डपट दिखाइ कहैं हैं कि—यातो हमारी दीक्षा लै लेउ, अन्यथा तोय अनेक कष्ट उठाने परेंगे।

अब के गुरु आमिल भये, हुन्नर बहुत हबूब।
भई गई समझै नहीं, मापत बंजर दूब॥२३॥

फिर आप बोले कि–हे भाई ! आज कल के गुरु हाकिमन की नाईं, अपनी भेंट-पूजा कराइबे के हुन्नर तो अनेक प्रकार के राखै हैं, किन्तु सिष्य की परमार्थ-उन्नति माँऊ कछु दृष्टि ही नाँइ देवैं हैं।

सींग बडे टाडचौ बडी, खर चरि रहे मुटाय।
गोसाँई घूरे खणैं, रांभत राख उडाय ॥२४॥
गोसाँई गहि जोतिये, नाकनि मोटी नाथ।
आगें पगहा खैंचिये, पाछै पैनी हाथ ॥२५॥
बडे बिदित तुम जगत में, विविध गारि के दानि।
गुरु की माँ की बहिनि की, देत न मानत हानि ॥२६॥

साखी नं० २४, २५, २६ अर्थ स्पष्ट है।

हम जाचक जाचत रहैं, सब की सुनि सहि लैंहि।
बड़े कान सिर ससै कैं, सींग कहाँ तें दैंहि ॥२७॥

फिर आप बोले कि–हमारो तो वेष-बानो भिखारी को ही है, याते जो कोऊ-कछु कहि लेवैं, हम सब सहन करें है, क्यों कि परमार्थ-पथ के पथिकन कूँ तो काहू-प्रकार के उत्तर देवे को धर्म ही नांइ होय है।

बडी भेंट दंडवत जन, प्रभु दरसन परसाद।
श्रीबिहारीदास निस्प्रेही लहैं, परमारथ कौ स्वाद ॥२८॥

मायिक लालसान ते दुःखी जीव, साँचे भाव सों श्रीसतगुरुन के चरन-कमलन में आइकें जब दंडवत् करि देवैं है, तब सद्गुरु, वाकी दंडवत् कूँ ही सबतें बड़ी अपनी भेंट मान लेवैं हैं, और सिष्य साक्षात् श्रीहरि के स्वरूप-सदृश श्रीगुरुन के दर्शनन कूँ ही, सबते बड़ो महाप्रसाद मानतो भयौ तन, मन सों निहाल है जाय है, ऐसे निःस्प्रेही गुरु-सिष्य ही जगत में परमार्थ को आस्वादन करि सुखी होइ हैं।

भीर परैं जो सांकरैं, संपति विपति बिचारि।
श्रीबिहारीदास कौ सुख ना घटै, अतुलित अमित अपार ॥२९॥

श्री नित्य-विहार के उपासकन के प्रति आपने कह्यौ कि–यदि अनेक प्रकार की एक संग आपत-विपत तुम पै आ जाय, तौ हू तुम्हें सम्पति कूँ तो सबते बड़ी विपत्ति समझनी चहिए, अर्थात् सम्पति के आइबे ते तो अपनी उपासना को भाव ही

हृदय ते चल्यौ जाय है। नित्य-विहार के उपासकन कूँ तो यह बात हर समय अपने हृदय में रखनी चहिए, कि नित्य-विहार-रस-रूपी सुख-सम्पति अतुलित, अमित, ऐसी अपार है, कि कबहूँ काहू प्रकार घट ही नाँइ सकै है, बल्कि छिन-छिन बढ़ती ही जाय है। (कहें श्रीहरिदास मीच ज्यौं आवै, त्यौं धन है आपुन कौं)

श्रीबिहारीदास सतसंग कौं, रंग लग्यौ जो नाँहि।
हंस बछा दूधहि पिवैं, खलु मेल कलीली खाँहि ॥३०॥

जिन जीवन कूँ सत्संग को रंग लग गयो है, तेई जन हंस की नाईं, या जगत में परमार्थ रूपी दूध कूँ ही, सदाकाल पान कियो करैं हैं, अन्यथा तो मूरख जन सत्संग-रूपी दूध भरे थनन के पास में हूँ बैठि कें, कलीलिन की नाईं मैल कूँ खाइ हैं, अर्थात् सत्संग में हूँ सार ग्रहन नाँइ करिकें दोष कूँ ही संग्रह करैं हैं।

देस विदेस भिखारिया, जहाँ जाइ तहाँ भीख।
श्रीबृन्दाबन कन कौर बिनु, बैकुंठ हूँ दुभीख ॥३१॥

भिखारी वृत्तिवारे जीव, देस-विदेस जहाँ-जहाँ जाइ हैं, सब ठौर भीख ही माँगे हैं, कारन श्रीवृन्दावन-प्रेमरस-भाव-भक्तिरूपी-कन-कौर के बिना और कहूँ की तो कहा चलाई? साक्षात् श्रीबैकुंठ में हूँ तृप्ति नाँइ है सकै है, जैसे श्रीगोपकुमारन कूँ।

जो जाचिक है इंद्र कौ, कै दालिद्री द्वार।
भेद भिखारिनि में कहा, समझत नहीं गँवार ॥३२॥

जाँचनावृत्तिवारे चाहे साक्षात् इन्द्र के द्वार पै जाँचना करैं, चाहे या जगत में दर-दर पै भीख माँगते डोलें, दोऊ भिखारी ही हैं, छुद्रबुद्धिवारे जीव या बात कूँ नाँइ समझै हैं।

जो जाचिक कुंजर चढै, लहै कनक लख कोटि।
श्रीबृन्दाबन कन सरि नहीं, जो लेइ खपरिया ओटि ॥३३॥

यदि कोऊ यह प्रस्न करै कि एक भिखारी तो ऐसे हैं कि—जिनकौ कोटानुकोट की संपत्ति मिलै है, और एक ऐसे हैं जाकूँ साधारन भिक्षा ही प्राप्त होइ है, ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि—हे भाई! जाँचना करिबेवारे दोऊ भिखारी ही समझे जाँइ हैं, वे चाहे हाथी पै चढ़ि कोटानुकोट की संपत्ति प्राप्त करैं, तौहू श्रीवृन्दावन बसि के फूटे खीपरा में ही माँग के खाइबेवारेन की समता वे कैसे हू नाँइ करि सकें हैं।

देस बिदेस भटकत फिरै, जाचत साकत सूद।
श्रीबिहारीदास सौं सतरई, ये समझें कहा रबूद ॥३४॥

बिमुख लोग तो देस-विदेसन में जाइ, साकत-सूद्रन ते माँगि-माँगि, कछु संपत्ति लाइ, अभिमान में भरि, निष्किचन संत-भक्तन ते ऐंठ-ऐंठ कैं चलैं हैं। ऐसे मूर्खन कूँ परमार्थ के स्वरूप को कछु ज्ञान ही नाँइ होइ है।

रसिकन सों एँठे फिरैं, बिमुखनि भेंटत धाइ।
ऊँट कपूर न सूँघई, टेढे काँटे खाइ ॥३५॥

कछु लोग ऐसे हू सुभाववारे होइ हैं, जो रसिक-उपासकन ते-तो सदाकाल ऐंठे रहै हैं, और बिमुखन ते बड़े प्रेम पूर्वक धाइ-धाइ के मिलै हैं, बिनकूँ ऐसे समझने चहिये, जैसे ऊँट टेढ़े काँटेन कूँ तों स्वाद लै-लै के खाइ है और कपूर को सूँघबो ही नाँइ जानै है।

काँध कफन की काँमरी, हाथ गहन की गोल।
देखे सुनें न भावहीं, इन छुतिहनि के बोल ॥३६॥

बहुत से लोग ऐसे हू होंइ हैं कि—परदेस जाइ, सती-सेवकन कूँ चेताइ, कछु संपति प्राप्त करि, ऊनी-दुसाला ओढ़ि, अंगूठी पहिरि, हाथ में बेंत लै, श्री वृन्दाबन में बड़े आदमी बनि के चलैं हैं। ऐसे मायामुग्ध जन तो हमें देखे हू नाँइ सुहावें हैं, और न बिनके बोल हू हमें भावें हैं।

सती संकलपि सर चढै, तुला तोलियत हाड।
ता दानें साध न ग्रहै, ग्रहै तौ जानौ राड ॥३७॥

जैसे स्त्री अपने पातिव्रत धर्म में बिबस होइबे पै हू, पति के संग जर नाँइ सकै, वो अपने देह के बराबर धन तौलि कैं दान करै है, ता दान कूँ परमार्थ में चलिबे-वारे साँचे-जन कबहुँ नाँइ लेवै हैं, यदि कोइ लेवै है तो वाकूँ चमार सदृस ही समझनो चहिये।

विमुख न कहूँ सुखी सुन्यौ, कबहूँ तन न सिंगार।
परमारथ परस्यौ नहीं, बहिकाये ब्यौहार ॥३८॥

श्री भगवत-चरनारबिंद के भाव सों बिमुखजन सुखी हैं? ऐसो कबहुँ सुनिबे में हू नाँइ आवै है, और न बिनको मन कबहूँ फूले-दूले है। क्योंकि परमार्थ भाव ते

बिहीन होइबे के कारन व्यवहार के ही आचरन, तथा बात एवं विचार में वे सतत लीन हुए रहै हैं।

पाये लाख विमुख दुखी, तजत न दालिद्र द्वार।
श्रीबिहारीदास सब दिन सुखी, जाकैं भजन बिहार ॥३९॥

फिर श्रीगुरुदेवजू बोले कि–बिमुख-जन तो हमें लाखन मिले, किन्तु सुखी एक हू नाँइ मिल्यौ, कारन दरिद्रता बिनके द्वार पै ही बैठी रहै है। अर्थात् बिमुख जनन के हृदय में मायिक पदार्थन की लालसा सतत बनी रहै है, ताते वे लोग चिन्तित, उद्वेगित, दुखी-दरिद्री ही रहैं हैं। जो महतपुरुष नित्यबिहारसेवी श्री बिहारीदास हैं, वो सब दिन दिव्यातिदिव्य, अद्भुतातिअद्भुत सर्वोपरि प्रेममय नित्य बिहार सुख सों निरन्तर सुखी रहैं हैं।

भक्त भक्ति कैं बल बडो, साकत बित इतराइ।
यह बढै भजन दिन नित नयौ, वह निघट गये बिललाइ ॥४०॥

श्री भगवान के दास छिन-छिन नये-नये भाव ते अपने इष्ट कूँ लाड़-लड़ावैं हैं, ता सुख के प्रभाव सों अपने कूँ ऐसे सुखी मानैं हैं, जाके आगे त्रिलोकी के सुखन कूँ तिनका के बराबर हू नाँइ समझैं हैं।

तुच्छ गिनै त्रैलोक की संपति श्री हरिदास अनन्य बिना न बियो। —श्रीगुरुदेव

वहिर्मुख जन दो दिन के लाईं–धन-संपत्ति पाइकें भले ही ऐठें-ऐठें डोलैं, किन्तु चले जाइबे पै मन में बिललाइ-बिललाइ के रोयो करै हैं।

भक्त भक्ति करि नित नयौ, साकत प्राकृत लीन।
यह रातो मातो चकचकौ, वह दुखी दलिद्री दीन ॥४१॥

श्री भगवान के भक्त नये-नये भावन ते भक्ति करैं हैं, याते सतत अपने भाव-रंग में मत्त-मुदित मतवारे हुये रहैं हैं। बहिर्मुख जीव माया में सने रहिबे के कारन सदाकाल दुखी, दरिद्री, दीन बने रहै हैं।

यातें छाँडी टोंडकी, चलि चलि चितवत छाँहि।
श्रीबिहारीदास सुख संग्रह्यौ, निपट गरीबी माँहि ॥४२॥

हमने याही ते छैल-चिकनियाँपनों छाँड़ि दीन्यो, जो रास्ता चलते भयेहू बेर-बेर अपनी छाया माऊँ देख्यौ करते। अब हमने निपट गरीबी की रहनी कूँ

अपनाइ, सर्वोपरि नित्य बिहार सुख कूँ अपने हृदय में संग्रह करि लीन्यौ है ।

गूदर मेरी नित नई, फाटि गई चौतार ।
इहि परमारथ पाइयै, वे काढत मरै उधार ।।४३।।

फिर आपने दूसरो दृष्टान्त दैकें कह्यौ कि–मैं अपनी गूदरी नये-नये चीर-कतीरन ते संभारतो रहूँ हू, याते नित नई बनी रहै हैं, जाके कारन परमार्थ सहज सुभाउ बढ़तो रहै है और साल-दुसाल ओढ़बेवारेन कूँ धन-समाप्त होइबे पै इज्जत राखिबे के ताईं कर्ज लेनो परै हैं ।

गूदर कौं गूदरै उढाईयै, गूदर गूदर ही डहकाईयै ।
गूदर देह न मन अटकाईयै, गूदर ओढि बिहारी गाईयै ।।४४।।

परमार्थ में चलिबेवारे जनन ते आप बोले कि—हे भाई ! हाड़-चाम सों बन्यौ भयौ, मल-मूत्र सों पूरित, गूदर सदृस या देह कूँ एकमात्र फटे-पुराने गूदरन ते ही निर्वाह करनो चहिए और नस्वर या देह के लालन-पालन में मन कूँ न अटकाइ कें श्रीबिहारीजी महाराज के रस-जसन कूँ सदाकाल निर्स्चितता ते गावनो चहिए ।

संग्रह करियौ गूदरी, खैयो माँगि मधूकरी ।
सेईयौ नित्त प्रति सुंदरी, रहियौ पूता दूरादूरी ।।४५।।

तुम्हारे संग्रह करिबे के ताईं, चीर-कतीरन ते बनी भई गूदरी ही एकमात्र होनी चहिए । श्रीव्रजबासिन के घर-घर ते जैसी भी माधुकरी सहज सुभाउ मिलि जाइ, ताही कूँ बड़े सुख-संतोष सों पायकें आनंद सों रहनो चहिए ।

रुचै मोहि ब्रजबासिन के टूक ।
जारत तृन अभिमान अविद्या मनहु अग्नि के ऊक ।।

यावत् बात-व्यौहारन ते दूर रहते भये, श्रीवृन्दावनाधीस्वरी बनराज-रानी सुन्दरता की रासि सर्वोपरि-श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ बड़े प्रेम-अनुराग ते सदाकाल सेवनो चहिए ।

दूधाधारी पर घर चित्त, नागौ लकरी चाहै नित्त ।
मौंनी करै मीत की आस, गूदरिया रहै भलै निरास ।।४६।।

यदि तुम अपने मन में ये सोचो कि–केवल दूध ही पीकें रहिबे ते साधक को चित्त हरवो बन्यौ रहै है, किन्तु हे भाई दूधाधारिन के मनकूँ हर समय-कौन के घर

गाय-भैंस व्याई हैं, याको ध्यान राखनो परै है, और यदि तुम ये विचार करो कि-गूदरी राखिबे में हू झंझट मालूम परै है, याते हम नागान की रहनी ते रहेंगे तो और हू निस्चित बने रहेंगे किन्तु नागान कूँ हूँ लकरीन की चिंता सतत करनी परै है, यदि तुम मौन रहनी कूँ सुन्दर बिचारोगे तो मैं तुमसों कहूँ हूँ, मौनी कूँ हू अपनो अभिप्राय समझाइबे के ताईं मित्र की आसा लगी रहै है, याते एकमात्र करुवा-गूदरी की ही रहनी सब बातन तें निस्चित एवं सबते निरास रखिबेवारी है।

द्वै कोपीन गूदरी करुवौ, श्रीबिहारीदास इतनैं ही सरुवौ।
स्याम सुजस रस गावत गरुवौ, लागत जग तृन हूँ तें हरुवौ ॥४७॥

करुवा-गूदरीवारेन कूँ—द्वै कोपीन-गूदरी-करुवा के अतिरिक्त और काहू वस्तु की आवश्यकता ही नाँइ परै है, याते वे श्री बिहारीजी महाराज के अतिगूढ़-गुनन कूँ बड़े गर्वीलेपने ते उमंगि-उमंगि के सतत गावैं हैं, ताही ते विनकूँ समस्त जगत तिनका हू ते हरुवो मालुम परै है।

पग नागैं गूदर गरैं, तन दूबरैं सिंगार।
श्रीबिहारीदास उपासत सबै, भूप मुकुटमनि हार ॥४८॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—करुवा-गूदरी की रहनी बड़ी दीन-हीन सी लगै है, ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि—तुम प्रत्यक्ष में देखो कि—श्री स्वामीजू महाराज पगन ते तो सदाकाल नांगे रहै हैं, और कंधा पै केवल एक गूदरी ही राखै हैं। श्रीअंग हू आपके इतेक दूबरे है रहें हैं कि मानो प्रेम रीति को ही शृंगार है रह्यौ है, या रहनी पै ही बड़े-बड़े चक्रवर्ती-सम्राट जिनके दरसन के ताईं द्वार पै ही ठाढ़े रहै हैं और सतत दीन ह्वै आपकूँ अपने हृदय को हार बनाइ के राखै हैं।

भक्त भक्ति करि पूजियै, साकत कै मन पीर।
यह मान अपमान न जानई, वह जुर जरै सरीर ॥४९॥

श्रीभगवान के भक्तन कूँ भक्ति के प्रताप ते सब लोग दंडौत सन्मान-सेवा-आदि अनेक प्रकार सों पूजैं हैं, या मर्म कूँ नाँइ समझिबे के कारन साक्तन के मन में दुख एवं जलन होइ है। और भक्तन कूँ तो अपने मान-सन्मान माऊँ कबहुँ दृष्टि ही नाँइ जाइ है।

साकत संग न जाइये, जो सोनें को होय।
साधिक सिद्धनि को गनें, किते गये गथ खोय ॥५०॥

फिर आप निज जनन ते बोले कि—हे भाई ! श्रीभगवत-चरनारविंदन ते बहिर्मुख साक्तन को संग कबहूँ मत करौ, चाहे वे कितेक हू बड़े, साँच बोलिबेवारे, दयालु-सुभाव के एवं समस्त सद्गुनन ते भरे-पूरे क्यों न होंइ, कारन साक्तन के संग करिबे ते साधकन की तौ कहा चलाई, बड़े-बड़े सिद्ध हू अपनी स्थिति ते गिर गये हैं।

साकत संग न जाईये, जोरु बडौ बिद्वाँस ।
सींचत अरँड करँडुवा, होय न भाल गबाँस ।।५१।।

याही प्रसंग में आपने और हू कह्यौ कि—हे भाई ! साकत यदि बड़ो भारी विद्वान हू क्यों न होइ, वाको संग भूलिकें हू मत करौ, क्योंकि जैसे अन्डउवा कूँ कोऊ कितेक सींचौ, भाला में लगाइबे योग्य बाँस के समतूल बाकी लकरी नाँइ है सकै है। तैसे ही श्रीभगवान के चरनारविंद की अनन्य भक्ति बिनके संग सौं प्राप्त नाँइ है सकै है।

साकत कै घर पाहुँनौं, भूलि भक्त जिनि जाहु ।
श्रीबिहारीदास बिपतौ भली, वर माँस स्वान कौ खाहु ।।५२।।

साकत कौ घर परिहरै, भक्त भक्त कैं जाइ ।
लोभी डिंभी जानियें, जौ श्रद्धाहू न अघाइ ।।५३।।

भक्त भक्त कैं पाहुनौं, भक्त भक्त कैं जाइ ।
आदर करि रुचि सों मिलै, सुख संतोष अघाइ ।।५४।।

फिर अनन्य आश्रितन के प्रति स्पष्ट आज्ञा करते भये आपने कह्यौ कि—हे भाई ! साकत के घर पाहुनो बनिकें भक्तन ने कबहूँ भूलि की ही भूल में नाँइ जानो चहिए। यदि तुम पै ऐसी विसाल विपत्ति हू आइ परै, जोकि भोजन तो कहूँ प्राप्त नाँइ है, बाके बिना प्रान जाइबेवारे है रहें हैं। या भीषन स्थिति में स्वान को मांस खाइबो तुम्हारे ताईं अच्छो, किन्तु साकत के घर खाइबे सों तो तुम्हारी अनन्य भक्ति ही समूल नष्ट है जायगी। याते साकतन कौ घर त्यागि, भक्तन कूँ भक्तन के ही घर जानो चहिए। चाहे वो भक्त निस्किंचन स्थिति होइबे के कारन केवल श्रद्धा प्रेम सों तुम्हारे सन्मान मात्र ही करि सकै। बाते ही भक्तन ने प्रसन्नता में अघाइ जानो चहिए। जो लोग भक्तन की श्रद्धा, प्रेम, सन्मान पाइकें हू, नाँइ फूलें हैं, बिनकूँ भक्त न जानिकें लोभी, दंभी ही समझनौ चहिए। याते सहज सुभाउ भक्तजन भक्तन के ही घर तो जाइ हैं, और भक्त भक्तन के ही पाहुने बनै हैं। श्रीभगवान की भक्ति के

नाते ऐसी प्रसन्नता प्रेम रुचि सों वे मिलें हैं, जाके कारन भक्त सुख-संतोष से अघाय जाँइ हैं।

साकत सूद मलेछ लौं, बुरौ न कहियै कोइ।
श्रीबिहारीदास सब सुधरि हैं, जो मन सूधौ होइ ॥५५॥

फिर आप साधक समाज कूँ सावधान करते भये बोले कि—हे भाई! साकत सूद्र, मलेच्छ आदि कोऊ क्यों न होइ, तुम्हें अपने मुखते काहू कौ बुरौ नाँइ कहनौ चहिए। क्योंकि बिनकौ मन यदि साँचौ सूधौ है तो, समय पाइकें वेहू सुधरि जाँइगे।

श्रीबिहारीदास बिचार यह, मीन सही जिय हाँनि।
अपनों गुन नहिं छाँडई, इनि बिषइनि की पहिचाँनि ॥५६॥

विषइनि कौ सँग सर्वथा, तजि मन निजु जिय जाँनि।
वह करै तिही छिन आपसौं, यह बडो भक्ति बिच हाँनि ॥५७॥

फिर आप बोले कि—हे भाई! दूसरी बात ये हू बिचारिबे की है कि—भक्ति विहीन ये बिषयी लोग अपने सुभाव को ऐसे नाँइ छाँड़ै हैं, जैसे मछली जल के बिना अपने प्रानन कूँ हू दै देवै, तौहू जल अपने जड़ सुभाव कूँ नाँइ छाँड़ै है।

याते तुमने मन, क्रम, बचन, सर्वप्रकार सों बिषइन को संग सर्वथा त्याग देनो चहिए, क्योंकि ये लोग छिन-मात्र में ही अपने सदृस बनाइ लेवें हैं याते भक्ति पथ में बिनकौ संग बहुत ही हानिकारक होइ है। या बात कूँ तुम भली-भाँति अपने हृदय में धारन करिकें राखो।

विषई भक्त न निंदियै, साकत साध असाध।
वह निगुसाँयों विमुखई, यह सनमुख भक्त अबाध ॥५८॥

जो अनन्य अन्याइ यौं, भजत भक्ति सत भाइ।
साकत कर्म धर्म करै, तुस उडत मनों बिन बाइ ॥५९॥

भक्त जनन कूँ आप सावधान करते भये बोले कि—हे भाई! विषई होते भये हू यदि कोई श्रीभगवान की भक्ति करै है, तो वाकूँ विषई समझि के निन्दा कबहुँ मत करौ, क्योंकि वो बिना काहू बाधा कें श्रीभगवत चरनारविंद के सन्मुख है रह्यौ है, और साकत श्रीभगवत-चरनारविंद ते बहिर्मुख, निगुसायों होइबे के कारन, साधु होते भये हू असाधु ही है। साँचे भाव सों श्रीभगवान के श्रीचरन-कमलन की अनन्य

भक्ति करिबेवारे भक्तन को तो स्वरूप इतेक ऊँचो होइ है, जोकि बड़े-बड़े अनुचित अन्याय करते भये हू, श्रीभगवान बिनकूँ साधु ही समझें हैं और साक्तन के कर्म-धर्म करे भये हू ऐसे निष्फल है जाइ हैं, जैसे बिना पवन के भुस उड़ि जाइ है।

कूकर चौक चढाइयँ, चाकी चाटन जाइ।
श्रीहरिदासनि कौं पीठ दै, जीवनि जाचत धाइ ॥६०॥

देखत हूँ देखें नहीं, टेरैं सुनैं न कॉन।
अपनों प्रभु न पिछानई, भंडिहा दुखी निदॉन ॥६१॥

जैसे चून को चौक पूरि, बड़े सन्मान सों कुत्ता कूँ पूजिबे के ताईं बिठायौ जाय, तौहू कुत्ता अपने स्वभाव बस चून-चाटिबे के ताईं ही चाकी माऊँ दौरे है। ऐसे ही छुद्र, लालची जीव साक्षात श्रीभगवान की भक्ति को वेष प्राप्त करिकें हू भक्तन को पीठ दै, धाय-धाय बहिर्मुख जीवन सूँ जाचना करते डोलें हैं। हरिगुरु आचार्य कितेक समझावें तौहू ये सुनी अनसुनी-सी करि देइ हैं।

ऐसे जीवन की तो कितेक दुर्दसा जगत में है रही है, और श्रीभगवान के भक्तन की सर्वोपरि जस-पताका फहराइ रही है, तौहू इन बातन माऊँ ये कबहुँ देखें ही नाँइ हैं। इतनो ही नाँइ सर्वोपरि सुख निधान कर्तुमकर्तुं, अन्यथा कर्तुं, सर्व समर्थ-दयासिंधु ऐसे अपने स्वामी कूँ नाँइ पहिचानबेवारे भड़िहा जीवन की यह निदान बात है कि वे सदाकाल दुखी-दरिद्री ही बने रहें हैं।

खाइ कहूँ भूसैं कहूँ, ए निगुसाये स्वाँन।
घर-घर भटकत मारियत, भंडिहा आँखि न काँन ॥६२॥

जैसे निगुसाँयो स्वान खाय तो कहूँ है और भूसै कहूँ जाइकें, ऐसे ही कछु मनमुखी जनन कूँ कृपा-उपदेश तो कहूँ ते प्राप्त होइ है और स्वार्थपने के स्वभाव बस गुन काहू के गाते डोलें हैं। अनेक प्रकार ते अपमान-अनादर होते भये हू बिनकी घर-घर भटकिबे की टेब नाँइ जाइ है। ऐसे लोगन कूँ न तो अपनी दुर्दसा पै ही ध्यान आवै है और न बड़ेन्ह को कह्यौ ही मानें हैं।

स्वान सुभाउ न छाँडई, इंद्र देखि घुर्रराइ।
झूठी पातरि पेट तर, मति मेरी लै जाइ ॥६३॥

मायिक धन संपत्ति में आसक्त स्वान सुभाव के कछु ऐसे हू लोग होइ हैं कि

अति निष्किचन महतपुरुषन कूँ देखि या भय सों कछु माँग न लेवें ? रुखी-रुखी बात करन लगें हैं।

सूकौ हाड हरषि गहै, विमुख विषै घर बात।
लोहू अपने गाल कौ, चाटि स्वाँन इतरात ।।६४।।

जैसे कोऊ स्वान कहूँ ते सूको हाड़ ल्याय, बड़ो प्रसन्न होइ, चबावन लग्यौ, जासों वो अपने ही गाल को खून चाटि-चाटि बड़ो सुख मानै है। तैसे ही बिषयी लोग मल-मूत्र ते पूरित, हाड़-चाम सों बनी भई स्त्री सों अपने ही मन के मनोरथन की विषय चर्चा करि-करि प्रसन्न होइ इतरावन लगै हैं।

श्रीबिहारीदास सुख विषै कौ, ज्यौं नख नैंक खुजाइ।
विष व्यौरै सब अंग में, पाछे पकै पिराइ ।।६५।।

श्री बिहारीदासन के प्रति समझाते भये आप बोले कि— हे भाई ! विषय सुख एकमात्र ऐसो होइ है जैसे अपने ही घाव की खाज कूँ नखते खुजाते समय बड़ो सुख प्रतीत होइ है, किन्तु जब नख को विष सब अंग में व्याप्त हैं जाइ है, तब ऐसो पकि कैं पिरावन लगै है, जाकूँ समन करिबो बहुत ही कठिन है जाय है, तैसे ही अनन्त जन्मन ताऊँ विषय-वासना मिटाइवो अति दुर्लभ है जाय है।

मूत निबायौ साथरै, सोइ गयौ अलसाइ।
जागै जाडो चौगुनौं, आव गयैं पछिताइ ।।६६।।

जैसे कोऊ आलस ते विवस ठंड की रात्रि में अपने विस्तर पै लघुसंका कर लेवै और वा समय गर्म होइबे तै अच्छो हू मालूम परै किन्तु जब नींद खुलै तब सब गीलो होइबेते चौगुनी ठंड लगन लगै है, ऐसें ही जवानी के जोस में विषय-भोग बड़े सुहावने लगै हैं किन्तु जवानी समाप्त होइबे पै चौगुनो कष्ट मालूम परै हैं।

तरुना पै न भजन कियौ, औसर कियौ न काज।
आव घटै जोवन खसै, फूटे डफ लौं बाज ।।६७।।

श्री हरि को भजन करिबे जोग्य जो जुवा अवस्था ही, वा समय मन में जोस हो बुद्धि तीव्र ही, सरीर में सहन सक्ति ही, इष्ट की माधुरी ते चित्त भीग्यौ रहतो, भजन को सुख अपने मनमें तुम इतेक संग्रह कर सकते हे कि जाके प्रताप ते वृद्धा अवस्था में हू आनंद लियो करते, वा अति विलक्षण समय को खोइ जहर सहस विषय सुख कूँ अपने हृदय में भरि लीन्यौ। जब सरीर सक्तिहीन है गयो, मन सिथिल

परि गयो, योवन जोस ठंडे है गये, रोग ग्रसित सी रहनी बनि गई, याते अब तिहारे भजन को ऐसो रंग है गयो जैसे काहू फूटे ढफ को बजाइबे ते होइ है।

श्रीबिहारीदास दुर्लभ लह्यौ, तन पुरवै सब काम।
नातरु जै हैंरायगाँ, भजिलै स्यामा स्याम ॥६८॥

श्रीबिहारीदासन कूं समझाते भये आप बोले कि– हे भाई ! ये मानव देह मिलनी बहुत ही दुर्लभ है, याकूं वृथा न खोइकें जौलों जीवो-तौलों और सब बातन कूं भलीभाँति त्यागि, एकमात्र श्री बिहारी-बिहारिनी जू को ही सतत भजन करो। क्योंकि या देह सों ही भजन है सकै है, अन्यथा ये देह छिन-छिन अंजुलि के जल की नाईं छीज रही है, एक दिन निस्चय ही चली जायगी।

नीकौ तन तब गफलई, दूखै तब बिललाइ।
श्रीबिहारीदास समझाय मन, यह सुख दुख दै जाइ ॥६९॥
सुख में दुख दुख में जु सुख, ते दोऊ दुख जाँनि।
श्रीबिहारीदास दुख सुख परे, ता सुख सों रति माँनि ॥७०॥

आप आश्रितन ते फिर बोले कि—हे भाई ! जब तुम्हारो सरीर स्वस्थ रहै है तब तो तुम इतेक असावधान है जावो हो कि श्री बिहारीजी महाराज याद हू नाँइ आवें हैं और जब सरीर दुखी है जाइ है तब वा दुख सों बिललावन लगौ हो, याते तुम्हें भलीभाँति समझनो चहिए कि यह सुख-दुख दोनों ही अति दुखदाई हैं। इन दोऊन ते परे अति अगाध-अपरमित-नित्य-विहार को अद्भुत सुख है, ताही में अपने मन कूं लगाओ।

सो सुख कहा सराहिये, कसैं न अंत खटाय।
तन धन जोबन पाहुनौं, देखत ही जग जाय ॥७१॥

फिर आप बोले–ऐसे मायिक सुखन की सराहना ही कहा करनी है ? जो कसिबे पै अंत में ठहरै ही नाँइ हैं। तुम्हारे देखते-देखते ही समस्त जगत को तन, धन, योवन पाहुने की नाईं चल्यौ जाय रह्यौ है।

धन धूवाँ कौ धौरहर, सुपने पायौ राज।
श्रीबिहारीदास ममिता तजौ, भुस कूटत बिनु नाज ॥७२॥

श्री नित्य-बिहार के उपासकन ते आप बोले कि— हे भाई ! मायिक-जगत के धन कूं ऐसे समझो जैसे गाँवन में संध्या के समय घर-घर में चूल्हौ चेतबे के

कारन धुवाँ को बादर सो छाइ जाइ और नेक देर में वो बिलाइ जाइ है जैसे काहू कों सुपन में राज्य मिलि जाइ किन्तु आँख खुलिबे पै बाकूँ कहूँ कछू नाँइ दीखै है। ऐसे ही धन सों ममता करिबेवारे लोग बिना नाज के ही भुस कूँ कूटै हैं।

बाहिर तौ फूलै फिरैं, भीतर नाँचै भूत।
बाजीगर कौ पेखनों, मिहरी नाती पूत ।।७३।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि–जगत में जिनके पास धन-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रादिक हैं, वे लोग बड़े फूले-फूले फिरें हैं, ताको लक्ष्य करि आप बोले कि–ये लोग ऊपर ते भले ही चका-चक, चिकने-चुपरे बने रहें, किन्तु इनके भीतर बाजीगर के तमासो सदृस मिहरी, नाती, पूत, धन, संपत्ति की ही चिन्ता भूत की नाईं सतत नाच्यौ करै है।

हरि मंदिर द्वारे किये, मिहिरिनि कौं परदार।
सर्वसु धन धरि चौहटैं, संतत छार भंडार ।।७४।।
वे अपनों भायौ करैं, तेरे मुँह दै धूरि।
श्रीबिहारीदासनि सौं अंतरौ, जे स्याम सजीवनि मूरि ।।७५।।

कोई अपने मनमें ये बात सोचै कि धन-सम्पत्तिवारे हू श्रीभगवान के मंदिर बनाइ सेवा भक्ति करै हैं, तिनको लक्ष्य करि आप बोले कि–देखो ! सर्वस-धन श्रीहरि कूँ तो सार्वजनिक स्थान पै मंदिर बनाइ बिराजमान करिकें राखें हैं, जासों बिना रोक-टोक के कोऊ भी आइ-जाइ सकै है और अपनी स्त्री आदिकन कूँ जो एकमात्र खाक की भंडार हैं, बिनके पास जाइबे की रुकावट के ताईं पहरेदारन कूँ बिटावें हैं, तौहू वे इनकी उपेक्षा करि अपनो मनभायो किये बिना नाँइ रहें हैं और जो श्रीबिहारीजी महाराज के परम दास ऐसे महतपुरुष हैं जिनकूँ देखि साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज हू फूले नाँइ मानें हैं, बिनसों ही इनको अंतराइ है जाइ है।

तन धन जोवन अनत हीं, खोयौ रांडी राड।
दाँतनि खौसनि लै मिल्यौ, कै अधभुरसे हाड ।।७६।।

देखौ इन लोगन ने तन, धन, जोबन कूँ तौ स्त्री के हाड़-चाम पै ही रीझि सब खोय दीनो, जब दाँत टूट गए, हाड़ अधमुरसे है गए, काहू काम लायक नाइ रहे, तब भजन करिबे के ताईं हमारे पास आवें हैं। ऐसे समय में भजन को रंग लगिवो ही दुर्लभ है जाइ है।

श्रीबिहारीदास सब बौरई, भक्ति बिना जु सयाँन ।
सब गुन माटी होइगो, इहि थोथे अभिमाँन ।।७७।।

यदि कोऊ ये बात सोचे कि जागतिक गुनन की हू आवस्यकता है एवं बहुत लोग बिनकी प्रसंसा हू करें हैं, ताको लक्ष्य करि आप बोले कि–हे बिहारीदास ! भक्तिरूपी अति साँचे उद्देस्य स्वरूप चतुराई के अतिरिक्त जागतिक मायिक गुन अन्त में माटी ही होइबेवारे हैं, याते इनमें लगिबो मूर्खता ही है।

करत पकौरा फूँस के, पानी कौ पकवाँन ।
श्रीबिहारीदास स्वाद न कछू, मूरख सों कथि ग्याँन ।।७८।।

जो लोग संसार की चतुराई कूँ ही ऊँची समझें है, ऐसे मूर्खन सों अद्भुत प्रभावसाली भक्तिरूपी ज्ञान को कहिबो ऐसो बेकार है जैसे कोऊ फूस के तो पकौरा करै और पानी को पकवान बनावै ।

सौ भूतनि की बिपति सहि, इक सठ सह्यौ न जाय ।
कह्यौ सुन्यौं माने नहीं, फिरि पूछैं हियौ पिराय ।।७९।।

कोऊ-कोऊ ऐसे मूर्ख हू हमारे पास आइ जाइ हैं जिन्हें करिबो तो कछू है नाँइ, कह्यौ सुन्यौ मानें नाँइ । तौहू बड़े सोच-सोचकें मर्मन की बातन कूँ बेरि-बेरि पूछ्यौ करै है, बिन लोगन ते हमें इतेक बिपत्ति मालूम परै है, जाके आगे सौ भूतन की बिपत्ति हू थोरी है ।

ऊसर ह्वै नीरस हियौ, क्यों उपजै त्रिन ग्याँन ।
सिखयौ बयौ सबै गयौ, ज्यौं गज कौ अस्नान ।।८०।।
अनठुररौ मनु ठौठरौ, तज्यौ अगनि जड जाँनि ।
गाहत दरत छरत रह्यौ, भ्रम कहूँ सक्यौ न भाँनि ।।८१।।

यदि कोऊ अपने मनमें ये सोचै कि संसार के जीव अनन्त जन्मन ते माया ग्रसित ह्वैबे के कारन भक्ति में चलिबे के ताईं असमर्थ हैं, तौहू भक्ति-पथ के समझिबे की चेष्टा तौ करें हैं ? महत्पुरुषन ने जैसे-तैसे बिनकूँ समझाइ भक्ति-पथ में लानो चहिए । तापै आपको कथन है कि–इनकी हृदयरूपी भूमि ऊसर एवं नीरस है रही है, बिनके ज्ञानरूपी तृन कैसेहू नाँइ उपजि सकै हैं, जैसे ऊसर भूमि में बोयौ भयौ नाज निष्फल जाइ है, तैसे ही बिनको सीखौ भयो ऐसे बेकार जाइ है, जैसे हाथी को स्नान कराइबो । याही विषय में दूसरो दृष्टान्त दैकें आपने औरहू कह्यौ कि–जैसे ठोटरो

नाज कूटिबे में तो कुटै नाँइ है, दरिबे में दरै नांइ और अग्नि ने हू वाकूँ अति जड़ समझि, गराइबो छाँड़ि दीनो है, ऐसे ही जिनको मन ठोठरो नाज सदृस होइ है बिनकूँ कितेक हू समझावो भ्रम नांइ जाइ है।

अंबर बरसि अवनी भरो, द्रुम दल बेलि बिकास।
ना जानौं का दोस तें, सूके आक जवास ॥८२॥

श्रीभगवान की सृष्टि की रचना ही ऐसी विचित्र है जाकूँ समझिबो ही अति कठिन है, जैसे बरसा ते यावत् द्रुम-दल-बेलि विकिसित है जाँइ हैं, किन्तु द्रुम जाति के ही आक और जवास बरसा ते मरि जाँइ हैं। ऐसे ही महत्पुरुषन के भक्तिमय कथा उपदेस ते यावत् श्रोतान के मन हरे-भरे प्रसन्न है जाइ हैं, किन्तु बिन्हीं श्रोतान में कछू ऐसेहू होइ हैं कि बिनके मन मुरझाइ, आलस मानन लगें हैं।

अंबर बरसि अवनी भरी, बाढ्यौ खरु कतवारु।
सोंधे नाज सबै सुखी, मारे प्रेम तुसारु ॥८३॥

फिर आप बोले कि–श्रीभगवान की भक्ति के उपदेस सों कछु जनन के हृदय में केवल विधि-विधान कर्म आदिकन ते श्रद्धा बढ़ि जाइ हैं और बहुत से लोगन के हृदय ऐस्वर्यपूर्ण भक्ति सों तो फूल उठै हैं, किन्तु प्रेम लीला के सुनिबे ते बिनके हू हृदय मुरझाइ जांइ हैं। जैसे दाम-बन्धन लीला में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हू वात्सल्य प्रेममयी श्रीजसोदाजू के डर सों थर-थर काँपिबे लगे, ऐसे ही श्रीब्रज-सुन्दरिन के दरसनन की अभिलाषा में कबहूँ नाना छद्मवेष धारन करि जाइबो, कबहूँ माखन चोरी के बहाने ते, कबहूँ पनघट पै, कबहूँ दान घाटी पै दान माँगिबो, या प्रकार प्रेम-परबसता की आपकी अनेक लीलायें हैं, जिनकूँ सुनिबे ते ऐश्वर्य प्रधान भक्तिवारेन के हृदय ऐसे मुरझाइ जाँइ हैं, जैसे पाले के परिबे ते हरी-भरी खेती।

जारों जीवन प्रेम बिनु, जे जीवत निसुगे लोग।
श्रीबिहारीदास पसु ते बुरे, ते दुखित न भये बियोग ॥८४॥
बसत उघसत बहौ ढरै, पसू प्रीति पहिचाँन।
बिहारीदास जे प्रेम बिनु, ते प्राँन अछत जड जाँनि ॥८५॥

यदि कोई ये कहै कि–जा प्रेम ते भगवान के भगवत्तारूपी भाव मुरझाइ जाँइ वा प्रेम कूँ सुनिबे-समझिबे की आवस्यकता ही कहा है? ताकों लक्ष्य करि आप बोले कि–हे भाई! सर्व-साराति-सार सर्वोपरि सुखदाई सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र उज्ज्वलाति-

उज्ज्वल प्रेम ही सर्व-सिरोमनि है। वाके बिना तो अपने जीवन कूँ ही जराइ देबो चहिए। जो लोग प्रेम-विहीन हृदय ते जीवें हैं, वे बहुत ही निर्लज्ज एवं पसु ते हू बुरे हैं। क्योंकि प्रेम कूँ तो पसु हू भली-भाँति पहिचानें है। जाके हृदय में प्रेम है वाकी स्पष्ट पहिचान है कि वो अपने प्रेमी के वियोग में स्वाभाविक ही दुःखी होयगो। याते हे बिहारीदास प्रेम-बिहीन मानवन के प्रानन को तो एकमात्र पत्थर सदृस जड़ ही जाननो चहिये।

श्रीबिहारीदास सों यह निज नातों, एक प्रेम कुल गोती।

× × ×

आदर कोटि निरादर से निजु प्रेम के गारि दिये दुलरैहों।
छाड़ि चलौं बिनु प्रेम छहौ रस प्रेम की आस उपास अघैहों॥
श्रीबिहारीदास के प्रेम प्रधान निदान के प्रान प्रिया गुन गैहों।
प्रेम की बात प्रसन्न रहै मन प्रेम बिना सुप्रसाद न पैहों॥

× × ×

लालच गोद लियौ सुत सौत को प्रेम बिना न बिराजत नातो। —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

प्रेम देवता मिले बिना सिधि होय न कारज।
भगवत सब सुखदानि प्रगट भए रसिकाचारज॥ —श्रीभगवतरसिकदेवजू

प्रेम प्रेम ही पाइयै, जो करै प्रेम कौ अंग।
प्रेमहि प्रेम पिछाँनि हैं, झूठौ साँचौ संग॥८६॥

अब यह प्रस्न होइ है कि—सबको सार एकमात्र प्रेम ही है, प्रेम सों ही प्रेम-स्वरूप अपने निज इष्ट की प्राप्ति होइ है। याते प्रेम द्वारा ही इष्ट कूँ नानाप्रकार ते लाड़-लड़ावने चहिए। वो महा-उज्ज्वल-प्रेम जप, तप, संयम, पूजा, पाठ, जोग, जज्ञ, ज्ञान, वैराग्य, विधि, विधान एवं ईस्वरतामय भाव आदि समस्त साधनन द्वारा कैसेहु प्राप्त नाँइ है सकै है। प्रेम तो केवल एकमात्र बिसुद्ध प्रेम ते ही प्राप्त होइ है।

जाहि तुम सों हित तासों तुम हित करौ सब सुख कारिनि। —श्रीस्वामीजू

× × ×

हमसों बनै प्रेम के तारन जो उलटि उधेरि बुनो।

× × ×

साधन सबै प्रेम के तरुहर। —श्रीगुरुदेवजू

साँचो प्रेम उदय होइबे पै ही साधक अपने साधनन कूँ पहिचान सकैंगो कि, साँचे प्रेम के है रहें हैं अथवा नाँइ ?

प्रेम बिना प्रेमैं नहीं, प्रेम प्रेम ही होइ ।
जो प्रेमैं प्रेमी मिलै, तौ भर्म दुहुनि कौ खोइ ।।८७।।

जब ताऊँ हृदय में साँचो प्रेम नाँइ आवै तब ताँऊ साधक कूँ अपने को प्रेमी नाँइ माननो चहिए । प्रेम निरन्तर प्रेम के आचरन द्वारा ही उदय होइ है, जब प्रेमी कूँ प्रेम मिल जाइ है, तब परस्पर काहू प्रकार को भ्रम नाँइ रहि सकै है ।

प्रेम प्रेम ही उपजै, जो करै प्रेम की वारि ।
तब हि प्रेम फूलै फरै, यौं प्रेमिन कह्यौ पुकारि ।।८८।।

जब तुम अपने संग कूँ बाड़ स्वरूप सों एकमात्र प्रेमिन को ही करि लेवोगे, तबही तुम्हारे हृदय में प्रेम को अंकुर उदय होइ फूलै फरैगो, या बात कूँ समस्त प्रेमिन ने पुकारि-पुकारिकें कह्यौ है ।

प्रेमै बनिजन हौं चली, आगैं मिलियौ प्रेम ।
प्रेम प्रीति गति पाइ, सखि मोहि प्रेम कौ नेम ।।८९।।
प्रेम बिछौना ओढना, अचवन भोजन प्रेम ।
प्रेम प्रेम कैं पाहुनौं, प्रेम प्रेम कैं नेम ।।९०।।

प्रेम के विषय में आप औरहू स्पष्ट करते भए बोले कि–जैसे साधारन धन लैकें ब्योपारी विशेष धन प्राप्ति के ताईं ब्योपार करिबे चले है, तबहीं वाकूँ ब्योपार करते-करते विशेष धन प्राप्त है जाइ है, याही भाँति हमें प्रेम के साधन करते-करते पूर्णतम प्रेम प्राप्त है गयौ । प्रेम प्रीति की अति सरस रसीली रीति प्राप्त होइबे पैं अब हमें प्रेम को ही सहज स्वभाव ऐसो दृढ़ नेम है गयो है, जोकि प्रेम विहीन आचरनन कूँ अब हम स्पर्स हू नांइ करैं हैं, याते हमारे बिछौना, ओढ़ना, अचवन, भोजन आदि यावत क्रिया कलाप प्रेम के ही होइ हैं । अर्थात् हम प्रेम सुख में ही तो सोवें हैं, प्रेम सुख को ही ओढ़ैं हैं, प्रेम ही हमारो अचवन भोजन है एवं प्रेमिन के घर ही हमारो आइबो-जाइबो होइ है ।

नाँव लियैं फूलै न मन, दरसें कौंन सवाद ।
श्रीबिहारीदास तित बचि चलौ, परसें होत बिषाद ।।९१।।

श्रीबिहारिदासन के प्रति आपने कह्यौ कि–हे भाई ! जो लोग तुम्हारो नाम

सुनत खेम, प्रेम सों नाँइ फूलि उठें, बिनके पास जाइबे ते कोऊ सुख-स्वाद नाँइ है कें, उलटे विषाद होईबे को डर है, याते ऐसे लोगन ते सदाकाल बचिकें ही रहनो चहिए।

कलई कलप कपट कियें, काकौ भयौ निबाहु।
साधु सभा मैं बैठि कें, चोर कहावैं साहु ।।९२।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि काहू के मनमें ऐसो प्रेम तो हैं नाँइ, जो नाम सुनत खेम फूलि उठै, किन्तु ऊपर की आवभगत बहुत दिखावैं, तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई ! जैसे बर्तन पै कलई कितेक हू सुन्दर करो, सदाकाल नाँइ टहरै है, तैसे ही साँचे प्रेम बिना ऊपरी व्यवहार नाँइ टहर सकै है। चार दिन के लिए भले ही साधु सभा में बैठिकें, चोर साहु कहाय लेवें।

श्रीबिहारीदास मन क्यौं मिलै, कपटी मिलै कुहेत।
इत मसि घसि कारौ करै, उत ह्वै आवै सेत ।।९३।।
अपनें कर मुख मसि घसै, यातैं कहा बड दंड।
बडौ अपराधी जानियें, होत सभा में भंड ।।९४।।
श्रीबिहारीदास यातें न अब, झूठी करत समीति।
पूछत कुसल असीसि दें, राड पडा की प्रीति ।।९५।।

श्रीबिहारीदासन को मन कपटी जनन ते नाँइ मिलै हैं, क्योंकि बिनके मनमें कछु और ही अभिप्राय होइबे के कारन ऊपर ते ही भाव-भक्ति दिखायौ करें हैं। यदि कोई ये कहै कि बिनको कपट कैसे मालूम परैगो, तापै आपने कह्यौ कि–जैसे स्वेद बारन कूं कारे दिखाइबे के ताईं, लोग मसि घसिकें लगावैं हैं, किन्तु वे बार सहज स्वभाव भीतर ते स्वेद ही निकसे हैं, ऐसे ही बिन लोगन की बोल-बतरान मिलन-जुलन ते बिनको कपट प्रगट है जाय है।

फिर यदि कोऊ ये बात कहै कि परमार्थी भक्त, सन्त जनन ते कपट करिबे-वारेन कूं कछु दन्ड मिलनो चहिए, तापै आपने कह्यौ कि–जो लोग स्याही घिस अपने हाथ सों अपनों मुँह कारो करें हैं, बिनके ताँई याते और कहा बड़ो दन्ड होयगो ? जिन लोगन को कपट महतन की सभा में प्रगट है जाइ है, बिनकूं बड़ो अपराधी समझनो चहिए। याते नित्य बिहार के अनन्य उपासक श्रीबिहारीदास झूठे प्रेम की नकल करिबेवारेन ते नाँइ मिलै हैं। जो लोग स्वार्थ सिद्ध करिबे के ताईं कुसल क्षेम पूछि-पूछि आसीर्वाद देवें हैं, बिनकूं तो ऐसो समझनो चहिए, जैसे चमार बहुत बढ़िया

चमड़ा प्राप्त करिबे के ताईं पड़ाकूँ प्रेम ते खवाइ-खवाइकें लाड़-प्यार ते पालै है।

इत मन उतहि सवाइ मन, ऊँचौ नीचौ होइ।
जो मन सों मन तौलिये, तौ मन पूरौ होइ ॥९६॥
मन दीनें मन पाइये, मनसा कौ भ्रम खोइ।
जो मनसा मन ही मिलै, तौ मुकुंद मन होइ ॥९७॥

फिर आप बोले कि–हे भाई ! जैसे तराजू के पलरा में एक ओर मना रक्खे और दूसरी ओर सवामन, तौ वे पलरे स्वाभाविक ही ऊँचे नीचे होवेंगे। जब दोऊ ओर पूरो मन होयगो तबहीं बराबर पलरे होंयगे।

ऐसे ही दोऊ ओर ते मनसा के भ्रम खोय मन सों मन मिलाइबे पै ही सुद्ध प्रेम को व्यवहार बनैंगो। पूरो मन दिए बिना हरि, गुरु, सन्त हू अपनो पूरो मन नाँइ दे हैं। दोऊ ओर ते पूरो मन मिल जाइ है, तब हीं मन के यावत् भ्रम दूर होइ, मन सों मन मिलि, अति निर्विकार उज्ज्वल है जाइ है।

मन खोजत मुकुंदा मिल्यौ, भक्ति मुक्ति कौ दाँनि।
श्रीबिहारीदास जैसौ चहै, तैसौ लै पहिचाँनि ॥९८॥

जो साधक अपने मन कूँ सब ओर ते ऐंच, इष्ट के लाड़-प्यार में छिन-छिन लगायो करें हैं, बिनको मन क्रम-क्रम ते मुकुन्द स्वरूप अति उज्ज्वल है जाइ है। तब वे मायिक संसार ते छूटि, मन भामते अपने इष्ट कूँ प्राप्त करि लेवें हैं।

श्रीबिहारीदास मन माँहि सुख, जगु तौलौ दस बीस।
वोछौ उनतालीस लौं, पूरौ मन चालीस ॥९९॥

यदि कोऊ ये बिचार करै कि जितेक साधक जगत में हैं, वे सब कछु न कछु मन ते ही भजन करें हैं। किन्तु न तो मन की ही उज्ज्वलता होइ है और न इष्ट की माधुरी ही दरसै है, ताको लक्ष्य करि आप बोले कि–हे बिहारीदास ! जगत में पूरो चालीस सेर मन कोऊ देवै ही नाँइ है, आधे चौथाई मन ते ही इष्ट प्राप्त करिबो चाहें हैं, मैं तुमसों साँची बात कहूँ हूँ कि जब ताऊँ उनतालीस सेर हू मन देओगे, तब ताऊँ मनभामती वस्तु पूरी प्राप्त नाँइ है सकै है, अर्थात् सब ओर ते मन हटाइबे पैहू जब ताऊँ अपनी देह में ममता रहै है, तब ताऊँ उनतालीस सेर ही मन देइबो समझनो चहिए।

धन दारा आगार बन्धु तजि, सात सिन्धु तरि आयौ।
गोपद जल देहा अभिमानी, बूड़त खोज न पायौ ॥ –श्रीगुरुदेवजू

धर्म्मी देखि न फूलई, तामैं कछू बिनाँन।
श्रीबिहारीदास बिचार लै, मत्सर कै अज्ञान ॥१००॥

श्रीबिहारीदास कहें हैं कि जो लोग धर्मी उपासकन कूँ देख अपने मनमें नाँइ फूलें हैं और उल्टे बिनके स्वरूप में कछु न कछु त्रुटि निकारें हैं, वे जन या तो अज्ञानी हैं, अथवा बिनके मनमें मत्सरता भरी भई है।

श्रीबिहारीदास सतसंग करि, धर्मी हियैं हिताइ।
बात बिजातिन की सुनैं, मन मनसा बिचलाइ ॥१०१॥

अपने आश्रितन ते आप बोले कि—हे भाई! अपने धर्मी जनन ते हित पूर्वक सतत सत्संग करो, क्योंकि बिजातिन की बात सुनिबे ते, अपनो मन एवं मनसा दोनों ही बिचलित है जाइ हैं।

गो गो सुतन सों, मृगी मृग सुतन सों, और तन नेकु न जोहनी। —श्रीस्वामीजू

× × ×

करि सत्संग सजातिन सों मिलि, अंग अंग अंक भरौं।

× × ×

माला मंदिर को बन्दन करि, भजि सत्संग समानी॥ —श्रीगुरुदेवजू

करमठ उठि सनमुख मिलैं, मन पछिमनौं पराइ।
श्रीबिहारीदास मिलैं कहा, बिनु अनन्य न हिताइ ॥१०२॥

यदि कर्मठजन उठिकें बड़े सन्मानपूर्वक मिलें, तौहू हमारो मन बिनते मिलिबे के ताईं पीछे ही हँटै है। क्योंकि बिना अनन्यन ते मिले कोई सुख-हित होय नाँइ है।

ग्याँन अगिनि करि औटि तन, मैंन मुलम्मा जारि।
दिव्य बिहारिनिदासि कसि, लीनी साँचै ढारि ॥१०३॥

जैसे सुबरन कूँ तपाइ-तपाइकें समस्त खोट कूँ जलाइ अति उज्ज्वल करि मनमाने भूषनन के साँचे में ढारि लेवें हैं, तैसे ही तुम अपने मन, बुद्धी, चित्त, अहंकार, रोम-रोम कूँ नित्य-बिहार रस-रूपी ज्ञान द्वारा सतत औंटाइ-औंटाइ यानी समझाइ-समझाइ यावत इहि लोक-परलोक-मय काम एवं कामना आदि बिरोधी बातन कूँ भस्म करि, अपने हृदय को अति सरस रसीलो प्रेम-स्वरूप उज्ज्वल बनाइ प्रथम-समागम एकान्त-रस-विलास निज-महल की अनन्य-विलासिनी साक्षात श्रीनित्य-बिहारिनीजू के दृढ़ अनन्य सहचरि भावरूपी साँचे में ढारि लेउ।

परम दयालु, कृपालु उदार शिरोमनि, अनन्य मुकुटमनि, श्रीगुरदेवजू अपनी

बानी के प्रारम्भ में—श्रीगुरुन ते साँचो सुद्ध अनन्य-सम्बन्ध की नितान्त आवश्यकता बताइ, गुरु-सिष्य के स्वरूप कूँ निरूपन करि प्रेम-विहीन जीवन कूँ निःस्सार प्रतिपादन कियो। फिर कतिपय साखिन में प्रेम प्राप्ति के उपायन कूँ बताते भए, निज-रस-देस की जोग पीठ स्वरूप सर्वसारातिसार रस के मूल कूँ प्रकास करते भए आपने कथन कियौ—

* रस की साखी *

चाँपत चुपरत सेज पर, श्रीबिहारीदास मुख मौंन।
ठोडो सों एडी लगी, यह सुख समझै कौन ॥१०४॥
यौं बोलियै न डोलियै, टहल महल की पाइ।
श्रीबिहारिनिदासि अँग संगिनी, कहत सखी समुझाइ ॥१०५॥
स्वांस समुझि सुर बोलियै, डोलि नैंन की कोर।
मैंननि चैंनन न पावहीं, बिहरैं जुगल किसोर ॥१०६॥

आपके रस-उपासकन ने भली-भाँति सोच-बिचारि इन साखिन कूँ अपने हृदय में धारन करनी चहिए।

चांपत—कहिबे को आपको अभिप्राय या प्रकार को समझनो कि—प्रेमरस माधुरी सागर अति अगाध होइबे के कारन, श्रीयुगल के हृदय कमल ऐसे बिह्वल न है जाँइ, जासों आपके बिहार-बिलास में अन्तराय परिजाय, याते आप अति सावधानी ते श्रीयुगल के हृदय कमलन कूँ चाँपती रहें हैं।

काम प्रेम रस विवस बिहारी। सावधान सहचरि सुकुमारी।

× × ×

प्राननि को पलटत सखी, ज्यौं ढोली के पान।— श्रीललितकिशोरीदेवजू

× × ×

पकी नर्द काँची करैं, यह रसिकनि की रीति हो।—श्रीभगवतरसिकदेवजू

चुपरत—कहिबे को आपको तात्पर्य यह है कि—गूढ़ सुरत-रस-विलासमय अगाधरंग सागर की नई-नई तरंगन द्वारा, दोऊ श्रीयुगल कूँ छिन-छिन सहचरी प्रवृत्त करती रहें हैं। जैसे दोउन की डीठ सो डीठ मिलाइ बिचित्र श्रीमुखचन्द-माधुरी कूँ पान करावैं हैं।

कोमल पीठ दीठ करि ईठनि डीठि मिलै बैठाऊँ। —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

परस्पर दोऊ चकोर दोऊ चन्दा। —श्रीभगवतरसिकदेवजू

फिर दोऊ परस्पर, मृदु-मुसिक्यान-रंग में बिबस होय बतरान माधुरी कूँ आस्वादन करन लगैं हैं।

यों हँसि-हँसि कहत हैं बात, सुनि तिन बातन हूँ न पत्यात।
कोमल करन सों मुख मूँदि राखत श्रवनन तें न जात॥
बचन रचन बनत नाहिन, पुलकित सब गात।
श्रीबिहारिनदास के नैंननि में सुख, सैंननि लटपटात॥

ऐसे ही बतरान माधुरी के रंग में उमगते भए श्रीयुगल कूँ तन-मन-प्रान ते मर्मभेदी गूढ़-रस के परिहास-रंग में सहचरि निमग्न करि दैं हैं। कबहूँ-कबहूँ होड़ बदिकें परस्पर परिहास करन लगैं हैं। जब श्रीलाड़िलीजू परिहास-रंग के उत्तर देबे में हारि जाइ हैं, वा समय होड़ न दैं, उल्टी मानवती है जाय हैं, तब लाड़िलो होड़ लेबे के ताईं गोहन परि जाइ है।

बहुरि कुँवरि करि रोड कोड के चाडिले।
हारी होड न देति लेत लटि लाड़िले॥

× × ×

हारी होड न देति लाड़िली, छाँडि चली अवहेली री।
बैठी है मान गंभीर कुंज, नव जोवन गर्व गहेली री॥ —श्रीगुरुदेवजू

ऐसे ही परिहास-रंग बढ़ते बढ़ते, रहस्य-रस रीति में बिबस, दोऊ परस्पर गावन लगैं हैं। जब श्रीलालजू गाइबे में चूक जाइ हैं, तब श्रीप्यारीजू गाइबो सिखावन लगैं हैं।

नव निकुंज मंदिर में प्यारी, पियहि सिखावति बीना।
तान बंघान कल्यान मनोहर, इत मन देहु प्रबीना॥
लेत सँवारि-सँवारि सुघर बर, नागरि कहत फबीना।
श्रीबीठलबिपुल विनोद बिहारी को, जानत भेद कबीना॥

कबहूँ रसिक प्रीतम गाइबे के होड़ में हारि जाइ हैं, तब श्रीप्रियाजू लाल की मुरली-पीताम्बर लै लेवैं है। वा मुरली-पीताम्बर को लैबे के ताईं रसिक चूरामनि लाल इतेक गोहन परिजाइ हैं जो कि श्रीचरन-कमलन में लोटि-लोटि कें सब निशि बिताय देवैं हैं।

बदी पिय आजु प्रिया सों होड।
उमँगि-उमँगि सुर भेद मिलावत, नव निकुंज बर कोड।

करतारी दै कहत लाडिली, हारे कुवँर नरोड।
श्रीबीठलबिपुल विनोद बिहारिनि जीती है कुवँरि बछोड ॥

प्रिया पीताम्बर मुरली जीती।
हा हा करत न देति लाड़िली, चरन लुठत निशि बीती ॥
राखौ याहि दुराइ सखी, ललितादिक रहो सचीती।
श्रीबीठलबिपुल विनोद बिहारिनि, प्रगट करत रस रीती ॥

याही भाँति गाइबे के रस-रंग में निमग्न दोऊ मनिमय रासमण्डल पै जाइ कबहूँ नृत्य करन लगै हैं। श्रीप्रान-लाड़िलीजू की नृत्य-माधुरी पै तो रसिकसेखरलाल इतेक रीझि जाँइ हैं कि जहाँ-जहाँ श्रीप्रान-प्यारीजू के नृत्य करन में श्रीचरन-कमल परैं हैं, तहाँ-तहाँ के श्रीचरन-चिन्हन कूँ लाल अपनो इष्ट समझि, भावना द्वारा अनेक प्रकार ते बिनकूँ सेवन लगै हैं।

याही अगाध आसक्तिमय रसरीति के रँग में अति विचित्र रसिक चूरामनि दोऊ श्रीयुगल होरी-डोल, झूला-सरद, आदि ऋतुन में नये-नये महारंग ते भरे भए रसन कूँ निरन्तर बिलसैं-बिलसावैं हैं।

सेज पै—कहिबे को आपको अभिप्राय ये है कि–प्रथम-समागम एकान्त-रस बिलास-महल को सहज-स्वभाव ही ऐसो होइ है कि –अपनी यावत् सम्पत्तिन द्वारा महागूढ़ सुरत-रंग की बरसा निरन्तर कियौ करै हैं। जहाँ श्रीयुगल छिन-छिन नव-नवायमान उन्नत नव-किशोर नव-यौवन के जोर में विभोर वयस द्वारा काम-केलि-विलासैं मनोरथरूपी महा-सुखदाई सय्या पै ही सतत खेलते रहें हैं। अर्थात् श्रीयुगल परस्पर देखन, मुसिक्यान, बोलन, बतरान, हास-परिहास, रहसि-बहसि एवं उठन-बैठन चलनि-चितवनि आदि यावत् क्रिया-कलाप भावभंगी द्वारा रोम-रोम सों अति गूढ़ सुरतरस-बिलास रंग में ही सतत ऐसे अद्भुत निमग्न रहें हैं, मानो काम-केलि की विचित्र सुख सय्या पै ही पौढ़ रहे हों, ताही ते इन्हें और-और रसन-पर्यन्त, काहू बात की ऐसे सुधि नाँय होइ है, जैसे नींद में सोये भयेन कूँ बाहर को कोऊ ज्ञान ही नाँइ रहै है।

काम केलि रस और न परसत, प्रेम समुद्र अपार। –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

दोऊ सुरत सेज सुख सोए। –श्रीनरहरिदेवजू

× × ×

सेज भाव निशि दिन रहै, काम केलि रस भोइ ।
भोजन भाव नीरस जहाँ, तन मन प्रान समोइ ॥—श्रीललितकिशोरीदेवजू
× × ×

सुरत सुख सोये स्यामा स्याम ।
गल भुज दिए परस्पर दोऊ, अंग अंग अभिराम ॥
तन मन अरुझि रहे सुरझत नहिं, जामिनि तीजै याम ।
श्रीभगवतरसिक पलोटत पायन, सहचरि सब सुख धाम ॥

ठोडी सों ऐड़ी लगी—कथन करिबे को आप को तात्पर्य या भाँति समझनो कि—अदभुताति-अदभुत महा-रँग-सागर की तरँगन में अति-बिचित्र रसन कूँ जब श्रीरसिकेस्वरी जू बिलसैं-बिलसावैं हैं, तब अपनी प्रान-दुलारी अति-सुकुमारी प्यारीजू की रीझन में बिबस होइ, लाल एवं सहचरी प्यार भरे हस्तकमलन द्वारा अति-सुकोमलता ते श्री चरनकमलन कूँ उठाइ, चुम्बन करिबे के ताईं जब श्री मुख-कमल ते स्पर्स करै हैं, वा समय ठोड़ी सों एडी लगत खेम कितेक अगाध सुख होइ है, जाकूँ प्रेम जगत में हूँ कोऊ बरनन नाँइ करि सकै है ।

अति रंग बिहारिनि बाल, बरसत लाल पै ।
इकटक निरखत सहज लाड़िली, भाग्य लिख्यौ है भाल पै ॥
चूमि-चूमि तरुवा हिय लाये, माथे धरे हैं विशाल पै ।
श्रीललित प्रिये या छबि पर वारी, रीझि रसिक सुख्याल पै ॥

मुख मौन—कहिबे को आपको अभिप्राय ऐसो है कि—रसिक-सिरमौर श्रीयुगल के सुरत-रस-विलास निज-महल में या प्रकार की अति-अगाध-अद्भुत-महा-माधुरी की भरमार है रही है, जहाँ कि नेक हू बोलिबो श्रीयुगल को अति असह्य मालूम परै है, जा विलास में अनन्त कामरतिन कूँ हू चैन नाँइ है, वाकूँ श्रीयुगल तन-मन-प्रान, रोम-रोम, ते अति अनुराग एवं अगाध आसक्ति में निमग्न भये बिलस रहे हैं । तहाँ अँग-सँगिनी श्रीप्रेम-सहेलीजू अपने रसिक-अनन्य-निज-आश्रितन ते इंगित करि बोलीं कि—या सर्वोपरि निज-महल की टहल तुम्हें मिली है, याते और-और महलन की नाईं न तो यहाँ ऊँचे सुरन सों बोलिबो है, और न रमकि-झमकि, उछकि कैं डोलिबो है । इनके स्वाँसन के हू स्वाँसन को मरम समझि अति-नागरता ते रुख अनुसार वाही सुर में तो बोलिबो है, जैसे अपने नेत्रन की पुतरी अनेकन बार इत-उत में है जाइ हैं, तौहू अपने को नाँइ मालूम परै है, तैसे ही अति-सुकुमारता लाघवता ते या महल में डोलिबो है ।

कोऊ सुहागिल लाड़िली बोलत हू अलसाय।

× × ×

मन की मनसा यहै, स्वाँसनि के स्वाँस लहैं, भेद विभेद कौन कहै अंग संग स्वामिनी।

× × ×

आतुर ह्वै न चलै चकि चौंप सों चातुर चाहि रहे चित चैननि।
मौन हीं मौन में मान मनाइ मिलाइ लिए मनसों मन मैननि॥
श्रीबिहारिनिदास बिलोकि बधू बन वृन्द विनोद बढ़ै बिनु बैननि।
नित्य नवीन निकुंज में नागरि नागर नेह निहारत नैननि॥

× × ×

समै असमै रस पोसन को, सुख दै रुख लै न कहूँ चलिहौं।
चितै चित चैन रहौं बिनु बैन, सुनैन सों नैंन की सैंन लहौं॥
नित्य बिहार अधार हृदय धरि, आपुन प्राननि यूँ पलिहौं।
रवनीहि रमैं सुख देत हमैं, श्रीबिहारी-बिहारिनि की बलि हौं॥

÷ × ×

बिन बैननि सैननि सुख नैननि, चितै-चितै इतराहिं। –श्रीगुरुदेवजू

× × ×

नवल मनोजनि मौज चौज हित, नवल दरस मुख मौन।
नवल छैल छबि छुवत नवल अलि, यह सुख बरनै कौन॥–श्रीनागरीदेवजू

कछु संतन के मुख सों ऐसो हू सुनिबे में आवै है कि श्रीस्वामीजू महाराज की निपट नित्यबिहार रस-उपासना में एकमात्र सैय्या बिहार ही है किन्तु श्रीकेलिमाल जू ते लै कें समस्त आचार्यन की बानी के रस बरनन में यह भाव पुष्ट होइबों प्रतीत नांय होइ है और या सम्बन्ध में यह हू विचारनीय है कि यदि श्रीयुगल केवल सैय्या पै ही सतत बिलसैं हैं, तौ श्रीवृन्दावन की यावत् महारसमय सम्पत्ति श्रीयुगल के बिलसिबे में कैसे आइ सकै है?

याही आसय की पुष्टी में श्री अष्टाचार्यन की बानी के कछू उदाहरन नीचे दिए जांय हैं—

श्री केलिमाल :–

एक समै एकान्त बन में करत सिंगार परस्पर दोई।

× × ×

राधे चलिरी हरि बोलत कोकिला अलापत सुर देत पंछी राग बन्यो।

तेरो मग जोवत लालबिहारी।
तेरी समाधि अजहूँ नहिं छूटत, चाहत नाँहिने नेक निहारी॥
औचक आइ द्वै कर सों मूंदे नैन अरबराइ उठी चिहारी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ढूंढत बन में पाई प्रिया दिहारी॥

आजु तृन टूटत है री ललित त्रिभंगी पर।
चलहु न वेगि राधिका पिय पै जो भयो चाहत हौ सर्वोपरि॥

× × ×

प्यारीजू आगे चलि आगे चलि गहवर बन भीतर जहाँ बोलै कोयलरी।
अतिहीबिचित्र फूलपत्रनकी सैयारची रुचिरसँवारी तहाँ तुव सोयलरी॥
छिन-छिन पल-पल तेरी ये कहानी तुव मग जोयलरी।
श्रीहरिदास के स्वामी स्याम कहत छबीलो काम रस भोयलरी॥

× × ×

जहाँ-जहाँ चरन परत प्यारीजू तेरे, तहाँ-तहाँ मन मेरो करत फिरत परछाहीं।
बहुत मुरति मेरी चँवरि ढुरावति कोऊ बीरी खवावत एकव आरसी लै जाहीं॥
और सेवा बहुत भाँतिनकी जैसी ये कहें कोऊ तैसी ये करौं ज्यौं रुचि जान्यो जाहीं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा को भलो मनावत दाव पाहीं॥

× × ×

तोकों पिय बोलत है री, लाल ठाढ़े कदम्ब तर।
अबके ऐसे ज्यों किए कहा होत है री, मारि रही कुसुम सर॥
कुंजविहारी अपनो अँस, तासों क्यों कीजे छदम्बर।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा, ढूंढत वनमें पाई क्रम-क्रम विषम डर॥

× × ×

एक समै एकान्त बन में डोल झूलत श्रीकुँजबिहारी।

× × ×

कुंज-कुंज डोलन मृदु बोलन टूटी लर छूटी पोत अति छबि लागत।
भँवर गुंजार करत संग डोलत मानो मेरु राग-रागिनिन के संग लिए रागत॥
जूथ अनेक सुघर जुवतिन के तुम्हारी रीझि पलव नहिं लागत।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पर तन-मन-धन न्यौछाबर करौं कागत॥

× × ×

स्यामा स्याम आवत कुंजमहल ते, रगमगे रगमगे।

बूँदे सुहावनी री लागत मति भीजै तेरी चूनरी ॥

× × ×

भीजन लागे री दोऊजन । अचरा की ओट करत री दोऊजन ॥

× × ×

चलि री भीर ते न्यारेइ खेलें ।
कुंज निकुंज मंजु में झेलें ॥
जहँ पंछिन सहित सखी न संग कोऊ तेहि बन चलि मिलि केलें ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा प्रेम परस्पर बूका बंदन मेलें ॥

× × ×

सोंधे नहाइ बैठी पहिर पट सुन्दर जहाँ फुलवारी तहाँ सुखवत अलकें ।
कर नख सोभा कल केस सँवारत मानों नव घन में उडगन झलकें ॥
बिबिध सिंगार लिएँ आगे ठाढ़ी प्रिय सखी भयौ भर आन रति-पति दलदलकें ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छबि निरखत लागत नाहीं पलकें ॥

× × ×

नव निकुंज ग्रह नवल आगे नवल बीना मध्य राग गौरी ठटी ।

× × ×

जुग कवनी बैस किसोर दोऊ निकसि ठाढे भए सघन बन ते ।

श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू की बानी ते—

प्रात समै आवत जु आलस भरे जुगलकिशोर देखें कुंजन की खोरी ।

× × ×

आज बनी लाड़िली प्रीतम संग आवति ।

× × ×

आवत लाड़िली लाल फूले ।

× × ×

आवनि कुंज ते पहुपीरी ।

× × ×

स्यामा चलहु लड़ैती प्रिया कुञ्जन करहु केलि ।

× × ×

प्रिया पाँव धारिये पिय पहियाँ ।
कुञ्ज भवन के द्वारे ठाढ़े कुँवर कदम की छहियाँ ॥
सुनत बचन हँसि बिलम्ब न कीनो, चली अली गहि बहियाँ ।
श्रीबीठलबिपुल विनोद बिहारिनि लाइ लई उर महियाँ ॥

श्रीगुरुदेवजू की बानी ते—

पियके अंक निसंक सबै निसि हुलसि-हुलसि विलसि आनंद में उनींदी उठि आई।

× × ×

बिहरत लाल बिहारिनि दोऊ श्रीयमुनाजी के तीरे-तीरे।

× × ×

कुञ्जनि-कुञ्जनि करत केलि।

× × ×

चलत लटकत अटकत लर छूटी देखि सखी बलि जाई।

× × ×

इन-उन बनमें बदरनि की छहियाँ गहि बहियाँ।
बोलत डोलत बन-बन तैसोई संग सबही कों॥

× × ×

हारी होड़ न देत लाड़िली छाड़ि चली अबहेली री।

× × ×

मनमोहन भेष पलटि चले साँवरी सहेली अपनो नाँव बनाइ।

× × ×

जा दिन तू पाछे रही मोहि मिल्यौ सामुहे आइ।
नव कुंदन के कुञ्ज को तें पतो मिलायौ आइ॥

× × ×

कुंज-कुंज कौतिक घनों लै तहीं-तहीं बिरमाइ।
ताछिन ते ताठौर ते सखि आगे चँल्यौ न जाइ॥
इक दिन कालिंदी के कूल ही ठाढ़ो ललिता के संग।
आगे उमँगि चलत लटकत सखि, झूमक दै दुलराइ।
तहाँ नये-नये रस छाकत कौतुक उझकत छबि रहि छाइ।
तहाँ सारस हंस प्रसंसित झूमक देत सुगतिन दिखाय।
प्यारी हार पीताम्बर पिय सों रीझि दियौ सुखपाय॥

श्रीस्वामी नागरीदेवजू की बानी ते—

आवत रंग भरे दोउ गावत।
कुंज-कुंज सुख पुंज प्रिया पिय प्रेम परस्पर मोद बढ़ावत॥

× × ×

बिहरत जमुना जल जुगराज।

कबहुँक कुंज-कुंज प्रति डोलैं बोलैं हँसि मधुरी बानी री।
× × ×
कबहुँक दृष्टि बचाइ सबनि ते रंग महल दोऊ खेलैं री।

श्रीस्वामी सरसदेवजू की बानी ते—

आजु अति राजत नागरि नाहु।
बन घन कुंज-कुंज प्रति डोलत अंसन पर धरि बाहु।
× × ×
कुंजनि-कुंजनि डोलत लाल।
उमगि-उमगि मन मोद बढ़ावत लाड़िली सों करि ख्याल।

श्रीस्वामी नरहरिदेवजू की बानी ते—

एक बात कहौं श्रवन लगि चित दै सुनहु पियारी।
सुभग फूल फूले वृन्दावन तैसिये सरद उजियारी॥
चलि राधे अन्तर सुख लूटैं सखी रहें सब न्यारी।
मोहि तोहि जहाँ अपनपौ भूलै रहिहैं न सुरति सँभारी॥
जहाँ न खरिको होय पंछी को यों दुरि कहत बिहारी।
श्रीनरहरिदास पिय मन की जानी आगे सेज सँवारी॥

श्रीस्वामी रसिकदेवजू की बानी ते—

दूलह दुलहिन अधिक बनी।
पूजन चली कल्पतरु सुन्दरि औरहि ठान ठनी।
कियौ है सखिन गंठजोर सबनि मिलि आगे धन पाछे जू धनी।
गावत चलीं गीत मंगल के सबहिं सुघर सजनी॥
रुनुक झुनुक पग धरत धरनि पर छबि पावत अवर्नी।
छिरकि सुगन्ध मूल तरु पूज्यौ फूलन माल घनी॥
अंचल जोरि यहै बर माँगत रहौ यह प्रेम सनी।
श्रीरसिक बिहारिनि होहु न मान छकि केलि कला कवनी॥

श्रीस्वामी ललितकिशोरीदेवजू की बानी ते—

कुंजबिहारी देखे आवत। बात अटपटी कहि बतरावत॥
नाम कहो यह काकी ललना। रूप रंग रस झरत सु झरना॥
कछु एक बात सखी जब बोलीं। प्रिया कहें तुम रहौ अबोली॥
बाय बावरे गाँव के जैसे। जान बूझ बातें कहें ऐसे॥

इतने में सखी छिरका खेलें। प्यारी वचन कहैं मन रेलें॥
लैं बुड़की जमुना के मांही। चौंक परी पिय दें गल बांही॥

इन समस्त उदाहरनन ते यह स्पष्ट होइ है कि–रसिक-अनन्यनृपति श्रीस्वामीजू महाराज को समस्त श्रीवृन्दावन नव-दूलह-दुलहिन श्रीयुगल को प्रथम-समागम-एकान्त रस-बिलास निज-महल है। जिनकी यावत सम्पत्ति सुरत-रस-बिलास महारंग-सागर की भरमार ते भरी-पूरी निरन्तर सुसज्जित रहै है, जामें अनंत-अनंग रंग अति अदभुतता ते छिन-छिन उमगते रहे हैं। जा महल में श्रीयुगल के तन-मन-प्रान, रोम-रोम अति सरस रसीले महागूढ़ सुरत रस-बिलास के झूला में ही सतत झूलते रहें हैं।

श्रीवृन्दाबन कोरी चोज मनोज बढ़तु रहैं।
कुंजनि कुंजनि केलि नवेलि नवल कहैं॥
कहैं नवल नवेलि केली सुन सखी सुख पावहीं।
मंद-मंद मधुर मिले सुर सरस गीतहिं गावहीं॥

× × ×

कदली कुंद कदम्ब अम्ब बन बीथिन बर बिरमाइ।
तन बन किधौं बन तन भयौ कछु व्यौरो बरन्यौ न जाइ॥

× × ×

श्रीवृन्दाबन जब देखौं तबहीं नयौ नित लेत प्रेम उपजाइ।
या रंग रस में मन झूमई तौ भूलि पाछिलौ जाइ॥–श्रीगुरुदेवजी

× × ×

सुरति रंग में रंगि रह्यो कुंज सदन सुख रास।
श्रीविपुल बिहारिनदास पै बलि नवल नागरीदास॥

× × ×

सुनहु रसिक श्रीवृन्दाबन को जस।
कुंज केलि मानिनी मनोहर परबस भये नाहिंन अपने बस॥
इहि बन नित्य नवीन जुगलबर द्रुम दल दिव्य श्रवत सलिता लस।
श्रीबीठलविपुल विनोद बिहारी को पान कियो चाहत रतना रस॥

× × ×

ऐसी नित्य बिहारिनि श्रीबिहारीलाल संग अति आधीन आतुर लटपटात ज्यौं तरु तमाल कुंज महल श्रीहरिदासी जोरी सुरत हिडोंरे झूली।

इहि रस प्राँन बिवस भए, तिनहिं न रुचै सिंगार।
भूख प्यास में चपनई, आदर बडौ प्रहार ॥१०७॥

सहचरि-भाव के रसिक-अनन्य-उपासकन ते श्रीगुरुदेव जू बोले कि—हमारे एकान्त रस-विलास निज-महल के सुरत-रस-सागर की तरंगन में श्रीयुगल के प्रान ऐसे बिबस है रहे हैं कि जिन्हें अपनो सिंगार नाँइ रुचै है, एवं जिनकूं भूख-प्यास की चर्चा हू नाँइ सुहावै है और आदर, सनमान की तौ भाषा ही प्रहार के सदृश बोध होइ है।

भूषन बसन पहिरैं न मंजन करैं श्रीबिहारिनदास अलबेली लाड़-लड़ाई।

बुरौ सिंगार बिहार में, भूषन दूषन जानि।
श्रीबिहारीदास सेवत सुखै, मन कौ मरम पिछाँनि ॥१०८॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—जितेक श्रीयुगल रस-उपासक रसिक महानुभाव भये हैं, तिन सबन ने सिंगार एवं भूषनादिकन की भावना बताई है एवं स्वयं कीनी है, तापै आपको कथन है कि—हमारे निज-महल के बिहार में श्रीयुगल कूं सिंगार तो बुरो लगै है और भूषनन को दूषन ही समझै हैं, याते नित्य-बिहार के अनन्य श्रीबिहारीदास सतत श्रीयुगल के मन को हू मरम समझि रुख अनुसार, बिनके सुख कूं ही सेवैं हैं।

भूषन दूषन जान यहै छवि जा छिन में सुख लाल लहै।
श्रीबिहारिनदासिन जे कहनो, गहनो न गहै कर कंठ गहै॥

गहनौं तौ सब तन गह्यौ, गहनों जाकौ नाँव।
मोहि गहावै और पै, हौं गहनें न पत्याँव ॥१०९॥
हौं प्रीतम तन मन गही, मो पिय मनसा प्राँन।
तू बैठी गहनौ गुहै, तेरौ कौन सयाँन ॥११०॥
मेरो गहनौं और है, निजु अँग संग सिंगार।
नैनन कौ अंजन यहै, सब सुख सार बिहार ॥१११॥

कोऊ सहचरी-भाव ते भावित भावना में बैठी-बैठी आपके धारन कराइबे के ताईं गहनों गुहि रही ही, तब साक्षात श्रीस्वामिनीजू ने ही बाते कह्यौ कि—तू मोय पहिराइबे के ताईं गहनों गुहि रही है, मैं इन गहनान में काहू प्रकार को बिस्वास ही नाँइ राखूँ हूँ।

वास्तविक मेरो गहनों तो कछु और ही है, जानें मेरो तन-मन, रोम-रोम सब कछु गहि राख्यौ है। मैं तोते अपने मन की साँची बात कहूँ हूँ —मेरे तन-मन-प्रान समस्त रीति-भाँतिसों एकमात्र प्रीतमने ही गहि राखें हैं और प्रीतमही मेरे तन-मन-मनसा एवं प्रान हैं, बिनको ही प्रेम मेरो साँचो गहनो स्वरूप है, ताहू पै तू बैठी-बैठी गहनों गुहि रही है,' यामें तेरो कहा सयानपनो है ? निज अंग-संग ही मेरो सिंगार एवं नेत्रन को अंजन स्वरूप है।

श्रीबिहारीदास औसर समझि, इनहिं न अनुसंधान।
भोजन इहै बिहार में, दरस परस अघ्रान ॥११२॥

फिर श्रीगुरुदेवजू समझाते भए बोले कि—हे बिहारीदास ! तुम औसर समझि के ही अपने मन में लाड़-सेवा को बिचार करो। मेरे प्रानजीवन श्री युगल प्रेम-बिलास में या प्रकार ते सतत निमग्न रहें हैं—जिनकूँ अपनो कछु अनुसंधान ही नांइ रहै है, और तो और इनकूँ भोजन हू एकमात्र परस्पर को दरस-परस एवं आघ्रान ही है।

एक मूल अस्थूल लौं, द्वै स्कंध सम बँस।
सेवत सखी सघन सबै, जाँन समौ जस जैस ॥११३॥

फूलत फलत सदा रहत, प्रेम जु निजु जन देत।
श्रीकुंजबिहारिनिदासि सुनि, सहज प्रिया कैं हेत ॥११४॥

रसिक अनन्य उपासक ने अपनी प्रान-जीवन श्रीलाड़िलीजू के श्री मुखकमल सों लाड़ भरे, अति सुकोमल मर्मभेदी अमृतमय वचनन द्वारा रस को अति अद्भुत सूक्ष्म स्वरूप समझि आनन्द में फूल्यौ नांइ मायो और यह लालसा उदय भई कि श्रीस्वामीजू महाराज के रसमय स्वरूप कूँ हूं भलीभाँति समझूँ, तब श्रीगुरुदेवजू अपने प्रिय आश्रित के मन की बात समझि, अति प्रसन्न होइ बोले कि—हे भाई ! श्रीस्वामीजू को अति अगाध एवं अद्भुत रसामृत सागर को स्वरूप या प्रकार को है, जैसे पेड़ की पिंडी नीचे की मूल ते लेकें ऊपर मोटी पिंडी तक, इतेक बिसाल सक्ति-साली होइ है कि अपनी सक्ति एवं रस सों स्कंध तथा पाल आदि समस्त पेड़ कूँ रस दैकें हरचौ-भरचौ राखती भई, निज सक्ति ते ही सबकूँ सम्हारि के राखै है, तैसेही मूल स्वरूप प्रेमावतारी श्रीस्वामीजू इतेक बिसाल सक्तिसाली हैं, जिनके श्रीबिहारी-बिहारिनीजू स्कंध स्वरूप सों अनादिकाल ते अनमिष अँखियान द्वारा अगाध प्रेम को

निरंतर बिहार करें हैं और यावत सखी समाज फूली-दूली चारों ओर पाल की नाईं छाइकें, अपने स्कंध एवं पिंडो कूँ सदाकाल रुख अनुसार सेवें हैं।

आली वाली वर विमल वारि-सेवत सींचत सुख मुख निहारि।—श्रीगुरुदेवजू

यह रसमय महा कल्पवृक्ष सदाकाल प्रेम-रस-फलन ते फरचौ-फूल्यौ अपने निज जनन कूँ अति विचित्र रस दै-दैकें सतत निहाल करतो रहै है। हे नित्यबिहारिनदास ! मैं तोते मर्म की बात कहूँ हूँ—या प्रेम रस के अनन्य उपासकन कूँ देखि, हमारी प्रान लाड़िलीजू फूली नाँइ मावें हैं, याते बिनपै श्रीप्यारीजू को सहज हित है जाइ है।

तीनि चना इक छोलिका, ऐसौ अर्थ बिचार।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासउर, अंचल बीच बिहार ।।११५।।

श्रीनित्यबिहारिनीजू एवं श्रीनित्यबिहारीजू तथा श्रीस्वामीजू कूँ तू या भाँति एक बराबर समझो, जैसे एक छिलका के तीन चना एक समान ही होइ हैं, तैसे तीनोंन के ही श्रीहृदय-कमलन में एकमात्र बिहार ही बिहार भरचौ भयो है। अर्थात् नवदुलहिन चूरामनि श्री स्वामिनीजू के हृदयकमल में तो लाल कूँ रहस्य रस को हू मर्म बिलास सों निरंतर लड़ाइबे को अगाध प्रेम-सागर सतत उमड़तो रहै है, ऐसे ही नवदूलह सिरोमनि श्रीलालजू के हृदयकमल में श्रीरसिकेस्वरी अपनी प्रान प्यारीजू कूँ लड़ाइबे के ताईं छिन-छिन नये-नये बिनोद उमँगते रहै हैं और दोऊन के स्वाँसन के हूँ स्वासन कूँ समझि, रुख अनुसार लड़ाइबे कूँ सहचरिन के तन-मन-प्रान रोम-रोम छिन-छिन अति आतुर ह्वै रहैं हैं।

बहुत भाँतियनि को कहै, श्रीबिहारिनिदास बिचारि।
बिकल बिना आलिंगनै, एक चनाँ द्वै दारि ।।११६।।

श्रीनित्यबिहारिनी, श्रीनित्यबिहारी एवं श्रीस्वामीजू के हृदयकमल में एकमात्र नित्य-बिहार ही नित्यबिहार निरंतर खेलै है, यह सुनि कें आश्रित के चित्त में यह भावना उठी कि—प्रेम कौन को तथा कितेक स्थूल झीनो एवं गहरो है, यह विरह के स्वरूप ते ही जान्यौ जाइ सकै है, या बात कूँ लक्ष्य करि श्रीगुरुदेवजू ने कह्यो कि—हे भाई ! बहुत भाँतिन सों तोते कहा कहूँ—हमारे श्रीयुगल महामधुर सार-रसमय एक प्रानकी ही द्वै देह स्वरूप ऐसे हैं, जैसे एक चनाकी द्वै दार होइ है, याते यह जोरी बिना आलिंगन के या प्रकार सों विकल है जाइ है, जैसे पानी के बिना मछली। तहाँ और-और विरह-वियोगन की चर्चा ही कैसे है सकै है ?

रोम रोम सब पुलकि तन, कंचुकी श्रम जल भीजि।
पाँइनि पर बिनती करैं, मोहि दसा यह दीजि ।।११७।।

फिर श्रीगुरुदेवजू श्रीस्वामीजू महाराज के प्रेम स्वरूप कूँ दरसाते भये बोले कि– हे भाई ! श्रीस्वामी जू के स्वरूप में विरह की तो समाई हो ही कैसे सकै है ? जब आपके संयोगमय प्रेम को ही ऐसो अति अद्भुत स्वरूप है कि तन-मन-प्रान एवं रोम-रोम सों सतत पुलकायमान होय, प्रेम-प्रस्वेदन के जल ते कंचुकी भीजी रहै है, या प्रकार विचित्र प्रेम दसा कूँ देखि, साक्षात श्रीलालजू पांयन में परि-परि कें यह बिनती करै हैं कि–हे सखि ! यह प्रेम स्थिति मोकूँ आप कैसे हू देवो।

आनँद आँसु उर पर ढरैं, प्रेम न हियै समाइ।
रूप भरी नख सिख सखी, छलकत छबि रहि छाइ ।।११८।।

याही प्रसंग में आप फिर बोले कि–जिनके आनंद के आँसू तौ श्रीनेत्रकमलन ते ढरि ढरि वक्षस्थल ताऊँ परि रहे हैं और प्रेम हृदय-कमल में कैसे हू नाँइ माँइ रह्यौ है, या भाँति नख ते सिख-पर्यंत अद्भुत प्रेम-रूप ते भरी भई सखी की छबि-छटा छलकि-छलकि कें समस्त महल में छाइ रही है।

नख सिख तें रस मगन मन, तन कृति तिहि आवेस।
श्रीबिहारिनिदासि लोचन ढरें, सोहत सहज सुदेस ।।११९।।

श्रीगुरुदेवजू प्रेमावेस में बिबस फिर बोले कि–सखी को मन तो एकमात्र नख ते सिख-पर्यंत रस में मगन है रह्यौ है तथा श्रीअंगनमें लाड़-लड़ाइबे को सतत आवेस चढ्यौ रहै है और श्रीनेत्रकमल सुरत-रस-बिलास के महा अनुराग में सुसोभित है रहै हैं।

अँग सँग प्रेम सुरंग रँग्यौ, मन निरख्यौ इक अंग।
श्रीबिहारी बिहारिनिदास सँग, सुख अनुराग अभंग ।।१२०।।
मनसा बाचा कर्मना, सर्व आतमा जांनि।
श्रीबिहारिनिदासि बसीकरन, फबी प्रिया सुख दांनि ।।१२१।।

श्रीगुरुदेवजू अपनी आसक्ति कूँ प्रकास करते भये आश्रित सों बोले कि– श्रीनित्यबिहारिनी, श्रीनित्यबिहारी एवं श्रीस्वामीजू के अंग-संग को प्रेम इतेक विचित्रताते सुरंग-रंग में रंगि रह्यौ है कि–मेरो मन एक अंग कूँ ही निरखत खेम सुख अनुराग में निमग्न है गयो। मैं तोते साँची बात कहूँ हूँ कि— या रस कूँ ही एकमात्र

मेरी मनसा, बाचा, कर्मना तथा सर्वात्मा स्वरूप तू जान ? और याही रंस ते साक्षात् श्रीस्वामिनीजू कूँ लड़ाइ-लड़ाय श्रीबिहारिनदासीजू सबन के चित्त कूँ चोरती भई, श्रीनिकुंजमहल में सुसोभित है रही हैं।

लालनु मनु ललचातु है, अपनें तन सुख हेत।
श्रीबिहारिनिदासि प्रसन्न ह्वै, सेवत मोहि समेत ।।१२२।।
हौं बारी बलिहारी करौं, अपनें तन-मन प्राँन।
तुम वे वे तुम एक हौ, बलि मौसौं कहा सयाँन ।।१२३।।

एक समय श्रीरसिकेस्वरीजू अपनी प्रान सहेली के मुख सों लालजू के प्रेम की प्रसंसा सुनिबे के ताईं परिहास करती भईं, श्रीगुरुदेवजू सों आप बोलीं–हे सखी ! या लाल को मन अपने तन-सुख के ताईं ही सदाकाल ललचायो करै है और या बात में हरिदासीजू हू बड़ी प्रसन्न ह्वै हम दोऊन कूँ लड़ाइ-लड़ाइ के सेवै हैं, श्रीप्यारीजू की नागरता भरी बात सुनि, श्रीगुरुदेवजू बोले–आपकी या बोलन पै मैं अपने तन-मन-प्रान सर्वस्व बार-बार बलिहारी करूँ हूँ, आप तथा श्रीलालजू जब दोऊ एक प्रान की द्वै देह हैं फिर मोते इतेक चतुराई लगाइबे को आपको कहा सयानपनो है।

तुम दोउ चतुर अचागरे, नवल कुँवर सु किसोर।
बसीकरन मोसौं कहौ, तुम मेरे चित-चोर ।।१२४।।
तुम मेरी उपजीविका, प्राँन प्रिया पिय पाय।
एक वैस रस रसिक हौ, लाडौं तुम्हें लडाय ।।१२५।।

या प्रकार श्रीगुरुदेवजू के मर्मभेदी उत्तर कूँ सुनि, मानों श्रीलाड़िलीजू बोलीं–सखी ! तू छिन-छिन ऐसी ही रहसि-रस भरी बातन ते हमारे प्रानन कूँ सदाकाल चोरती रहै है, तापै आपको कथन है कि–हे प्यारीजू ! तुम दोऊ नवलकिसोर सहज चतुरता ते भरे भये; मेरे तन, मन, प्रानन कूँ सतत चोरते रहौ हो, ताहू पै मोते आप बसीकरन कहौ हो ? आप दोऊ उपजीविका स्वरूप प्रानन को पालन करिबेवारे मोकूँ ऐसे मिले हो कि निरंतर एक रसवैस रसिकता के स्वरूप सों सतत खेलते रहौ हो। मैं तो सदाकाल एकमात्र यही चाहूँ हूँ कि आप दोऊन कूँ लाड़-लड़ाय-लड़ाय कें निरंतर लाड़ में भरी रहूँ।

मृदु पद अंबुज प्रिया पिय, छुवै न सुकर कठोर।
श्रीबिहारनिदासि कहत मरमु, नरम प्रेम मन मोर ।।१२६।।

बांये कुच मम प्रिया पद, दछिन कुच पिय पाइ।
चारचों चरन रहत हृदै, यौं सुख सैंन सुहाइ ।।१२७।।

श्रीयुगल चरनारविंद की अति अद्भुत कोमलता दरसाते भये आप आश्रित ते कहिबे लगे कि–हे बिहारीदास ! मैं तोते और हू मर्म की बात कहूँ हूँ–हमारे श्रीप्रिया-प्रियतम के अति अद्भुत ऐसे सुकोमल श्रीचरनकमल हैं जिनकूँ मेरो मन परम नर्म रसरीति को होते भये हू, स्पर्श करिबे में मेरे हाथ डरें हैं। याते मैं भावना द्वारा अपने हृदय में बाईं ओर श्रीप्यारीजू के चरनकमल तथा दक्षिण कुच पै श्रीलालजू के चरनकमलन कूँ बिराजमान करि, इतेक अति अगाध सुख में सोइबो ही, मेरे मन कूँ सदाकाल सुहावै है।

जिहिं जिहिं आसन सैंन वर, तिहिं तिहिं अँग अवलंब।
देति बिहारिनिदास सुख, लागत पलु न विलंब ।।१२८।।

श्रीस्वामीजू महाराज की अति अनुराग भरी अद्भुत सेवा कूँ बताते भये आप बोले—परम नरम अति कोमल सैय्या पै जब रसरासि श्रीयुगल खेलें हैं, वा समय जहाँ-जहाँ आपके श्रीअँग जाइ हैं तहाँ-तहाँ ही स्वामीजो महाराज श्रीअंगन कूँ ततछिन अवलंब देवें हैं।

तरुनि तरंगनि में परे, अरुझे बार सिवार।
पैरत साहस सखी कैं, अति आवर्त्त बिहार ।।१२९।।
श्रमहि निवारत कर धरत, कबहूँ लावति तीर।
श्रीबिहारिनिदासि हुलास मन, देति अधीरन धीर ।।१३०।।

अति बिचित्र सुकुमारता ते हू अति बिचित्र सुकुमारता, अति अद्भुत प्रेम-रस बिहार ते हू अति अद्भुत प्रेम-रस बिहार तथा अति बिचित्र ते हू अति बिचित्र श्रीवर बिहारनदासी स्वामीजू महाराज को प्रेम-बल-प्रताप कूँ प्रकास करते भये, निज आश्रितन ते दया करुना में बिबस होइ अमृत बानी द्वारा आप बोले–हे भाई ! जैसे नदी सरोवरन के किनारे पानी में काई ते ऐसो अति सुकोमल सिवारन को जाल बनि जाइ है कि नेंक छुवत खेम वो टूट जाइ है। किन्तु वाहू ते अति सुकुमार, कोमल वस्तु वा जाल में ऊरझि जाइ तौ बाको निकासिबो अति कठिन है। तैसे ही प्रेम नदी की अद्भुत तरंगन में मेरे रसरास श्रीयुगल के अति सुकोमल ते हू अति सुकोमल प्रान सतत अरुझे रहै हैं। जैंसे अति बिसाल एवं अति अगाध समुद्र की

तली फटि जाइबे ते सत-सत कोसन को पानी अरराटे करतो भयो पाताल में जाइबे लगै है, वा समय वा पानी के ऊपर एक बहुत बड़ी ऐसो घुरनी परै है, जामें जाइबे एवं पैरिबे की कोई सोच ही नाँइ सकै है क्योंकि जहाँ दृष्टि को हू ठहरिबो कठिन परि जाइ है। या प्रकार के प्रेम-रस बिहार के अति आवर्त में - मेरे रसिक अनन्य सिरोमनि श्रीयुगल श्रीस्वामीजू के अद्भुत प्रेम-बल-भरोसा पै निसंकता ते मनभाँवते पैरें हैं। इतेक हू नाँइ अति सुरत श्रमित देखि दोऊ अधीरन कूँ धीर दै-दैं कें आप तीर पै हू लावैं हैं। कबहुँ बड़े हुल्लास ते श्रीयुगल कूँ बाही रस घूरनी में पैरावन लगैं हैं।

तन मन अरुझि न सुरझई दोऊ मगन मदन मद मोद।
प्रेम सहेली सुन्दरी दोऊ दौरि लिये गहि गोद॥ —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

अति माधुर्य सनेह परस्पर विवस भये री।
दोऊ सुरत श्रमित अति जान सहचरी अंक लये री॥
सेवत सुख रुख जानि नये सिंगार ठये री।
बलि-बलि नागरीदास की स्वामिनी नेह नये री॥ —श्रीनागरीदेवजू

× × ×

जै श्रीविपुल बिहारनदासि खवासी करत रही अंग संग।
रसिक अनन्य सिरोमनि श्रीहरिदासीजू के प्रेम अभंग॥ —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

अंगराग अनुराग रँगे दोऊ सुरत विबस जब जाने री।
श्रीहरिदासी विपुल बिहारिनदासि दोऊ उर आने री॥
फेरि सिंगार हार रति साजैं यो नित नेह बढ़ावैं री।
बलि-बलि नागरीदास दरस सुख-प्रमुदित प्रेम लड़ावैं री॥ —श्रीनागरीदेवजू

श्रीबिहारीदास जल जंतु ज्यौं, जल बिन रहै न प्राँन।
याही अर्थैं समझि लै, नित्य बिहार निदाँन॥१३१॥
नामी नांम न भावई, तन-मन-मनसा प्राँन।
आसा दासि बिहार की, यौं बसि रसिक निदाँन॥१३२॥
नांम न कछू बिहार बिनु, ठाली नांम निवार।
नामी नांम सुहावनौं, जब देखौं करत बिहार॥१३३॥

या प्रकार की अति अद्‌भुत रस-बिहार की अगाधता को श्रवन करि आश्रित अपने मन में यह सोचिवे लग्यौ कि ऐसो सर्वोपरि बिहार कबहूँ-कबहूँ ही होतो होइगो, ताको लक्ष्य करि श्रीगुरुदेवजू ने कथन कियोकि—हे बिहारीदास ! अति विसुद्ध पूर्नतम प्रेममय महामधुर सार रस के नित्यबिहार को स्वरूप ही या प्रकार को है, जाकूँ महामर्मी रसिक-अनन्य श्रीयुगल एक छिन के ताईं हू ऐसे नाँइ छोड़ सकैं हैं, जैसे जल के जन्तु जल विना अपने प्रान ही नाँइ राखैं हैं, मैं तोतें निदान करिके स्पष्ट कहूँ हूँ कि तू भलीभाँति समझ ले, जो बिहार अनादिकाल ते अनमिष अंखियान द्वारा निरंतर श्रीयुगल बिलसि रहे हैं, तौहू उन्हें आज ताऊँ बिलसिबो ही भान नाँइ भयो है, और तो और छिनकाल के ताईं तिन्हें निद्रा-भोजन को हू या रस-बिहार में सुधि नाँइ होइ है। ये ही बिहार महामधुर-सार-रस को होइबे के कारन वास्तविक नित्यबिहार मान्यौ जाइ है।

हमारे रसिकसेखर श्रीयुगल तन, मन, मनसा एवं रोम-रोम तें एकमात्र श्रीस्वामीजू के ही प्रेमबिहार की निरंतर आसा लगाये ऐसे बसीभूत हुए रहै हैं कि या बिहार के अतिरिक्त इन्हें नाम हू सुनिबो नाँइ सुहावै है।

याते नित्यबिहार रसमय भाव सों विहीन, ठाली नामन कूँ तुम भलीभाँति छोड़ देउ, क्योंकि बिहार से अतिरिक्त हमारी उपासना में नाम ऐसो समझ्यौ जाय है, जैसे बिना दूध की टल्लर गइया। श्रीयुगल कूँ नाम तभी सुहावनो लगै है जब साधक नित्य-बिहार कूँ अनुसंधान करतो भयौ भाव सों नाम लेवै है।

कहा नांम नांमी कहा, सखी सुख पूछों तोहि।
तन मन मगन बिहार में, तहां ढूँढि लै मोहि ॥१३४॥

याही बात कूँ एक समय हमने साक्षात् श्रीस्वामिनीजू ते ही पूछी ही कि—हे प्यारीजू ! नाम एवं नामी के सुख-स्वरूप में कहा अन्तर है, तापै आप बोलीं—तन, मन, प्रानन ते रस-बिहार में निमग्न मोकूँ जा नाम ते ऐसे बुलाइ लेवैं, जैसे कोई बिसाल मेला में खोये भये व्यक्ति कूँ वाके निज-नाम द्वारा बुलाइ लेइ है, वोही नाम, नामी-स्वरूप अभेद होइबे के कारन सुख स्वरूप हैं।

दरस परस सुख सिंधु सत, बिन परसैं दुख द्वंद।
ए दोइ कहे न सहे परैं, सखी आनँद किधों दृढ फंद ॥१३५॥

श्रीस्वामिनीजू के श्रीमुखकमल ते रस-बिहार की अगाध आसक्ति स्वरूप बात सुनि, सखी-सखी सों कहिबे लगी कि—हे सखी ! रसिक चूरामनि हमारो ये लाल

या प्रकार अति अद्भुत प्रेमासक्ति को स्वरूप है, जोकि दरस-परस करिबे ते तो बिनकूँ सत-सत सिन्धुन के बराबर अगाध सुख होइ है और काहू कारन सो सपरस नाँइ होइबे सों आपके हृदयकमल में महान दुख को द्वन्द ठाड़ो है जाय है, और तो और यदि इन्हें कोऊ दो कहि देवै तो, इन शब्दन कूँ ही ये सहन नाँइ करि सकै है, याते सखि ! कछु निश्चय ही नाँइ होइ है कि इनको प्रेम आनंद स्वरूप है या कोऊ दृढ़ फंदा है ।

व्याकुल बिरह बिहार बिनु, नख सिख लोभी लीन ।
श्रीबिहारिनिदास अंग सिथिलई, स्वासनि गिनत अधीन ॥१३६॥
नाभि कमल मुख कमल पर, नैंन कमल सुख सेज ।
श्रीबिहारिनिदास हृदै कमल पर चरन कमल धरि हेज ॥१३७॥

हे सखि ! रसिक सिरोमनि ये लाल रस-बिहार को नख ते सिख पर्यंत, ऐसो अति लोभी होइ आधीन रहै है जो कि नेक हूँ बिहार में व्यवधान परिजाइ तो व्याकुलता में लीन होइ, इनके श्रीअंग ऐसे सिथिल परि जाँइ है, कि हम सब स्वांसन कूँ ही गिनन लगै हैं । याते यह निस्चय बात है कि या लाल की जीवन स्वरूप एकमात्र हमारी प्रान लाड़िली श्रीप्यारीजू ही हैं ।

हमारी श्रीप्यारीजू के मुखकमल एवं नाभिकमल आदि समस्त श्रीअंग या लालजू के नेत्रकमलन कूँ इतेक अगाध प्यारे लगे हैं, मानों इनके सुख-स्वरूप सोइबे की सैय्या ही है, याही ते बड़े हेज में भरि-भरि श्रीप्यारीजू के श्रीचरन-कमलन कूँ बेर-बेर अपने वक्षस्थल पै बिराजमान कियो करैं हैं ।

बिहारी लोचन सरस रस, हँसत कौंन हूँ हेत ।
प्रेम जनावत प्रिया कौ, कहि न सकत सुख देत ॥१३८॥

हमारे रसिकसेखर लाल के श्रीनेत्रकमल, सखि ! ऐसे बिचित्र सरस रसीले रस ते भरे भये हैं कि काहू हेत सों हंसैं, वाही में प्रानप्यारीजू को ही हित दरसावैं हैं, जाकूँ देखि हम सबन कूँ इतेक सुख होइ है जो कहिबे में ही नाँइ आय सकै है ।

अति टोंडिकु अति चिकनियाँ, अधिक चतुर इतराइ ।
कितहि बिभौ कित ठकुरई, जूठनि कौं ललचाइ ॥१३९॥
जांचे जूठि न पाइयै, पग परि हाहा खाइ ।
जो ठाकुर कहि बोलिये, तौ सकुचि तनक ह्वै जाइ ॥१४०॥

ताहि सुहाइ न ठकुरई, बड प्रताप विस्तार।
जाचत दै दिन जीवका, सखि मोहि अहार बिहार ।।१४१।।

श्रीब्रज-रस देस में ठाकुर अति टोडिक छैल-छिकनियाँ एवं सबके सिरताज स्वरूप सों खेलि-खेलिकें अति इतरावै है और हमारे कुंजबिहारी श्रीलालजू के स्वरूप में–बैभव टकुराई की तो हवा हू नांइ है, और तो और काहू समय हम सहज सुभाव ठाकुर कहिकें बोलि परें, तो सकुचि के मारे छुई-मुई के पौधा की नाईं सुकुरि के नेकसों है जाय है और श्रीरसिकेश्वरीजू की प्रेम-रसमयी अधर-सुधा के ताईं सतत ललचायो करैं हैं। जब कबहूँ प्यारीजू अनुकूल नाँइ होइ, तब दीन ह्वै श्रीचरन-कमलन में बेर-बेर परि हा-हा खायो करैं हैं।

सखि ! बात तो यह है कि अति बिसुद्ध प्रेम-स्वरूप या लाल कूँ टकुराई एवं ईस्वरतामय प्रताप बिस्तार आदि सुहावैं ही नाँइ हैं, याते ये अपनी जीविका स्वरूप रस-बिहाररूपी आहार की सदाकाल दीनातिदीन है हम सबनते जाँचना करतो रहै है।

प्रांन पलित पांइनि परें, परसें होत निहाल।
यहै दसा सेवत सखी, दूलह दुलहनि लाल ।।१४२।।

हमारे लाल की अति अद्भुत प्रेमासक्ति कूँ कोऊ कहा ताऊँ बर्नन करि सकै है, जाके प्रानन को एकमात्र श्रीप्यारीजू के चरन-कमलन में परिबो ही पालन है और कबहूँ श्रीचरन-कमल सपरस करिबे को मिलि जाइ हैं, तब तो यह लाल अपने को निहाल ही मानन लगै है।

ऐसी बिचित्र प्रेमासक्ति ते भरे भये नव-दूलह-दुलहिन के रुख अनुसार सखि निरंतर लाड़-लड़ावैं हैं।

* सिद्धान्त की साखी *

मेरे नित्य किसोर अजन्माँ, बिहरत एक प्रान दो तन्माँ।
कुंजकुटी क्रीडत खिन खिनमाँ, संतत बास बसत बन घनमाँ ।।१४३।।

हमारे श्रीस्वामीजू महाराज की जोरी श्रीवृन्दाबन निज-महल में नित्य-किसोर वयस ते, एक-प्रान द्वै-देह स्वरूप सों सहज सतत बिहार करै है। याते इनको संबंध जन्मकर्मादिक लीलान ते लेसमात्रहू नाँइ है। जिन जोरीन को संबंध जन्मादिक लीलान ते है, बिनको बाल, कौमार, पौगंड आदि लीलान के आधार स्वरूप होइबे के कारन, एक-रस नित्य-किसोर वयस स्वरूप सों बिहार बनि ही नाँइ सकै है।

माई री सहज जोरी प्रगट भई जु रंग की गौर-स्याम घनदामिनी जैसै ।
प्रथम हू हुती अबहूँ आगे हू रहिहै न टरि है तैसै ॥
अंग-अंग की उजराई सुघराई चतुराई सुन्दरता ऐसे ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सम वैस बैसे ॥

× × ×

नव-नव लाड़-लड़ाइ लाड़िली नहि-नहि यह ब्रज जाँवरो । –श्रीस्वामीजी
यह जोरी अबिचल श्रीवृन्दावन नाहि आन सों काज ॥–श्रीबिठलबिपुलदेवजू

छलकत छींट जहाँ परी, तहाँ प्रेम उदगार ।
गावत नृत्तत हँसत सब, हरि हित हरष उदार ॥१४४॥

अति सुकोमल, लावण्यता, लाघवता एवं लालित्यता तथा अति अनुराग आसक्ति ते भर्चौ-पूर्चौ महामधुर रस को हू सार अद्भुत अगाध या जोरी के रस-सागर की छलकि कै छींट जहाँ परी–तहीं पै प्रेम-रस को समुद्र, ऐसो बहन लग्यो कि वाही रस-सागर में, यावत रसिक समाज मनभाँवते आनंद लै-लैकें नाँचें-गावें हैं एवं उदारतापूर्वक अपने-अपने आश्रितन कूँ प्रेम-रस कौ दान देवें हैं ।

हमारो महल सदा सुखदाई ।
प्रिया लाल कों रंग बढ़ावत छिन-छिन प्रीत सवाई ॥
छलकत छींट परी आनंद की ब्रज में नाँहि समाई ।
यह गुप्त रीति हरिदास प्रगट करी रसिकन के मनभाई ॥–श्रीललितकिशोरीदेवजू

× × ×

प्रेम सिंधु के बिंदु ने सब प्रेमी दिये बुड़ाइ ।
किसोरदास हा-हा करत नृत लगन कल गाइ ॥
तासु प्रेम के सिंधु की बिंदु तनक चलि आइ ।
कोटि-कोटि ब्रह्मांड के सब प्रेमी दिये बुड़ाइ ॥
अखिल कोटि ब्रह्मांड मधि प्रेम बिन्दु उरझान ।
किसोरदास श्रीहरिदास को समझि बीज भ्रमभान ॥

कोऊ गोबर पाथनी, कोऊ ढौवै पाइ ।
कोऊ सुहागिल लाडिली, बोलत हूँ अलसाइ ॥१४५॥

जैसे-जैसे निकुंज-महल रस-सागर के छींटा को तारतम्य होतो गयो, ताही अनुसार श्रीस्वामिनीजू के रस-स्वरूप में हू तारतम्य बताते भये आपने कह्यौ कि–

कहूँ तो महत्‌पुरुषन ने गोप जाति अनुसार गोबर थापिनी स्वरूप आपको मान्यौ है, कहूँ पानी ढोइबेवारी। एक श्रीवृन्दावन निकुंज-महल की अनन्य-विलासिनी परम सुकुमार सिरोमनि सुहागिल लाड़िली ऐसी हैं, जो बोलिबे में हू आलस मानैं हैं।

मिलै न प्रकृति किसोर की, कीने सिष्टाचार।
बहुत बिलछन वैस रस, पावै कहाँ बिहार ।।१४६।।

यदि कोऊ अपने मनमें ये विचार करै कि–जब श्रीराधा-कृष्ण ही निकुंज-महल में बिहार करैं हैं और श्रीराधा-कृष्ण ही ब्रज में बिहरैं है, फिर रस में इतेक बड़ो तारतम्य कैसे होइ सकै ? ताको लक्ष्य करिके आप स्पष्ट बोले कि–हे भाई ! जो स्वरूप सदाकाल नित्य-किशोर वैस सों एकमात्र निकुंज-महल में ही निरंतर बिलास करै है, बिनकी महामधुर-रस की प्रकृति, सृष्टि-आचरन अनुसार जन्म-लीला ते संबंध राखिबेवारी जोरी ते कैसेहू नाँइ मिल सकै है, यद्यपि प्रगट-स्वरूप में बाल-कौमार-पौगंड आदि बहुत बिलक्षण वैस रस हैं, तौहू सतत एकरस परस्पर बिहार बिनको बनि ही नाँइ सकै है।

सूक्ष्म धर्म दुरचौ महल, रहे अधर्मी छाइ।
श्रीबिहारिनदासि प्रगट कियौ, जब उठ्यौ धर्म अकुलाइ ।।१४७।।

अति सुक्ष्मातिसूक्ष्म निज-रसमय धर्म तो एकमात्र प्रथम-समागम-एकान्त-रस बिलास-निज-महल में ही छुप्यौ भयौ हुतो, जब चारों ओर स्थूल-रस के ही उपासक महत्‌पुरुष छाइ गये, तब सूक्ष्म निज-धर्म महल में अकुलायो। याते साक्षात् श्रीनित्य-बिहारिनदासी श्रीस्वामीजू महाराज निज-महल ते श्रीहरिदास स्वरूप सों अवतरित होइ, जगत में नित्य-बिहार-रस-उपासना कूँ प्रगट करते भये अनन्य आश्रितन कूँ उपदेस दीनौं।

श्रीहरिदास महल ते प्रगटे, बिपिन निसान बजाये जू।
अद्‌भुत प्रेम दियो तिनहिनकों, जे-जे सरने आये जू ।।

× × ×

गुप्त रीति प्रगट भई सुखनिधि सहज सु बनाबनी की।
श्रीकुंजबिहारिन ललित लाड़िली करी रसिक के जी को।।

× × ×

रसिकन के रस देन को प्रगटे रसिकानंद।
आगे हुवे न होहिंगे अद्‌भुत आनंद कंद ।। –श्रीपीतांबरदेवजू

बहुत लडाई लाडिली, सुख दै दुख निरवार।
श्रीबिहारिनिदासि अलकलडी, बडो ममत्व विचार ॥१४८॥

यद्यपि अनेक महत्पुरुषन ने अपने-अपने प्रेम-भावानुसार श्रीस्वामिनीजू कूं रस-बिलास-बिलसाइबे में अनेक बिघ्न-बाधा एवं बिरह कूँ निवारन करि-करिकें नाना भाँति लाड़-लड़ाये हैं। किन्तु हमारे श्रीस्वामीजी महाराज को कथन है कि–मेरी अलकलड़ी-प्रानेश्वरी-श्रीनित्य-बिहारिनीजू कूँ अपने प्रानन केहू निज-प्रान समझि, बिनके प्रानन को अनन्य ममत्व, सर्वोपरि नित्य-बिहार-रस कूँ बिचारि-बिचारि रुख अनुसार निरंतर लाड़-लड़ाओ, वोही लाड़ आपके लाड़ को सर्वोपरि स्वरूप है।

विना ममत्व एकत्व न ऐसा जगते भक्त घनेरा। –श्रीगुरुदेवजू

साधन श्रम ना कछु कियौ, ना कछु करिबे जोग।
कृपा बिहारिनिदासि की, सहज संजोगी भोग ॥१४९॥

यदि कोऊ अपने मनमें यह बात सोचे कि–या प्रकार को सर्वोच्च रस आपकूं कैसे प्राप्त भयो, ता बिषय में आपने कथन कियौ कि–हमने न तो कछु साधन परिश्रम ही कीनौ और न कछु करिबे जोग ही हम हुते, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की निज-कृपा ते ही सर्वोपरि-नित्य-बिहार-रस हमें सहज प्राप्त है गयो।

अर्थात् जो महा-रस ऐसो अति-बिचित्र सर्वोपरि है, कि साक्षात् श्रीलक्ष्मी-पति, ब्रजपति कूँ हूँ अति दुर्लभ है, एवं रसिकजन हूँ जाकूँ सुनिबे में भय खाँइ हैं। बाको न तो कोऊ साधन हो ही सकै है और न कोऊ करि ही सकै है। एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की निज-कृपा ही उपाय है।

काहू कौ बस नाँहि तुम्हारी कृपा ते सब होइ श्रीबिहारी-बिहारिन।
और तो मिथ्या प्रपंच काहे को भाषिये सो तो हैं सब हारिन ॥–श्रीस्वामीजी

× × ×

श्रीस्वामी हरिदास कर अंबुज परसत माथ।
मानो रचि खचि चंद्रिका राखी सखियन साथ॥
राखी सखियन साथ नाम धृत दासि बिहारिन।
निरखत नित्य-बिहार लता-ग्रह रंध्र निहारिन॥

× × ×

जैसे दियो है प्रसाद प्रगट करुनाकरि कुंजबिहारी-बिहारिनिदास।

ऐसी स्वामिनि साहिबनी, रसिक अनन्य उदार।
श्रीबिहारिनिदासि प्रसंन ह्वै, दियौ अहार बिहार ॥१५०॥
सब सारन कौ सार सुनि, सब तत्त्वनि को तत्त्व।
श्रीबिहारीदास अनन्य मत, बडो ममत्व एकत्त्व ॥१५१॥

फिर आप बोले कि—परम-उदार-चूरामनि श्रीस्वामीजू महाराज मोपै अद्‌भुत प्रसन्नता में बिबस होइ, या प्रकार की सर्वसिरोमनि-साहिबनी सर्वोपरि नित्य-बिहारिनीजू को अहार-स्वरूप नित्य-बिहार कृपा करि मोकूँ दै दीनौ। याते यावत सारन को सार और सब तत्वन को तत्व, एवं रसिक-अनन्य-सिरोमनि श्रीस्वामीजू को हू अभिमत मैं तुमसों कहूँ हूँ कि—तुम अपने कोटि-कोटि प्रान ते हू अधिक ममत्व द्वारा, श्रीनित्य-बिहारिनि-बिहारीजू कूँ प्राननि के हू निज-प्रान-स्वरूप बनाइ लेवो।

कहत सुनत ही या जसहि, श्रीगुरु दियौ समुझाइ।
वहै रह्यौ रमि हृदै में, श्रीबिहारिनिदासि हिताइ ॥१५२॥

हमारे रस-सागर श्रीगुरुदेवजू ने कहते-सुनते में ही या अद्‌भुत रस कूँ मोकूँ ऐसो समझाइ दीन्यौ, जो मेरे हृदय में भलीप्रकार रमि रह्यौ है। याही ते श्रीस्वामीजू महाराज मोते बड़ो हित करैं हैं।

रस सैली पैइयत भिया, तुम बहे फिरौ सौ गैल।
गूदर मेलैं गरे में, घर मैं कहियत छैल ॥१५३॥

आँपके श्रीमुख-कमल ते नित्य-बिहार-रस की प्रसंसा सुनि मानों साधक ने प्रार्थना कीनी कि—हे महाराज यह अद्‌भुत रस हम सबन कूँ कैसे प्राप्त होइ सकै है? तापै आपको कथन है कि—हे भइया! तुम गूदर सद्दस कर्म-धर्म-महातम, विधि, ज्ञान ईश्वरता आदि अनेक प्रकार की भक्ति-रसन कूँ अपने हृदय में भरि बहे-बहे फिरि रह्यौ हो, और अपने कूँ बहुत ऊँचो परमार्थी मानि छैल बने डोलि रहे हो, इन सौ-गैलन में चलिबे ते रस-रीति कूँ प्राप्त करिबो तो बहुत दूर की बात है, रस की सैली हू प्राप्त नाँइ है सकै है।

बूँदक रस पायौ कहूँ, राख्यौ भुस में सानि।
भुस में रस पैइयै नहीं, बहुत मरे पचि छाँनि ॥१५४॥

काहू ते सुनि समझि के बूँदक रस काहू ने प्राप्त हू करि लीन्यौ, किन्तु वाने भुस-स्वरूप और-और परमार्थ-रसन में सानि लीन्यौ, फिर भुस में ते रस कैसेहू

छाँनिकें कोऊ नाँइ निकारि सकै है, याते बहुत लोग याही प्रकार पचि-पचि के मारे गये हैं।

सिलौ पराये खेत में, बीनत मन भै माँनि।
हारि गारि दै सहजहीं, रहै न पति पहिचाँनि ।।१५५।।

जैसे कोऊ पराये खेत में जाइके सिला बीनन लगे, बाके मन में भयहू बन्यौ रहै है और खेतबारे के आइबे पै न तो कोऊ अपनी इज्जत ही रहै है और न परस्पर को मेल-जोल ही रहै है क्योंकि वो देखत खेम गारी देन लगै है। तैसे ही तुम दूसरे घरवारेन में जाइ बिनके सिला सदृस रस कूँ ही लेइबो चाहोगे, वो सहज में ही अपनी बातन ते तुम्हारे घरको हरुवो बताइबे की चेष्टा करेगो, फिर तुम्हारो बिनको मेल जोल ही टिकबो कठिन परि जायगो।

ज्यौं चोरी के सुत बितहि, सकै न खरचि खिलाइ।
काचौ धर्म कनांवडो, वाकी धरक न जाइ ।।१५६।।

जैसे चोरी के धन एवं संतान कूँ मनमान्यौ-खर्च-खिलाइबे में मन में धरकन बनी रहै है, तद्वत दूसरेन के धर्म-बल पै चलिबेवारे ही अपने धर्म में काँचे होइ हैं, बिनके मन की धरकन नाँइ जाइ है, याते वे सबकी कान करिकें ही चलें हैं।

सभा पराई सांकरें, अपनौं इष्ट लडाय।
छिकरि नचे बिनु कौंन कौ, कोनौं धर्म सहाय ।।१५७।।

अपने निज आश्रितन ते आपने आज्ञा कीनी कि–हे भाई! अन्यधर्मीन की महती सभा में हू अपने इष्ट-धर्म कूँ भलीभाँति लड़ाइ-लड़ाइ कें निर्भीकतापूर्वक वर्णन करौ। यदि अपने धर्म के निरुपन करिबे में तुमपै कैसी हू आपद्-विपद् आवे तो सब सहन करौ, क्योंकि धर्म के पीछे यावत कष्टन कूँ सहे बिना धर्म रक्षा नाँइ करै है।

बांभन तें धोबी भयौ, धोबी तें दरवेस।
भूखौ स्वांग सहस करै, खेबे कैं आवेस ।।१५८।।

जैसे कोऊ जाति कौ ब्राह्मन होइबे पै हू पेट भरिबे के ताईं धोबी सदृस परनिंदा करिबे लगै हैं, जब वामें हू संतोष नाँइ होइ हैं, तब दर-दर पै माँगिबे को वेष बनाइ लेइ हैं। ऐसे वे लोग अपने स्वार्थ-सिद्ध करिबे के ताईं, हजारन स्वाँग रच्यौ करें हैं। याही प्रकार प्रायः स्वार्थी साधकन को ऐसो सुभाउ होइ है कि अनेक प्रकार के परमार्थन में चलिके ही बिनके मनकूँ संतोष होइ है।

दुर्लभ दास कहाइबौ, श्रीबिहारीदास हरिदास ।
पैसनि कैं पलटैं गई, भक्ति बिना विस्वास ।।१५९।।

जगत में अधिकतर साधक–अपने इष्ट के बिना विस्वास पैसन के पलटे, श्रीभक्ति महारानी के पथ कूं ही खोइ बैठें हैं, तामें बिना विस्वास के तो श्रीस्वामीजी महाराज कौ अनन्य दास कहाइबो अति ही दुर्लभ है ।

हों प्रभु कौं प्रभु मेरेई, भजि हौं न तजि हों पास ।
श्रीबिहारीदास सब साध मतु, यहै भजन विस्वास।।१६०।।

हमारी दृढ़ अनन्यता की या प्रकार की भजन-भावना है, जो कि–मैं एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज को ही हूँ और श्रीबिहारीजी महाराज हू मेरे हैं, या भाव ते निरंतर अनन्य-भजन करतो भयो, भावना द्वारा सतत बिनके पास में ही मैं रहूँ हूँ और याही दृढ़-विस्वासरूपी भजन कूं–समस्त संतजन सर्वोपरि साँचो भजन बतावैं हैं ।

चो०–श्रीबिहारीदास विस्वास न आयौ, तौ काहैं कौ मूँड मुडायौ ।
गुरू प्रतीति बिन भयौ न भायौ, तौ रह्यौ बीचहीं पार न पायौ ।।१६२।।

हे बिहारीदास ! जिन लोगन ने अपने इष्ट-गुरुन में साँचो विस्वास नांइ हो, तब उन्हें मूड़-मुड़ाइबे की आवस्यकता ही कहा ही ? क्योंकि अपने श्रीगुरुदेव के बचनन में बिना विस्वास भये कोऊ काम बनि ही नाँइ सकै है, ऐसे साधक बीच में ही लटके रहि जाइ हैं।

मूँड मुँडायें जग फिरयौ, मूडयौ मिल्यौ न कोइ ।
श्रीबिहारीदास मूँडे कहा, जो गुन नकटे कौ होइ ।।१६२।।

मूँड मुँडायें कहा भयो, जो मन न मुँडायो ।
श्रीबिहारीदास सति भाइ बिनु, संतोष न आयौ ।।१६३।।

फिर आपने कथन कीनौ–यद्यपि जगत् में मूँड-मुड़ायें अनेक व्यक्ति डोलि रहे हैं, किन्तु मायिक-वासनान तें मनकूँ मुड़ायो, कोऊ नाँइ मिलै है और बिना मनके मुड़ाये, केवल मूड़ को मुड़ाइबो तो बेसर्मन को ही काम है, याते हम काहू को मूड़ें ही नाँइ हैं । यदि मन की बासनान कूँ नाँइ मुड़ाय सकै, तो केवल मूड़ के मुड़ाइबे ते, कछु नाँइ है सकै है, कारन साँचे भाव बिना संतोष मनमें आवै ही नाँइ है ।

बिनु संतोषहि सुख नहीं, भक्ति भाइ बिनु प्रेम।
श्रीबिहारीदास बिस्वास बिनु, सब घट नेष्टा नेंम ।।१६४।।

हे बिहारीदास ! जैसे बिना संतोष के सुख काहू प्रकार ते हो ही नाँइ सकै है, तैसे ही बिना भक्तिभाव के, प्रेम उदय होइबो अति कठिन है। बिस्वास ते रहित साधकन के हृदय में–केवल नेम की ही नेष्टा रहै है।

नेष्टा सब चेष्टा भई, नेंमु भुलायौ प्रेम।
श्रीबिहारीदास परचौ भयौ, कुसल दसहु दिस खेंम ।।१६५।।

यदि कोई ये बात कहै कि–नेम निष्ठा ते हू नित्य-बिहार प्राप्त है सकै है ? तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई ! बिना प्रेम के नित्य-बिहार कैसे हू प्राप्त नाँइ है सकै है। जब प्रेम उदय है जाइ है, तब यावत निष्ठा चेष्टा-मात्र ही रहि जाइ हैं और नेम तो याद हू नाँइ रहै हैं। या बात कूँ हमें पूरो परचो मिलि गयो है, याते अब दसो-दिसान में मोकूँ कुसलक्षेम ही कुसलक्षेम दीखै है।

कहा आचार बिचार बिनु, कहा भक्ति बिनु भाव।
कहा साधु संतोष बिन, यौं हँसि हार्यौ दाव ।।१६६।।
कहा सिंगार सुहाग बिनु, कहा साहस बिनु सूर।
कहा प्रीति परितीत बिनु, करत कुमन्त्री कूर ।।१६७।।

जैसे आचार करिबे को मर्म समझे बिना, आचार करिबे ते कोऊ लाभ नाँइ होइ है, तैसे ही बिना भाव की भक्ति, यों ही चली जाइ है। ऐसे ही बिना संतोष के साधु होइबो बेकार है। तौहू लोग प्रसन्नता पूर्वक इन कामन कूँ करि करि कें अपने समय कूँ बेकार खोवै हैं। अर्थात समझ-बूझि कें तो आचार, तथा भाव सों भक्ति एवं जागतिक सुख स्वार्थन ते संतोष, करिके ही साधु होते तो बहुत बड़ो दाव इनको सफल है जातो। याही भांति सुहाग ते रहित स्त्री को शृंगार करिबो, और साहस के बिना शूर वीर होइबो, तथा परस्पर विस्वास के बिना प्रीति, खोटी बुद्धि-बारे क्रूर लोग ही कियो करैं हैं।

धर्म बिना धृग जीवनों, धन बिनु धृग व्योहार।
सभा सूम धृग गाँव बसि, धृग मूजी सिकदार ।।१६८।।
बैठि सभा सिकदार की, चुगल हराम्यौ खाइ।
बिना तफावस आमिली, दौरे दोजग जाय ।।१६९।।

लोभी आमिल दोजगी, भयौ सहर सिकदार।
दुहूँ दिवाननि जरदरू, दीन दुनी बजगार ।।१७०।।

जैसे धन के बिना व्यौपार करिबो धिक्कार है, तैसे ही अपने धर्म के बिना जगत में जीवन हू धिक्कार है। ऐसे ही सभा तथा गांव में सूम को बसिबो हू धिक्कार है। क्योंकि सूम प्रकृतिवारो-व्यक्ति धन कूं खर्च नाँइ करिबो चाहै है, सभा तथा गाँव में ऐसे कार्य अवस्य आवै हैं, जामें धन खर्चिबे की आवश्यकता परै है। याते सब लोग वाकू धिक्कारै हैं।

याही प्रकार कंजूस व्यक्ति कूँ गांव सभा में सिकदार यानी सरगना होइबो धिक्कार है। सभा के सरगना आदमी के पास-चुगल दूसरेन की चुगली करि-करि कें वाकूँ राजीकर हराम को ही खायो करै हैं। बिना इन्साफ के हाकिम सीधे नर्क में जाइ हैं। लोभी हाकिम, सहर को मुखिया, दोऊ बज्रपात करिबेवारे नरकगामी होइ है।

हक नाहक कौ न्याव करि, खूँनी गुनहीं दंड।
लोभ करहिंगे दाँम कौ, तौ बेगि होहिंगे भंड ।।१७१।।

लौंद लौंदिगी गुनहु करि, पहिल पुकारै आय।
श्रीबिहारीदास द्यौरौ कियौ, लौंदै लहै सजाइ ।।१७२।।

दावा मुदई बोलिकैं, झगरावैं जु हजूर।
साँच झूठ तब जानियैं, जब छानैं मैदा बूर ।।१७३।।

जो न्यायाधीश साँच-झूठ को इन्साफ करिबेवारे होई हैं, वे लोभवस कछु लेइकें, निर्दोसी कों दोसी बनाइ दै हैं, बिनकी जगत में बेगि ही बदनामी है जाय है।

दुष्ट प्रकृतिवारे स्वयं दुष्टता करि, पहिले जाइकें अपनी फरियाद लगाइ दें हैं। निस्प्रेही न्यायाधीश गुन, दोस कूँ छानि—ताइके दुष्टन कूँ ही दंड देवै हैं ऐसे ही जी-हजूरी करिबेवारे वकील, लोगन कूँ नाना प्रकार बात समझाइ कें, झगरौ खड़ौ कराइ देवै हैं, जासों भलीभांति छान-बीन करे बिना साँच-झूठ को पतौ नाँइ लगै है।

याही प्रकार परमार्थ में चलिवेवारेन कोहू भलीभाँति छानि-ताये बिना मर्म पकरिबे में नाइ आइ सकै है। साँचे जन पै इष्ट गुरू एवं संतजन रीझि के वाकूँ सर्वस बस्तु दै देवैं हैं। दंभी पाखण्डी जनन कूँ दंड स्वरूप अपराध ही पल्ले परै है।

एक फसलि की आमली, द्वै अतवारहि आउ।
सुख थोरौ श्रम आगरौ, ज्यौं आवै त्यौं जाउ ।।१७४।।

यद्यपि एक फसल के लगान कूँ सरकार दो किस्तों में बसूल करै है, तौहू किसान कूँ लगान चुकाइबे की सतत चिन्ता बनी ही रहै है, और खेत जोतिबे-बोइबे ते लैकें, नाज-निकारिबे ताऊँ बहुत ही पचनो परै है, तापै हू लगान आदि दैबे के बाद सुख-स्वरूप नाज-घर में थोरो ही बचै है।

तैसे ही कर्मादिकन के पथिकन ने भलीभाँति विधि-विधान ते यावत कर्मन कूँ करिबे पै हू स्वर्गादिकन की प्राप्ति होइ है, बिनके फल समाप्त होइबे ते, फिर जगत में जन्म लेनो परै है। याही प्रकार इन कर्मादिकन में जन्म-मरनरूपी आवागमन के कारन–किसान की नाँई, सुख तो बहुत थोरो है, परिश्रम अधिक है।

धर्म रूप अकबर प्रगट, तहाँ न कछू दुराउ।
बाहर भीतर की लहै, नट नागर कौ भाउ ।।१७५।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि अपनी-अपनी जाति, वर्न एवं आश्रम अनुसार ठीक विधि ते कर्म करिबेवारेन को हू मनमान्यौ फल प्राप्त है सकै है, तापै आपने कथन कियौ कि–धर्म-स्वरूप श्रीभगवान सतत सब जगह विद्यमान हैं ताते कोऊ कितेक हू नटनागर की नाईं चतुर क्यों न होइ, सबके बाहर भीतर के भावन कूँ वे भलीभाँति जानिबेवारे हैं। जैसो जाको कर्म को स्वरूप होइ है, ताको तैसो ही फल-धर्म-स्वरूप श्रीभगवान प्रदान करूँ हैं।

अपने इष्टहि पीठि दै, डरपि करै दंडौत।
अकबर भलौ न मानई, धृग जीवो धनि मौत ।।१७६।।

उपरोक्त साखी के संबंध में–ऐसो चरित्र हू सुनिबे में आवै है कि–आप सम्राट अकबर की सेना के सर्वोच्च सेनापति हे, जाके कारन बड़े-बड़े यवन पदाधिकारी, आपते अपने मनमें कछु ईर्षा मानते हे। एक समय उन पदाधिकारिन ने सम्राट ते कह्यौ कि–इतेक ऊँचे पद को व्यक्ति, आपकी बात कूँ नाँइ मानैं है, अनेकबार आपने ब्याह के ताईं बिनते कह्यौ–किन्तु वे करैं नाँइ हैं, इतेक ऊँचे पद के पदाधिकारी व्यक्ति को बंस नाँइ चलिबे ते राज्य की बहुत बड़ी हानि है। यह बात सुनि सम्राट ने समय पाइकें घोषना कीनी कि–अमुक दिन, अमुक समय पै, राज्य के बड़े-बड़े पदाधिकारी एवं जन-समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति मोते मिलैं, किन्तु काहू के

शरीर पै मजहबी चिह्न नाँइ होनो चहिये, यदि होवेगो तो मौत की सजा मिलेगी। आप श्रीस्वामीजी महाराज ते श्रीनिम्बार्कीय-तिलक प्राप्त करि चुके हे, किन्तु वा दिन सेवा करते समय–साक्षात श्रीस्वामिनीजू ने अपने नूपुर ते नासिका के निचले भाग ते लैकें ऊपर ताऊँ तिलक करि दीनौ। जब आप राज-दरबार में जाइबे लगे, तब पूज्य श्रीमाताजी ने तिलक पै कछु विरोध कीन्यौ, किन्तु आप निर्भीकतापूर्वक वाही तिलक ते दरबार में गये। अन्य पदाधिकारी एवं बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिक हू अपने-अपने समस्त धार्मिक चिन्हन कूँ मिटाइ, दरबार में उपस्थित हे। सम्राट अकबर ने श्रीगुरुदेवजू ते कह्यौ कि–मेरो हुक्म मजहबी-चिन्ह मिटाइकें ही आइबे को हो, तुम ऐसे कैसे आये ? श्रीगुरुदेवजू ने सम्राट को उत्तर दीन्यौ कि–आपने यह घोषित कर दीन्यौ हो कि मजहबी चिन्ह होइबे पै मौत की सजा मिलैगी। वाके ताईं मैं तैयार हैकें आयो हूँ। श्रीगुरुदेवजू के मुखसों या प्रकार निज-धर्म के प्रति दृढ़ता एवं सर्वोच्च निष्ठा की बात सुनि, सम्राट अति प्रसन्न होइ, सबके सामने आपकी भूरि-भूरि प्रसंसा कीनी।

याही लक्ष्य ते आपने परमार्थ पथ के पथिकन ते कह्यौ कि–अपने इष्ट कूँ पीठ दैकें, जगत के मानवन के आगे झुकोगे, तो धर्म-स्वरूप इष्ट भलो नाँइ मानैं हैं। याते परमार्थी-जनन ने इष्ट कूँ पीठ दैकें, जागतिक मानवन के आगे झुकिबे ते तौ मरिबो ही अच्छो है।

श्रीबिहारीदास पतिब्रत खसै, वह सबहिन की जोइ।
सब के पाँइन सिर घसै, अपनी कहै न कोइ ॥१७७॥
अनन्य पतिब्रत कुलबधू, सेवत धर्म विचारि।
श्रीबिहारीदास ताकौ सुजस, सुनि सुनि जरत छिनारि॥१७८॥
पतिब्रता के देह में, बसत प्यारौ पीउ।
पति उपमा चितवै नहीं, जो मिलै घनेरे जीउ ॥१७९॥

हे बिहारीदास ! जो कुल-बधू अपने पतिब्रत-धर्म ते गिरि जाइ है, वो एक प्रकार ते सबकी ही जोइ सदृस ह्वै जाइ है। याते वो सबते नमिके ही चलै है, तौहू वाकूँ कोऊ अपनी नाँइ कहें हैं। और उत्तम कुल की स्त्री अपने पतिब्रत धर्म कूँ सदा-काल बिचारती भई, दृढ़ता ते सेवन करै है, याते वाके सुजस कूँ सब कोऊ भूरि-भूरि प्रसंसा करै हैं, किन्तु व्यभिचारिनी ताके सुजस सुनि-सुनिकें अपने मनमें जरचौ करै है।

पतिब्रता के देह एवं रोम-रोम में अपनो प्रान-प्यारो प्रीतम ही सतत ऐसो बसै है जोकि जगत में अनेक सुन्दर रूप-जोवन-गुन एवं धन-संपतिवारे पुरुष मिलैं हैं, एवं अनेकन की प्रसंसा हू सुनै है, तौहू बो काहू के माऊँ अपने मन ते देखै हू नाँइ है। ऐसे ही दृढ़-अनन्य-पथ पै चलिबेवारे साधक, अपने इष्ट के अतिरिक्त और-और धर्म एवं धर्मीन की अति प्रसंसा सुनिकें हू अपने मनको नाँइ चलावै हैं।

सुंदर नारि सुलछिनी, पर घर परसी जाइ।
पतिब्रता की सभा में, बैठी नारि नवाइ ॥१८०॥

जैसे सुन्दर-रूप-गुनवारी स्त्री होइबे पै हू पर-पुरुष के साथ सपरस करत खेम पतिब्रतान की सभा में बाकी नारि नीची ह्वै जाइ है, तैसे ही साधक बड़े बैराग्य-त्याग ते रहिकें, बिसाल भजन करिबे पैहू दूसरे इष्ट ते आसा-भरोसा एवं संबंध मानत खेम, बाकूँ अनन्यन की सभा में झुकनो ही परै है।

लोक वेद बरनाश्रम, मरजादा बाँधी लोइ।
निहुरी-निहुरी सो फिरै, जो जगत कनौंडी होइ ॥१८१॥

लोक तथा बेद ने बरनाश्रमादिक सबन की एक मरजाद बाँध राखी है, वा मरजाद ते गिरिबे पै, जगत में कनौड़ी होइबे के कारन वाकूँ सबते नमिके चलनो परै है। अर्थात और-और इष्ट ते आसा-संबंध मानिबे की तो बहुत दूर की बात है, जगत में भक्ति एवं भक्तन के सहज व्यवहार–आदिक सदाचार तोरिकें चलिबेवारेन कूँ हूँ भक्त समाज में लज्जित होनो परै है।

निंदा बिंदा भै नहीं, भली कहौ किनि कोइ।
श्रीबिहारीदास ब्रत भाँवती, जीवत हैं मुख जोइ ॥१८२॥

नित्य-बिहार के उपासक श्रीबिहारीदासन को मन-भांमतो दृढ़-अनन्य व्रत ऐसो होइ है कि–अपनी प्रान-जीवन प्यारीजू के श्रीमुखचन्द्र कूँ देखि-देखिकें ही सतत जीवै हैं। कोऊ कितेक हू निंदा-स्तुति करै, भली-बुरी कहै, वे इन बातन माऊँ ध्यान ही नाँइ देवैं हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ जस, निस्प्रेह गायौ जाइ।
सभा पराई साँकरैं, लोभी कहत खिसाइ ॥१८३॥

हे बिहारीदास ! हमारे रसिक-अनन्य-नृपति श्रीस्वामीजू महाराज के सर्वोपरि जस कूँ एकमात्र निस्प्रेही-जन ही कहि सकै हैं, जिनके मनमें लोभ के कारन, काहू

प्रकार की आसा एवं डर होइ है, वे पराई महती सभा में कहते भये खिसलि जाइ हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, संसार कौ न होइ।
दुर्लभ प्रेम दुःखनि लह्यौ, लाज बडाई खोइ ।।१८४।।

संसार कूँ साधिकें चलिबेवारे संसारीजन, श्रीस्वामीजू महाराज के दास हो ही नाँइ सकै हैं। याते हमने यावत जगत की मान-बड़ाई—सम्यक प्रकार खोइ, अनेक दुखन कूँ सहि, श्रीस्वामीजू महाराज के अति-दुर्लभ प्रेम कूँ प्राप्त कीन्यौ है।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, जसु गावत सभा पुकारि।
सुनत अनन्यनि कौ धर्म, विभचारिनि कौं गारि ।।१८५।।

अब हम श्रीस्वामीजी महाराज के जसन कूँ बड़ी-बड़ी महती सभान में—अति-निसंकता ते पुकारि-पुकारिकें कहें हैं। जो परमार्थी-अनन्य-प्रकृति के हैं, वे तो अपने धर्म के मर्म की बात् समझि, अति प्रसन्न होइ हैं और व्यभिचारी आचरनवारे गारी के बराबर अपनी निंदा समझें हैं। अर्थात जो लोग कर्म-धर्म-विधि-ग्यान आदि यावत धर्मन में अपनो कर्तव्य समझि के चलै हैं, वे लोग अपनी निंदा मानें हैं।

विभचारनि कौ संग तजि, भजि अनन्य निहकाँम।
श्रीबिहारीदास सुख में सुखी, दंपति रति धन धाँम ।।१८६।।

याते तुम व्यभिचारिन कूँ संग सर्वथा त्यागिकें, एकमात्र निष्काम-भाव ते अनन्य-जनन कूँ हीं सदाकाल सेवो और बिनके सुख में ही अपने कूँ सुखी मानो, जासों तुम्हारे हृदयरूपी घर में श्रीजुगल को प्रेमरूपी धन भरि जाइगो।

श्रम थौरौ सुख आगरौ, पैयतु पूरन काँम।
श्रीबिहारीदास विस्वास तें, जे भजि हैं निहकाँम ।।१८७।।

श्रीअनन्य-जनन कूँ विस्वास-पूर्वक निस्काम-भाव तें सेवन-रूपी परिश्रम तो तुम्हारो बहुत थोरो होइगो, और सर्वोपरि प्रेम-मय परिपूर्नतम सुख सहज प्राप्त होइ, यावत कामनायें तुम्हारी मनमानी पूरी है जाँयेगी।

सुद्ध भक्ति सेवै नहीं, सेवै कर्म कुम्हार।
तातौ भात जडनि तज्यौ, सिर धरि चल्यौ पयार ।।१८८।।

देखो इन लोगन कूँ श्रीभगवत चरनारबिंद ते गुरुन के द्वारा संबंध बाँधिकें हू, सुद्ध भक्ति कूँ तो सेवन करें नाँइ हैं, जोकि तातो भात सद्दस तत्काल सुखी करिबे-

न्नारी है (श्रीबिहारीदास परमार्थं सेवत सुख लीजैं) उल्टे मूरखन की नाईं पयार सहस कर्मादिकन की ही पोट बाँधि, सिर पै धरि यहाँ ते जाँइ हैं।

भगवत धर्म न संग्रह्यौ, सँचै धर्म अनेक।
पतित पवित्र न होंहिगे, बिनु अनन्य निजु टेक ॥१८९॥

साक्षात् श्रीभगवत चरनारबिंद ते संबंधित अनन्य भागवत धर्म कूँ–जिन लोगन ने अपने मनमें संग्रह नाँइ करि, और-और अनेक धर्मन कूँ संचय करें हैं तिनके प्रति लक्ष्य करिकें दुःखित हृदय ते आप बोले कि–हे भाई! जब ताऊँ श्रीभागवत धर्म की अनन्य-निज-टेक अपने मनमें नाँइ धारन करेंगे, तब ताऊँ ये पतित कैसे हू पवित्र नाँइ है सकेंगें।

माला जनेऊ घालि गरै, दुरै न साकत सूद।
वृति कृति तें जानियैं, डौंम कौंम दाऊद ॥१९०॥

फिर आपने कह्यौ कि–कुछ लोग कंठी-जनेऊ लेकें ऊँची जाति को अपनो परिचय देवैं हैं, किन्तु बिनके वृत्ति एवं कृत्य ते स्पष्ट है जाइ है कि–ये कौन से कुल एवं जाति के हैं।

सहज गरीबी साहिबी, भूले क्यौं कुल कौंम।
मोटो मिहीं दुरै नहीं, पीटि मरौ करि खौंम ॥१९१॥
सूद सूत मेलैं फिरैं, बाँभन कौ दै दाउ।
माला मेलि न नाचई, ह्वै वरनाश्रम कौ राउ ॥१९२॥

जो लोग अपने मनमें सहज सुभाउ गरीब बनि, अपने कुल-कौम कूँ नाँइ भूलै हैं, बिनकी एक प्रकार की साहिबी है। जो नीचे कुल-कौम के होते भये हू, अपने कूँ ऊँचे कुल को बतावें हैं, वे ऐसे नांइ छिप सकै है, जैसे मोटे वस्त्र कूँ कितेक हू पीटि-पछाटि लेउ, किन्तु बाकी जाति नाँइ छुप सकै है। ऐसे ही सूद्र लोग जज्ञोपवीत धारन करि, अपने को बामन बतावन लगे हैं, मैं कहूँ हूँ कि–ये कंठी-दीक्षा लेकें बरनाश्रम कौहू सिरताज-स्वरूप भागवत-धर्म कूँ ग्रहन करि, क्यों नाँइ नाचें गावें हैं।

वरनाश्रम के धर्म कौ, भगवत धर्म सहाइ।
जैसें परजा राज बिनु, दुंदहा लूटैं खाइ ॥१९३॥

जैसे प्रजा की रक्षा राजा ही करि सकै है, तैसें ही वरनाश्रम-धर्म की रक्षा करिबेवारो केवल भागवत-धर्म ही है। अन्यथा करचौ-करायौ सब निष्फल जाइ है।

वरनाश्रम के धर्म कौ, भगवत धर्म दिवान।
कर्म समर्पत पग लगत, कर दै बसत किसान ॥१९४॥

याही प्रसंग में आपने औरहू कह्यौ कि–जैसे किसान राजा कूँ कर-दैकें ही, खेती करि सकै है, तैसे ही राजा-स्वरूप श्रीभागवत-धर्म कूँ अर्पित होइबे ते ही वरनाश्रम धर्म सफल होइ हैं।

बेटी दीजै बाँभनैं, दाम दिये दीवान।
दावो दीजै भक्ति कौ, जाति न छुटै निदान ॥१९५॥

यह निदान बात है कि–जैसे बेटी ब्राह्मण कूँ दैबे ते, पैसा सरकार में जमा कराइबे ते हानि नाँइ होइ सकै है, ऐसे ही श्रीभक्ति-महारानी को आश्रय लै, भक्तपने कों दावो देवे ते जात नाँइ बिगरि सकै है। अर्थात कोई भी जाति-बरन को व्यक्ति क्यों ना होइ ? साँचे भाव ते भक्ति करिबे सों वरनाश्रम-धर्म के पूज्य है जाइ है।

लालच छुटै न जाति कौ, करै भक्ति की हौंस।
खरि खानें मिश्री चहै, यहै राँडनि की रौंस ॥१९६॥

जिन लोगन के मन ते अपनी ऊँची जाति को लालच नाँइ जाइ है और वे श्रीभगवान के भक्त बननो चाहें हैं, बिनके मन की रांडन-सदृस ऐसी बे-समझपने की बात है, जैसे कोई खर की दुकान पै जाइ, मिश्री खरीदनो चाहै।

छार परौ सिर जाति कैं, जो जग जेंवत पाँति।
तिनकै पंथ न पग धरौ, जे करत भक्ति बिच भाँति ॥१९७॥

निज-आश्रितन ते आपने कह्यौ कि–जाति को बिचार तो, अपनी-अपनी पाँतिमें जीमबे के ताईं होइ है। तुमने तो एकमात्र श्रीभक्ति-पथ पै ही चलनो है, याते जाति-बरन-रूपी अभिमान के सिर पै तो खाक डारो, जो लोग मायिक देह-संबंधी जाति-अभिमान में बिबस, भक्तन के स्वरूप में हू जाति के कारन भेद मानै हैं, बिनके तो तुम कबहूँ गैल में ही मत चलो।

बेटी बेटा व्याहियै, तहाँ उघटिये जाति।
भेद भक्ति में जे करहिं, तहाँ भक्ति भजि जाति ॥१९८॥

अच्युत गोत बखांनियै, भक्त भक्ति की जाति।
पूछनहारे नारकी, जे भक्तहि पूछैं जाति ॥१९९॥

जहाँ बेटा-बेटी को व्याह-संबन्ध कियो जाइ है, तहाँ ही जाति बताई जाइ है। जाति बुद्धि के कारन श्रीभगवान के भक्तन में भेद करिबे ते तो, श्रीभक्तिमहारानी हृदय सों वाही छिन भाजि जाइ हैं। यदि भक्तन को जाति बताइबे को काम हू परिजाइ है, तो वे अपनो अच्युत गोत्र ही बतावें हैं, इतेक पै हू जो लोग भक्तन ते जाति पूछें हैं, वे एकमात्र नरक में ही जाइबेवारे होइ हैं।

स्वारथ के श्रम सौ सहैं, परमारथ अलसाइ।
श्रीबिहारीदास बोलै नहीं, चितै चितै मुसिकाइ ॥२००॥
स्वारथ साधें स्वारथी, परमारथ दै पीठि।
श्रीबिहारीदास चितवैं नहीं, सुपनें हूँ दै दीठि ॥२०१॥

कुछ ऐसेहू व्यक्ति भक्त कहाइबे लगि जाँइ हैं कि जागतिक स्वारथन के ताईं तो अनेक परिश्रम करें हैं, किन्तु परमारथ के ताईं उन्हें आलस रहै है, ऐसे लोगन के माऊँ देखि-देखि हम हँस्यौ तो करें, किन्तु कहें कछु नाँइ हैं। और कछु ऐसे हू प्रकृति के लोग होंइ हैं, जोकि परमारथ कूँ पीठ दैकें हूँ अपने स्वारथन कूँ साधें हैं, ऐसे जनन के माऊँ तो हम कबहूँ देखें ही नाँइ हैं।

कै तुम ए करमठ किये, कै तुम किये अनन्य।
सबै प्रपंच प्रगट भयौ, का कहिये धन्य धन्य ॥२०२॥

जो आश्रित श्रीस्वामीजू के घर की दीक्षा लैकें हू, कर्मादिकन कूँ करें हैं तिनके प्रति बड़े अनखनाते भये आपने कह्यौ कि—हमने तुमकूँ कर्मठी बनायो हो, या श्रीस्वामीजी महाराज को अनन्य दास? तुम्हारे मनमें यावत कर्मादिक धर्मन कूँ साधिके चलिबे की आस्था एवं वासना भरीभई हीं, वो सब प्रपंच तुम्हारो चौरे आय गयौ, याते तुम बहुत धन्यवाद देबे जोग्य हमारे दास हो।

जापा सापा मांनियें, संसार कौ सुभाव।
इत सिठनौं उत पीटनौं उपजै भक्ति न भाव ॥२०३॥

परमार्थ पथ के पथिकन ते आपने कह्यौ कि–हे भाई! अनन्त कोटि ब्रह्मांडन के जीव एवं समस्त संपत्ति, जब श्रीभगवान की ही है, एवं बिनकी इच्छा ते ही उपजै बिनसै है, तब अपनो मानिकें जन्मोत्सव मनाइबो तथा मरिबे पै रोइबो, ये केवल संसारी लोग ही कियौ करै हैं, ऐसेन के हृदय में भक्तिभाव उपजै ही नाँइ है।

निसि कौं रोवन गावनौ, बड़े निघरघट लोग।
हरि जस हरखि न गावहीं, बूड़ि रहे श्रम सोग ॥२०४॥

देखो इन लोगन कूँ परम पावन श्रीहरि के जसन कूँ तो उमंगि-उमंगि के गावैं नाँइ हैं, उल्टे रात-दिन बेसर्मन की नाँई, संसार के दुःख-सुखन में रोते-गाते भये, श्रम-सोक में ही डूबे रहें हैं।

ब्याए ब्याहैं गावनौं, बिछुरैं मूएं रोज।
बेसरम्यौ संसार की, तहां न सुख कौ खोज ॥२०५॥
ढोल दमांमे गिरिगिरीं, मूए ढोर की खाल।
व्याह बधांए फूलनो, बिकल लोग बेहाल ॥२०६॥
तेई बाजे ब्याह में, तेई मरणे बाज।
श्रीबिहारीदास ब्यौरौ कहा, इह सुख कियौ अकाज ॥२०७॥

याही प्रसंग में आपने औरहू कह्यौ कि–जन्म एवं व्याह में तो ये लोग नाचैं गावैं हैं और बिछुरिबे-मरिबे पै रोवन लगें हैं, ऐसे बे-सरमन के हृदय में सुख तो कबहूँ ढूढ़े हू नाँइ मिलै है।

देखो–मरे भये पसु की खाल ते मढ्यौ भयो ढोल कूँ पीटि-पीटिकें, ये लोग व्याह-बधाये में गाते भये ऐसे बिकल है रहे हैं, जो यह सोच ही नाँइ सकै हैं कि–जाकी खाल कूँ खुसी में हम पीट रहे हैं, वह जीव हू किसी दिन जगत में मरचौ होइगो ? याते मैं तुमते कहूँ हूँ कि–अपनी इष्ट के इच्छा ते ही व्याह एवं मृत्यु समस्त कार्यन कूँ समझि, जो खुसी के बाजे व्याह में बजाइ रहे हो, तेई खुसी के बाजे मृत्यु आदि यावत समय में बजावो।

नियंता भुक्ता और कोय, तू दिन दुख क्यों पावत रोय।

श्रीबिहारीदास न सोहई, इक आसन साध असाध।
इत गावनौं उत रोवनौं, ज्यौं ब्याह में सराध ॥२०८॥

हे बिहारीदास ! एक घर में संसारी बहिर्मुख एवं साधु-वृत्तिवारो भक्त, न तो सोभा ही पावै और न सुख-सान्ति ते रहि ही सकै है। क्योंकि प्रायः संसारिन कूँ कोऊ न कोऊ आपद्-विपद् आयो ही करै है। भक्त-जन अपने इष्ट के नाम-गुन-सेवा आदि कूँ, उमंगि-उमंगिकें बड़े आनन्द में गाइबो चाहें हैं। याते बिनकी ऐसी अस-मंजस दसा रहै है, जैसे व्याह के समय सोक जनित कार्य आइबे ते है जाइ है।

श्रीबिहारीदास श्रम संसार कौ, देखि रह्यौ अरगाइ।
इत है है उत हालरौ, जनमत मरत बिहाइ ॥२०९॥
जनम मरन एकै कियौ एक तत्व रज बीज।
बिषई सींचे कल्लरै, श्रीबिहारीदास रस भीज ॥२१०॥

प्रायः संसार में हम देखें हैं कि–जन्म-मरन-दुख-सुख-आदि आयो जायो ही करें हैं, यदि कोऊ ये बात कहै है कि–भक्तन को हू जन्म-मरन होइ है, तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई ! एक ही समान रज-बीर्य से जगत में भक्त एवं संसारी जन्मैं हैं एवं दोऊन की ही मृत्यु होइ है, किन्तु विषई लोग तो मृत्यु-पर्यन्त ऊसर भूमि सदृस संसार को ही सीचते रहें हैं, श्रीबिहारीदास इष्ट के नाम-गुनन कूं प्रेम सों गाइ-गाइकें रस में भीजे रहें हैं।

जे मूवा ते जामिसी, जे जाम्याँ ते मूव।
श्रीबिहारीदास धन धर्म तें, हरि भज निधरक हूव ॥२११॥

याते मैं तुम सों फिर जोर दैकें कहूँ हूँ कि–जो भी कोऊ मरैगो, वो अवश्य जन्म लेवैगो, और जो जन्मैगो, वो अवश्य मरैगो, तुम इन सब बातन ते निधरक होइ, अपनो अनन्य धर्मरूपी धन कूं ही सतत संग्रह करि, आनंद सों श्रीहरि के भजन में लगे रहौ।

श्रीबिहारीदास बेबाक ह्वै, भजन अनन्य दिवान।
जनमत मरत दोऊ फसलि, करमठ कृपन किसान ॥२१२॥

हे बिहारीदास ! श्रीहरि की भक्ति ही समस्त कर्मधर्मन की सिरताज है, याको आश्रय लेबे ते, और-और यावत धर्मन ते बेवाक है जावोगे। छुद्र स्वार्थी-कर्मठी लोग कर्मन कूं करि-करि कें भोगे हैं तथा फिर करें हैं, जैसे किसान फसल को बार-बार बोवै-काटै है।

रसिक अनन्यन की सभा, करमठ कृपन खिस्याँहि।
आँनत नित्त बिहार मैं, खिसलि बाहिरे जाँहि ॥२१३॥

रसिक अनन्यन की सभा में बेचारे कर्मठी कृपन लज्जित ह्वै जाइ हैं। हम बिनकूं नाना प्रकार ते समझाइ-बुझाइ कें नित्यबिहार उपासना में लावैं हूँ हैं; तौहू वे कर्मधर्मादिकन की श्रद्धा में बिबस होइ, खिसल जाइ हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, धर्मी दुरै न सूर।
तिनकी सभा न टिकि सकै, करमठ कृपन मजूर ॥२१४॥

हमारे श्रीस्वामीजू महाराज के सर्वोपरि-रसिक-अनन्य-धर्मी सूरवीर न तो कहूँ छिप सकै हैं और न बिनकी सभा में मजूर सदृस कर्मठी-कृपन लोग टिक सकै हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ,संतत सुखद बिहार।
करमठ फाटै चैंथरा, गाँठि बाँधि अंगार ॥२१५॥

हे बिहारीदास ! तुम भलीभाँति सोच-बिचारिकें देखि लेओ—एक श्रीस्वामीजू महाराज को ही नित्य-विहार समस्त रीति भाँति सों सदाकाल सर्वोपरि सुखदाई है। कर्मादिकन के आग्रह राखिबेवारेन को ऐसो स्वरूप है, जैसे काहू के पास अनेक जगह ते फट्यौ भयो तो होइ चीथरा, फिर वामें बाँधे जलतो भयो अंगार, जो कैसेहू नाँइ बँधि सकै है। अर्थात कर्मादिक प्रथम तो द्विजातीन ते ही संबंध राखै हैं, तामें हू देस, काल तथा सुद्धि-असुद्धि की बड़ी अपेक्षा रहै है, इतेक हू नाँइ—पूर्नरूप ते विधि-विधान पूर्वक सम्पन्न होइबे पै हू, श्रीहरि के समर्पन किये बिना अधूरे ही रहि जाइ हैं। बाको फल हू मायिक बिलासिता को ऐसो है, जासों विषय बासना और हू बिसाल बढ़ि जाय हैं। याते सांचो नित्य-सुख कर्मादिक दै ही नाँइ सकै हैं।

श्रीबिहारीदास संतोष गहि, बैठ्यौ सिखर सुमेरु।
सूझै श्रीहरिदास तें, ऊँचे नीचे ढेर ॥२१६॥

हमने यावत और-और परमार्थन के समस्त सुख-संबंधन ते भलीभाँति अपने मन में संतोष करिके ही, श्रीस्वामीजू महाराज की सुमेरु सिखर सदृस सर्वोच्च रस-रीति उपासना कूँ प्राप्त कीनी है, जाते अब मोकूँ समस्त परमार्थन के स्वरूप, कौन कितेक ऊँचे-नीचे हैं, सहज सुभाउ ही सब दीखन लगै है।

यदि कोऊ ये बात कहै कि—जैसे जगतमें सबते ऊँचो सुमेरु-सिखर ही है, तैसे श्रीस्वामीजू कौ नित्य-बिहार सबते ऊँचो कैसे समझ्यौ जाय ? ताके विषय में या प्रकार समझो—समस्त परमार्थ स्वरूपन में सर्वसारातिसार एकमात्र प्रेम-तत्व ही है। ता प्रेम स्वरूपन में सर्वसिरोमनि-जगतवंदनीय श्रीब्रजसुन्दरिन के प्रेम कूँ समस्त पूर्वाचीन, अर्वाचीन महतन ने भूरि-भूरि सर्वोपरि बर्नन कीन्यौ है, तिन श्रीब्रजसुंदरिन में हू श्रीवृषभानुनंदिनीजू के प्रेम कूँ निर्विवाद सबन ने सर्वोच्च मान्यौ है, जिनके

प्रेमस्वरूप में महतन ने स्वकीया, परकीया रस-बिलास द्वारा दो प्रकार के भेद बर्नन कीने हैं।

अब ये बिचारिबे की बात है कि–श्रीस्वामिनीजू को स्वरूपगत निजरस कौन सो है? और वाको कौन सो धाम, कौन वयस, एवं परिकर कौन सो है। ताके विषय में या प्रकार समझनो कि–श्रीस्वामिनीजू को निजरस महामधुर-रस को हू सार रस ऐसो है, जाके ताईं स्वयं सर्वोपरि लाल, तन-मन-प्रान रोम-रोम ते सतत बिलसते भये हू, बिलसिबे के ताईं अति आतुर निरंतर बने रहें हैं।

या महागूढ़ सुरत रस बिलास को धाम एकमात्र प्रथम समागम एकान्त-रस बिलासमय निज महल श्रीवृन्दावनजू ही हैं, जहाँ लता, वृक्ष, द्रुम-वेलि, सुक-पिक-मोर-मयूरी, सारस, हंस, मृगा-मृगी एवं श्रीयमुनाजू आदि समस्त संपत्ति, महागूढ़ सुरत रस-बिलास रंग में ही, सजी-बजी उमँगती रहैं हैं, तहाँ छिन-छिन नवनवायमान, उन्नत नवनिसोर नवजोवन के जोर में विभोर वैस सों एकरस श्रीजुगल रुचि-अनुसार निरंतर खेलते रहें हैं। जिनको परिकर–एकमात्र श्रीललिता, हरिदासीजू, सखी, सहेली सहचरी स्वांसन के हू स्वांसन कूँ समझि रुख अनुसार सतत लाड़ लड़ावें हैं। जिनके अति-बिचित्र रस लाड़ में श्रीजुगल कूँ छिन-मात्र के ताईं हू, निद्रा-भोजन की सुधि नाँइ होइ है और न समय-असमय को हू ज्ञान रहै है। जिनको संयोग ही कोटि-कोटि विरह को स्वरूप है। जिनको अनूप रूप, अद्भुत लावन्यता, लालित्यता, सुकुमारता आदि महामाधुरी एवं विचित्र अनुराग के स्वरूप कूँ कहिबे के ताईं न तो कोऊ उपमा है और न काहू को गम ही है।

या प्रकार अति झीने रस के स्वरूप में स्थूल विरह की तो चर्चा ही कौन करि सकै है? ऐसो अनादिकाल ते श्रीस्वामीजू महाराज को बिचित्र नित्य-बिहार ही सुमेरु की चोटी सदृस निर्विवाद सबते ऊँचो है।

श्रीहरिदास चरन सरन, अरु बृन्दाबन बास।
मनसा बाचा कर्मना, सुखी बिहारीदास ।।२१७।।

सुमेरु की चोटी सदृस-सर्वोच्च रस की बात सुनि, यदि कोऊ ये कहै कि–इतेक अद्भुत ऊँचे-रस की प्राप्ति के ताईं, हम अति तुच्छ जीव कहा साधन करि सकें हैं? ताको लक्ष्य करि, आपने कह्यौ–मैं तुमते अपनी सांची बात कहूँ हूँ कि–जब हमने यावत परमार्थिन के चूरामनि, सर्वोपरि पूर्नतम प्रेम स्वरूप साक्षात श्रीस्वामीजी

महाराज के श्रीचरन-कमलन की सरन मिलि गई, और यावत धामिन के हू धामी नित्य-बिहार रस के एकमात्र आधार श्रीवृन्दावनजू को अखंड बास मिलि गयो। अब हम मन क्रम बचन समस्त रीति भाँति सों नित्य-विहार रूपी अगाध सुख सों सुखी है गये।

भोजन में भोजन दियौ, भजन दियौ सुखरास।
संग दियौ हरिदास कौ, बलि बिपुल बिहारिनिदास।।२१८।।

मैं अपने गुरुदेव रससागर स्वामी श्रीबीठलवीपुलदेवजू की बार-बार बलिहारी जाऊँ हूँ—जिनने मोकूं अपने भोजन में तो भोजन दियो, और रसिक अनन्य-नृपति-चूरामनि श्रीस्वामीजू महाराज को संग दीनो तथा बिचित्र सुख-स्वरूप-रसरास-नित्यविहार को ही भजन मोकूं दै दीन्यौ। 'भजन दियो सुखरास' कहिबे को अभिप्राय आपको ऐसो है, सर्वप्रथम साधक जब श्रीवृन्दावन में आवै है, तबही बाके अनेक जन्म के बंधन, सहज स्वभाव ही ऐसे टूट जाँइ हैं, जो मालुम ही नाँइ परें हैं। फिर श्रीबिहारीजी महाराज के दर्शन करि, महाप्रसाद, चरनामृत लेवे है, तबतो वाके भाग की श्रीब्रह्मा आदि देवगन भूरि-भूरि प्रसंसा करिबे लगै हैं। जब वो श्रीस्वामीजू महाराज की कंठी बँधाइ कें श्रीगुरुदेव कूँ अपनो साँचो नाथ मानि लेवै है, तवतो साक्षात श्रीनित्यबिहारी-नित्यबिहारिनीजू बाको अपनो मानि लैं हैं। सर्वोपरि सांचो सौभाग्य तो वा जन को इतेक में ही है गयो। जब श्रीबिहारीजी महाराज तथा श्रीस्वामीजी के नाम गुनन कूँ लड़ाइ-लड़ाइ गावैगो तबतो बाकूँ कितेक सुख संतोष होवेगो, जो लिखिबे में काहू उपमा द्वारा आ ही नाँइ सकै है। याही प्रकार सुख बिलास कूँ बिलसते-बिलसते श्रीयुगल एवं श्रीस्वामीजू महाराज के चरन-कमलन में सांचो प्रेम उदय है जायगो तबतो सौभाग्यसाली वो जन दोऊन कूँ नित्य-बिहार ऐसो बिलसावन लगैगो, जो श्रीजुगल हू बाके रुख अनुसार चलेंगे।

रसिक अनन्यनि सौं मिलै, कहि सुनिबे की बात।
कुंजबिहारिनि कौ भजन, यहै खेम कुसलात।।२१९।।

फिर आपने निज आश्रितन के प्रति जोर देते भये आज्ञा कीनी कि—हे भाई! रसिक अनन्य-उपासकन तें मिलिकें ही या रस की चर्चा करौ। क्योंकि हमारे यहाँ एकमात्र श्रीनिकुंजमंदिर की अनन्य नित्यबिहारिनीजू को भजन ही खेम कुसल है, और रसन कूँ तो हम सपरस हू नाँइ करें हैं।

राख्यौ कहत न मैं कछू, तोकों सर्वसु सार।
श्रीकुंजबिहारिनि कौ भजन, जीवन अहार बिहार ॥२२०॥
रसिक अनन्य उपासिका, जिते दास हरिदास।
तिन तिन की लै चरन रज, सिर धरी बिहारीदास ॥२२१॥

जैसे जगत में जीवन राखिबे के ताईं एकमात्र आहार ही आधार होइ है, तैसे ही सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू को महामधुर रसमय बिहार ही हमारो जीवन आहार एवं प्रानन को सर्वस्व है। यावत परमार्थन के सारन कोहू सार ये बिहार, तुमसों या भाँति कहि दीन्यौ है, जामें कोऊ बात छिपाइ के हमने नाँइ राखी है।

यदि कोऊ ये बिचार करै कि—अति दुर्लभ एवं ऐसी सर्वोपरि निधि कैसे प्राप्त है सकैगी? ता विषय में आप अपनो ही दृष्टान्त देकें बोले कि—रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज के दृढ़ अनन्य दासन की ही, श्रीचरन-कमलन की रज हमने अपने माथे पै धारन कीनी है। अर्थात रसिक अनन्य उपासक होइबे पै हू, श्रीस्वामीजी महाराज को दृढ़ अनन्यदास होइबो, अति आवस्यक है। क्योंकि हमारे रस के—रसिक अनन्य, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते ही है सकें हैं, याते तिन-तिन की ही श्रीचरनकमलन की रज या निधि कूं प्राप्त करिबे के ताईं सर्वोपरि उपाइ है।

बिन हरिदास बिहारै सेवत दरस परस नहिं तात।

× × ×

कूंची नित्यविहार की श्रीहरिदासी हाथ।

जौं न भक्ति पहिचाँनियै, मन धरि भज्यौ न भाव।
श्रीबिहारीदास सब द्यौस श्रम, ज्यौं आवै त्यौं जाव ॥२२२॥

श्रीभक्ति महारानी के स्वरूप कूं भलीभाँति समझि, मनमें भाव धरिकें भजन किये बिना, जो लोग भक्ति करें हैं, बिनकूं हमारी रसोपासना में केवल परिश्रम ही हाथ परै है।

भक्ति करौ भगवान की, समझि सबै परभाव।
सब ही सौं निरवैरता, यौं भजि अपनौं भाव ॥२२३॥

भजन करिबे के जिज्ञासु जनन ते आपने कह्यौ कि—हे भाई! श्रीभगवान की सुद्ध-भक्ति ही करनी चहिये और भक्ति के साधनन में सर्वोपरि भाव की ही प्रधानता

होइ है, ताको भलीभाँति निस्चय करि, जीवमात्र ते निर्वैर होइ, अपने भावकूँ ही दृढ़ता पूर्वक सदाकाल सेवन करौ।

भाजी भाजी यों फिरै, अजहूँ लहै न ठौर।
श्रीबिहारीदास हरिदास भजि, सब रसिकन सिरमौर ॥२२४॥

जो साधक दृढ़ता पूर्वक कहूँ नाँइ स्थिर होइकें, कबहूँ-काहू, कबहूँ-काहू के भजन में भाजे-भाजे डोलें हैं, तिनते दया करुना में बिबस होइ, आपने कह्यौ कि-हे भाई! तुम्हारो मन आज ताऊँ, कहूँ भलीभाँति संतोष नाँइ पाइबे के कारन टिक नाँइ सक्यौ, याते मैं तुमसों कहूँ हूँ कि-समस्त रसिकन के हू सिरमौर श्रीस्वामीजू महाराज कौ भजन करौ, जासों तुम्हें कहूँ भाजनो नाँइ परैगो।

भक्त भक्ति में अति निपुन, भगा भगे में भाव।
याही तें कहिये भगतु, थिर चित दियौ न दाव ॥२२५॥

घर ही मैं घर बन भयौ, कुंज पुलिन बिच रास।
श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, संसार तें उदास ॥२२६॥

कछु लोगन ने प्रातः ते संध्या ताऊँ, दस-पाँच जगह दर्सन करिबे जानो, दो-चार जगह की कथा सुननी, कैई एक महात्मान के सत्संग में पहुँचनों, आदि या ठौर ते वा ठौर, याही प्रकार के भगा-भगी में दिन बिताइकें वे अपनी चतुराई समझें हैं और लोग भगत करिके बिनकी ख्याति हू करें हैं, किन्तु वे सब बातन कूँ समझि-बूझि के अपने चित्त कूँ दृढ़ता-पूर्वक कहूँ नाँइ लगाय सके।

हमारे श्रीस्वामीजू महाराज के नित्यविहार के उपासक श्रीबिहारीदासन के तो हृदयरूपी घर में ही श्रीवृन्दावन-कुंज, जमुना-पुलिन, श्रीजुगल को नित्य रस-रास-विहार होतो रहै है, याते वे समस्त संसार ते उदास रहें हैं।

घर ही मेरैं मालवौ, दुख चंदेरी जाइ।
जस गाऊँ श्रीहरिदास कौ, सुनि रसिकनि भ्रम जाइ ॥२२७॥

वा समय गौनायत करिबे के ताईं सबते ऊँची मालबो जाइबे की प्रथा ही, ता लक्ष्य ते आपने कह्यौ कि-मेरे हृदय-रूपी घर में ही ऐसो मालवो है, जोकि छिन-छिन नये-नये सुखन को विस्तार करंतो रहै है, याते हमारे समस्त दुख चंदेरी सदृस अति दूर भाजि जांइ हैं। यदि कोऊ ये बात कहै कि-साधक के हृदय में स्थूल-झीने

श्रम तो आते ही रहें हैं, तापै आपको कथन है कि–हमारे श्रीस्वामीजू महाराज को जस, इतेक निस्संदेह सर्वोपरि है, जाकूँ सुनि, रसिकन के हू श्रम दूर है जाँइ हैं।

सिद्ध बसतु घर हीं सहज, साधन सुन्यौ न जाइ।
सोऊ साधन सतनजा, श्रम करि को पछिताइ ॥२२८॥

यावत महतन के मत में समस्त साधनन को सार प्रेम ही है। वा प्रेम की ही सहज सर्वोपरि नित्यविहार की हमारी उपासना है, याते कछु साधन करिबो तो दूर रह्यौ, हमें सुन्यौ हू नाँइ सुहावै है। और वे सब साधन हू सतनजा नाज सदृस ऐसे मिले भये हैं कि–जैसे कोऊ एक इष्ट नाँइ होइबे के कारन–कर्म, ज्ञान, विधि, विधान ईस्वरता, महातम एवं नेम व्रत आदि सबन में ही श्रद्धा रखतो भयो, मिलायकें करतो होइ, याते ऐसे साधन करि कौन पश्चाताप की गाँठ बाँधे ?

जो न सजाती सँग मिलै, साधन कियौ न जाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास जस, कहत सुनत समुझाइ ॥२२९॥

हमारे घर के साधन एकमात्र श्रीनित्यबिहार के अनन्य उपासक श्रीबिहारिदासन के सत्संग तें है सकैं हैं, अन्यथा अति कठिन है। क्योंकि वे ही महत्पुरुष श्रीस्वामीजी महाराज के रस-जसन कूँ समझाइ-समझाइ कें भलीभाँति कहि सकें हैं।

श्रीबिहारीदास परमारथी कौ, होत घराघर घैर।
तिनकौ बुरौ न माँनियें, ज्यौं मुगल पठानहिं बैर ॥२३०॥

हे बिहारीदास ! परमार्थिन में अपने-अपने घर के पक्ष-सहज स्वाभाविक ही होइ है, ताको तुमने कबहूँ बुरो नाँइ माननो चहिये। जैसे एकही इस्लाम-धर्म होते भये हू, मुगल-पठानपने को परस्पर बैर बन्यौ रहै है।

श्रीबिहारीदास परमारथी, मिलि कहत सुनत सुख पाइ।
यह रस जस दुर्लभ भयौ, संसारहिं न सुहाइ ॥२३१॥

सांचे परमार्थीजन तो परस्पर श्रीजुगल के रस-जसन कूँ कहि सुनिकें, सुखी होंइ हैं। संसारी लोगन कूँ यह रस सुनिबे में हू नाँइ सुहावै है, याते बिनकूँ अति दुर्लभ है रह्यौ है।

इंद्र वरषि जल थल भरै, राखत पुहुमि अघाइ।
श्रीबिहारीदास पूरे भजन, इनि विमुखनि सुजस सुनाइ ॥२३२॥

स्यानौं सुनि चुप करि रहै, चोर रहे अरगाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास जस, सुनैं अविद्या जाइ ।।२३३।।

जैसे इन्द्र अटूट बर्षा द्वारा–भूमि को पेटा भरि देवै है, याते चारों ओर जल ही जल दीखन लगै है। ऐसे ही नित्यबिहार के उपासक पूरे भजनानंदी ही इन संसारिन कूँ श्रीस्वामीजू के सर्वोपरि जस कूँ सुनाइ सकें हैं, ताकूँ सुनि समझदार लोग ऊँची वस्तु समझि चुप रहें हैं, किन्तु चोरन सहस-छिद्र देखिबेवारे अपनो मौकौ देखते रहें हैं। जो जन साँचे भाव ते या जस कूँ सुनै हैं, तिनके हृदय की यावत अविद्या भलीभाँति दूर है जाइ हैं।

निस्प्रेही उपकारी सहज, हरि जस कौ दिन दाँनि।
श्रीबिहारीदास सों जे अरैं, ते दई मारे जाँनि ।।२३४।।

सहज सुभाउ निस्प्रेही, परोपकारी, तथा सदाकाल श्रीहरि के जसन कूँ दान देबेवारे जो महत्पुरुष श्रीबिहारीदास हैं, बिनते द्वेष करिबेवारेन कूँ, ऐसो समझो, मानो साक्षात श्रीभगवान ने ही बिनकूँ मारि दीन्यौ है।

भूखौ भटकै भीख कौं, धायौ औरहि देइ।
श्रीबिहारीदास कौ लछन यहै, जो रॉमो रॉम न लेइ ।।२३५।।

जगत में जिन लोगन के हृदय में काहू प्रकार की स्पृहा होइ है। वेही जन भिखारिन की नाँई जहाँ-तहाँ भीख माँगते डोलें हैं। जो स्वयं अपनी वस्तु में भरे-पूरे होइ हैं, वे अपने सुख ते औरन कूँ हूँ सुखी करि देवैं हैं। याते सर्वोपरि नित्यविहार रस के उपासक बिहारीदासन को तो स्पष्ट लक्षन ही ये है कि–वे काहू ते जै रामजी को हू संबंध नाँइ राखें हैं।

श्रीबिहारिदास बिहार कौं, लछमीपति ललचाइ।
ए देव पितर लीनें फिरै, ह्याँ रामकृष्ण न समाइ ।।२३६।।

अवध उडीसा द्वारिका, बद्री अरु केदार।
ए न होंहि हरिदास के, समाँइ न नित्त बिहार ।।२३७।।

सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के निज रसमय बिहार कूँ–जब साक्षात श्रीलक्ष्मीपति तो ललचायो ही करें हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराघवेन्द्र, तथा लीलापुरुषोत्तम प्रेम प्रधान स्वयं श्रीब्रजेन्द्रनन्दन की हू या रस में समाई नाँइ है, फिर

तुम नित्यविहार रस के उपासक होइ के हू, देवपितरन ते संबन्ध मानो हो ? मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–श्रीअवध, उड़ीसा, द्वारिका तथा बद्री एवं केदार आदि की हू श्रीस्वामीजी महाराज की नित्यविहार उपासना में, समाई नाँइ है ।

सहस सयाने एक मत, इक मूरख मत लाख ।
श्रीबिहारीदास बिचार सँग, समझि करौ संभाख ।।२३८।।
दाँना दुसमन भी भला, दोस्त बुरा नादाँन ।
पाछे हूँ पछितायगा, कहा बड़ों का मान ।।२३९।।

यदि कोऊ अपने मनमें ये विचार करै कि–भगवत स्वरूप एवं भगवत धामन में भेद मानिबे ते अपराध को भय होइ है, तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई ! जगत में हजार-हजार सयानेन को एकही मत होय है, और एक मूरख के छिन-छिन में बिचार बदलबे के कारन लाखन मत है जाँइ हैं । जैसे हजारन बुद्धिमानन ते कोऊ परामर्श करै, सबन को एकमात्र यही मत निकरैगो कि–मायिक जगत कूँ भलीभाँति त्यागि, अपने इष्ट की दृढ़ अनन्य-उपासना करिबो ही मानवदेह को सर्वोच्च फल है । मूरख छिन-छिन में बिचार बदलबे के कारन–कबहूँ काहू भगवान की, कबहूँ काहू देवी देवतान की उपासना बतावैगो । याते तुम पहिले अपने संग कूँ भलीभाँति समझि के ही बिनतें संभाषन करौ । क्योंकि गम्भीर एवं ऊँचे बिचार को दाना आदमी, दुस्मन हू भलो होइ है, छिन-छिन में बिचार बदलिबेवारो छुद्र प्रकृति को मित्र हू बुरो होइ है । या बात कूँ बड़े लोग कहते आये हैं । याते तुम्हें सोच-समझि के ही चलनो चहिये, जासों पीछे पछितामनो नाँइ परै ?

मीत मिताई जानियै, संपति बिपति सहाइ ।
आगैं पाछैं एक सौ, मीत बखान्यौ जाइ ।।२४०।।
गुन औगुन धन धर्म मत, प्रान निरंतर जोति ।
श्रीबिहारीदास बिरले कहूँ, ओर निबाहू मीति ।।२४१।।
स्वारथ प्रीति न पगु चलै, परमारथै न खोइ ।
श्रीबिहारीदास रँग कुसुंभ कौ, दीसत है दिन दोइ।।२४२।।

मित्र के लक्षन बताते भये आप बोले कि–हे भाई ! मित्र की मित्रताई तबही समझनी चहिये, जब संपत्ति-विपत्ति, आगे-पीछे, धन-निर्धन, गुन-औगुन एवं धर्म-सिद्धान्त आदि समस्त बातन तें अपने प्रानन कूँ जीति, अंत ताऊँ निबाहिबेवारो होय ?

ऐसे मित्र जगत में बिरले ही कहूँ मिलें हैं। क्योंकि स्वार्थ की प्रीति कुसुम के रंग की नाईं, थोरे ही दिनन में समाप्त है जाइ है। याते जागतिक प्रीति में मन लगाइकें, अपने परमार्थ को मत खोवो।

एक ओर के नेह सौं, अरुझि मरौ जिनि कोइ।
जल जड पीर न जाँनई, मींन प्राँन बिन होइ ॥२४३॥
प्रेम परस्पर तौलियै, ज्यौं बहसै सम सूर।
काइर देखत ही बुरौ, ज्यौं बन माँझ [1]घमूर ॥२४४॥

प्रीति के प्रसंग में आपने और हू समझातेभये कह्यौ कि—एकांगी प्रीति में फँसि कें, अपने प्रानन कूँ मत गँवाइ दीजो, कारन जैसे हृदयहीन पत्थर सदृस, जड़-जल के तो कोई भान ही नाँइ होइ है और बेचारो मीन, वाके बिना अपने प्रानन कूँ ही गँवाइ देवै है। तैसे ही पाषान सदृस-सुष्क प्रान को व्यक्ति प्रीति कूँ कछू समझै ही नाँइ है। प्रेम तो ऐसो होनो चहिये, जैसे हृदयवान-समान बलसाली-सूरबीर परस्पर एक समान ही बहस करें हैं। कायर प्रान के आदमी तो प्रेम के देस में, ऐसे बुरे लगें हैं, जैसे हरे-भरे फले-फूले सघन बन में बबूर को पेड़ बुरो लगै है।

घर घर हाट बजार मैं, पूछत फिरैं चटोर।
हौंस करैं पेट न भरैं, दीसैं बुरे लटोर ॥२४५॥
बितु थोरौ गाहकु घनौं, बहकि फिरै बिनु भाइ।
माँगत मोल मसूर कें, रस क्यों दरस्यौ जाइ ॥२४६॥

चटोरा लोग लुटेरान के सदृस जहाँ-तहाँ घर-घर हाट-बाजार में, मानो प्रेम को खोजते डोलें हैं, प्रेम की हौंस तो करें हैं किन्तु प्रेम कूँ ये कैसे हू प्राप्त नाँइ करि सकें हैं। ऐसे ही बिना पूरे भाव-श्रद्धा के साधक, परमार्थ के बाजार में, मसूर नाज सदृस, अपने साधारन भाव के बदले में ही सर्वोपरि प्रेम रस कूँ खरीदनो चाहें हैं, जाकूँ ज्ञाता पुरुष बिनके ताईं दरसावें हूँ नाँइ हैं।

मौठ मटर मडई ढरे, सबै बिसाहै पौंन।
देवजीर मँहगे मिलैं, कौंन खुलावै गौंन ॥२४७॥

जैसे मोठ, मटर आदि मोटे नाजन के मंडी में जहाँ-तहाँ ढेर के ढेर लगे रहैं हैं, और तिनके ग्राहकन की हू तहाँ भीर लगी रहै है। ऐसे ही बिधि, ग्यान, महातम,

१ बबूर

ईस्वरता आदि मोटे परमार्थन के उपदेष्टा-सतसंगी एवं आचरन करिबेवारे सब ठौर अनेकन मिलें हैं, और देवजीर चावल अति मँहगो होइबे के कारन, बाके मोल-मोलाई करिबे की तो कहा चलाई ? गौन खुलाइकें, बानगी देखिबे की हू बिन लोगन की हिम्मत नाँइ परै है, ऐसें ही जिन लोगन की आस्था मोटे परमार्थन में होइ है—वे बेचारे और-और समस्त परमार्थन ते भलीभाँति मन हटाइ, एकमात्र अति बिसुद्ध प्रेम पथ पै चलिबे कौ साहस हू नाँइ करि सकें हैं।

भाव भक्ति समझै नहीं, कहैं महातम मोल।
श्रीबिहारीदास बिनु बित कहै, खोलि बेगि दै तोल।।२४८।।

कुछ लोग बिसुद्ध प्रेम भक्तिभाव के मर्म कूँ नाँइ समझिबे के कारन, अपने कर्म-धर्म, बिधि-बिधान, ग्यान, महातम एवं जप-तप-संयम नेम-व्रत आदि साधनन कूँ अति ऊँचो समझि, रस के उपदेष्टान तें यहाँ ताऊँ कहिबे लगि जाँइ हैं, कि—हम इतेक साधन-संपन्न हैं, फिर तो आपने बिना सोचे-बिचारे ही, सीघ्र ते सीघ्र प्रेम रस के मर्म कूँ हमें बतामनो चहिये।

बात खुरंदनि पै सुनी, खायौ नाँहि कपूर।
बिनु गथ गाहकु ह्वै चल्यौ, भाँग मुलावै कूर।।२४९।।

जैसे काहू ने कपूर तो खायो नाँइ होइ, बाकी बात, खाइबेवारेन पै ते सुनि लीनी। याही प्रकार बेसमझ क्रूर व्यक्ति, हरी भांग कूँ ही तुलसी समझि, लेबो चाहें हैं। ऐसे ही ये लोग नित्यबिहार रस कूँ और-और परमार्थन सदृस ही समझि, वाकी प्राप्ति के ताईं चेष्टा करन लगें हैं।

गाहक फिरै बजार में, डोलै बहती बाट।
भली बस्तु भावै मिलै, सौदा ताही हाट।।२५०।।

जैसे कोऊ अति ऊँची बस्तु खरीदबे के ताईं, आम बाजार में डोलतो भयो काहू ते वाने पूछ्यौ कि—अमुक बस्तु कहाँ मिलै है ? तब बाकूँ जानकारन ने बतायो कि—यह बस्तु केवल वाही दुकान पै, बड़ो मोल चुकाइबे पै ही मिल सकैगी। ऐसे ही सर्वोपरि नित्यबिहार स्वरूप बस्तु परमार्थरूपी बाजार में, एकमात्र श्रीस्वामीजू महाराज के दृढ़ अनन्य सरन जाइबे पै ही मिल सकैगी। जाके ताईं इहलोक, परलोक के समस्त सुख-संबंधन कूँ भलीभाँति त्यागरूपी मोल चुकावनो परैगो।

श्रीबिहारीदास कौ बकि मरै, धर्मी मिलै तौ बोल।
अति महँगौं सौंघौ लगै, गरज बस्तु कौ मोल ।।२५१।।

हे बिहारीदास ! अपने नित्यबिहार रस रीति कूँ एकमात्र अनन्य-धर्म पालन करिबेवारे धर्मी मिलें, तब बिनसों ही कहो, कारन औरन ते कहिबो तो केवल बकिके ही मरिबो है। हमारी बस्तु को मोल केवल जिज्ञासु की गरज ही है, जोकि बहुतभाँति अनुनय-बिनय एवं दीनतापूर्वक बारंबार समझिबे के ताईं अनेक प्रकार ते जिज्ञासा करें, वाही कूँ बताओ ? क्योंकि जो बस्तु अति मँहगी मिलै है वोही स्वादिष्ट लगै है।

कसु बाकसु [1]कांटा तुलै, भक्ति महातम ग्याँन।
नरम प्रेम नरजा तुलै, श्रीबिहारीदास रस थाँन ।।२५२।।

जैसे बबूर आदि सुस्क बृक्षन की छाल, लकरी आदि कसबाकस, बड़े-बड़े कांटान पै ही तौले जाँइ हैं, तैसे हो ऐस्वर्य मिश्रित बैधी-भक्ति एवं महातम; ज्ञान आदि मोटे-मोटे परमार्थ तो समझाय-बुझाइ कें जहाँ-तहाँ सबन कूँ ही दियो जाइ है। किन्तु मधुरातिमधुर, कोमलातिकोमल-नरम-प्रेम रस तो अति सूक्ष्म नरजा पै ही तोल्यौ जाइ है। वाको दैवेवारो हू जहाँ-तहाँ न जाइकें, अपनी ठौर पै ही देवें हैं। बाके लैबेवारे हू बेर-बेर बिन्हीं के पास जाँय हैं।

कस बाकसु मीडैं न रसु, रस बिनु लहै न स्वाद।
श्रीबिहारीदास रस मत्त मन, कौंन करै बकवाद ।।२५३।।

बिधि-बिधान, कर्म, ग्यान, ऐस्वर्य मिश्रित विधि भक्ति आदि कस-बाकस स्वरूप मोटे परमार्थन कूँ, कोऊ कितेक हू बिचार-बिमर्स द्वारा चर्बण करे-पै, वामें रस की एक बूँद हू नाँइ प्राप्त करि सकै है और सरस रसीले रसिक-जनन कूँ तो रस के बिना कोऊ स्वाद ही नाँइ आवै है, जामें श्रीनित्यबिहार के उपासक श्रीबिहारी-दासन को मन तो सदाकाल रस में मत्त रहै है, वे महतपुरुष—ऐसे परमार्थिन में रस की चर्चा करिबो हू बकवाद के बराबर समझें हैं।

कहा चीकनें गात, रस पूछै खिसले परैं।
सरस न आवै बात, राख उडत रूखे हिये ।।२५४।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि पीतांबरी धोती पहिरें, पंचकेस रखायें, गौर वरन-महर्षिन सदृस सुडोल अंगवारे, व्यक्तिन के दरसन बहुत सुन्दर लगें हैं, ये लोग तो रस

१ कटरा

के भलीभाँति ग्याता होने चहिये ? तापै आपने कह्यौ कि–ऊपर ते ही चीकने गात, सुन्दर दीखें हैं, किन्तु इनको हृदय अति रूखो होइबे के कारन, ऐसी राख उड़ै है कि सरस बोलिबो हू बिनपै नाँइ आवै है। यदि इनते रस की बात पूछो तो इत-उत में खिसलन लगें हैं।

झूठ दुरै नहिं साँच मैं, जौ सौ ओले लेइ।
ऐंचि डकारत भूख मैं, मुँह तब हीं कहि देइ ।।२५५।।

जैसे कोऊ संकोचबस भूखो होइबे पै हू, भरे पेट को परिचय दैबे के ताईं, जबरन ऐंचिकें डकार लैन लगै है। तौहू बाके मुख पै स्पष्ट दरसि जाइ है कि यह भूखो है। तैसे ही रस को कछु ग्यान न होइबे पै जो लोग अपनी बाक-चातुरी एवं अनेक रंग-ढंग द्वारा रस की बात कहन लगें हैं, बिनके कथनमात्र ते अनभिज्ञता दीख जाय है।

साल सुद्ध मृदु माधुरी, रसिक अनन्यहि [1]पाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कें, गैरसाल न समाइ ।।२५६।।

जैसे खाट के पायेन के छेद ठीक-ठीक सीधे हुए बिना खाट साल नाँइ बैठे है, तैसेही हमारे श्रीस्वामीजी महाराज की अति बिसुद्धतम रस-रीति की उपासना में साल, सुद्ध रस माधुरी के अतिरिक्त, गैर साल रस की नेकहू समाई नाँइ है। और साल सुद्ध रस-माधुरी एकमात्र रसिक अनन्य जनन ते ही प्राप्त है सकै है। अर्थात प्रथम-समागम एकान्त-रस-बिलास निज-महल को निपट नित्यविहार रस-रीति के अतिरिक्त और-और यावत रस उपासनान की मिलौनी या रस देस में गैर साल समझी जाँइ हैं।

सनकट ओछो घटि चलै, कलई कील बिगार।
सूलाखैं परदा फटै खोटै, गरदनि मार ।।२५७।।

जैसे सरकारी सिक्का, सन-कटि जाइबे ते, पूरे सोलह आना में वो नाँइ चलै है, तैसे ही हमारे रस-देस में नेकहू गैर साल होइबे ते बाकी समाई नाँइ है सकै है, जिन सिक्कान में कलई, एवं कील ठुकी भई होइ है, तिन सबन की जाँच द्वारा खोटे निकसिबे पै वे स्वयं कूँ ही घातक बनिजांइ हैं। अर्थात जैसे जिन साधकन के मन में और-और धर्मन में तो रुची रहै है, ऊपर ते नित्यबिहार रस की अनन्यता रूपी कलई

१ प्याइ

सहस कपट किये रहें है और कुछ ऐसे हू साधक होइ हैं, जो और-और रसन की मिलौनी स्वरूप नित्यबिहार-उपासना में कील ठोंकि के राखें हैं, तिन सबन के समय पै ऐसे परदा फटि जाइ है, जैसे सिक्का में सूलाख करिके जाँच करिबे ते, बाको सब खोट चौंरे आ जाँइ हैं। या प्रकार ते चलिबेवारे लोगन की नित्यबिहार उपासना में सर्वथा हानि ही होय है।

दिष्टि भयै खौसै कहा, खरै न देईं तोल।
लालच छुटैं न रती कौ, झूठौ सकै न बोल ॥२५८॥

जब ताऊँ श्रीस्वामीजू महाराज के सांचे रसिक अनन्यजन, हृदय ते भलीभाँति अपनायस द्वारा बस्तु नाँइ देवें हैं, तब ताऊँ काहू के पास सुनि-सुनाय कें, यदि बस्तु दरस हू जाय, तौहू बे नाँइ लै सकें हैं। क्योंकि बिना बिनकी साँची कृपा, साधक के मनमें नेक-नेक बातन के लोभ बने ही रहें हैं। याते साँचे उपासकन के सामने झूठो जन टिक ही नाँइ सकै है।

सब खोटेनि खरे करै, खरे न राखैं खोल।
श्रीबिहारीदास नग पारखू, तिन सौं झूठ न बोल ॥२५९॥

जो श्रीस्वामीजू महाराज के रसिक अनन्य नग पारखू हैं, तिनते निष्कपट भाव सों अपनी सब बातन कूँ खोलि-खोलिकें कहि देउ। क्योंकि वे साँचे आश्रितन के हृदय की समस्त कचाइन कूँ निकारि कें, नित्यबिहार को ठोस साँचो उपासक बनाइ लेइ हैं। याते बिनते झूठ तो कबहूँ बोलनो ही नाँइ चहिए।

खोटो खोटेई करै, खरौ खरे करि लेइ।
खोटी आँखि उलूक की, दोस प्रकासे देइ ॥२६०॥

खोटे जनन कौ यह सुभाउ होइ है कि—वे दूसरेन कूँ हूँ खोटो बनाइ देवें हैं। और खरे महतपुरुष साँचे श्रद्धालुजनन कूँ सब ओर ते खरो करि देइ हैं। या प्रकार के महतन में हूँ दोष दीखबेवारे ऐसे नितांत अज्ञानी होइ हैं, जैसे उल्लू की आँख में दोष होइबे ते प्रकास को ही दोष देवे है।

बाहिर भीतर कौ धरचौ, क्यौं सूझै बिनु चारि।
द्वै अँखियाँ ही ढेवरी, ते रोकी बिष वारि ॥२६१॥

नाम-धाम, साक्षात श्रीभगवत विग्रह तथा महतपुरुषन के बाहर भीतर के स्वरूप कूँ, भावरूपी-आंख हुए बिना, कोऊ देख ही नाँइ सकै है। ताहू में जिन

लोगन की साधारन बुद्धिरूपी आंखन में बिषय-बासनारूपी जल भरि रह्यौ है वे लोग बिनके स्वरूप कूँ कैसेहू नाँइ देखि सकें हैं।

खाल मेलियै खुरस में,कररौ खैला खूँट।
श्रीबिहारीदास निष्ठा बिना, नरम हौंहि क्यौं ठूँट ॥२६२॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—ऐसे बहिर्मुख हू बस्तु प्राप्त योग्य कैसे होय ? तापै आपने कथन कियौ कि—जैसे काष्ठ सदृस अति सुष्क चर्म कूँ खुरस में मेलि, कूटि-कूटि के ही नरम बनायो जाय है, तैसे ही इनके मनकूँ नरम बनाइबो बड़ो ही कररो खेला खूँट है। यदि दृढ़ निष्ठा द्वारा अपने मनकूँ रोकि-रोकि, समझाइ-समझाइ कें, सतत अपने इष्ट में लगायो जाइ, तबहीं अनंत जन्मन को बिगरो भयो ये मन, सनै-सनै सरस नरम कोमल ह्वै जायगो।

सुख दै खेलत खसम सौं, परचौ प्रेम कौ पैंतु।
श्रीबिहारीदास बँध्यौ नहीं, फूल्यौं फिरैं फँदैतु ॥२६३॥

जब ये मन सरस-रसीलो तथा कोमल ह्वै जाइ है तब और काहू बंधनन में नाँइ बँधिके, अपने खसम स्वरूप इष्ट कूँ सुख दै-दै कें प्रेम के पासे खेलन लगैं है।

खेती करौं न खत लिखौं, ख्याल खसम सौं मोहि।
खरखसौ सब सौं मिट्यौ, सुख उपदेसौं तोहि ॥२६४॥

मैं अपने निर्वाह के ताईं काहू प्रकार के उपार्जन की न चेष्टा करूँ हूँ, और न काहू ते पत्रादिकन को व्यवहार ही राखूँ हूँ। मेरो ध्यान सतत अपने इष्ट के चरनारविंद में ऐसो लग्यौ रहै है, जोकि इहलोक-परलोक के सबही झंझट मेरे भलीभाँति मिटि गये हैं, या अद्‌भुत सुख कूँ मैं तोते कह्यौ है।

श्रीबिहारीदास मन सौं कहै, अब न लगाऊँ तोहि।
जस गाऊँ हरिदास कौ, तैं सुख दीनों मोहि ॥२६५॥

फिर आप अपने मन ते कहिबे लगे कि—हे भाई ! तैंने मोकूँ अति बिचित्र एवं अगाध सुख दीन्यौ है, याते अब तोकूँ और कहूँ न लगाइकें, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के सुख-स्वरूप रस-जसन कूँ ही सतत गायो करूँगो।

उडत परेवा प्रेम लै, ऊँचे चढत असूझ।
अपनी तह चूकै नहीं, याही अर्थैं बूझ ॥२६६॥

बधिक फँदा लीनें फिरैं, का पै सिलह सँवारि।
श्रीबिहारीदास गरदाँन बिनु, तह चुक लीजै मारि ॥२६७॥
लगुदा लागै लुढि रहै, उडत खरो लपटाइ।
उडि न सक्यौ चाहत उड्यौ, पर खुसि खुसि मरि जाइ ॥२६८॥

जैसे पालतू कबूतर अपने मालिक के लाड़-प्यार कूँ हृदय में राखिकें, कितेक हू ऊँचो क्यों न उड़िजाय तौहू लौटि के अपनी छतरी पै ही आइके बैठे है। तैसेही तुमने दूसरे घरवारेन ते चाहे कितेक हू गहरी मर्मी बातन के सिद्धान्तन कूँ कहनो-सुननो परै, किन्तु अपने इष्ट गुरुन की उपासना प्रेम रस-रीति के सिद्धान्त कूँ मत चूको।

क्योंकि जैसे कबूतर पकरिबेवारे बधिक लोग कबूतरन कूँ फँसाइबे के ताईं, फंदा लिये भये डोल्यौ करें हैं, जो कबूतर अपनी तह ते चुकि कें आइ जाइ है, बाको ऐसो लगुदा-लगाइकें फँसाइ लेवें हैं, कि वो कितेक हू उड़िबो चाहै, किन्तु उड़ि नाँइ सकै है, उल्टो वो पर खुसि-खुसि मरि जाइ है। तैसे जो साधक अपनी रस-रीति-उपासना, सिद्धान्त ते चूकि जाइ है, तौ वाकूँ अन्य घरवारे लगुदा स्वरूप अपने आकर्षक, सिद्धान्तन की बात मनमें ऐसी जमाइ देवैं हैं, जोकि बिनकूँ मनते निकासिबो ही दुर्लभ है जाइ है। चाहे अपने मनमें कितेक हू प्रमानन की चातुरीरूपी हथियारन कूँ वे सजाइ के राखें, किन्तु समय-समय पै दोऊ ओर मन आकर्षित होइबे के कारन साँचे काहू के नाँइ है सकें हैं।

मूँड मुडायौ सिद्धि कौं, साधन कियो न जाइ।
गाँडि फटत ही जोग बिनु, लोगन सौं सतराइ ॥२६९॥
घर छाँड्यौ हौ भजन कौं, सालन कौं पछिताइ।
चुपरी पायैं हँसि मिलै, रूखी देखि रिसाइ ॥२७०॥
मूँड मुडायौ सिद्धि कौं, भई टूकन की हाँनि।
बेबाकी दोऊ गईं, कछु गुरु बिषै गिलाँनि ॥२७१॥

जो लोग सिद्ध होइबे के ताईं मूँड़ तो मुड़ाइ लेवें हैं, किन्तु बिनपै साधुता के साधन बनें नाँइ हैं, सतगुरु समझावें तौ, उल्टे लरिबे को तैयार है जाँइ हैं, तिनके प्रति लक्ष्य करि बड़े अनखनाते भये आपने कह्यौ कि–साधु-बेष के बिना तुम्हारे ऊपर कौनसी आपत्ति आइ रही ही। तुमने भजन करिबे के ताईं अपने घर कूँ छाड़्यौ हो,

अब केवल साक के ताईं पछिताइ रहे हो। जो कोऊ चोखी-चुपरी माधुकरी देवै है, बिनते तो—बड़े हँसि-हँसि के मिलो हो, रूखी देखत खेम ऐसे अनखनाइ, मनमें यहाँ ताऊँ सोचबे लगि जाओ हो, यदि गुरु महाराज जोर दे-कें इतेक नाँइ कहते तो, हम साधु नाँइ बनते। अब सिद्ध होइबो तो दूर रह्यौ, पेट भरिबे के ताईं—समय पै साग रोटी हू नाँइ मिलै है। ऐसे जनन के इहलोक, परलोक दोऊ बिगरि जाँय हैं।

कहा मुंडायें मूँड कमंडल काठ कौ, कहा कियें अभ्यास बेद बहु पाठकौ।
कहा जियें चिरकाल बरस सै साठकौ, जौ नहिं आयौ हाथ पसेरी आठकौ॥

मँड़-मुड़ाय संत वेष धारन करि, हाथ में कमंडल लै, यदि तुमने वेदादिकन के अनेक पाठ करि, सैकड़ों वर्षन की आयु हू प्राप्त करि लीनी, तौहू जब ताऊँ अपने मनकूँ बस नाँइ करोगे तबताऊँ कछु नाँइ है सकैगो।

अर्थात जगत में सबते ऊँचो, साक्षात भगवत वेष तुमको प्राप्त है गयो है, याते तुम कुछ समय के लिये ही, अपने मनकूँ और-और यावत-सुख-संबंधन ते हटाइ, इष्ट के नाम, रूप, गुन, जस-रूपी महामाधुरीन में लगावो। यदि तुम्हारो मन नेकहू लग जायगो, तबतो तुमने और बात हू सुनी नाँइ सुहावैगी।

बैरागी भूखें फिरैं, रूखे निपट निरास।
अनुरागै पावैं नहीं, बिनु भयें बिहारीदास॥२७३॥
रूठै से रिस में फिरैं, लीयें [1]बैरु अरु आग।
आपुन हीं जरि जरि मरैं, बिन बैराग अभाग॥२७४॥

वैराग वेष लैकें हू, जिनको इष्ट में अनुराग नाँइ होइ है, तिनके प्रति आपको कथन है कि—श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे दास हुए बिना, अनुराग हो ही नाँइ सकै है, और बिना अनुराग कें, संसारी-पदार्थन की भूख मनतें नाँइ मिटै है। याही ते तुम निपट निरास होइ, मानो मन में बैर अरु आग लिये, रूठे से रिस में भरे डोलो हो। दुर्भाग्यबस वास्तविक बैराग के बिना, स्वभाव के परबस अपने आप जरि-जरि कें मरि रहे हो।

बैरागी बिषई कै जाइ, वह किनि गारि बहिनि की खाइ।
मूँड मुंडावै स्वाँग लजावै, अनख बिहारीदास न भावै॥२७५॥
श्रीबिहारीदास ऐसैं जो जाइ, संग न काहू कै लपटाइ।
उदर अगिनितें अधिक अघाइ,तो भरुवाकौ भजन भँडाइ॥२७६॥

बैराग बेष धारन करि, जो जन अपने निर्वाह के ताईं, नाना प्रकार की लालसान में विवस, जहाँ-तहाँ विषइन के द्वार पैं जाइ जाइ कें जांचना करैं हैं, वे बेष कूँ ऐसे लजावैं हैं, जासों साँचे बिहारीदासन कूँ बड़े अनखावने लगैं हैं श्रीबिहारीदासन ने तो–माधुकरी के ताईं हू ऐसी रीति ते जानों चहिये, जो काहू ते संबंध नाँइ होइ, जय जय श्रीकुँजबिहारीलाल करि, नीची निगाह ते माधुकरी लै, चल परें। और हू सावधान करते भये आपने कह्यौ कि यदि अपनी पाचन-शक्ति ते अधिक प्रसाद पाइ लेवोगो, तो तुम्हारो भजन बिगरि जायगो अर्थात् अधिक पाइबे ते-देह रोग ग्रसित है जायगी, नींद आवन लगैंगी, चित्त चंचल है जाइगो। भजन विरोधी अनेक बातें हृदय में ठाड़ी है जाँयगी।

घर परिहरि बन छाँनि छवावै, मौनी ह्वै कै मूँडी डुलावै।
गूदरि औढि अथाई आवै, अनख बिहारीदास न भावै ।।२७७।।
वहै मौंन जो हरि गुन गावै, और कथा इत उत बहरावै।
चेष्टा करि लोगन बौरावै, झूठौ भटकै ठौर न पावै ।।२७८।।

जो जन घर कूँ छाँड़ि, बन में आय, मांग जांचि कें, छान छवावैं हैं, और मौनी होइ कें, औरन कूँ अपनी बात समझाइबे के ताईं, अनेक प्रकार ते चेष्टा करैं हैं, करुवा–गूदरी लैके हूँ, पंचायत घर, अथाईं–चौपारन में जाइ–जाइ कें बैठे हैं ऐसे जन हमें नाँइ सुहावै हैं। मौन तो वही सुन्दर है, जो एकमात्र श्रीहरि के ही गुन गामतो भयो और बातन कूँ इत उत में टरकामतो रहै। मुंड़ी डुलाइ-डुलाइ कें मौनी–दूसरेन कूँ हू भ्रम में डारि देवै हैं, बिनकूँ परमार्थ में कहूँ ठौर नाँइ मिलै है।

आरंभी निरलोभ कहावै, इह मेरे परतीति न आवै।
बाट बिगारैं आँखि दिखावै, अनख बिहारीदास न भावै ।।२७९।।

जो लोग द्रव्य ते संपन्न होइबेबारे कार्यन कूँ तो आरंभ करैं हैं, निर्लोभीपने को परिचय देवै हैं, तिनके प्रति आपने कह्यौ कि ऐसे जनन के निर्लोभिता को मैं विश्वास नाँइ करुँ हूँ। यदि बिनकूँ कोऊ समझावै, तो उल्टे आंख दिखाय बैराग्य के मार्ग कूँ ही बिगारैं हैं याते वे अनखावने लगैं हैं।

कांमी करकटु संग्रहै, अपनी बुद्धि बिकार।
आपुन हीं जरि जरि मरैं, ज्यौं भरभुजा कुम्हार ।।२८०।।

जैसे भरभूजा तथा कुम्हार अपने हाथन ते ही आँच-बराइ वाकी तपन ते आपही भुरसें हैं। तैसे ही कामी लोग-अपनी ही बुद्धि के बिकार तें, अनेक प्रकार के करकच संग्रह करि आपही वामें जरि-जरि के मरें हैं।

मुख मीठे हँसि हँसि मिलैं, मन मत्सर मरि जाँहि।
दूध प्यायें बिस नहिं तजें, जौंन सर्प की जाँहि ॥२८१॥
ऊपर ऊपर साधु से, भीतर भरी भँगार।
आपुन ही जरि जरि बुझें, जैसे अवा अँगार ॥२८२॥

जैसे-सर्प कूं दूध पिवाइबे पैं हू, बिष नाँइ तजै है, तैसे ही कुछ लोग ऐसे सुभाउ के होइ हैं कि ऊपर ते-जो हँसि-हँसि कें बड़े मीठे बोलें हैं, किन्तु मन मत्सरता ते भरचो भयौ होइ है, वे लोग सीधे सर्प की योनि में जाइ हैं। कुछ ऐसे हू प्रकृति के होइ हैं, कि उपर ते तो सीधे-सादे साधुन सदृस दीखें हैं, भीतर काम-क्रोध, इर्ष्या-द्वेष, छल-छिद्ररूपी अनेक प्रकार भंगार भरी रहै हैं। याते जैसे अँवा को अंगार आपही जरि-जरि के बुझिजाइ है, तैसेही ये लोग मन ही मन में स्वयं जरचौ-बुझ्यौ करें हैं।

भेष बनायौ भक्ति कौ, तन मन दुष्ट सुभाव।
श्रीबिहारीदास सतभाइ बिनु, स्वाँगै लाव नसाव ॥२८३॥

जगत में कछु लोग ऐसे हू होइ है, जो भक्त को बेष धारन करिबे पैहू बिनकी तन-मन-स्वभाव की दुष्टता नाँइ जाइ है। जा भक्ति के प्रताप ते-स्वयं भगवान हू लालायित हुए भक्तन पीछे लगे डोलें हैं, वा अतिबिचित्र भक्ति के अद्भुत-अगाध लाभ कूं ये लोग बेकार ही खोय बैठे हैं।

गाडो सों उखरी कहैं, उखरी रोकै राह।
बैठे मुसे बजार मैं, चोर कहावैं साह ॥२८४॥
श्रीबिहारीदास रस मैं रिसैं, राखत कुमति कुलोग।
केहरि की सी मिलनि है, संजोगहि बियोग ॥२८५॥

यदि कोऊ ये बात कहै है कि–ऐसे जनन कूं जगत में लोग भक्त काहे कूं कहेंगे ? तापै आपने कह्यौ कि–प्रायः संसार में सहज सुभाव ही लोग उल्टी बात कह्यौ करें हैं। जैसे जमीन में गाड़ी भई कूं तो उखरी कहैं हैं, और जो बाजार में जाइ मार्ग कूं ही रोक लेवै, ताकूं गाड़ी कहैं हैं। दिन-दहाड़े बाजार में बैठे-बैठे, आये भये ग्राहकन कूं मनमान्यौ ठगें हैं, बिनकूं लोग सराफ कहैं हैं।

हे बिहारीदास ! ऐसे ही कुछ नासमझ लोग बिसुद्ध प्रेम-रस-बिलास में हूँ रिस को समावेस करें हैं जो कैसे हू संभव नाँइ है सकै है। जा प्रेम-रस को स्वरूप ही इतेक अद्‌भुत अनिर्वचनीय होइ है, जहाँ संयोग ही कोटानुकोट विरह को स्वरूप ऐसो है जाय है-जैसे सिंह को मिलन ही विरह को कारन बनि जाइ है।

श्रीकुंजबिहारी करैं सु होइ, कहा सुनावै औरैं रोइ।
औषधि वैद करौ जिनि कोइ, पहिलैं राँड वैद की हीइ ॥२८६॥

निज आश्रितन के प्रति आपने कह्यौ कि-हे भाई ! जब ऐसे अति अद्‌भुत सर्वसमर्थ, परम दयालु श्रीकुंजबिहारीलाल हमारे रक्षक हैं और वे जो कछु करें हैं सोई होइ है, तब तुमने अपनी प्रान-रक्षा के ताईं वैद्यादिकन के पास जाइ के नाँइ रोमनो चहिये ? क्योंकि वे बेचारे स्वयं ही अपने मरिबे ते नाँइ बचि सकें हैं। याते श्रीबिहारीजी महाराज के भरोसे, सतत निस्चित रहिकें कोऊ औषधि-वैद्य मत करो।

इंद्रिनि के बस भटकत जाइ, पाव पलक कहूँ थिर न रहाइ।
फिरो जो बादि रह्यौ मुह बाइ, रोग न छाडै वेदनि खाइ ॥२८७॥

बहिर्मुख जीव अपनी इन्द्रिन के बसीभूत होइ, अनादिकाल तें ऐसे भटकते फिरैं हैं जो पलमात्र के लिये हूँ कहूँ स्थिर नाँइ होइ हैं। ऐसे ही झूठ-मूठ मुँह बायें जहाँ-तहाँ डोलें हैं। बिनको भव रोग-रूपी बेदना कबहूँ छुटै ही नाँइ है।

रोग कछू उपचार कछू, लोभी बैद बिगार।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिनु, और धर्म बिभिचार ॥२८८॥

जैसे जगत में लोगन के रोग तो कछु होइ हैं और लोभी वैद्य उपचार कछु करें हैं, जासों उल्टो रोग बढ़ि जाइ है। ऐसे ही परमार्थ पथ पै चलिबेवारे साधकन को मन एक तो स्वयं ही मायिक-व्यवहारन ते नाँइ हटि रह्यौ है, दूजे लोभी गुरु वाही में बिनकूँ साधि देवें हैं याते और हू बासना बढ़ि जाँइ हैं। ताते हे बिहारीदास ! रसिकअनन्य-नृपतिचूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज को अति बिसुद्ध उज्ज्वल प्रेम रस-धर्म-सिद्धान्तन ते विहीन और-और धर्मन कूँ तो व्यभिचार ही समझो।

रसन रसाँइनि जासु मुख, औषदि खोजै काइ।
निस्प्रह रंचकु लंकु दैं, चाँदी पै लै ताइ ॥२८९॥
सबैं रसाँइनि मूक, पिउ प्रेम न पूजै कोइ।
जो मन रतीक संचरैं, तौ सब तन सोनों होइ ॥२९०॥

जा वैद्य के श्रीमुख के बचन ही रसरीति-रूपी रसाइन हैं, बिनके रोगिन ने औषधि खोजिबे की आवश्यकता ही नाँइ होइ है अर्थात् निस्प्रेही जिन श्रीगुरुन के मुखकमल सों एकमात्र प्रेम रसरीति माधुरी को ही उपदेस प्राप्त होइ है, बिन सिष्यन कूँ और कोऊ साधन करिबे की आवश्यकता ही नाँइ रहै है। किन्तु तिन गुरुन की निस्पृहता की परीक्षा ऐसे कर लेनी चहिये, जैसे सोनी नेक सों सोना कूँ तपाइ पहिले चाँदी करि लेवै है। क्योंकि साँचे प्रेम-रस की माधुरीरूपी रसाइन इतेक अद्भुत प्रभावसाली होइ है, जाकूँ मन रतीभर हू स्पर्श करिबे ते तन-मन-प्रान समस्त इन्द्रिय अति उज्ज्वल प्रेम-स्वरूप है जाँइ हैं।

पोतिहि छोति न लागई, सोनों सबनि सुहाइ।
जो सुहाग दै औटियै, तौ मैंलौ जरि जाइ ॥२८१॥
सेवक स्याम सुनार लों, लेतु कसोटी लाइ।
श्रीबिहारीदास करि बारहों, पहिरतु गरैं गढ़ाइ ॥२८२॥

अति साधारन कीमती पोत-सदृस, दीन-हीन-गरीब बनि कें, भजन तो कियो नाँइ जाइ है, जामें काहू प्रकार की अभिमानरूपी छोत लगि ही नाँइ सकै है। सब लोग सोना स्वरूप सिद्ध ही होनों चाहें हैं जासों सुहाग-स्वरूप अनेक प्रकार की विघ्न-बाधा दै-कें इष्ट ने सुनार की नाँई वाकूँ औटावनो परै है। जब वे अपनी धर्म-धारणा में खरे निकसें हैं तब वाकूँ नाना भाँति की कसौटिन पै कसिकें देखें हैं। समस्त रीतिभांति सो सुद्ध निकरिबे पै ही आप रीझि मन-भांमते भावन के गहनो सदृस बनाइ कें अपने पास राखें हैं।

जे मानत मन भर्म भै, आरंभी अकुलाइ।
श्रीबिहारीदास आरूढ, जे संसै रहे समाइ ॥२८३॥

जब ताऊँ साधक के मन में अनेक प्रकार के संसय बने रहैं हैं, तब ताऊँ कहिबे-सुनिबे-बिचारिबे एवं करिबे में भय मानि, उपासना आरंभ करिबे में वे जन अकुलायो करें हैं। किन्तु जो रसरीति कूँ भलीभाँति समझिबेवारे श्रीबिहारीदास हैं, वे अपनी उपासना में सुदृढ़ रहैं हैं।

सहज सनेही स्याम के, बन बसि अनत न जाँइ।
जे राँचे सारे देस सौं, जहाँ तहाँ ललचाँइ ॥२८४॥

ऐसे सहज-स्नेही साँचे सुदृढ़ श्रीबिहारीजी महाराज के अनन्य दास हैं, वे

कैसे हू लोभ-लालच एवं आपति-विपति आइ-जाइ तौहू श्रीवृन्दावन कूँ त्यागि कें कहूँ नाँइ जाइ हैं। जिनके मन में भय-भ्रम एवं अनेक प्रकार की लालसा होंइ हैं, वेई लोग समस्त देसन ते राचे भये जहाँ-तहाँ डोल्यौ करें हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास को, भजत भक्ति सतभाइ।
अँखियां ही पहिचानियै, जे राती वह भाइ ॥२८५॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित श्रीबिहारीदास तो एकमात्र सांचे भाव तें अपनी उपासना में ऐसे रत-मत हुये रहै हैं, जोकि बिनकी आंखिन ते ही स्पष्ट दरसि जांइ है।

श्रीबिहारीदास रस मत्त जे, ते न विषै खरि खाँहि।
नादीदे पावैं नहीं, जहाँ तहाँ ललचाँहि ॥२८६॥

नित्यबिहार रस में मत्त श्रीबिहारीदास सांसारिक विषय-रूपी खर कूँ तो कबहूँ स्पर्श हू नाँइ करें हैं, विषयन के लालची लोग नादीदे होइ, जहाँ-तहाँ डोल्यौ करें हैं।

कोउ मदमाते भाँग के, कोऊ अमल अफीम।
श्रीबिहारीदास रस माधुरी, मत्त मुदित तोफीम ॥२८७॥

जगत में कोऊ भाँग के नसा में, कोऊ अफीम के अमल में मत्त रहै हैं, किन्तु नित्यबिहार के उपासक श्रीबिहारीदास तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म-रस-माधुरी के तोफा नसा में मत्त-मुदित होइ, सतत झूमते रहैं हैं।

श्रीबिहारीदास घूँमत रहै, मत्त पियालै नित्त।
सावधान सोफी सुखी, विषई बिमुख नसत्त ॥२८८॥

श्रीबिहारीदास रस मत्तता के पियाले नित्य पी-पीकें हू सावधान रहते भये, बड़े सोफियानी सुख में सतत झूमते रहै हैं। बहिर्मुख विषई लोगन के तो इहलोक-परलोक दोनों ही नष्ट है जाँइ हैं।

श्रीबिहारीदास रस आँचयौ, सावधान गहि गैल।
बिनु सतसंग बिगूचि है, और अमल बद फैल ॥२८९॥

जैसे उत्तम कुल की पतिव्रता अपने पतिव्रत धर्म कूँ जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति में हूँ यावत बातन ते बड़ी सावधानी के साथ सदाकाल बचाइ कें राखै है, तैसे ही

हमने श्रीस्वामी जू के रसिक अनन्य धर्म की गैल कूँ सतत सावधानी ते निभाइ, या अद्‌भुत सूक्ष्म रस कूँ मन भाँवतो पियो है। अर्थात् और और यावत नामन कूँ परित्याग करि, एकमात्र श्रीबिहारी-विहारिनी एवं श्रीस्वामीजू महाराज के ही नाम कूँ दृढ़ अनन्यभावते रट्यौ, श्रीस्वामी जू के रस-जसन ते भरे महामधुर-गुनन कूँ सदाकाल गायो, साक्षात् श्रीस्वामी जू महाराज के चरन कमलन की रज समझि के ही श्रीवृन्दावन में अखंड बास कीन्यौ। श्री स्वामीजू के रसिकअनन्यमहत-पुरुषन को मन क्रम-वचन तें भलीभांति संग करि, बिनके ही श्रीचरनकमलन के रज को सदाकाल आसा-भरोसा मन में रखते भये बिनैकी ही सीत प्रसादी हमने पाई है। याते तुमने हूँ श्रीस्वामी जू के रसिक अनन्य-जनन को ही संग, दीनाति-दीन ह्वै, अपनो जीवन आधार समाझि, बड़े हित सों सदाकाल करनो चहिये, अन्यथा हमारे परमार्थ देस सों गिर जावोगे, हमारी या उपासना में नित्यबिहाररस के अतिरिक्त-जागतिक, पारमार्थिक और-और आवेस होइबे ते बद-फैली समझी जाइ है।

कै होते परमारथी, कै बिमुख कहत संसार।
श्रीबिहारीदास यह धरु बडी, जु राखे बाँध अहार ॥३००॥
श्रीबिहारीदास क्यों ह्वै सकै, कैसैं भजै बिहार।
बडो मुहसिल भोर ही, सेर करै जंजार ॥३०१॥
आठ पहर चौसठ घटी, सोचत सठ न विहाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, सुख में रह्यो समाय ॥३०२॥

जिन लोगन के हृदय में सांचो उद्देश्य तो सांसारिक है, और वाकी सफलता के ताईं ही परमार्थ पथ पै चलें हैं, तिनके प्रति आपने कह्यो कि—हे भाई, या तो तुमने परमार्थ के पथ पै, सांचे उद्देश्य ते चलनो चहिये, अथवा संसार के माऊँ ही रहनो चहिये, बिना सचाई के परमार्थ को पथ उज्ज्वल होते भये हू बिगरि जाइ है। जिन लोगन कूँ, बड़े भोर होत खेम-भोजन की ही मुसीबत परि जाइ हैं, वे तो नित्य बिहार को भजन कर ही कैसे सकैं हैं? संसारी-मूर्ख लोग तो आठ पहर चौसठ घड़ी, अनेक प्रकार की चिन्तान में ही ग्रसित रहैं है, और नित्यबिहार के साँचे उपासक श्रीबिहारीदास श्रीस्वामी जू महाराज के अगाध सुख-समुद्र में सतत निमग्न रह्यौ करैं हैं।

खान पान के स्वाद सों, बाँध्यौ सब संसार।
श्रीबिहारीदास संतोष मन, हृदय भजन बिहार ॥३०३॥

खाँन पाँन के स्वाद सौं, भजन भावना दूरि।
श्रीबिहारीदास विहार बिनु, सबै स्वाद में धूरि ॥३०४॥

जो लोग खानपान के स्वाद लैबेवारे हैं बिनते तो भजन की भावना बहुत दूर रहै है। याते श्रीबिहारीदास नित्यबिहार रस-स्वाद के अतिरिक्त यावत स्वादन पै धूर डारि दै हैं।

श्रीबिहारीदास प्रसाद बिनु, और न उदर समाइ।
ताहू में घटि कौर द्वै, को अजवाइन खाइ ॥३०५॥

श्रीबिहारीदास तो महाप्रसाद के अतिरिक्त और कोई बस्तु पावैं ही नाँइ हैं, ताहू में दो ग्रास कम ही पावैं हैं, जासों हाजमा की चिन्ता हू नाँइ करनी परै है।

जिहि रोक्यौ सोई खसम, बडे पेट गढ कोट।
कै मेवा मिश्री भरौ, कै राख लपेटे रोट ॥३०६॥

जा वस्तु ने तुम्हारे मन कूँ रोकि राख्यो है ताही को तुमने अपनो खसम समझनो चहिये। तामें सबते प्रधान किला सदृस ये तुम्हारो पेट है, कितेक हू स्वादिष्ट पदार्थन ते याकूँ भरो किन्तु खाली ही बन्यौ रहै है। याते चाहे तुम याकूँ मेवा-मिश्रीन ते भरो, चाहे राख लपेटे रोटन ते।

उदर भार लौं झौंकियै, राख बढै कै रोग।
राख कढै बाढै अगनि, तौ कीजै भोजन भोग ॥३०७॥

भरभूजा के भार की नाँई तुम अपने पेट कूँ सतत भरते ही रहोगे तो, जैसे भार में राख अधिक होइबे ते अग्नि मन्द परि जाइ है, तैसे ही तुम्हारी हू अग्नि मंद है जाइगी और जैसे भार की राख निकारि दैवे ते अग्नि प्रज्ज्वलित है जाय है तैसे ही पेट साफ होइबे ते क्षुधा प्रज्ज्वलित है जाइ है। फिर तुम्हें भोजन अति स्वादिष्ट लगैगो।

संपति बिपति न जाँनई, सब दिन समै दुकाल।
भरी न निघटी पापिनी, खलक बिगोई खाल ॥३०८॥

यह पेट संपति-विपति काहू समय को बिचार नाँइ करिकें, सब दिन भूखो

ही बन्यौ रहै है, याते ये पापी पेट न तो आज ताऊँ भरयौ ही और न खाली ही भयो। यावत संसार की याने ऐसे ही दुर्दसा करि राखी है।

बाइ अगनि जल अन्न कौ, इनकौ एकै संग।
चौथे अंस अहार दे, भजि अनुराग अभंग ॥३०९॥

भोजन करते समय या बात को पूरो बिचार रखनो चहिये कि–जल, अन्न, बायु, अग्नि चारों भाग बराबर के ही रहैं। याते अन्न-छुधा के चौथे भाग को ही एक समय में पावनो चहिये, जाते तुम अभंग अनुराग सों अपनो भजन करि सकोगे।

धवत रहै इक स्वास ही, छिरकत कुची लुहार।
न बरत देत न बुझिन देत, अहरन गढै घनसार ॥३१०॥

जैसे सोनी लोग सोना कूँ तपाते समय न तो आँच कूँ ज्यादा ही बरन देवैं हैं और न बुझन ही देवैं हैं, ऐसे ही भोजन करते समय तुम ख्याल राखो कि–इतेक तो ज्यादा न पायो जाइ, जाते भूख मरि जाइ, और न इतेक कम ही पायो जाइ, जासों स्वास्थ्य बिगरि जाइ।

नाऊ न्यौंतन कौं फिरैं, बाँभन राँधैं भात।
श्रीबिारीदास परसाद बिन, कब काहू कै जात ॥३११॥

जगत में यह रीति है कि–ब्राह्मण के हाथ सों बनाये भये भोजन कूँ सब लोग सुद्ध समझि, सन्मानपूर्वक नाऊँ द्वारा निमंत्रण भेजैं हैं, किन्तु बिना श्रीभगवत प्रसाद, के भागवतजन कबहूँ-काहू के पाइबे नाँइ जाइ हैं।

भात पहिति कौं न्यौंतिये, मरन महोत्सव जाहि।
श्रीबिहारीदास चितवै नहीं, ताहि करमठ कौंवा खाँहि ॥३१२॥

जगत में मरन महोत्सव में दाल-भात को निमंत्रण लोग देवैं हैं किन्तु भागवतजन वाकै माऊँ दैखैं हू नाँइ हैं। केवल कमठी लोग ही ऐसे अन्न कूँ खायो करें हैं।

भक्ति करी सब जनम भरि, जग में भगत कहाँहि।
ताहि पिंड परसै नहीं, पूत प्रेत ह्वै खाँहि ॥३१३॥

जिन महानुभावन ने जीवन-पर्यन्त श्रीहरि की भक्ति कीनी हैं तथा संसार में

हू बिनकी भक्त करिके ख्याति भई है, ऐसे जनन कूँ पिंड-दान कबहूँ सपरस ही नाँइ करि सकैं है। पिंड-दान करिबेवारी संतान ने ही प्रेति बनिके वा पिंड कूँ खानो परै है।

बेद बिरोध न डरपईं, लोकहिं डरपै लोग।
पतित पाक करि प्रेत कौं, ताहि लगावत भोग ।।३१४।।

समिलत भक्त बुरे लगैं, बितु खरचत न खिस्यांहि।
पिंडु करटिहा लै गयौ, खीरैं कौवा खांहि ।।३१५।।

बेद ने जा बात की आज्ञा करि राखी है कि—श्रीभक्तजन पित्र लोक में कबहूँ जावैं ही नाँइ हैं, और श्रीभगवान दूसरों के निमित्त बनाई भई बस्तु कूँ, कवहूँ ग्रहन ही नाँइ करैं हैं, तौहू बहुत से लोग जगत में अपनी बदनामी नाँइ होइबे के ताँईं पित्रन के निमित्त बनाये भये, अन्न कूँ श्रीभगवान के भोग लगाए देवैं हैं। याते सम्मिलित भक्त हमने बहुत बुरे लगैं हैं। क्योंकि भक्तन की यावत संपति श्रीभगवत अर्पित होइ है, तापै ये लोग बा संपति कूँ पित्रन के निमित्त खर्च करते भये नेकहू नाँइ लजावैं हैं। इनको दियो भयो पिंड कूँ तो करिटिहा लें जाइ है, खीर कूँ कौआ खाइ जाँइ हैं।

जीवत सुत सेवै नहीं, मात पिताहि लडाय।
पानी में हूँ दुष्टई, अँगूठा मुए दिखाय ।।३१६।।

जब ताऊँ माता-पिता जगत में जीवित हैं, तब ताऊँ तो पुत्र ने कबहूँ लड़ाइ-लड़ाइ के सेवा कीनी नाँइ और मरिबे पै पानी देवे में हूँ बेर बेर अँगूठा दिखावै है। अर्थात जगत में जन्मदाता माता-पिता श्रीभगवान के सदृस पूज्य होइ हैं, मरिबे पै श्रीभगवत लोक प्राप्ति के ताईं उपाय नाँइ करिकें, बेटा सतत बिनकूँ पित्रलोक में ही पानी देवैं हैं।

बिनु अनन्य धनि कौ कहै, मुयो न जननी जाइ।
भक्त पिता कौं प्रेत करि, भाँडत मूँड मुंडाइ ।।३१७।।

अनन्य संतान के बिना परलोक एवं परमार्थिन में धन्य-धन्य कोऊ नाँइ कहैं हैं, ऐसी संतान के होइबे ते जन्मत खेम मरि जाइबो ही अच्छो हो। भक्ति ते विहीन संतान, अपने भक्त पिता कूँ हूँ प्रेत मानि, मुंड मुड़ाइ, बिनकी बदनामी करैं हैं।

पितर तजे डर खरिच कै, भये अनन्य पुकार।
जीवनि जाँचि न लाजहीं, अपनौं ऐब उघार ।।३१८।।

कुछ लोग अपने स्वार्थ के ताईं जगत के जीवन ते तो नाना प्रकार की यांचना करते भये लजावैं नाँइ हैं, और खर्च के डरतै, पित्रन के ताईं अनन्य बनि जाँइ हैं, ऐसे जन अनन्य नाँइ है कें, अपने ऐब कूँ ही चौरें करिके दिखावैं है।

इतहि भक्ति उत बँभनई, दुरुखे लोभी लोग।
तिनकें संग संसौ बढ्यौ, ज्यों विषम रोग मैं भोग ।।३१९।।

कछु दुरुखे लोभी लोग ऐसे होय हैं कि अपनो बाँभनपनो हूँ नाँइ छोड़िबो चाहैं, और भक्तिहू बनिबो चाहैं हैं। तिनके मन में सदाकाल या प्रकार को संसय बन्यौ रहै है, जैसे विषम रोग में भोगादिक को भोगनो।

पाँडे माटी मैं सनैं, करमठ निपट निकोर।
प्रेम पदारथ क्यौं गहैं, अरुझे लहै न छोर ।।३२०।।

जैसे पंडित निपट कोरे माटी सदृस कर्मादिकन में सनि के ऐसे अरुझे रहैं हैं कि जिनको कहूँ ओर छोर ही नाँइ मिलै है, फिर या प्रकार के कर्मठी लोग सर्वोच्च प्रेम पदारथ कूँ तो लहि ही कैसे सकैं हैं ?

पंडित पढि पढि पचि मरे, पढ्यौ न अछिर एक।
बोझ धरै सिर बादि हीं, उपज्यौ नहीं विवेक ।।३२१।।

पंडित जी पढ़िबे में पचि-पचि कें मर गये, किन्तु सर्वसारातिसार प्रेम को एक अक्षर हू नाँइ पढ़े, जासों साँची वस्तु को हृदय में कछु विवेक उपजतो। उल्टे-विधि-विधान को ही बोझ देकार मूंड पै धरि लीनो।

पंडित या रस तें बचे, ज्यौं बिझुकै मृग रोझ।
नवै न अचवन पावहीं, वेद लदैं सिर बोझ ।।३२२।।

समस्त निगमादिकन को सार सुद्ध अनन्य प्रेम रस उपासना रस सों पंडित लोग ऐसे दूर भाजि जाँइ हैं, जैसे हरे-भरे खेत में बिझुका कूँ देखि, मृगादिक भाजि जाँय हैं, कारन पंडितन के माथा पै बिधि-बिधान, बेदादिकन को बोझ इतेक लद्यौ रहै है कि, जासों वे प्रेम-भक्ति में भरि, दीन नाँइ है सकैं हैं, बिना दीनातिदीन प्रेम-भक्ति को आइबो ही कठिन है।

ओं नम पढि सब ही पढे, समझचौ ओर न छोर।
माया में अटके सबै, न्यारे कुँवर किसोर ।।३२३।।

पंडित जी ओम् नमः ते लैंके सबही परीक्षान में उत्तीर्ण भये, किन्तु भक्ति प्रेम रस को बिन्हें कहूँ ओर छोर हूँ नाँइ मिल्यो, कारण प्रेम–रस सिंधु स्वरूप कुँवर किसोर इन सब बिद्यान तें न्यारे हैं। किन्तु ये लोग याही माया में अटक रहैं हैं।

पाँडे पढि पाथर भये, लोढा भये कपूत।
श्रीविहारीदास हरिदास को, बिनहीं पढे सपूत ।।३२४।।

पंडित जी को तो हृदय पढ़ि पढ़ि कें, पत्थर सदृस इतेक कठोर बनि गयो है जो कि सरस कोमल प्रेम माधुरी काहू प्रकार ते इनके हृदय में प्रवेस हू नाँइ करि सकै है। ऐसे ही इनकी संतान लोढ़ा सहृस बिन्हीं सिद्धान्तन पर लकीर की फकीर हुयी रहै है। श्रीस्वामीजी महाराज के नित्यबिहारउपासक बिहारीदास बिना ही पढ़े ऐसे सपूत हैं, कि स्वयं श्रीविहारी-बिहारिनी जू इनसों प्रेम करि-करि कैं नाँइ अघावें है।

पौं पांडे पौं पोथरी, पौं पढिबौ पौं ग्यान।
श्रोता वक्ता पौं सबै, जिनि करी न भक्ति निदान ।।३२५।।

जिन लोगन ने पढ़ि, सुनि एवं समझि, बूझि, असेष-विसेषरूपतें भली भाँति भक्ति कूँ निदान करि कें अपने हृदय में धारन नाँइ कीनी, बिनकी पोथी, पढ़िबो, पंडिताई, ग्यान, श्रोता-बक्तापनों आदि सब बेकार ही है।

पोथी थोथी सब परी, कौंन उठावै भारु।
श्रीबिहारी बिहारिनिदास उर, लिखि लीनौ अछर सारु ।।३२६।।

नित्यबिहार रस उपासना तें बिहीन पोथी थोथी रहि जाइबे ते बिनकूँ भार उठाइबो बेकार है, तौहू तिनके कहे भये मार्गन पै विशुद्ध प्रेम-रस-बिहीन जन चलैं है। हमने वर्णाश्रम कर्म, ज्ञान, विधि, विधान, श्रीभगवद् भक्ति आदि समस्त रस–धर्म, साधन, फलन के हू सारातिसार फल स्वरूप सर्वोपरि-श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनि एवं श्रीस्वामीजी महाराज के नामरूपी अक्षरन कूँ अपने हृदय में भलीभांति अंकित करि लीन्यो है, जासों अब हम काहू पोथी-प्रमान एवं और-और धर्मन की आवश्कता ही नाँइ राखैं हैं।

पौं साहिब पौं साहिबी, पौं लसकर पौं देस।
तोप नगारौ पौं सबै, बिनु हरिदास भदेस ।।३२७।।
पौं मुकदम पौं मुकदमीं, पौं बिसवा पौं बास।
पौं ममिता अहंकार पौं, बिनु भयें बिहारीदास ।।३२८।।
पौं गढवै पौं गढपती, पौं पढिबो पौं राज।
आव घटत जानी न सठ, यौं हठ कियौ अकाज ।।३२९।।

आप बोले कि हे भाई ! अद्भुत प्रभावसाली दुर्लभ-मानव देह कूँ पाइ श्रीनित्य बिहार के उपासक होइ, श्रीस्वामीजू महाराज को भजन किये बिना जगत में कितेक हू बड़े साहिब बनि जाओ, और साहिबी-स्वरूप बड़े-बड़े देस, लस्कर, तोपनगारे आदि कितेक ही क्यों न होइ, सब बेकार हैं, ऐसे ही कितेक बड़े मुकदम, मुकदमी एवं बिश्वेदार है जाओ, तथा जगत में ममता अंहकार करि, अनेक गढ़न के गढ़पति हैकें राज्य करि लेवो, ऐसे ही कितेक हू पढ़ि-सुनि लेवो, इन बातन में परि, मूर्खलोग अपने जन्म कूँ यों हीं खोइ देवैं है।

ठूँसि तुपक बपुरा भरीं, मारचौ बोल बजाइ।
श्रीबिहारीदास उतकी लगी, फिस गई पलीता खाइ ।।३३०।।

जैसे जगत में कोऊ अनजान वापुरौ अपने तोप कूँ ठूँसि ठूँसि कें भरि, ठीक बोलि के निसाना पै चलावै है, किन्तु पलीता चूकि जाइबे पै, स्वयं कूँ ही वो घातक है जाइ है। ऐसे ही छुद्र बुद्धिबारे मानव, श्रीभक्ति महारानी ते बिहीन कार्यन में बड़ी तत्परता एवं साहस द्वारा बिनकूँ करैं हैं, किन्तु वे कार्य-विनकूँ ही घातक है जाँइ है। अर्थात वे कर्म उल्टे बंधन में डारि देवैं हैं।

रज छाँडै रज पाइयै, रज राखैं रज जाइ।
रज सौं रजहि पिछाँटि लै, रज सौं रसिक कहाइ ।।३३१।।

रजोगुनी बेष-भूषा एवं आचरनन कूँ छाड़िबे ते ही श्रीनित्यबिहारिणी जू के चरन कमलन की रज या श्रीवृन्दावन के अद्भुत प्रताप एवं रसस्वरूप कूं समझि सकोगे। यदि तुम रजोगुन राखे ही रहोगे तो रज को भाव तुम्हारे हृदय में प्रवेश नाँइ करि सकैगो। याते जैसे धोबी कपड़ा पछाँटि-पछाँटि के सब मैल छुड़ाइ देवै है, तैसे ही तुम रज लगाइ–लगाइ कें रजोगुन कूँ दूर करि देवो, तब रज के प्रभाव ते रस कूँ सुनि समझि, रसिक कहाइबे लगि जाओगे।

नस्वर रज लगि जूझई, नस्वर पूत कहाइ ।
श्रीबृन्दाबन सेये रहैं, सो रज माँहि समाइ ।।३३२।।

नासवान धन बेटान के ताईं जगत में लोग मरे जाँइ हैं, जो कैसे हू अपने नाँइ है सकैं हैं। जो लोग समस्त आपद–विपद् एवं दुःख द्वन्दन कूँ सहि कें हू श्रीवृन्दावन कूँ सेये रहैं हैं तिन ही बड़भागी जनन के हृदय में रज को भाव आवै है।

जा रज सौं जग रज कहै, सो रज कज है जाइ ।
साँची रजहि न सेवहीं, श्रीबृन्दाबन आइ ।।३३३।।

जगत में लोग साँचों प्रेमधन स्वरूप श्रीवृन्दावन रज कूँ तो तन-मन-प्रान सों सेवैं नाँइ हैं, और नासवान धन कूँ अपनों मानैं है, जो कि एक दिन निश्चय ही खाक है जायगो।

चारि चरण नृत्तत जहाँ, तहाँ न आनँद अंत ।
सवै काँमना पूरिहैं, मेरे काँमिनि कंत ।।३३४।।

जा श्रीवृन्दावन के लता-द्रुम, पसु-पक्षी, श्रीजमुनाजी आदि यावत संपत्ति निज रसरीति सौं भरी-पुरीं सहज सुसोभित रहैं हैं, जिनकूँ देखि देखि दोऊ श्रीजुगल अनुराग में भरि उमँगि-उमँगि, जावक सों रंजित सुकोमल चरनारबिंदन तें नृत्य करैं हैं, ऐसो अद्भुत श्रीवृन्दावन में आनन्द को कोऊ अंत ही नाँइ है। तामें अनन्य भाव ते अखंड बास करिबेबारे जनन के समस्त मनोरथन कूँ हमारे श्रीविहारी-विहारिनीजू स्वयं ही पूर्ण करि देवैं हैं।

समझ्यौ अनसमझ्यौ भयौ, साधन बिना सुहेत ।
श्रीबिहारीदास करनी करै, तौ कोइला राते सेत ।।३३५।।
तृनहि कुल्हारु न काटई, त्रनु काटै पाषानु ।
श्रीबिहारीदास साधन बिनाँ,सिद्ध होइ क्यों ज्ञान ।।३३६।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीवृन्दाबन में अखंड बास करते भये हमें इतेक समय है गयो, किन्तु आज ताऊँ सुख सों नेक हू भेंट नाँइ भई, ताको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि– हे भाई ! यदि तुम प्रेम सों साधन नाँइ करोगे तो ऊँची ते ऊँची वस्तु हू समझी भई अनसमझी है जाइ है। बिना साधन किये तुम्हारो कोऊ हित-प्रेम, बिनते हो ही नाँइ सकैगो। मानो साधक ने प्रार्थना कीनी कि– हे महाराज ! हमारे मन, बुद्धि एवं आचरन ऐसे—मलिन है रहैं हैं, जासों साधन करिबे की मन में

रुचि ही नाँइ उपजै है, तापै आपने कह्यो कि– जैसे कोयला भीतर बाहर समस्त प्रकार ते कारो ही कारो होइ है, किन्तु वो हू जलाते - जलाते स्वेत है जाइ है, तैसे ही समस्त रीति भांति सों अतिमलीन कोयला सदृश साधक हू, साधन करते-करते उज्ज्वल प्रेम स्वरूप है जाइ है। याही प्रसंग कूँ और हू समझाते भये आपने कह्यौ कि जैसे रुई इतेक कोमल होइ है कि जाकूँ कुठार हू नाँइ काटि सकै है, किन्तु वाही रुई की रस्सी द्वारा, क्रम क्रम सों पाषाण हू कटि जाइ हैं, याही प्रकार जैसे बनै, तैसे प्रेम के साधनन में ही लगो, तासों क्रम-क्रमते सुन्यों-समझ्यो तुम्हारो ग्यान सब सफल है जायगो।

दिष्टि होत दिष्टांत तैं, होत प्रतछि प्रमांन।
श्रीबिहारीदास संसै नहीं, अनभौ अछर ग्यांन ।।३३७।।

जैसे दृष्टान्तसे बस्तु को स्वरूप हृदय में दर्सन लगै है, और प्रमानन ते प्रत्यक्ष सदृस है जाइ है, याही भाँति अनुभव करिके देखि लेउ, जासों तुम्हारे समस्त संसय दूर है कै वस्तु दरसन लगैगी।

करत अवग्या सुनि कथा, माथें धरि अपराध।
श्रीबिहारीदास अनुगत भले, सुनें अनसुनें साध ।।३३८।।

जो लोग कथा में सुनि के हूँ तदनुसार आचरन नाँइ करें हैं, वे कथा की अवज्ञारूपी अपराध के भागी है जांइ हैं, और जो श्रीबिहारीजी महाराज की सांची सरन जाइ कें, बिहारीदास है गये हैं, बे कछु सुनैं चाहे नाँइ सुनें, समस्त रीति भांति सों वे श्रीबिहारी जी महाराज के है गये हैं।

कहा आरस कहा पौरषै, कहत बात बे सूल।
पैंडौ मारचौ भजन कौ, भगति करैं निरमूल ।।३३९।।

यदि कोऊ ये संसय उठावै कि बिना आरष-पौरषन के सुने-समझे भक्ति के स्वरूप कूँ ही कैसे कोऊ समझि सकै है, तापै आपने कह्यौ कि आरष-पौरुषन ने तो बिसुद्ध भक्ति-विरोधी बेसूल बातें ही कहि, भजन के मार्ग कूँ बिगारि, परमोज्जवल भक्ति के पथ कूँ ही निर्मूल करि दीनो है। अर्थात समस्त आरष-पौरषन ने कर्मकांड मिश्रित श्रीभक्ति महारानी के साधनन कूँ हूँ विधी-विधान के आधीन एवं महातम मिलाय कें वर्नन कीनें हैं।

विद्यमाँन दरसन नहीं, पिछली अग्या मेंटि।
दृष्टि न आरस पौरषै, भटकत भई न भेंटि ॥३४०॥
को जानैं कासों कह्यौ, कबहूँ काहू रीति।
श्रीबिहारीदास हरिदास की, अग्या माहि परतीति ॥३४१॥

हे बिहारीदास ! अति विसुद्ध पूर्णतम प्रेमरस-देस को नित्यबिहारि यद्यपि अनादिकाल ते विद्यमान है, किन्तु आरष-पौरषन कूँ प्रेममय दृष्टि नाँइ होइबे के कारन, बिनकूँ दीख्यौ नाँइ। हमने भलीभाँति शास्त्रन कूँ छानि-ताइ कें देख्यौ, विसुद्ध प्रेमरस बिहार की कहूँ भेट हू नाँइ भई। एक ये हू बात बिचारिबे की है कि शास्त्रन ने कहा ! अभिप्राय तें कौन से समय में, किनके ताईं कह्यौ है, ये हू ठीक-ठीक मालूम नाँइ परैं है। याते पिछली आज्ञा प्रमानन कूँ तुम अपने मन ते भली भांति मिटाइ देउ। एकमात्र नित्यबिहार-रस-दान देवै के ताईं ही निजमहल तें श्रीस्वामीजी महाराज प्रगट होइ, जो आज्ञा कीनी हैं वाही में हमारो पूर्न विश्वास है, याते अधिक प्रमाणिक बात कोऊ कैसे हू नाँइ है सकै है।

श्रीबिहारीदास साँची कहै, काची कहै न राखि।
पातिसाह के महल की, घासिनि पूछै साखि ॥३४२॥

हे बिहारीदास ! कछु दुराइ के काँची बात कहिबो तो हम जानैं ही नाँइ हैं। साँची बात तो यह है कि—जैसे कोऊ चक्रवर्ती महाराज के निज महल की बातन को प्रमान, कोई घास खोदिबेवारी पूछै ? तैसे ही बिधि-निषेध-आग्रहिन कूँ सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के महल की बातन को प्रमान पूछिबो है।

जाकैं तेज सबै तपैं, मन मैले मरि जाँहि।
अँखियारे सूझै नहीं, अंधे को पतियाहि ॥३४३॥

जा अति अगाध, अद्भुत, विशुद्ध पूर्णतम प्रेममय नित्यबिहार के प्रताप ते ही यावत भगवान, महाबिचित्र तेजस्वी स्वरूप सों निरंतर तप रहै हैं, वा प्रेम को नेक आभास आइबे ते मायिक जीवन के हू मन के मैल भस्म है जाइ हैं, ऐसो सर्वोच्च प्रेम को स्वरूप जब निगमादिकन कूँ हूँ नाँइ सूझै है, तब अंधेन सदृस अज्ञानिन कूँ तो बिस्वास ही कौन करै ?

अदल बदल अकबर करै, सिरकार करै हरि साल।
बाँको गाँसिन को लहै, बन बिहरनि के ख्याल ॥३४४॥

चक्रवर्ती सम्राट सहज सुभाव ही अपने मंत्रिमंडल कूँ बराबर अदल-बदल करतो रहै है, जब बिनकी ही विधान-व्यवस्था समझ में नाँइ आइ सकै है, तब श्रीवृन्दावन नव निकुंज मंदिर के सर्वोपरि प्रेम रस-विलासी अनोखे लाड़िले हमारे श्रीजुगल के बन बिहार रूपी ख्यालन की बांकी गाँसन कूँ कोऊ समझि ही कैसे सकै है। याते निगमादिकन के प्रमानन की तहाँ पहुँच हो ही कैसे सकै है ?

श्रीबिहारीदास दृष्टांत यह, घासी दीजै राज।
वह डरपै बेगार तैं, घर में भाजाभाज ॥३४५॥

या साखी के विषय में ऐसी कहावत प्रचलित है कि–संतान बिहीन काहू राजा ने मृत्यु के समय अपने मंत्रिन ते आज्ञा कीनी कि-नगर के बाहर सबते पहिले जो तुम्हें मिलि जाइ, वाही कूँ राजगद्दी पै बिठाइ दीजो। मंत्री आज्ञानुसार बड़े भोर, नगर ते बाहर जाइ, सबते पहिले एक घास खोदिबेबारे कूँ देख्यौ, जैसे ही वाकूँ लैबे के ताईं मंत्री आगे बढ़े, वानें सोची-मोकूँ बेगार में पकरि के ये लोग लै जाँयेंगे। अपनी खुरपा-रस्सी को उठाइ घर के माऊँ भाजन लग्यौ। तैसे ही विधि-निषेध, आग्रही जन नित्यबिहार उपासना कूँ सुनि अपनी विधी-विधान कर्मन कूँ बिगरते देख, प्रायश्चित के भय ते हमारी बात कूँ बिना ही भली भांति सोचे-समझे अपने कर्मादिकन में और हू श्रद्धा ते लगै हैं।

लेवा-देई खत लिखैं, संसै भजैं बिहार।
दोऊ खोटे जानियें, परमारथ व्यौहार ॥३४६॥

जैसे बिना विश्वास के कारन, लोग लेन-देन में लिखा-पढ़ी करावैं हैं, तैसे ही बिना विस्वास जाति, वर्ण, कर्म, धर्म, आदिकन को मन में संसय राखि कें नित्यबिहार कूँ भजे हैं ऐसे परमार्थी एवं व्यवहारी दोऊन कूँ ही खोटे समझनो चहिये।

कमरी कुलच न सोहई, बाँडे और पुछहार।
ताजी लाजै पाखरै, जहाँ उरक सिरदार ॥३४७॥

जैसे लम्बी चाल ते चलिबेवारो कमरी घोड़ा, और उछलि-उछलि के चलिबेवारो कुलच, इन दोऊन को जोड़ नाँइ मिलै हैं, तैसे ही एक पूँछवारो और दूसरो बाँडो, इनकी जोरी नाँइ प.बै है याही भाँति नित्यबिहार उपासना में और और धर्मन को मिलाइवो नाँइ प.बै है। जैसे बहुमूल्य उच्च जाति के ताजी घोड़ा पै खच्चर की पाखर डारि दियो जाय तो, वह घोड़ा हू अपने कूँ लज्जित मानै है। या बात कूँ

घोड़ा के गुन स्वरूप एवं सुभाउ के जानकार तुरक सिरदार लोग ही समझें हैं। तैसे ही या महामधुर सार रस में और-और तुच्छ धर्मन के मिलाइबे ते नित्यबिहार अनन्य धर्म अपने कूं लज्जित मानै है, या बात कूँ रस के मर्मी रसिक अनन्य ही समझि सकें हैं।

चढे न कुँवर कुलच पर, गरे बाँधि गजि गाह।
लागै धक्का उखटि परै, दमका बूडे साहि ।।३४८।।

मानो कोई ऐसो साधक आपके पास आयो–जाको मन संसार एवं परमार्थ दोनों में ही आकर्षित हो, ताको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि हे बेटा! तुम कभी कुलच घोड़ा पै हू नाँइ चढ़े हो, ताहू पै तुमने अपने गला ते गज स्वरूप और-और परमार्थ एवं ग्राह स्वरूप संसार बाँधि राख्यौ है। नित्यबिहार स्वरूप ताजी घोड़ा पै चढ़नो चाहो हो, एक धक्का में ही दम-सुस्क होइ उखटि कें तुम गिर जावोगे।

लंगर मेलि चलाइयै, दोऊ भूली चाल।
इतहि गाँव न उत ऐबिया, समिलित भक्त बिहाल ।।३४६।।

जैसे घोड़ा कूँ लंगर मेलि के चलाइबे ते वह देसी और अरबी दोऊ चालन कूँ भूलि जाइ है, तैसे ही बिसुद्ध भक्ति में कर्म-धर्म मिलाइके चलिबेबारे सम्मिलित भक्त बेहाल रहैं हैं।

सहज सिखाएं नाचनैं, सहज चलै रौहाल।
चालाकी छोटी खुरी, साहिब करै निहाल ।।३५०।।

जैसे कोई-कोई घोड़ा ऐसे सुन्दर जाति को होइ है कि वो सहज सुभाव नाचतो भयो सो चलै है। कबहूँ रोहाल चाल चलै है, कबहूँ-कबहूँ अति निपुनता ते छोटी खुरी की चाल चलै है, जाकूँ देखि मालिक अति रीझ जाइ है। ऐसे ही कोऊ-कोऊ साधक प्रेम-प्रीति के प्रकृति को ऐसो होइ है, जो ऊँची ते ऊँची प्रेम रस देस की बात बताओ, तो सुनत खेम वाके हृदय में ऐसी बैठि जाइ है, जो कि सहज सुभाउ बड़ी उमंग-अनुराग, चोज-चाव ते भजतो भयो अपने इष्ट को सहजअनन्य है जाइ है, जाकूँ देखि इष्ट-गुरु-संत सबही प्रसन्न है जाइ हैं।

नख सिख सुंदर सकल गुन लोभ कलंकहि लाग।
सबै बिगारी कुँवरई, ज्यौं धौरो ठोडी दाग ।।३५१।।

जैसे अति सुन्दर कुंवर के ठोढ़ी पै धोरो दाग होइबे ते वाकी सुन्दरता बिगरि

जाइ है, तैसें ही साधक के सील, सुभाउ बोलन-चलन, विद्वत्ता आदि सभी सुन्दर गुण है, तौहू मन में लोभ होइबे तें वाके सब गुन बिगरि जाँय हैं।

श्रीबिहारीदास गरुवौ जदपि, अति हरुवौ है जात।
ज्यौं ससि बासर सूर घर, मनहुँ पुरानैं पात ।।३५२।।
जाकौ दास कहाइयै, ताही को करि आस।
जाकें द्वारें जाइगौ, ताकै आस पचास ।।३५३।।

जैसे सुधा-सरोवर सुन्दरता की रासि चन्द्रमा सूर्य के घर में पुराने पत्ता सदृस दीखन लगें है, तैसें ही समस्त उपासकन को चूड़ामनि, सर्वोपरि नित्यबिहार को उपासक दूसरे धर्मीन के यहाँ जाइबे पै अति हरुवो दीखन लगें है। याते हे भाई! जाके तुम दास कहावो हो, एकमात्र ताही की ही सदाकाल आसा-भरोसा एवं विश्वास राखो क्योंकि अपने मन में आसा लगाइकें, जा काहू के द्वार पै तुम जाओगे, वाके हू मन में पचास ठौरन की स्वयं आसा लगी भई मिलेगी, तब तुम्हें वो अनन्य धर्म को उपदेस ही कैसे दै सकैगो ?

आवत जात भरमु बढ्यौ, गई प्रीत परतीति।
इत पैसा उत प्रेम बिनु, क्यौं करै स्याँम समीति ।।३५४।।

जैसे जगत में बिना प्रेम के काहू पैसावारे के पास बेरबेर आइबे-जाइबेते वाके मन में भ्रम है जाइ है, भ्रम होइबे ते विस्वास हू नाँइ रहै है, तैसे ही श्रीबिहारी जी महाराज हू प्रेम-बिहीन व्यक्ति कूँ अपनौ मानैं ही नाँइ है, अर्थात सब ठौर एकमात्र प्रेम ते ही अपनाइस विस्वास होइ है।

जे पैसनि माँनत भलौ, तिन तैं प्रेम है दूर।
पैसा साकत भूत के, खात परै मुँह धूर ।।३५५।।

जो लोग पैसान में महत्व बुद्धि राखै हैं, बिनते प्रेम बहुत दूर रहै है। पैसा सों तो एकमात्र बहिर्मुख जीव ही अपने मन में फूल्यौ करै है, जाके प्राप्त होत खेम बिनके हृदय में अनेक प्रकार तें विषयन के साज सजि जाइ है।

पैसनि कौं मंदिर किये, पैसनि कौं बडी पौरि।
आवत जात्री और के, लेत बीचहिं दौरि ।।३५६।।

बहुत से लोग मंदिर देवालय हू या विचार ते बनावैं हैं कि भेंट-पूजा की आमदनी है जायगी। बड़ी बड़ी पौरी याही उद्देश्य ते बनावैं हैं कि यात्री लोगन के

ठहिरबे ते पैसा प्राप्त होतो रहेगो। पैसान के पीछे लोग इतेक हू करैं है कि दूसरेन के यात्रीन कूँ उल्टी-सीधी बात कहि-सुनिके अपने यहाँ लै आवैं हैं।

पैसा परमेसुर भए, परमेस्वर ते बाढि।
पूजा करी न भावई, पैसनि ही की डाढि ॥३५७॥

अधिकतर लोगन कूँ पैसा परमेश्वर सदृस दीखै है, इतनो हीं नांइ परमेश्वर ते हू पैसान को अधिक मानैं हैं, परमेश्वर की पूजा करिबे में तो बिनको मन लगै नांइ है। एकमात्र पैसावारेन के माऊँ देख्यौ करैं हैं।

पैसनि कौं घर बन बसे, पैसन कौं परदेस।
पैसनि कौं सेवक करैं, पैसनि कौं गुरु उपदेस ॥३५८॥

पैसान के ही मोह में फँसि, घर कूँ नाँइ त्यागैं है। पैसान की ही प्राप्ति के ताईं बन में जाइ बसैं है। पैसान के उद्देश्य ते ही परदेस जाइ हैं। पैसान के हीं ताईं गुरु बनि कें उपदेस दैन लगैं हैं।

रोगी खायौ रोग चपि, भूखौ खाइ दुभीख।
श्रीबिहारीदास परसाद लै, श्रीहरिदास की सीख ॥३५९॥

अनप्रसादी बस्तु कूँ रोगी लोग रोग ते चँपि के खाय लेवैं हैं। भूखो भूख ते विवस होइ कें, किन्तु हमारे श्रीस्वामी जू महाराज की आज्ञा है कि श्रीबिहारी दासन ने बिना प्रसादी वस्तु के, कछु नांइ ग्रहन करनो चहिये।

क्यौंना पहिरैं खाट पर, पाँडे माँगे भातु।
रोग बडौ परसाद तैं, अनहीं न्हायै खातु ॥३६०॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि–पंडित लोग स्नान करिबे केबाद ही भोजन करिबे की विधी बतावैं, तापै आपने कह्यौ कि–रोग ग्रसित होइबे पै, स्वयं पंडित जी हू बस्त्र पहिरे खाट पै ही बैठे-बैठे भात खायो करैं हैं, किन्तु वे लोग प्रसाद पाइबे में ही अनेक विचार करैं हैं। याते यह स्पष्ट होय है, कि श्रीभगवत प्रसाद ते हूँ रोग कूँ बड़ो मानैं हैं।

श्रीपति के परसाद कौं, पाँडे लेत अन्हाइ।
जामाँ पहिरैं मुगल कौं, पहरि पतित इतराइ ॥३६१॥

साक्षात श्रीभगवत प्रसाद कूँ पंडित जी बिना स्नान किये लैबे में संकोच

करैं है। वेही पंडित जी मुगल के दरबार को जामा पहिरि, अपनो कूँ बड़ो आदमी समझि इतरावन लगै हैं।

श्रीबिहारीदास परसाद कौं, बाँभन बिमुख घिनाइ।
ब्रह्मा झूठे पात कौं, बिनु पायें पछिताइ ॥३६२॥

हे बिहारीदास ! बिमुख ब्राह्मन साक्षात श्री भगवत प्रसाद कूँ लेबे में तो एक प्रकार ते घृना करैं हैं कि कौन जाति ने बनायौ है, दैवैबारेन की कौन सी जाति है, सखरो है या निखरो है आदि—आदि। समस्त ब्राह्मणन के पितामह साक्षात श्रीब्रह्माजी श्रीठाकुर जी के ग्वाल बालन की सीत प्रसादी के ताईं, आज ताऊँ पछितावैं ही हैं।

बूडे बहुत बडाइयाँ, मझरैंडे आचार।
कोऊ नाही प्रेम बिनु, अपरस छानैं छार ॥३६३॥
काम न आवै कौंनहूँ, अति अपरस आचार।
अंत निबाहै प्रेम हीं, जब छाँडे खाट कौ द्वार ॥३६४॥

ऐसें ही बहुत लोग बड़ी जाति के बड़प्पन में एवं बहुत से आचार-विचार में ही डूब गये। कछु ऐसे हू होइ हैं, जो कि जन्म भर अपरस-सपरस में ही अरुझे रहैं हैं, किन्तु श्रीभगवत् चरनारविंद में साँचे प्रेम-अनुराग के बिना, माया सागर ते ये सब कोऊ पार नाँय लै जाँय सकैं हैं। मृत्यु के समय खाट छोड़ि के जब जीव चलिबे लगै है वा समय एकमात्र श्रीभगवत प्रेम ही काम देवै है।

श्रीबिहारीदास ब्रज में बसत, मिले सपरसी स्याँम।
परस न पावै प्रेम बिनु, अपरस दुखी सकाँम ॥३६५॥

प्रेमधाम श्रीब्रजमंडल में बसिबे ते एकमात्र प्रेमीन ते ही सपरस करिबे-वारे श्रीबिहारी जी महाराज हमें मिले। अपरस—सपरस के विचार में अरुझे रहिबे-वारे सकामी जनन ते आप सतत दूर रहैं हैं, ताते वे दुखी ही बने रहैं हैं।

बहुत द्यौस अपरस रह्यौ, हरि बिनु प्रेम उदास।
दियौ प्रसाद प्रसन्न ह्वै, अँग संग बिहारिनिदास ॥३६६॥

हमहूँ प्रेम के विना बहुत दिन श्रीबिहारीजी महाराज सों अपरस रहिबे के कारन उदास रहै। जब श्रीस्वामी जी महाराज ने प्रसन्न होइ, कृपा करि ऐसो सर्वोपरि प्रेम रूपी प्रसाद हमें दीनौं, जासों सतत आपके अंग-संग, प्रेम—सुख में हम डूबे रहैं हैं।

बहुत द्यौस सुमिरन कियौ, इह उझकनि उनहारि।
पूरौ प्रेम प्रगट भयौ, भेट्यौ भरि अँकवारि ।।३६७।।

हे भाई ! बहुत दिन या उझकनि-उनिहार की बिचित्र बाँकी-झाँकी को हमने सुमिरन कीन्यौ, जब सांचो पूरो प्रेम उदय है गयो, तवहीं श्रीजुगल ने हमारी अंक भरि लीनी।

सेवा करत निकट रहत, मन में दुरी दुरास।
श्रीबिहारीदास क्यौं ऊपजै, भक्ति बिना विस्वास ।।३६८।।
भोजन भोग लियैं फिरैं, इत उत धावा धाव।
ए प्यासे रस माधुरी, पीवत प्यावा प्याव ।।३६९।।

हे बिहारीदास ! मनमें जागतिक वासना एवं दुरासान कूँ छुपाये भये, यदि श्रीबिहारीजी महाराज के अति निकट रहिकें, सेवा हू करते रहो तौहू बिना बिस्वास कछु नाँइ है सकै है। तामें हमारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू तो एकमात्र सर्वोपरि प्रेम-रस माधुरी के ही ऐसे अद्भुत प्यासे हैं, जोकि रात-दिन सतत पीमते भये हू अति प्यासेन की नाँई इनके हृदय-कमल में प्याव-प्याव की ही रट लगी रहै है। निज रस-रीतिमय स्वरूप कूँ नाँइ समझिबे के कारन साधारन प्रेम-भक्तिवारे भोजन भोग के थारन कूँ ही लियें-बड़े अनुराग ते धाइ-धाइ कै आरोगवाइबे में लगे रहें हैं।

आरति करत बिहार की, सब आरति बिसराइ।
आगि बारि आरति करैं, सेवत खसम खिजाइ ।।३७०।।

नित्यबिहार के अनन्य उपासक श्रीबिहारीदास तो इहलोक-परलोक के समस्त प्रकार की आर्तता कूँ बिसराइकें एकमात्र श्रीजुगल कूँ बिहार कराइबे के ताईं ही निरंतर आरत हुए रहें हैं। हमारे श्रीजुगल हू याही प्रेम आर्तता कूँ अपनी आरती मानैं हैं। जो लोग आग बारि कें इनकी आरती उतारैं हैं, बिनकूँ तो ऐसो समझनो चहिये, जैसे कोई स्त्री अपने खसम कूँ खिझाइ-खिझाइ के सेवै है।

जप तप संजम नेम ब्रत, धुंध जपै सब लोइ।
एक प्रकृति जो साधिये, तो पीउ आपु बस होइ ।।३७१।।
पिय की प्रकृति न समझई, सेवा को अभिमान।
आराधनैं बिरोधनैं, सबै सयान अयान ।।३७२।।

जप, तप, संयम, नेम, ब्रत द्वारा सब लोग बिना समझे ही अंधाधुंध रीति सों श्रीजुगल कूँ सेवैं हैं, यदि इष्ट के सुभाउ कूँ समझि कें ताही अनुसार प्रेम सों सेवैं, तो प्रीतम स्वयं ही सहज बस है जाइ है। जो जन इष्ट की प्रकृति कूँ न तो समझैं ही हैं, और न समझिबे की चेष्टा ही करें हैं, अपने मनमानी सेवा करि-करि कें सेवकपने को अभिमान राखें है। बिनको आराधन हमारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के सुभाउ के बिपरीत होइबे ते सब सयानपन अयानपनो ही है।

बातें कहत बिहार की, गरें परचौ जंजाल।
महल टहल तैं जाँनियै, कहा बजायें गाल ॥३७३॥

कुछ जन बातें तो नित्यबिहार की करें हैं, और हृदय में व्यवहार तथा परमार्थन के अनेक जंजाल भरे रहें हैं। मैं तुमसों कहूँ हूँ–महल की टहल करिबे ते ही नित्यबिहार को स्वरूप हृदय में आइ सकै है, केवल गाल बजाइबे ते कछू नाँइ होइगो।

नेष्टा गर बंधन भये, मझरेंडे आचार।
बिधि निसेध नख सिख भरे, तिनतैं दुरचौ बिहार ॥३७४॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि–जब साधक केवल नित्यबिहार की ही बात कहै है, तब और-और जंजाल बाके हृदय में क्यों रहेंगे ? तापै आपको कथन है कि–हे भाई ! और-और बातन की निष्ठा हृदय में रहिबे पै, वह निष्ठा ही वाके गला को बंधन है जाइ है। काहू को मन आचार-बिचार में ही ऐसो फँसि जाइ है, कि वही बाको इष्ट स्वरूप बनि जाइ है। जो नख ते सिख पर्यन्त बिधि-निषेध ते ही भरे भये हैं, तिनते तो नित्यबिहार स्वयं ही दूर रहै है।

कोउ नेष्टा नाम की, कोऊ नाँमी नेंम।
कोऊ रस बस रसिक कै, कोऊ लाडै प्रेम ॥३७५॥

काहू के बिना स्वरूप, सुख, संबंध बिचार किये ही केवल नाम रटिबे की निष्ठा होइ है, काहू के नामी के ध्यान की। कोऊ श्रीलालजू के ही रस के बस रहें हैं। कोऊ-कोऊ अति अद्‌भुत बड़भागी महतजन श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के नित्यबिहार प्रेम रस को ही लाड़-लड़ावें हैं।

निघटि जाइ सो न संग्रहौं, बिछुर जाइ सो न संग।
श्रीबिहारीदास नित निर्बहौं, हरि अनुराग अभंग ॥३७६॥

जो बस्तु खर्च करिबे ते निघटि जाइ, ताको हम संग्रह नाँइ करें हैं, और जो मिलि के बिछुरि जाइ वाको हम संग नाँइ करें हैं। याते एकमात्र श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के अभंग अनुराग कूँ ही हम सदाकाल निभावैं हैं।

जामैं मरैं न बीछुरैं, रूठै नँहि कहुँ जाइ।
श्रीबिहारीदास भयौ लाडिलौ, ता लाडिलीहिं लडाइ ॥३७७॥

सर्वोपरि नित्यबिहारिनी हमारी श्रीस्वामिनीजू न तो कहूँ प्रगट होइ हैं और न अन्तर्ध्यान ही होइ हैं, न कबहूँ रूठै ही हैं, और न एकान्त रस-विलास महल श्रीवृन्दावन ते कहूँ बाहर ही जाँइ हैं। ऐसी अति अद्भुत महानुराग आसक्ति एवं लाड़-प्यार की निज स्वरूपा अलकलड़ी लाड़िली कूँ मन भाँवतो लड़ाइ-लड़ाइ कें हम निरंतर लाड़िले हुए रहैं हैं।

लाल लडायैं लाडियैं, ललना सौं करि लाड।
श्रीबिहारीदास संसार के, और सकल सुख छाड ॥३७८॥

हे बिहारीदास! तुमहू संसार के समस्त सुखन कूँ भलीभाँति त्यागि, श्रीस्वामिनीजू के प्रानजीवन लाड़िले लाल कूँ लड़ाइ-लड़ाइ, प्यारीजू को लाड़ करो।

रिझाइ अति अवलंब प्रीतम फूल तन मन में बढ़ै।
नेम गहि निर्बाहि यह रस प्रेम प्यारी को पढ़ै॥ —श्रीगुरुदेवजू

भक्त बड़े बड़ जगत में, करत भक्ति धौं कौंन।
छाजन भोजन नीरस सबै, बिनु रस रीति अलौंन ॥३७९॥

यद्यपि जगत में भक्त तो बड़े-बड़े हैं, किन्तु हे बिहारीदास! वास्तविक भक्ति करि ही कौन रह्यौ है? कारन बिना रस-रीति के, भोजन-छाजन स्वरूप यावत भक्ति श्रीबिहारीजी महाराज कूँ अलौनी निरस मालूम परै है।

भक्ति बिदित सब जगत में, निरनैं कीनीं वेद।
का भगवंतै भजत हौ, कौन भाइ किंहि भेद ॥३८०॥

यद्यपि संसार में भक्ति की महिमा अनेक प्रकार ते विख्यात है, और वेदन ने हू बहुत रीतिभाँति सों भक्ति को निर्नय कीन्यौ है, किन्तु समस्त भक्तिन के स्वरूपन में भक्ति करिबेवारेन कूँ यह बिचारिवे की बात है कि—किन भगवत स्वरूप कूँ तो हम भजन करें हैं और कौन से भाव ते करें हैं, और बिन स्वरूपन के भजिबे के कहा कहा भेद हैं।

भक्ति साधारन जगत में, छाजन भोजन भार।
श्रीबिहारीदास बिरले कहूँ, स्वादी सूर संसार ॥३८१॥

साधारनतया जगत में भोजन-छाजन के भाववारे भक्त ही प्रायः मिलें हैं। रस-रीति के मर्मी स्वादी सूरबीर अनन्य श्रीबिहारीदास बिरले ही कहूँ-कहूँ होइ हैं।

भक्ति साधारन जगत में, हरि कीनों सिष्टाचार।
श्रीबिहारीदास हरिदास कैं, इक रस बैस बिहार ॥३८२॥

साक्षात श्रीहरि ने जगत में अवतार लै-लैकें सृष्टि आचरन अनुसार अनेक प्रकार की भक्ति एवं रसन को विस्तार कीन्यौ है। साधारनतया भक्त प्रायः उन्हीं के आचरन अनुसार भक्ति करैं हैं। हमारे श्रीस्वामीजू महाराज के अनादिकाल ते इकरसबैस को सर्वोपरि नित्यबिहार ही है, जाकी अनन्य उपासना एकमात्र नित्यबिहार के सेवी श्रीबिहारीदास ही करैं हैं।

साधारन भक्तो भली, बरनाश्रम कैं त्रास।
रसिक अनन्य कहाइबो, बाउ बिहारीदास ॥३८३॥

बरनाश्रम के दुखन ते तो श्रीभगवान की साधारन भक्ति हू अति श्रेष्ठ होय है, किन्तु श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मन्दिर के रसिक अनन्य उपासक श्रीबिहारीदास कहाइबो तो, सर्वोपरि सौभाग्य की चर्मसीमा ही है।

डार पात गुठली बकुल, सूत ऊँट लौ खाइ।
स्वाद न जाँनें बापुरौ, पेट भरै लडकाइ ॥३८४॥

जैसे खान-पान के स्वाद तें अनिभिज्ञ ऊँट डार-पात, गुठली, बकुल आदि सबन कूँ सूत-सूत कें एकसंग खाइ, पेट भरि डकारिबे लगै है, तैसे ही बहुत से साधक ऐसे होइ हैं, जो कबहूँ तो देवी-भागवत, सिव-पुरान, स्कंद-पुरान आदि सुनें हैं, कबहूँ महाभारत, श्रीमद्भगवतगीता, पद्म-पुरान एवं श्रीमद्भागवतजू आदि कहैं, सुनैं हैं, ऐसे ही कबहूँ विधि-विधान, नाना मंत्रन के जप-अनुष्ठान, यज्ञादिक एवं महात्म, ज्ञान, ईस्वरता मिश्रित भक्ति-प्रेम-रस आदि सबन कूँ एक समान ही आस्वादन करि संतोष मानि सुखी होइ हैं। इन बिचारेन कूँ इतेक ग्यान ही नाँइ होय है कि हमारो कौन इष्ट है, कौनसो भाव है, ताको कहा स्वरूप है ?

डार पात गुठली बकुल, मूल फूल फल छाँहि।
श्रीबिहारीदास स्वादी लहै, सुरस पके फल माँहि ॥३८५॥

जैसे बृक्ष के सभी अंग सुखद एवं रस सों पूरित होय हैं, किन्तु रस के स्वाद जानिबेवारे, वाके पके भये फल के रस कूँ ही ग्रहन कियो करैं हैं, तैसे ही कल्प-वृक्ष सदृस भक्ति महारानी के समस्त अंग यद्यपि रस सों पूर्न, सुख स्वरूप होते भये हू, रस-स्वाद के ज्ञाता रसिक, वाके पके भये फलको हू अति विसुद्ध रस एकमात्र सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ ही दृढ़ अनन्य भाव ते सेवन करें हैं।

बाहिर बकुल कसाइलौ, भीतर करई मींग।
अधबर गुठली काठ की, रस परपाटी बींग ॥३८६॥

जैसे आम के ऊपर को छिलका तो कसाइलो होइ है, बाके बीच में काठ सदृस कर्री गुठली होइ है, ताके भीतर करुवी मींगी हू रहै है। तामें जो कछु अंस रस को होइ है, ताही को बहुत से लोग रस माने हैं। तैसे ही बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-रस ते अनभिज्ञ लोगन ने बाहर तो लोक-वेद तथा और-और प्रकार की रीतिन में रस कूँ बाँधि दीने हैं। अधबर में काठ की गुठली सदृस, अनेक प्रकार की कठिन बाधायें हू वा रस में भरि दीनी है और करुवी मींग सदृस आपके रसमय स्वरूप कूँ हू जीव कोटि में निरूपन करि दीनो है। याही भाँति सर्वोपरि प्रेम-रस परिपाटी कूँ इन लोगन ने बिगार दीनी है।

ज्यौं जमधर में अलपटी, ताके परत अनेक।
धरैं कहूँ ढूंढैं कहूँ, भटकैं बिना विवेक ॥३८७॥

जैसे नाऊ की अलपटी के अनेक परतन में भाँति-भाँति के अस्तूरा धरे भये होइ हैं। जैसो अस्तूरा बाकूं चहिये, वो धरयौ है, काहू अलपटी में ढूंढि रह्यौ है काहू में। तैसे ही परमार्थ रस हू नाना-भाँति के महतपुरुषन के हृदय एवं उपदेसन में भिन्न-भिन्न रूप ते भरे भये हैं, किन्तु अति बिसुद्ध सर्वोपरि नित्यबिहार रस तो एकमात्र श्रीस्वामीजू महाराज के ही घर में है, तौहू साधक आपके स्वरूप ते अनभिज्ञ होइबे के कारन, अनेक ठौरन में ढूंढतो डोलै है।

लायौ चाहै अगरसत, औंटि अरंड की छाल।
बासु न जानें नाक बिनु, यह नीरस की चाल ॥३८८॥

जिनकी नाक सुबास-कुबास ते अनभिज्ञ है, ऐसे लोग अंडउआ की छाल कूँ ही औटाइ-औटाइ कें अगरसत बनाइबो चाहें हैं, तैसे ही रस के आस्वादन तें

अपरिचित नीरस हृदयवारे जन लोक, वेद एवं ऐस्वर्यमिश्रित रसन कूँ ही सर्वोपरि नित्यबिहार समझें हैं।

पनहीं बाँईं दाँहिनी, पहिरैं चल्यौ न जाइ।
जौ लै बांधे कांन सौं, तौ सभा बैठि खिस्याय ॥३८९॥

जैसे अपने ही पाँव की दाईं-बाईं पनहीं कूँ अदल-बदल होइबे पै पहिरि कें नाँइ चल्यौ जाइ सकै है, तापै हू यदि कोऊ नासमझ व्यक्ति वाही पनहीं कूँ कान ते बाँधि, सभा में जाइ बैठे, तौ समझदार लोग वापै सब खिसियावेंगे। याही भाँति सूक्ष्मातिसूक्ष्म निज रस-रीति को निपट नित्यबिहार ऐसो सर्वोपरि टकसाली है जोकि नेक हू इत-उत होइबे पै वा रस की स्थिति ठहरि ही नाँइ सकै है।

अर्थात महामधुरसार रसमय स्वरूप एक प्रान द्वै देह श्रीस्वामिनी लाल कूँ भिन्न-भिन्न तत्व मानि लैबे ते निज रस-रीति की स्थिति ही नाँइ रहि सकै है। ऐसे ही श्रीस्वामिनी रस के ही एकमात्र दृढ़ अनन्य लाल में दूजो संबंध मानिबे ते बिसुद्ध रस को स्वरूप नाँइ बनै है। याही प्रकार निजमहल श्रीवृन्दावन के बिलास में, और-और धाम एवं संबंधन की मिलौनी होइबे पै, नित्य निरंतर अविचल बिहार को स्वरूप रहि ही नाँइ सकै है। तैसे ही निज रस-रीति के दृढ़ अनन्य परिकर में, और-और रीति के—रस-बिलास बिलसाइबेवारे परिकर के भावन की मिलौनी करिबे ते बिनकी निज रस-रीति की अनन्यता नाँइ रहि सकै है। याही भाँति टकसाल बिरोधी झीनी बातें ऐसी है, जिनको रसिक अनन्यजन ही समझि सकें हैं। याते रसिक अनन्यन की सभा में जो कोऊ टकसाल बिरोधी बातन कूँ निरुपन करैं तो, वाकूँ टकसाली महतपुरुष ऐसे लज्जित करें हैं, जैसे पनहीं कान ते बाँधि, सभा में जाइबे पै लज्जित होनो परै है।

सरैं न पनहीं पाग बिनु, तन एकहि सिंगार।
वह माथें वह पग बनी, यहै समझि ब्यौहार ॥३९०॥

जैसे एकही तन के सिंगार के ताईं माथा पै पाग और पाँव में पनहीं, की आवस्यकता होइ है, तैसे ही साधक कूँ परमारथ और व्यवहार दोनों ही करने परें हैं। यानी परमारथ की जगह पै परमारथ, व्यवहार के समय व्यवहार सोभा पावै है, इन सब बातन कूँ सोचि-समझि के साधक को चलनो चहिये।

पाँय पानहीं अंतरौ, पहिरैं समयौ पाय।
बैठयौ अपरस पाक में, तब क्यों छुवत घिनाय ॥३८१॥
बागौ मुहर पचास कौ, पाँइ पाँनहीं नाँहि।
बागौ भलो न लागई, पौसिदां न सिहांहि ॥३८२॥

जैसे पनहीं अपने ही पाँव को सिंगार होते भये हू समय पै ही पहिरयौ जाइ है, वाही पनहीं कूँ अपरस में पाक बनाइबे के समय छीबे में हू लोग घृना करें हैं, ऐसे ही पनही सदृस व्यवहार साधक को अंग न होइकें, समय पै ही कियो जाइ है। सेवा-भजन के समय व्यवहार की बात न सुहाइबे के कारन घृना होइ है, किन्तु पारमार्थिक अभिनिवेस होते भये हू व्यवहार के समय व्यवहार न करिबे ते, टकसाली परमार्थी ऐसे नाँइ सिहावैं हैं, जैसे कोऊ बागो तो बड़ो कीमती पहिरै, और पाँय में पनहीं नाँइ होंइ, तौ पोसाक पहिरिबेवारे सौकीन लोग नाँइ सिहावैं हैं।

बिष कौ कीरा बिष ही खाय, मिश्री सूँघत ही मर जाय।
श्रीबिहारीदास जो जाहि हिताइ, ताबिनु तासों रह्यौ न जाइ॥३८३॥

जैसे बिष को कीरा बिष कूँ ही खाइ है, मिश्री सूँघत खेम वो कीरा मरि जाइ है, ऐसें ही हे बिहारीदास! जगत में मायिक पदार्थन में जिनको अभिनिवेस है, वे वाही कूँ पाइकें सुखी होइ हैं। कदाचित परमार्थीन के सत्संग में जाइ बैठें तो ऐसे मुरझा जाँइ हैं कि उन्हें बैठिबो ही भारस्वरूप मालुम परै है।

बाँकौ मारग प्रेम कौ, समझ सोच मन मूढ।
भुँमिया भक्त मिलै बिना, क्यौं पावै पद गूढ ॥३८४॥
कठिन प्रीति रस रीति है, समुझि गहो मन माँहि।
एक चकोर पावक चुगै, सबहिन कौ भख नांहि ॥३८५॥
जो है जात, चकोर की, सोई पावक खाइ।
और पंछी छुवै चौंच सों, छुवत जीभ जरि जाइ ॥३८६॥

प्रेम पथ के पथिकन ते आप बोले कि–हे भाई! तुम अपने मनमें भलीभाँति सोचि-समझि के देखि लेउ?, प्रेम को मारग अति ही बाँको है, जामें हानि-लाभ, जस-अपजस, सुख, दुख तथा इहलोक-परलोक के यावत सुख-संबंधन की लालसा आदि को भलीभाँति त्यागि कें ही चलनो परै है। इतेक पै हू अपने सजातीय प्रेमिन

को संग मिले बिना, प्रेम को गूढ़ पद प्राप्त होइबो अति कठिन है।

प्रेमै आहि कहै कोऊ यह सुख दुख लाभ की हानि।
रिस हू में हाँसी आवै हौं कहति नहीं कछु बानि॥ —श्रीगुरुदेवजू

क्योंकि जैसे आँच कूँ एकमात्र चकोर ही खाइ सकै है, पंछिन के राजा साक्षात् भगवत पार्षद श्रीगरुड़जू हू नाँइ छू सकैं हैं, तैसे ही श्रीस्वामीजी महाराज के रसिक अनन्य दासन के अतिरिक्त, स्वयं श्रीभगवत स्वरूपन कूँ हू हमारे निकुंज-महल को सर्वोपरि नित्यबिहार दुर्लभ है, याते ये स्पष्ट है कि जो साधक प्रेम परिपाटी के प्राननवारो श्रीस्वामीजी महाराज को अनन्य दास होइगो, वोही या बस्तु कूँ ग्रहन करि सकैगो।

भगवत स्यामा स्याम को पावक रूप बिहार।
नहि समर्थ खगराज की करै चकोर आहार॥

बाँधि पाइगा पाक में, भैंस अखारे माँझ।
नाँकिसबी समझे नहीं, कहै भोर सों साँझ॥३९७॥

प्रेम परिपाटी के जानकार के बिना और साधकन को नित्यबिहार उपासना की बात कहिबो-सुनिबो ऐसो है, जैसे कोऊ पाकसाला में तो पाग बाँधि के जाइ, तथा अखाड़ा में भैंस कूँ बाँधि देवै। ऐसे ही अनभिज्ञ लोग भोर कूँ हूँ संध्या कहन लगें हैं।

ग्वाल बडाई खिरकि में, घुरवारे थनवार।
हाट हट्वा बानियाँ, डोली लीयें कहार॥३९८॥
मँडई में डँडोया बडे, बडे बजार सराफ।
गुदरहटी टोडिक बडे, मारैं गाल गजाफ॥३९९॥

ग्वारीयान की बड़ाई, गैयान की खिरक में, थन ते दूध निकासिबे में दुहिबेवारेन की, हाट दुकानन पै बनियान की एवं कहारन की बड़ाई डोली उठाइबे में, तैसे ही मंडी में तोलिबेवारे डड़ियान की, बड़े बजार में सर्राफन की, और गूदर हट्टी में छैल-छिकनिया गाल बजाइबेवारेन की। अर्थात जो जा बिषय को जानकार होइ है, बाकी वाही बिषय में बड़ाई होइ है। एकही व्यक्ति जैसे सर्वप्रकार के विषयन में बड़ाई प्राप्त नाँइ करि सके है, तैसे ही और-और भाँति की उपासनान को साधक नित्यबिहार में प्रसंसा नाँइ पाइ सकै है।

कदरे गौहर साहिदांनद, कैं विदांनद जौहरी।
सीसगर कीमत चिदांनद, पोत बेचें बिलगरी ॥४००॥

जैसे हीरा-जवाहरात की कदर बादसाह एवं जौहरी लोग ही करें हैं, कांच-पोति बेचिबेवारे बिलगरी लोग समझि ही नाँइ सकें हैं। तैसे ही हीरा सदृस सर्वोपरि नित्यबिहार रस की परख श्रीस्वामीजी महाराज के निज कृपापात्र चकोर जाति के रसिक अनन्य उपासक ही करि सकें हैं।

काठ गढै सो बाढई, लोहौ गढै लुहार।
सुरनकार सोनौं गढैं, माँटी गढै कुम्हार ॥४०१॥

जैसे काठ गढ़िबेवारेन कूँ बाढ़ई कह्यौ जाइ है, लोह गढ़िबेवारेन कूँ लुहार, सोनो गढ़िबेवारेन कूँ सुरनकार, तथा माटी के बासन बनाइबेवारेन कूँ कुम्हार सब लोग कहैं हैं। याही भाँति जो जैसो परमार्थ को साधक होइ है, ताकी ताही अनुसार संज्ञा होइ है।

बडी बडाई ऊँट की, लदै न आवै स्वास।
देखौ सुख अभिमान कौ, ऊपर चढै फरास ॥४०२॥

जैसे ऊँट की प्रसंसा याही बात में है कि वापै इतेक बोझ लादि दियौ जाइ सकै, जो वाको स्वाँस हू मुस्किल ते आवै, तापै हू लादिबेवारो फरास वापै बैठि जाइ है, ऐसे ही जिन लोगन को स्वभाव ऐसौ होइ है, कि अपनी प्रसंसा सुनि, अभिमान रूपी बोझ सों लदि, सुख मानें हैं, तिनपै अनेक प्रकार को अपराध रूपी फरास हू बैठि जाइ है।

श्रीबिहारीदास चिरपन अँगैं, तौ हरिदास कहाइ।
अभिमानिनि कौ संग तजि, भजन बढै सतिभाइ ॥४०३॥

हे बिहारीदास ! एकमात्र नित्यबिहार उपासना के प्रन कूँ ही सदाकाल के लिये दृढ़तापूर्वक करि, यावत प्रकार के अभिमान तथा अभिमानिन को संग भलीभाँति त्यागि देवोगे, तबहीं बिहारिदास हैकें तुम्हारो भजन साँचे भाव ते बढ़चौ करेगो।

अरदा दै बरदा भयौ, साऊ सहज कमाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, प्रेम बँधायौ आइ ॥४०४॥

जो साधक प्रतिज्ञापूर्वक बिहारिदास है जाँइ हैं, वे ही परमार्थ के सहज

सुभाउ साहूकार होइ, भजनरूपी साँचे धन कूँ संग्रह करते रहैं है। याही भाँति श्रीस्वामीजी महाराज के प्रेम कूँ हमने हू प्राप्त करि लीनौ है।

अरदा बिनु बरदा कहैं, मोल लियौ न बिकाइ।
बेचन कहैं बजार में, मुह पैजारैं खाइ ॥४०५॥

जैसे बिना खरीदी भई वस्तु कूँ बाजार में कोऊ बेचिबो चाहै, बाकूँ लोग उल्टे धिक्कार ही दैवें हैं, तैसे ही अपने तन, मन, प्रान ते काहू को सांचो भये बिना परमार्थ के बाजार में जो लोग उपदेस करैं हैं, बिनकूँ लज्जित होनो परै है।

चेरौ श्रीहरिदास कौ, साऊनि को सुलताँन।
साऊ सठ हठ गहि रहै, चेरौ कियौ निदाँन ॥४०६॥

जितेक भक्ति-पथ ते बिहीन और-और परमार्थन के उपदेष्टा साहूकार बनि रहे हैं, ते तो सब अपने अपने बरन आश्रम एवं और-और सिद्धान्तन की हठ पकरे बैठे हैं। श्रीस्वामीजी महाराज के दासन ने बिनकी कृपा को आश्रय लैके, सर्वोपरि प्रेम-रस कूँ ही निदान करि लीन्यो है, याते वे सबके सुलतान हैं।

चेरौ श्रीहरिदास कौ, साऊनि को सिरताज।
साऊ पूजैं सीतरा, चेरे कुंजनि राज ॥४०७॥

श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य दासन को साक्षात श्रीनिकुंज महल में इकछत राज्य है, और ये बेचारे सीतरा पूजते डोलैं हैं।

चेरौ श्रीहरिदास कौ, साऊनि कौ सिरमौर।
साँचौ ह्वै गुन गाइ हैं, झूठौ लहै न ठौर ॥४०८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के जो सांचे अनन्यदास हैं, वे तो बिनके गुन-जसन कूँ गाइ-गाइ कें यावत् परमार्थीन के मुकुटमनि है रहैं हैं। जो झूठे हैं, बिनकूँ श्रीस्वामीजी महाराज के घर में कहूँ ठौर नाँइ मिलै है।

चेरौ श्रीहरिदास कौ, साउन को सिरदार।
साऊ सिलौ न पावई, चेरो चित्त उदार ॥४०९॥

और-और परमार्थन के साऊ स्वरूप उपदेष्टा सिला सदृस रस कूँ जहाँ-तहाँ ढूंढ़ें हैं, तौहू नाँइ प्राप्त होइ है श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य दासन को चित्त इतेक अद्भुत उदार होइ है, कि अपने पास आये-भये जनन के मन कूँ रस ते भरि देइ हैं। याही ते सब लोग बिनकूँ समस्त साहून के सरदार मानैं हैं।

उद्दिमु करि संसार सब, साधु भयौ भरि झौंदु।
श्रीबिहारीदास रस आलसी, स्वादी लंपट लौंदु ।।४१०।।

स्वादी, लंपट-लौंद, लोग अनेक उद्यमन कूँ करि-करि, केवल पेट भरिबे के ताईं झुंड के झुंड डोल्यौ करें हैं। नित्यबिहार के उपासक श्रीबिहारीदास रस की भरमार ते मत्त-मुदितता में आलसी होइ, काहू के द्वार पै नाँइ जाँय हैं।

देखा देखी जोग न होइ, दूखै बिनां न रोवै कोइ।
झूझै सो जाकै जिय लाज, लाज बिना जीवनि किहि काज ।।४११।।

जो लोग और-और वेष धारिन कूँ ही देखि कें, वेष धारन करि लेंवे हैं, किन्तु जब ताऊँ अपने इष्ट सों मिलिबे के ताईं सांची विरह वेदना नाँइ होयगी, तब ताऊँ वेष को निभाइबो अति कठिन है, कैं निभाइबेवारे वे ही लोग होइ हैं, जिनके हृदय में वेष धारन किये की लाज होइ है। बिनालाज के जगत में जीवन ही बेकार है।

जोइ जुरावर जाँनियै, बैयर बैरनि होइ।
मिहरबान मिहरी कहूँ, बिरला पावै कोइ ।।४१२।।

श्रीभगवान की माया अति ही बलवान होइ है ताहू में साधक के ताईं स्त्री स्वरूप माया तो और हू प्रबल बैरिन समझनी चहिए। इन बैरिनते छुटकारा दिवाइबे वारी परम कृपालु श्रीभक्ति महारानीजू ही हैं, जो काहू बिरले सौभाग्यसाली जनन कूँ कृपा ते ही प्राप्त होइ हैं।

खेल खाँन सों खेलियै, बसुहीं कै बस प्रांन।
ओरति राची और सों, बचन विषहरे बांन ।।४१३।।

जगत-मायारूपी खेल की एक प्रकार की खान है, जामें प्रथम तो लोगन के प्रान धन में ही अरुझे रहें हैं, दूजे स्त्री के इतेक बसीभूत है जाँइ हैं, कि पर पुरुष ते रचीभईन के हूँ जहरीले बान, सदृस बचनन कूँ सतत सहन करते रहैं हैं।

बाँधि विवाही जाति की, तासों भई न प्रीति।
अपनें प्रेम उमँगि मिली, यातें भली सुरीति ।।४१४।।

जैसे पुरुष के मन-अनुकूल कन्या नाँइ होइबे पै हू, जाति की होइबे के कारन घरवारे वाते विवाह करि देवें हैं, किन्तु बाते प्रेम नाँइ होइबे ते सदाकाल क्लेस ही रहै है, याते तो प्रेम ते उमँगि के जो मिलै, बो ही सुन्दर होइ है। तैसे ही

परम्परागत गुरु-सिस्य होइबे की अपेक्षा, जहाँ अपनो प्रेम होइ, तहाँ ही दीक्षा लेइबो सुखदाई होइ है ।

मिहरी माया मोंहनी, मोहै अरु मुसिकाइ ।
श्रीबिहारीदास जो बोलियै, तौ बींध्यौ निकसि न जाइ ।।४१५।।
कंट कलीली कांमिनी, जंघ जोंक लगि जोइ ।
लोहू अंग न पाईयै, रह्यौ आपकौं रोइ ।।४१६।।
बैयरि सी बैरिणि नहीं, ना मिहरी सी मीत ।
ममता करै नर्कै परै, भक्ति करै जग जीति ।।४१७।।

स्त्री रूपी माया या प्रकार की दूषित होइ है, जो लोगन कूँ मोहि के हू मुस्कराती रहै है, यदि वाते कछु संभाषन करि लेवै तो, या प्रकार ते हृदय में चुभि जाइ है, जाको निकासबो ही कठिन है जाइ है । जैसे जोंक एवं कलीली खून कूँ ही पीवैं हैं, तैसे ही कामिनी की बोलन, चलन, हँसन, मुसक्यान आदि यावत क्रिया देह, मन, बुद्धि कूँ सदाकाल ह्रास ही कियौ करै है, जासों साधक कूँ सतत पछितामनो ही परै है । याते मायिक जगत में स्त्रीन सदृस परमार्थीन कूँ कोऊ बैरी नाँइ है, और परम दयालु श्रीभक्ति महारानी सदृस कोऊ मित्र हू नाँइ । स्त्रीन सों ममता करिबेबारे सूधे नरक में जाँइ हैं । श्रीभक्ति महारानी के आश्रय लैबेबारे जन, माया सागर ते पार होइ, साक्षात श्रीहरि कूँ प्राप्त करि लेवैं हैं ।

कोऊ काहू कौ नहीं, अपनें लै पहिचाँनि ।
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि भजि,तजि लोक वेद की कानि ।।४१८।।

जगत में जितेक जीव हैं, सब एकमात्र श्रीभगवान के ही हैं । मायिक देह के नाता सों तो आत्मा को कोऊ संबंध हो ही नाँइ सकै है, वास्तविक में कोऊ काहू को है ही नाँइ । याते लोक-वेद की कानि कूँ भलीभाँति त्यागि कैं, एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अनन्य दासन कूँ ही जगत में अपनो समझो ।

वेद ढँढोरा लोक कौ, टेरत ढोल बजाइ ।
श्रीबिहारीदास ता महल की, टहल करौ दुलराइ ।।४१९।।
श्रीबिहारीदास बिहार मैं, वेद न पावैं जांनि ।
सखी जिवावैं प्रेम सौं, महा मधुर रस छांनि ।।४२०।।

वेद तौ जगत के जीवन कूँ पथ पै चलाइबे के ताईं, अपनी आज्ञा स्वरूप ढोल

बजाइ-बजाइ के सतत टेरतो रहै है, किन्तु हे बिहारीदास जिन श्रीहरि की आज्ञा स्वरूप बेद है, तुम उन श्रीहरि के निज महल की दुलराय-दुलराय कें सतत टहल करौ। क्योंकि जहाँ मधुर रस कूँ हूँ छानि-छानि कें सखी ! पिवाइ-पिवाइ-श्रीजुगल कूँ जिवाइ कें राखैं हैं तहाँ विचारो वेद प्रवेश ही नाँइ करि सकै है।

साधो ऐसो महल हमारो।
निर्गुन सर्गुन बारि है जाकी कहत न वेद बिचारो॥
अद्‌भुत प्रेम रूप रस अद्‌भुत अद्‌भुत नित्यबिहारो।
श्रीकुंजबिहारिन ललित लाड़िली करि राख्यौ उर हारो॥

बैयर व्यही बैर कौं, जाए पूत शरीक।
बाँध्यौ चाहे माल कौं, तोरचौ चाहे हीक॥४२१॥

जैसे कोऊ व्यक्ति लरि-झगरि कें तो बैयरि कूँ व्याह के लावै, फिर वो बैयरि हू परपुरुषन ते संबंध राखै, फिर वाकी संतान घर में हिस्सा बाँटि कें लेबो चाहै, और सभा में छाती ठोक कें वो संतान अपनो बतावै, ऐसे व्यवहार को समाज आदर नाँइ करै है। तैसे ही काहू साधक ने बाद-बिवाद द्वारा सुनि-सुनाइ, उपासना ग्रहन करि लीनी, ताहू पै अनेक घरन के सिद्धान्तन में मिलाइ कें वानें भज्यौ, ऐसे जन नित्य-बिहार उपासना कूँ श्रीस्वामीजू के जनन ते बाँटि के लेबो चाहैं, और सभा में अनन्य उपासकपने को दावा करें, जोकि कैसे हू नाँइ होइ सकै है।

वेद—सुखारे छाँडिये, लोक न छाँड्यौ जाइ।
बचन विषहरे बांन के, क्यौं सहै सामुहें घाइ॥४२२॥

जगत में बहुत लोग या प्रकार के होइ हैं, जो बेद आज्ञा कूँ तो सहज ही में उल्लंघन करि देइ हैं, किन्तु लोक के बिरोध सों डरपि, उचित बातन कूँ याते नाँइ करैं हैं कि जहाँ-तहाँ लोग ऐसी निंदा के बचन बोलेंगे जो हृदय में जहरीले बानन सद्दस मालुम परेंगे।

कहा बिगारों वेद कौ, कहा लोक कौ लेंउ।
गुन दोसै समझों नहीं, हरि अनुरागें देंउ॥४२३॥

जब बेद को अभिप्राय एकमात्र यही है कि—जैसे-तैसे जीव श्रीहरि के चरनारबिंद में पहुँच जाइ, तब हम बिना कोऊ गुन-दोष के बिचारे सहज सुभाउ सों ही जो कुछ करैं है, श्रीहरि के अनुराग सों ही करैं हैं, तब हमने बेद की आज्ञा को

बिगार ही कहा दीन्यौ है ? और संसार में अनेक लोग ये बात कहैं हैं, कि तुम अमुक कार्य करौ हो, अमुक नहीं करो हो, या प्रकार ते अनेक दोष हमें लगावें हैं, बिन लोगन ते हम कहैं हैं कि हम कछु करैं, या न करैं तुम्हारो कहा लेवैं हैं ?

वेद न कह्यौ सो हम कियौ, लोगन को मत छाँडि ।
श्रीबिहारीदास अनन्य रस, जस कहत सभा मैं डाँटि ।।४२४।।

जगत में एकमात्र वेद आज्ञानुसार ही चलिबो सबन को अभिमत है, कारन अबैदिक बातन कूँ कोऊ नाँइ मानि सकै है। तिन सबनते हम पूछैं हैं कि–जब साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनी जू के रसमय निज महल की रीति कूँ बेद निरुपन करि ही नाँइ सकै है, और हम वा महल की टहल निरंतर करैं हैं, एवं बिनके ही रस-जसन कूँ बड़ी-बड़ो महती सभान में अति निसंकता तें डाँटि-डाटि के कहैं हैं, फिर बेद- आज्ञा मानिबे की हमें आवश्यकता ही कहा है ।

अरदासी द्वारै खरे, फिरियादी पिछबार ।
मचला पौढे पौरि मैं, एते भक्त अपार ।।४२५।।
एक आरत अर्थार्थी, एक ग्यानी जिग्यास ।
एक भयानक जगत मैं, नानां भाँति उपास ।।४२६।।
दफतर द्वारैं दफतरी, द्वार खरे परदार ।
गैर महल महली कहूँ, जे सेवैं नित्य बिहार ।।४२७।।

भक्तन के अनेक प्रकार के भेदन को बताते भये आपने कह्यौ कि–बहुत से भक्त तो अपनी प्रार्थना ही करते रहैं हैं। फरियाद करिबेबारे पीछे लगे रहैं हैं। नाना भाँति के मनोरथन में बिबस बहुत से भक्त आपके द्वार पै ही मचले रहैं है। ऐसे ही कोऊ आरत होइ पुकारैं हैं, कोऊ अर्थ प्राप्ति के ताँईं भक्ति करैं हैं, कोऊ ग्यान-जिज्ञासा के ताईं, कोऊ-कोऊ श्रीदुर्बासा जी सदृस भयानक हू भक्त होय हैं। बहुत से दफतर स्वरूप वेद-आज्ञानुसार चलिबेबारे दफतरी भक्त हैं। कोऊ भगवान के द्वार की पहरे-दारी की ही भक्ति करैं हैं। या प्रकार के भक्तन की तो बात कौन कहि सकै, नेक गैर साल रस-महल के महलीजन हूँ हमारे सर्वोपरि नित्यबिहार रस महल की खवासी कैसे हू प्राप्त नाँइ करि सकैं हैं ।

कोऊ कातैं अनधुनी, कोऊ किरी कपास ।
जिनकैं नरमाँ तूमियै, ते दुर्लभ बिहारीदास ।।४२८।।

जगत में जैसे कोऊ तो बिना धुनी रुई कूँ कातैं हैं, कोऊ किरी सहित कपास कूँ ही कातिबे लगैं हैं। नरम ते हू अति नरम तूमियाँ सदृस कोमल रुई कूँ तो कातिबे बारे बिरलें ही कहूँ होइ हैं। तैसे ही रसिक भक्तन में हूँ नाना प्रकार के भेद-बिभेद हैं, अनधुनी रुई सदृस रस-भाव के स्वरूप कूँ बिना समझे बहुत से लोग भक्ति करैं हैं। कोऊ ऐसे हू रसिक भक्त हैं, जो किरी-कपास स्वरूप विधि-बिधान कर्मज्ञान युक्त ही भक्ति करैं हैं। यावत भक्ति प्रेम-रस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप,भेद-भावन कूँ छानि-ताइ कें सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूं समझि, वाही को दृढ़ अनन्य भाव ते सेवन करिबेबारे जगत में विरले ही अति दुर्लभ-कहूँ श्रीबिहारीदास होय हैं।

रघुनाथै मुरली मुकट, धनकबाँन गोपाल।
संख चक्र नरसिंघ दै, भक्ति न होय कुचाल ।।४२९।।

यदि कोऊ ये कहै कि-समस्त भगवत-स्वरूप भक्तन के भावनानुसार यावत मनोरथन कूँ पूरन करैं हैं, तब श्रीनित्यबिहार की भावना ते काहू भगवान की भक्ति की जाय तो क्यों नाँइ सफल होयगी, तापै आपको कथन है कि–मर्यादा–पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथ जी को मुरलीमुकुट धारन कराइकें, अनेक नायिकान के संग महारास–विलास विलसाइबे की भावना करिबो, तथा महारास विलासी श्रीनंदनन्दन गोपाल जू कूँ धनुष-बान धराइ कें, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराघवेन्द्र जु की भावना करिबो, ऐसे ही श्रीनृसिंह भगवान कूँ संख–चक्र धारन कराइबो आदि या प्रकार की भावना तुमहीं सोचो कैसे सफल होइ सकै है ? तापै सर्वोपरि नित्यबिहार तो अति विशुद्ध-रसमय एकमात्र निकुंज महल को ही सर्वस्व धन है, जहाँ और स्वरूपन की समाई ही नाँइ हैं।

पितर पूजियत पिंड दै, हरि जू पान कपूर।
देवी तीतर बोकरा, संकर आक धतूर ।।४३०।।
श्रीबिहारीदास जाकों उचित, ताहि तिही बिधि सेव।
अनुरूचतौ पचि है नहीं, नारि तोरि हैं देव ।।४३१।।

पितरन कूँ पिंड दैके ही पूज्यौ जाइ है। श्रीहरि कूँ पान कपूर आदि सों ही। देवी की भेंट तीतर बोकरा, श्रीशंकर जू को आक धतूरा। याते जा देवता को जैसो स्वरूप है, ताही विधि अनुसार वाकूँ सेवनों उचित है। बिनके अनुरूप पूजा नाँइ करिबे ते देवता उल्टे अप्रसन्न है जाइ हैं। अर्थात पितरन के पिंड श्रीहरि कूँ नाँइ

दिये जाँय सकैं हैं। ऐसे ही तीतर बोकरा श्रीशंकर जी के भेंट नाँइ कियो जाइ है। याही प्रकार सबनकूँ समझ लेनो चहिये।

पहिलै छल हाथी बहै, भरनि भरचौ सब देस।
पैरन कहै पपीलका, ताहि न बल कौ लेस ।।४३२।।

सृष्टि के आरम्भ में माया की सबते पहली बर्षा में ही, हाथी सदृस बड़े बड़े दिग्गज-श्रीशिव, ब्रह्मा, इन्द्र-चन्द्र आदि बहि गये, अर्थात माया ने सब कूँ उद्वेगित करि दीन्यौ। अब तो माया की अति अगाध बर्षा सों यावत लोक लोकान्तर सब भरपूर है रहैं हैं, फिर चेंटी सदृस बलवारो साधारन जीव, अति दुस्तर माया-सागर तें पार जाइबो को साहस करै है, जो कैसे हू संभव नाँइ है सकै है।

श्रीबिहारीदास बिहार कों, उदो करनु हरिदास।
साखि भक्त कौ भरि सकै, रसिकन कैं मन त्रास ।।४३३।।

हे बिहारीदास! जामें सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ तो एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने निज महल ते प्रगट होइकें ऐसो उदय कीन्यौ है, जाकूँ भक्त समाज तो कोऊ हिम्मत ही नाँइ करि सकै है, रस के आस्वादन करिबेवारे रसिकन को हू मन भय खाइ है। अर्थात भक्तन को तो सिद्धान्त में ही श्रीभगवान की प्रधानता रहै है, श्रीरसिक जन हू प्रथमसमागम_ एकान्तरसविलास के निपट नित्यबिहार कूँ सुनि, यों भय खाँय हैं कि जहाँ ईश्वरता की तो गंध हू नाँय होइ है, केवल अति विसुद्ध पूर्णतम प्रेम रस को ही बिहार अनादिकाल तें एकरस होते भये हू, छिन-छिन नवनवायमान रंग-अनुराग की तरंग या प्रकार की उठैं हैं, जामें इन्हें मिलिबो ही भान नाँइ होइ है। ऐसे ही अनेक महामाधुरी मय अद्भुत, अगाध, अनंततरंगे है जिनकूँ श्रीस्वामी जी महाराज की निज कृपा ते बिहीन कोऊ नाँइ झेलि सकै है।

भांडे बिगरे को कहै, सिगरे अवाँ बिगार।
जाकौ बुरौं खदानौई, दोस न देइ कुम्हार ।।४३४।।

यदि कोई ये बात कहै कि—कहा परमार्थ जगत के यावत रसिकन में कोऊ ऐसो रसिक नाँइ भयो जो या वस्तु कूँ समझि-बूझि भलीभाँति ग्रहन करि लेतो, तापै आपको कथन है कि—हे भाई! जैसे खदाना की मिट्टी खराब होइबे के कारन सबरे अवाँ के बर्तन बिगरि जाइ हैं जामें कुम्हार को कोऊदोष नाँइ होइ है। अर्थात और-और यावत रसिकन को सिद्धान्त ही ये है कि—स्वयं भगवान प्रेम के वसीभूत होय,

यावत प्रेमीन के भावानुसार रसन कूँ बिलसैं-बिलसावैं हैं। याही सिद्धान्त अनुसार बिनको बर्नन है, जाको जैसो सिद्धान्त होइ है, ताही अनुसार बिनको इष्ट तथा प्रेम-रस लीला को स्वरूप होइ है। याते सर्वोपरि विशुद्ध पूर्नतम प्रेम रस बिहार कूँ न तो वे समझि ही सके और न बर्नन ही करि सके।

आदि अंत माटी सबै, भांडे बीच उपाधि।
श्रीबिहारीदास भाँडे गढै, ताहि समझि आराधि ॥४३५॥

हे बिहारीदास ! आदि ते अंत ताऊँ एकमात्र सर्वोपरि तत्व बिसुद्ध प्रेम ही एकरस स्थिर रहै है। ऐश्वर्य मिश्रित प्रेममय सिद्धान्त–रूपी भावन के भाँड़े नाना भाँति के होइबे के कारन, वा प्रेम में अनेक प्रकार की तारतम्यता आ जाइ है। याते सबको मूल-स्वरूप अति विशुद्ध सर्वोपरि प्रेम, जो यावत भाव-रूपी भांडेन कूँ गढ़ै है, ताकूँ भलीभांति समझि के आराधन करौ।

और कछू जो ना बनें, एक नाम निजु टेक।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि रटि, साधन सधें अनेक ॥४३६॥

साजे पाके बासनैं, वस्तु धरी ठहराइ।
काचे में जलु कीजियै, तौ वह भाजनु नसि जाइ ॥४३७॥

श्रम करि कूप खन्यौ कृपनु, नखनि निकारयौ नीर।
अभिमानी अग्यान ते, अँचवत बच्यौ अधीर ॥४३८॥

साधारन जल मरमरो, पैयतु किये अहास।
बिनु डहकायें बोठलै, ढूँढि बिहारीदास ॥४३९॥

यदि कोऊ आश्रित जन अपने मन में ये सोचै कि–साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्य बिहारिनीजू के निज महल को रस सूँ जब यावत रसिकजन हूँ भय खाँइ है, तब हमतो साधारन जीव हैं, बिनकूँ कैसे लाड़ लड़ाय सकेंगे ? ताको लक्ष्य करि अति दया करुना में बिबस, निज आश्रितन ते, प्रेम ममताभरी बानी द्वारा, आप बोले कि- हे भाई ! तुम सों यदि और कछु नाँइ होइ सकै है, तो श्रीनित्यबिहारिनी, नित्य-बिहारी तथा श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीवृन्दावन के नाम कूँ निज अनन्य भावकी टेक अनुराग ते सदाकाल रटौ। तुम्हारे अनेक साधन बिना ही किये सिद्ध है जाँइगें। अर्थात् याही नाम को ऐसो दृढ़ अनन्य प्रन अपने मन में धारन करि लेवो, कि याके

अतिरिक्त और और नाम तथा मंत्रन कूँ न तो जपेंगे और न सुनेंगे, केवल या महामंत्र कूँ ही निज प्रान समझि सदाकाल अनुराग सों रटेंगे।

जा काहू कूँ यह नामरूपी महामंत्र देवो, वाकूँ पहिले भलीभाँति ठोकि बजाइ देखि लीजो, कि याकी श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त और कहूँ तो श्रद्धा नाँइ है, तथा पाके बासन सदृस श्रीस्वामीजी महाराज के चरन कमलन में अविचल श्रद्धा, विस्वास है। तब नित्यबिहार सार या महामंत्र कूँ अद्भुत सुख, स्वरूप एवं प्रभाव कौ भलीभाँति समझाय वाको दीजो, कारन यह महा रसमय नाम जगत में इतेक असंभव एवं दुर्लभ हुतो, जैसे कोऊ अति कृपन व्यक्ति नखन ते ही कुवाँ खोदि के जल निकारै, वो अति दुर्लभ एवं असंभव है। यदि तुम काँची श्रद्धा साधारन प्रानवारे साधक कूँ, यह नाम दै-देवोगे तो, वह बेर-बेर अश्रद्धा और ठौर-टौर कहिबो आदि अवज्ञा अपराध करि-करिकें स्वयं नष्ट है जायगो। अर्थात यावत परमार्थ एवं परमार्थीन ते अति गुप्त छुप्यौ भयौ एकमात्र श्रीस्वामिनीजू के निज महल में ही यह नाम हो, जब श्रीस्वामीजी महाराज स्वयं प्रगट होइ, अति गुप्त रस रीति को सर्वोपरि नित्यबिहार उदय कीन्यौ, तब ही यह नाम जगत में आयो। तौहू अज्ञानी एवं अभिमानी लोग अपने सुभाउ में अति बिवस होइबे के कारन, या अद्भुत अमृत के पीबे तें बंचित रहि जाइ हैं।

देखो,-ये लोग जहाँ-तहाँ मरमरो जल सदृस जो परमार्थ हैं, बिनमें ही लगिबे की चेष्टा तो बड़े परिश्रम सों सतत करें हैं, किन्तु हे बिहारीदास इत-उत माऊँ कहूँ नाँइ भटकि कें रससागर श्रीस्वामीबीटलबिपुलदेव जू के अनन्य आश्रय कूँ ये नाँइ ढूँढ़े हैं, जासों यह सर्वोपरि रस सहज प्राप्त है जाय?

जा उद्दिम ते तन दुखी, मन न लहै विश्राम।
श्री बिहारीदास मनसा डिगै, क्यों निकसै मुख नाम॥४४०

हे बिहारीदास! जिन साधनन के करिबे ते जब देह कूँ अति परिश्रम मालुम परै, तब मन की मनसा डिग जाइ है, मनसा बिचलित होइबे पै मुख सों नाम हू नाँइ निकरै है।

जा नामहिं लै बोलियै, सो फिर उत्तर देइ।
श्री बिहारीदास मोटो अरथ, चतुर समझि संधि लेइ॥४४१॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—श्रीभगवान के नामन कूँ कोऊ कैसे हू लेवै, सबही

नाम परिपूर्न-फल दैबेवारे होइ हैं, ताको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि–हे बिहारीदास ! जैसे जगत में ये स्वाभाविक बात है कि कितेक हू व्यक्ति एकसंग में क्यों न होंइ, जाके नाम कूँ लैके पुकारौगे, वोही उत्तर देइ है। तैसेही परमार्थ राज्य में हू जा स्वरूप के नाम कूँ लेवोगे, वही तुम्हारे हृदय में आवैगो। यद्यपि श्री हरि के अनेक स्वरूप, रुप, गुन, लीला आदि हैं, और बिनही रूप, गुन, लीलाधाम आदिकन ते उदित आपके नाम हैं, जा नाम कूँ साधक लेवैगो, वोही नाम इष्ट स्वरूप ते वाके हृदय में प्रकास करैगो। याते चतुरजनन ने या संधि कूँ भलीभाँति सोचि समझि कें ही अपने इष्ट को नाम लेनो चहिये।

अर्थात जैसे श्रीजानकी-प्राणबल्लभ नाम रटिबे ते श्रीराधारमन वृन्दाबनबिहारी मन में नाँइ आय सकैं हैं। श्रीदामोदर एवं गोबर्धनधारी नाम लैबे ते रासबिहारी स्वरुप सों आप प्राप्त नाँइ है सकैं है। ऐसे ही रुक्मणी प्रान बल्लभ नाम रटिबे ते श्रीराधाबल्लभ प्राप्त नाँइ होइ है। श्रीनृसिंह भगवान को नाम लैबे ते, श्रीनन्दनन्दन स्वरूप की प्राप्ति नाँइ होय है। याही भाँति समस्त श्रीभगवत नामन में रूप, गुन, रस, लीला, धाम आदिकन को भेद स्पष्ट है। जा भाव ते जा स्वरूप कूँ नाम लेबोगे, वाही स्वरूप को प्रेम हृदय में उदय होइगो।

नाम सुन्यौ हो गाँव बसि, नामी सौं न पिछानि।
पूछत पतौ मिल्यौ नहीं, बैठि गह्यौ धीगाँन ।।४४२।।
नाम सुन्यौ हो गाँव बसि, एक नाँउ सौ ठाँउ।
अटक बिना भटक्यौ कटक, अखुटत यहै डराँउ ।।४४३।।

जैसे काहू ने सुन्यौ कि अमुक व्यक्ति या गाँव में बसै है, किन्तु वासों नातों, संबंध, जान-पिछान वाकी कछु नाँइ है, और वा गाँव में वाही नाम के अनेक व्यक्ति हैं। फिर-बिना जान पिछान एवं स्वरूप ज्ञान के कितेक हू पूछताछ करो, पतौ नाँइ मिलै है। पूछतो-पूछतो उल्टे हार मानि, थकिकें बैठि जाय है। ऐसे ही मानो फौज में हू एक नाम के अनेक व्यक्ति हैं, किन्तु काहू ते अटक हुए बिना मिलन नाँइ होइ सकै है। याही भाँति श्रीहरि के हू एक नाम के अनेक रूप, गुन, वैस स्वरूप होइ हैं, जब ताँऊँ साधक के मन में, भाव-संबंध रूपी जान-पिछान अटक बिना, काहू स्वरूप ते प्रेम नाँइ होय सकै है। और याही ते ऐसे साधकन की श्रद्धा हू सिथिल होइबे को डर है।

घर बाहर के सब कहैं, देस बिदेसहि नाँउ।
हितु अनहितु सु दुरै नहीं, प्रेम बिना न पत्याँउ ।।४४४।।

यदि कोऊ नाम लैबेबारो व्यक्ति अपने मन में ये सोचे, कि–मेरो तो श्रीहरि-नाम सों पूरो-हित-प्रेम है ता लक्ष्य सों आपने कह्यौ कि–जैसे एक व्यक्ति के नामकूँ देस-बिदेस एवं घर-बाहरबारे सबही कहैं हैं, किन्तु कौन कितेक हित सों लेवैं है, वाके भाव-संबंध बोलन ते, स्वतः ही स्पष्ट है जाइ है। अर्थात मानो काहू व्यक्ति को नाम व्यवहार आदिक अनेक संबंध द्वारा बिदेस में हू चल्यौ जाइ है, और बिदेसवारे अनेकनवार वा नाम कूँ लेवैं हूँ हैं, किन्तु भाव-संबंध नाँय होइबे के कारन बिनके नाम लैबे में हित-प्रेम नेकहू नाँइ दरसै है, वाही नाम कूँ जब बाके देसवारे लेवैं हैं, तो अपनो देस-जनित-ममता हृदय में कछु आ जाइ है और बाही नाम कूँ वाके घर-वारे जब लेवैं हैं, तब नाम लेत खेम ही, जाको जैसो संबन्ध होय है, ताही अनुसार ममता, भाव हृदय में आइकें, नामी को रूप, गुन हू बिनके हृदय में दर्शन लगै है। याही भाँति साधक अपने हृदय की स्थिति कूँ भलीप्रकार समझि सकै है कि–मैं अपने इष्ट के नाम कूँ बिना हित-प्रेम के, एकमात्र बिदेसिन सदृस ही लऊँ हूँ, अथवा देस-वासिन सदृस कछु अपनायस ते लऊँ हूँ, या घरवारेन की नाँईं ममता-संबंध एवं हित सो लऊँ हूँ। क्योंकि श्रीबिहारीजी महाराज बिना भाव, ममता-प्रेम-हित के कछु विस्वास ही नाँइ करैं हैं, याते बिना हित-प्रेम ते लियो भयो नाम केवल महातम में ही चल्यौ जाइ है।

—

चेरी मिहरी खसम को, नामैं लेत लजाइ।
भैया बेटा जू कहै, निजु नातौ नेह बढाइ ।।४४५।।

जैसे घर की टहलनी एवं स्त्री, अपने मालिक को नाम लेबै में लजावै है, यदि कोऊ इतेक आवश्यक बात आ जाइ तो, अमुक को भैया, चाचा, ताऊ आदिक निज नातो नेह बढ़ामती भई ही कहैं हैं, तैसे ही हमारे महल में उत्तम कुल की पतिब्रतावत, श्रीस्वामिनीचरनारविंद तें संबंध होइबे के कारन मुख सों तो नाम लेबे में संकोच मानैं हैं। किन्तु बिनको रूप, गुन हास परिहास, भावभंगी आदि समस्त क्रिया कलाप सतत हृदय में खेल्यौ करैं हैं।

मन मनसा आसा मगन, तन की कछु न सम्हार।
श्रीबिहारीदास नामु न कहै, निरखै नित्य बिहार ।।४४६।।

फिर आपने अपने ही दृष्टान्त दैकें कह्यौ कि हम मुँख सों तो नाम कबहूँ उच्चारन करैं ही नाँइ हैं, किन्तु श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के नित्यबिहार कूँ निरंतर या प्रकार अवलोकन करते रहैं हैं कि मेरो मन, मनसा, आसा, एवं प्रान वाही में सतत निमग्न हुये रहैं हैं।

नाम निरादर कत करौं, आदर दिन दुलराइ।
श्रीबिहारीदास ममता बिना, नामैं बेचैं खाइ ॥४४७॥

अपने प्रानजीवन लाड़िले इष्ट के नाम कूँ, सदाकाल बड़े आदर सहित, दुलराइ-दुलराइ के ही लेनो चहिए, किन्तु बिना ममता के लोग, नेक-नेक छुद्र-स्वार्थन के पीछे, वाही नाम कूँ बेचि-बेचि के खावैं हैं। अर्थात इतेक नाम लैबे ते हमारो अमुक कार्य सिद्ध है जाइगो, इतेक नाम जपिबे ते अमुक दोष मिटि जाइगो, नाम द्वारा परलोक में बहुत ऊँचो पद प्राप्त है जाइ है, नाम सों हमारी सद्गति है जायगी। श्रीभगवत नाम मोक्ष कूँ प्रदाता हैं। ऐसे हीं कछु लोग मायिक धन-संपति लैकें हू, औरन के ताईं नाम कूँ जपैं हैं, तथा अनुष्ठान-आदिक करैं हैं। याही भाँति इहलोक-परलोक के स्वार्थन के ताईं नाम कूँ बेचैं-खावैं हैं।

संचि धरचौ धन जायगौ, कै संचनहारौ जाइ।
जीवत जनम न सुफल कियौ, तू मरि जैहै पछिताइ ॥४४८॥
ज्यों बढियौ त्यों ही बढै, नाती पूत कमाइ।
अपने अपने भाग कौ, सब कोउ बिलसै खाइ ॥४४९॥

देखो इन लोगन ने इतेक हू ग्यान नाँइ होय है कि हमने जितेक संपति इकट्ठी करि लीनी है, वह काहू दिन अवश्य चली जायगी, अथवा वो नाँइ जायगी तो हम वाकूँ छाँड़ि स्वयं चले जाइगे। या अद्भुत सुखदाई मानव जन्म कूँ, इष्ट के श्रीचरन कमलन में लगाइ कें क्यों नाँय सुफल करि लेवैं, अन्यथा तो मरिबे के बाद केवल पछितामनो ही परेगो ? या प्रकार के उज्जवल विचार न करिकें, अज्ञानिन की नाँईं उल्टे ये सोचैं है, कि जैसे धन-संपति बढ़ि रह्यौ है, ही तैसे तो बढ़तो रहै, हमारे बेटा-नाती हू ऐसे ही सदाकाल कमाते रहैं। इन्हें ये सोचनो चहिये कि जैसो जाके भाग्य में होइगो, तैसे ही वे बिलसैं-खाँइगें।

जारि रह्यौ जाए जिननि, अपने जाए जारि।
संसै मन मरि जायगौ लै बस्तु बिवेक बिचारि ॥४५०॥

तुमने अपने हाथन ते ही अपने माता-पिता कूँ जराइ दीन्यौ है, और ऐसे हू जगत में देखिबे में आवै है, कि स्वयं अपनी संतान कूँ हूँ लोग, अपने हाथन ते जराइ देवें हैं। फिर या दुखदाई नश्वर-देह के पालन-पोषण में एवं धन संपति के संग्रह करिबे में तुम लगि रहे हो, नाँइ मालूम कौन समय या देह कूँ त्यागेनो परि जाय, याते विवेक द्वारा भलीभाँति वस्तु को निर्णय करि, मनकूँ दुर्बल राखिबेबारे यावत संसयन कूँ मिटाइ, दृढ़ अनन्य भावतें श्रीबिहारी बिहारिनीजू कूँ सतत भजन करो।

कितते आए कित गये, काहू जात न डीठि।
खरे बिहारी खसम बिनु, सब घट ओछी ईठि ॥४५१॥
ज्यौं पठयो तैं बापु कौं, त्यौं पठवैगौ तोय।
बैठो बकै बहतरै, अहमक इहकै मोय ॥४५२॥

याही प्रसंग में आपने और हू कह्यौ कि–हे भाई ! कौन कहाँ ते आवै है, और कहाँ जाइ है, आज ताऊँ काहू ने आँखिन ते देख्यौ नाँइ है। साँचो इष्ट श्रीबिहारीजी महाराज कूँ बनाये बिना, सबन के प्रेम ओछी बस्तुन में ही लगि रहे हैं। अर्थात साँचे तथा खरे सर्वोच्च श्रीबिहारी जी महाराज कूँ अपने प्रान जीवन-प्रान प्यारे इष्ट, जिन लोगन ने नाँइ बनाइ कें, और-और धर्म कूँ इष्ट बनाइ राखें हैं,—तिन सबन के हृदय में, प्रेम कछु न कछु ओछे ही हैं। कारन यावत धर्म-कर्म, देवी-देवता तथा जीवमात्र के हर्ता-कर्ता श्रीभगवान ही हैं। तैसें ही समस्त भगवत स्वरूपन को हर्ता-कर्ता एकमात्र प्रेम ही है। वा प्रेम को निज केन्द्र स्वरूप नित्यबिहार है। जहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रेम के निज अनुराग आसक्ति सनेह एवं लाड़-प्यार-प्रीति आदि समस्त गुन परिपूर्न रूप ते निरतंर सुसोभित रहैं हैं, तिनको बिलास श्रीनित्यबिहारिनी जू एवं श्रीनित्यबिहारीजू ही अनादिकाल ते अविच्छिन करैं हैं, ऐसे अदभुत सरस रसीले एवं खरे श्रीबिहारीजी महाराज कूँ खसम बनाये बिना सब घट ओछी ईठ होइ है।

यदि कोऊ ये बात कहै कि–जागतिक सुख-संबंध हू श्रीभगवान के ही बनाये भये हैं, और मानव देह सों ही इनको आस्वादन कियो जाइ सकै है। स्त्री, पुत्र, पौत्रादिक हू बहुत प्रेम करैं हैं, धन-संपत्ति ते हू बहुत से कार्य संपन्न होइ हैं, अब हों हमारो समय हू बहुत परयौ है। श्रीभगवान तो एक नाम लैबे ते ही प्रसन्न है जाइ हैं। यापै आप बड़े अनखनाय के बोले कि–जैसे तुमने अपने पिता कूँ बिदा करि

दीन्यौ है। तैसे ही तिहारे बेटा-नाती तुमकूँ हू बिदा करेंगे। तौहू तुम बैठे-बैठे बहत्तर प्रकार की बातें बनाइ रहे हो। इन बातन ते ही, हमें हू बहकानो चाहो हो। यह तुम्हारी मूर्खता की बात नाँइ है तो और कहा है?

बैरागी बंदर बडे, ब्यौहारी बन भीर।
कूकर खर सूकर बढे, कहाँ अनन्य मन धीर ।।४५३।।

अब श्रीवृन्दावन में हू बड़े-बड़े बंदरन को सो स्वभाववारे तो बैरागी है गये हैं, और व्यवहारी व्यक्तिन की बन में भीर लगी रहै हैं। ऐसे ही कूकर,सूकर, खर स्वभाव के लोग बहुत हैं। यावत बातन ते सम्यक प्रकार सिमिट कें मन में धैर्य धारन करि, इष्ट के ही दृढ़ अनन्यता ते भजन करिबेबारे कहूँ नाँइ दीखें हैं।

धोबी सौंदें लूँगरा, लोभी लेंडी रेह।
साँच बिना निखरे नहीं, बिना ऊजरे सनेह ।।४५४।।

जगत में धोबी कपरा कूँ तो ऊजरो करनौ चाहै, पै लोभ बस कीमती मसाला न लगाइ कें, लेंडी रेह द्वारा ही साफ करै है। जैसे वो कपरा ठीक-ठीक ऊजरो नाँइ होइ है, तैसे ही परमार्थ में साँचे उज्जवल सनेह के बिना, मन निर्मल नाँइ होय है, और निर्मल मन के बिना इष्ट में अनन्य होइबो अति दुर्लभ है।

जे गुन ते औगुन कियें, कहा कपटिन कौ संग।
बिना साँच ठहरै नहीं, ज्यौं कसूँभ कौ रंग ।।४५५।।

संसारी कपटिन के संग तें भक्ति, ग्यान, वैराग्य आदि सर्वोच्च गुनन कूँ हू, जीव औगुन सदृस समझि, ये कहिबे लगै है कि सर्वथा इनमें ही लगिबे ते काहू को काम चलि ही नाँइ सकै है। किन्तु सत्पुरुषन के संग करिबे ते, ये सब भ्रान्त धारनायें कसूंम के रंग की नाईं निर्मूल है जाइ हैं, याते अनन्य जनन को ही संग करिबो उचित है।

भलौ बिकर्मी, देह कौ, बुरौ धर्म बिभिचार।
सिंह रिसाने प्राँन छै कहा सहायक स्यार ।।४५६।।

सर्वोच्च प्रभावसाली सिंह स्वरूप अनन्य धर्म इतेक अद्भुत सामर्थवान होइ है, कि जो साधक साँचे मन ते नेक हू अनन्य धर्म कूँ सपरस करि लेय हैं, वाकूँ वाही छिन इष्ट प्राप्ति कराइ देइ है, इतेक हू नाँइ? वाकी देह ते यदि व्यभिचार आदिक विपरीत कार्य हू बनि जाँइ, तौहू वाते अनन्य धर्म घृणा नाँइ करै है। किन्तु दूजे धर्म में मन

नेकहू चलायमान है जाइ तो, अनन्य धर्म को स्वरूप ही नाँइ रहै है। जाके रिसाइबे ते अपनो उद्देश्यरूपी प्रान ही नष्ट है जाइ हैं, तब श्रृगाल सदृस व्यभिचारी धर्म रक्षा ही कहा करि सकैंगें।

गजी गरीबन कों गिजा, राजा मखमल मौज।
सिंघन के लँहडे सुने न, कहूँ सूरन की फौज ॥४५७॥

जैसे जगत में गरीब लोग गजी सों ही अपनो निर्वाह सुखपूर्वक करें हैं। तैसे ही राजा-महाराजा मखमल में मौज मानैं हैं। याही भाँति अनेक लोग जप, तप, संयम, नेम-व्रत आदि करिकें ही संतोस मानैं हैं। बहुत से परमार्थीजन, बैराग, त्याग करि, भगवत भजन को आनन्द लेवैं हैं, किन्तु जैसे सिंहन के झुंड, और सूर-वीरन की फौज नाँय होइ है, तैसे ही सिंह सूर-बीर सदृस, इष्ट के दृढ़ अनन्य उपासक कहूँ विरले ही मिलै हैं।

ग्वैंडे ही लँहडे फिरैं, काइर गीदर भीर।
सिंह सूर बिरले कहूँ, रन बन राजत धीर ॥४५८॥

याही प्रसंग में आपने और हू कह्यौ कि हे भाई! जैसे गीदरन के झुंड के झुंड, गाँव के आस-पास ही डोल्यौ करें हैं, तैसे ही कायर प्रान के व्यक्तिन की भीर तो, जहाँ-तहाँ लगी रहै है, किन्तु जैसे सिंह वन में, सूर-बीर रन में अति धीर प्रान ते गरजते रहैं है, तैसे ही इष्ट के दृढ़ अनन्य जन एकमात्र श्री वृन्दावन में ही सुसोभित रहैं हैं।

रन बन राजत गाइयत, सिंह सूर सुलताँन।
काइर गीदर ग्वैडहा, भाजैं चपैं निदाँन ॥४५९॥

जैसे सूर रन में, सिंह बन में गरज्यौ करें हैं, याही ते विनके जसन कूं सब लोग गावैं हैं, और जैसे गीदर, भेड़िया, सिंह की गर्जना सुनत खेम भाजि जाइ हैं, तैसे ही सूरबीरन की गर्जना ते कायर प्रान के व्यक्ति चँपि जांइ हैं। याही प्रकार दृढ़ अनन्यन के सिद्धान्तन कूं सुनत खेम, कायर प्रान के व्यभिचारी साधकन को मन दबि जाइ है।

आहट ही बिचरैं कटक, बंब होत सुलताँन।
श्रीबिहारीदास साहि न डिगैं, जब जूझके निदाँन ॥४६०॥

जैसे सूरबीर युद्ध को आहट सुनत खेम, उमगन लगैं हैं, और तोपन के गोला चलत खेम तो, सुलतान सहस और हू बिनके हृदय फूल जाँइ हैं, और वे युद्ध सों प्राण देके ही हटैं हैं। तैसे ही दृढ़ अनन्य जन, और धर्मन की बातन कूं सुनत खेम, अपने अनन्य धर्म में बिनको हृदय उछलन लगैं है, इहलोक-परलोक, हानि लाभ, आपत-विपद् आदि बाधायें ज्यों-ज्यों आवैं हैं, त्यों त्यों अपने धर्म में और हू दृढ़ होय अन्तताऊँ निभावैं हैं।

स्वान सत्रु भूसत रहैं, चपै चलै नहिं भाजि।
लोभ गयंदहि जीति, कैं, रह्यौ सिंह बन गाजि ।।४६१।।

जैसे सिंह कूँ देखि, स्वान कितेक हू भूस्यौ करैं, सिंह न तो बिनते चपै ही है, और न भाजै ही है। ऐसे ही दृढ़अनन्य जनन कूँ देखि, व्यभिचारीलोग-कितेक हू निन्दा-स्तुति क्यों न कियो करैं, न तो वे बिनकी परवाह ही करैं हैं, न डरैं ही हैं। लोभ रूपी हाथी कूँ जीति, सिंह की नाई, श्रीबनराज में सदाकाल गरजते रहैं हैं।

श्रीनागरीदास अनन्यनि को गढ़ बन बांको कहा कोऊ पावै।
नित्यबिहार नित्यसिद्धन को तू काहे कूँ मूँड़ मुड़ावै ॥

पंडित कारीगर बडे, पढैं गढैं घनसार।
सिंह सूर रन बन सुखी, बिन पोथी हथियार ।।४६२।।

विद्वन पंडित लोग कारीगरन की नाईं, सास्त्रन के अनेक विधि-विधान, कर्मन कूँ जीवन के सुधार के तांईं सजाइ सजाइ के बतावैं हैं, किन्तु जैसे सिंह बिना हथियार के ही वन में गरजतो रहै है, और सूर-बीर रन में, तैसे ही दृढ़ अनन्य जन अपने प्रान-प्रीतम इष्ट के प्रेम कूँ हृदय में धारन करि, काहू पोथी-प्रमानन की आवश्यकता नाँइ राखैं हैं।

काहे को पढ़िये बेद पुराना, कागद के अंक न उनमाना।
अनुभव करि प्रीतम पहिचाना, भया प्रत्यक्ष न कछु प्रमाना ॥ —श्रीगुरुदेवजू

कागद लिखि कारे किये, चोखी मसि घसि आँन।
अँकनि में अछिर छिप्यौ, सक्यौ न संसै भांन ।।४६३।।

जो अछर निजु नामु है, सो कबि कहै न कोइ।
झूठे सों सांचौ कहैं, अंत बिगूचनि होइ ।।४६४।।

धौरे कागद मसि लिखै, अछर लिखि परबांन।
श्रीबिहारीदास अनभौ कियै, प्रगट होइ बिग्यान ॥४६५॥

यद्यपि ऋषि-महर्षि एवं अनेक महतन ने जीवन के कल्यान के ताईं बहुत से सास्त्रन को रचना कीनी है, किन्तु बिनके अंकन में ही श्रीभगवत नाम रूपी निज अंक छिप्यौ हुतो हो, ताको प्रभाव कूँ नाँइ समझिबे के कारन, और और धर्मन में विस्वास करि, अपने संसयन कूँ नाँइ मिटाइ सके। सर्वोपरि श्रीभागवत धर्म के अतिरिक्त, और और धर्म, कछु करि ही नाँइ सकैं हैं, याते धौरे कागद पै यावत संसयन तें रहित श्रीभगवत चरनारविंदमें, साँची-सुद्ध भक्ति कूँ, उपजाइबे वारे प्रमानन के ही अंक लिखने चहिये। जिनपै चलिकें ही साधकन कूँ प्रेम उदय है सकैं है।

तरुनापै सूझ्यौ नहीं, चसमा दीयैं बुढात।
उजर गऐं रखबारई, हर्यौ न राख्यौ खात ॥४६६॥

जैसे कोऊ अपने हरे-भरे खेत कूँ तो रखावै नाँइ, उजरिबे पै रखाइबे की चेष्टा करै, ऐसे ही परमार्थ में लगिबे योग्य अपनी युवावस्था कूँ जागतिक विषयन के आवेस में खोय देवैं हैं, जा अवस्था में भलीभाँति सब बातन कूँ सोचि-समझि, सहज साधन करि सकते हे, सोतो कीन्यौ नाँइ, अब बुढ़ापो आइबे पै परलोक साधन समझिबे के ताईं चस्मा चढ़ायो है।

आप बिगारै अपनपौ, काज बिगारै कूर।
तिनसों बनिज न कीजियै, उपजै ब्याज न मूर ॥४६७॥

जैसे कछु क्रूर प्रकृति के जगत में लोग ऐसे हू होइ हैं, कि अपने काम कूँ स्वयं ही बिगार लेवे है, तथा व्यौपार में हूँ बहुत से ऐसे व्यक्ति होय हैं, तिनकूँ धन देबे पै व्याज और मूल दोनों ही चले जाँइ। याही भाँति परमार्थ में क्रूर स्वभाव के साधक ऐसे होइ हैं, जो गुरुन ते उपदेस लेकें कछु नाँइ करें हैं। ऐसे लोगन ते परमार्थ को कहिबो-सुनिबो नाँइ करनो चहिये, कारन बस्तु कूँ बढ़ाइबो तो दूर रह्यौ, जो उपदेस लेवें है, वाहू कूँ खोइ बैठे हैं।

अपराधै करमें करै, लरि आनैं दै दोस।
आप बिगारै अपनपौ, बैरी ताहि न कोस ॥४६८॥

कोऊ-कोऊ ऐसे हू आदमी जगत में होइ हैं, जो अपराध के ही कामन कूँ तो

कियौ करैं है और सबनते लरते-भिरते भये, औरन कूँ ही दोष लगायो करैं हैं। वे अपने जीवन कूँ आपही बिगार रहे हैं। यदि ऐसे हू उदंड सुभाववारे तुम्हारे बैरी है जाँइ, तौहू तुम बिनकूँ बुरो मत कहो।

काज परायौ कीजियै, अपनों आलस खोइ।
श्रीबिहारीदास दुर्लभ लहै, भलो आपनों होइ ॥४६८॥

पराये कार्यन कूँ अपनो आलस छोड़ि कें अवश्य करनो चहिये, क्योंकि निस्वार्थभाव ते काहू को काम कियो जाइ है तो श्रीबिहारीजी महाराज की दुर्लभ दासता सहज प्राप्त होय अपनो भलो है जाय है।

जन्म बिगारचौ भक्ति बिनु, कहा घर भए सपूत।
छेरी कौसौ गरथनौ, तामें दूध न मूत ॥४७०॥

जैसे बकरी के गरे के थनन में न तो दूध ही, न मूत ही होइ है। ऐसे ही यदि बड़ो समझदार, कमाऊ, सुसील सुभाउवारो सपूत बेटा हू श्रीभगवान की भक्ति सों बिहीन होइबे ते, जन्म कूँ बेकार खोइबेवारो हो है।

चोर भाँबरी समझि लै, फाफाकुटनी कोटि।
अपने बस बिनसहिं, सबै लै बलि औली ओटि ॥४७१॥

जैसे व्यभिचारिनी स्त्री चोरन की नाँईं चारों ओर चक्कर सी काटचौ करै हैं, वाके फंदा में जो फँसि जाइ है, बिनके जन्म कूँ ही सर्वथा बिगारि देवै है, तैसे ही श्रीभगवत-माया नाना भाँति के लोभ-लालच दिखाइ के साधक कूँ पथभ्रष्ट करि देइ है।

इत लेखौ उत लोंदगी, इत बल उत लठिहाउ।
नियंता श्रीहरिदास बिनु, कौंन करि सकै न्याउ ॥४७२॥

जैसे जगत में एक ओर तो अपने हिसाब की बात करिबेवारो व्यक्ति होय, और दूजो उदंड प्रकृति को, ऐसे ही एक ओर तो होइ कमजोर, और दूसरी ओर बलवान, ऐसेन को न्याव, जैसे सक्तिसाली व्यक्ति ही करि सकैं हैं, तैसे ही साधक और माया को परस्पर विरोध साँचे श्रीहरि के दास ही मिटाइ सकैं हैं।

वक्ता सो जो वेद बखानै, श्रोता सो जो सबदै मानै।
साखी सोजु कहै सतिभाउ, नियंता बिनु को करै नियाउ ॥४७३॥

यथार्थ वस्तु को निरूपन करिबेवारो तो साँचो उपदेष्टा होय है और यथार्थ बात कूँ मान के चलिबेवारेन कूँ ही श्रोता कह्यो जाय है, ऐसे ही साँचे सतभाव ते कहिबेबारो ही जन साक्षी देवेवारो होय है। सब बातन को साँचो न्याव करिबेवारे सर्व शक्तिमान श्रीभगवान ही हैं।

लोग टटोरा बहक्यौ बहै, ओछी अधिकी सबकी सहै।
श्रीबिहारीदास निकट नित रहै, जैसी देखै तैसी कहै ।।४७४।।

माया ते ग्रसित जागतिक लोग समस्त बातन में टटोरापनो करिबे के कारन बहके-बहके ही रहैं हैं, याही ते बिनकूँ खोटी-खरी सहनी परै है। साँचे श्रीबिहारीदास अपने इष्ट के बल-भरोसा पै जैसी देखैं, तैसी ही कहैं हैं।

सुरस रूप सुख में सनें, अटक्यौ मन गुन गान।
श्रीबिहारीदास जाँनें नहीं, कित भोजन अस्नान ।।४७५।।

सरस रसीले रङ्ग ते चुचाते भये श्रीजुगलके रूप-गुन-सुख में हम सतत सराबोर रहे हैं, और हमारो मन बिनही के गुन गान में ऐसो, अटक्यो रहै है, जासों हमें स्नान-भोजन की हू सुधि नाँय होइ है।

उठि बैठ्यौ हो भोर हीं, एक तान गुन गान।
तुम्हैं आवत जात अथै गयौ, तीन काल अस्नान ।।४७६।।

या प्रसंग में अपनो ही दृष्टान्त देते भये आपने कह्यौ कि एक समय बड़े भोर में उठि कें "बिहरत लाल बिहारिन दोऊ श्रीजमुना के तीरे तीरे" याही तुक की गानमें, हमारो चित्त इतेक पगि गयो कि—भोर तें संध्या है गई और तुम तीन काल को स्नान करि चुके हमें मालुम हू नाँइ परी।

या संबंध में यह घटना हू प्रसिद्ध है कि—एक समय श्रीजमुनाजी के किनारे मदन टेर पै बैठे-बैठे आप दातुन करि रहे हे, वा समय "बिहरतलाल बिहारिन दोऊ श्रीजमुना के तीरे तीरे" या तुक कूँ गाय रहे हे। ठाकुर श्रीमदनमोहनजी के पुजारी प्रातःकाल स्नान करि, जमुना जल लैकें लौट गयो। ऐसे ही मध्याह्न में तथा सायंकाल में हूँ, जब स्नान करि, श्रीजमुनाजल लेंकें जाइबे लगे, तब श्रीगुरुदेव जू ते प्रार्थना कीनी कि हे महाराज! आपकी तो दातुन हू पूरी नाँइ भई, यहाँ सूर्य अस्त है गये।

गौंहीं घुसै गोंहीं मुसै, गों गहि लुरखुरी लेइ।
गों गयैं गौं पूछियै, तौ फिरि उत्तर न देइ ॥४७७॥

इष्ट के सतत सन्निकट रहिबेबारे साँचे श्रीबिहारीदास तो सहज स्वभाव ही जैसी देखैं, तैसी ही कहैं हैं, और जगत के लोग अपने स्वार्थ कूँ सिद्ध करिबे के ताईं नाना प्रकार ते अनुकूल-प्रतिकूल बनि कें लुरखुरी लै-लैके खुसामद कियो करैं हैं। अर्थात अपनी गर्ज ते लोग सत्रु-मित्र बनि जाँइ, तथा चोरी हू करैं हैं, कबहू रिझावैं हूँ हैं, जब अपनी गौं निकस जाइ, तब पूछिबे पै हू उत्तर नाँइ देइ हैं।

जो अपनौ उघटन करें, ताहि न उघटै कोइ।
जो जाकौ उघटन करै, सो फिटु फिटु नकटो होइ ॥४७८॥

जो लोग अपने दोषन कूँ स्वयं ही कह्यौ करैं हैं, बिनके दोषन कूँ कोऊ नाँइ कहैं हैं। इतेक पै हू यदि बिनके दोषन कूँ कोऊ कहै तो वाकूँ सब लोग धिक्कारैं हैं।

भूख प्यास सबही लगै, सब प्राननि के प्रान।
आपुन नेंकु न रहि सकै, औरनि सिखवै ग्यान ॥४७९॥

जगत में सबहिन कूँ भूख-प्यास लगै है, सब प्रानिन के प्रान होय हैं, किन्तु बहुत से लोग ऐसे होइ हैं, जो स्वयं तो काहू बात सों नेंक हू नाँइ रहि सकैं है, औरन के ताईं, नाना प्रकार ते उपदेस दियो करैं हैं।

ओषर सब ही ठौर के, राखे आप बनाय।
श्रीबिहारीदास कृत दूखई, तो करता खसम रिसाय ॥४८०॥

जगत में छोटे-बड़ेन की एवं ऊँची-नीची जाति की तथा लोक, परलोक आदि सबहीं ठौर की मर्यादा, स्वयं श्रीभगवान ने बनाय राखी हैं, बिन मर्यादान कूँ उल्लंघन करिबे ते लोक में हू निंदा होय है, कर्त्ता स्वरूप श्री हरि हू रिसाइ जाँइ हैं।

काँध कमरिया फाटरी, हाथ करवरा फूट।
श्रीबिहारीदास निरभै भए, सुख ज्यौं भावै त्यौं लूट ॥४८१॥

याते हे बिहारीदास ! हाथ में फूटो भयो तो करुवा, कंधा पै फटी भई कामरी राखिकें, ऐसे निश्चिन्त है जाओ, जासों लोक में काहू बात को भय रहि ही नाँइ सकै। फिर तुम श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के मनभामते लाड़ लड़ाइ-लड़ाइ कें सुख लूटो।

करुवो लाग्यौ जगत कौं, मीठौ लाग्यौ मोहि।
श्रीबिहारीदास हरिदास बल, कर गहि गाऊँ तोहि ॥४८२॥

लोक में करुवा-गूदरी की रहनी सबन कूँ करुवी लगै है, किन्तु मोकूँ तो यह रहनी बहुत ही मीठी लगै है। श्रीस्वामी जी महाराज की कृपा बल पैं, करुवा-गूदरी लेबे ते, इहलोक-परलोक के और-और समस्त सम्बन्ध हमारे भली-भांति टूट गये, जासों अब हम श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के जस गाइ-गाइ कें मनमाने लाड़ लड़ावें हैं।

मीठे सों करुवौ कहैं, यों भूल्यौ संसार।
करुवे तैं मीठौ भयौ, जब कीनों विमल विचार ॥४८३॥

जगत के लोग तो बिना सोचे-समझे ही ऐसे भूलि रहे हैं, कि अति मीठी करुवा-गूदरी की रहनी कूँ, करुबी बतावें हैं। जब हमने समस्त रीति भांति सों बिमल बिचार करिके देख्यौ तब परमार्थ प्राप्ति के ताईं, करुवा-गूदरी की रहनी ही सर्वोपरि सुखदाई मीठी लगी।

ब्रज रज कौ करुवो गढ्यौ, संतत सुखद प्रसाद।
श्रीबिहारीदास रस परस बिनु, को जानें सुख स्वाद ॥४८४॥

कछु लोग अपने मन में ऐसी सोचें हैं कि—जगत में माटी के बासन ते एक पोत काम लैबे पै फेंक देनो चहिये, किन्तु विन लोगन कूँ यह ग्यान ही नांइ हैं कि—यह करुवो हमारे प्रान-जीवन साक्षात श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के श्रीचरन कमलन की रज सों बन्यौ भयौ है, याते जो वस्तु यासों सपरस है जाइ है, वो सदाकाल अद्‌भुत सुखदाई एवं प्रसाद स्वरूप परम पवित्र है। जिन लोगन के हृदय या रस सों, कबहुँ सपरस भये ही नाँइ हैं, वे बेचारे या सुख स्वाद कूँ समझि ही कैसे सकें हैं।

चौरैं मुँह साँकरै गरै, सुबन ऐंटनी सूल।
तन हरुवो गरुवौ सजल, करुवौ मीठौ मूल ॥४८५॥

करुवा को स्वरूप एवं रूप बताते भये आपने कह्यौ कि—करुवा को मुँह चौरो, गरो सकरो, एवं सुन्दर बनावट के संग-संग एक टोटी और होइ है। उठाइबे में बहुत हरुवो, जल पर्याप्त मात्रा में आ जाइ, सुखदाई ऐसो है कि यावत मिठासन को मूल है।

श्रीबिहारीदास ब्रज यौं बसौ, करुवो कामरि ख्यातु।
जथा लाभ संतोष गहि ब्रज बासिन कौ भातु ॥४८६॥

हे बिहारीदास ! श्रीब्रज में करुवा-कामरि की रहनी सों ही अपनी प्रसिद्धि करिकें बसनों चहिये। एकमात्र श्रीब्रजवासिन के घरन ते ही टूक-भात जो-कछु मिल जाइ, ताही में बड़ो संतोष करि, सुखी रहनो चहिये।

श्रीबिहारीदास सँवारि सरु, लियैं सिंधोरा हाथ।
सनमुख सती सराहियै, जरै खसम के साथ ॥४८७॥
हाथ सिंधोरा करुवरा, माथैं तिलक सिंदूर।
श्रीबिहारीदास सत जाँनियै, जरत जुरत रनसूर ॥४८८॥

जैसे स्त्री पति के संग भाँवर डारि, सुहाग के सिंघोरा हाथ में लै, केश-पास संवारि सिंदूर को तिलक करि चलै है, तैसे हीं तो विहारिदास श्रीगुरुदेव के द्वारा मिल्यौ भयौ सुहाग स्वरूप श्रीस्वामिनी लाल के चरन रज को, माथा पै तिलक धारन करैं हैं और हाथ में सिंधौरा स्वरूप करुवा लैके चलैं हैं। जैसे पति के संग जरिबेवारी सती की तथा रन में मरिबेवारो सूर-बीर की सर्वोपरि प्रसंसा होइ है, ऐसे ही अंत ताऊँ भलीभाँति करुवा-गूदरी की रहनी कूँ निभाइबेवारे बिहारीदासन की प्रसंसा होइ है।

श्रीबिहारीदास माधूकरी, सुनियत चारि प्रकार।
तिनके भेद विभेद सुनि, को गुन कौंन विकार ॥४८९॥

करुबा-गूदरीवारेन कूँ माधूकरी वृत्ति ते ही निर्वाह करनो चहिये, ता लक्ष्य सों माधुकरीन के भेद बताते भये आपने कह्यौ कि–हे बिहारीदास ? माधुकरी चार प्रकार की सुनिबे में आवैं हैं, तिनमें कौन तो गुन करिबेवारी है, और कौन विकार करै है तिनके भेद-बिभेद मैं तुमसों कहूँ हूँ।

अजगर कौ गुन अमृत कौ, सिद्ध भयौ संतोस।
सरधा देइ गुन दूध कौ, साधक अलि बिनु दोस ॥४९०॥
तीछन बचन बिलाव के, ऐंचि रुधिर सौं लेइ।
ता खायें तामस बढै, जहाँ तहाँ दुख देइ ॥४९१॥
और वृति सुनि सिंघ की, भोजन दाइ उपाइ।
हिंसा करि आमिख भषै, विष प्राँननि लै जाइ ॥४९२॥

अजगर वृत्ति की माधुकरी के गुन अमृत सदृस होइ हैं, जाकूँ संतोष सिद्ध है गयो है, वे ही महतजन निंभाइ सकैं हैं। एकमात्र श्रद्धा ते ही दई भई माधुकरी

कूं जो संत लेवैं हैं, ताको गुन दूध के सदृस होय है, जो साधक भँवरा वृत्ति तें माधूकरी करैं हैं, वो माधुकरी समस्त दोषन ते रहित होय है। अर्थात-श्रद्धा ते देबेवारे घरन ते हू एक ठौर नाँइ लेंकें, अनेक घरन ते लेवै हैं, वो ही माधूकरी समस्त दोषन ते रहित है। जो लोग तीखे वचनन द्वारा डाँट-फटकारकें माधुकरी-को लेइ हैं, वो माधुकरी देबेवारे के खून सदृस ही माननी चहिए। वाके खाइबे ते साधक के तन-मन में तामसि बढ़ि, जहां-तहाँ लरतो-भिरतो दुःख पावै है। एक बृत्ति सिंह सदृस ऐसी हू होइ है कि–साधक जहाँ-तहाँ मौका मिलत खेम, दैबेवारे को कछु सोच-विचार नाँइ करि, केवल पाइबे ते ही मतलब राखै है, ता माधुकरी कूं या प्रकार को समझनो चहिएं कि जैसे कोऊ हिंसा करि आमिष भक्षण करै है। वा भोजन को गुन बिष सदृस होइ हैं, जासों परमार्थरूपी प्रान ही चले जाइ हैं।

काहे करि साधन करै, काहे सिद्ध कहाइ।
श्रीबिहारीदास विवेक बिनु, श्रम करि करि मरि जाइ ।।४८३।।

हे भाई! विवेक तें विहीन कोऊ कितेक हू परिश्रम करि-करि साधन द्वारा चाहै सिद्ध हू क्यों न कहाइ लेउ, सब बेकार है। विवेक वाही सों कह्यौ जाइ है कि-यावत परमार्थन में सर्व-सारातिसार परमार्थ कूं निर्णय करि ताके ही स्वरूप–अनुरूप–भाव द्वारा अनन्य साधन करै।

जद्दपि भक्ति समूल तरु, यह जानें त्रैलोइ।
जैसेई जल सींचियै, तैसोई फल होइ ।।४८४।।

यद्यपि भक्ति महारानी के समस्त अंग कल्पवृक्ष के समान हरे-भरे होय हैं, या बात कूं समस्त जगत जाने है, किन्तु जैसे भावरूपी जल सों साधक सींचें हैं, तैसोई फल बिनकूं प्राप्त होय है।

विषईन कौ जल अन्न लै, खाएँ विषई होय।
काम क्रोध घरु भरि रहै, भाजति भक्ति बिगोइ ।।४८५।।

परमार्थ में चलिबेवारेन कूं विषइन को अन्न जल ग्रहन करिबे ते, स्वयं वाही के हृदय रूपी घर में, काम-क्रोध आदि भरि, वाकी हू बुद्धि विषयी है जाय है जाके कारन भक्ति महारानी तहाँ ते भाजि जाँय हैं।

हत्या करत सबै डरैं, हत्यारेहि डराहिं।
बडे हत्यारे जांनियै, जे हत्यारे के खाँहि ।।४८६।।

हत्या खाई पेट भरि, भूख भक्ति गई भागि।
श्रीबिहारीदास बिनु तांमसी, बढ्यौ बैरु अरु आगि ।।४९७।।

हत्या करिबे ते तथा हत्या करिबेवारेन तें सब कोऊ डरें हैं, किन्तु सबते बड़ो हत्यारो वाकूँ समझनो चहिये, जो हत्या करिबेवारेन को अन्न जल खाइ हैं, जाके कारन भक्ति रूपी भूख तो बिनके रहै नाँइ है। तामसी वृत्ति द्वारा बैर–विरोध रूपी अग्नि बिनके बढ़ि जाइ है।

दान पुन्य पापै कटै, पापी तीरथ न्हाइ।
जल सबही उज्वल करै, वाके मैलै खाइ ।।४९८।।
पापी पापै संग्रहै, ज्यौं साँवन की माँदि।
उदर अजीरन खान को, पतित बोझ सिर लादि ।।४९९।।

दान-पुन्य करिबे ते जैसे पाप कटैं हैं, तैसे तीरथ स्नान हू पापीन कूँ उज्ज्वल करि देय है, किन्तु बहुत से ऐसे महापापी होय हैं, जो तीरथन पै हू पापन कूँ संग्रह करि, अपने मूँड़ पै या प्रकार को बोझ लादि लेवे हैं, जैसे सावन के महीना में लोग गोबर की माद कूँ एक ठौर इकट्ठो करि देवैं हैं। ऐसे ही कछु लोग अपने पेट कूँ इतेक भरि लें हैं, जासों अजीरन है जाय है।

श्रीबिहारीदास पूरे भजन, जैसैं अग्नि प्रचंड।
गीले काठनि लै जरै, त्रिनहि करै खंड खंड ।।५००।।

साँचे दृढ़ अनन्य श्रीबिहारीदासन को भजन तो, ऐसो पूरो होइ है, जैसे प्रचंड प्रज्वलित अग्नि, वामें तृन सदृस साधारन पापिन के पाप तो नष्ट हो ही जाँइ है, किन्तु गीली लकरी सदृस, बड़े बड़े पातकिन के पातक हू भस्म है जाइ हैं।

श्रीबिहारीदास जे तेजसी, जाके अन्नै खाहि।
सुद्ध करै छिन एक में, लैं सतसंग मिलाहि ।।५०१।।

ऐसे तेजस्वी श्रीबिहारीदास जाके अन्न कूँ खाइ लेवैं, वाकूँ एक छिन में ही सुद्धकरि, भक्ति दान दै, अपने सत्संग में मिलाइ लेवैं हैं।

श्रीवृन्दावन रस भूमि सब, पैंड पैंड पर भेद।
कहुँ खारौ मीठौ मरमरौ, यहै समझि भ्रम छेद ।।५०२।।

यदि कोऊ ये कहै कि—या रस भूमि श्रीवृन्दावन में हू श्रीजुगल के स्वरूप में भिन्न-भिन्न रसोपासना महतपुरुषन ने वर्नन कीनी है, जिनकूँ सुनि के हृदय में भ्रम

है जाइ है, ताको लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि–हे भाई ! जैसे एक ही भूमि में पैड़-पैड़ पर खारो-मीठो, तथा मरमरो पानी निकरि आवै है, ताही प्रकार श्रीवृन्दावन रस भूमि में हूँ, अनेक रसन की उपासना है। या बात कूँ समझि, तुम अपने भ्रम कूँ मिटाइ लेउ।

खेत बिगारयौ खरतुवा, सभा बिगारी सूंम।
धर्म बिगारयौ लालची, ज्यों केसर मिलै कसूंम ॥५०३॥

जैसे खेत कूँ खरतुआ, सभा कूँ सूम, तथा केसर कूँ कसूंम बिगारि देवैं हैं, तैसे ही अपने मन अनुसार आस्वादन करिबेवारे लालची-लोगन ने श्रीवृन्दावन निज रस-रीति-धर्म कूँ बिगारि दीन्यौ है।

नाम रूप विन गुन कहा, केसर कुसुम कसूँभ।
श्रीबिहारीदास बिनही कसैं, दोऊ दीसैं ऊँभ ॥५०४॥

हे बिहारीदास ! बिना गुन के परीक्षण किये, नाम तथा रूप एक समान होइबे पै हू स्वरूप समझ में नाँइ आय सकै है, जैसे केसर एवं कसुँभ के फूल कसे बिना एक समान ही दीखैं है।

गात पात दोऊ सरल, दुहुँनि अगोल जरोल।
यह गांडो वह सरकंडो, सोठौ मीठौ मोल ॥५०५॥

ऐसे ही श्रीबिहारीदासन तें और हू दृष्टान्त दैते भये आपने कह्यौ कि–ईख को गाँड़ो और सरकंडे दोऊन को आकार-प्रकार एक समान ही होंय हैं, किन्तु एक में तो रस भरयो भयो होय है, और एक नितांत सूखो होय है। याते दोऊन के स्वरूप एवं मोल में बहुत अन्तर है। तैसे ही श्रीवृन्दावन की निज रस रीति स्वरूप में तथा और-और रस-स्वरूपन में अन्तर है।

काग बिगारयौ कौंन कौ, कोइल किह करि दीन।
मुष मीठे बचननि कहै, सबको मन हरि लीन ॥५०६॥

जैसे कौआ काहू को कछु बिगारे नाँय है, तौहू सब लोग बुरे बोलिबे पै ही, वाको दृष्टान्त दियो करैं हैं। कोयल काहू के लिये कछु देवै नाँइ हैं, एकमात्र मीठो बोलिकै ही सबन के मन कूँ हरन कर लेइ है। तैसे ही प्रत्येक व्यक्तिन कूँ सबन तें मीठो बानी ते ही बोलनो चहिये।

सुन्दर संग सजाति सब, श्रीबृन्दाबनहि समीति।
नींबहि लपटी माधुरी, श्रीबिहारिनिदासि प्रतीति ।।५०७।।
अमली सों अररू अरयौ, रेबजु राखै पीठि।
प्रेमैं पोषै पापरी, अरनी मेरी ईठि ।।५०८।।
छौंकर की छहियाँ भली, कोमल कुंज करील।
अरुण हरित दल-फल भरे, ढरे मिले मन मील ।।५०९।।

सजातीय प्रेमिन कौ संग ही सब तें सुन्दर होइ है, जो कि एकमात्र श्रीवृन्दावन में ही प्राप्त होइ सकै है। क्योंकि जहाँ के लता-वृक्ष हू सहज सुभाउ प्रेम में झूम्यौ करैं है, और अपने आश्रितन कूँ प्रेम दान दैकें, निज रसरीति सौं पोषन कियौ करैं हैं। इन लतान की कृपातें जिन महत्पुरुषन की प्रेममय दृष्टि है जाइ है, बिन कूँ ही यावत लता प्रेम ते भरी पूरी, फली फूली, झूमती भई दीखन लगैं हैं। जैसे नीम को वृक्ष महामाधुरी ते भर्यो पूर्यो, एवं इमली तें अररू मतवारो होय अरि रह्यौ है। रेवज पीठ पै रक्षा करि रह्यौ है पापरी प्रेम कूँ पोषन कर रही है, अरनी तो मोकूँ प्रानन ते हु प्यारी लगे है, छौंकर की छैयाँ अति सुहावनी, करील की कोमल कुंज, ये सब अरुन हरित-दल-फल-फूलन ते सुशोभित होय हमारे मनसों मन मिलाय रहीं हैं।

बादि बाग सौं जिनि पचौ, श्रम बाढि है उपाधि।
श्रीबिहारीबिहारिनदासि ह्वै, एक कलपतरु साधि ।।५१०।।

जैसे बगीचा में अनेक प्रकार फल-फूलन के वृक्ष अपने-अपने रूप, गुन, सुभाव के न्यारे-न्यारे होय हैं, और बिनके लगायबेवारेन कूँ हूँ बहुत सौं परिश्रम करनौ परै है, तासों बड़ी भारी उपाधि ठाड़ी है जाय है। तैसेही जगत में परमार्थ एवं परमार्थीन के बगीचा सदृस नाना भाँति के भाव प्रेम देस हैं, तिन सबन कूँ साधिकें चलिबेवारे साधकन कूँ, बहुत पचनौ परै है। कबहूँ २ भाव, सिद्धान्त विरुद्ध होयबे के कारन, परस्पर उपाधि हू ठाढी ह्वै जाइ है। याते सबके मूल कल्पवृक्षवत यावत् कामनान कूँ परिपूर्न करिबेवारे, श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन तें अनन्य सम्बन्ध बाँधि, श्रीविहारी-विहारिनी जू कूँ, सदाकाल प्रेम ते सेवो, यासौं तुम्हारे समस्त मनोरथ परिपूर्न रूप ते सहज सफल है जाँयगे।

एकें साधें सब सधें, सब साधें सब जाइ।
ज्यों जल सींचै मूल कों, तौ फल फूल अघाइ ।।५११।।

मूलहि सठ सींचै नहीं, साखनि पर जल नाइ।
आस करै फल फूल की, मूल गएँ पछिताइ ॥५१२॥

जैसे वृक्ष के मूल में जल देबे तें बाके साखा-प्रसाखा, पत्र, पुष्प एवं फलादि सबही पूर्नरूप ते परिपुश्ट है जाँय हैं, तैसे ही एक श्रीस्वामी जू महाराज के अनन्य भजन करिबे ते, यावत परमार्थन कौ सेवन है जाय है। जो लोग सर्वोपरि नित्यबिहार रस प्राप्ति के ताईं, मूल स्वरूप श्रीस्वामीजू कूँ त्यागि साखा-प्रसाखा-स्वरूप और-और परमार्थ एवं परमार्थिन कूँ सेवे हैं, बिनकौ परिश्रम यौंहीं निष्फल जाइ है।

श्रद्धा समै समाइ बिनु, काहू दुख जिनि देउ।
श्रीबिहारीदास सांची कहै, प्रांन काढि किन लेउ ॥५१३॥

यदि कोई ये बात कहै कि जो बस्तु यावत परमार्थन को मूल कल्पवृक्षवत मनोरथ पूर्न करिबेबारी है, बाको उपदेस समस्त लोगन कूँ क्यों नाँइ कियो जाइ? ताको लक्ष करि आपने कह्यौ कि–हे बिहारीदास ! तुम्हारे अनन्य धर्म कूँ समझिबे योग्य प्रथमतो वाकी श्रद्धा, दूजे उपयुक्त समय स्वरूप बुद्धि होइ तथा धारन करिबे की योग्यता हो, तभी हमारे रस-उपासना की चर्चा करनी चहिये, अन्यथा कहिबे ते वो कछु-की कछु समझि, अपनी पहिली धारना ते विचलित होइबे ते केवल दुःख ही होयगो। यदि धर्मिन की महती सभा में कहिबे की आवश्यकता परिजाइ तौ अति निसंक ह्वै, खूब डाट-डाट कें साँची कहो, चाहै कोऊ तुम्हारे प्रान क्यों नाँइ लै लेवै?

सुंघि सांघि धरमी भए, सिलह न पूजैं साध।
ढिग आयौ बूड्यौ मरै, औंडौ धर्म अगाध ॥५१४॥

जैसे सिला बीनबेवारे लोग अनेक ठौरन ते बीन-बीन के सिला लावैं हैं, तैसे ही कछु लोग दो-चार काहू घर की, दो चार काहू के घर की बात-सिद्धान्तन कूँ संग्रह करि, अपने हृदय में एक देस ठाड़ो करि लेइ हैं, बिनकूँ टकसाली उपासक कोऊ महत्ता नाँइ देवैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज को रसिक अनन्य धर्म तो, इतेक अद्भुत अगाध औंड़ौ है जो कि स्वयं श्रीव्रजपति कौ तो अति दुर्लभ है, साक्षात श्रीलक्ष्मीपति लालच करिबे में हू अपने मन में लज्जा मानैं हैं, और तो और, रसिक अनन्य नृपति चूड़ामनि श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें विहीन रसिकजन हू सुनिबे में भय खाइ हैं।

लक्षिमीपति व्रजपति को दुर्लभ, इनते कौन बड़ो अधिकारी।

× × ×

या रस को ललचात लजाते, लक्षिमीपति नारायन ॥

× × ×

भक्त साखि को भरि सकैं, रसिकन के मन त्रास।

× × ×

साधक सिद्ध साहु संग ही सब धन अभिमान नवायन, —श्रीगुरुदेवजू

जामारग थाके मुनिगना, रसिकन पकरचौ कान।

श्रीस्वामी हरिदासजू, रसिकन मध्य बखान ॥ —श्रीललितकिशोरीदेवजू

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, भजन कोंन हूँ गाँस।
गहै न चिहुटी चीमटा, ज्यौ नोंह में की फाँस ॥५१५॥

जैसे नख में लगी भई फाँस इतेक अति झीनी होइ है, जोकि नख चिमटा एवं चिहुँटी, काहू के पकरिबे में, नाँइ आइ सकै है। तैसे ही रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज के रसमय भजन की, अतिझीनी गाँस कूँ, न तो और-और रसन के सिद्धान्त द्वारा ही कोऊ समझि सकै है, और न श्रुति, स्मृति, सास्त्र-पुरान आदिकन के बर्नन द्वारा ही।

श्रीबिहारीदास जे चतुर मत, ते बस करि सतभाइ।
तिन सौं कीनै चतुरई, सबै गँवाइ बाइ ॥५१६॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि–इतेक सर्वोपरि रस देस एवं वाकी गाँसन कूँ ग्रहन करिबो तो दूर रह्यौ, पहिले वाकूँ समझनो ही हमारे लिये अति कठिन है, ताकोलक्ष्य करि आप बोले कि–हे बिहारीदास ! जो सुद्ध प्रेमी स्वभाव के चतुरजन होय हैं, वे तो अपने साँचे भाव सों ही श्रीस्वामी महाराज कूँ अपने बस करि लेवें हैं, और जो मूर्ख होइ हैं, वे बिनते हू नाना प्रकार की चतुराई लगावन लगें हैं। जासों बिनको जन्म-समय एवं समझचौ सब यों ही चल्यौ जाइ है।

मंत्र-जंत्र सब दूर बहाव। कोटिक बसीकरन सतभाव ॥ —श्रीगुरुदेवजू

उतै रौहकी पारसी, इत पंडित कौ पाठ।
भाषा ही संसै मिट्यौ संस्कृत तै नाठ ॥५१७॥

प्रायः जगत में लोग परमार्थ देस के संसय मिटाइबे के ताईं यातो रोह देस की

फारसी, या संस्कृत के वचन को सहारो लेवै हैं, किन्तु मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–हमारे यावत संसय श्रीस्वामीजी महाराज के मुखकमल तें प्रगट भई बानीन सों ही भली-भाँति मिटि गये हैं। ताते तुम संस्कृत प्रमानन कूँ नाहीं करि देउ, अर्थात यावत परमार्थन को सार है, श्रीहरिचरनारबिंद तें प्रेम, वा प्रेम को हू सर्वोच्च पूर्नतम स्वरूप-एकमात्र श्रीनित्यबिहारिनी जू को नित्यबिहाररस, जाको मर्म-भेद, उपदेश एवं प्राप्ति, केवल श्रीस्वामीजी महाराज की बानी द्वारा ही हैसकै है, याते साँचे परमार्थ के लालायित साधकन कूँ और काहू प्रमानन की आवश्यकता ही नाँइ रहै है।

जाति बिगारी भक्ति लगि, कर्म विगारयौ ग्यानु।
ब्रज में भली न फारसी सहंसकृत अभिमानु ॥५१८॥
सहंसकृत जिनके वचन, ते जाचैं ब्रज धूरि।
ब्रज बसि बोलै फारसी, बँधे जाँहिगे दूरि ॥५१९॥

जैसे श्रीभक्ति महारानी में लगिबेबारेन कूँ अपनी जाति को अभिमान नाँइ रहै है, तैसे ही ग्यान उदय होइबे पैं, कर्मन में श्रद्धा नाँइ रहै है, प्रेम प्रधान श्रीव्रजमंडल में अपमानित फारसी शब्द अबे, तबे आदिक बोलिबेवारेन कूँ अपराधी समझि, बाँधिकें दूर भेज दियो जाय है। ऐसे ही संस्कृत अध्ययन द्वारा पंडिताई को अभिमान करिबो अति अनुचित है, कारन सर्व प्रथम संस्कृत के प्रकास-कर्त्ता श्रीब्रह्मा जी हू, या व्रज-रज प्राप्ति के ताईं अनेक प्रकार ते सतत याचना कियो करैं हैं।

प्रगट्यौ उज्जल धर्म जस, गई कालिमाँ पराइ।
श्रीबिहारीदास निधरक भयौ, अब न विघन नियराइ ॥५२०॥

अद्‌भुत सर्वोपरि नित्यबिहार महाउज्ज्वल-रस रूपी धर्म जस कूँ, श्रीस्वामी जी महाराज ने ऐसो प्रगट कीन्यौ है, जामें लोक वेद, ईश्वरतारूपी समस्त विसुद्ध प्रेम विरोधी कालिमा समाप्त है गई है। याते समस्त रीति-भाँति सों हम ऐसे निधरक है गये हैं, कि जासों कोऊ विघ्न हमारे पास अब आही नाँइ सकै हैं।

जिनके उर सिर कालिमाँ, तिनमें सबै दुराव।
उज्ज्वल मैली छींट कौ घर घर चलत चबाव ॥५२१॥

जिनके हृदय एवं माथा पै स्वसुखतारूपी कालिमा होइ हैं, बिनके ही चित्त में अनेक प्रकार के दुराव, भ्रम भरे रहैं हैं। और जो उज्ज्वल रहनी के लोग होइ हैं,

बिनमें नेक कालिमा होइबे ते घर-घर चर्चा ऐसे होन लगै है, जैसे सफेद कपड़ा में नेक हू कारे छीटा परिबे ते, सबकूँ स्पस्ट दीखन लगै है।

बेटी ब्याही सात सै, मिहरी बरी हजार।
चेरिनि लूट्यौ चौहटै, गुरु भूल्यौ त्यौहार ।।५२२।।

बहिर्मुख स्वार्थी लोग अपनी बासनान कूँ मानों सात सौ जगह पै लगाइ के राखै हैं, और ऐसे ही हजारन की आसा-भरोसा बिनमें बंधी रहै है, ताहू पै घरवारी तो चौरे-चौहट्टे ऐसी लूटती रहै है कि, वाके रूख के विपरीत नेक हू नाँइ चलि सकैं है। और तो और श्रीगुरुन के त्यौहार की हू इन्हें स्मरन नाँइ रहै है।

मिहरी कौं अरु आपकौं, खाँन, पान पकवाँन।
पाँखंड धर्म दुरै नहीं, गुरु डहक्यौ करि ध्याँन ।।५२३।।

श्रीभक्ति महारानी की दीक्षा लैके हू, बहुत से लोग माया में ऐसे लिप्त है जाँइ हैं, जो घरवारी तथा आप तो भाँति-भाँति के पकवान बनाइ, खाइ लेवैं है, और श्रीगुरुदेव बाट जोहते-जौहते परेशान है जाँइ हैं, ऐसे जनन के मन को पाखंड चौरे आ जाइ है।

जाके घर में हर चलै, वन काटि कियौ मैदान।
सत्रु-मित्र कौ करि सकै, ताकौ कृत्त प्रवाँन ५२४।।

जिन परमार्थी जनन के हृदय रूपी घर में, ग्यान-रूपी हर निरंतर चलै हैं, बिनकी वन सदृस समस्त बासनायें कटि, मैदान सदृस विशाल उज्ज्वल चित्त है जाय है। ऐसे विवेकी जनन के जागतिक मित्र-सत्रु एवं माया हू कछु नाँइ करि सकै है, बिनके कृत्य ते यह स्थिति स्पस्ट मालुम परि जाइ है।

नीरस जोतै मानसर, रस जु दुरयौ जल माँहि।
श्री वृंदावन दुर्लभ भयौ, कहा कलपतरु छाँहि ।।५२५।।

नीरस हृदयवारे जन कल्पवृक्ष सदृस सिद्ध पुरुष क्यों न होंइ, जल-बिहीन सरोवर की नाईं शुस्क परमार्थन को ही सेवन कियो करैं हैं। सरस रसीले भाव के बिना श्रीवृन्दाबन निकुंज महल रस प्राप्त करिबो बिनको अति दुर्लभ है।

रोम रोम पै सुरभि कैं, यौं भक्ति भरयौ संसार।
विन थन दूध न पाइयै श्री हरिदास विहार ।।५२६।।

जैसे गैया के रोम-रोम में दूध होइ है, किन्तु थन के द्वारा ही दूध लियो

जाइ है तैसें ही भक्ति यावत संसार में भर रही है, तौहू सर्वोपरि नित्यबिहार-रूपी-दूध, श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य आश्रय ते ही प्राप्त है सकै है।

दुहियत ऊंबर आक बर, सुरभी सैंहड, भेड।
नाँम वरन में सब मगन, को पूछै फल पेड ।।५२७।।

जैसे गूलर, आक, बर, सुरभी, सेंहड़, भेड़ आदि सबन कें ही दूध होइ हैं, किन्तु प्रत्येक के गुन-स्वाद भिन्न-भिन्न हैं, तैसे ही परमार्थ हू भिन्न-भिन्न गुन-स्वाद के होइ हैं, तौहू प्रायः लोग गुन, फल, स्वादन माऊँ नाँइ ध्यान देकें, परमार्थ समझि के सबन में ही लगि जाइ है।

दूध नाँउ सब कोऊ कहैं, उज्जल वरन पिछाँनि।
श्रीबिहारीदास ब्यौरौ कियौ, स्वादी मरमी जांनि ।।५२८।।

जैसे उज्जवल वरन देखि कें ही सब लोग दूद कहन लगें हैं, किन्तु गुन, फल, स्वाद के मर्मज्ञन, सबन को न्यारो न्यारो व्यौरा करि देवें हैं। तैसे ही समस्त परमार्थन के स्वरूप एवं मर्म कूं समझिबेवारे श्रीबिहारीदास सबन के गुन-फल स्वाद को न्यारो न्यारो स्वरूप दिखाइ देवें हैं।

फल अस्तुति उपदेस सुनि, सदाचार ललितादि।
श्रीबिहारीदास हरिदास के, बिपुल बिनोद अनादि ।।५२९।।

तुम समस्त परमार्थन के फल, स्तुति, तथा उपदेसन कूं भली-भांति सुनि समझि लेओ, और सृष्टि आचरन अनुसार प्रगट होइबेवारी ललितादिकन को सदाचार रस सिद्धान्त हू समझि लेओ, किन्तु हे बिहारीदास ! इन सबन ते अति दूर, सर्व-सिरोमनि अनादिकाल तें अविच्छिन विपुल विनोद एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के घर में ही है।

कूँची नित्य बिहार की, श्रीहरिदासी कै हाथ।
सेवत साधक सिद्ध सब, जांचत नावत मांथ ।।५३०।।

ऐसो अद्भुत सर्वोपरि नित्यबिहार रस-देस की कूँची-एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के ही हाथ में है। याते यावत सिद्ध-साधक आपके श्रीचरन कमलन में माथो नवाइ-नवाइ के, सतत जाँचना कियो करें हैं।

सब मंत्रन कौ मंत्र सुनि, श्रीगुरु गोबिंदहि गाइ।
वुस फुस मुंदरा कान में, अनखु सुन्यौ नहिं जाइ ।।५३१।।

घुस फुस मुंदरा लोक कैं, हमरैं उघरी साँट।
साझौ काहू सों नहीं, दियौ स्याम सुख बांट ॥५३२॥

यदि कोऊ कहै कि ऐसो सर्वोपरि-समस्त रसन को सार-नित्यबिहार रस प्राप्ति के ताईं श्रीस्वामीजी महाराज के घर में कौन सो तो मंत्र है और कहा रीति सों दियो जाइ है ? तापै आपको कथन है कि–हे भाई ! जैसे और-औरन के घरन में चुपचाप कान में मंत्र सुनायो जाइ है, तैसे हमारे घर में रीति नाँइ है, क्योंकि श्रीबिहारीजी महाराज ने यह अति बिचित्र रसमयी उपासना एकमात्र हमें ही बांटि के दै दीनी है। याते श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रितन के अतिरिक्त, कोऊ कैसे हू प्राप्त नाँइ करि सकै है। ताते हम काहू ते नाँइ छुपाय कें, चौरे-स्पष्ट कहैं हैं कि जिन श्रीगुरुन द्वारा यह अद्‌भुत रस-जस तुम्हें प्राप्त भयो है, तिनके और श्रीबिहारीजी महाराज के रस जसन कूँ लड़ाइ-लड़ाइ के सतत गावो। हमारे यहाँ सब मंत्रन को एकमात्र ये ही महामंत्र है।

जिन सौंप्यौ धन, ग्यान, प्रान, मन तिनहीं को दीजै। –श्रीगुरुदेवजू

चोरी जारी छिनरई, ए कहियै मुख मूंदि।
श्रीबिहारीदास हरिदास जसु, कहि साकत सिर खूँदि ॥५३३॥

या संबंध में आपने और हू कह्यौ कि–हे भाई ! चोरी, जारी, छिनरई आदि बुरे कार्यन कूँ ही जगत में छिपाइ कें चुपचाप कह्यौ जाइ है। सर्वोपरि श्रीस्वामीजी महाराज के जसन कूँ विरोधिन की सभा में हू अति निसंकता पूर्वक डाट-डाट के प्रतिपादन करो।

गेहूँ सों जौ को कहै, को कहै मटर सों मौंठ।
श्रीबिहारीदास ढिग ही प्रकट, व्यौरौ ठौड़ी हौंठ ॥५३४॥

जैसे कोऊ समझदार व्यक्ति गेहूँ ते जौ नाँइ कहि सकै है, मटर सों मौंठ नाँइ कहि सकै, तैसे ही जा परमार्थ को जैसो स्वरूप होय है वैसो ही माननो परैगो। एक व्यक्ति के अंग में एक ही चाम ते पास-पास ठोड़ी-होठ बने भये हैं। होठन ते तो भोजन करिबेते सब अंग को पालन-पोषन है जाइ है। ठोड़ी ते कछु है ही नाँइ सकै है। ऐसे ही परमार्थ के स्वरूपन में नेक फरक होइबे ते बहुत बड़ो अन्तर परि जाइ है।

अनसमझैं मानैं बुरौ, भ्रामक भौंदू जांनि।
श्रीबिहारीदास सांची कहै, कहा विवेकी कांनि ॥५३५॥

जो लोग प्रेममय नित्यबिहार कूँ नाँइ समझें हैं, वे ही हमारी बात सुनि, बुरो मानि लेवें हैं, ऐसे भ्रम में परे भयेन कूँ भोंदू ही समझनो चहिए। विवेकीजन तो कबहूँ बुरो मानें ही नाँइ हैं, याते सांची बात कहिबे में, श्रीबिहारीदासन को कोऊ संका नाँइ होइ है।

श्रीबिहारीदास साँची कहै, काची सुनें न सीख।
लोगनि कौं नीकौ बनीं, भजन हूँ में भीख ॥५३६॥

श्रीबिहारीदास तो सदा सर्वदा निसंकता तें साँची बात कहैं हैं। काँची बात की कोऊ शिक्षा हू देवें, तौहू नाँइ सुनै हैं। समय इतेक गिर गयो है कि प्रायः लोगन कूँ भजन के वेष द्वारा हू भीख माँगिबो नीको लगै है।

लघु लागत जाकैं लगै, ताकी जगहि न लाज।
ताहि भजैं लाजत निलजु, जाहि भजैं भै भाज ॥५३७॥

जिन श्रीनित्यबिहारी के भजन करिबे ते इहलोक–परलोक के यावत भय-भ्रम सम्यक प्रकार सहज ही भाजि जाँइ हैं, बिनकूँ तो अनन्य भाव ते सेइबे में लोग लज्जा मानें हैं, और छोटे-बड़े नाना-धर्मन में श्रद्धाते लगे रहैं हैं। याही ते अनन्यन की सभा में ये लोग बहुत लघु माजुम परें हैं।

भाइ बिना भटकत फिरै, परमारथ व्यौहार।
भूखौई घर परि रहै, बिनाँ अहार विहार ॥५३८॥

साँचे अनन्य भाव के बिना परमार्थ एवं व्यौहार में जहाँ-तहाँ अनेकन की आसा बाँधे, ये लोग भटकते डोलें हैं। नित्यबिहार के अनन्य उपासक श्रीबिहारीदास तो, बिहार-रूपी अहार के बिना और काहू परमार्थन कूँ सपरस हू नाँइ करें हैं, भलेई अपने घर में भूखे ही परे रहैं।

भूख प्यास सहि द्वार न छाड़ों तो रस-गोरस झीला। —श्रीगुरुदेवजू

लेत देत दौऊ पतित, आदर बिनु परसाद।
ताहि भक्ति परसै नहीं, विहसै हंसे प्रमाद ॥५३९॥

जो लोग आदर-भाव के बिना परसाद लेवैं हैं एवं काहू को देवैं हैं। उन

दोऊन कूँ ही पतित समझनो चहिये। जो लोग प्रसाद पाइबे के समय श्रीभगवत प्रसाद की अवहेलना करते भये, परस्पर हास-परिहास, प्रमाद, करन लगे हैं बिनकूँ भक्ति महारानी स्पर्श हू नाँय करैं हैं।

लोग लिवासी लालची, ना समझै धर्म अधर्म।
ते अछिर कूँसे मिटैं, जे लिखे कपार विकर्म ।।५४०।।

लोभी, लालची, लिवासी लोग धर्म-अधर्म कूँ नाँइ समझिबे के कारन, परमार्थिन में परमार्थी, एवं संसारिन में संसारी, जहाँ जैसो देखैं, स्वार्थ सिद्धि के ताईं, तैसे ही बनि जाँइ हैं। ऐसे पतितन के कपाल की दुर्भाग्यरूपी रेखान कूँ मिटिबो ही असंभव है।

यारी कोरी[1] गँवार की, संध्या होइ मिलाप।
यह बैठे वह लै उठै, सुख न बड़ो संताप ।।५४१।।

प्रेम प्रीति तें अनभिज्ञ गँवार के साथ प्रेम करिबे ते सुख तो होइबो दूर रह्यौ, उल्टो संताप ही ऐसो भोगनो परै है, जैसे एक व्यक्ति तो प्रेमी होइ, दूजो-प्रेम ते अनभिज्ञ गँवार होय, प्रेमी तो कार्य बिवस दिनभर कहूँ व्यस्त रह्यौ, किन्तु मन में अपने प्रेमी के प्रति, नाना प्रकार की उत्कंठा ते मिलिबे की, लालसा करतो रह्यौ। जैसे-तेसे दिन व्यतीत करि, संध्या समय बड़ी उत्सुकता ते आइ के बैठे, वाही समय दूजो गँवार उठि के चल्यौ गयौ। ताते कितेक संताप प्रेमी के हृदय में होइ है, वाकूँ प्रेमीजन ही समझि सकैं हैं।

अपने अपने इष्ट कौं, सब कोऊ सुमिरै नाम।
संगम बासी भांड कौं, ख्वाज खिदर जै राम ।।५४२।।

जगत में अपने-अपने इष्ट के नाम कूँ हीं सब कोई लेवैं है, किन्तु जिन लोगन के कोऊ इष्ट नाँइ होइ है, वे ही संगमबासी भाँड़न की नाईं काहू ते अल्ला-खुदा, काहू तें जयराम जी करन लगें हैं, जो जैसो मिलै, ताके संग तैसे ही बनि जाइ हैं।

एक बधिक हो लालची, छेरी खाई मारि।
वाके मन धरकन रहै, जहां मनुष द्वै चारि ।।५४३।।

काहू लालची बधिक ने सबन तें छुपाइ, बकरी कूँ ही मारिके खाइ लीन्यौं, किन्तु जहाँ भी दो-चार व्यक्ति ठाढ़े दीखैं, तहाँ ही वाको हृदय धरकन लगे है।

जल सीतल अँचवत भलौ, भोजन जेंवत स्वाद।
भूखौ स्वाद न जाँनई, पेट पीठि भरि लाद ॥५४४॥

जैसे स्वाद के मर्मी जनन कूँ तो शीतल जल-पान करिबो एवं स्वादिष्ट भोजन पाइबो ही अति सुन्दर लगे है, किन्तु स्वाद ते अनभिज्ञ लोग केवल पेट भरिबे ते ही प्रयोजन राखें हैं। ऐसे ही बहुत से लोग लदिबेवारे पशुन की नाँईं परमार्थ के स्वादन माऊँ नाँइ ध्यान दैकें कछु न कछु करिबे ते ही प्रयोजन राखे हैं। याते रस के मर्मी स्वादीजन तो सर्वोपरि निपट नित्य बिहार रस कूँ ही केवल पीवें हैं।

लौंद सहायक साध कौं, ना तर कुसाधन होइ।
साधु समझि लौंदै भजै, तौ धन्य कहै सब कोइ ॥५४५॥

निन्दक लोग साधुन के सहायक ही होइ हैं, बिनकी निन्दा के डरते साधु सतत सावधान रहैं हैं, अन्यथा कुसाधन होयबे को डर है। और जो जन निन्दक कूँ हूँ साधु समझि सेवें हैं, बिनकूँ सब लोग धन्य-धन्य कहैं हैं।

बिनु रोग औषदि कहा, गुनहि बिना जु गुमाँन।
बिना तफावस डांडनौं, क्यों बकसै ईसाँन ॥५४६॥

बिना रोग के औषधि करिबो, औंर बिना गुन के गुमान बेकार है, और बिना दोष के दंड दैबेवारे कूँ तो, श्रीभगवान क्षमा नाँइ करें हैं।

क्या लै गया सिकन्दर लौदी, क्या सेरखाँ सूर।
तूँ संचत है दाम कौं, काँमीं कुट्टन कूर ॥५४७॥

सम्राट सिकन्दर लोदी—सेरखाँ जैसे सूरबीर हू जब या जगत से कछु नाँइ लै जाय सके, तब तुम साधारन कूर सदृस मानव धन-संपति एवं विषयन कूँ संचित कर रहे हो? यामें तुम्हारी कहा बुद्धिमानी है।

कहाँ भक्ति कहाँ बँभनई, कहाँ बिहार रुजिगार।
कहाँ धोवन कहा सोंधनों, कपरा कीनैं ख्वार ॥५४८॥

दया करुना में बिवस होइ आश्रितन कूँ और हू समझाते भये आप बोले कि हे भाई! तुमहीं अपने मन में सोचो? कहाँ तो श्रीभक्ति महारानी के आश्रित भक्तको अति उज्ज्वल स्वरूप, और कहाँ बाभनपनो? जैसे एक पानी तो धोवन को होइ, और दूजो सुन्दर सुगंधित होइ, इनके स्वरूप में जैसे बहुत बड़ो अन्तर है तैसे ही नित्य-

विहार उपासना, एवं वाते रुजिगार करिबे में बहुत बड़ो अन्तर होय है, ताते तो भक्ति को वेष ही बिगरि जाय है।

पाती कौं पाती लिखौ, संदेसै संदेस।
साकत सनेह करौ नहीं, श्रीगुरु के उपदेस ॥५४९॥

हमारे श्रीस्वामी जी महाराज को यह उपदेस है कि—काहू सों पत्र-संदेसो आदि, आइबे-जाइबे को व्यवहार मत राखो, और साकत बहिर्मुख व्यक्तिन तें भूल की भूल में हू सनेह मत करौ।

हँसि मिलिते सौं हँसि मिलौ, दुमनैं खरौ उदास।
भलौ बुरौ समझो नहीं, सहज बिहारीदास ॥५५०॥

आश्रितन कूँ समझाते भये आपने कह्यौ कि—हे बिहारीदास! जो कोऊ तुमसों हँसि कै मिलै, वाते तुमहूँ हँसि के मिलि लेउ, और जो तुमते मन में कछु दूजोभाव राखै, वाते तुम भलभाँति उदास रहो। अपने सहज सुभाउ में रहते भये काहू कूँ भलो-बुरो मत समझो।

भूलि जात परमेश्वरहि, होतु नेकु नख पीर।
श्रीबिहारीदास हरिदास कैं, धन्य विवेकी धीर ॥५५१॥

प्रायः लोग देह में नेक पीड़ा होत खेम अपने इष्ट कूँ हूँ भूलि जाइ हैं, किन्तु हमारे श्रीस्वामी जू महाराज के धीर विवेकीजन धन्य-धन्य हैं, जो कैसे हू कष्ट में इष्ट कूँ नाँइ भूलें हैं।

बडेन के लछिन यहै, दीन बचन सतिभाव।
आप सहैं सबकौ भलौ, गुन ग्रहि तजैं कुभाव ॥५५२॥

बड़े प्रानवारे मानवन के यह सहज लक्षन होइ हैं कि—नम्रतापूर्वक सबसों सतभाव राखते भये सबको भलो चाहै हैं, और अनुचित व्यौहार कूँ सहन करि, अवगुनन कूँ त्यागि, गुन कूँ ही ग्रहन करैं हैं।

पटी बाँधि छाँडो गटी, अरु कपटिन कौ संग।
श्रीबिहारीदास हरिदास को, तिनकै लाग्यौ रंग ॥५५३॥

जिन महतपुरुषन कूँ श्रीस्वामी जू महाराज के रस को रंग लगि जाइ हैं, वे महतजन सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी जू के चरन कमलन ते दृढ़ अनन्यसंबंध

रूपी पटो बाँधिकें, और-और संबंधउद्देश्यरूपी गटी तथा कपटिन के सङ्ग कूं भलं-भाँति त्यागि देवें हैं।

पागपटी पाटी कहै, लहैं न बेंदी भाव।
श्रीबिहारीदास समझें बिना, भ्रम कै करत चबाव ।।५५४।।

जगत में पाग की जगह पटिया पारि कें यानी लहँगा-फरिया पहिरि, अपने कूं सखी कहन लगे हैं, किन्तु श्री स्वामिनी-चरनारबिंद-संबंध रूपी वेंदी स्वरूप सहचरि भाव कूं नांइ समझिबे के कारन, उल्टे भ्रम में परि श्रीबिहारीदासन को चबाव करन लगें हैं।

तीनि हानि मानतु जगत, पति पैसा कै प्रान।
पति छाँडै पैसा तजै, भए बिहारी प्रांन ५५५।।
पतिहि गयैं गई पतितई, पैसन सौं गई प्रीति।
जाति जनेऊ सौं गई, भ्रम भाज्यौ रस रीति ।।५५६।।

जगत में लोग प्रतिष्ठा-पैसा, प्रान, तीन प्रकार की हानि कूं ही अपनी हानि मानें हैं। याही ते हमने पैसा एवं मान बड़ाई कूं सम्यक प्रकार अपने आपही त्यागि, प्रान स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज बनाइ लीने हैं, जो कबहुँ विछुरि ही नाँइ सकें हैं। जगत में अपनी इज्जत राखिबेवारे लोग, पतित-पने ते ही संबंध राखें हैं। जाके ताईं बिनने अनेक प्रकार के बहिर्मुखता के कार्यन कूं हूँ करनो परें है। प्रतिष्ठा के त्यागिबे ते हमारो पतितपनो ही चल्यौ गयो, पैसान ते तो हमने प्रीति ही छोड़ि दीनी है। जनेऊ के त्यागिबे ते जातीय अभिमान चल्यौ गयौ। तैसे ही निजरस रीति के समझिबें ते यावत भ्रम हमारे नष्ट है गये।

औसर औसर सब भलौ, कहौ भक्ति घटि कौंन।
सेवक समौ न जानई, सब सीठी बिन लौंन ।।५५७।।

समय-समय की सबही भक्ति सुन्दर होइ हैं, काहू प्रकार की भक्तिकूं छोटी नाँइ कही जाय सकै है, किन्तु इष्ट के रूख अनुसार सेवा करिबेवारे जो सेवक हैं, वे काहू समय की अपेक्षा न करि, इष्ट के रुख सों ही संबंध राखें हैं। क्योंकि बिना रुख-अनुसार इष्ट कूं सब सेवा ऐसी लगै हैं, जैसे नमक के बिना व्यंजन।

कहैं सुनैं समझें कहा, जो न भजै मन लाइ।
आगैं बांटै रासरी, पीछै बछरा खाइ ।।५५८।।

जैसे अंधो आदमी रस्सी बाँटतो जाइ है, पीछे ते बछरा खातो जाइ है, तैसे ही बहुत से साधक परमार्थ कूँ अनेक भाँति सों कहैं, सुनैं एवं समझैं हू हैं, किन्तु मन लगाइ के भजन किये बिना अंधेन की नाँईं रस्सी बटैं हैं।

नित्य उपासक नित्य नए, नित्य किसोर उपास।
नातो नाँहि निमित्त सों, नित्त बिहारिनिदास ॥५५९॥

प्रथम-समागम एकान्त रस-बिलास महल श्रीवृन्दावन के दृढ़ अनन्य नित्य-स्वरूप के उपासक श्रीबिहारीदास अपने उपास्य स्वरूप नित्यकिसोर-वैसवारे-सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारी-बिहरिनीजू कूँ छिन-छिन नये-नये प्रेम, भाव, रंगन ते, सतत नित्य लाड़ लड़ावैं है, और जो स्वरूप श्रीव्रज में प्रगट होइकें बाल, कौमार, पौगंड, एवं किसोर वैस, स्थूल-सूक्ष्मविरह आदि समस्त रसन कूँ बिलसैं-विलसावैं हैं, बिन स्वरूपन ते वे कोऊ संबंध ही नाँइ राखैं हैं।

यह जोरी अविचल श्रीवृन्दावन नाहि आन सों काज। –श्रीस्वामीबीठलविपुलदेवजू

छाप छबीले बचन कहि, दोनों दुहुनि निबाहु।
नित्य निमित्यहि अँतरौ, समुझि करौ उत्साहु ॥५६०॥
फूल-दलन जे तोलिये, महामधुर रस घूँट।
भोजन जिन्हैं न भावही, तिनिकौं निरये बूँट ॥५६१॥
भोजन जिन्हैं न भावही, तिनकै निरये बूट।
ऐसे नित्य बिहार में, श्रीबिहारीदास अन्नकूट ॥५६२॥

बहुत लोग अपनी बातन कूँ अनेक प्रकार ते सजाइ-सजाइ, गढ़ि-गढ़ि कें छाप-छबीले वचनन द्वारा नित्यनिमित्त दोऊ देसन को निभावैं हैं, किन्तु हे बिहारीदास ! नित्य और नैमित्तिक रस में बड़ो भारी अन्तर है। याते तुम अपने ठाकुर मंदिर में उत्सव हू भलीभाँति सोच-समझि कें ही करो। क्योंकि हमारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू इतेक अति अद्‌भुतसुकुमारसिरोमनि हैं जो कि तौल में एक फूल की कछु पँखुरिन के बराबर ही होंयगें। भोजन तो तिन्हें भावै ही नाँइ है, एकमात्र महामधुर सार रस कूँ ही सतत पी-पी के जीवैं हैं। या रस भाव के जब तुम्हारे मंदिर के ठाकुर हैं, तब बिनकूँ अन्नकूट उत्सव आदि मनाइ कें मनन भोग धरिबो, ऐसो विपरीत मालुम परै है, जैसे काहूँ कूँ भोजन तो भावै ही नाँइ है, वाकूँ निरे बूँट भोग लगाइबो।

जे मूवा ते जामसी, जे जामा ते मूव।
नित्य उपासिक सँग बिनु, भजन करै कहा हूव ॥५६३॥

जगत में जो जन्म लेवें हैं, वे एक दिन अवश्य चले जाँइ हैं, और जो चले जाँइ हैं, वे अवश्य जन्म लेवें हैं। याते हे भाई ! नित्यबिहार के उपासकन को संग करिकै, समस्त स्थूल-झीनी गाँसन कूँ समझे बिना तुम्हारो भजन करिबो एकमात्र बेकार ही है।

श्रीबिहारीदास प्यारौ दुर्लभ, प्यारौ पाइ पिछाँन।
प्यारे तैं जु दुराइयैं, सो अति प्यारौ जाँन ॥५६४॥

नित्यबिहाररससेवी बिहारीदासन को प्रान-प्यारो इष्ट ऐसो अति दुर्लभ है, जाकी कोऊ उपमा ही नाँइ है सकै है, मिलिबे ते ही बिनके स्वरूप कूँ पहिचान सकोगे। कारन जो अति प्यारो होइ है वो समस्त प्रेमिन ते हू छुपाइ के राख्यौ जाइ है।

यह अद्‌भुत रसमयी जोरी अति प्यारी होइबे के कारन, यावत श्रीभगवत अवतार एवं श्रीभगवत भक्त आदिकन ते छुपाइ कें राखी है।

जै श्रीवृन्दावन घन नव निकुंज में संतत सहज विराजत जोरी।
अति अगाध महिमा रस जिनको सो पाइयत एक कृपा किशोरी ॥
सुक नारद से भक्त मुक्त सनकादिक, सुहृदन हू ते चोरी।
श्रीबिहारीदास जस कहाँ लों बखानों रसना सहस तऊ मति थोरी ॥ —श्रीगुरुदेवजू

जो करै भजन में अँतरौ, तासौं करि बैराग।
समिलित साधन श्रम बढै, घटै सबै अनुराग ॥५६५॥

मायिक जगत को व्यौहार—बात एवं अपनो संग-साधन तथा और-और धर्म परमार्थ आदि जो भी कोऊ तुम्हारी नित्यबिहार उपासना में अन्तर पारते हों, बिन सबन तें तुम्हें भलीभाँति बैराग्य कर लेनो चहिये। सम्मिलित साधन करिबे ते तो केवल परिश्रम ही होइगो और तुम्हारी अनन्य उपासना को अनुराग क्रम-क्रम तें घटतो चल्यौ जायगो।

चहियै सो पैयै नहीं, पइयै सो न सुहाइ।
श्रीबिहारीदास संकोच मन, कासौं कहौं सुनाइ ॥५६६॥

शुद्ध प्रेम परिपाटी पै चलिबे योग्य जन तौ हमें मिलैं नाँइ हैं, और जो सम्मि-

लित विचारधारावारे मिलैं हैं, वे हमें सुहावें नाँइ हैं। याते हे बिहारीदास ! हमें संकोच ही सदाकाल बन्यौ रहै है कि यह अति अद्भुत निधि बतावै कौन कूँ ?

नागरी नेह नवीन छिन छिन या सुखै कासौं कहौं।
महामधुरे रस उपासक स्वाद भेदी जो लहौं॥ —श्रीगुरुदेवजू

साँचो नहि निज धर्म कों कासों करिये प्रीति।
व्यभिचारी सब देखिये आवत नहिं प्रतीति॥
आवत नहिं परतीत दीजिये काको निजधन।
मन माफिक नहिं मिलै खोजि देखे वस्ती बन॥
भगवत रसिक अनन्य संग की सहै न आँचौ।
कूकर हाड़ चबाइ सिंह मारै गज साँचौ॥ —श्रीस्वामीभगवतरसिकदेवजू

असवारी असवार की, सार करै थनवार।
पूजारी पूजा करै, श्रीहरिदास बिहार॥५६७॥
श्रीबिहारीदास हरिदास के, जीवन भजन बिहार।
बपुरा भररा भोजगी, पूजा करै अहार॥५६८॥

जैसे ताजी घोड़ा की असवारी जानकार ऊंचे असवार ही करि सकैं हैं, केवल दूध दुहिबेवारो ग्वारिया कितेक हू चेष्टा करै तौहू सफल नाँइ है सकै है। याही प्रकार जब ताऊँ इहलोक-परलोक के यावत सुख, संबंध, लोभ-लालचन ते भलीभाँति वैराग्य बिना, एकमात्र नित्यबिहार के ही अनन्य नाँइ है सकोगे, तब ताऊँ केवल सेवा-पूजा करिबे ते ही रसरीति के अनन्य उपासक नाँइ हैं पावोगे। नित्यबिहार-रसिक-अनन्य-उपासना श्रीस्वामीजी महाराज की जीवन अहार स्वरूप होइबे के कारन दृढ़ अनन्य निज आश्रितन कूँ ही कृपा करि आपने दीनी है।

करम कसैं तें जाँनियै, मरम छुवत ही छोभ।
श्रीबिहारीदास कैसें दुरै, निस्पृहता में लोभ॥५६९॥

जैसे कर्मन में साँची श्रद्धा प्रतिकूल परिस्थिति आइबे पै ही मालुम परै है, तैसे ही जो लोग अन्तर में अनेक प्रकार की स्पृहा रखते भये हू, ऊपर निस्वार्थ पने को स्वाँग दिखावै हैं, बिनते मर्म भेदी बात कहत खेम क्षोभ आ जाय है।

अपने मुख जु सराहियै, ता बिसराहत पोच।
श्रीबिहारीदास औगुन गनें, मांन सहें सँकोच॥५७०॥

जो लोग अपने मुखसों ही अपनी सराहना करें हैं,बिनकी निंदा साधारन पोच हू करन लगै हैं। जो साँचे श्रीबिहारीदास हैं वे तो, सतत अपने औगुनन कूँ ही कह्यौ करें हैं, बिनको कोऊ सन्मान करै, तौ वे अपने मन में भारी संकोच मानैं हैं।

हमारौ भरम करौजिन कोई, पाथरहि जोक न लागत लोई।
श्रीबिहारीदास कब देत दिखाई, घर-घर बाबा घर-घर माई ॥५७१॥

जैसे पाथर कूँ न तो जोंक ही लगै है, न आँच ही, तैसे ही हमारे विषय में भ्रम काहू कूँ नाँइ करनो चहिए। क्योंकि हम श्रीस्वामी जी महाराज की कृपा ते, अति विसुद्ध प्रेम के स्वरूप बनि गये हैं। याते स्त्री, पैसा, मान-बड़ाई, लोभ-लालच आदि मायिक गुन अब हमें सपरस हू नाँइ करि सकै हैं। यद्यपि जगत में घर-घर बाबा-माई भरे हैं, तौहू नित्यबिहार के अनन्य उपासक श्रीविहारिदास कहूँ देखिबे में नाँइ आवैं हैं।

सूरति भली सुभाव गति, तातैं भली कुरूप।
जाही तैं सुख पाइयै, सोई जानि अनूप ॥५७२॥

यद्यपि स्त्री की सूरत तो देखिबे में भलै ही सुन्दर होय, किन्तु अपने सुभाव में इतेक परवस है रही होइ, जासों पति के मन ते अपनो मन नेक हू नाँइ मिलाइ सकै, वाते तो मन सों मन मिलाइ कें, प्रेम करिबेवारी, कुरुप अच्छी होइ है, क्योंकि जासों मन कूँ सुख मिलै है, वोही अनूप लगै है। तैसे ही परमार्थ में जहाँ अपनो मन सुख मानैं, वोही परमार्थ सबते ऊँचौ समझनो चहिये।

कहा अदलि बिनु आमिली, कहा लोभी की साखि।
कहा होज की आसकी, जिनिसों बचन न भाखि ॥५७३॥

हुक्म न चलिबेवारे की हाकिमी, पैसा लैकें गवाही दैबेवारेन की साक्षी बेकार होय है, तैसे ही हीजरा की आसिकी बेकार है। ऐसे नपुंसक आत्म-बलहीन जननतें अपने धर्म की चर्चा हू मत करो।

चुगो डारि चिरई गहै, लोभी लागैं आइ।
श्रीबिहारीदास भयो चहै, तो निरपृह ह्वै गुनगाइ ॥५७४॥

अनेक प्रकार के स्वार्थन को लोभ दिखाइ, साधकन कूँ पकरिबेवारे, सास्त्र एवं उपदेष्टा जगत में ऐसे बहुत से हैं, जैसे चिरिया पकरिबेवारे चुगो डारि चिरियान कूँ पकरैं हैं, लोभी चिरिया चुगा के लोभ में आइ, फँसि जाइ हैं। याते यदि तुम

श्रीनित्यबिहार के उपासक श्रीबिहारीदास होइबो चाहो तो, इहलोक तथा परलोक के यावत स्वार्थन ते भलीभाँति निस्पृह होइ श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज के गुन, मन लगाइ उमँगि-उमँगि के सदाकाल गावो।

लीलै तो तबही मरै, उगिलै अँधो होइ।
भई छछूँदरि साँप की, दुविधा सुखी न कोइ ॥५७५॥

याही विषय में और हू समझाते भये आप बोले कि—हे भाई ! जैसे साँप छछुंदर कूँ पकरिबे ते, ऐसी दुबिधा में परि जाइ है, कि निगलिबे पै तो मरि जाऊँगो, उगलिबे पै अंधो है जाऊँगो। तैसे हीं अनेक साधक जागतिक एवं परमार्थिक, दुबिधान में परि, अपने जन्म कूँ बेकार ही खोइ देवैं हैं। याते समस्त दुबिधान कूँ त्यागि, यावत बातन ते निस्पृह होइ, श्रीस्वामीजी महाराज के गुन गावौ।

जायो भोंडी भेड कौ, कीयौ चाहै एंड।
एंड अनन्यन हीं बनैं, जिनि मिलो मेटी मैंड ॥५७६॥

जैसे कोऊ भोंड़ी भेड़ को तो जायो भयो होइ, और सिंह सदृस एंड़ करिबो चाहै, जो कैसेहु नाँइ है सकै है, तैसेही नाना धर्मन में फँसे भये एवं फँसाइबेवारे उपदेष्टा गुरुन को तो होइ चेला, और सिंह सदृस प्रानवारे दृढ़ अनन्यन की नाँई एंड करिबो चाहै, जो कैसेहु नाँइ है सकै है। एंड़ तो एकमात्र वे ही सिंह सदृस प्रानवारे करि सकैं हैं, जिननें अनन्य धर्म ग्रहन करि, यावत मर्यादान कूँ भलीभाँति मेंटि दीनी है।

खाल उढाई सिंह की, राखी भेड सँवारि।
बोलत हीं पहिचानियै, खाई स्यारनि फारि ॥५७७॥

जैसे काहू भेड़ कूँ सिंह की खाल उढ़ाइ वाही सदृस श्रृंगारि देवै, तौहू बाके बोलत खेम स्यार पहिचानि, फारिकें खाइ जाइ हैं। तैसेही भेंड सदृस प्रानबारे साधक कूँ यदि कोऊ अनन्यता को सिंगार करि हू देवैं, तौहू वाकी बोलन एवं आचरन द्वारा मर्यादा में चलिबेवारे जन पहिचान, वाकी समस्त अनन्यता धूर में मिला देवैं हैं।

श्रीबिहारीदास सल सूल बिनु, सब जग कुसल कूसूल।
कुसल कहैं मानें भलौ, साँच कहै निरमूल ॥५७८॥

हे श्रीबिहारीदास ! अनन्य धर्म की बिसुद्ध रहनी-रीति के बिना, समस्त जगत में बेठीक को ही लोग ठीक मानि रहे हैं, यदि बिनकी वाही स्थिति कूँ, ठीक

बताइ देवो तो बहुत भलौ मानैंगे, अन्यथा साँची कहिबे पै जैरामजी की हू चली जायगी।

बाँवन अछिर पढत सब, गीत कवित्त बनाइ।
बिनु गुरु दत्त फलै नहीं, नाचि कूदि मरि जाइ ।।५७९।।

जगत की प्रारंभिक सिक्षा में बावन अक्षरन कूँ ही सब लोग पढ़ैं हैं। तिन अक्षरन तें स्वयं ही गीत-कबित्त बनाइ, नाचन-गावन लगे हैं, किन्तु श्रीगुरुन के सरन जाइ, दीक्षा-उपदेस लिये बिना-कितेक हू नाचि-कूदि के मरि जावो, प्रेम प्राप्ति कैसे हू नाँइ है सकै है। अर्थात जिन सद्गुरुन ने कछु न कछु श्रीभगवान की कृपा अवश्य प्राप्त करि लीनी है, बिनकी कृपा तुम्हारे ऊपर होइबे ते श्रीभगवान हू तुम पै कृपा-दृष्टि ते सदाकाल देखैंगें और श्रीगुरुदेव हू समय-समय पै तुम्हें संभारते रहैंगे, जासों तुम सुद्ध मार्ग पर चलते रहोगे, तब हीं तुम्हें इष्ट की प्राप्ति है सकेगी, यदि तुम श्रीगुरुदेव के चरन कमलन को आसरो नाँइ लेवोगे तो परमार्थ को सुद्ध मार्ग हू प्राप्त होइबो अति दुर्लभ है।

ज्यौं गुरु त्यौं गोविन्द, बिनु गुरु गोबिन्द किन लह्यौ।
ज्यौं मावस्या इन्दु, त्यौं निगुरा पंथ न पावहीं ।। —श्रीगुरुदेवजू

मुख देखत की कांनि, स्याम भलौ मानै नहीं।
ए धोती पहिरत बांनि, पै लाँबी लाँगी लोभ की ।।५८०।।

जो लोग केवल मुख देखिकें लिहाज में धर्म विरुद्ध बातन कूँ स्वीकार करि लेवैं हैं, तिनको श्रीबिहारी जी महाराज भलो नाँइ मानैं हैं, तापै ये परमार्थीजन बनि, अपने बेस-भूषा कूँ सजाइ-सजाइ कें चलैं हैं, तौहू इनके मन में लोभ की लंबी लालसा लगी रहैं हैं।

जहाँ मच्छर माँखी नहीं, चैंटा चैंटी न गम्य।
सुछ सुथल जल निकट हीं, तहाँ कुंज रवन कौ रम्य ।।५८१।।

श्रीवृन्दावन नित्य निकुंज मंदिर में न तो मच्छर माखी ही हैं, न चेंटा-चेंटीन की ही गम्य है। अति स्वच्छ सुन्दर सुहावनी रस भूमि के चारों ओर श्रीजमुनाजी प्रवाहित है रही हैं। तहाँ कुंज-रवन श्रीयुगल निरंतर क्रीड़ा करैं हैं।

कौतिक बायें दाहिनें, गाँव नगर को जाइ।
मोहि न कोऊ देखई, हों देखों सबनि दुराइ ।।५८२।।

जब हमारे प्रान जीवन धन श्रीजुगल मेरी गोदी में ही दाँये-बाँये सतत कौतिक स्वरूप अनेक खेल-खेलैं है, तब गाँव, नगर स्वरूप और-और परमार्थ रस-देसन में हम काहे कूँ जाँय। मेरे कूँ श्रीस्वामी जी महाराज ने अद्भुत कृपा करि, ऐसो सर्वोपरि रस-देस को उपदेस दै दीन्यौ है, जहाँ ताऊँ और काहू की गम्य ही नाँइ है, वा ठौर ते सबनि को स्वरूप मोकूँ सहज दीख जाय है, और मेरे को कोऊ नाँइ देखि सकै है।

डेल बोल में अँतरौ, सिंह स्वाँन कौ सूत।
सिंह समझि सांचै गहै, डेलैं स्वाँन कपूत ॥५८३॥

जा प्रकार सों डेल एवं बोल में अन्तर होय है तैसे ही सिंह एवं स्वान की बोलन में महान अंतर होइ है। सिंह सदृस प्रानवारे साधकन को बोल सुनिकें साँचे अनन्यजन बिनकूँ अपनो बनाय लेवैं हैं, और ठौर-ठौर के परमार्थन में स्वाँन की नाईं भटकिबेवारेन को डेल सदृस बोलि सुनि त्यागि देवैं हैं।

निगुसायौ सिंघो बुरौ, सगुसायो धनि स्वाँन।
वह बिनु गुनाहैं मारियै, याकौ खसम दिवाँन ॥५८४॥

जैसे सिंह को कोऊ स्वामी न होइबे ते बिना ही काहू अपराध मारिबे को पुरस्कार मिले है, और दिवानजी को कुत्ता यदि काहू को कछु बिगार हू देवै तौहू लोग डरपते भये कछु नाँइ कहै हैं। तैसे ही कोऊ साधक ज्ञान, बैराग्य, त्याग-तप आदि अपने साधनन में सिंह सदृस दक्ष होइबे पै हू बिना गुरु-इष्ट के आपत-विपद् में वाकी रक्षा कोऊ नाँय करै है। जिन साधकन ने श्रीगुरुन ते दीक्षा संबंध प्राप्त करि, आश्रय लै राख्यौ है, तिनते यदि कोऊ दोष हू बनि जाइ, तौहू जमराज कछु नाँइ कहि सकैं हैं।

श्रीबिहारीदास साँची कहै, माँनु भलौ कै पान।
बोलि बैठि जो जानियै, तौ न कहूँ अपमान ॥५८५॥

निज आश्रितन ते सहज रहनी रीति बताते भये आपने कथन कियो कि—हे बिहारीदास बात तो यह है कि सन्मानपूर्वक दियो-भयो, एक पान हू, ऊँचे समझदार व्यक्तिन के ताईं बहुत बड़ी बात होइ है, ऐसे ही जिन लोगन कूँ बोलिबे-बैठिबे को ग्यान है, बिनकूँ कहूँ अपमान नाँइ होइ है।

भलो पहर पल दिन घरी, दोनों सोधि पुरान।
बांभन तैं गदहा भलौ, जाकौ कह्यौ प्रमान ॥५८६॥

पंडितजी के पास काहू व्यक्ति ने जाइ के कह्यौ कि—हमें आवश्यक कार्यवस

परदेस जानो है, कृपा करि सुन्दर मुहूर्त देखिकें बताइये। पंडितजी ने हूँ अनेक ग्रन्थन ते भलीभाँति सोधि के कह्यौ कि–अमुक दिन, अमुक पहर-घरी-पल में तुम्हें घर सों प्रस्थान कर देनो चहिये। मुहूर्त पूछिबेवारो सज्जन पंडितजी के कहे अनुसार घर ते चलि दीने। गाँव के बाहर थोरी ही दूर पर जब गये, तब बाँयी ओर गदहा सहज सुभाउ बोलि उठ्यौ? जाइबेवारो व्यक्ति गदहा को बोलिबो असगुन समझि अपने घर लौटि आयो। पंडित जी ग्रन्थन ते इतेक सोधि कें मुहूर्त दीन्यौ हो, वाको तो वाने महत्व कछु कीन्यौ नाँइ। गदहा के बोलिबे को सबते बड़ो प्रमान मानि लीनो। अर्थात जिनके एक इष्ट-गुरु नाँइ होइ हैं बिनकी ऐसी ही फजीती होइ है।

झूठौ झूठेई मिलै, साँचौ मिलि हैं सांच।
साँच झूठ में ना मिलै, जिय जांनि कपट नट नांच ॥५८७॥

झूठे आदमी तो झूठे ही भाव ते और साँचेजन साँचे भाव सों ही, सबसों मिलैं हैं। झूठी बात कूँ जो लोग साँची करिके दिखाइबो चाहैं, बिनकूँ ऐसो समझनो चहिये, जैसे नट-कपट के अनेक स्वाँग करै है, किन्तु अंत में नट, नट ही रहि जाय है।

नीचहि आदर दीजिये, लीजै बैरु बिसाहि।
श्रीबिहारीदास अपनौं बयौ, लुनत कहा पछिताहि ॥५८८॥
नीच ऊँच यौं परखिये, श्रीबिहारीदास कुसलाइ।
अँब फलैं नीचौ नबै, अँरंड नीच उचि है जाइ ॥५८९॥

जैसे अपनी बोई भई खेती कूँ आपही काटनो परै है, तैसे ही नीची प्रकृति के आदमी कूँ आदर देइ कें बैर मोल लेनो है। यदि कोऊ ये बात कहै कि कौन व्यक्ति ऊँची प्रकृति को, और कौन नीची को, कैसे समझ्यौ जाइ? तापै आपने कह्यौ कि–जैसे आम के बृक्ष में फल आइबे पै नीचो झुकि जाइ है, अंडउआ फल आइबे पै, ऊँचो चल्यौ जाइ है। तैसे ही उच्च प्रकृति को मानव नेक हू सन्मान पाइबे पै नीचो नवैगो, नीच प्रकृति को आदमी सन्मान पाइबे पै अपनो माथो और ऊँचो उठाइ लेवैगो।

भक्ति समाँनी भाइ में, भक्तनि में भगवांन।
श्रीबिहारीदास साँची कहै, श्रीभागवत प्रमांन ॥५९०॥

हे बिहारीदास! हम साँची बात कहैं हैं कि–श्रीभक्ति महारानी एकमात्र भावके ही आधीन होइ हैं। बिना भाववारे व्यक्ति, भक्ति महारानी कूँ कैसे हूँ सपरस नाँइ करि सकैं हैं। जाको जैसो भाव होइ है, तैसी ही भक्ति द्वारा वाकूँ इष्ट स्वरूप

को प्राप्ति है जाइ है। क्योंकि जैसे भाव के आधीन भक्ति है, तैसे ही भक्ति के आधीन श्रीभगवान हैं, याते जा भाव को भक्त हो, ताही भावानुसार श्रीभगवान को स्वरूप वा भक्त कूँ समझनो चहिए। याही बात कूँ साक्षात श्रीमद्भागवत जी हू वर्नन करें हैं।

भगति भगत अरु भागवत, ए भगवत निजु जानि।
श्रीबिहारीदास इँहि भाइ भजि, और सबै मति हांनि ।।५९१।।

हे बिहारीदास! मैं तुमते यह बड़े मर्म की बात स्पष्ट कहूँ हूँ कि—महतपुरुषन के द्वारा प्रतिपादित सुद्ध भक्ति, तदनुकूल चलिबेवारे भक्त, एवं सुद्ध-भक्ति बरनन करिबेवारे सद्ग्रन्थ, इन तीनोन कूँ ही श्रीभगवान के निज-स्वरूप समझनो चहिये। याही सिद्धान्त द्वारा सदाकाल अपने भाव सों भजो। याके अतिरिक्त अपनी हानि ही होय है।

जैसे भोजन भूख में, अति आदर करि लेइ।
श्रीबिहारीदास प्रसन्न मन वह प्रसाद सुख देइ ।।५९२।।

जैसे भूख तें बिवस व्यक्ति भोजन कूँ बड़े आदर ते लै, बहुत ही प्रसन्नता ते पावै है, वो प्रसाद वाकूँ अति सुखदाई होय है। तैसे ही जो जन सत्संग द्वारा भक्ति-रूपी भूख कूँ बढ़ाइ कें बड़े अनुराग ते भजन करें हैं, वे ही अति सुखी होय हैं।

भक्त भगत गयौ भगत पैं, भगतौ दई भगाइ।
भगे भगे दोऊ फिरैं, कहूँ न मन ठहराइ ।।५९३।।

कोऊ भक्त बड़े अनुराग पूर्वक सत्संग करिबे के ताईं, काहू भक्त के पास गयो। वो भक्त स्वयं काहू एक इष्ट-धर्म के अनुयायी नाँइ हैके, ठौर-ठौर की श्रद्धा करिबेवारो हतो, याते बिनने वाके हृदय ते हू भक्ति कूँ भगाय, ठौर-ठौर की श्रद्धा उपजाय दीनी, जासों दोऊ भगे-भगे डोलिबे में ही अपने मन कूँ संतोष मानन लगे। अर्थात् जैसे काहू भक्त ने कछु समय काहू भाँति के उपासकन को सत्संग कीनो, कछु समय काहू प्रकार के उपासकन को। ऐसे ही वाने कछु समय कोऊ कथा सुनी, कछु समय कोऊ कथा, कहूँ-कहूँ रास हू देखे, दौर-धूप कर दो, चार, दस मन्दिरन में हू दरसन कीने, या प्रकार प्रातःकाल ते संध्या ताऊँ भगाभगी में ही बिनने अपने मनमें संतोष मानि सुखी भये। ऐसे भक्तन को काहू प्रकार को भाव सिद्ध नाँइ हैकें, योंही जन्म चल्यौ जाइ है। याते साधकन ने श्रीगुरून को आश्रय लै, सत्संग द्वारा इष्ट को स्वरूप एवं अपनी भाव-भक्ति भलीभाँति समझि निर्नय करि, दृढ़ अनन्य भाव ते सतत भजन करिबे पैं ही इष्ट के चरनारविन्द में प्रेम उदय होयगो।

बडेन सों ढेरी कहै, ढेरी आप बडाइ।
श्रीबिहारीदास दर्पन दियौ, सँसै सब मिटि जाइ ।।५८४।।

जगत में काहू आदमी ते बहुत से लोग बड़ो-बड़ो कहन लगें हैं और लोगन के कहिबे ते वह आदमी हू अपने को बड़ो समझन लगै है। जब कोऊ महतपुरुष श्रीबिहारीदास समस्त जीवन तें लेकें सर्वोपरि भक्तन के स्वरूप ताऊँ, भिन्न-भिन्न करि के समझावें हैं, तब बिनको सब बड़प्पन को अभिमान मिटि जाइ है।

को ह्वै है ऐसौ बली, जिनि सँच्यौ धन देस।
अकबर मर्यौ उपदेस करि, पै काहू लग्यौ न लेस ।।५८५।।

जगत में कोऊ ऐसो बलवान नाँइ भयो, न है सकै है, जो समस्त संसार के धन कूँ अपने पास संग्रह करि सकै। सम्राट अकबर के पास काफी धन हो, वाने मृत्यु के समय सबकूँ उपदेस दीन्यौ कि– हे भाई ! मैं सब छोड़ के जाइ रह्यौ हूँ, याते धन की चेष्टा में तुम अपने समय कूँ बर्वाद मत करियो, किन्तु काहू कूँ बिनको उपदेस लेसमात्र हू नाँइ लग्यौ।

महाबली जदुकुल बढ्यौ, अरु रावन सौ सूर।
श्रीबिहारीदास देखे नहीं, अकबर हाल हजूर ।।५८६।।

हे बिहारीदास ! या पृथ्वी पै कितेक बलसाली यदुकुल बढ़्यो, रावन सदृस सूरबीर हू है गये, और हमारे सामने ही अकबर है गयो, जाकूँ कितेक आदमी सतत हजूर-हजूर करते रहे, वोहू नाँइ रह्यौ, इतेक पै हू काहू को मायिक पदार्थन ते वैराग्य नाँइ होय है ?

अनपायें धीरज कहै, सो वह धीरज न होइ।
श्रीबिहारीदास पायें नटैं, धीरज विरला कोइ ।।५८७।।

जब ताऊँ कोऊ पदार्थ काहूँ कूँ नाँइ मिलै है, तब ताऊँ अपने कूँ धैर्यवान कहिबेवारेन कूँ धीरज नाँइ समझ्यौ जाइ है। मिलिबे पै जो लोग नटि जाँइ, धीरज-बिनकूँ ही मान्यो जाइ है।

एक आस इक बास करि, एकै इष्ट उपास।
श्रीबिहारीदास अनन्य मत, बडो भजन विस्वास ।।५८८।।

हे बिहारीदास ! तुम एकमात्र श्रीनिकुंज महल के रस की तो अपने मन में आसा राखो, और श्रीवृन्दावन में ही सतत बास करो। अपने इष्ट श्रीनित्यबिहारी-

नित्यबिहारिनी जू की ही निरंतर उपासना करो। क्योंकि रसिक अनन्य-सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज को यही मत है कि–मन में या प्रकार कौ विश्वास ही सर्वोपरि भजन है।

इछया एक अनेक ह्वै, पुनि अनेक ह्वै एक।
श्रीबिहारीदास सँसै नसै, याको नाँउ विवेक ॥५९९॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि–श्रीवृन्दावन नव निकुंज मंदिर के बिलासी, श्रीजुगल के अतिरिक्त और-और श्रीभगवत स्वरूपन कूँ, हमें कैसे समझनो चहिए, तापै आपको कथन है कि–हे बिहारीदास! एक श्रीकुंजबिहारी की इच्छा ते ही यावत लोकन की रचना है, और जापै बिनकी साँची कृपा होय है, बिनकूँ सब ठौर अनेक होते भये हू श्रीकुंजबिहारी ही दीखैं हैं, या विवेक द्वारा समस्त संसय दूर है जाँय हैं।

सैल सिलह लादे फिरैं, बादि मरैं बहि भार।
श्रीबिहारीदास औसर फबैं, सोई भलो हथियार ॥६००॥

जैसे अनेक व्यक्ति व्यर्थ ही नाना प्रकार के अस्त्र-सस्त्रन के भार कूँ बहन करैं हैं, किन्तु औसर पै जो काम आवै, सोई सबते बड़ो हथियार होय है। ऐसे ही बहुत से साधक अनेक प्रकार के साधनन कूँ करि-करि बिनको बल-भरोसा अपने मन में राखैं हैं, किन्तु समय पै जो काम आ-जाय, वोही बड़ो साधन है। अर्थात आपको अभिप्राय यह है कि– जिन श्रीकुंजबिहारी की इच्छा ते सर्व लोकन की रचना एवं पालन-पोषन है रह्यौ है बिनके ही चरनारबिंद की भक्ति सब समय में अनायास ही रक्षा करिबेवारी है। ताही कूँ अनन्य भाव ते सेवनो चहिये।

सँधि सँधि सब बँध बँध्यौ, सूर बडो सिरदार।
भीर परैं भैभीत ह्वै, मूति भरी पैजार ॥६०१॥

जैसे कोऊ निर्बल प्रान को फौजी सरदार अपने शरीर की संधि-संधि कूँ नाना प्रकार के हथियारन ते, सजाइ राख्यौ हो, किन्तु जब दुश्मन के तोप-गोला चलन लगे, तब भयभीत होइ अपनी जूती में ही पेसाब करि दीनो, तैसे ही श्रीभगवत-आश्रय बिहीन अनेक प्रकार के साधनन को बल-भरोसो राखिबेवारे, साधकन पै जब कोई आपद्-विपद भीर आइ परै है, तव इतेक घबराइ जाँइ है, कि–बिनकूँ वा समय अपनो सहायक कोऊ नाँइ दीखै है, याते काहू के आगे नाँइ पुकारि सकैं हैं।

291

ज्यौं जग मरतैं देखियै, त्यौं ही आपुन देखि।
श्रीबिहारीदास आलस तजौ, भजौ भक्ति कौ भेख ।।६०२।।

हे बिहारीदास ! जैसे जगत में औरन कूँ नित्य प्रति मरते देखि रहे हो तैसे तुम अपने कूँ हूँ समझो। याते आलस कूँ भलीभाँति त्यागि, अनुराग सों भक्ति के वेष कूँ सतत भजो।

जेतो अँतर बास में, तेतौ जानि उपास।
श्रीबिहारीदास कछु साँच है, कछु कछु लोभ लिबास ।।६०३।।
खतु फाटै बिनु क्यौं कटै, रोग भोग रिनु व्याज।
श्रीबिहारीदास अनन्य बिनु, क्यौं छाँड़ै जमराज ।।६०४।।

साक्षात श्रीनित्यबिहारिनी जू को निजमहल श्रीवृन्दावन के बास कूँ अपने इष्ट की प्राप्ति ही समझो, जितेक इनते अंतर परि जाय है, उतेक ही अंतर तुम्हें अपने इष्ट सों समझनो चहिए। यदि कोऊ ये बात कहै कि–हमें इतेक दिन श्रीवृन्दावन में वास करते है गये, न तो आज ताऊँ कबहूँ श्रीनित्यबिहारिनी जू के दरसन ही भये, और न कबहूँ बिनके सुख सों ही भेंट भई, ताको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि–हे भाई ! तुम्हारो बास कछु-कछु तो साँचो है, कछु तुमने अपने मन में लोभ-लालचन के लिवास सजाइ राखे हैं, याते न तो दर्सन ही है रहे हैं, और न सुख ही प्राप्त भयो है। या बात कूँ तुम अपने मन में भलीभाँति समझि लेउ कि जब ताऊँ तुम्हारो मन और-और यावत सुख-संबधन कूँ त्यागि, एकमात्र श्रीबिहारी महाराज के अनन्य दास नाँइ है जायगो; तब ताऊँ यमराज के घर में तुम्हारे कर्मन के हिसाब-किताब के कागज नाँइ फटैंगे, और वो कागज जब ताऊँ नाँइ फटैंगे, तब ताऊँ रोग-भोग रूपी रिन, व्याज समाप्त नाँइ हैबे के कारन यमराज हू नाँइ छोड़ैगो।

नाऊ चिहुटी चीमटा, दरजी नहुँ दै वोप।
नरतकु नाचै नरमई, सूर हनैं रन कोप ।।६०५।।

जैसे अंग में गड़े भये, झीने काँटे कूँ, नाऊ ही नख चिहूटी-चीमटा ते भलीभाँति निकार सकै है, और दर्जी अँगुरी में ओप लगाइ, सिलाई करै है। कोमल नृत्य ऊँचे कलाकार-नर्तक ही करि सकैं हैं। रन में सूरबीर ही बड़ो उमँग तें गरजैं हैं। तैसे ही सर्वोपरि नित्यबिहार को उपदेस हू केवल रसिक अनन्य ही दै सकैं हैं।

तनु तापै चुपराइयै, जो गहि जानै गाँस।
श्रीबिहारीदास सचुपाइयै, दबै नहीं नस माँस ॥६०६॥

जैसे शरीर में मालिस वाही व्यक्ति ते करावनी चहिये जो मालिस की क्रियान में निपुन होइ, क्योंकि वाके मालिस ते नस-मासन पै अनावश्यक दबाव नाँइ परि, देह सुख-बोध करैगी, तैसे ही हे बिहारीदास ! ऐसे उपदेष्टान ते सब बातन कूँ, असेष-विसेष रूप ते भलीभाँति समझनो चहिये, जो काहू को अनादर, अवज्ञा, अपराध न होइ के, अपनी रस-रीति कूँ पुष्टि करि-करि समझाइ सकै।

सब आबेसनि में यहै, स्यामाँ स्याम आवेस।
श्रीबिहारीदास हरिदास की, कृपा होय लवलेस ॥६०७॥

जिन महतपुरुषन कूँ श्रीस्वामीजू महाराज की कृपा को लवलेसमात्र हू प्राप्त है गयो है, बिनके ही हृदय कमल में श्रीजुगल को सर्वोपरि आवेस होइगो। क्योंकि इहलोक परलोक में जितेक आवेस हैं, तिन समस्त आवेसन में सर्वसिरोमनि एकमात्र श्रीश्यामास्याम के नित्यबिहार को ही प्रेमावेस है।

निडर भयौ सुनि भोर लौं, सब निसि गई बिहाइ।
मुस्यौ न भावै और कौ, घर हू को न सुहाइ ॥६०८॥

हे बिहारीदास ! जैसे रात्रि में चोर आदिकन के डर भोर होत खेम ही विलाइ जाय है, तैसे ही प्रेम को निज केन्द्र स्वरूप-नित्यविहार रस रूपी–सूर्य हृदय में उदय होइबे ते हमारे इहलोक-परलोक के यावत् भय-भ्रम भलीभाँति विलाय गये हैं। अब हमें अपनी एवं पराई काहू की निन्दा नाँइ सुहावै है।

चोर चतुर चित में चुभ्यौ, मन में कियौ बिचार।
श्रीबिहारीदास गावत सुखी, डरपे करत बिगार ॥६०९॥

जो ऐसो अद्भुत चतुर चोर है कि–एकमात्र चित्त कूँ ही चुरावै है, वो ही चोर हमारे चित्त में चुभि गयौ, तब हमने अपने मन में विचार कीन्यौ, कि या चोर के महामाधुरी ते भरे-पूरे लाड़-प्यारमय गुनन कूँ उमँगि उमँगि कें गावनो चहिए, जासों दिन दूने-रात-चोगुने सुखी होते जायेंगे, अन्यथा कहूँ लोक-लज्जा-बेद-विधि एवं और-और परमार्थन ते डरपि गये तो, यह चोर हू हृदय ते निकसि जायगो, धीरे-धीरे सब काम बिगरि, दुःख-सागर में डूब जायेंगें। अर्थात जब साधक बिनकी कृपा द्वारा नेक हू श्रीबिहारीजी महराज के माऊँ ढुरन लगै, तब वाने काहू बात सों लज्जा-डर

नाँइ करिकें समस्त रीति-भाँति सों दृढ़ अनन्य होइ, उमँगि-उमँगिकें श्रीबिहारीजी महाराज के ही गुन गावने चहिये, यदि ऐसो नाँइ कियो तो, सनैः सनैः साधारन ढुरन हू नाँइ रहि सकेगी।

गूदर मुसैं न छीजियै, खोलैं जागि किवार।
काल व्याल सबही मुसै, ता चोरै रहौ हुसियार ॥६१०॥

गूदर सदृस मायिक पदार्थन के चले जाइबे ते कछु हानि नाँइ होइ है। याते किवार खोल, सदाकाल निर्भय होइ सोवो, काल रूपी व्याल सबन कूँ सतत ग्रसि रह्यौ है, ता चोर ते निरंतर सावधान रहि, इष्ट के नाम-गुन-ध्यान में आलस त्यागि, अनुराग ते लगे रहो।

हरि के नाम को आलस कित करत है काल फिरत सर साँधे।
बेर कुबेर कछु नहिं जानत चढ़यो रहतु है काँधे ॥ –श्रीस्वामीजी

काठ चुरावै चिता कौ, बसन कफन कौ लेइ।
श्रीबिहारीदास मानै भलौ, दोस न काहू देइ ॥६११॥

हे बिहारीदास ! यदि कोऊ व्यक्ति अति निंदनीय चिता के काठ, एवं कफन के वस्त्र कूँ हू चुरावै, तौहू तुम काहू को बुरौ मत कहो। कारन परमार्थ पथ पै चलिबे-वारे जन सब कूँ भलो ही माने हैं।

घूँघट ही मैं घुंनि गई, दरि न रंधायौ भात।
नाजु गयौ लाजौ गई, स्वाद गयौ गरि गात ॥६१२॥

जैसे कोऊ नई बहू इतेक लज्जा करिबेवारी आई, जोकि सबनके आगे घूँघट राख्यौ करती। एक समय पाक बनाय रही, तब वाके घूंघट में आग लगि गई, जाके कारन वाकी लाज हू गई, नाज हू गयो, देह हू जरि गई। प्रीतम के संग लज्जावस उत्सव हू नाँइ मनाइ सकी, योंही जन्म निरर्थक चल्यौ गयो। तैसे हीं जो साधक केवल जगत की लज्जावस श्रीबिहारी-बिहारिनी जू के दृढ़ अनन्य होय, नाम-गुन-सेवा आदि में उमँगि-उमँगि लगि, अद्भुत सुख-स्वादन कूँ नाँइ बिलसैं हैं, विनको जन्म यों ही चल्यौ जाय है।

घुंघट मुँह मूंदैं मुठी, बहुत लोग ललचाइ।
घूँघट मुँठी उघारि दै, श्रीबिहारीदास भ्रम जाइ ॥६१३॥

जैसे घूँघटवारी बैयर और मुट्ठी बंद रखिबेवारे व्यक्ति के माऊँ, बहुत लोग ललचायौ करें हैं। घूँघट-मुट्ठी खोलि देबे पै समस्त भ्रम दूर है जाइ हैं। तैसे ही तुम निसंकतापूर्वक चौरे होइ कें, श्रीबिहारीजी महाराज के माऊँ लगि जाओगे, तो सबन को भय-भ्रम स्वाभाविक दूर है जाँयगें

गजाइ-बजाइ अनन्य भये भय भ्रम भाजि गये तिनही के। —श्रीस्वामीनागरीदेवजू

खर खंगर लादे फिरैं, खरिया मेलै कांध।
खर नर में व्यौरौ कहा, अखुटत डोलत आंध ॥६१४॥

कछु लोग आंधरेन सदृस ऐसे अज्ञानी होइ हैं, जिनके काहू इष्ट एवं परमार्थ को नेक हू लेस नाँइ होइ है, बेकार ही जैसे खर पै खंगर, तैसे ही ये लोग अपने कंधा पै बोझा लादे डोले हैं, और नेक में ही लरिबे-भिरिबे को तैयार रहैं हैं। ऐसी रहनी वारे मानवन में एवं खरन में कोऊ भेद नाँइ होय है।

हरियाई हेरौ करै, जहां तहां त्रिसकार।
खूँटा चरचौ न भावई, विपति मांन आहार ॥६१५॥
हरियाई को सुख सुनौं, गरैं बँधावै काठ।
मैंड मैंड मारी फिरै, जहाँ लपकै तहां लाठ ॥६१६॥
जाकी मिहरी बाहरी, अरु हरियाई गाइ।
खसम न सोवन पावई, उझकत झकत बिहाइ ॥६१७॥

जैसे हरियाई गैयान कूँ जहाँ-तहाँ लपके बिना अपने खूंटा पै बँधि, सुन्दर चारा चरिबो हू, विपति मालुम परै है, वाको परिनाम ही ऐसो होय है जो कि गला में तो काठ बँधावै, और जहाँ-तहाँ लपकिबे के कारन लढिया हू खावै है। याते जाकी बैयर तो बाहिरी और गैया हरियाई होइ है, बिनके मालिक कूँ सब रात उझकते झाँकते ही जाइ है। तैसे ही बहुत से साधक या प्रकार के होंइ हैं कि जब ताऊँ अनेक ठौर आइ जाइ, अपमान हू सहि, नाना प्रकार के परमार्थ कों आस्वादन नाँइ करि लेवैं, तब ताऊँ अपने श्रीगुरुदेव को दियो भयो सर्वोपरि परमार्थ-पथ पै चलिबो, विपति सदृस ही दीखै है। याते श्रीगुरुन ने लकरी स्वरूप अपनी आज्ञा रूपी बंधन हू बिनके गरे में बाँधनो परै है, तौहू वे अपने सुभाउ-परवश होइ, नाँइ रुकै हैं, जाके कारन श्रीगुरुन ने हर समय बिनपै दृष्टि हू राखनी परै है।

ताइ छानि घसि कसि लियो, चोकसि बांधी गांठि।
श्रीबिहारीदास निधरक भयौ, गयौ भर्म भै नांठि ॥६१८॥

हे बिहारीदास ! याते हमने अपने परमार्थ कूँ समस्त रीति-भाँति सों छानि-ताइ, घसि-कसि, निश्चय करि अपने हृदय में ऐसे धारन करि लीन्यौ है, जासों हम भलीभाँति निधरक है गये हैं, हमारे समस्त भय, भ्रम स्वयं ही नाहीं करिकें चले गये हैं। साधकन ने अपने धर्म कूँ याही भाँति निश्चय करि, अनन्य भाव सों भजनो चहिए।

हत्या ताही लागि है, जो मारै करि क्रोध।
बिनु हिंसा लागै नहीं, वेद कितेबनि सोध ॥६१९॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—परमार्थ के स्वरूप कूँ और-और परमार्थन ते ही छान्यौ-ताग्यौ जाइ सकै है ? ऐसो करिबे ते काहू की अवज्ञा, काहू कूँ ऊँचो-नीचो समझनो परैगो, ताके कारन अपराध होइबे को डर है, या लक्ष्य सों आपने कह्यौ कि—हे भाई ! अपराध वाही बात को लग्यौ करै है जो अश्रद्धा ते काहू की निंदा कीनी जाइ। जैसे कोऊ काहू कूँ क्रोध एवं अपने स्वार्थ के ताईं मारै, वाकूँ ही हत्या लगै है। विना हिंसा काहू को पाप लगि ही नाँइ सकै है। या बात कूँ वेद-शास्त्रन के ग्रन्थन में भलीभाँति सोधि कै तुम देखि लेओ।

बरनाश्रम में पति बड़ी, पति ही में पति जाति।
श्रीबिहारीदास कैसें मिलै, जहाँ भगति में भांति ॥६२०॥

जैसे बरनाश्रम धर्म में चलिबेवारेन की बड़ी प्रतिष्ठा ऊँची जाति सों ही मानी जाइ है, और भक्ति पथ में चलिबेवारे जन देह-संबंधी जातीय अभिमान मानिबे में अपनी हानि समझैं हैं। क्योंकि भक्तन कूँ देह संबंधी जाति सों कोइ संबंध ही नाँइ होइ है। जाति बुद्धिवारे जाति के कारन भक्तन में हू भेद करन लगैं है, याते हमारो विनको मेल नाँइ है सकै है।

धनही ऐंचै ह्यावढी, हौंस करै मन रीस।
उलट्यौ अर्थ न समझई भोंदू भूल्यौ फीस ॥६२१॥

जैसे कोउ आदमी धनुष चलाइबो तो जानैं नाँइ है, अपने मन में धनुष चलाइबेवारे ग्याता पुरुषन की रीस करिबे की हौंस करै है। ग्याता पुरुष धनुष कूँ कानन के माऊँ ऐंचि के चलावैं हैं। ये भोंदू हृदय के माऊँ ऐंचि के चलावन लगै है। याते

वाको निसाना नाँइ बैठे है। तैसे ही परमार्थ की उच्चता श्रीभगवत-चरनारबिंद के संबंध ते ही होइ है। वरनाश्रम धर्म में चलिबेवारे अपनी मायिक देह की उच्चता को ही सर्वोपरि मानैं हैं, तासों श्रीभगवत प्राप्ति रुपी लक्ष्य ही विनको चूकि जाइ है।

पीया अमल बुरा किया, मतवारा इतराइ।
उतरैं अमल विकल भया, अब को करै सहाइ ॥६२२॥

जैसे समस्त प्रकार के अमलन कूँ सब लोग बुरो बतावैं हैं, किन्तु नसा में मत-वारो है जाय, वो उल्टो इतरावन लगै है। जब वाको नसा उतरि जाइ, तब वाने अपनो कोऊ रक्षक दीखै नाँइ है। तैसे हीं जो लोग उच्च जाति एवं धन, रूप, गुन, बल आदि के अभिमान में इतरावन लगें हैं, किन्तु जब देह त्यागि के जाइबे को समय आवै है, तब वा समय बिन लोगन कूँ अपनो कोऊ सहायक नाँइ दीखै है।

करत मनोरथ बड़ बडे, पेट निपट घटि स्वांस।
परचौ अरध जल लालची, तऊ बिषै की आस ॥६२३॥

विषयी लोगन के प्रान जाइबे के समय जब स्वास खिचकें आवन लगै है, वा समय में हू बिनके लोभ-लालच के मनोरथ नाँइ मिटैं हैं।

नीमन घुन लागै नहीं, काचौ खायौ पोलि।
श्रीबिहारीदास कहा दुरैं, देखि छेदि छरि छोलि ॥६२४॥

जैसे पाकी नीमन लकरी कूँ घुन नाँइ लगि सकै है, काची कूँ ही घुनि खाइ पोली बनाइ देवै है, तैसे ही नित्यबिहार के साँचे दृढ़ अनन्य उपासक श्रीबिहारिदासन को स्वरूप नाँइ छुपि सकै है। जैसे लकड़ी कूँ छील के तथा छेद करिके काची पाकी देखि लई जाइ है, तैसे हीं और-और परमार्थन के सुख-स्वाद, तथा मायिक लोभ, लालच, आपद्-विपद् आदि परीक्षा द्वारा बिनको स्वरूप दीख जाइ है।

एक वैदगी पित्त की, एक वैदगी बाइ।
वैद कहै गुरु सूँठ लैं, वह महुवा मूरी खाइ ॥६२५॥

जैसे कोऊ रोगी तो पित्त के दोष को है, वैद्य जी वायु दोष को इलाज करैं, तैसे ही साधक के हृदय में तो जागतिक बासनान का विकार है, गुरुजी काहू सिद्धि को अनुष्ठान करावैं, ऐसे ही वैद्य जी रोगी के ताईं गुर-सोठ कों पथ्य बतावैं, रोगी उल्टे महुआ-पूरी खाइ के कुपथ्य करै, या प्रकार श्रीगुरुदेव तो वैराग्य, त्याग बतावैं,

साधक और हू अधिक संसार में लगैं, ऐसे गुरु-सिष्य प्रेम स्वरूप कूँ समझि कैसे सकैं हैं ?

जैसे निसि दिन में बसै, ऐसे दिनि निसि माँहि ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि यौं, गाँस घाँम बस छाँहि ॥६२६॥

जैसे रात्रि तो दिन में ते निकसै है, तैसे दिन रात्रि में ते । ऐसे ही श्रीलालजू के प्रानन तें श्रीलाड़िलीजू के सुख-स्वरूप-भाव सतत उदय होंइ हैं और श्रीलाड़िलीजू के प्रानन ते लालजू के । जैसे धूप के आधीन छाया होइ है, तैसे ही ये दोऊ श्रीबिहारी-बिहारिन अपनी निज-सहचरिन के सतत आधीन रहैं हैं ।

आपुनही अपनी करी, अपनी यौं निजु जांनि ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि कसि, लीनी भली पिछांनि ॥६२७॥

आपने अपनी कृपा द्वारा मोकूँ निज अपनी दासी बनाइ लीनो, या बात कूँ समस्त रीति-भाँतिसों हमने कसि कै देखि लीनो है ।

कछु दावो धक्का नहीं, अरु नँहि काहूँ सों सीर ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि कैं, श्रीहरिदासै गुरु धीर ॥६२८॥

अब हमारे ऊपर न तो काहू को दाबो-धक्को ही है, और न हमारे रस-देश में काहू को सीर-साझो ही है । क्योंकि सर्वोपरि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की दासता एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रय लेबे ते ही, प्राप्त होय है ।

श्रीबिहारिदास हरिदास कौ, दुर्लभ दरसन पाइ ।
अँग सँग नित्य बिहार में, लीनौं मृतक जिवाइ ॥६२९॥

जैसे कोऊ अति कृपन व्यक्ति अपने नखन ते ही कूँवा खोदि कै, जल निकासिबो चाहै, वो नितान्त असंभव है, तैसे ही श्रीजुगल को प्रथम समागम एकान्त-रस-विलास-निज महल तें श्रीस्वामीजू महाराज को भूमण्डल पै प्रगट होइबो एकमात्र अति दुर्लभ एवं असंभव हुतो, तौहू आपके साक्षात दर्शन हमें प्राप्त भये, इतेक हू नाँइ मृतक सहस-माया-मुग्ध मोकूँ आपने निज कृपा द्वारा अंग-संग को नित्यबिहार दान दै, मेरे कूँ जिवाय, अजर-अमर करि दीनो ।

कहा मृतक की साहिबी, कहा सेवग इतराइ ।
श्रीबिहारीदास हरिदास जसै, अमर भयौ दुलराइ ॥६३०॥

हे बिहारिदास ! जो मरिबेवारी है, वाकी कछु दिन के ताईं साहिबी देखिबे

में हू आवै, तौहू नित्य नाँइ हैबे के कारन सराहिबे योग्य नाँइ है सकै है। ऐसे ही और-औरन की सेवकाई ते निर्बाह करिबेवारे सेवक को इतराइबो हु, सोभा नाँइ पावै है, याते नित्यबिहार के अनन्य उपासक विहारिदास ही अमर होय, श्रीस्वामीजी महाराज के रसमय-जसनकूँ गाइ-गाइ, श्रीजुगल कूं सतत दुलरावैं हैं।

श्रीगुरु कहो ते सब लहो, श्रीगुरु कियौ निबाहु।
बिहारीदास कैसे डिगैं, राख्यौ गहि बल बाहु ॥६३१॥

श्रीगुरुदेव ने जो-जो उपदेस हमें दीने, वे सब बिनकी कृपा ते अपने हृदय में धारन करि लीने। ऐसे कृपासिंधु श्रीगुरुदेव–बलपूर्वक मोकूँ गहिकें सदाकाल निभाइ रहैं हैं, तब मैं विचलित हो ही कैसे सकूँ हूँ?

यातै सीस नवै नहीं, होत दरस बिच हानि।
श्रीबिहारीदास सौं जिनि कहौ, कोऊ कुमति कुबानि ॥६३२॥

या साखी के प्रसंग में ऐसो सुनिबे में आवै है कि आप राधा-टीला पै विराजमान होइ, मन द्वारा श्रीजुगल कूँ लाड़-लड़ाय-लडाय नेत्र कमलन ते बिनकी रूपमाधुरी कूँ निहार रहे हे, ताही समय संत-जनन कौ कीर्तन मण्डल आगे ते जाइ रह्यौ हो। भक्ति-पथ की ऐसी रीति है कि श्रीनाम संकीर्तन को सभी लोग उठि के दण्डवत करैं हैं, किन्तु आप जैसे बिराजे हुते, तैसे ही विराजे रहे। आपके स्वरूप ते अनभिज्ञ होइबे के कारन वा समय काहू संत ने ऐसो कह्यौ कि–इनकी कैसी कुमति-कुबानि है जो कि साक्षात नाम-संकीर्तन को दंडवत हू नाँइ करैं हैं, तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई! माथो नबाइबे ते श्रीजुगल के दरसन में, अन्तर परि जातो, ताते हमें कुमति-कुबानि कोऊ जिन कहो।

श्रवन सुजस रस रमि रह्यौ, इनहिं न और सुहाइ।
परम नरम रस रीति पद, प्रीति प्रतीति हिताइ ॥६३३॥
गौरस्याम अँजन अँजी, अँखियाँ आनँद रूप।
पलकनु में झलकत रहैं, ए दोउ सुखद सरूप ॥६३४॥
नासा इहि सौरभ सुखी, अँग सँग को उदगार।
याहि यहै याही ग्रहै, याकौ यहै आहार ॥६३५॥
रसनाँ रस परसाद बस, हरि जस प्रेम प्रवीन।
स्वाद बाद नीरस किये, रसिक किये आधीन ॥६३६॥

भूलि तुचा परसैं नहीं, जाकैं देह न ग्रेह।
श्रीबिहारीदास हरिदास सौं, हियें सु सहज सनेह ॥६३७॥

मेरे श्रवन तो एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजू महाराज के सर्वोपरि रस-जसन में ऐसे रमि रहे हैं, जो इन्हें और-और रसन की हू बात नाँइ सुहावै है। क्योंकि श्रीनित्यबिहारिनीजू की जो परम-नर्म अति कोमल रसकी रीति है, वाही में हमारी प्रीति एवं विश्वास है और वो ही हमारी हित करिबेवारी है, याही ते मेरी आँखिन में आनन्द स्वरूप गौरस्याम दोऊ श्रीजुगल अंजन की नाँई पलकन में सतत झलकते रहैं है। ऐसे ही हमारी नासिका हू दोऊन के अंग-संग को उद्गार सौरभ ते ही सतत सुखी रहै है, और याही सौरभ की इन्हें लालसा रहै है, याही कूँ ग्रहन कियो करै है, यह सौरभ ही याको आहार है। हमारी रसना श्रीजुगल के रस-जसन कूँ गायबे में ऐसी अति प्रबीन है कि-बिनकूँ आधीन करि, समस्त विवादन कूँ नीरस करि दीनो है। ऐसे ही आपके महाप्रसाद के स्वादन कूँ लै-लैकैं और समस्त स्वाद फीके करि दीने हैं।

जिन महत्पुरुषन के नित्यबिहार रसमय सहचरि भाव रूपी देह, एवं निकुंज महल रूपी गेह, नाँइ हैं, बिनकी देह कूँ भूलि में हूँ हम स्पर्स नाँइ करैं हैं।

पाँच दुगन दस बस करै, मन सु बिहारिनिदास।
मिलि अनन्य सतसंग सों, भजन बढै विस्वास ॥६३८॥

दसों इन्द्रियन कूँ बस करि, मन कूँ सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनी जू को निज दास बनाइ लेवो, तापै यदि कोई ये कहै कि-जागतिक जीव ऐसे करि ही कैसे सकैंगे? ताको लक्ष्य करि आप बोले कि— हे भाई! श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्य जनन ते मिलि, सतसंग करिबे तें दृढ़ विश्वास होइ, नित नयो भजन बढ़तो जायगो।

क्यारी करौ कपूर की, बिच मृगमद बरहा बँध।
जो अमृत जल सींचियै, तौ लहसन जाइ न गँध ॥६३९॥

जैसे कोऊ कपूर की क्यारी करि, कस्तूरी को बरहा बंद बनाइ, अमृत जल सों सींचै, तौहू लहसन की गंध नाँइ जाइ है, तैसे ही ये लोग प्रेम स्वरूप श्रीजुगल कूँ अपनो इष्ट मानि, सखी-सहेली-सहचरी-भाव-रूपी बरहा द्वारा, अमृत सदृस प्रेममय साधनन ते सींचैं हैं, तौहू इनके मन ते ईश्वरता की गंध नाँइ जाइ है।

एक दसा एकादसी, एक इष्ट ब्रत एक।
श्रीबिहारीदस हरिदास कें, भजन अनन्य विवेक ॥६४०॥

हे बिहारीदास ! श्रीस्वामीजी महाराज के यहाँ अनन्य भजन करिबो ही विवेक समझो जाइ है। याही ते हमारे सदाकाल एक ही इष्ट तथा एक ही दसा कूँ एकादसी सदृस अपनो दृढ़ ब्रत मानैं हैं। अर्थात इष्ट के प्रसाद को स्वरूप हमेसा ही एक सों मान्यो जाइ है, जैसे और लोग जा प्रसाद कूँ पहिले प्रसाद मानते हे, वाहो कूँ एकादशी के दिन अन्न मानन लगैं हैं। अनन्य जन ऐसे नाँइ मानैं हैं।

मन ऐंच्यौ हरि आपु तन, तन कौं ऐंचैं काँम।
श्रीबिहारीदास दुबिधा भए, क्यौं पावै विश्राँम ॥६४१॥

जिन महतन के मन कूँ तो साक्षात श्रीहरि अपने माऊँ ऐंच रहैं हैं, किन्तु तन कूँ जागतिक कार्य-विवश कर रहैं हैं, जाके कारन मन में दुबिधा होइबो स्वाभाविक है, फिर मन को विश्राम कैसे मिलि सकै है ?

काहूँ कैं बल बाँह कौ, काहू शिष्य पचास।
इक हथिया हरिदास कौ, नाँउँ बिहारीदास ॥६४२॥

काहू के अपने हाथ-पाँव परिश्रम को बल, काहू के पचास शिष्यन कौ, किन्तु हमारे तो एक ही हाथ स्वरूप श्रीस्वामी जी महाराज की कृपा ही है, ताही के बल-भरोसा पै हम सदाकाल प्रसन्न रहैं हैं।

द्वै द्वै बाँह सिलह सजैं, साधारन संसार।
एकै हाथ निकासनौं, एकै भजन बिहार ॥६४३॥

जैसे जगत में साधारनतया दोनों हाथन में ही हथियारन कूँ सजायौ करैं हैं, तैसे ही साधक समाज हू नाना प्रकार के साधनन को बल-भरोसा अपने मन में राखैं हैं, किन्तु मेरे तो एक ही हाथ स्वरूप नित्यबिहार को ही भजन, नित्यबिहार की ही लालसा सदा-सर्वदा रहै है।

जाकौं दरस अति दुर्ल्लभो, परसन परम अगाध।
ए सौंधे स्वादी बादि हीं, मन में मारत साध ॥६४४॥

जा नित्य-बिहार को दरसन ही अति दुर्लभ है। वाको सपरस तो और हू अति कठिन है। जामें ये साधारन स्वाद के ही लोभी स्वादी लोग बेकार ही अपने मन में आसा लगावैं हैं।

अर्थात श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रय, प्रेम-संबंध लिये बिना जहाँ-तहाँ के स्वाद लैबेवारेन कूँ कैसे हू नित्यबिहार प्राप्त नाँय है सकै है।

अपनी इष्ट उपासना, दृढ़ गुरु-धर्मी होइ।
श्रीबिहारीदास अनन्य सौं, धन्य, कहै सब कोइ ॥६४५॥

जो जन अपनी इष्ट उपासना एवं श्रीगुरुन के बताये भये धर्म कूँ हृदय ते दृढ़ता पूर्वक पालन करें हैं, तिनही अनन्य श्रीबिहारीदासन कूँ, समस्त परमार्थीजन धन्य-धन्य कहैं हैं।

श्रीबिहारीदास हिंदू तुरक, सबहिनि कैं गुरु पीर।
कारे मुँहूँ निगुरा फिरैं, स्याह रूह बेपीर ॥६४६॥

यदि कोई ये बात कहै कि—कछु लोग जगत में ऐसे हू हैं, जो इष्ट में तो अपनो अनन्य भाव राखैं हैं, किन्तु गुरु करिबे की आवश्यकता नाँय मानें हैं, तिनको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि—हे बिहारीदास ! हिन्दू, तुरक, सबहिन के धर्म में इष्ट और गुरु दोनों ही होय हैं, किन्तु जो गुरु को नाँइ मानैं हैं, ऐसे निगुरान कूँ तो मुँह सिद्धान्त दोनों ही कारे समझने चहिए।

राति द्यौस झूठहि बोलैं, साँच न बोलै एक रती।
श्रीबिहारीदास यह बडो अचँभो, बनियाँ भक्त अरु वेस्या सती॥६४७॥

हे बिहारीदास जो लोग बनियान की नाँईं रात-दिन सहज सुभाउ झूठ ही झूठ बोल्यौ करें हैं, साँच बोलिबो तो वे रत्ती भर हू नाँइ जानें। ऐसेन को भक्त होइबो या प्रकार की अति आश्चर्य की बात समझो, जैसे वेश्या को सती होइबो।

अपनें मनहीं न तोलहीं, तौलै सब संसार।
घरु मुँसते न जाँनहीं, डाँडी डहकन हार ॥६४८॥

जगत में प्रायः ऐसो देखिबे में आवै है कि—सुबह ते साम ताऊँ औरन के ही गुन-दोषन कूँ लोग कहते-सुनते रहै हैं, अपने अवगुनन माऊँ कबहूँ ऐसे नाँइ देखैं हैं, जैसे तौल में कम देबेवारो व्यक्ति अपनी हानि माऊँ नाँइ देखै है।

ठग बग ताकैं मैंड की, लोभी दँभी दाँम।
श्रीबिहारीदास मुख मौन ह्वै, ये दोउ दुखी सकाँम ॥६४९॥

हे बिहारीदास ! बगुला की नाँईं कपट करिबेवारे और ठगिबेवारे लोगन को

अभिनिवेश, एकमात्र दंभ करिके अपनो स्वार्थ सिद्धि करिबे को ही होइ है। ये दोऊ सकामता वस सतत दुखी रहै हैं, याते ऐसे लोगन ते सदाकाल बचिके ही रहनो चहिये।

द्वै द्वै चुपरी चाहियै, स्वाँमीपनों अरु दाँम।
कनों देखि न रुकई, दुख पावै बेकाँम ॥६५०॥

जैसे काहू को द्वै-द्वै तो रोटी, ताहू में अति चुपरी चहिये, ऐसे कछु लोग ये सोंचे हैं कि—जगत में हम स्वामी हू बने रहैं, और हमारी भेट-पूजा हू चोखी होती रहै ? किन्तु पैसान के लालायित जो लोग होइ हैं, बिनके प्रति जगत में स्वामीपने की श्रद्धा सदा-काल रहिबो अति कठिन है।

देखी नेष्टा इष्ट की, जूठनि खात घिनाइ।
मुँह देखत ममता करै, पाछै चलत गुराइ ॥६५१॥

याही प्रसंग में आपने और हू कह्यो कि जगत में कछु लोग ऐसे होइ हैं जो श्री ठाकुरजी महाराज कूँ अपनो इष्ट हू कहैं है किन्तु बिनके प्रसाद लैबे में अनेक बिचार करें हैं, या प्रकार की तो इनके इष्ट की निष्ठा और यदि कोऊ बड़ो आदमी आय जाइ तो वासों बड़ी ममता दिखाइबे लगें हैं। किन्तु वो बिना कछु चोखी भेंट किये चल्यौ जाइ तो पाछे बुराई हू करिबे लगि जाइ हैं।

ताकौ बुरौ न मानियैं, लरै भिरै दै गारि।
टेढ़ो भैंडो ह्वै चलै, तरुना पै दिन चारि ॥६५२॥

जो व्यक्ति चार दिन की जवानी के जोश में भरि सबन ते लरितो-भिरतो, टेढ़ो-मेढ़ो गारी-गलौज करतो भयो चलै है, ऐसो व्यक्ति यदि कछु कहि, सुनि जाय, ताको बुरो नाँइ माननो चहिये।

तन परवस ह्वै जान दै, मन अपने बस राखि।
जैसे कच्छप कुंजलौं, काज होत सब साखि ॥६५३॥

हे बिहारीदास ! काहू कार्य में विवस देह द्वारा इत-उतमाऊँ कहूँ जानो हू परै, तौहू मन कूँ अपने इष्ट के श्रीचरन-कमलन में लगाइ कें राखनो चहिए। क्योंकि जैसे कछुआ एवं कुंजा पंछी अपने बच्चान कूँ छोड़ि, बड़ी दूर चले जाँइ हैं, तौहू मनते बिनकूँ सतत सेवते ही रहै हैं। याही ते उन बच्चान कूँ पालन-पोषन है जाइ है। तैसे तुम्हारो हू मनोरथ सफल है जायगो।

जहाँ कँचन की खांनि, तहाँ न कल्लरु नीपजै।
भरम होत हीं हांनि, कसैं कसौटी जानियै ॥६५४॥

जहाँ सुबरन की खानि होइ है, वा भूमि कूँ ऊसर नाँइ कह्यौ जाइ सकै है और वामें कछु निपजै हू नांइ है। ऐसे ही जिन श्रीबिहारीदासन को मन इष्ट में सतत लग्यौ रहै है, बिनको स्वरूप कंचन सदृस प्रेममय उज्ज्वल है जाय है, ताते बिनमें संसारी बासना कोई उपजि ही नाँइ सकै है। ऐसे महतपुरुषन में भ्रम करिबेवारेन की उल्टी हानि है जाइ है। यदि कोई ये कहै कि—बिनको ऐसो स्वरूप कैसे मालुम परैगो ? तापै आपने कह्यौ कि—सत्संग, व्यौहार आदि काहू प्रकार की कसौटी पै कसिबे ते बिनको स्वरूप मालुम परि जायगो।

ते अनन्य निजु जान, जे श्रीस्वामी हरिदास के।
मनें न आनें आन, बिनु निकुंज रस माधुरी ॥६५५॥

यावत अनन्यन में निज अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज के ही सांचे जन हैं, जोकि श्रीवृन्दावन प्रथम समागम निजमहल रस-माधुरी के अतिरिक्त और काहू रस कूँ अपने मन में नाँइ लेवें हैं।

खास खवास खदानौं. मेरैं, अैसो कहूँ न पइयत हेरे।
ताती सीरी साँझ सबेरैं, रहत हजूर बिना ही टेरैं ॥६५६॥

निकुंज महल में श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की निजरसमय खास-खवासी की दृढ़ अनन्य उपासना एकमात्र हमारे ही घर में ऐसी है, जो यावत परमार्थिन के यहाँ कहूँ ढूढ़िबे पै हू नाँइ मिलि सकै है। यदि कोऊ ये बात कहै कि—माधुकरी के ताईं तो आपने औरन के घर जानो ही परतो होइगो ? तापै आपने कह्यौ कि—हे भाई ! बिना ही माँगे, ताती, सीरी, साँझ-सबेरे कबहूँ न कबहूँ अनायास ही आय जाइ है।

हरि सेवत को सबै भली, नाहिनैं अनैसी।
जो सेवै जिहिं भाइ, प्रीति करि हैं हरि तैसी ॥६५७॥

श्रीहरि को सेवन कोऊ कैसे हू क्यों न करतो होइ, सब ही सुन्दर होय है, वामें अनखनाइबे की कोई बात नाँइ होइ सकै है, किन्तु यह समझिबे की बात है कि—जो साधक जा प्रेम भाव ते श्रीहरि कूँ सेवै है, श्रीहरि हू तैसी ही प्रीति बिनते करें हैं।

नित्य बिहार सुसार की, सँधि सुनि ऐसो।
श्रीबिहारीदास कै प्रान जीवन, जोरी समवैसी ॥६५८॥

सर्वसारातिसार-सर्वोपरि नित्यबिहार रस की अद्भुत संधि या प्रकार की है, जो कि प्रथम-समागम-एकान्त रस बिलास निज महल श्रीवृन्दावन में श्रीबिहारी-बिहारिनीजू छिन-छिन नवनवायमान, जोवन के जोर में बिभोर, सम-किसोर-वैस तें निरंतर विहरैं हैं, जिनको अति विचित्र रूप; तामें महामधुर मृदु मुसिक्यान, अति सरस रसीली बोलन, महागूढ़-रहस्मिय-परिहासन की होड़ वदि-वदि कें परस्पर बहसि द्वारा, छिन-छिन नये-नये विचित्र रहसि रस कूं जैसे-जैसे उपजावैं हैं, तैसें ही दोऊन के श्रीहृदय-कमलन में एक समान ही अनंत मनोरथन की तरंग उठैं हैं। और जा-जा भाँति मनोरथन को अगाध समुद्र लहरावै है, तैसे-तैसे ही अति सरस रसीली रंग भरी दृष्टि तें दोऊ श्रीजुगल निहारन लगैं हैं, जा अति बिचित्र निहारन में श्रीअलकलड़ी अलबेली लाड़िली जू छिन-छिन नये-नये प्रकार के मान करैं है, अति आतुर आसक्त सिरोमनि श्रीलालजू नैनन में ही निहोरे करि-करि अनेक प्रकार ते मनुहार करैं हैं। या विचित्र भाव अनुभावन ते अबाध रंग की बरसा बरसाय-बरसाय विलास में ऐसे निमग्न रहैं हैं, कि—जिनकूं अनादिकाल ते निद्रा-भोजन की हू कबहूँ सुधि नाँय होइ है, और न रात दिन को ही भान होइ है, जिनके रूप की लावण्यता,-लालित्यता एवं माधुर्यता की बिचित्रता कूं कोटिक रसिक कबि हू बर्नन नाँइ करि सकैं हैं। या प्रकार के अद्भुत महारसबिलासी समवैसी जोरी को नित्यबिहार रस हमारे श्रीस्वामीजी महाराज के प्रानन कूं सदाकाल जिबाइबेवारो अद्भुत प्रानाधार धन है।

चुनैं चितारै फिर चुनैं, चुनि चुनि चितारेह।
कुंजा लाल बसाँइया, छिन न बिसारे नेह ॥६५९॥

या जोरी के भजन करिबेवारेन के प्रति आपने कह्यौ कि— हे भाई! जैसे कुंजा-पक्षी अपने बच्चान कूं छाँड़ि के बड़ी दूर ताऊँ चल्यौ जाइ है, किन्तु छिन-छिन बिनकूं ऐसे याद करतो रहै है कि—एक दानो चुगि लेवै है, फिर याद करि लेवै है फिर एक दानो चुगि लेवै है, याद करि लेवै है, ऐसे बिनकूं छिनमात्र हू नाँइ भूलै है याही ते वाके बच्चे पर-वरिस होइ, उड़न लगैं हैं, ताही भाँति तुमने या जोरी कूं छिन छिन स्मरण चिंतन करते रहनो चहिये।

श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों चित्त ज्यौं सिर पर दोहनी।

बलिहारी जाऊँ जक परी, बातन बहुत दँडौत।
पालत देह कुटँब कौं, भले समझि भागौत ॥६६०॥

हे बिहारीदास ! ये श्रीमद्भागवत जू के वक्ता बातनकूँ बड़ी रसीली बनाइ-बनाइ कैं कहैं हैं, और दंडवत हू बहुत करैं हैं, किन्तु जो कुछ भेंट, पूजा आवै, वाते अपनी देह-कुटंब-परिवार को ही पालन-पोषन करै हैं। परमहंस चूड़ामनि श्रीसुकदेवजी महाराज ने तो संसार कूँ त्यागि, श्रीभगवत-चरनारबिंद सों अनुराग करिबो ही पद-पद पै वर्नन कीन्यौ है, याते हम इनके दृष्टिकोण पै बेर-बेर बलिहारी जाँय है कि इनने श्रीभागवतजू के मर्म कूँ कहा समझचौ ?

बह अछिर यामें नहीं, भावै हँसि तू रोय।
पोथी पुस्तक बाँधि कैं, दै सिरहाने सोय॥६६१॥

जिन पुस्तकन में सर्वोपरि नित्यबिहार प्रेमरस के अक्षर नांइ हैं, बिन पुस्तकन कूँ पढ़ि-पढ़ि कैं चाहै प्रेम में तुम हँसो, चाहै रोवो, बिनते कछु नाँइ है सकै है।

वरनाश्रम वाहन तरै, कर्म ज्ञान घट नाइ।
भक्ति दलदलै क्यौं तरै, ब्रज लौं सकै न जाइ॥६६२॥
सो ब्रज परम विसाल है, ताकी बड़ी सु पौरि।
ऊँचे चढ़े खिसले परे, नीचें आवत भौंरि॥६६३॥
वा ब्रज के आवरन सुनि, गोपी गाइ गुवाल।
तिनहूँ ते विहरत दुरैं, रसिकन के प्रतिपाल॥६६४॥

वरनाश्रम धर्म में चलिबेवारे मायासागर कूँ अपनी बाँह-बल ते ही पार जाइबे को प्रयास करैं हैं। कर्म-ग्यान के पथ पै चलिबेवारे साधक, मानो घड़ान की नौका बनाइ पार जाइबो चाहैं हैं। और श्रीभगवान के दासभाववारे भक्तन के हृदय कमल में तो इष्ट की ईश्वरतारूपी गौरव, एवं अपराध रूपी भय ऐसो बन्यौ रहै है, जैसे कोऊव्यक्ति दलदल में फसिबे पै ज्यौं-ज्यौं निकसिबे की चेष्टा करै त्यौं त्यौं और हू धँसतो जाइ है। जैसे श्रीगोपकुमारजू की बैकुण्ठ यात्रा के प्रसंग में स्पष्ट बर्नन है कि—श्रीभगवान के भोजन, सेवा-सुख आदि में बिलम्ब होइबे पै हू बिना श्रीभगवान की रुख के पारषदजन हू कछु नाँइ कहि सकैं हैं। और प्रेम-पथ पै चलिबेवारे साधक तो अपने इष्ट के सुख के आगे, और काहू बात को भय, संकोच-गौरव मानैं ही नाँइ हैं, दास भाव के भक्त तो सास्त्रन के विधि-विधान, मंत्रन द्वारा ही

सेवा तथा परिक्रमा एवं साष्टांग दंडवत आदि विधिभक्ति करैं हैं, जो आचरन प्रेम-पथ में नाँइ समाय सकै है। विधिभक्ती पथ पै चलिबेवारेन की तो कहा चलाई, शुद्धभक्ति पथ के पथिक हू ब्रजेन्द्रनन्दन स्वयं श्रीकृष्ण के स्वरूप में ऐश्वर्य की प्रधानता मानिबे के कारन, प्रेम प्रधान ब्रजरस देस के साधन नाँइ ग्रहन करि सकैं हैं। ता श्रीब्रजरस देस में प्रवेस करिबे के ताईं प्रथम पौरी ही-इतेक ऊँची है जापै चढ़िबे में तो मन खिसलन लगै है, नीचे माऊँ देखिबे में चक्कर आवन लगै है। अर्थात जैसे श्रीब्रजरस देस की लीलान में श्रीलालजू कहूँ पानी की जेहर उचवावैं हैं, कहूँ गोबर की हेल। कबहूँ माखन की चोरी, कबहूँ घाट-बाट पै श्रीव्रजसुन्दरिन कूँ रोकि दान-माँगिबो या प्रकार की प्रेम-प्रधान लीलान को आकर्षन होइबे के कारन वाकूँ छाँड़ि नीचे आइबे कूँ तो मन मानै नाँइ है, और आगे बढ़िबे में मन खिसलन लगै है। ता पौरी के भीतर बड़े विसाल तीन आवरन—वात्सल्य, सख्य, शृंगार, इन तीनोन में हू उत्तरोत्तर प्रेमरस की अगाधता है, जैसे वात्सल्य रस स्वरूपा श्रीजसोदाजू दाम-बंधन लीला में श्रीलालजू के सामने छड़ी लिये ठाड़ी हैं, और बिनके डर सों समस्त भगवानन को हू भगवान श्रीलालजू थर-थर काँपतो भयो नेत्रनतें आँसू डारि-डारि कहि रह्यौ है अरी मइया! मैं फिर कबहुँ ऐसो ऊधम नाँइ करूंगो? याते ये स्पष्ट है कि या रस में भगवानपने की गंध हू नाँइ है ऐसे ही सख्य रस में निसंकोच-ईश्वरता विहीन, प्रेम परवस, परस्पर हास—परिहास-धक्का, मुक्की एवं हार-जीति में चढ्ढी देइबो-लेइबो आदि सदाकाल आप अनेक प्रेम-खेल खेलैं हैं। याही प्रकार शृंगार रस में हूँ जब कबहूँ श्रीस्वामिनीजू मानवती हैकें, अपनी निज सखीन ते ऐसी आज्ञा करि देवैं हैं कि—आज लालजू कितेक हू क्यों न ललचावैं, किन्तु निकुंज मंदिर के भीतर पाँव मत धरन दीजो। इन प्रसंगन ते भली-भाँति स्पष्ट होय है कि या रस देस में ईश्वरता भली-भाँति दबी रहै है, याते ऐश्वर्य प्रधान मानिबेवारे भक्तन के हृदय इन रसन कूँ आस्वादन करिबो तो दूर रह्यौ, सुनिकैं ही नीचे कूँ खिसलन लगै हैं। ऐसो अति अगाध श्रीब्रजरस देस कूँ दिखाइ, श्रीगुरुदेवजू ने स्पष्ट कथन कियो कि—या प्रेम-रस-देस के स्वरूपन ते हू अति दूर-दुर्लभ एवं छिपे भये एकमात्र विसुद्ध रस के रसिक अनन्यन के ही प्रानाधार हमारे श्रीजुगल प्रथम समागम एकान्तरस विलास निज महल श्रीवृन्दावन नव निकुंज मंदिर में ही निरंतर विहार करैं हैं।

आसिक तेई आदिमी, फासिक सब खर ऊँट।
श्री बिहारीदास जीवन मुकत, विषई विषै न छूट ॥६६५॥

जगत में आसिकन की नाईं सर्वोपरि प्रेम पै अपने तन, मन, प्रान, लोक, परलोक, धन, धर्म, सर्वस्व न्यौछावर करिकें बिनके ही श्रीमुखचन्द कूं देखि-देखि के जो जन जीवैं हैं, ऐसे आसिकन कूं ही हम आदमी मानैं हैं, जिनके मन, प्रान अपने सुख-स्वाद-रूपी विषयन में अनेक ठौर फँसे रहै हैं, वे फाँसिक लोग तो एकमात्र खर-ऊँट के ही समान होइ हैं, क्योंकि विषयी लोगन तें तो अपने सुख-स्वादरूपी विषय ही नाँइ छुटै हैं और सर्वोपरि नित्यबिहार के अनन्य उपासक साँचे श्रीबिहारीदास तो जीवन मुक्त स्वरूप सों जगत में सहज सुभाव विचरैं हैं।

पौं आसिक पौं आसिकी, जौ नाहीं वह आस।
इत उत भटकै कछु नहीं, बिनु भये बिहारिनिदास ॥६६६॥

नित्यबिहार रस की आसा के अतिरिक्त और-और प्रकार की आसिकी करिबेवारेन के लक्ष्य सौं आपने कह्यौ कि–तुम्हारी आसिकी एवं आसिकपनो दोऊ बेकार ही हैं। तुमने इत-उत माऊँ नाँइ भटकि कें साँचे श्रीबिहारीदास है जानों चहिये ? तबही तुम्हारी सब सोभा होयगी।

घर में साकत बाँभनी, ताकैं सिखा न सूत।
श्रीबिहारीदास ताकौ छुयौ, करमठ खात कपूत ॥६६७॥

हे बिहारीदास ! जिन ब्राह्मनन के घर में श्रीभगवतचरनारबिंद तें बहिर्मुख सीतलादेवी आदि पूजिबेवारी साकत बाँभनी ऐसी है, जाके न तो चोटी है और न जनेऊ है, ताको छुयो भयो-अनप्रसादी अन्न कूं तो कपूत करमठी लोग ही खावैं हैं।

श्रीबिहारीदास हरिदास कै, नहिं सिखा नहिं ताग।
रीझि दियौ बिहारिन लाडिली, आप समान सुहाग ॥६६८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित जो श्रीबिहारीदास हैं, वे कर्म करिबे के अधिकाररूपी सिखा-सूत्र कूं हीं नाँइ राखै हैं, या बात पै रीझि, साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू ने आप समान सुहागरूपी सहचरिभाव विनकूं दै दीनो है।

सूद सुखारे हरि भजैं, बाँभन भगत न होय।
ब्रह्म तेज ऐंठें फिरैं, भक्ति कहाँ तै होय ॥६६९॥

ब्राह्मन देह पाइ कें ब्रह्मतेज में जो ऐंठे फिरैं हैं, वे लोग दीनातिदीन होय, परम-कारुनिक भक्तवत्सल श्रीहरि-चरनारबिंद के साँचे दृढ़ अनन्य आश्रित हैकें भक्त कैसे हू नाँइ है सकैं हैं, क्योंकि उन्हें मायिक देह को ही बहुत बड़ो अभिमान

होइ है। बिन लोगन ते-तो निरभिमानी सूद्र बेचारे सहज सुभाउ सुख सों श्रीहरि को भजन करि सकैं हैं।

सरस ग्रन्थनि सुनि भिया, सदाचार लै सोध।
श्रीबिहारीदास गुरु बचन सुनि, तिहिं मत मनहि प्रबोध ॥६७०॥

हे बिहारीदास! अपने नित्यबिहार रस के ही वर्नन करिबेवारे जो सरस रसीले ग्रन्थ हैं, बिनकूँ ही तो तुम सुनो और श्रीस्वामी महाराज ने प्रगट होइकें जगत में जो सदाचार चलायो है, वाही में चलो। यदि काहू प्रकार की मनमानी बात काहू ने मिलाइ दीनी होय, तो वाको संसोधन करि लेवो, और अपने श्रीगुरुदेव के मुख सों जैसो रस-सिद्धान्त सुन्यौ है, ताही अनुसार अपने मन कूँ समझाते रहो।

हरि मंदिर हरि कौं किये, तामें पटा न पीठ।
उदवस देख न आवई, हरि गुरु प्यारे ईठ ॥६७१॥

कछु लोग बिना ही भावभक्ति, अपनी प्रसंसा के ताईं श्रीठाकुर जी को मंदिर तो बनाइ देवैं है, किन्तु ताको भाव सों साज-सज्जा-भोग-राग नाँइ करैं हैं, ऐसे भाव-बिहीन स्थान में प्रेम-पिपासु श्रीहरि-गुरु नाँइ पधारैं हैं।

देखो ठोकि बजाइ, बिनु सारै बाजै नहीं।
कन न कहूँ ठहराइ, जे थोथी गरी पयार की ॥६७२॥

जैसे मृदंग बिना ठोक-ठाक चून लगाये, नाँइ बाजि सकै है, तैसें ही कन स्वरूप साँचे प्रेम-भाव ते बिहीन उपदेष्टान को पयार सदृस थोथो उपदेस सदाकाल नाँइ ठहरै है, याते तुम बिनके उपदेस कूँ भलीभाँति ठोकि-बजाइ कें देख लेवो।

श्रीगुरु धर्महि छाँडि कै, मनकी कहैं बनाइ।
श्रीबिहारीदास सँग परिहरौ, देखौ ठोकि बजाइ ॥६७३॥

श्रीस्वामीजी महाराज के धर्म ते बिहीन अपने मन की बातन कूँ बनाइ-बनाइ कें कहिबेवारेन को संग त्यागि देनो चहिये, क्योंकि और-और प्रकार की मिलौनी होइबे पै सर्वोपरि नित्यबिहार प्राप्त है ही नाँइ सकै है। याते समस्त रीति-भाँति सों ठोकि बजाइ के निसंकोचतापूर्ण देख लेनो चहिये।

श्रीहरिदास वाक्य मिलिते जिते, ते अपने उरधारि।
आरष-पौरष बचन जे, ते सब देखि विचार ॥

जिते वचन गुरुदेव के, तिनहीं सों परतीति।
वेद पुराननि जो कह्यौ सो कह्यौ आपनी रीति॥ –स्वा० श्रीललितकिसोरीदेवजू

साखि प्रकट प्रह्लाद की, दूखैं बांभन भक्त सकाँम।
साकत सूद मलेछ लौं, तिनकी केतीक माँम॥६७४॥

ऊँचे कुल को ब्राह्मण हू क्यौं न होइ? सकाम भक्ति करिबेवारो श्रीहरि कूँ अच्छो नाँइ लगै है, या विषय कूँ भक्तसिरोमनि श्रीप्रहलादजी ने स्पष्ट कह्यौ है। फिर साकत, सूद मलेच्छन की सकाम भक्ति पै तो श्रीहरि रीझ ही कैसे सकैं हैं?

झूठी बोचि बसीठई, बनि बनि चले बरात।
ब्याह दुलहिनी दूलहू, वे भात खाइ भजि जात॥६७५॥

जैसे जगत में ब्याह तो होइ है दूलह एवं दुलहिन को, और वे ही दोऊ ब्याह के सार सुख कूँ भोगैं हूँ हैं, किन्तु बराती लोग तो झूठ-मूठ के ही सजि-सजि कैं चलि मिठाई-भात खाइ, अपने घर भाजि जाँइ हैं। तैसे ही जा सिष्य ने परमार्थ-सिद्धि के ताईं साधन करिके वस्तू कूँ प्राप्त करनो है और जिन श्रीगुरु ने सिष्य कूँ श्रीहरि के सन्मुख करि अन्त ताऊँ वाकूँ निभानो है, बिनने ही सिद्धान्त, उपदेस एवं साधनन कूँ भलीभाँति छानि-ताइ कैं निर्नय करनौ परै है, तबहीं बिनके मनोरथ सिद्ध होइ सकैं हैं, और जिन लोगन को परमार्थ को साँचो सुख विलसिबे को उद्देश्य नाँइ होय है, बे ही जन बरातिन की नाईं, ऊपरते ही गुरू-सिष्य को सम्बन्ध बाँधि, परमार्थ को बेष बनाइ, रहनी-रीति एवं रस-सिद्धान्त, समझिबे के चेष्टा नाँइ करि वैसे ही अपने जन्म कूँ बिताय देवैं हैं।

बाँझ बिगूची बेगिही, गर्भवती घहराय।
छूँछे हिये विमुख लरैं, श्रीबिहारीदास डराय॥६७६॥

जैसे एक गर्भवती स्त्री होइ, दूजी बाँझ होइ— दोउन में लराई होइबे ते गर्भवती तो अपने गर्भ की रक्षा करती भई ही लरै है और बाँझ बैयर बेगि-बेगि उछलि कैं आवै है, तैसे ही परमार्थ-भाव ते विहीन बाँझ सदृश छूँछे हृदयवारे मानव उछरि-उछरि के लरचौ करैं हैं, किन्तु श्रीबिहारीदासन के हृदय में अपने इष्ट-गुरुन के प्रति भावरूपी गर्भ होइबे ते बाकी हानिकारक कोऊ कार्य नाँइ बनि जाइ, याते वो बात हू बहुत समझि-समझि के बोलैं हैं।

मरिबौ यह अहंकार यह, दोऊ देखि विचारि।
श्रीबिहारीदास अमृत अचै, कोऊ विरलौ सकै सँभारि ।।६७७।।

भावुक उपासक तो अपनी वस्तु कूँ ऐसे सम्हारे रहैं हैं, कि जगत की हार-जीत, सुख-दुख, मान-अपमान की ओर ते मानो मरि ही गये हैं। बहिर्मुख लोग तो अपने अहङ्कार-अभिमान कूँ ऐसे सँभारि कैं राखैं हैं, मानो बिनके बिना जीवन ही बेकार है, याते वे श्रीविहारिदासन ते हू लरिबे में संकोच नाँइ करैं हैं। याही ते परमार्थ रूपी अमृत कूँ कोऊ बिरले जन ही पी सकैं हैं।

प्यासे पानी प्रेम के, पूरे मन की ऊख।
सेरुक लै अगै धरै, तिहिं क्यों भाजत भूख ।।६७८।।

जैसे काहू कूँ पानी की ऐसी प्यास लग रही हो, कि पानी के बिना गला चटकि के मुंह सूखि गयो होइ, वाके आगे यदि कोऊ सुन्दर ते सुन्दर पेट भरि भोजन रखि देवै तौहू वो एकमात्र पानी-पानी ही माँगै है। ऐसे ही जिनके मन में अति तीव्र साँचे प्रेम की पिपासा लगि रही है, बिनकूँ प्रेम के बिना ऊँचे ते ऊँचे परमार्थ हू नाँइ सुहावैं हैं।

उखटचौ काठ कुठार सों, बहुरि बसूला छोल।
बहुरि खराद चढाइयै, रँग लगै तब मोल ।।६७९।।

जैसे जङ्गल ते लकरी कूँ कुठार ते काटि कैं बढ़ई लावै है, फिर वाकूँ बसूला ते छीलि, सूधी-सच्ची करि, खराद पै चढ़ाइ, हक निकारि, वापै रङ्ग करि देवै है, तब हीं वाकूँ मनमान्यौ मोल मिलै है। तैसे ही प्रथम साधक संसार ते जङ्गल की लकरी सदृस गुरुन के पास आवै है। गुरूजी सबते पहिले यावत् संसारी सम्बन्धन कूँ छुड़ाइ, वैराग्य बेष दै, एकान्त में राखि, भजन करवावैं हैं। फिर धीरे-धीरे वाके मनमें श्रीजुगल कूँ लाड़-लड़ाइबे योग्य सहचरीभाव के हक निकारैं हैं, तिन भावन कूँ सेवते-सेवते जब रङ्ग लगि जाइ है, तब श्रीयुगल अपने लाड़-लड़ाइबे-रूपी अति अद्भुत सर्वोपरि मोल वाकूँ चुकाइ देवैं हैं।

तब तो भोदू जगत में, अब रसिकन सिरताज।
कुञ्जविहारिन बाल ने, कीन्हीं सब बिधि काज ॥—स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजू

चौंडो गयैं मुंडलो भई, पूछ गयैं लंडोर।
आगौ पाछौ खोइ कैं, मुरगी भई न मोर ।।६८०।।

जैसे कोऊ बढ़ई लकरी को मोर बनाइ रह्यौ हो, वाके हाथ सों ऊपर की चौड़ी (कलङ्गी) कटि गयी, बाने सोची याकी मुर्गी बनाइ लेऊँ, फिर पीछे की पूँछ कटि गई, ताते वाको मुर्गी-मोर कछु नाँइ बनि सक्यौ। तैसे ही काहू व्यक्ति ने श्रीभगवत-प्राप्ति के ताईं संसार त्यागि, बैराग्य लै लीनौ। फिर वौ बिन्हीं संसारी कामन कूँ ही करिबे लगि गयो। ताते वाको परमार्थ सिद्ध नाँइ भयौ। ऐसे ही कोऊ विधि भक्ति कूँ त्यागि, प्रेम के साधनन में लग्यौ, किन्तु कछु समय बाद प्रेम के साधन हूँ बाने त्यागि दीने। याही प्रकार काहू ने सर्वोपरि नित्यविहार प्राप्ति के ताईं और-और रस देसन के साधनन कूँ त्यागि, नित्यविहार उपासना में लग्यौ, कछु समय बाद नित्यविहार प्राप्ति के मनोरथ हू सिथिल है गये। याते जो लोग क़ाहू उद्देश्य साधनन कूँ साँचे मन ते अन्त ताऊँ नाँइ निभावें हैं, वे जन न तो इत माऊँ के रहैं, न उत माऊँ के।

जो चाहै गुरु संधि कौं, सोधि सजाती संग।
तिन सौं बाँधि अनन्यपनु, तब लागै रस रंग।।६८१।।

हे बिहारीदास ! यदि तुम श्रीस्वामीजी महाराज की उपासना के मर्म कूँ ग्रहन करिबो चाहते हो तो, पहिले अपने सजातीय सङ्ग कूँ भलीभांति सोचि-समझि शोधन करि लेवो, जो श्रीस्वामीजी महाराज की स्थूल-झीनी समस्त रस की गाँसन कूँ भलीभांति जानिबेवारो, दृढ़ अनन्य उपासक होइ, तिनहीं सों अपनो अनन्य प्रन बाँधिके सदाकाल राखोगे, तबहीं हमारे रस को रङ्ग तुम्हैं लगि सकैगौ।

कहाँ महातम माधुरी, कहाँ प्रेम परताप।
पूत बिचारो कहा करै, जाकौ बहक्यौ बाप।।६८२।।

हे भाई ! श्रीविहारी-विहारिनीजू के नाम, गुन, रूप, जस प्रेम-प्रीति की ऐसी अद्भुत महामाधुरी है, जो नेक हृदय ते सपरस होत खेल, साधक सर्वस्व न्यौछावर करि, अपने प्रानन के हू प्रान बिनकूँ बनाइ लेवै, वा महामाधुरी कूँ बेसमझे लोग महातम में मिलाय वर्नन करिबे लगें हैं। जा महात्तम कूँ साँचे प्रेम के उपासक जन सपरस हू नाँइ करें हैं। ऐसे ही प्रेम को हू ऐसो अद्भुत स्वरूप है कि—यावत् भगवानन के हू स्वयं भगवान, प्रेम में या प्रकार बिकि जाइ हैं, जोकि भगवानपने कूँ भली-भाँति भूलि, दीनातिदीन ह्वै, प्रेमी के सतत आधीन बने रहैं हैं। ऐसी अति विचित्र प्रभावसाली प्रेम महामाधुरी कूँ, ईस्वरता एवं महातम में मिलाय कैं, जिनके गुरू ही

उपदेस करें हैं, तिनके सिष्यन कूँ दोष ही कहा है।

मेरी सी मोसो कहै, ते सुनि हौं अनखाँउँ।
तू पैरै परवाह में, हौं पैरि सामुहों जाउँ ।।६८३।।

सास्त्रन के विधि-बिधान अनुसार चलिबेवारो कोऊ साधक आपके पास आइ, आपकी हाँ-में-हाँ मिलातो भयो सास्त्रन की बिधिन पै जोर दै रह्यौ हो, तासों आप बोले कि–मोसों तो तुम मो-सरीखी बात करो हो ? और सास्त्रन की बातन पै जोर दै रहे हो, ऐसी बातन तें हम अनखनावें हैं। जा बस्तु की प्राप्ति के ताईं यावत सास्त्र बिधि-बिधानरूपी अनेक उपाय बर्नन करें हैं, हम वा बस्तु के मर्म-स्वरूप प्रेम कूँ समझि, विधि-बिधानरूपी प्रवाह कूँ त्यागि, सिंह की नाईं सूधे बिनके ही प्रेम द्वारा लाड़-लड़ावें है।

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ, इक हथिया में मत्त।
बांध्यौ खूंट सुधर्म दृढ, सुख सिंधु झकौरै नित्त ।।६८४।।

हे बिहारीदास ! श्रीस्वामीजी महाराज के नित्यबिहार धर्मरूपी खूँटा ते हम ऐसे दृढ़ बँधि रहे हैं, जोकि और-और अनेक सुख-समुद्र नित झकोरते रहैं, तौहू हम नेक विचलित नाँइ होइ हैं, क्योंकि एक नित्यबिहार-सुख लालसा में ही सदाकाल मतवारे हुये रहें हैं।

कहनो ते करनी बड़ी, जो ह्वै आवै साँच।
श्रीबिहारीदास व्यौरो घनों, जैसे कंचन काँच ।।६८५।।

हे बिहारीदास ! यदि साँची बनि आवै तो, कहनी ते करनी इतेक बहुत ऊँची होइ है, जैसे काँच के आगे कंचन।

कह्यौ सुन्यो सब कौंन हूँ, करत न देख्यौ कोइ।
श्रीबिहारीदास निधरक भयौ, करता करै सु होइ ।।६८६।।

जगत में नित्यबिहार अनन्य उपासना की बातन कूँ कहिबे-सुनिबेवारे बहुत देखे, किन्तु साँचे भाव ते नित्यबिहार के साधनन पै, चलिबेवारो एक हू देखिबे में नाँइ आयौ, श्रीबिहारीदास तो सदाकाल या बात पै निधरक रहें हैं कि समस्त कर्त्तान के हू कर्त्ता स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज जो करेंगे, वही होयगो।

उपमा ज्ञान कवीस्वरी, सिद्धाँतन तें दूरि।
नित्य बिहार अधार सदा, सु हमारी जीवनि मूरि ।।६८७।।

जो सर्वोपरि नित्यबिहार रस-यावत उपमा-ज्ञान, कबीस्वरी तथा समस्त सास्त्रन के सिद्धान्तन ते अति दूर है, वोही एकमात्र सदाकाल हमारो प्रान-जीवन आधार है।

श्रीबिहारीदास बिहार की, सींवा अवधि बताइ।
श्रीहरिदास चरन सेये बिना, बहुत गये सिरनाइ ॥६८८॥

हे बिहारीदास ! हमारे गुरुदेव श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू ने सर्वोपरि नित्य-बिहार की अवधि स्वरूप-चर्म सीवाँ कूँ बताते भये आपने स्पष्ट कह्यौ कि–श्रीस्वामीजू महाराज के श्रीचरन-कमलन कूँ दृढ़-अनन्य भावसों सेये बिना, बड़े-बड़े सिद्ध हू माथो नवाइ के योंही चले गये हैं।

श्रीबिहारीदास आनँद निधि, लूटि सकै तौ लूटि।
महारूप रस माधुरी, मधुर प्रेम रस घूंटि ॥६८९॥

हे बिहारीदास ! मैं तुमसों साँची बात कहूँ हूँ कि–श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को महामधुर सार-रस-रूप-गुन माधुरी के अति सरस-रसीले आनंद निधि स्वरूप साक्षात श्रीस्वामीजू महाराज प्रगट बिराजमान हैं, तिनको, महा बिचित्र सर्वोपरि सुख कूँ लूटि-लूटि, मनभाँमतो प्रेम-रस घूंटि लेउ।

श्रीबिहारीदास निरभै भयौ, श्रीस्वामी जस गाइ।
अँग सँग निरखे केलि सुख, महा परम सुख पाइ ॥६९०॥
झूठो है संसार यह, झूठी है यह देह।
जो बिहारीदास कौ सुख चहौ, तौ यासौं तजौ सनेह ॥६९१॥

मैं अपनी साँची बात तुमसों स्पष्ट कहूँ हूँ कि–श्रीस्वामीजू महाराज के चरन-कमलन कूँ आश्रय लै, बिनके रस-जसन कूँ गाइ-गाइ, इहलोक-परलोक के यावत् भयन ते भलीभाँति निर्भय होइ, सर्वोपरि केलि-सुख कूँ मन भरि-भरि कैं अवलोकन करूँ हूँ, यदि तुमहू मेरे सुख कूँ बिलसिबो चाहौ तो, ये झूठो संसार और झूठी देह के सुखन की बासना, लालसा एवं स्नेह कूँ समस्त रीति-भाँति सों भलीप्रकार त्यागि, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रित है जाओ ?

॥ इति साखी सम्पूर्न ॥

* प्रथम चौवोला *

प्रथम सुमरि श्रीगुरु हरिदासा। विपुल बिनोदन प्रेम प्रकासा ॥
सबै सुखद वृन्दाबन वासा। नव निकुंज कल केलि बिलासा ॥१॥

सखी समाज रसिक रस रासा । महल दरूं में खास खवासा ।।
खेलत परा प्रेम का पासा । मजिलिस भली परस्पर हासा ।।२।।
अंग अंग सौरभ सहज सुबासा । मत्त रहत पीवत सुर स्वासा ।।
खाँन पाँन गुन ग्रहैं न ग्रासा । आनंद विग्रह बडा तमासा ।।३।।
गावत गौरी राग विभासा । नहिं जानियत अथवत सुप्रकासा ।।
चरनकँवल निजु निकट निवासा । दरसत परसत हियै हुलासा ।।४।।
हँसि बोली मुख कमल विकासा । या रस बिन सब निरस निरासा ।।
श्रीबिहारिनिदासहि दईदिलासा । लाड लडावो छाँडि लिवासा ।।५।।

सर्वप्रथम अनन्य नृपति श्रीस्वामीजू महाराज के सरन में जाइबे ते हमारे गुरुदेव रस-सागर श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू ने मेरे हृदय में अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम को प्रकास करि, सर्वसुखदायी निजमहल श्रीवृन्दावन को वास मोकूँ दै दीनौ। याही श्रीवृन्दावन को अखंड वास श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य आश्रित जनन कूँ सर्वोपरि सुखदाई होयगो। ता सुख के स्वरूप को प्रकास करते भये आप बोले कि–श्रीवृन्दावन नव-निकुंज निजमहल-दरीची में रस-रासि श्रीजुगल परात्पर कल-केलि विलास स्वरूप प्रेम को पासा खेलि रहे हे, तहाँ सखी-समाज बिनके स्वाँसन की रुख अनुसार खास-खवासी करि रहीं। महारंगसागरमय परस्पर हास-परिहासन द्वारा अद्‌भुत मजलिस सबनि की जुरि रही। और दोऊन के श्रीअंगन ते ऐसी बिचित्र सहज सौरभ उड़ि रही, जाको परस्पर पी-पी कें श्रीजुगल इतेक मत्त मुदित है रहे, जोकि खान, पान, सुख, स्वाद के गुनन कूँ हू ग्रहन नाँइ करि रहे। बड़ो तसासा स्वरूप आनंद के बिग्रह दोऊ श्रीजुगल प्रेम-खेल में ऐसे तदाकार है रहे, कि जिन्हें गौरी एवं विभास को समय स्वरूप उदय-अस्त को हू भान नाँइ है रह्यौ हो, बिनके श्रीचरन-कमलन के पास ही मैं बैठ्यौ-बैठ्यौ बड़े हृदय के हुलास सों या अद्‌भुत सुख कूँ दरस-परस एवं आस्वादन करि रह्यौ, वा समय रस-रासि श्रीस्वामिनीजू अनन्त अनंग रंग तें रंजित, श्रीमुखकमल कूँ विकसित करि, हँसती भईं सुकोमल बचनन द्वारा मोते बोलीं कि–हे सखी ! या रस के अतिरिक्त और-और यावत रस निरस होइबे के कारन हम सदाकाल बिनतें निरास रहें हैं। ऐसे श्रीमुखकमल के बचन सुनि अति दया, करुना एवं उदारता के अगाध समुद्र श्रीगुरुदेवजू के हृदय कमल में यह चिंता उत्पन्न भई कि ऐसो सर्वोपरि सुख हमारे आश्रितन कूँ कैसे प्राप्त होइगो ? श्रीगुरुदेवजू के आसय कूँ समझि,

परमोदार सिरोमनि श्रीस्वामिनीजू ने आपकूँ बड़ी दिलासा दिवामतीं भयीं स्पष्ट कह्यौ कि–लिवासीपने कूँ सम्यकप्रकार त्यागि, मनमाने सदाकाल मेरे लाड़ लड़ावो। अर्थात वरनाश्रम धर्म, बिधि-बिधान, ज्ञान, ऐस्वर्य मिश्रित अनेक प्रकार की भक्ति तथा और-और रस आदि इन सबन को संबंधरूप लिवासीपने कूँ सम्यक प्रकार त्यागि, श्रीस्वामीजी महाराज को ही आश्रय लै, एकमात्र याही रस के दृढ़ अनन्य होइ, बिनके गुनन कूँ दुलराइ-दुलराइ गावो।

जाचत जगत रती पल माँसा। दीना खोलि खजाना खासा ॥
जिनकै मन आनंद आभासा। ते सहज सिद्ध भये जगत उदासा ॥६॥
आगें आस न पीछे साँसा। मन संदेह दुहूँ दिसि नासा ॥
निकसि गई सब दुरी दुरासा। कौंन फिरै लोनें कर कांसा ॥७॥
भोजन जूठि उतीरन बासा। माया तरन सहज अनियासा ॥
रसिक अनन्य बडा घर बासा। जिहिं रस बिसरीं क्षुधा पिपासा ॥८॥
निस्प्रह भुव मंडल आकासा। सेवत इष्ट अनन्य उपासा ॥
सावधान मन मगन प्रवीनाँ। करत केलि निसदिन रंग भीनाँ ॥९॥

जगत में प्रेम रस के यावत जाचक एकमात्र पल, रती तथा मासा भर रस की ही जाँचना सतत करते रहे हैं, किन्तु हमारे श्रीस्वामीजी महाराज ने ममता, करुना, उदारता, में बिबस होइ, मेरे लिये निज रस को अति अद्भुत अगाध, अपरि-मित, खास खजानो ऐसो खोल दीनो है, जो बिना काहू बाधा के मनभाँमतो प्रान भरि-भरि कें हम सतत बिलसे हैं। या महाबिचित्र रस के आनन्द को आभास जिनके मन में नेक हू आ जाइ है, वे जन ताही छिन सहज ऐसे सिद्ध है जाइ हैं, जो इहलोक तथा परलोक के यावत संदेह बिनके दूर होय, आगे की आसा, पीछे की चिन्ता, बिनके हृदय में ढूढें हू नाँइ मिलै है, और अनन्त जन्मन की स्थूल एवं झीनी दुरासायें हृदय में भरी भईं छुप रहीं, वेऊ नाँइ रहि सकीं। तब हम काहू प्रकार की जाँचना करते भये, जहाँ-तहाँ काहे कूँ डोलें ? यदि कोऊ ये बात कहै कि–ये अति अद्भुत सरस-रसीलो सुख, माया सागर ते पार-जाइबे पै ही प्राप्त है सकैगो ? ता लक्ष्य सों आपने कह्यौ कि–माया सागर ते तरिबे के ताईं तो, श्रीस्वामीजू महाराज एवं बिनके रसिक जनन की सीत प्रसादी तथा उतीरन बस्त्र ही सहज उपाय है।

रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज को घर यावत रसिकन में

सर्वोपरि मुकुटमनि स्वरूप है, वाही में हमारो बास है, जिनके अद्भुत अनिर्वचनीय रस कूँ आस्वादन करत खेम छुधा-पिपासा की हू सुधि नाँइ रहै है, और भूमंडल ते लैकें परलोक पर्यन्त, यावत् सुख संबंधन ते सम्यक प्रकार निस्पृह होइ, एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की रसमयी अनन्य उपासना कूँ सतत सेवते रहें हैं, ताते हमारो मन अति प्रवीनता पूर्वक सतत सावधान होइ महा रंगभीनी श्रीजुगल की केलि में निरंतर निमग्न रहै है।

तृष्णा तरल तमाल लाल कें। बाढत नव नव बेलि बाल कें ॥
कुसुमित ईषद हास्य परस्पर। अंगुली दल फल परसि उरज कर॥१०॥
इनकें मल मैथुन कछु नाहीं। ए दिव्य देह बिहरत बन माहीं ॥
काँम प्रेम रस बिवस बिहारी। सावधाँन सहचरि सुकुंवारी ॥११॥
बिपुल बिनोद मोद मनुहारी। बिनु ब्रीडा क्रीडा बिस्तारी ॥
बिहरत भूमि व्यौम उजियारी। इन बिनु बिस्व अमावस कारी ॥१२॥

वा केलि को अद्भुत स्वरूप बताते भये आपने कह्यौ कि—तमाल सदृस मनोरथन में झुक्यौ-झूम्यौ रसाल श्रीलालजू के तो सतत तृष्णा तरलित हुई रहै है, रस-रासि नव-दुलहिन-सिरोमनि नव-बाल कें हृदय कमल में ललित केलि-रति बेलि निरंतर बढ़ती रहै है। महामाधुरी ते भरी-पूरी दोउन की परस्पर हास्य कौमुदी विकसित हुई रहै हैं। प्रेम में बिवस श्रीलालजू हस्तकमलन द्वारा श्रीस्वामिनीजू के हृदय कमल कूँ सपरस करि-करि आनंद में फूले नाँइ मावें हैं।

इतेक केलि के स्वरूप कूँ इंगित करि साधक समाज कूँ सावधान करते भये आप बोले कि—हे भाई ! जागतिक मानवन की नाईं हमारी प्रान-जीवन या जोरी के मल-मैथुन कछु लेसमात्र हू नाँइ है। ये दोऊ श्रीजुगल बिसुद्ध ते हू अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेममय दिव्य देह द्वारा काम प्रेम-रस में बिवस, वृन्दावन नव-निकुंज मन्दिर में सतत बिहार करें हैं। निरंतर सावधान सुकुमार सिरोमनि सहचरी स्वांसन के हू स्वांसन कूँ समझि रुख अनुसार लाड़-लड़ायो करें हैं।

ये दोऊ नाना प्रकार ते महामधुर-विनोद करि-करि, बिनु ब्रीड़ा-क्रीड़ा को विस्तार या भाँति को करते रहें हैं कि—जिनको बिहार तो है रह्यौ है या वृन्दावन भूमि पै, और उजेरौ समस्त आकास में छाइ रह्यौ है। या जोरी को उजेरा के अतिरिक्त समस्त विस्व अमावस की रात्रि की नाईं हमें कारो ही कारो दीखै है।

कागद मसि लिखि लोक नीवारी। बहुमत रत पंडित पटवारी।
महातम मिश्रित और रुजिगारी। जनाजाति बंचक जंजारी ॥१३॥
कहि सुनि समझि न वस्तु बिचारी। सुद्ध सरूप न ठीक सम्हारी।

मैं प्रतिज्ञापूर्वक धौरे कागद पै, कारी स्याही ते-लिखिकें कहि रह्यौ हूँ कि-पटवारिन की नाईं बहुत मतन में रत-रहिबेबारे तो पंडित लोग ही होय हैं, जो कि रुजिगारिन सदृस महातम-मिश्रित-परमार्थ पथ पै चलिबे ते, बिनकूँ हमारी उपासना में, बंचक, जंजारी एवं जनाजाति समझें जाँय हैं, कारन बिन लोगन नें सांचे उपासकजनन ते सत्संग द्वारा वास्तविक वस्तु कूँ कहि-सुनि, समझि, निर्णयकरि अपने हृदय में धारन नाँइ कीनो है ?

कोऊ साधारन कोऊ बिभचारी। कोऊ अनन्य धरैं व्रत भारी ॥१४॥
जैसे दारु द्रवै करि आरी। खंड खंड पाखंड बिदारी।
राजवैस रस राज संभारी। सुख बरसत श्रीहरिदास दुलारी॥१५॥
श्रीवृन्दावन रस सिन्धु अपारी। सकल धाम धामी अवतारी।
बिपुल बिनोदनि पर बलिहारी। श्रीबिहारी बिहारिनिदासि तुम्हारी ॥१६

तदुपरान्त आपने इष्ट के स्वरूप को लक्ष्य कराते भये कह्यौ कि-कोऊ स्वरूप तो, लोक वेद-रीति अनुसार स्वकीया संबंध के अन्तंगत साधारन रस कूँ बिलसैं हैं। कोऊ स्वरूप, बेदरीति कूँ उल्लंघनकरि, लोक-लज्जा कूँ साधते भये परकीया भाव में बिलास करैं हैं। कोऊ एकमात्र सर्वोपरि प्रेम रस के या प्रकार के दृढ़ अनन्य स्वरूप हैं, जो कि अति विसुद्ध प्रेम-विरोधी-आचरनन कूँ ऐसे विदीर्ण करि देवैं हैं, जैसे काष्ठ कूँ आरो खंड-खंड करि देवै है। बिनको ही अद्भुत रस-समस्त रसन को राजरस है, और वे ही श्रीजुगल समस्त स्वरूपन में राजा स्वरूप हैं। याही रस कूँ हमने अपने हृदय में नीकी भाँति सम्हारि कें विराजमान कीन्यौ है। वा रस की एकमात्र आधार-स्वरूपा सर्वोपरि नित्यबिहारिनी श्री हरिदास दुलारी जू ही हैं, जो अनादिकाल ते अविच्छिन महामधुर सार रसमय विचित्र सुख की वर्षा निरंतर कियो करैं हैं। जिनको निजधाम-समस्त धाम-धामिन को अवतारी स्वरूप अपार रसको सागर श्रीवृन्दावन, सतत पृथ्वी मंडल पै सुसोभित हुये रहैं हैं। तिनके अद्भुत अगाध-बिसाल रसमय विनोदन पै हम निरंतर बलिहारी लैं-लै, फूलै नाँइ मावैं हैं।

* दूसरो चौबोला *

पंडित पढ़ै जु तत्व बिचारै। श्रोता वक्ता दुहुँनि उधारै।
तत्व अतत्व जो न निरधारै। तौ पढ़ि पढ़ाय सब जगत बिगारै।।१।।

जगत में पढ़्यौ भयो पंडित, ताही कूँ माननो चहिये, जो ऐसे तत्व वस्तु को निरधार करै, जाके द्वारा श्रोता-वक्ता दुहूँन को उद्धार है जाय? यदि तत्व और अतत्व कूँ छानि, ताय कै निरधार नाँइ करै हैं, वे पढ़ि-पढ़ाय कें उलटे जगत कूँ विगारे ही हैं।

अर्थात जैसे मायिक देहधारी पशु, पक्षी, मानव-देवता, यक्ष, किन्नर आदि समस्त जीव, श्रीभगवत तत्व के आगे अतत्व ही हैं, और भगवान के समस्त स्वरूप प्रेम के आधीन हैं, याते प्रेम तत्व ही सर्वोपरि भयो। प्रेम के स्वरूप अनन्त हैं, जहाँ जैसो रस को स्वरूप होय है, तहाँ तैसो ही प्रेम को स्वरूप मान्यौ जाय है। समस्त रसन में शृङ्गार रस सर्वोपरि निर्बिवाद है, शृंगार रस की मूलस्वरूपा श्रीस्वामिनीजू ही हैं, तिनके निज-रस-स्वरूप कूँ प्रथम चौबोलान में विचार करि आये हैं। याते निर्विवाद, निष्पक्ष बात एकमात्र यही है कि यावत तत्वन को तत्व स्वरूप श्रीनित्यबिहारिनीजू को नित्यबिहार ही है।

तापहि पढ़ि अक्षिरहिं पढ़ावै। अक्षिर पढ़ि अक्षिर पद पावै।
अक्षिर पद पायें छिर छीया। अक्षिर ह्वै कीया नहिं कीया।।२।।

याते जो महत्पुरुष सर्वोपरि सारातिसार प्रेम बिहार तत्व स्वरूप अक्षरन कूँ ही पढ़ावै हैं, बिनपै ही पढ़नो चहिये। क्योंकि प्रेम कूँ पढ़िबे ते ही प्रेम प्राप्त है सकै है, जब प्रेम पद पढ़ि जाओगे, तब प्रेम के अतिरिक्त यावत वस्तून कूँ सारहीन समझि, तुम स्वाभाविक ही त्यागि देओगे। प्रेम पद पाइबे पै और काहू साध्य-साधनन की आवश्यकता ही नाँइ रहे है।

सबै रसायन मूक पिउ, प्रेम न पूजे कोय।
जो मन रतीक संचरै तौ सब तन सौनो होय।। —श्रीगुरुदेवजू

बहुत चतुरई चतुर कहावै। चतुर कहाइ आपै डहकावै।
झूठे साँटै साँचहिं लावै। सो मेरे मत चतुर कहावै।।३।।

अनेक विषयन में जो चतुर होय हैं, जगत में बे ही चतुर कहावैं हैं, किन्तु चतुर कहाइ, बे स्वयं ही अपने आप कूँ हानिकारक है जाँय हैं, हमारे मत में बेही

जन चतुर हैं, जो सब चतुराईन कूँ त्यागि, या झूँठी देह के बदले, सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारनी जू के सांचे प्रेम कूँ प्राप्त करि लेय हैं।

हिंसा करि करि सूर कहावै। सत्रुन के सस्त्रनि पैनावै।
अपनै सत्रुन बसि करि भाई। तौ तूं सूर सबनि सुखदाई ॥४॥

जो लोग निसंकता पूर्वक युद्ध में अनेकन कूं मारि कें जगत में सूरबीर कहावें हैं, वे सूरबीर अपने हृदय में बैठे—काम, क्रोध, मद, मात्सर्य अनादिकाल के सत्रुन के सस्त्रनिकों और हू प्रबल बनाइ रहैं हैं। याते हे भाई! जो तुम अपने निज सत्रुन को बस करि लेवो, तो ऐसे अद्भुत सूरबीर है जाओगे, जो कि जगत में प्रानिमात्र के ताईं सुखदाई होय, साक्षात श्री हरि कूँ—हूँ प्राप्त करि लेवोगे।

धर्म बिना जो धनी कहावै। दिन दालिद्री भीख न पावै।
मेरे मत धरमें धन साँचौ। धर्म धीर निरभैं नित नाँचौ ॥५॥

जिन लोगन के मन में अपने धर्म में विश्वास-श्रद्धा तो है नांइ, केवल मायिक धनते ही जगत में धनी कहावें हैं, बिन लोगन कूँ ऐसो अति दारिद्री समझनो चहिए, कि श्रीभगवान के घर में उन्हें भीख हू नांइ मिल सकैगी, याते हमारे मत में धर्म ही सबते बड़ो सांचो धन है, जा धन सों साक्षात श्रीभगवान सतत प्रसन्न रहैं हैं, ताते तुम अपने धर्म में निरंतर धीर ह्वै निर्भय नांचौ।

गुन कैं गर्ब गुनी गर्बानाँ। जिन गुन दीया सु ते न पिछाना।
गुन निधान तजि बिषई बखाना। वै कृतघनी निर्धन गरबाँनाँ ॥६॥

समस्त गुनन कूँ दैवेवारे एकमात्र श्रीहरि ही हैं। बिनकूं नांइ पहिचान, अपने गुन के गर्व में गर्बीले होइ, गुन निधान श्रीहरि की प्रसंसा नांइ करि, जागतिक विषई लोगन के ही गुनन कूँ गावैं हैं, वे कृतघ्नी, निर्धनी झूठे गर्व करि रहैं हैं।

क्या कहियै सर्वज्ञ बिवेकी। समझत नाँहिन एक अनेकी।
जो निजु भक्ति अनन्य न टेकी। बिधि निषेध तजि लीक न छेकी ॥७॥
चित्र बिचित्र अवनि भरि लेखी। बहुत बरन बहु भाँति बिसेखी।
चित्रन गनि गनि भूले भेखी। चित्रैं करि आँखिन भरि देखी ॥८॥
स्वांगी सहस स्वाग करि आवै। स्वांगन ही संसैं जपजावै ॥
स्वांगनि भूले भेद विभेदा। स्वाँगी समझि भरम सब छेदा ॥९॥

सब ठौर ब्रह्म ही ब्रह्म देखिबेवारेन के माऊँ लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—

तिहारी सर्वज्ञ-विबेकीपने की प्रसंसा हम कहा करें ? जो तुम आज ताऊँ ये नाँइ समझि सकें कि–एक श्रीहरि को ही खेल, अनेक रूप सों समस्त लोक-लोकान्तरन में है रह्यौ है, बिन श्रीहरि की निज अनन्य भक्ती की दृढ़ टेक अपने मन में धरि, और-और यावत विधि-निषेध की लीकन कूँ भलीभाँति छेंक देते, सो-तो तुमने कीनो नाँइ ? किन्तु जिन श्रीहरि ने–अनेक चित्र-विचित्र बहुत भाँति-बरन के आश्चर्य जनक ठाट रचि राखें हैं, तिन रचनान कूँ ही गिन-गिन कें, तुम वेषधारी हू बिनमें ऐसे अरुझि रहे हो, जो कि–परम दयालु-कृपालु, करुणामय स्वभाव, अद्‌भुतातिअद्‌भुत गुन, एवं अति अनूप रूपवारे श्रीहरि कूँ, आँखि भरि-भरि कें, देखिबे कों अपने मन में कबहूँ बिचार हू नाँइ करो हो।

अर्थात जाने ऐसे अति अद्‌भुत अगाध अनंत कोटि ब्रह्माण्ड अनादिकाल ते रचि राखे हैं, और जिनकी विचित्रता कूँ बड़े-बड़े देवता हूँ नाँइ समझि सकें हैं। ऐसे श्रीहरि के श्रीचरन कमलन में दीनातिदीन ह्वै सरन जाइ, बिनके नाम-गुन-जसन कूँ प्रेम सों उमँगि-उमँगि गाते, बिनकी अति अद्‌भुत दया, करुनाभरी कृपा कूँ जाँचना करते, जासों वे निहाल है जाते, फिर बिनके बिबेक कूँ देवता हू भूयो-भूयो सराहना करते।

जैसे स्वाँग बनाइबेवारो व्यक्ति, अनेक प्रकार के स्वाँगन कूँ बनाइ, सबन कूँ भ्रम में डारि, संसय उपजाय देवे है, तैसे ही श्रीहरि ने हू अपने अनेक प्रकार के, अनंत स्वांग ऐसे महाविचित्र रचि राखें हैं, जिनकूँ देखि, ज्ञानी-विज्ञानी, सुर, नर, मुनि आदि सब, इन्हीं स्वाँगनि के भेद-विभेद में परि, संसयन में अरुझि रहें हैं, जब बिनकी कृपा तें विवेक द्वारा-स्वाँगी श्रीहरि को अति विशुद्ध स्वरूप समझि में आ जाइ है, तब यावत भ्रम नेष्ट है जाँय हैं।

आवत जात जनम जुग बीता। कबधौं मिलै मनोहर मीता॥
मजलि मजलि चलि चलि दुख पायौ। घर आयें सब श्रम बिसरायौ॥१०॥
लरि लरि मरि मरि अंत न पायौ। राजस तामस बहुत बढायौ॥
दुगुन त्रिगुन सम दम करि भाई। बढे प्रीति परतीति सबाई॥११॥

या प्रकार माया में मुग्ध होय, जनमते मरते तुम्हारे अनंत जुग-जन्म बीत गये हैं, तौहू ये चिंता तुम्हें आज ताऊँ नाँइ भई कि वे मनहरन मित्र श्रीबिहारीजी महाराज कब मिलेंगे ? जैसे कोऊ पथिक कूँ मंजिल-मंजिल चलि-चलिकें, जो अति

कठिन श्रम होइ है, वाको दुख अपने घर पहुँचिबे पै ही मिटै है। तैसे हीं तुमने समझनो चहिये कि–हम जन्म लै-लैं अनंत मजिल चलि-चलि के दुख भोग रहे हैं, बिना अपने निज घर स्वरूप-श्रीहरि के चरन कमल प्राप्त किये यह दुख हमारो कैसें हू नांइ मिटि सकै है। याही भाँति जगत के छुद्र-स्वार्थन में बेकार ही लरि-लरि-मरि-मरि, पचि रहे हो ? किन्तु याको अंत आज ताऊँ तुम्हें नांइ मिल्यो, बलिक तिहारे स्वभाव में रजोगुन-तमोगुन ही बढ़तो जाइ रह्यो है। याते मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–हे भाई ! अपनी दसों इन्द्रिय एवं मन कूं सम-दम करो, जासों श्रीहरि में प्रीति एवं प्रतीति दिन-दूनी रात चौगुनी तुम्हारी बढ़ती जाइगी।

श्रीबिहारीदास जागत रहै, चोर चुगल में बास।
मिलि मिलि मुसि मुसि मुकरई, तूं सोवत किंहि विस्वास ॥१२॥

हे बिहारीदास ! तुम भलीभाँति रात-दिन निरंतर सावधान रहो, क्योंकि जगत के ऐसे चोर-चुगलन में तुम्हारो बास है रह्यौ है, जो तुमते मिलै हू रहैं हैं और चोरी हू करते रहैं हैं, तथा नटते हू जाँय हैं, ऐसेन के विस्वास में तुम्हें कबहूँ नांइ सोवनो चहिये ? अर्थात् घर के आदमी बनि के तो मिले रहें हैं, तुम्हारे मन, बुद्धि, चित्त कूं सतत चोरते रहैं हैं, और ये हू कहते जांइ हैं कि हमें कछु नांइ चहिये, तुम्हें दीखै जैसे करौ ? ऐसे कहते भये हू बिनके मनके अनुकूल नांइ होइबे ते चुगली हू कियौ करैं हैं। या प्रकार के लोगन के बिस्वास में कबहूँ नांइ रहनो चहिये।

यह तौ सांच झूठ मैं सांना। नागर नट क्यों जाइ बखांना॥
सांच झूठ मैं रहै न छांना। बिरले काहू कृपा पिछांना ॥१३॥
सांच झूठ कौ कियौ निदांना। झूठे छांडि सांच मन मांना॥
सांचि सांचि में रह्यौ समाई। तब को झूठहिं ढूंढन जाई ॥१४॥

यह अद्भुत नटनागर श्रीहरि मायिक झूठे संसार में ऐसे सनि रहैं हैं, जिनकूं पहिचानबो तो दूर रह्यौ, बर्नन करिबो ही अति कठिन है, तौहू बिरले कोऊ कृपापात्र जन या झूठे संसार में ही, बिनकूं ऐसे पहिचान लेवैं हैं, जिनसों वे छिपि नांइ सकें हैं। बिन महतन ने सांचे एवं झूठे को भलीभाँति निदान करि, झूठे संसार कूं सम्यक प्रकार त्यागि, साँचे नटनागर श्रीहरि सों अपनो मन मिलाइ लीन्यो है। जब ऐसे साँचे जनन को मन साँचे श्रीहरि में समाइ जाँइ हैं, तब वे झूठी बस्तुन के ताईं मन कबहूँ नांइ चलावैं हैं।

घर घर वन वन बाहिर ढूंढा। भूला फिरै बडा मति मूढा।
आरंभी उद्यम आरूढा। घर ही में पायौ गुन गूढा ।।१५।।

बहुत से लोग वा नटनागर कूँ जहाँ-तहाँ घर-घर, बन-बन एवं बाहर जाइ-जाइ कें ढूँढते डोलें हैं, कारन आरंभी सुभाउवारे लोग उद्यमन में ही आरूढ़ होइ, अपने मनमें संतोष मानि अज्ञानताबस योंही भूले-भूले फिरैं हैं, किन्तु हमने अपने हृदय में ही साँचे भाव सों, अति अद्‌भुत प्रेममय गूढ़ गुनवारे श्रीबिहारीजी महाराज कूँ प्राप्त करि लीनें हैं।

आठ कोट के दस दरवाजे। बडा नगर बहु बाजन बाजे।
पौरि पौरि बाँकी परदारा। चौकीदार रहैं हुसियारा ।।१६।।

या देहरूपी किला के इन्द्रियरूपी दस द्वार हैं। जैसे नगर में अनेक प्रकार के बाजे बजते रहें हैं, तैसे ही आठ कोट के या देह में हू नाना प्रकार के संकल्प विकल्पात्मक बाजे निरंतर बाज्यौ करैं हैं। दसों इन्द्रियन के द्वार पै, बाँके पहरेदार स्वरूप देवगन अति सावधानी ते सतत बैठे रहें हैं।

अर्थात मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार कहा-कहा उद्देस्य, मनोरथ करैं हैं, किन-किन बस्तुन कूँ प्राप्त करि सुखी होइ हैं, किन-किन ते दुख मानें हैं। कौन-कौन ते राग, द्वेष करैं हैं, ऐसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मासर्त्य आदि द्वारा–स्थूल, झीनी भली-बुरी जो कछु क्रिया यह जीव करै है, तिन सब बातन कूँ, ये पहरेदार बड़ी निपुनता ते तत्क्षण लिख लेवैं हैं, जैसे नेत्रन के भले, बुरे भावन ते देखिबो, श्रवनन ते सुनिबो, रसना ते बोलिबो तथा स्वाद लेइबो आदि जो भी इन्द्रियाँ जहाँ-जहाँ जा-जा बात में लालायित होंइ हैं, एवं आस्वादन करैं हैं, दुःख-सुख मानें हैं। तिन समस्त आचरन एवं भावन कूँ इन पहरेदारन द्वारा ताही छिन लिख्यौ जाइ है। याते यह स्पष्ट है कि कोऊ जीव अपने मनके भाव एवं आचरनन कूँ श्रीभगवान ते कैसेहू नाँइ छिपाइ सकैं हैं।

बहुत कुटंब बडा ग्रह ग्रेही। सब सूनाँ बिन स्याम सनेही ।।
मृतक समान प्रान बिनु प्रानी। तिहिं सिंगार भयौ अभिमानी ।।१७।।
बाहिर काढि सचैल अन्हायौ। अहमक यामैं अर्थ न पायौ ।।

यद्यपि या जीव के बहुत बड़ो घर-कुटुंब-परिवार होय, तौहू श्रीबिहारीजी महाराज के स्नेह सों बिहीन, सब बेकार ही हैं। क्योंकि श्रीभगवत प्रेमरूपी प्रान के

बिना सब प्रानी मृतक के समान ही हैं। फिर भी ये लोग ऐसी नस्वर देह कूँ ही श्रृङ्गार करि-करि कें अभिमान में भरि जाँय हैं, जाकूँ एकदिन घर ते बाहर निकारि, सचैल स्नान सबने करनो परै है, तौहू इन मूरखन कूँ याकी अनित्यता कौ ध्यान नाँइ होय है।

काहै कौं पढियै वेद पुराना। कागद के आंकन उनमाना ॥१८॥
अनभै करि प्रीतम पहिचांना। भया प्रतछि न कछू प्रवांना॥
द्रवहिं साध्य दिव्य साधन करि। गनिका गनैं न ऊंच नीच ढरि ॥१९॥

बेद पुरानन के पढ़िबेवारे तौ केवल कागद के अक्षरन द्वारा ही श्रीहरि के स्वरूप कूँ उन्मान करैं हैं, और प्रेमीजन तो काहू प्रमान की अपेक्षा नाँइ करि, अनुभव द्वारा प्रीतम कूँ पिछानि, क्रम-क्रम सों प्रत्यक्ष करि लेइ हैं। जैसे गनिका अपने पास आइबेवारेन कूँ, ऊँचो-नीचो कछु बिचार नाँइ करि, ढरि जाइ है, तैसेही श्रीहरि पंडित-मूरख, ऊँची-नीची, जाति, कुल, स्त्री-पुरुष, रूप-कुरूप, देसकाल आदि काहू की अपेक्षा नाँइ करि, अपने अनन्य प्रेमीन पै सहज ही ढरि जाँइ हैं, याते बिनकी प्राप्ति के ताईं एकमात्र अनन्य प्रेम ही सहज उपाय है।

ज्यौं पतिनी पतिब्रता कहावै। पति अंतर प्रतिमा लौ लावै॥
पति विदेस तैं जब घर आवै। तब प्रतिमा भजै कि पतिहि लडावै॥२०॥
ए सब दृष्टांत दृष्टि कौं कीनैं। श्रीगुरु कृपा प्रकट करि लीनैं॥
श्रीबिहारीदास चतुर चित चीन्हैं। सब संदेह भस्म कर दीन्हैं ॥२१॥

जैसे पतिब्रता स्त्री को पति जब परदेस चल्यौ जाइ है, तब वह अपने प्रीतम की प्रतिमा सों लौ लगावै है। पति के घर आइबे पै, वो साक्षात पति कूँ ही लाड़-लड़ायौ करै है। तैसे ही साधक श्रीहरि कूँ प्राप्त करिबे के ताईं यावत साधनन कूँ करै है, किन्तु जब प्रेम उदय है जाइ, तबतो वो काहू साधनन माऊँ देखै ही नाँइ है, अपने निज प्रीतम स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज कूँ ही निरंतर लाड़-लड़ाइ-लड़ाइ, लाड़ में भरयौ करै है, हमने ये सब दृष्टान्त साधक कूँ समझिबे के ताईं बताये हैं। श्रीगुरून की कृपा तें ऐसे ही हमने अपने चित्त में प्रत्यक्षि देखि, यावत संदेहन कूँ नष्ट करि, वा नटनागर कूँ भलीभाँति पहिचान लीने हैं।

साधन करि जब सिद्ध कहायौ। सिद्ध भयौ साधन बिसरायौ॥
साधन सिद्ध विलक्षन सोधा। तिहि मत होइ गुरु धर्म प्रबोधा ॥२२॥

कूप खनत थलमें जल पायौ। तब किंहि काज मजूर बुलायौ॥
कामहि काम सकाम कहायौ। काम गयें कछु काम न आयौ॥२३॥

दूसरो दृष्टान्त देते भये आप बोले कि—कछु लोग साधनन कूँ करि-करि कें जब सिद्ध है जाँइ हैं, तब उन साधनन कूँ त्यागि देवें हैं, किन्तु हमने बिनते भिन्न साधन एवं सिद्ध स्वरूप और ही विलक्षन सोधन कीन्यौ है, और वाही को श्रीगुरुन ने हमें उपदेस दीन्यौ है। अर्थात हमारे साधन एवं सिद्ध दोऊ प्रेम स्वरूप होइबे के कारन छोड़िबे की कोई बात ही नाँइ होइ है। ऐसे ही कूँवा खोदि के जल निकासिबेवारे, जल प्राप्त भये पै मजूर नाँइ लगावें हैं, तैसे ही प्रेम प्राप्ति के ताईं ही साधन कियो जाइ है, जब प्रेम ही प्राप्त है जाइ, तब साधन की आवस्यकता ही नाँइ रहि जाइ है। जो लोग सकामता ते साधन करें हैं, बिनकूँ प्रेम उदय ही नाँइ है सकै है, याते बिनके साधन कछु काम ही नाँइ देवें हैं।

पाक हेत बहु भाजन आनैं। विविध स्वाद विंजन बहु बानैं॥
रुचि सौं करि भोजन मन मानैं। भोजन करि भाजन सब भानैं॥२४॥

जैसे पाक बनाइबे के ताईं लोग बहुत से बासनन कूँ इकट्ठो करें हैं। मनमाने सुन्दर भोजन तैयार करि, जब पाइ लियो जाइ है, तब बासनन को कोऊ काम नाँइ रहै है। तैसे ही परमार्थ सिद्ध करिबे के ताईं लोग बहुत से साधनन कूँ करें हैं, जब मनमान्यौ परमार्थ सिद्ध है जाइ है तब साधनन कूँ त्यागि देवें हैं।

कर्म धर्म खरु बहुत पियारा। काचेन कौ जंजार पसारा॥
फटकत फटकत जब कन पाया। कन पायें कौने खर खाया॥२५॥

खर स्वरूप कर्म-धर्म काँची बुद्धिवारेन के ताईं ही जगत में श्रीहरि ने जंजार पसारि राख्यौ है, किन्तु इन सबन के स्वरूप एवं फलन कूँ छानि-ताइ, जब सबको सार-स्वरूप श्रीहरि की भक्ति प्राप्त है जाइ है, तब इन कर्म-धर्मन कूँ करिबे की आवस्यकता ही नाँइ रहै है।

वरन आश्रम में भक्ति विराजै। ज्यौं परजा में राजा भ्राजै॥
कहा सिंगार भिखारी साजै। दाता सौं बहसैं लटि लाजै॥२६॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि—जब सबको सार श्रीहरि की ही भक्ति है, और बिन्हीं श्रीहरि की आज्ञा कर्म-धर्म करिबे की है, ताको लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—हे भाई! बरनाश्रम धर्म, श्रीभक्ति महारानी के आगे ऐसे लगै है, जैसे राजा के आगे

प्रजा। यातें बरनाश्रम धर्म तो श्रीभक्ति महारानी के द्वार पै सदाकाल भिखारी ही रहै है। जैसे भिखारी कूँ दाता सों बहस करिबे में लज्जित होइ, दबनौ परै है, तैसेही बरनाश्रम धर्म भक्ति ते कैसेहूँ समता नाँइ करि सकै है।

जब रसिकन पै रस सुनि पायौ। रसै समझि रसिकनि पैं आयौ ॥
रस स्वादी रस स्वाद बतायौ। स्वाद पाय रस गाइ गवायौ ॥२७॥

भक्तन के सर्वोच्च स्वरूप कूँ बताते भये आप औरहू बोले कि—भक्ति करते-करते साधक को कहूँ अति सौभाग्य जागि उठै, तब वाकूँ रसिकन को संग प्राप्त है जाइ है, जब रसिक जनन पै अति सरस-रसीली-माधुरी ते भरी रस की चर्चा सुनि लेवै है, तब रस को कछु स्वाद समझन लगै है। रस को स्वाद समझिबे पै सर्वोपरि नित्यबिहार रस के टकसाली रसिकन पै आवै है। वे महत्पुरुष नित्यबिहार रस के स्वाद कूँ उदारताबस ताकूँ बताइ देवैं हैं। अद्भुत रस को स्वाद पावत खेम वो रस ही रस कूँ तो गावन लगै है और अपने संगी-साथिन ते हू गवावन लगै है।

चत्रभुज छैभुज भये ब्रजभूपा। कुंजबिहारी दुभुज अनूपा ॥
सेवत सेवग सुद्ध सरूपा। ग्यान ध्यान मानौं मृग धूपा ॥२८॥
यह आसंका करि धृग जीया। यह ठाकुर परमेश्वर कीया ॥
अद्भुत कृति विनोदी बानौं। कृति कहा कर तैं पहिचांनौं ॥२९॥
ताकौ अंत न कोऊ पावै। रसिक अनन्य भयौ गुन गावै ॥

यदि कोऊ अपने मन में ये बात सोचै कि—श्रीजुगल को ही रस व्रज में है और बिनको ही नित्यबिहार श्रीवृन्दावन में है, फिर श्रीनित्यबिहार की ही सर्वोपरिता कैसे मानी जाइ सकै? ताको लक्ष्य करिके आप बोले कि—श्रीव्रजरस-देस के ठाकुर के स्वरूप में ईस्वरता को संमिश्रन होइबे के कारन बिनने कबहूँ चतुर्भुज, कबहूँ छै भुज स्वरूप ते दर्शन दीने हैं। हमारे श्रीनिकुंजबिहारी यावत ईस्वरता ते अति दूर, बिसुद्ध ते हू अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम के अनुरूप रूप, द्वै भुजन सों ही श्रीवृन्दावन निकुंज-मन्दिर में निरवधि नित्यबिहार करैं हैं। बिनके अनन्य सेवक समस्त विधि-विधान एवं भगवत्ता ते रहित, अति बिसुद्ध रस-स्वरूप श्रीकुंजबिहारी कूँ ही सेइबेवारे, ज्ञान ध्यान कूँ तो ऐसे समझै हैं, जैसे धूप की चमक में मृग बालुका कूँ ही पानी समझै है। या अति उज्ज्वल प्रेम-रस के स्वरूप श्रीकुंजबिहारी ठाकुर में जो लोग परमेस्वरपने की आसंका हू करैं हैं, टकसाली रसिक बिनके जीवन कूँ ही उपहासास्पद मानैं हैं।

याते हम तुमसों साँची बात कहें हैं कि या श्रीकुंजबिहारी ठाकुर को ऐसो अद्भुत प्रेम-रस विनोदी स्वरूप है, कि जाकूँ तुम एकमात्र अनुभव ते ही समझि सकोगे। जिनके रसमय स्वरूप कूँ, अंत कोऊ पाय ही नाँइ सकैं हैं। याही रस के अनन्य होइ सदाकाल तुम बिनके ही गुनन कूँ गावो।

आपुन अपनी करत बडाई। अपनी साखि आपु मुख गाई ॥३०॥
भक्ति भली भगवंतै भाई। भक्त रूप ह्वै आप लडाई ॥
नारद सारद श्रुति मुनि सेषा। इन तैं साखि कौंन धौं बिसेषा ॥३१॥
जिहि जैसा तिहि तैसा देखा। रसिकन कैं मोहन मृदु भेषा ॥
विधि निषेध तजि भक्ति करि निडरि। दुविधा गयैं हियैं आवै हरि ॥३२॥

स्वयं श्रीहरि ने ही भक्तस्वरूप धारन करि, अपनी महिमा कूँ, अपने श्रीमुख तें, भूयो-भूयो गायो है, और अनेक प्रमान दैकें भक्ति के स्वरूप कूँ परिपुष्ट करते भये स्पष्ट कह्यौ है कि–हे भाई जगत में एकमात्र भक्ति ही सर्वोपरि तत्व है, याते साक्षात श्रीनारद, सारद, श्रुति-स्मृति एवं ऋषि-मुनि आदि सबन ने ही श्रीभक्तिमहारानी की नानाभाँति प्रसंसा कीनी है। इन सर्वोपरि महतन ते और अधिक प्रमान हो ही कौनको सकै है ? भक्ति की ही एक ऐसी सर्वोपरि महिमा है, कि जाको जैसो भाव होय है, ताही अनुसार श्रीहरि वाकूँ दरसन दै, समस्त रीति-भाँति सों, निहाल करि देवैं हैं,समस्त भक्तन के हू चूडामनि रसिकजन,बिनके महामाधुरी ते भरे-पूरे मनमोहन श्रीकुंजबिहारी ही इष्ट होइ हैं। यातैं हे भाई ! यावत विधि-विधानन के डर कूँ भली-भाँति त्यागि, समस्त दुबिधान कूँ दूर करि, श्रीहरि की परम पावनी भक्ति में ही लगो, जासों साक्षात श्रीहरि तुम्हारे हृदय में आइ बिराजेंगे।

इक मन साधन करि ब्रज जाई। एक चित चीरहरन सुखदाई ॥
मुरली रव रस रसिक रमाँई। ते बनिता सत जूथ कहाँई ॥३३॥
श्रीवृन्दावन निधि सब सुखदाई। निरखत केलि रसिक मन भाई ॥
श्रीबिहारिनिदासि हरिदासि लडाई। श्रीबिहारी बिहारिनकी बलि जाई ॥४३

अपने आश्रितन के चित्त में नित्यबिहार रसोपासना दरसाइबे के ताईं, आपने कह्यौ कि–काहू-काहू भक्त को चित्त अनेक साधनन द्वारा श्रीब्रजरस देस में जाइ, अति सुखदाई चीरहरन-लीला में चुभि जाइ है, ऐसे ही महारास के समय श्रीलालजू ने महामधुर मुरली-रव द्वारा श्रीब्रजसुन्दरिन के हृदय में अद्भुत अनुराग उपजाइ,

आवाहन करि, तिनके संग महारास बिलास कीन्यौ, बहुत से महत्पुरुष वाही रास-बिलास-रस कूँ आस्वादन करैं हैं।

कोऊ-कोऊ महाबड़भागी रसिक-अनन्य महत्जन एकमात्र श्रीवृन्दावन की सर्वोपरि निधि, पूर्नतम सुखदाई श्रीजुगल की केलि कूँ ही निहारि-निहारि, सुख पावैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू कूँ सदाकाल तन, मन, प्रान, रोम-रोम तें रूख अनुसार लाड़-लड़ायौ करैं हैं, हम तिनपै छिन-छिन बलिहारी जाँइ हैं।

* तीसरौ चौबोला *

काहे ऊपर तत्ता पानी। घर में नाज नहीं अभिमानी।।
सँग न सूती साधन मांनी। रोवत सगरी रैंनि बिहांनी।।१।।
ता ऊपर पाहुनौं बुलावै। हांसी होय उधार न पावै।।
सकुरि न सोवै पांव पसारै। अहमक ऐंचि पिछोरी फारै।।२।।

जैसे काहू अभिमानी महारंक के घर में नाज को तो एक दाना हू नाँइ हो, ताहू पै पाक बनाइवे के ताईं, पानी आँच पै वाने चढ़ाइ राख्यौ? देखो—या अज्ञानपने कूँ, अन्न प्राप्ति के ताईं, याने न तो कबहूँ उद्यम ही कीन्यौ है और न अन्नवारेन ते काहू प्रकार को नाता-रिस्ता ही जोरचौ है, योंही या बिचारे नें भूख में बिवस रोते-रोते सबरी रैंनि बिताई है। याकी स्थिति तो या प्रकार की है, ताहूपै ये पाहुनेन कूँ निमंत्रन दै-दै, अपने घर बुलावै है। ऐसे अभिमानी अज्ञानिन कूँ कोऊ उधार हू नाँइ देवै है, याते उल्टे जगत में बिनकी हाँसी ही हाँसी होय है। ऐसे लोगन कूँ अपने बित्त के अनुसार ही चलनो चहिये,किन्तु मूर्खताबस लंबे पाँय पसारि,अपनी पिछौरीकूँ ही फारैं हैं। याही भाँति जिन लोगन के घर में नित्यबिहार रस की तो हवा हू नाँइ है, ताहू पै वे लोग अपने कूँ नित्यविहार के उपासक बताते भये, नित्यबिहार दान देबे के ताईं औरन कूँ आमंत्रित करैं हैं, किन्तु इन लोगन ने याके ताईं प्राप्त करिबे एवं समझिबे की चेष्टा हू नाँइ कीनी है और जिन महत्पुरुषन के हृदयकमल में नित्यबिहार रस भरचौ भयो है, बिनसों कोऊ संबंध हू नाँइ जोरि राख्यौ है, जासों बिनते सुनि-समझि के हू, लोगन कूँ कछु बताइ देते। इनने समस्त अपनो जन्म योंही गँवाइ दीन्यौ है। ऐसेन को समय पै जगत में केवल उपहास ही होइ है, याते अपने वित्त के माफिक ही इनने चलनो चहिये।

पर पूँजी व्यौपार सिधारै। टोटो भयै रिनाई मारै ॥
लेखौ माँडै घर अँधियारै। सूझै क्यौं बिनु दिवला बारै ॥३॥
बहिरे आगै वेद बखानैं। सुनै बिना बिपरीतहि मानैं ॥
यौं सठ हठि सब कियौ अकाज। समझि न सेये श्रीब्रजराज ॥४॥

जैसे कोऊ दूसरे आदमी ते पूँजी लेइ के व्यौपार करिबे के ताईं परदेस में जाइ, व्यौपार करै, वाकूँ टोटो परिबे ते, कर्जा के नीचे दबनो परै है, ऐसे ही अंधेरे घर में बैठिकें, हिसाब लिखिबेवारे कूँ, बिना दीपक जराये नाँइ सूझि सकै है। तैसेही बहिरे आदमी कूँ चाहे बेद-पाठ हू कोऊ क्यों न सुनावै, किन्तु बिना सुने वो उल्टे गारी ही समझै है। योंही अपनी हठ ते बेसमझ लोगन ने, अपने काम कूँ बिगारि राख्यौ है। याते हे भाई ! यावत प्रकार की हठन कूँ त्यागि परमार्थ के समस्त स्वरूपन कूँ सत्संग द्वारा भलीभाँति सुनि-समझि श्रीब्रजरस-देस के हू राजा स्वरूप श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू कूँ दृढ़ अनन्य भाव ते सदाकाल सेवो।

घर्यौ गात जारी परि आई। नींवें खोदत देत दुहाई ॥
जो बरजै जासौं झुकि उठै। अहँकार जग राख्यौ रुठै ॥५॥
परचौ अर्ध जल ममिता करै। तऊ पतित की टेव न टरै ॥

तदुपरांत करुना में बिवस प्रानिमात्र के प्रति लक्ष्य करि, आप बोले कि—हे भाई ! तुम्हारी देह में तो वृद्धावस्था के कारन जारी परि गई है, तौहू तुम आसक्ति में बिवस, कहि रहे हो कि—हमने अपनो घर बहुत मजबूत बनवानो है, याते बड़ी गहरी नींब खुदवाइ रहे हों, कोऊ समझावै तो उल्टे अहंकार में भरि, ऐसी नाराजगी दिखावो हो मानो बहुत ही रूठि गये हो। देखो ? इन लोगन कूँ अंत समय में जल के किनारे लै-जाइबे पै हू पतितपने की टेब नाँइ जाइ है।

अलप आव लालची गँवाई। पातरि चाटि न स्वांन अघाई ॥६॥
बसिहैं मेरे नाती पूता। तोलौं आइ गये जमदूता ॥
विवस भयो बोधा बिललाई। मुदगर मूंसर मूंड में खाई ॥७॥
जैसो करै सु तैसौ पावै। परदा फाटै कहा दुरावै ॥
श्रीहरिदासन सों सँग न सगाई। बार बार जम कियौ जमाई ॥८॥
ह्वै अनन्य अंतहुँ नहिं भाखा। यौंही मुंवा लियैं अभिलाखा ॥

सुलभ जनम समझ्यौ न गँवारा। बहुरचौ उपजि परचौ जंजारा ।।९।।

ऐसेन के प्रति पस्चाताप करते भये आपने और हू कह्यौ कि–देखो भाई ! अनंत योनिन कूँ भोगते-भोगते कितेक जुगन के पस्चात् थोरे समय के ताईं यह मानव देह तुम्हें प्राप्त भई है, तौहू जैसे स्वाँन जूठी पातरन कूँ चाटतो-चाटतो नाँइ अघावै है, तैसेही तुम एकमात्र सारहीन, सतत दुखदाई-नासवान बिषयन कूँ, बड़े लालच में भरि, चाटते-चाटते नाँइ अघाइ रहे हो, और ये हू कहि रहे हो कि हमारे नाती-पूत इन भवनन में बड़े सुख पूर्वक बसेंगे। ऐसे मनोरथ करते-करते जमराज के दूतन नें आइकें घेरि, मूड़ में मुगदर-मूसर मारने सुरू करि दीने, तब वो मूरख बुरी तरह बिललावन लग्यौ। वा समय रक्षा करिबेवारो कौन हो ? तिनके आगे कोऊ दुराउ हू नाँइ है सकै हो, जैसे जाके कर्तव्य हैं तैसो ही वाकूँ भुगतनो परै है, याते यह स्पष्ट है कि–जो लोग श्रीहरि के दासन ते संबंध-संग नाँइ करैं हैं, बिनने बार-बार जमराज के द्वार पै जानो ही परै है। ये लोग जागतिक विषयन में इतेक भूलि रहे हैं कि अंत समय में हू यदि यावत संबंधन ते नातो भलीभाँति तोरि, श्रीबिहारीजी महाराज कूँ ही अपनो रक्षक समझि, अनन्य भाव ते बिनकूँ पुकारते तो जमराज ते सदा-सदा के ताईं छुटकारो इनको है जातो, किन्तु अद्भुत मानव देह को लाभ, ये लोग कछु नाँइ समझि, यावत लालसान कूँ ही लिये भये मरैं हैं, याते फिर वोही जन्म-मरनरूपी जंजाल उपजि परै है।

तेई दर तेई फिरि थूंनी। कीनी कृपन भगति रति ऊनी ।।
सुदृढ वासनां बीज विसाला। तातैं उपजि परचौ जंजाला ।।१०।।
रज सत तम लीनैं गुन तीनि। बाँधे गाँठि परखि नग बीनि ।।
राति द्यौस तिनसों व्यवहार। नेंकु न बिसरत रहत हुसियार ।।११।।
सब प्राननि सों करत विरोध। लीनें फिरत काँम अरु क्रोध ।।
काँमी कर्म करत नित नये। कहूँ दूनें कहूँ डचौढे भये ।।१२।।
कहूँ जीत्यौ कहूँ मानी हारि। नेकु न कबहूँ सक्यौ सम्हारि ।।
कहूँ मूसो कहूँ भई बिलाई। कबहूँ उलटि बाहि वह खाई ।।१३।।
कहूँ कूकर कहूँ सूकर भयौ। करम फंद तैं निकसि न गयौ ।।
इन्द्र चन्द्र पसु सबै समानाँ। भक्ति बिना बूडे अभिमानाँ ।।१४।।

ज्यौं नट कपट करै सौ स्वांग। जनमत मरत उघारै आँग ॥
यों आवत अंत ऐन नहीं दूध। सींग दुहत मारत करि क्रोध ॥१५॥

ये लोग जगत में बार-बार जन्म लै-लै कें घर-द्वार-संपत्तिन कूँ पूर्ववत अपनो मानि, श्रीहरि की भक्ति-भाव कूँ नाँइ धारन करें हैं। कारन अनंत जन्मन की बासनान के बड़े सुदृढ़ बीज हृदय में बुए रहिबे ते वेही जंजाल फिर फैलि जाँइ हैं, ताते सतोगुन, रजोगुन, तमोगुन के व्यवहार बड़ी सावधानी ते करि, बड़े-बड़े कर्मन के मानो नग बीनि-बीनिकें अपने हृदय में संग्रह करि लेवें हैं। काम,क्रोध हृदय में भरि, सब प्रानिन ते सतत बैर-बिरोध करतो डोलै है। या प्रकार को अभिमान एवं सकामता में परवस होइ, नित नये कर्मन कूँ ऐसो करतो रहै है, जो कहूँ दूने,कहूँ ड्योढ़े है जाँइ हैं। ताते ही जगत में कहूँ जीत, कहूँ हार होती रहै है। इन तीनों गुनन में ही ऐसो बिवस भयौ रहै है, जोकि अपने स्वरूप कूँ नेक हू नाँइ सम्हारि सकै है। ऐसेही प्रारब्ध बस कहूँ मूसे, कहूँ बिल्ली की नाँई परस्पर एक दूसरे कूँ खायौ करें हैं। याही भाँति खोटे कर्मन के फल-स्वरूप कूकर-सूकर की योनिन में हूँ जावै है। योंही अनंत जोनिन में भटकते-भटकते कर्मादिकन के फंदा ते कबहूँ नाँइ निकसि सक्यौ ? याते तुम भलीभाँति अपने मन में सोच-बिचारि के देखो कि—इन्द्र, चन्द्र तथा पसु-पक्षी सबही समानरूप ते अपने-अपने कर्मन कूँ भुगत रहे हैं। श्रीभक्तिमहारानी की सरन लिये बिना, बड़े-बड़े सयाने हू, अभिमान करि-करि या भवसागर में डूबि गये, जैसे नट कपट के अनेक स्वाँग धरै है, किन्तु जन्म-मरन के समय कोऊ स्वाँग नाँई रहै है, ऐसे अनेक स्वाँगन में लिप्त होइबे के कारन तुमहू आवागमन में डोलि रहे हो। जैसे बिना दूधवारी गइया कूँ दुहिबे ते वो गइया क्रोध में भरि, उल्टे सींग मारै है, तैसे ही जगत में दूध स्वरूप सुख की गंध हू नाँइ होइबे ते उल्टे बहुत से पाप-पुन्य संग लगि जाइ हैं, जासों आवागमन में बेर-बेर भ्रमनो परै है।

अँधो बाट टटोरै लाठी। संग लगै तिनकी बुधि नाठी ॥
विधि निषेध सौं बाँधी आस। तिनके छुटे न संसै फाँस ॥१६॥
चक्षु हीन रोके पथ चारि। अँखियारे तुम लेहु बिचारि ॥
आँधरे कीयौ दूध को हंस। बिना विवेक बूडि गयौ बंस ॥१७॥

जैसे अंधो आदमी अपनी लठिया ते टटोर-टटोर के ही चलै है, और वाके संग बुद्धिहीन व्यक्ति ही लगैं हैं। तैसेही श्रीहरि की भक्ति ते बिहीन ये अंधे लोग, केवल

विधि-निषेध धर्मन में ही टटोरि-टटोरि चलिकें, मायासागर ते पार जाइबे की अपने मन में आसा राखैं हैं। अर्थात कर्तुमकर्तु-अन्यथाकर्तुम् सर्व समर्थ, सर्वांतर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वसक्तिमान, सरनागत-वत्सल, असरन-सरन, भक्तभयहारी, करुना-नरुनालय, पतितपावन, दीनबन्धु, दीनानाथ, सर्वसुहृद आदि-आदि ऐसे अनंत गुनन ते भरे-पूरे श्रीहरि, जोकि सहज में ही जीव कूँ अपनाय, समस्त रीति-भाँति सों सुखी करैं हैं, वे तो इन्हें दीखैं नाँइ हैं, उल्टे अन्धेन की नाँईं कबहूँ काहू बिधि में, कबहूँ काहू बिधि में, चलि-चलि कें चारों ओर पथ कूँ रोकि के राखैं हैं। याते हे भाई! तुमहीं अपने मन में बिचार करौ कि या प्रकार चलिबे ते कहा काम बनि सकै है। इन आँधरेन ने तो ऐसे ही दूध कूँ हंस समझि, बिवेक ते विहीन होइबे के कारन, इनके बंस के बंस याही प्रकार डूबि गये हैं।

काहू भागि भयौ सतसंग। तिनके सेवत लाग्यौ रंग ॥
रसिक अनन्यनि के पग परै। तौ टूट्यौ गोड बज्र ह्वै जुरै ॥१८॥
छिन छिन मन बाढ़ै रस रीति। रहै त्रिगुन तैं माया जीति ॥
राति द्यौस गावैं चित लाइ। ताकौ बिढतौ कहाँ समाइ ॥१९॥
साधन सिद्ध सहज ही भये। तिनके श्रम अरु संसै गये ॥
माँगै कछू न दोनौं लैंहि। अपनैं सुख तैं औरन दैंहि ॥२०॥
रीझि रहे नागरहि रिझाइ। सेवक सेव्य रहे सुख पाइ ॥
श्रीबिहारीदास हरिदास लडाई। श्रीबिहारी बिहारिन को बलिजाई ॥२१॥

काहू बड़भागी जनन कूँ, या जगत में महत्पुरुषन को सत्संग कदाचित मिलि जाइ, तथा वा सत्संग कूँ सेवते-सेवते, श्रीभक्तिमहारानी को रंग बिनके हृदय में लगि जाइ, फिर वो रसिक अनन्यन के श्रीचरन-कमलन में जाइ के यदि गिर जाइ तो-जैसे टूटो गोड़ बज्र सदृस जुरि जाइ है, तैसेही वो अपने इष्ट के भाव-भक्ति में दृढ़ अनन्य है जाइ हैं। अर्थात श्रीभगवान की सुद्ध-भक्ति की परिपाक अवस्था प्रेम, प्रेम को परिपाक रस, रस की चर्मसीमा रसिक अनन्यता, जामें ऐस्वर्यपने के झीने स्वार्थ की गन्ध हू नाँइ रहै है, एकमात्र रस ही जीवन आधार है जाइ है, बिनकूँ कोऊ बिघ्न-बाधा आ ही नाँइ सकै है। रस की अगाध तरङ्गन द्वारा छिन-छिन अपने इष्ट कूँ लाड़-लड़ाइ-लड़ाइ, गुन गायौ करैं हैं। ऐसे महत्पुरुषन को बड़भाग कहूँ समाय ही नाँइ सकै है। यावत साधन बिनके सहज में ही सिद्ध होइ, संसय एवं भ्रम तो ढूँढे हू

बिनके हृदय में नाँइ मिलें हैं। वे इतेक अगाध सुख समुद्र में डूबे रहैं हैं, जो और-और परमार्थ रस-सुख-स्वादन कूँ माँगिबे की तो कहा चलाई, देबे पै हू, वे नाँइ लेवें हैं, उलटे अपने सुख सों औरन कूँ हूँ सुखी करि देवें हैं। नागर-सिरोमनि अपने प्राननाथ श्रीजुगल कूँ रिझाइ-रिझाइ कें स्वयं रीझे रहे हैं। या प्रकार के सेवक और सेव्य सदा सुख-सागर में किलोल कियौ करैं हैं, यदि कोऊ ये बात कहै कि ऐसो बिचित्र सुख, काहू कूँ आज ताऊँ प्राप्त भयो है, ताके लक्ष्य सों आप अपनो ही दृष्टान्त दैकें बोले कि—श्रीस्वामीजी महाराज ने मोपै अद्भुत कृपा करि, या प्रकार को लाड़-कीन्यौ है, जासों साक्षात श्रीबिहारी-बिहारिनीजू पै हम सतत अपने प्रानन कूँ न्यौछावर करि अद्भुत सुख समुद्र में किलोल करि-करि, फूले नाँइ मावें हैं।

* अथ सिद्धान्त के कवित्त-सवैया *

सनमुख भयें अभै कीनैं निज जन जांनि जिन-जिन कैं मन संदेह भ्रम भीर कौ। साधन सिद्धान्त सब कहत कवि महन्त भजन एकांत रस हंस नीर क्षीर को॥ निपट नित्यबिहार रस रीति कौ सिंगार ऐसौ को उदार उपकारी परपीर कौ। रसिक अनिन्यनि भावै श्रीमुख साँवरो गावै गुरनि कौ गुरु श्रीहरिदास आसधीर कौ॥१॥

श्रीस्वामीजू महाराज की सर्वोपरिता के स्वरूप कूँ दिखाते भये श्रीगुरुदेवजू ने कह्यौ कि—जगत् में जितेक परमार्थी कवि, महंत आदि आज ताऊँ भये हैं तिन सबन ने साधन एवं सिद्धान्तन को स्वरूप ऐसे बर्नन कीने हैं, तिनकूँ सुनि, परमार्थीन के हृदय में अनेक प्रकार के भ्रमन की भीर लगि रही ही, साक्षात श्रीनित्यविहारिनीजू की निज कृपा ते प्रेरित जो भी जन आपके अनन्य सरन आये, तिन सबन कूँ निज जन जानि, कृपा उदारता में बिबस, हंस रूप होय, आपने यावत परमार्थ एवं रसन ते भिन्न सबको सार स्वरूप प्रथम-समागम एकान्त-रस-बिलास महल को निपट नित्यबिहार-रस उपदेस दै, समस्त भ्रमन कूँ दूर करि, सम्यक प्रकार निहाल करि दीने।

अपने सों अपनाइत मानी, कुँवरि किसोरी कृपा निज जानी।

ऐसे अद्भुत रस कूँ सुनि, जो अति बिसुद्ध रस के रसिक अनन्य हे, तिनकूँ इतेक मनभाँवतो सुख भयो, मानो देह कूँ प्रान ही मिलि गये हों, और साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज तो अति रीझि, गाइकें बोले कि—जगत में जितेक परमार्थ के उपदेष्टा गुरु भये हैं, तिन समस्त गुरुन के हू गुरू स्वरूप श्रीस्वामीजी ही हैं।

अर्थात्—कर्म-धर्म के उपदेष्टा गुरुन ते ग्यान-दाता गुरुन को महत्व विसेष होय है, ग्यान दाता ते श्रीभगवत भक्ति उपदेष्टा गुरुन को। याही भाँति श्रीभगवत भक्ति के उपदेष्टान ते, व्रज के वात्सल्य-रस उपदेस करिबेवारेन को। वात्सल्य-रस ते सख्य, और सख्य रस सों श्रीब्रज-सुन्दरिन के शृंगार रस विलास के उपदेस देइबेवारे गुरुन को, उत्तरोत्तर अधिक महत्व है। तिनहूँ ते अधिक श्रीवृन्दावन निकुंज बिहारी, अष्ट-यूथेश्वरी परिकर, महामधुर रस बिलास के उपदेष्टा गुरुन को विसेष महत्व होइ है। तापै हू अति महत्वसाली महामधुर रस को हू सार अतिगूढ़ सुरत-रसमय-निपट-नित्यबिहार के प्रगटकर्ता अनन्य नृपति चूड़ामनि श्रीस्वामीजी महाराज को ही सर्वोपरि स्वरूप है, जिन श्रीस्वामीजी महाराज ने यावत परमार्थ एवं रसन ते निज रस रीति को ही भजन नीर क्षीरवत् न्यारो करि, अपने निज आश्रितन कूँ दै दीनो है, जामें दोऊ श्रीजुगल के तन, मन, प्रान-रोम-रोम को शृंगार एकमात्र रसरीति के ही भाव-अनुभावन सों होइ हैं। याते श्रीगुरुदेवजू कौ स्पष्ट कथन है कि साधकन की समस्त रीतिभाँति सों पीर हरन करिकें, सर्वोपरि रस सों अद्भुत निहाल करिबेवारो, श्रीस्वामीजी महाराज सदृस उदार सिरोमनि आज ताऊँ कोऊ भयौ ही नाँइ है।

श्रीस्वामी हरिदास रसिकवर आसुधीर के धीर।
परमहंस न्यारे किये, मिले नीर अरु क्षीर॥ —रूपसखीजी

पारवार जाको नहीं, आदि मध्य अवसान।
किसोरदास दुर्गम तहाँ, श्रीहरिदास प्रधान॥
सुक्ष्म दुर्गम देस के श्रीहरिदास नरेस।
किये दृगन कूँ आरसी, सजत सिंगार सुपेस॥
सकल श्रुतिन को मुकुटमनि नित्यबिहार अपार।
श्रीहरिदास अनन्य नृप, कह्यौ सकल निर्धार॥ —श्रीकिशोरदासजी

सुजस हरिदास कौ श्रवन भरि सर्वदा रसनं हरिदास गुन नाम भाखौं॥ नासिका सहज श्रीहरिदास सौरभ सु तनु मनसुं हरिदास निसि-द्योस आँखौं। जैं श्रीबरु बिहारिनिदास श्रीहरिदास बिपुल बल सकल खल लोक विधि विषम नाखौं॥ सुई धन्य सीस श्रीहरिदास चरन बंदन करै नैंन हरिदास के रूप राखौं॥२॥

निज आश्रितन पै प्रेम विवस होइ, अपनी आसक्ति कूँ प्रकास करते भये

आप बोले कि–हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज के महामधुर सार निज रस रीतिमय सर्वोपरि जसन कूँ ही सदा-सर्वदा हम अपने श्रवनन में भरें हैं। रसना ते बिनके ही बिचित्र रस जसन कूँ सदाकाल गावें हैं। नासिका ते श्रीस्वामीजी महाराज की अंग-सुगंध,प्रसादी-माला आदिकन कूँ हीं सूँघें हैं, और मन में रात-दिन आपके ही अद्‌भुत स्वरूप कूँ हम आँकि के राखें हैं। इतेक कहते-कहते, रीझन में बिवस होइ, आप बोले कि–जय हो, श्रीवरविहारिनदासी श्रीस्वामीजू एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू तिनकी कृपा बल ते, यावत् मायिक लोकन के विधी-विधानन कूँ हम भलीभाँति उलँघि गये हैं।

माथो जगत में उन्हीं महतपुरुषन को धन्य है, जो साक्षात रसिक अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज के चरनारबिन्दन कूँ बंदना करें है और मैं अपनी आँखिन में तो, अद्‌भुत नित्यबिहार स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज के ही विचित्र रूप कूँ सदाकाल भरि के राखूँ हूँ।

रूप रस सार तामें भाव की तरंग किधौं, सागर सुप्रेम सुधा सुख को निवास है।
महल की निकुंज केलि ताकी रति बेलि किधौं, महानेह सुमन पराग रस रास है॥
किधौं हैं आसक्तता की रीति को स्वरूप सोभा, किधौं फूल आनंद कों हरष प्रकास है।
रसिकसेखर प्रगट हिय हेत धारी, ललित विहार वारि मोहन हरिदास है॥

छाँडि वोहित सिंधु उडत वायस अंध और नहीं ठौर जित कितहिं जाँहीं॥ मंद मति भूलि प्रतिकूल अति पतित ह्वै मधुर रस छांडि खल बिषै खाँही। बिनु बिहारिनिदासि उपहास जगत में करत सनमुख विमुख खिजि खिस्याँहीं॥ कोटि साधन करौ स्वर्ग तें गिर परौ श्रीहरिदास के चरन बिनु सरन नाँहीं॥३॥

जैसे समुद्र में पंछी कूँ बैठिबे के ताईं, जहाज के अतिरिक्त और कोऊ ठौर हो ही नाँइ है, तैसे हीं या माया-सागर में श्रीनित्यबिहार के साधकन कूँ, श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की अनन्य सरनागति के अतिरिक्त और कोऊ ठौर नाँइ है, तौहू ये मंदमति-मूरख, आँधरे कौवा की नाँईं महामधुर-रस छाँड़ि, अति पतित ह्वै प्रतिकूल विषयन कूँ हीं सेवें हैं, याते नित्यबिहार के दृढ़ अनन्य सेवी श्रीबिहारीदास हुए बिना, जगत में तो उपहास होय है, और श्रीस्वामीजी महाराज के जन दुख पायकें, खिझें हैं, तुमने अपने मन में भलीभाँति सोचनो-समझनो चहिये कि कोटि

साधन करि, स्वर्ग प्राप्ति करि लेवोगे, तौहू जगत में जन्म लेनो परैगो। श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमलन को अनन्य आश्रित हुए बिना, महामधुर रसमय नित्यबिहार कैसेहू प्राप्त नाँइ है सकै है।

चित्त हरौ सब वित्त हरौ नवनीत हरौ ब्रज जाँनि जहाँ कौ ॥
हरे हरि ह्वै रहे हौ लला हौंतौं हेरि रह्यौ हठ ही हठ हाँकौं।
श्रीविहारिनिदास अनन्य मिले रस पाय प्रिया पिय अंक महाँ कौ ॥
हौं तौ और सरूप पिछानों नाँहि श्रीहरिदास बिना हरिको है कहाँ कौ ॥४॥

अनादिकाल तें लैकें, अब ताऊँ जितेक परमार्थी-भक्त एवं रसिक जगत में भये हैं, तिन सबन के उपास्य देव-इष्ट-स्वरूप साक्षात श्रीनंदनंदनजू ही हैं। वे एक समय स्वयं अपने सखान कूँ संग लै, प्रेम लपेटे अनन्यता ते भरे श्रीगुरुदेवजू के बचनन कूँ सुनिबे के ताईं, आपके पास आये। श्रीगुरुदेवजू आँख बंद किये, श्रीस्वामीजी महाराज के ध्यान में, जैसे विराज रहे हे, वैसे के वैसे ही विराजे रहे, उठिकें प्रेम सों दंडवत करिबो तो दूर रह्यौ, आँखि खोलिकें, देखे तक हू नाँइ। जब स्वयं श्रीलालजू ने आँख खोलिबे कौ आग्रह कीन्यौ, तब आपने स्पष्ट कह्यौ कि—श्रीस्वामीजू के संग बिना हरि कौन? और कहाँ के हैं? हम पहिचानैं ही नाँइ हैं। तब श्रीलालजू ने अपनो परिचय दीनों, तापै आपने कह्यौ कि—वहाँ ही श्रीव्रज-जनन के चित्त-बित्त एवं माखन आदि चोरि-चोरि कें सतत लाला बने रहो। मोकूँ तो श्रीस्वामीजू महाराज ने अपने अंक को निज-रस-ऐसो पिवाइ दीन्यो है, जासों मोकूँ अब और कोऊ रुचै ही नाँइ है। वाही रस की दृढ़ अनन्यता कूँ हम हठ पूर्वक निभाइ रहे हैं और निभावैंगे।

प्रगटयौ कुल कोटि अनन्यनि की मनि धंनि कहैं जग जानि नम्यौ ॥
परमारथ सिद्ध महंत इतै उत स्वारथ साहिन दुख दम्यौ।
श्रीबिहारी-बिहारिनि दास लै संग अनंग के रंग रिझाय रम्यौ ॥
ऐसौ निस्प्रेही को उपकार करै श्रीहरिदास की रीति न और जम्यौ ॥५॥

जैसे मनि अंधकार कूँ दूर करि, सबके स्वरूप कूँ स्पष्ट दिखाइ देवै है, तथा जहाँ वो बिराजै है, वाकी हू सर्वोच्च प्रसंसा है जाइ है। तैसेही कोटानुकोटि अनन्यनि के कुल में श्रीस्वामीजी महाराज मनि स्वरूप ऐसे बिचित्र प्रगट भये हैं, जोकि आपके समतुल आज ताऊँ न तो कोऊ भयौ और न आगे हो ही सकै है, कारन जितेक परमार्थी साधक-सिद्ध तथा महंत और स्वार्थिन में राजा-महाराजा आदि सबन के

दुख कूँ भलीभाँति निवारन करि दीनो। याते सबनने आपके चरनारविन्द में माथो नवायो। साक्षात् श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कूँ अगाध अनंग रंग में सतत रिझाइ-रिझाइ आपहू वा रस रंग में सतत रमैं हैं। ऐसे निस्प्रेही उपकार करिबेवारे श्रीस्वामीजी महाराज सदृस, श्रीस्वामीजी ही भये हैं।

ज्यौं जल मूल दियैं फल फूलनि फैलि चलै सबही सुख ही ढरि।
श्रीमुख साखि कहौं नहिं राखि बिहारिनि भाखि लै राखि हियैं धरि।।
और सबै डहकावत तोहि ईंहि मत तू जिनि जाहि टिकै टरि।
साधन सिद्ध बिरुद्ध नहीं निजु श्रीहरिदास भजैं भजियै हरि।।६।।

फिर श्रीगुरुदेवजू निज आश्रितन के प्रति ममता-करुना में अति बिवस होइ, स्पष्ट बताते भये बोले कि–हे भाई! मैं तुमसों कछु न छिपायकें साँची बात कहूँ हूँ कि–साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू ने ही स्वयं श्रीमुख-कमल ते मोसों कही है कि–यावत स्वरूप तथा महत्पुरुष एवं उपदेष्टा–गुरु सबन के मूलस्वरूप श्रीस्वामीजू महाराज ही हैं, याते तू काहू के बहकाइबे में नाँइ आइकें, दृढ़ अनन्य भाव सों एकमात्र श्रीस्वामीजी को ही भजन कर। इनको ही भजन, समस्त-साधन तथा सिद्धावस्था में हू, विरुद्ध नाँइ होंइके, हमारो ऐसो निज भजन है कि–जैसे मूल में जल देइबे ते, पेड़ अति बिसाल होइबे पै हू, वाके समस्त अंग सुख सों हरे-भरे, फले-फूले रहैं हैं।

अर्थात यावत जीवन के मूल-स्वरूप श्रीभगवान, समस्त श्रीभगवत स्वरूपन के मूलस्वरूप स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। तिनकी मूल, श्रीवृषभानुनन्दिनीजू, श्रीवृषभानुनन्दिनीजू की मूल सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू, बिनकी हू मूल-स्वरूपा साक्षात श्रीहरिदासीजू ही हैं।

एकमूल स्थूल लौं द्वै स्कंध समवैस। –श्रीगुरुदेवजू

अपनौं वपु बाँनि सुठाँनि धरयौ धरि द्वै निज रूप चलौ अचलौ।
जुतौ परमारथ की चित चाड तौ सूरहि कूर विचारि बलौ।।
श्रीबिहारिनिदासि विलासहि गावत रास मैं बोलि लियौ विपुलौ।
निजु नातो नेह निवाहत हैं श्रीहरिदास भजैं हरि मानैं भलौ।।७।।

अतिझीनी मर्म की बात कूँ प्रकास करते भये आप और हू बोले कि–हे भाई! यद्यपि एकही बस्तु चल, तथा अचल, द्वै स्वरूप सों जगत में विराजमान है, चल-स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज, अचल-स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज, यदि तुमने परमार्थ

की साँची लालसा है तो, कौन स्वरूप के भजन करिबे ते, हमारे समस्त कार्य, भलीभाँति सिद्ध है सकें हैं, या बातकूँ बिचारिकें, अपने हृदय में धारन करौ। आपने प्रत्यक्ष कौ दृष्टान्त दैकें हू कह्यौ कि–देखो ! हमारे प्राननाथ श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेव जू ने श्रीस्वामीजू की अनन्यता कूँ ही, अति दृढ़ता सों अंत तक निभायो, श्रीबिहारीजी महाराज के बिराजते भये हू श्रीस्वामीजू के बिना आपने अपनी आँख तक नाँइ खोली। या निज नाता पै रीझि स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज ने हाथ पकरि, सदेह अपने पास आपकूँ बुलाय लीन्यौ।

एकही रूप अनूप बिराजत एक हिये रस बैस तिहारी।
एक ही प्राँन समाँन सखी बपु खेलत द्वै दृग दृष्टि निहारी॥
स्वामिनी स्याँम अनन्य भजैं भ्रम दूरि कियौ तिनकी बलिहारी।
श्रीबिहारिनिदासि कैं भेद नहीं श्रीहरिदास किधौं हरि आप बिहारी॥८॥

श्रीबिहारीजी महाराज तथा श्रीस्वामीजू महाराज के स्वरूप में अभेद दिखाते भये आप बोले कि–श्रीस्वामीजू साक्षात हरि, आप श्रीबिहारीजी महाराज ही हैं, कारन दोउन के श्रीहृदय-कमलन में, एकही नित्यबिहार रस-बैस भरचौ भयो है। दोऊ एकही प्रान सहस ऐसे खेलें हैं, जैसे दो आँख होते भये हू समस्त बस्तून कूँ एकही समान सब लोग देखैं हैं। तापैहू दोऊ श्रीजुगल अनन्य भाव तें, सदाकाल श्रीस्वामीजू कूँ ही सेवैं हैं, यद्यपि साधारन लोगन के मन में ये बात आइबो कठिन है, किन्तु जिन महत्पुरुषन के मन में या बात में भ्रम नाँइ रह्यौ, बिनकी बुद्धि की हम बार-बार बलिहारी जाँइ हैं। सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के दासन कूँ तो यामें कबहूँ भ्रम आवै ही नाँइ है, वे तो श्रीस्वामीजी एवं श्रीबिहारीजी महाराज कूँ अभेद समझिकें ही सदाकाल सेवन करैं हैं। यदि कोऊ ये बात कहै कि–श्रीस्वामिनीलाल, अनन्य भाव तें, एकमात्र श्रीस्वामीजू कूँ ही काहे कूँ सेवेंगे, ता विषय में या प्रकार समझनो कि–साँचे प्रेम कौ सुभाउ ही ऐसो होइ है, जोकि दुहूँ ओर ते समस्त रीति-भाँति सों उमँगि-उमँगि के परस्पर प्रान न्यौछावर कियो करैं हैं। हमारे श्रीस्वामीजी महाराज के तन, मन, प्रान, रोम-रोम, पूर्नतम प्रेम ते भरे भये एकमात्र श्रीजुगल के ही प्रानन के सन्मुख सतत रहैं हैं। तव श्रीजुगल के हू प्रान श्रीस्वामीजी महाराज के प्रानन के सन्मुख अनन्य भाव ते सतत रहिबो अनिवार्य है।

प्रेम परस्पर तौलिये ज्यौं सम बहसैं सूर······।

छबीली की छाँह बाँह गहैं निजु कुंज माँह जैसी वे तैसी ये तहां तन मन अभिरामिनी ।। मन की मनसा यहै स्वासनि के स्वास लहै भेद विभेद कौन कहै अँग सँग स्वांमिनी । जिनके गुननि गांऊ तिनके मननि भाऊं याही रस वस जस संतत सकांमिनी । जैश्रीवरुबिहारिनिदासि विपुल प्रेमप्रकासि देखि सुखरासि हरिदासि निजु नाँमिनी ।।९।।

जय हो जय हो ! श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू की, जिनने मेरे हृदय में, निज प्रेम को प्रकास करि, मोते स्पष्ट कह्यौ कि—समस्त निज रसमय सुखन को सार—श्री स्वामिनीजू को निज स्वरूप श्रीहरिदासीजू ही हैं, बिनकूँ आँख भरि-भरि के तू सदाकाल देखि, जोकि निजकुंज में छबीली श्रीस्वामिनीजू को हस्तकमल सों हस्तकमल पकरैं, आप छायावत सतत अंग-संग रहैं हैं । अर्थात श्रीस्वामिनीजू के तन, मन, प्रानन तें अपने तन, मन, प्रानन कूँ सदाकाल एक सदृस करिकें राखैं हैं । जैसी श्रीनित्यबिहारिनीजू हैं, तैसीही श्रीहरिदासीजू हैं, तौहू तन, मन सों श्रीहरिदासीजू कछु और हू अति सुसोभित लगे हैं, क्योंकि श्रीस्वामीजू के मन की मनसा एवं स्वाँसन के हू स्वाँसन की रुख कूँ लहिबेवारी हैं, याते इनको-बिनको भेद-विभेद कोऊ कहि ही नाँइ सकै है । श्रीस्वामिनीजू के गुन गाइबे ते तो, श्रीस्वामीजू के मन भाऊँ हूँ, श्रीस्वामीजू के गुन गाइबे ते, श्रीप्यारीजू के ऐसे मन भाऊँ हूँ, जोकि बिनके गुन सुनिबे के ताईं आप सतत सकामिनी बनी रहैं हैं । याही ते हमारे गुरुदेव श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू ने मोते स्पष्ट कह्यौ कि—सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू को निज नाम, सुखरासि श्रीहरिदासीजू ही है ।

श्री स्वामी हरिदास कर अंबुज परसत माथ ।
मानों रचि खचि चंद्रिका राखी सखियनि साथ ।।
राखी सखियनि साथ नाँउ धृत दासि बिहारिनि ।
निरखत नित्यबिहार लता ग्रह रंध्र निहारिनि ।।
अति नागर वर जानि निकट स्यामा अभिरामी ।
दुतीय रूप इक धर्म धुरा वाहत श्रीस्वामी ।।१०।।

श्रीस्वामीजी महाराज की अति अद्भुत उदारता, कृपालुता कूँ प्रकास करते भये, अपनो ही दृष्टान्त देकें, आपने कह्यौ कि—जब पहिले-पहल आइकें, हमने

श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमलन में अपनो माथो धरयौ, तब आप दया-करुना में बिवस होइ, मेरे माथे पै श्रीहस्तकमल को ऐसो राख्यौ, मानो श्रीनिकुंजमन्दिर को राजतिलक दै, चन्द्रिका ही बांधि दीनी, वाही छिन आपने मोकूँ सखिन् के संग करि, मेरो नाम ही श्रीबिहारनदासी धरि दीनौ, ताके प्रताप ते ताही समय लतागृह-मंदिर के रन्ध्रन में ह्वै, साक्षात नित्यबिहार कूँ आँख भरि-भरि कें मैं अवलोकन करिबे लग्यौ। तहाँ मैंने एक और हू कौतुक देख्यौ कि—एक स्वरूप सों तो, आप अति नागरता ते श्रीस्वामिनीजू कूँ लाड़-लड़ाय रहे, दूजे स्वरूप सों नित्यबिहार अनन्य उपासना के धर्म-धुरा कूँ बहन करि रहे। अर्थात जो भी जन आपके अनन्य आश्रय आवैं हैं, एवं आवेंगे, तिन सबन कूँ, सर्वोपरि सरस-रसीलो, नित्यबिहार सुख-दान दै-दै कें निहाल करि रहे।

मिश्रित और उपास बनें नहि ज्यौं बिन भैंन पखावज बाजै।
पिय के मन प्रीति प्रतीत नहीं अनभांवतो बादि सिंगार लै साजै॥
श्रीबिहारिनिदासि अनन्य सभा धनि कौंन कहै सुनि लाजनि लाजै।
सत अस्त्री लौं सत पति भजै श्रीहरिदास यौं कुंजबिहार बिराजै॥११॥

निज-आश्रितन के प्रति आपने स्पष्ट कह्यौ कि—हे भाई! जैसे मृदंग, बिना ठोक-ठाक, चून लगाये कैसेहू नाँइ बाजि सकै है, तैसेही साधक श्रीवृन्दावन अखंडबास को निज नेम लै, श्रीस्वामीजी महाराज को दृढ़ अनन्य आश्रित होइ, सर्वोपरि नित्य-बिहारी-बिहारिनीजू के प्रथम-समागम एकान्त रस-विलास महल में यदि काहू और-और इष्ट-उपासना भावन की मिलौनी राखैंगे तो वाकी निज-रसरीतिमय नित्यबिहार उपासना कैसेहू सिद्ध नाँय है सकेगी। क्योंकि समस्त रीति-भाँति सों दृढ़-अनन्य उपासना नाँइ होइबे ते हमारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू, निज अपनो जन वाकूँ मानैं ही नाँइ हैं, फिर तुम कितेक हू भजन साधन-स्वरूप सिंगार क्यों नाँइ करौ, बिनके मनकूँ भावै ही नाँइ है, और अनन्यन की सभा में धन्य-धन्य कहिबो तो दूर रह्यौ, तुम्हारो नाम सुनिबे में हू अनन्य जन लज्जा मानैं हैं। फिर आपने श्रीस्वामीजी महाराज की अनन्यता के स्वरूप कूँ प्रकास करते भये कह्यौ कि—जैसे उत्तम कुल की पतिव्रता तो होय स्त्री, ताही अनुसार होय सत्-पती, वाकूँ जैसे तन, मन, प्रान एवं रोम-रोम ते अति दृढ़ता पूर्वक, वो पतिव्रता स्त्री भजै है, तैसेही हमारे श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के नित्यबिहार कूँ निरंतर सेवैं हैं।

काहू कै पूजा की आस काहू कैं बिषै बिलास काहू कैं उदिम श्रम ग्रह बन बास कौ ।। कोऊ महातम ग्याँन कोऊ मन धरै ध्याँन कोऊ साधन विधाँन दिन तन त्रास कौ ।। काहू कैं नामैं निरबाहु कोऊ पोथी अवगाहु कोऊ दरस कौं जाहु पै परस न पास कौ ।। पाछैं न सुन्यौं अब आगैं हूँ ह्वै है ना ऐसौ कैसौ भैया जैसो निजु महल श्रीस्वामी हरिदास कौ ।।

कोऊ तो पूजा में ही सतत अपनी आस लगाये राखै हैं, कोऊ बेचारे इहलोक तथा स्वर्गादिकन के बिषय-बिलास-लालसान में लगे रहैं हैं। कोऊ घर में, कोऊ जहाँ-तहाँ बन में जाइ-जाइ कें नाना प्रकार के उद्यम करैं हैं। कोऊ महातम, ग्यान एवं ध्यान में मन लगावैं हैं। बहुत से लोगन को अभिनिवेस नाना विधि-विधान साधनन में होइ है, याते इन सबन कूँ नित्यबिहार उपासना के ताईं ऐसो समझनो चहिये, जोकि ये लोग केवल अपने देह कूँ ही दुख दै रहे हैं। बहुत से जन नाम कूँ ही निभावैं हैं, कोऊ सतत पौथी को पाठ ही कियो करैं हैं, कितेक जन दरसन करिबे में ही अपनो संतोष मानैं हैं, किन्तु बिना साँचे प्रेम भाव के, प्रेम-स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज तें सपरस नाँइ है सकै है, याते आप स्पष्ट बोले कि—हे भाई ! श्रीस्वामीजू महाराज को अति बिसुद्ध प्रेममय एकान्त रस-बिलास निजमहल सदृस और कोऊ महल पहिले तो कहूँ सुन्यौ नाँइ और आगे हू नाँइ है सकै है। क्योंकि जा महल की यावत् संपत्ति ही, अति सरस रसीली महागूढ़-सुरत रसविलासमयी ऐसी है, जाकूँ अनादिकाल तें निहारि-निहारि, विलसि-विलसि, मत्तमुदित ह्वै, श्रीयुगल अतृप्त हुए रहैं हैं, याते या महल की ही कृपा की वांछा या भाँति अति आसक्त भरी दोऊ कियौ करैं हैं कि, निजमहल ते बाहर के समस्त सुख, बिनकूँ स्वप्न में हू नाँइ सुहावैं हैं।

श्रीवृन्दावन जो सु कृपा करैं, तौ निजसुख मनहिं समाय।
हम इनहीं की आस, अनत सुख सपने हू न सुहाय ।।

साधो भाई ऐसो महल हमारो।
निर्गुन सर्गुन वारि है जाकी कहत न वेद बिचारो।
अद्भुत रूप, रंग, रस अद्भुत अद्भुत नित्य बिहारो ।।
श्रीकुंजबिहारिन ललित लाड़िली करि राख्यौ उर हारो ।।

श्रीहरिदास प्रसन्न बिना ऐसौ कौंन हमें परसाद दिवइया।
लोभहि कांनि कनाँवड माँनत धीरज काहि जु धर्म खिवइया ।।

श्रीबिहारिनिदासि उदासि फिरैं जग लोग सबै दिन दांम लिवइया।
वृत नेम निषेध न वित्त छुवै अनन्य सबै रस प्रेम पिवइया ।।१३।।

अनन्य नृपति श्रीस्वामीजू महाराज के प्रसन्न हुए बिना, ऐसो अति विसुद्ध प्रेम-विलास-रूपी अद्भुत प्रसाद देबेवारो जगत में है ही कौन ? क्योंकि सबन के प्रान कछु न कछु और-और सुख स्वादन में ही अधीर होइबे के कारन सर्वोपरि नित्य-बिहार रस की अनन्य उपासना कूँ अपने हृदय में धारन ही नाँइ करि सके हैं। याही ते साक्षात श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्यदास सबन सों उदास रहैं हैं।

बहुत से लोग अपने इष्ट ते हू, सुख-स्वादरूपी स्वार्थ की आसा राखैं हैं, याते अनन्यजनन के आगे बिनने लज्जित होनो परै है। उत्तमकुल की पतिब्रतावत दृढ़ रसिक अनन्यजनन के हृदयकमल कूँ तो नेम, ब्रत, विधि-निषेध एवं समस्त प्रकार को सुख-स्वाद आदि स्वार्थ रूपी, प्रेम-विरोधी वस्तु सपरस हू नाँइ करि सकैं हैं। वे सदाकाल केवल प्रेमरस कूँ हीं पियो करैं हैं।

श्रीहरिदास चरन रज रति, मेरे मन मति नाँहिन गति आँन।
बहुत जनम भ्रम्यौं ऊँच नीच जल थल बसि सोधे सबै सयाँन ।।
वरन-आश्रम गुन कर्म बंधे निरनौं पायौ सुनि वेद पुराँन ।।
श्रीबिहारिनिदासि आस परिपूरन कृपा करी दृढ मन मति माँन ।।१४।।

श्रीस्वामीजू महाराज के चरन-कमलन के रज की एकमात्र प्रेम-रति के अतिरिक्त, मेरी और कोऊ गति ही नाँइ है। हमने बहुत से जन्म ऊपर नीचे के लोक एवं जल-थलन में भ्रमन करि-करिकें बिताय दीने और अनेक सयानेन की बातन कूँ हूँ सोधि-सोधि कें देख्यौ, वेद पुरानन को निर्नय सुनि, वरनाश्रम धर्म के गुन, कर्मन में बँध्यो डोल्यौ, जब श्रीस्वामीजी महाराज ने साँची कृपा मोपै कीनी, तब हमारी आसा परि-पूरन होइ, मन दृढ़ता पूर्वक आपकी ही सरन कूँ मानि गयो।

सब विधि दीन अधीन भए हरि मन क्रम वचन कृपा करि देवो।
जैसे और जंजाल काल बस इहाँ कछु कठिन न कष्टहि खेवो ।।
श्रीविहारिनिदासि भयैं सुख माँनत इक गुन अर्प सहस गुन लेवो।
सुनियतु नाँहि कछु जतन जगत में श्रीहरिदास चरन रज सेवो ।।१५।।

श्रीस्वामीजी महाराज ते प्रार्थना करते भये आपने कह्यौ कि—मन, क्रम, वचन

यावत प्रकार ते मृतक सदृस मैं अति दीनातिदीन हूँ, कारन न तो मेरे बुद्धि, ग्यान-बल ही है, न धन, जन को ही है, मैं अपनी स्थूल-झीनी बासनान कूँ कैसे हू नाँइ मिटाइ सकूँ हूँ। आपके अतिरिक्त इहलोक, परलोक में मेरो कोऊ रक्षक नाँइ है। समस्त रीति-भाँति सों मैं एकमात्र आपके ही आधीन हूँ, यदि आपकी लवलेस मात्र हू कृपा मोपै है जाय तो, या दुस्तर माया सागर ते-सहज पार होइ, अदभुत सुखदाई श्रीचरन-कमलन कूँ अनायास प्राप्त करि लऊँगो। जैसे काल बस लोग, और-और उपायन के जंजाल में फँसि रहे हैं, तैसे आपके धर्म एवं सरन में न तो काहू प्रकार की कठिनता ही है न निभाइबे में कोऊ कष्ट ही है, क्योंकि आप सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी जू के साँचे अनन्यदास हैबे पै ही अति प्रसन्न है जाओ हो। यह एक गुन अर्पन करिबे ते ही आपके समस्त गुन-आश्रित कूँ अनायास प्राप्त है जाइ हैं।

फिर आप कृपा में विवस, निज आश्रितन ते आज्ञा करते भये बोले कि—हे भाई! नित्यबिहार प्राप्ति के ताईं श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की रज कूँ अनन्य भाव ते सेइबे के अतिरिक्त जगत में और कोऊ उपाइ नाँइ हैं।

श्रीहरिदास चरन चिंतन बिनु और कहा कलिजुग में हेतु।
कलपतरु फल फूल प्रेम भरु सनमुख भयैं अभैं कौ देतु॥
अरु कृपन काहू कछु पूछत भटकत फिरत विषै विष लेतु।
श्रीबिहारिनिदास दिन दरस परस रस आलस बिन पइयतु चित चेतु॥१६॥

श्रीहरि की भक्ति प्राप्त करिबे योग्य, यावत जुगन ते अद्‌भुत प्रभावसाली केवल कलियुग ही है, तामें हू सर्वोपरि नित्यबिहार प्राप्ति के ताईं, श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की अनन्य सरनागति के बिना, और कोऊ साधन हित करिबेवारो हो ही नाँइ सकै है, क्योंकि कल्पवृक्ष की नाईं साधक के सरन आइबे पै ही, अपनो निज-प्रेम-रूपी फल दै, समस्त रीति-भाँति सों अभय करि निहाल करिबेवारो, जगत में है ही कौन? तौहू छुद्र, स्वार्थी, कृपन लोग, इत-उत माऊँ भटकि-भटकि कें, केवल जहर सदृस विषयन कूँ ही संग्रह करते डोलैं हैं। सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी जू के अनन्य दास तो, अपने चित्त में नित्यबिहार रस कूँ ही सतत दरस-परस करते भये, आलस कूँ त्यागि, निरंतर अनुरागी हुये रहैं हैं।

तौलि मैं तौलि तयौ फिरि ताय कस्यौ कसु लाइ जु चित्त चह्यौ।
सब ही श्रुति कौ सुख सारु बिहारु सिंगार सुमेर सु गाढौ गह्यौ॥

अनन्य सबै अनुकूल हमैं प्रतिकूलन जानि सल्लिलु सह्यौ।
श्रीविहारी-बिहारिनिदासि लडाइलै श्रीहरिदास कह्यौ सु काहू न लह्यौ।।१७

जो सर्वोपरि नित्यबिहार-रस श्रीस्वामीजू महाराज ने जगत में प्रगट होइ कह्यौ, ताकूँ कोऊ लहि ही नाँइ सक्यौ। हमने तौलेभये रस-देसन ते हू तौलि, ताये भयेन ते हू ताय, समस्त रीति-भाँति सों कसि, अपने चित्त में भलीभाँति सोच-समझि, देखि-बिचारि कें ही धारन कीन्यौ है। यह रस यावत श्रुतिन के सुख को हू सार, सुमेरु पर्वत की नाँई सबते ऊँचो, शृङ्गार-रस को हू मुकुट-मनि है। जो महा बड़-भागी जन या रस के ही दृढ़ अनन्य हैं, वे तो सब हमें अनुकूल लगें हैं, जो इत-उत माऊँ के धर्म एवं धर्मीन की नेक हू सलल्यता सहि जाँइ है, बिन सबन कूँ हमारे धर्म के प्रतिकूल समझो? याते मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ लड़ाइ-लड़ाइ लाड़ में भरे रहौ।

श्रीहरिदास अनन्य कौ लौंडा कहाइ कैसे काहू और पै जाँचों।
तौ ब्रत-हीन मलीन कहैं सब साखि सही सतसंगति बाँचों।।
अघट भंडार बिहार बिचार सिंगार सुजसु लै काहे न साँचों।
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि विस्वास विलास सदा रस रंग में नाँचों।।१८।।

तुमहीं अपने मन में भलीभाँति सोचौ कि–जब श्रीवृन्दावन की राजरानी स्वयं श्रीनित्यबिहारिनीजू ही, श्रीस्वामीजी महाराज के, सतत ऐसे आधीन रहैं हैं, जैसे खेल-खिलारी के बस होइ है। ऐसे रसिक-अनन्यसिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज को बालक होइकें मैं अब काहू के द्वार पै जाइ, कैसे जाँचना करि सकूँ हूँ? यदि ऐसो करूँगो तो, मोकूँ अनन्यव्रत ते हीन एवं मलीन, सब महतजन कहेंगे। या बात कूँ, अनन्यन के सतसंग में तुम भलीभाँति बिचारि,परामर्स करिकें देखि लेउ। श्रीस्वामीजी महाराज को ऐसो अद्भुत अघट्ट, अगाध भंडार जो और-और यावत परमार्थन कौ सार, सुमेरु सदृस सिंगार स्वरूप सर्वोपरि निरवधि नित्यबिहार-रस है, फिर ऐसें साँचे सुजस कूँ हम-तुम क्यों नाँइ लेवें। याते हे भाई! श्रीबिहारी-बिहारिनी एवं श्रीस्वामीजी महाराज को दृढ़ विस्वास करिकें बिनके महाबिचित्र बिलास-रस-रंग में सदाकाल निर्भय होय के नाचो।

जहाँ तहाँ दीन अधीन दुखी जन देखि तिन्हैं न कहूँ मन दौरैं।
श्रीबिहारिनिदासि विस्वास बढ्यौ जित नित्यबिहार भजैं सिरमौरैं।।

बसैं बन वृन्द विनोद करें न डरैं अविरोध गहैं ठिक ठौरैं।
अनन्य भजन लजाइ हौं जौ श्रीहरिदास को नारि नवाइहौं औरैं ।।१९।।

याही प्रसंग में आपने और हू कह्यौ कि जहाँ-तहाँ सबठौर दीन, अधीन एवं दुखीजन ही देखिबे में आवें हैं, तिनके माऊँ देखि-देखि हमारो मन कहूँ दौरे ही नाँइ है, याही ते श्रीस्वामीजू महाराज के चरन-कमलन में और हू अधिक विस्वास हमारे मनमें बढ़ि, समस्त परमार्थ देसन को सिरमौर नित्यबिहार कूँ मनभामतो हम भजन करें हैं। काहू ते नाँइ डरि, रसमय निजमहल श्रीवृन्दावन में निर्विरोध-निरंतर हम बसें हैं, तथा अपने रस-सिद्धान्त, रहनी, रीति अनुसार निज ठौर पै बैठे-बैठे, अति सरस रसीले बिनोदन कूँ सतत बिलस्यौ करें हैं। याते श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन में नवायो भयो अपने माथा कूँ, और काहू के आगे नवाऊँगो तो, अनन्य भजन को ही लजाइबेवारो मैं होऊँगो।

कोऊ विद्या विधि वेद बँध्यौ बल कोऊ धन धर्म कर्म कृत पास।
कोऊ जम नेंम कोऊ ब्रत संजम कोऊ जप तप कोऊ भ्रमत उदास ।।
कोऊ कातिक अगहन मकर सीत सहि कोऊ बैसाखीग्यास उपास।
संतत सुखद बिहारिनिदास कैं श्रीहरिदास से श्रीहरिदास ।।२०।।

कोऊ तो विद्या, वेद, विधि-विधानन में,कोऊ धन,धर्म,कर्मकांड आदि कार्यन के पास-जालन में जैकड़ रहे हैं। कोऊ जम-नेम, संयम-व्रत तथा जप-तप आदिकन में, कोऊ-कोऊ उदासीन पथ में ही भ्रमते डोलें हैं, ऐसेही कोऊ कातिक, अगहन, मकर-संक्रान्ति के सीत कूँ ही सेवन करें हैं। कोऊ बैसाखी, निर्जला एकादसी व्रत आदिकन कूँ करें हैं। इन समस्त कष्टप्रद-साधनन ते, अति दूर, संतत सुखदाई सर्वोपरि नित्य-बिहार के उपदेष्टा श्रीस्वामीजी महाराज सदृस, श्रीस्वामीजी ही हैं।

स्वामीजी से स्वामीजी, बिहारीजी से बिहारीजी।
औरनि ते आँखि मूँदि, इनहि निहारीजी ।। —श्रीस्वामीमोहनीदेवजू

तो कहा सिधि लोभिनि कैं उपदेस सकांम भजै श्रमु बादि कियौ।
दुहूँ विधि हाँनि गिलांनि तन मन कुंजर सोच असोच छियौ ।।
श्रीविहारिनिदासि ह्वै आलस हू तैं इन्हैं मन नैकहुँ क्यौं न दियौ।
त्रिन तुल्य गनें त्रैलोक की संपत श्रीहरिदास अनन्य बिना न बियौ ।।२१।।

सकामी लोभी जनन के उपदेस सों, कहा सिद्धि होइ सकै है, क्योंकि सकाम भजन करिबे ते तो, बिसुद्ध भक्ति की प्राप्ति में हानि, एवं श्रीगुरुन के मन में ग्लानि ही होइ है, फिर तुम्हारो भजन हाथी के स्नान सदृस ही होयगो। याते इन लोगन ने श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्य दास होइ, आलस कूँ त्यागि, बिनके ही श्रीचरनकमलन मैं सांचो मन क्यों नाँइ दीन्यो, जासों ये ऐसे निस्प्रेही है जाते, जो त्रैलोक्य की समस्त संपत्तिन कूँ, तिनका के बराबर हू नाँइ गिनते।

श्रीहरिदास रसिक अनन्य बिनु का पै परत बिहार बखान्यौं।
कर्म ग्यांन और भक्ति ब्रज विभो वाकस छांडि मधुर रस छान्यौं॥
साधक सिद्ध प्रसिद्ध प्रसंसित जहाँ तहाँ सब जग जस जान्यौं।
ललिता रूप पलटि प्रगटे श्रीबिहारिनिदासि कृपा पहिचान्यौं॥२२॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि–काहू महत्पुरुष के सरन जाइबे ते ही, साधक, त्रिलोकी की समस्त संपत्ति कूँ तृनवत् समझिबे योग्य है सकै है, फिर आप एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के सरन जाइबे के ताईं ही जोर काहे कूँ देवैं हैं, ताकूँ लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि–हे भाई! निज प्रेमावतारी अनन्य-नृपति श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त, जगत में सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूँ कोऊ बर्नन करि ही नाँइ सकैं हैं, कारन कर्म, ग्यान, भक्ति तथा व्रज-रस पर्यन्त के बाकसन कूँ छाँड़ि, महामधुर-सार-रसमय, निपट नित्यबिहार कूँ छानि, आपने ही बर्नन कीनौ है। जाकूँ समस्त सिद्ध, साधकन ने बड़े हुलास में भरि, भूयो-भूयो आपकी प्रगट प्रसंसा कीनी है, या बात कूँ यावत परमार्थ जगत भलीभाँति जानैं हैं।

अर्थात जैसे जगद्गुरू श्रीस्वामी रामानन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के अन्तर्गत श्रीस्वामी अग्रदासजी महाराज ने स्वामीजी कूँ स्पष्ट प्रेमावतारी बर्नन कीनौ है।

नमो नमो श्रीहरिदास वृन्दाविपिन वास वर प्रान सर्वस बाँकेविहारी।
स्यामा-स्याम जुगलरूप माधुर्य के रसिक रिझवार प्रेम अवतारी॥

तैसे ही आपके कृपापात्र श्रीनाभाजी महाराज ने हू यावत रसिकन में रसिकता की छाप एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की ही बताई हैं।

आसुधीर उद्योत करि रसिक छाप हरिदास की।

ऐसे ही श्रीगौड़ेस्वर संप्रदाय के अन्तर्गत भक्तमालजी के टीकाकार श्रीप्रियादास जी महाराज ने हू कथन कियो है कि–समस्त रसिक भक्तन की गणना में रसिकता की

छाप केवल श्रीस्वामीजी महाराज की ही पाई गई है।

स्वामी हरिदास रस रास को बखान सकै, रसिकता छाप जोई जाप मध्य पाईये।

समकालीन रसिक सिरमौर श्रीव्यासजी महाराज ने तो यावत रसिकन के मध्य में चौरैं गाइकैं कह्यौ कि–पृथिवी मंडल की तो कहा चलाई, आकास में हू ऐसो रसिक आज ताऊँ न तो कोऊ भयो, और न आगे कोऊ है सकै है, याते भक्त समाज ते लैकें रसिकन पर्यन्त समस्त अनन्यन के श्रीस्वामीजी महाराज नृपति स्वरूप हैं, आपके अतिरिक्त सर्वोपरि नित्यबिहार-रस कूँ गाइबेवारो और कोऊ नाँइ हो।

अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदास।

× × ×

ऐसो रसिक भयौ ना ह्वै है भूमंडल आकास।

× × ×

बिहारहिं स्वामी बिनु को गावै।

याही भाँति महाप्रभु श्रीबल्लभाचार्य संप्रदाय-अन्तर्गत समकालीन श्रीगोविन्द स्वामीजू ने आपके स्वरूप कूँ सर्वोपरि निरूपन करते भये कह्यौ कि–श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के महल की निज रस-रीति अनन्य उपासना कूँ निसंकता पूर्वक डंका बजाते भये श्रीस्वामीजी महाराज ने ही जगत में प्रबाहित कीनी है। जा उपासना के पथ के हू पथ कूँ स्वयं वेद एवं महामुनि आदिकन कूँ प्राप्त नाँइ होइबे के कारन, आज-ताऊँ जके-थके से ही रह गये हैं।

जा पथ कौ पथ लेत महामुनि मूंदत नैंन गहैं नित नाकौ।
जा पथ कौ पथ लेत हैं वेद लहैं नहिं भेद रहैं जकि जाकौ॥
सो पथ श्रीहरिदास लह्यौ रस-रीति की प्रीति चलाय निसाकौ।
निसाननि बाजत गाजत गोबिन्द रसिक अनन्यनि कौ पथ बाँकौ॥

हितकुल भूषन श्रीध्रुवदासजी महाराज ने हू वर्नन कीनौ है कि–श्रीस्वामीजी महाराज सर्वोपरि नित्यबिहार-रस कूँ गाइ-गाइ कें सतत प्रेम-रस में भीजि, सघन निकुंज श्रीनिधिवनराज में बिराजमान होय, श्रीयुगल की केलि कूँ सतत अवलोकन कियो करते।

श्रीस्वामी हरिदासजू, गायो नित्यविहार।
सेवा हू में दूरि किये, बिधि निषेध जंजार॥
सघन निकुंजनि रहत दिन, बाढ्यौ अधिक सनेह।
एक बिहारी हेत लगि, छाँडि दिये सुख देह॥

रंक छत्रपति दुहुन की, धरी न मन परवाह।
रहे भीजि रस प्रेम में, लीनें कर करवाह॥

श्रीहितकुलभूषन वृन्दावनदास श्रीचाचाजी महाराज ने बर्नन् करते भये कह्यौ कि–श्रीस्वामीजी महाराज ने ऐसी अद्भुत महा रसमय "केलिमाल" बनाई, जाकूँ स्वयं श्रीबिहारी-बिहारिनीजू बार-बार, हुलसि-हुलसि, बिलसि-बिलसि, प्रसंसा के रस-रंग में भीजि लटपटाइ, अंग-संग गाइ-गाइ कें सुख लेवें हैं। कुंज-कुंज की ऐसी महागूढ़ रसमाधुरी के रहस्य कूँ श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते विहीन कोऊ कहि ही नाँइ सकें हैं। जो लोग थोरे-बहुत कछु कहैं हैं, बिनकूँ ऐसो समझो, मानों बावरेन की नाँई वृथा ही बकैं हैं।

नव-नव क्रीड़ा रतन मृदुल हित डोर सुहाई।
रसिक सुघर हरिदास केलि कल-माल बनाई॥
बिहारी-बिहारिनि हुलसि बिलसि बतरस रंग भीने।
लटपटात अंग-अंग संग गावत सुर लीने॥
कुंज-पुंज रस माधुरी गूढ़ रहसि को कहि सकै।
श्रीस्वामी की कृपा बिना वृथा बावरौ सो बकै॥

श्रीभक्तमाल की टिप्पनी में किन्हीं महत्पुरुषय ने श्रीकेलिमालजू की प्रसंसा वर्नन करते भये कह्यौ कि–जैसे कोऊ अति बिचित्र रसमय कलपवृक्ष, नीचे ते लेकें ऊँपर ताऊँ फलन ते फलित है रह्यौ होय, तैसे ही श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीमुख-कमल ते गूढ़-रहस्यमय अति झीने रस के फल स्वरूप पद, ऐसे उदित भये हैं, कि जिनमें लीला महात्तम स्वरूप बकुल-बीज लेसमात्र हू नाँइ है। अति श्रेष्ठ विसुद्ध बिहार-माधुरी के हू सार को सार-स्वरूप महामाधुरी की नवनवायमान अनुराग-सागर में लहरें छिन-छिन अनन्त ऐसी उठें हैं, जोकि स्वयं श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के हृदयकमलन में आसक्ति-सागर कूँ उमड़ाइ-उमड़ाइ कें अद्भुत रसविलास-सुख बिलसावैं हैं।

महा मिही रस के फल फलित भये कल्पद्रुम, ऐसे श्रीस्वामी हरिदासजू के पद हैं।
जामें न बकुल बीज लीला ओ महातम के, वर विहार माधुरी के सार को जु सद हैं॥
दंपति आसक्तताई प्रगट करत छिन-छिन प्रति, नव-रस सिंगार आदि कीने सब रद हैं।
पीवैं रसिक सोई जाकौ न सुहात और, दंपति वस करिबे कौं मादिक वेहद हैं॥

ऐसे हो आपने श्रीस्वामीजी महाराज के अद्भुत स्वरूप कूँ वर्णन करते भये कह्यौ कि–दिव्यातिदिव्य-समस्त रसन कौ सार-स्वरूप-रूप, तामें अनंत भावन की विचित्र तरंगन ते तरंगायित प्रेम-सुधा-सिंधु आपके श्रीहृदयकमल में सतत ऐसो उमँगतो रहै है, जाकी तो कोऊ ऊपमा ही नाँइ है सकै है, जामें महाविचित्र सुख को ही निवास है रह्यौ है, और तो और सर्वोपरि श्रीस्वामिनीजू के निज महल की मानो आप साक्षात् जैसे केलि-रति बेलि स्वरूप हैं, तैसे ही महानेहरूपी फूल की हू सुगंध स्वरूप रस-रास हैं। साक्षात् आसक्ति-रीति के स्वरूप की हू आप शोभा-स्वरूप हैं, ऐसे अनंत रस-बिलासमय गुनन ते भरे-पूरे समस्त रसिकन के सिरमौर ललित बिहार पै ही वारनें होइ, श्रीहरिदास स्वरूप सों सबन कूँ बिमोहित करते भये सदाकाल सुसोभित रहैं हैं।

रूप रस सार तामें भाव की तरंग किधौं, सागर सु प्रेम सुधा सुख कौ निवास है।
महल की निकुंज केलि ताकी रति बेलि किधौं, महानेह सुमन पराग रस-रास है॥
किधौं है आसक्तिता की रीति कौं स्वरूप-सोभा, किधौं फूल आनंद कौ हरषि प्रकास है।
रसिकसेखर प्रगट हिय हेत धारी, ललित विहार वारि मोहन हरिदास हैं॥

सर्व सिरोमनि साक्षात् श्रीस्वामिनी जू के चरन-कमलन के अनन्य अनुरागी आचार्यमनि श्रीवंसी अलीजी महाराज के परम कृपापात्र श्रीकिशोरी अलीजी को मन-प्रान जब श्रीस्वामीजू महाराज के माऊँ गयो, तब आपने प्रथम श्रीस्वामीजू की कृपा के स्वरूप कूँ वर्नन करते भये कह्यौ कि-आप गत्वा-गत्वा कृपा को निज स्वरूप-निधि के साक्षात् समुद्र हैं, जब कृपा ते आपको इतेक मन भीग गयौ, तब आपके हृदय कमल में श्रीस्वामीजू कौ रसमय स्वरूप उदित भयो, जासों ऐसो अद्भुत निज-रस-बिलास को स्वरूप बताते भये आप बोले कि–श्रीस्वामीजू की महारस-रंग-भरी देखन ऐसी बिचित्र है, मानो श्रीजुगल के प्रानन कूँ अपनी रंगीली दृष्टिरूपी डोरान के झूला में ही झुलाइ रहै हैं, और महारसभरे गुनन कूँ गाइ-गाइ कें श्रीजुगल कूँ अद्भुत रीति सों रिझाइ रहैं हैं, ता रिझाइबे के मर्म कूँ समझि आप बोले कि–श्रीस्वामीजी महाराज तो यावत् रसिकन के चूरामनि ही हैं, इतेक हू नाँइ, स्वयं श्रीस्वामिनीजू ने ही दूजो स्वरूप धारन करि, श्रीनिधिवनराज में बिराजि, जगत में रसिकता की श्री-सोभा कूँ इतेक विसाल उजागर कीनौ है, जाकूँ कोऊ कहि ही नाँइ सकै है।

श्रीहरिदास कृपानिधि सागर हैं।
निसिदिन नैननि के डोरनि सों, झुलवत नागरि नागर हैं॥

सरस गान करि रिझवत दंपति, सब रसिकन तें आगर हैं।
ललितकिसोरी बिजै रूप धरि, निधिवन वास उजागर हैं॥

ऐसेही अनेक महानुभावन ने श्रीस्वामीजी महाराज के महाबिचित्र रसमय-गुन-जसन कूँ मन भरि-भरि कें बड़ी उमँग ते भूयो-भूयो गाये हैं, जिनमें कछु तो महानुभावन के बचन या समै उपलब्ध नाँइ हैं, कछु महत्पुरुषन के बचन लिपी में नाँइ आये हैं, और सब महतन के बचनन कूँ जानिलेबो हू अति कठिन है। बास्तविक सर्वोपरि बात तो यह है कि—अगाध-सागर की थाह कूँ भलै ही कोऊ लै सकै, किन्तु रसिक-सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज के गुन-जसन को ओर-छोर कोऊ कैसेहू नाँइ पाय सकै है।

कहनि सकुच जिय होत मेरे एक मुख करि क्यौं भनैं।
जो रोम प्रति रसना सहस, तौऊ जात ना गुन-गन गनैं॥
हरिदास रूप सुयस अपरिमित, पार क्यौं करि पावहीं।
यह चपल मन अवलंब हित, सखि सील चरनन ध्यावहीं॥

फिर चौथी तुक में श्रीस्वामीजी महाराज को निजस्वरूप बताते भये श्रीगुरुदेवजू बोले कि—स्वयं श्रीललिताजू ही, अपनो निज वपु श्रीहरिदास स्वरूप सों या धराधाम पै प्रगट भई हैं,या बातकूँ बिनकी कृपाते समस्त रीति-भाँतिसों हमने पहिचान लीन्यौ है।

कर्म धर्म भक्ति मुक्ति इती मरजादहि को टरि है।
अंस कला अवतारन, लखे ब्रज के रस सिंधुहि को तरि है॥
रस-रीति सौं प्रीति प्रतीति यहै श्रीबिहारिनिदासहि जो बरि है।
जिनकैं सुख-सार बिहार सही सरि श्रीहरिदास की को करि है॥२३॥

याही प्रसंग में श्रीगुरुदेवजू ने और हू कह्यौ कि—जिन श्रीस्वामीजू महाराज कें समस्त रसन के सुख को हू सार-स्वरूप एकमात्र निपट नित्यबिहार की ही सही उपासना है, तिनकी समता परमार्थ जगत में करि ही कौन सकै है? कारन प्रथम तो कर्म-धर्म, भक्ति-मुक्ति की ही मर्यादा इतेक दृढ़ हैं, जिनकूँ त्यागिबो, अति कठिन है। तामें हू अंस, कला, अवतारन ते सम्यक प्रकार मन हटाइबो, और हू अति दुस्तर है। फिर श्रीव्रजरस-देस के अति सरस रसीली तरंगन ते आज ताऊँ कोऊ पार जाइ ही नाँइ सक्यौ। अर्थात जितेक ऊँचे ते ऊँचे, परमार्थी महतजन जगत में भये हैं, तिन सबन ने ब्रजरस-सागर के ही सुख-सिन्धु में अपने तन, मन, प्रानन कूँ निमग्न कीनौ है,

उपरोक्त समस्त रस-देसन ते हू अति दूर, निपट नित्यबिहार रसरीति के प्रगट करिबेवारे, श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन ते जिन बड़भागी जनन ने दृढ़ अनन्य संबंध बाँध्यौ है, बिनकी ही नित्यबिहार रस सों साँची प्रीति, परतीति हम समझैं हैं।

नित्य सर्वोपरि बिहार बृंदाविपिन सकल सँदेह गत ग्रंथ नँसो। जै श्री बरु बिहारिनिदासि हरषि गावत सुजस सेष श्रुति थकित श्रीमुख प्रसँसो।। और स्थूल सूक्ष्म घनें को गनें सबै जानें कला अँस अँसो। जै श्री बिपुल बरराज रस-रीति के रसिक धनी हम अनन्य श्रीस्वामी हरिदास बँसो ।।२४।।

यावत धाम-धामी, एवं परमार्थ रसन ते अति दूर, नित्यस्वरूप सों, श्रीवृन्दावन को सर्वोपरि नित्यबिहार ऐसो अति अद्भुत है, जाकूँ समझिबेमात्र ते ही, हमारे हृदय के सन्देहन की समस्त ग्रन्थि भलीभाँति नष्ट है गई हैं। जय हो, जय हो सर्वश्रेष्ठ श्रीनित्यबिहारनिदासी श्रीस्वामीजू महाराज की, जो सदाकाल अति उमंग में भरि नित्यबिहार के अद्भुत जसन कूँ ऐसे गावैं हैं जिनकूँ सुनि, सेष, श्रुति तो थकित है जाइ हैं, स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज प्रसंसा करते-करते फूले नाँइ मावैं हैं। तब स्थूल-सूक्ष्म, कला, अंस-अंसी स्वरूपन की तो गिनती ही कौन करै। या प्रकार की अति बिचित्र रस-रीति के रसिक एवं धनी श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू हैं, बिनके ही कृपा-पात्र, हम अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज के बंसी समस्त जगत में विदित हैं।

तिनहीं के प्रताप प्रसन्न भये सब संत सजातिनि साधु कियौ। श्रीवृन्दावनधाँम हुते मन काम सुजसु लै नाँम श्रवन पियौ।। करि ग्याँन निदान सुजान सही श्रीबिहारी बिहारिनिदास हियौ। हौं पढ्यौ न गुन्यौं न सुन्यौ न कछू मोकौं श्रीहरिदास कृपा कै दियौ ।।२५।।

श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा-प्रताप ते ही, सब सजातीय संतन ने अति प्रसन्न होइ, सराहना करते भये मोकूँ साधु बताय, निजमहल श्रीवृन्दावन को वास दै दीनौ। जासों मेरे मन की समस्त कामनायें पूर्न होइ, आपके नाम-गुन-जसरूपी अमृत श्रवनन द्वारा मन भाँवतो पान कियो। यद्यपि मैं न तो कछु पढ़्यौ, न गुन्यौ और न काहू पै ते कछु सुन्यौ, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने अपनी अद्भुत कृपा द्वारा—ऐसो अति उज्ज्वल-सर्वोपरि साँचो ज्ञान, मोकूँ दीनो, जासों साक्षात श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कूँ अपने हृदय में भलीभाँति बिराजमान हमने करि लीने।

राख्यौ छिडाइ कर्म के फंद तें मैं बहु चित्त हुतौ उन केरौ।
जाति बरन विभेद सबै भ्रम मिटि गयौ बिधि निषेध सो झेरौ ॥
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि विस्वास यह दृढ झूठनि सों ब्रत मेरौ।
न बांभन क्षत्रिनि सौं कछु काज हौं तो श्रीस्वामीहरिदास कौ चेरौ ॥२६॥

मेरो चित्त कर्मादिकन के फंदान में बहुत ही फँस्यौ भयौ हतो, आपने ही कृपा करिकें मोकों इन सबन ते छुड़ाय, जाति-बरन के भेद-विभेद-भ्रमन कूँ मिटाइ, बिधि-निषेध के झेरा में ते मोकूँ निकासि, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की दासता में ही, ऐसो दृढ़ विस्वास मेरो कराय दीनो, जोकि बिनकी सीत प्रसादी पाइबे को हमने दृढ़ ब्रत लै लीन्यौ है। याते बाँभन-क्षत्रीपने ते कोऊ काम नाँइ रहिकें, श्रीस्वामीजी महाराज के अब हम चेरे है गये हैं।

राख्यौ बंस बिहार कौ भू प्रगटे श्रीहरिदास।
इन बिन को उपदेसतौ इष्ट अनन्य उपास ॥
इष्ट अनन्य उपास त्रास सुनि होत सबनि मन।
साधन विविध विरोधि कियें दुख दियें कहा तन ॥
श्रीबिहारिनिदासि प्रबोधि सोधि श्रुति सुमृति भाख्यौ।
अति दुल्लभ में दुल्लभ सुल्लभ हस्तामल राख्यौ ॥२७॥

निज प्रेम-अवतारी साक्षात प्रेम-सहेली स्वरूप रसिक अनन्य नृपति चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज ने ही पृथ्वी मंडल पै प्रगट होइ, सर्वोपरि नित्यबिहार की अनन्य उपासना कूँ जगत में प्रवाहित कीनी। या प्रकार की दृढ़ अनन्य-उपासना कूँ आपके बिना, प्रगट करि, उपदेस और कौन करि सकै हो? जाकी महा-बिचित्र बाँकी अनन्यता कूँ सुनि-सुनि कें समस्त परमार्थिन के मन में त्रास होवन लगै है। या बिहार की प्राप्ति के ताईं, श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा के अतिरिक्त, और-और विविध प्रकार के साधनन कूँ करिबो, केवल अपने देह कूँ दुःख ही दैबो है, क्योंकि आपने समस्त श्रुति-स्मृतिन कूँ भलीभाँति सोधि, अति दुर्लभ ते हू दुर्लभ सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूँ निर्नय करि, सहज-सुलभ-हस्तामल मोकूँ कराइ दीनो है।

इच्छा विग्रह धरि लीला वपु सब अवतारनि पर अवतारी।
लछमीपति व्रजपति कौं दुल्लभ इनतें कौन बडौ अधिकारी ॥

नित्य किसोर निरंतर बिहरत सेवत श्रीहरिदास दुलारी ।।
ऐंडिल ऐंडाइल अरुण कमल बांके विरदनि विदित बिहारी ।।२८।।

रसिक अनन्य नृपति चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज के प्रान सर्वस्व, असेष सौंदर्य-माधुर्य निधि, अद्भुत नित्यबिहार के निज स्वरूप, समस्त उदारन के सिरमौर ललित त्रिभंगी श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज के स्वरूप कूँ बर्नन करते भये आपने कह्यौ कि—आज ताऊँ भगवत स्वरूपन के जितेक अवतार भये हैं, तिन सबन के अवतारी, महामधुर रस के हू सार-स्वरूप स्वयं श्रीबाँकेबिहारीजू महाराज, साक्षात श्रीनित्य-बिहारिनीजू के तन, मन, प्रान, रोम-रोम में अपने तन, मन, प्रान, रोम-रोम कूँ सतत ऐसे समोये रहैं हैं कि—मानो दोऊ श्रीजुगल एक होइ के ही बिराजि रहैं हैं। ताहू पै आपको इतेक अद्भुत बाँको प्रेम है कि निरंतर संयोगात्मक स्थिति में हू, विरह-वेदना के कारन रोम-रोम ते नीर झरन लगै है।

द्वै द्वै दुहूँ ओर सन्मुख निसि भोर निमिष निमेष न लगत अकुलात हैं।
खेलन को मन फूल तन न रहैं दुकूल अंग-अंग मिलि कैसे सकुच समात हैं।।
अति अद्भुत रूप गौर साँवल स्वरूप मनहूँ मनसा कापै कहे गहे जात हैं।
श्रीबर बिहारिनदास दंपति ये सुखरास, देखत दुहुन दोऊ दृग न अघात हैं।।

जदपि हुती न न्यारी कहत हा हा री प्यारी विचित्र बिहारी बंद बाहु सो कसत री। प्राननि सों प्रान सीर बाँटत होत अधीर एक ही सुर स्वाँस बिस्वास ह्वै हँसत री ।। श्रीबिहारिनिदास रोम रोमनि कहाँ लौ व्यौरो, ताफताकी मौज अति ताहू ते लसत री। चोली सी अमोली प्रीति ऐसे सुख में समीत, स्याम तन मन गोरे गात में गसत री। —श्रीगुरुदेवजू

मिलै रहत मानौ कबहुँ मिलैना।
भगवतरसिक रस की ये बातें रसिक बिना कोऊ समझि सकैना ।।
तान तरंगनि मन परचौ पिय व्याकुल बिकल अधीर।
उमड़्यौ सागर बिरह कौ रोम-रोम झर नीर ।।—श्रीस्वामीललितकिसोरीदेवजू

ऐसे महाबिचित्र प्रेम-रस बिलासी निजमहल में ही अनादिकाल सों सतत बिलास करिबेवारे श्रीबिहारीजी महाराज कृपा-बिबस निज इच्छा विग्रह-स्वरूप सों श्रीवृन्दावन निधिवनराज में प्रगट होइ, सबन कूँ दर्सन दै-दै कें निहाल करि रहे हैं, तथा श्रीस्वामीजू महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रित जनन कूँ निज रस को सतत दान

दै-दै पोषन करैं हैं, और स्वयं आप हू श्रीस्वामीजू महाराज के ऐसे दृढ़ अनन्य हैं, जो एकमात्र बिनकी ही परम-दुलारी, प्रान-प्यारी, प्रान-जीवन, सर्वस्व-निधि, सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ ही निरंतर अनन्य भाव सों दुलराइ-दुलराइ कें सेवन करैं हैं। श्रीस्वामीजू के ही प्रेम अनुराग की भर-भार सों लाड़ में भरि, ऐंडिल ऐंडाइल होइ अरुन कमल नेत्रन तें सतत सुसोभित रहैं हैं।

या प्रकार के अद्‌भुत प्रेम-स्वरूप श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज की प्राप्ति-ऐस्वर्य प्रधान साक्षात श्रीलक्ष्मीपति एवं प्रेम-प्रधान श्रीव्रजपति कूँ हू जब अति दुर्लभ है, तब बिनते बड़ो अधिकारी और कोऊ हो ही कैसे सकै है। अर्थात श्रीस्वामीजी महाराज की निज-कृपा के बिना, श्रीबिहारीजी महाराज कूँ अपने साधन एवं प्रेमबल ते कोऊ कैसे हू प्राप्त नाँइ करि सकै है।

रसिक हरिदास के बिहारी।
लक्ष्मीपति ब्रजपति अति दुर्गम रास रसिकवर सरन तिहारी।
अद्भुत धाग नित्य वृन्दावन नित्य किसोर किसोरी प्यारी।
महल निकुंजबिहार सार सुख इच्छा बिग्रह धरि अवतारी॥
बाँके बिरद बुलावत साँचे महा प्रेम अद्भुत छबि सुखभारी।
'रसिकरूप' अवलोकत सोभा श्रीस्वामीजू के अधिकारी॥—श्रीरूपसखीजी

जैसै उजक मुहर बिनु गैर सही फरमांन।
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि बिनु सब साधन श्रमजांन॥
सब साधन श्रम जांनि ग्यांन अरु भक्ति ब्रज बिभौ।
मिथ्या बिनु संजोग भोग तन करि सिंगार सौं॥
दहली जी अविताल दखल पावै कहि कैसैं।
महिलिनि सौं न पिछांन कटक भटकै सठ जैसै॥
देखि विचारि लिख्यौ जो मैं याकौ यहै प्रमांन।
जैसैं उजक मुहर बिनु गैर सही फरमांन॥२८॥

साधक समाज कूँ निर्नयात्मक सिद्धान्त बताते भये आप स्पष्ट कहैं हैं कि—हे भाई! बहुत सोचि-बिचार करिकें ही हमने यह लिख्यौ है कि—श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य संबंध के अतिरिक्त, यावत साधन ऐसे वृथा हैं, जैसे बादसाही मोहर के बिना, साक्षात सम्राट को हू फरमायो भयो हुक्म कोऊ नाँइ मानै है। तैसे ही

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य-संबंध-रूपी मुहर के बिना, ग्यान-भक्ति की तो कहा चलाई ? प्रेम-प्रधान श्रीव्रजरस के साधन हू, निज-रसरीति उपासना में काहू प्रकार सों सहयोग नाँइ दै सकैं हैं, याते श्रीजुगल के निरंतर संयोग रस के अतिरिक्त और-और साधनन कूँ सँजोइबो वृथा ही है। याही प्रसंग में और हू सावधान करते भये आपने कह्यौ कि—जैसे फौज में—बिना जान-पिछान कें मिलिबेवारे कूँ एकमात्र भटकनो ही परै है,तैसेही हमारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के निजमहल में,महलिनी स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज ते साँची जान-पिछान किये बिना केवल भटकनो ही परै है। ->

भक्त बहु जगत अभिमांन ग्यानी घनें खांन सुलतांन सरहद थानैं।
ब्रजवासी निकटि नेम खवासी कटक मैं बहुत उमराव बिरदैत बानैं॥
बिनु बिहारिनिदासि विमुख बाँकी बँधे भरत बेगारि करमठ किसानैं।
पग बँधा बाहिरो पौर दौरे फिरें महल की बात महलनी जानैं॥३०॥

जैसे चक्रवर्ती सम्राट के राज्य में अनेक पदन पै नियुक्त कोऊ खान, कोऊ सुलतान, और कितेक सरहद के थानेदार होय हैं, तैसे ही तो जगत में अनेक प्रकार के भक्त, एवं ज्ञानी-अभिमानी हैं, और कटक के बिरदैत बाने बंद उमराव स्वरूप महल के निकट में ब्रजवासी अपने-अपने भावानुसार नेम-खवासी करें हैं। साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्यदास हुये बिना किसानन की नाईं, कर्मठी लोग तो बिमुख होइ, सदाकाल बेगार ही भरचौ करें हैं, और जैसे राजा-महाराजान की पौरी पै पहरेदार या प्रकार ते नियुक्त होइ हैं कि जिनको अधिकार या ड्योढ़ी ते वा ड्योढ़ी ताईं ही आइबे-जाइबे को होय है। तैसे ही कछु भक्त, ऐसे होइ हैं जो नियमानुसार महल की ड्योढ़ी तक ही जाय सकें हैं। याते हे भाई! महल के निज-रस की बात, एकमात्र तहाँ कि निज-महलिनी ही जानैं हैं, या जो बिनकी ही कृपा ते महल की अनन्य उपासना करें हैं।

नित्य बिहार अधार दुरचौ मिहरी कैं महल टहल में आइबौ।
करम ग्यांन भक्ति मुक्ति बैकुंठ में पैठि कहाँ लगि धाइबौ॥
यहै सुनि लै ब्रज-रीति उरें रस-रीति सौं प्रीति अनन्य कहाइबौ।
विषइन के लालन पै न सरै श्रीबिहारिनिदासि उदास ह्वै गाइबौ॥३१॥

सर्वोपरि नित्यबिहार की टहल करिबे योग्य सर्वसिरोमनि सहचरी-भाव एक-मात्र श्रीनित्यबिहारिनीजू के निजमहल में ही छुप्यौ भयौ है। जाकूँ कर्म, ग्यान, भक्ति,

मुक्ति एवं श्रीबैकुंठलोकवारे हू नाँइ पाय सकैं, सो तौ ठीक ही है। मैं तुमसों साँची बात कहूँ हूँ कि–साक्षात श्रीब्रजरस-रीति हू बिनते ,बहुत उरेई रहि जाय है। जब-ताऊँ निजरस-रीति के अनन्य उपासक नाँय बनि जाओगे, तब ताऊँ वो कैसे हू प्राप्त नाँय है सकै है। तामें तुमतो विषयन के लालन-पालन में ही लगि रहे हो–जासों कोऊ काम बनि ही नाँइ सकै है। याते सबसों उदास होय, श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्यदास कहाय, केवल नित्यबिहार के ही रस-जसन कूँ सतत गाओ।

मृदु रस मिहरी के महल मिहरी यौं न समाइ।
खास खवासी खोसरा उझकत लाठी खाइ॥
उझकत लाठी खाइ धाइ छूटैं कत प्रांनी।
जो कहुं पैयै पकरि सबै सकुचैं अभिमांनी॥
नित्य बिहारिनिदासि कहत स्यामा के रस बस।
संतत स्याम अधीन दीन मन मोहन मृदु रस॥३२॥

अति उज्ज्वल तेहू अति उज्ज्वल महामृदुल-रस एकमात्र नवदुलहिनि-चूरामनि सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू के निजमहल में ही निरंतर बिराजै है। ऐसे महा उज्ज्वल रस के महल की उपासना में स्त्री-संगी लोग कैसे हू नाँइ समाय सकैं हैं, और जैसे हीजरा के मन में बिषय-बासना तौ होय है, किन्तु बिषय करि नाँय सकै है, तैसे ही जिन लोगन नें स्त्री तौ त्यागि दीनी है, किन्तु बिनके मन ते बासना नाँय गई–ऐसे लोगन कौ हू मन खास-खवासी में नेंक उझकि जाय तौ, डरतौ भयौ घबराइकें ऐसे भाजि आवै है, मानों काहू नें वामें लठिया मारि दीनी होय। यदि पकरिबे में आजाय तौ संकोच के मारें बाकूँ कहूँ ठौर हू नाँइ मिलै। श्रीनित्यबिहारिनीजू की दासी या बात कूँ कहैं हैं कि–औरन की तौ बात ही कौन कहै? या महामृदुल रस-बिलास के ताईं साक्षात् श्रीलालजू हू अति लालायित होय सतत दीन अधीन ही बने रहैं हैं।

लागत मोहि कटुक सबै सुख साधक बाधक कोटि कहौ लरि।
प्रेम सुधारस प्याइ सजीवनि आपुन ही भ्रम जाँनि हरचौ हरि॥
दासि पिछानि प्रसाद दियौ श्रीकुंजबिहारिनि-बिहारी कृपा करि।
पूरि रह्यौ सुख सिंधु तनैं मन में न समाइ कछु रति यों भरि॥३३॥

यदि साधक समाज तथा बिरोधी लोग लरि-लरि के हू चाहे कोटिक बात कहौ, मोकूँ तो नित्यबिहार रस के अतिरिक्त और-और यावत सुख करुबे ही लगैं हैं।

श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनीजू ने मोकूँ अपनो निजदास समझि, अद्‌भुत कृपा करि प्रेम-सुधा रस-रूपी संजीवनी पिवाइ, मेरे समस्त भ्रमन कूँ दूर करि दीन्यौ है। वह अति सरस रसीलो महाबिचित्र सुख-सिंधु मेरे तन, मन, प्रान, रोम-रोम में ऐसो भरि रह्यौ है जो और काहू प्रकार को सुख रत्तिभर हू नाँइ समाइ सकै है।

जप संजम नेम निषेध बिधी ब्रत तो लगि जौ परस्यौ न हिया।
पुनि पावत ही सुख स्वाद कछू बिसरे सुख देह किया न किया॥
श्रीबिहारिनिदासि मनोहर को सुख सर्वसु लै हित हाथ दिया।
कोऊ कैसीयै कोटि कहो मुंख की मन प्रेम तो नेंम रहै न भिया॥३४॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि प्रेम-सिंधु पाइ के हू कछु व्यौहार तथा और-और परमार्थन कूँ हूँ साधि के चलनो चहिये, तापै आपको कथन है कि–जप, तप, नेम, व्रत, बिधि, निषेध में तब ताऊँ ही कोऊ चलि सकै है, जब ताऊँ हृदय कूँ प्रेम सपरस नाँइ करै है। प्रेम को कछु हू सुख-स्वाद प्राप्त है जाइ तो वे प्रेमीजन और-और समस्त सुखन कूँ भूलि, देह की क्रियान की हू ऐसी सुधि नाँइ रहै है, जो कहा कीनौ, कहा नाँइ कीनौ ? श्रीस्वामीजी महाराज ने अपनौ सर्वस्व, मनहरन श्रीजुगल कौ सर्वोपरि सुख बड़े हित सों मोकूँ दै दीनौ है। याते हे भाई ! मुख की कोऊ कोटिक बात क्यों न कहौ, यदि मन में प्रेम होइ तौ नेम रहि ही नाँइ सकै है।

पिता-सुत-बंधु कहा सनबंध सबै जग अंध न गंध सुहातौ।
कहा बसैं गाउँ कहा लियैं नांउँ लहै नहिं ठांउँ फिरै बिलखातौ॥
श्रीबिहारिनिदासि सुहाग बिना जु सिंगार कौं भारु छिया करि हांतौ।
लालच गोद लियो सुत सौति कौ प्रेम बिना न बिराजत नातौ॥३५॥

हे भाई ! इहलोक-परलोक दोनों में ही प्रेम के बिना कोऊ नातो होइ ही नाँइ है। माता-पिता, सुत-बन्धुन कौ नाता केवल अज्ञानी-जन ही मान्यौ करैं हैं। तिन संबंधन की तो हमें गंध हू नाँइ सुहावै है। प्रेम-विहीन जन तो चाहै धाम में बसौ, चाहै रात-दिन नाम रटौ, प्रेम-देस में तो बिन्हें कहूँ ठौर नाँइ मिलि सकै है। श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन ते अनन्य प्रेम-संबंधरूपी सुहाग सों सुसोभित हुए बिना, नित्यबिहार साधनरूपी श्रृङ्गार साधक को एकमात्र भार-स्वरूप ही है। जैसे जगत में पुत्र के लालच ते स्त्री अपने पति से ही पैदा भयो सुंदर-सुसील सौति के बेटा कूँ हू गोद लेवै तौहू निज-जायौ सहस हृदय में प्रेम कौ साँचो नातो उदय नाँइ

होइ है। ऐसे ही श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन ते दृढ़ अनन्य-प्रेम-संबंध हुए बिना सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारीजू अपनो नाँइ मानैं हैं। अर्थात्–या प्रसंग ते सिद्ध भयो कि–प्रेम के बिना कहूँ सुख की गंध हू नाँइ प्राप्त है सकै है। याते प्रेम कौ निजमूल स्वरूप केन्द्र सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ अपने प्रानन के हू प्रान बनाइ, बिनके ही गुन गाइ-गाइ, अद्भुत अगाध सरस रसीले सुख समुद्र में निमग्न ह्वै अमर है जावो।

आदर कोटि निरादर से निजु प्रेम सौं गारि दियै दुलरैहौं।
छाँडि चलौं बिनु प्रेम छहौं रस प्रेम की आस उपास अघैहौं ॥
श्रीबिहारिनिदासि कैं प्रेम प्रधान निदान कै प्रान प्रिया गुन गैहौं।
प्रेम की बात प्रसन्न रहै मन प्रेम बिना सु प्रसाद न पैहौं ॥३६॥

प्रेम के बिना कोटिक आदर हू हमें निरादर से ही प्रतीत होय हैं और यदि हृदय में प्रेम है तौ हमें गारी हू दुलार मालुम परै है। प्रेम ते बिहीन अनेक प्रकार के षटरस भोजन हू यदि कोऊ हमें पवानौ चाहै, तौहू हम बिनकूँ छाँड़ि कें चले जाँय हैं। और जहाँ प्रेम की आसा होय है, वहाँ उपास हू करते भये हम अघाये सहस रहैं हैं। वास्तविक निदान बात ये है कि–हमारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के दासन के मन में सहज सुभाव सों एकमात्र प्रेम की ही प्रधानता होय है। प्रेम ते ही श्रीस्वामीजू के रसभरे गुनन कूँ हम सतत गायौ करैं हैं। प्रेम की तौ बातन ते ही हमारौ चित्त बड़ौ प्रसन्न रहै है और प्रेम के बिना अति सुन्दर प्रसाद हू हम नाँय पावैं हैं।

काहे कौं जाँइ खाँइ ताकें घर बाढै रोग रहैं वरु भूखौ।
श्रीबिहारिनिदासि सतभाइ सलौंनों श्रद्धा देइ गास गहि सूखौ ॥
तेरैं प्रीति न विपति हमारैं सांच कहौं सुख लहौं कि दूखौ।
कहा मानस कहा नाज सराहियतु देखत बुरौ अलौनो रूखौ ॥३७॥

प्रेम-बिहीन लोगन कें घर जाइकें हम खावैं ही काहे कूँ, जासों मन में रोग और बढ़ि जाइ, वाते तो भूखो ही रहिबो अच्छो ? श्रीबिहारीदासन कूँ तो साँची-श्रद्धा-भाव ते दियो भयो, रूखौ टूक हू सलोनौ सुन्दर लगै है। जब देबेवारे को तो प्रीति नाँइ है, हमारे कोई ऐसी बिपत्ति नाँइ है, फिर तुमही बताओ ? कि वा टूक कूँ सुख सों लेवैं, या दुःख सों। मानव तथा अन्न की सराहना कहा करिबो, प्रेम ते बिहीन सुन्दर भोजन हूँ हमें तो अलौने, रूखे और बुरे लगैं हैं।

आँन किसान दिवांन चलै चपि चौंकत चाहत दै दिन दामी।
कर्म कुबोजु बयौ विषु लै लुनि भूमि बिगारि भजैं बदनामी॥
श्रीबिहारिनिदासि बिना ललिचाहि न संग समाहि न समित्त सकामी।
बसैं बन वृन्द विनोद करैं न टरैं अमनेंक अनन्यइ नामी॥३८॥

जैसे दिवानजी के आइबे पै किसान लोग चपिकें छुप जाँय हैं, तैसे ही श्रीभक्ति महारानी के अद्भुत प्रभाव-प्रताप के आगे कर्मादिक दबि जाँय हैं। याते साँचे श्रीबिहारीदासन के सत्संग ते अतिरिक्त हमारो मन और कहूँ ललचावें ही नाँइ हैं। सकामी लोग हमारे संग में समाइ ही नाँइ सकें हैं। या बात के हम नामी अनन्य हैं कि श्रीवृन्दावन में बिनोद करते भये अपने निज रस-रूपी धर्म-सीमा ते कबहूँ नाँइ टरें हैं।

कोउ ग्रह ग्रहनि गनत तिथि वारनि कोउ सुभ असुभ सगुन भरमाए।
अपनों इष्ट न धर्म न गुरु गहि भटकत फिरत दई बौराए॥
रसिक अनन्य सुदृढ सूर ह्वै श्रीबिहारीदास कबहूँ न कहाए।
बिन बिस्वास आस मृतकन की अछत पिता भये पूत पराये॥३९॥

जगत में कोऊ ग्रह,कोऊ ग्रहन, कोऊ तिथि-वार एवं सुभ-असुभ, सगुन-असगुनन कूँ गिनि-गिनि कें भ्रम में परे रहें हैं। ऐसे लोगन के इष्ट, धर्म गुरु कोऊ नाँइ है कें, दुर्भाग्य के मारे बौरायेभये भटकते डोल्यौ करें हैं। सुदृढ़ सूर-बीरन की नाईं रसिक-अनन्य ह्वै, ये लोग श्रीबिहारीदास कबहूँ कहाये हू नाँइ हैं।

इष्ट, धर्म, गुरु, के साक्षात बिराजमान रहते हू, जो लोग या प्रकार सों बिमुख है रहे हैं, वे बिन कपूतन के सदृस हैं जो पिता के रहते भये हू पराये बनि रहे हैं, ऐसे बिस्वास हीन मृतकजनन ते कोई आसा करिबो ही बेकार है।

भर्म विवेक असमंजस जैसे जोतत जोर बरध सौं भैंसौ।
सौंघो आदर बिनु लीये डोलैं मँहगौ मोल बिकै घर वैसौ॥
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपातें सुनि सब साँच कहौं अन ऐसौ।
लेखौ समझि बूझि किनि लूझौ जैसौ धरम धरमीये तैसौ॥४०॥

जैसे कोऊ व्यक्ति अपनी गाड़ी में सुन्दर बैल के संग भैसा कूँ जोति के जबरन चलावै है, तैसे ही कछु परमार्थी-जन बिवेक और भ्रम दोउन कूँ हृदय में राखिकें

चलावैं हैं। अर्थात बिवेक द्वारा तो श्रीभगवान की भक्ती करैं हैं, किन्तु मायिक संसार के त्यागिबे में एवं बिधि-बिधानन कूँ छाँड़िबे में सदाकाल मन में भ्रम राखैं हैं। याही भाँति प्रेम-देस के सख्य-वात्सल्य आदि रसन कूँ सेवते भये कर्म-धर्म करिबो हू अपनो कर्तव्य मानैं हैं। और तो और अति विसुद्ध प्रेम-स्वरूप श्रीजुगल की परस्पर प्रीति ते ही अपनो प्रेम-संबंध मानि के हू तत्व, ईस्वरता को समावेस राखैं हैं। ऐसे परस्पर बिरोधी भावन कूँ भ्रम द्वारा मानिके चलिबेवारे जनन को, रसिकन के बीच में सुन्दर आदर नाँइ होइ है। तौहू ये लोग अपने सिद्धान्त एवं रहनी-रीति को स्वरूप बहुत ऊँचो मानैं हैं, किन्तु जैसो जाको स्वरूप होइ है, तैसो ही आदर परमार्थिन में मिलै है। हम कोऊ अनखावनी बात कूँ नाँइ कहिकें, श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते सब साँची कहैं हैं कि–तुम अपने स्वरूप को लेखो बिना ही समझे-बूझे लगि रहे हो। यह निस्चय बात है कि–जैसो जाको धर्म होइ है, तैसोई वाके धर्मी को स्वरूप होइबो अनिवार्य है।

औछै ग्यांन अभिमांन उतरु न देत बनैं ढीली गूंज खिसिल गोद ज्यौं कतरात हौ ॥ समझत नांहि किधौं मत्सर के मारे मरो साँची बात कहें मन काहे न पत्यात हौ। श्रीबिहारिनिदासि छाँनि ताइ तकि तौल देखो लेखौ सूझै बूझै बिन बादि सतरात हौ ॥ ऊँट की बडाई जौलौं सुमेरु तर न आवै बिहारैं सुनत कत आंविली सी खात हौ ॥४१॥

काहू साधक की बुद्धि सर्वोपरि अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम के नित्यबिहार ताऊँ तौ गई नाँय, करम ग्यान आदिकन की बिद्वत्ता के अभिमान में भरि, वो आपके पास आयौ। आपनें जब प्रेम को सर्वोच्च स्वरूप निरूपन कीन्यौं तब वो कतरावन लग्यौ। या प्रसंग में आप कहैं हैं कि–तुम्हारो ज्ञान सर्वोच्च प्रेम पदार्थ ताऊँ नाँय जायकें ओछौ ही रहि गयौ है। याते तुम हमारी बात कौ उत्तर तौ दै ही नाँइ पाय रहे हौ, तातें ऐसें कतराय रहे हो, मानों तुम्हारे ओछे ग्यान की पोटरी की गाँठ ढीली होइबे ते तुम्हारौ ग्यान खिसलि परचौ है। तापै बिना समझे ही मत्सरता के मारें मरे जाय रहे हौ। हमारी साँची बातकौ बिसवास क्यों नाँइ करौ हौ। हम तुमसों कहैं हैं कि–या बातकूँ छान-ताय, तकि-तौलकें भलीभाँति देखि लेउ। बिना समझे बूझे बेकार काहे कूँ सतराय रहे हौ। ऊँट की बड़ाई तब ताऊँ ही होय है, जब ताईं सुमेरु के नीचें नाँइ आवै। अब नित्यबिहार की बात सुनिकें तुम्हारे दाँत कैसें खट्टे है रहे हैं।

लोह कंचन कहा होत मुलँमाँ मढै मोल प्रगटत कसत भ्रम नसाई। सोधि दफतर स्याम धर्म निरनौं कियौ काढि लई मिलकि बिनु हुकुम खाई ।। जै श्रीवरु बिहारिनिदासि बिना भये बौरिया बैठि आसन निलज लज लजाई। लोक रंजन द्यौस चारि के हला भला भक्ति के बल बिना धृग बडाई ।।४२।।

जैसे मुल्लमा के चढ़ाइबे ते लोहो सुबर्न नाँइ है सकै है, तैसे ही और-और धर्म रसन में नित्यबिहार मान लेइबे ते बिनको स्वरूप नित्यबिहार को नाँइ है सकै है, क्योंकि वाको स्वरूप कसौटी पै कसिबे ते प्रगट है जाइ है। हमने दफ्तर स्वरूप यावत श्रुति-स्मृति, इतिहास, पुरान, तंत्र, संहिता, तथा महत्पुरुषन की बानी आदि सबन कूँ सोधि, अति बिसुद्ध प्रेम को नित्यबिहार, जो साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज को निज-स्वरूप है, वाकूँ निर्नय करि भलीभाँति सबनते न्यारो करि लीन्यौ है। सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के दृढ़ अनन्य दास भये बिना बेसर्म लोग जब रसिक अनन्यता के आसन पै आइ बैठे हैं, तिनकूँ देखि स्वयं लज्जा हू लजाइबे लगै है। द्वो चार दिन लोक-रंजन करि, जागतिक बड़ाई भले ही प्राप्त करि लेवो, किन्तु विसुद्ध-भक्ति के बिना सब बड़ाईन कूँ धिक्कार है।

मांनु जांनि जन भूल्यौ ताकी सेवा विष तूल्यौ मूल हू गँवाइ गयौ कहा धों लह्यौ लहा ।। ताहि न सुहाइ कछू न्हायौ खायौ भावै और बिनु बिहारिनीदासि दुख दै दुखी दहा। आपदा में आपदा बढाई सोक संपदा आपनें अग्यान गुर सिषि ह्वै श्रमै सहा। नाम तौ निरोध लैं तू नामी हूँ प्रमोद दै बिहार सौं बिरोध कैं प्रमोद दै कियौ कहा ।।४३।।

वेषधारी लोगन में कछु ऐसेहू होइ हैं, जिनने अपनो न्हायो, खायो ही भावै है, बेष के प्रताप ते बिनकी जगत में प्रसंसा हू है जाइ है। याते ऐसे लोगन के सनमान कूँ देखि अग्यानी श्रद्धालुजन भूलि में परि बिनकी सेवा करन लगें हैं किन्तु तिनकी रहनी सहनी को प्रभाव हृदय पै अच्छो नाँइ परिबे के कारन सेवा करिबेवारे की विष तुल्य परमार्थ बिरोधी बातन में प्रवृत्ति है जाइ है। याते अपनी श्रद्धा भक्ति रूपी मूल कूँ ही वे गँवाय देवैं हैं। श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे दास भये बिना, वे आपहू दुःख पावैं हैं तथा औरन कूँ हूँ दुःख देवैं हैं। ऐसे अग्यानी गुरु-सिष्यन ने मायिक दुःखन में

औरहू दुःखन को बढ़ाइ, सोक संपत्ति ही संग्रह करि लीनी है। चाहे वे नाम कूँ निरोध करैं, नामी के स्वरूप कूँ हूँ सजाइ-सजाइ के समझावैं, किन्तु नित्यबिहार ते बिरोध करिबे के कारन समस्त उपदेस बिनको बेकार जाइ है।

श्रीबिहारिनिबल्लभ दुर्ल्लभ भए ये सुल्लभ श्रीहरिदास किये।
धंनि धंनि अनन्य जनंनि भजें जिन प्रेम के नेम लडाइ लिये ॥
रस रीति सों प्रीति प्रतीति नहीं तो कहा निरखैं हरखैं न हिये।
बाँके बिरद बुलाइ न्याइ निगंम अगंम न जात छिये ॥४४॥

सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी प्रानबल्लभ श्रीबांकेबिहारीजू महाराज दुर्लभ हे, जिनकूँ एकमात्र श्रीस्वामीजू महाराज ने ही निजमहल ते प्रगट होइ, जगत में सबनि के ताईं सुलभ करि दीने हैं। वे अनन्य जन अति धन्य-धन्य हैं, जिनने अति बिसुद्ध प्रेम के द्वारा प्रान भरि-भरि श्रीबाँकेबिहारीजू को लाड़ लड़ायैं हैं। मैं यह निर्नयात्मक साँची बात कहूँ हूँ कि जिनके बिरद कौ सपरस वेद-पुरान हू नाँय करि सकैं, ऐसे श्रीबांकेबिहारीजी महाराज की निज रस-रीति सों प्रीति-प्रतीति नाँइ है तौ केवल दरसन करिबे ते ही तुम्हारो हृदय फूल नाँइ सकैंगो।

काहू सूझै चौर जार काहू सूझै बट पार काहू आनंद उदार दीठि कौ विकार है। काहू सूझै सुकुँवार काहू कर धरैं भार काहू द्वार परदार ताहू कौ बिचार है ॥ काहू सूझै मारधार काहू सौं मानसाचार काहू कैं कंठ सिंगार जासौं जैसौ ढार है। श्रीबिहारिनिदासि सार भजि लै तजि जंजार सुखद विहार श्रीहरिदास कौ अधार है ॥४५॥

श्रीठाकुरजी महाराज काहू कूँ तौ वे चोर-जार सूझैं हैं, काहू कूँ मारग में दान लैबेवारे बटपार, काहू कौं अति उदार आनन्द स्वरूप दीखें हैं, काहू कौं अति सुकुमार। काहू कौं गिरिराज धरन स्वरूप में दरसै हैं और काहू कौं द्वार के पहरेदार स्वरूप में ही। याही भाँति काहू कूँ रन में युद्ध करिबेवारे। ये सब अपने-अपने भाव रूपी दृष्टि कौ भेद होइबे के कारन, जाकी जैसी ढार होइ है ताकूँ कृपा करिकें, ताही भाँति आप दरसावैं है। याते हे बिहारिनदास तुम यावत जंजालन कूँ त्यागि, सबकौ सार, सतत सुखदाई, श्रीस्वामीजी महाराज कौ प्रानाधार सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ दृढ़ अनन्य भाव ते सदाकाल सेवौ।

डहक्यौ जग जज्ञनि अज्ञ सबै भ्रम भूलि परचौ मन ज्यौं मृग-धूपै।
करम धरम की आस हरे त्रृन हीन हियें परचौ ज्यौं पसु कूपै॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदसि बिस्वास भएँ तौ नित्त लहै सुख स्याम सरूपै।
को मोटि है दुख सुख कौ दाता श्रीकुंजबिहारी बिना ब्रज भूपै॥४६॥

जगत में अग्यानी जन मृगतृष्णा कौं नाईं भ्रम में भूलि, जग्यन के माऊँ डहकि रहे हैं। और जैसें आँधरो पसु चरतौ-चरतौ हरे तृनन के लोभ में कूआँ में गिरि परै है, तैसे हृदय के हीन अज्ञानी लोग करम-धरम की आसान में ही गिरे रहैं हैं। यदि इनकूँ कुंजबिहारी-बिहारिनीजू की दासता में बिस्वास-भाव है जामतो तौ अद्भुत नित्य नयौ श्रीबिहारीजी महाराज के स्वरूप कौ सुख सहज प्राप्त है जातो। इन लोगन नैं ये समझनो चहिए कि श्रीब्रजरस-देस के हू राजा स्वरूप श्रीकुंजबिहारी के बिना यावत दुखन कूँ मिटाइ कें सर्वोपरि सुख को दाता और कोऊ है ही नाँय।

स्याम विमुख करैं निदरैं बिगरैं पल काज परत अपूठे।
पुन्य छीन गिराइ दिये मृतलोक कियौ तर सीस उठाइ अँगूठे॥
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि भनैं तजनैं सब भाँति रूठे अरू तूठे।
भूलि भरम भजौ जिनि कोइ श्रीकुंजबिहारी बिना सब झूठे॥४७॥

करम-धरम, जग्यादिक-पुन्यन की श्रद्धा श्रीबिहारीजी महाराज ते विमुख करिकें उल्टे सब कामन कूँ बिगारि देवै है और साँचे परमार्थिन में बिनकी निन्दा हू होय है। क्योंकि कर्म-धर्म-पुन्यादिक करिबे ते स्वर्ग लोक की प्राप्ति है जाय है, जहाँ पुन्य छीन ह्वैबे पै पाँव कौ अंगूठा पकरि, माथौ नीचो करि, मृत्यु लोक में गिराय दिये जायँ हैं। याते श्रीबिहारी बिहारिनीजू के अनन्यदास समझाइ-समझाइ कैं कहैं हैं कि इन कर्मन कूँ समस्त रीति-भाँति ते त्यागि, श्रीबिहारीजी महाराज के अनन्य दास है जाओ। या बात में चाहैं कोई प्रसन्न होय चाहैं नाराज होय, तुम भूलि भ्रम मैं परिकैं हूँ इन करम-धरमन के सेवन मत करियों! क्योंकि श्रीकुंजबिहारी के नित्य-विहार-सुख के आगे ये सब झूँठे हैं।

लोग तो भूलैं भले भूलैं तुम जिन भूलो मालाधारी।
अपनों पति छाँड़ि औरनि सों रति ज्यौं दारनि में दारी॥
स्याम कहत तेई जीव मोते विमुख भये जिन दूसरी करि डारी।
कहैं श्रीहरिदास जज्ञ देवता पितरनि को श्रद्धा भारी॥

भजन बिना रस-हीन न जाँनत माँनत कूर कटुकनि मीठी।
बेद पुरांन प्रगट कहै जु चहै सुलहै भलैं ताहि उबीठी॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदसि कहैं कहुँ या सुख स्वाद की मौज न दीठी।
या स्वाद कौ स्वादी मिलै तौ कहौ भिया श्रीकुंजबिहारी बिना सीठी॥४८॥

रसमय भजन किये बिना मूरख लोग अग्यान बस करुवी चीजन कूँ ही मीठी मान लेवैं हैं। यद्यपि बेद पुरान, सास्त्र आदि चौरें स्पष्ट पुकारि-पुकारि के कहैं हैं कि–श्रीभगवान ते जो चाहौ, सोई भलीभाँति प्राप्त करि सको हो, ताहू पै ये लोग बिन बचनन पै विस्वास नाँइ करि, उल्टे विपरीत आचरन करैं हैं। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अनन्यदास या बात कूँ कहैं हैं कि–या रसमय भजन के सुख-स्वाद सदृस मौज हमें कहूँ नाँइ दीखबे के कारन और-और समस्त सुख-स्वाद फीके लगैं हैं। याते हे भाई ! या रस को स्वादी मिलै तो वाही ते या रस को कहनो सुननो चहिये।

रसिक अनन्यनि सों मिलै, कहि सुनिबे की बात।
कुंजविहारिनि कौ भजन, यहै खेम कुसलात॥

सिखि साखिन के अभिमांन भरे न डरै बकवादत हैं बल बोथी।
बहु पाठ पढैं बिन स्याम ढूढैं चिरकाल रटैं बगुचा दस पोथी॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि कहैं करि कांजु जु आजु सरै कछु तोथी।
तू निजु सार बिहार निहार श्रीकुंजबिहारी बिना सब थोथी॥४९॥

बहुत से लोग साखी-प्रमान कूँ सीखि-सीखि कें अभिमान में भरि, सबसों निडर होइ। बलपूर्वक बकबाद करते फिरैं हैं श्रीबिहारीजी महाराज में विस्वास नाँइ होइबे के कारन, कछु लोग नाना मतन की अनेक पोथीन कूँ वकुचा में भरि चिर-काल ताऊँ पाठ कियो करैं हैं। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के दास या बात कूँ कहैं हैं कि–तिहारे पास मानव देह रूपी थोरो ही समय है, याते कछु ऐसो उपाय करो, जासों तुम्हरो काम बनि जाय ? मानों साधक ने आपसों प्रार्थना कीनी कि–हे महा-राजा ! आपही कृपा करिकें कोऊ उपाय बताओ, तापै आपको कथन है कि–यावत परमार्थ एवं भक्ति, प्रेम-रस, सबन को निज सार स्वरूप सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ तुम प्राप्त करो, क्योंकि श्रीकुंजबिहारी के अतिरिक्त सब बात थोथी हैं।

नित्य किसोर निकुंज मैं नागर नागरि कें नव नेह विराजै।
करत कृपाल निहाल ताकौं चित के हित्त नित्त नए सुख साजै॥

निकटि निवास भयो बन-बास श्रीबिहारिनिदासि तिहि बल गाजै।
हौं बलिहारी नवल तिहरी श्रीकुंजबिहारी बिना को निवाजै ।।५०।।

श्रीवृन्दावन नव निकुंज मंदिर में नित्यकिसोर नवनागर सिरोमनि श्रीबाँके बिहारीजू हमारी प्रान जीवनि सर्वस्व नित्यबिहारिनी जू के नव-नव नेह सों बिलास करते भयें सदाकाल सुसोभित रहैं हैं। और अति कृपालुता, दयालुता में भरि, बड़े चित्त के हित सों नये-नये सुखन कूँ सजाइ-सजाइ कें आश्रितन कूँ सतत निहाल करते रहैं हैं, ऐसे श्रीबिहारीजी महाराज के अति निकट साक्षात श्रीवृन्दावन में तो हमारो बास है रह्यौ है, और बिनकी दासता के बल पै ही हम सदाकाल गरजते रहैं हैं। याते अद्भुत सुखदाई निवाजबेवारो श्रीकुंजबिहारी के बिना जगत में और कोऊ है ही नाँइ, ताते हम बिनकी छिन-छिन बलिहारी जाँइ है।

गुन रूप अनूप अद्भुत प्रीति रची रस रीति अनन्य निवास की।
तजि कै लोक वेद भजन के भेद भलैं विधि जाँनी बृन्दाबन बास की ।।
परिमानु न जानें कहैं कवि को छवि देखि वदन विनोद विलास की।
निबह्यौ निरपेछ विवेक की रेख कहौ को करि है सरि श्रीहरिदास की ।।५१

तुमही बताओ कि रसिक अनन्य नृपति चक्र चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज की समता करिबेवारो जगत में और है ही कौन? क्योंकि अद्भुतातिअद्भुत गुन अति अनूप रूपभरी महाविचित्र प्रीति, निज रसरीति की उपासना आपने ऐसी रची कि—जामें केवल दृढ़ अनन्यता को ही निवास है, लोक-वेद तथा समस्त भजन-भावन के भेदन कूँ त्यागि, श्रीवृन्दावन निजमहल के बास की रीति कूँ भली-भाँति जानि, तन-मन-प्रान द्वारा अंत ताऊँ वास कीनौ। या अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म निज रसरीति के स्वरूप कूँ जब कोऊ कवि जानें ही नाँइ हो, तब वरनन करि ही कैसे सकैं हैं। एकमात्र आपने ही वा अद्भुत विलास-विनोदभरी छवि-छटा कूँ निहारि, सबन सों निरपेक्ष होइ, अति उज्ज्वल विवेक की रेख सों भलीभाँति निभायो। अर्थात प्रथम समागम एकान्त रस विलास निज महल के अति गूढ़ रसमय रूप-गुन नित्यकिसोर वैस द्वारा श्रीजुगल तन-मन-प्रान, रोम-रोम तें सुरत रस विलास के ही दृढ़ अनन्य होइ, निरंतर खेलैं खेलैं हैं, जहाँ बिनके स्वाँसन की रूख अनुसार सहचरी अनन्य भाव तें निरंतर लाड़ लड़ावैं है, श्रीस्वामीजी महाराज इहलोक-परलोक के समस्त सुख-संबंधन तें भलीभाँति वैराग करि, करुवा गूदरी लै, एकमात्र याही भाव

रस के दृढ़ अनन्य उपासक होइ, श्रीवृन्दावन रेनु कों तन-मन-सों सेवन कियो। ऐसे आपके अति विचित्र स्वरूप की बराबरी करिबेवारो जगत में है ही कौन ?

स्वामी जो सुख मेरे हिय धरयौ, सो सुख कहूँ न होइ।
रसिक भक्त जे ते बिपिन, ते सब देखे जोइ॥ –श्रीललितकिसोरीदेवजू

× × ×

ऐसो रसिक भयौ ना ह्वै है भू मंडल आकास।

कहा रिधि सिधि सुमेर कहा सत-सिंधु सुता ललिचात न लीजै।
इंद्र दलिद्रहि दूरि बचौ भूमिराज कौं भाजि अकाज न कीजै॥
सचैं धन-धांम रमैं वर वाँम सकाँम लैं नांम न स्याम पसीजै।
भजौ हरिदास अनन्य उपासि श्रीबिहारी-बिहारिनि के सुख जीजै॥५२॥

फिर आपने निज आश्रितन के प्रति आज्ञा कीनी कि–हे भाई! रिद्धि, सिद्धि तथा सुमेरु तौ चीज ही कहा है, सत-सत समुद्रन की सुता लच्छमी हू तुम्हारे पास आय कें अति दीन ह्वै ललचावें तऊ बिनकूँ ग्रहण मत करियो। दालिद्र सहस इन्द्र के राज्य ते सदाकाल दूरि रहि, पृथ्वी के राज्य के ताईं तो मन चलाइकें अपने काम कूँ कबहूँ बिगार ही मत लीजौ। जो लोग धन-धाम कौ संग्रह करैं, सुन्दर स्त्रीन के संग रमैं, और सकामता ते नाम रटैं, तिनके ताईं श्रीबिहारीजी महाराज नेंक पसीजैं हूँ नाँय हैं। याते साँची बात यह है कि श्रीस्वामीजी महाराज की सतत अनन्य भजन उपासना करि, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के सुख कूँ बिचारते भये जगत में जीवौ।

प्यारी प्रांन-नाथ के हित बिनु कुचित कियें कबहूँ न अघैहौ।
लैहौ कहा माधुरी को रसु दुख पैहौ विषया विष वैहौ॥
ताको स्वाद समझि बकवादतु बढै विषादु विमुख मरि जैहौ।
श्रीबिहारीदास ह्वै बसि वृन्दावन नीरस बहुरि सु ठौर न पैहौ॥५३॥

हे भाई! प्यारी-प्राननाथ सौं हित किये बिना, तुम चाहैं कछु करि लेव, कबहूँ अघाय नाँइ सकौगे? विषयरूपी विष के पेड़ लगाइबे पै तौ दुःख ही दुःख प्राप्त होयगो, फिर उनकी महामाधुरी कौ रस तौ लै ही कैसे सकौगे? याते वा महामाधुरी के स्वाद कूँ समझौ–इन व्यर्थ के बकवादन ते तौ बिषाद ही बिषाद बढ़ि, उल्टे बिमुखता में मारे जाओगे। ऐसे नीरस हृदयवारे लोगन कूँ प्रेम-देस में कहूँ ठौर नाँइ

मिलै है। मैं तुमसौं साँची बात कहूँ हूँ कि–श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज के अनन्य दास होइ श्रीवृन्दावन में अखंड बास करौ।

मायाबी मिश्रित नाँनाँ मत बहुत कुमंत्र कुटुंब पचिहारौ।
श्रीकृष्णदास उपदेस दियौ श्रीहरिदास चरन रज काज सँबारौ॥
बृन्दाबन रगमगे बिहारी यह निजु नांम पतिब्रत पारौ।
निरख्यौ नटु फाट्यौ अंतर पटु पाखंड खंड खंड करि आरौ॥५४॥

माया में फंसे भये संसारी लोगन को नाना प्रकार को मत होइ है। ऐसे ही हमारे कुटुम्बवारेन ने हू बहुत से कुमंत्र हमें दीने हे किन्तु गुरुन सदृस, बड़े गुरुभाई श्रीकृष्णदासजी महाराज ने हमें उपदेश दीन्यौ कि श्रीस्वामीजू महाराज के चरन-कमलन के रज की सरन जाइ, अपने काम कूँ भलीभाँति बनाइ लेवो। प्रेम-रस-रंग में रगमगे श्रीबिहारीजी महाराज को श्रीवृन्दावन में इकछत निज राज्य है, बिनके दास ह्वै, अपने बिहारीदास निज नाम-संबंध कूँ पतिव्रतावत पालन करौ, याही भाँति सों नटनागर को दरसन करत खेम हमारे हृदय के यावत पाखंड एवं कपट ऐसे खंड-खंड है गये जैसे आरो लकरी कूँ खंड-खंड करि देय है।

पूत पराये बाप सौं कहत आपनौ बापु।
श्रीबिहारीदास परतीति बिनु बढ्यौ दुहुँनि संतापु॥
बढ्यौ दुहुँनि संतापु पापु लाग्यौ दुहुँ कोदी।
जहाँ तहाँ त्रिसकार ठिनकि बैठे किंहिं गोदी॥
परमारथ व्यौहार बुरौ घर घर कौ कूता।
ताकौ यह दृष्टांत बहुत बापन कौ पूता॥५५॥

जैसे जगत में कोऊ बेटा अपने पिता के अतिरिक्त काहू दूजे पुरुष कूँ अपनो बाप कहै तौ परस्पर विस्वास नाँइ होइबे के कारन दोउनकूँ ही पाप-संताप होइ है। ऐसी संतान कूँ जहाँ-तहाँ सब लोग तिरस्कार करें हैं। आपद-विपद में काहू ते हू वे रोयकें अपने दुखकूँ नाँइ कहि सकें हैं। तैसे ही श्रीबिहारीजी महाराजकी दीक्षा-संबंध लैकें और-और धर्म, देवता तथा जागतिक लोगन कूँ जो अपनो रक्षक मानें हैं, बिनकी ऐसी दुर्दसा होइ है जैसे घर-घर में फिरबेवारे कुत्तान की।

ब्यास कथी सु करी परिमाँन परी न टरी सुधरी सब सति की।
ते गुन गाइ रिझाइ रसिक बिहारी-बिहारिनि संग सुरति की॥

तिनि सों मिलि रंग कैं रंग बढै वरनैं वपुरा कवि कितौ जिती मति की ।
श्रीहरिदास भजें तजि त्रास भलैं रज राखि अनन्य-नृपति की ।।५६।।

फिर आप निज आश्रितन ते कहिबे लगे कि—हे भाई ! रसिक अनन्यन की सभा में श्रीव्यासजी महाराज ने श्रीस्वामीजी महाराजके स्वरूपकूं निरूपण करते भये स्पष्ट कथन कियो कि-ऐसो रसिकभूमंडलकी तो कहा चलाई ?आकाश मेंहू आज ताऊँ न तो कोऊ भयो और न आगे है सकै है । बिनके या कथन में जिन-जिन महतपुरुषन ने परिपूर्न रूप ते विस्वास करि, श्रीस्वामीजी महाराज को अनन्य आश्रय लै बिनके श्रीचरनकमलन की रज कूँ अपने माथा पै धरि, आपके रस-जस कूँ गायो—बिनकी इहलोक-परलोक में न तो कोऊ बात टरी, न परी—सब साँची सुधरती ही चली गई। ऐसे आपके अद्भुत गुनन कूँ अति साँचो मानि, अपने हृदय में दृढ़ता ते धारन करि, जो गावैं हैं बिनपै रसिक-सिरोमनि श्रीबिहारी-विहारिनीजू अति रीझि मन की बड़ी रुचि ते सदाकाल संग-संग रहैं हैं । या प्रकार के महतजनन ते मिलिबे ते रंग में हूँ रंग ऐसो अद्भुत बढ़ि जाय है कि जाकूँ विचारो कोऊ कबि हू बर्नन नाँइ करि सकै है । याते हम समस्त भय-भ्रमन कूँ त्यागि, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की रज कूँ ही अपने माथा पै धारन करि भजन करैं हैं ।

धर्म बिना धन कौंन है बापुरौ इन्द्र दलिद्री दूर बिडारौं ।।
कहिबे करिबे की कहाँ लौं कहौं जु अधर्म की बात सुनैं ताहि तारौं ।
नातौ कहा कुल-गोत विरत सौं नाँउ बिहारिनिदास पुकारौं ।।
न्याउ यहै जु निहाइति नाँहि अनन्य बिना हरिदास निहारौं ।।५७।।

साँचे अनन्य धर्म के बिना धन की तौ बात ही कहा है, हम दलिद्री इन्द्र कूँ हू दूर ते बिडार देवैं हैं । अनन्य धर्म ते बिहीन और-और धर्मन की बात कहिबे-करिबे की तौ कहा चलाई; कोऊ हमें सुनावै, बाहू कूँ हम ताड़ देवैं हैं । यदि कोऊ हमारौ परिचय पूछै तौ हम कुल गोत-विरद ते नातौं नाँय राखिबे के कारन बिहारिनदास ही अपनो नाम बतावैं हैं । साँची बात यह है कि बिना अनन्य तो हम श्रीहरि के दासन कूँ हूँ नाँय निहारैं हैं ।

हैं कृपाल दयाल निहाल करैं दुख दूखित दीननि कौ तिठला ।
श्रीहरिदासबिहारी कैं भाइ अनन्य भजन्न भजैं इठला ।।

कहै दासि बिहारिनि कौ अनुरागी रसिक सु तो सब तैं जिठला।
जसु गायौ जगत भगतनि में धँनि धँनि कहैं बिपुला बिठुला ।।५८।।

हमारे प्राननाथ रस-सागर श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू ऐसे अद्भुत कृपालु, दयालु हैं, जाके माऊँ कृपादृष्टि ते नेक देख देवैं वाकूँ समस्त रीति भाँति सों निहाल ही करि देवैं हैं। दीननि के दुखन कूँ दमन करिबे में आप सब सों तीखे हैं। श्रीहरिदास बिहारिनीजू को अनन्य भाव ते भजन करिबे में सबनते ऊँची ऐंड राखैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य अनुरागी एवं रसिकता में सबनके सिरमौर, जिनके जसन कूँ जगत के समस्त भक्तन ने धन्य-धन्य कहि के गायो है।

कर्म अरु धर्म धन-धाँम निहकाँम करि, भजि लोक अरु वेद विधि विषम नाखी। सखी मंडल मधि कहत धँनि धँनि श्रीहरिदास-वंसी सब अनन्य साखी ।। निपुन अंग अहार करतार उघटत सबद श्रीवरु बिहारिनिदासि प्रेम भाखी। रासरवनी-रवन अँग सँग नृत्य में जै जै श्रीबीठल बिपुल सुजस रेख राखी ।।५९।।

श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू कर्म, धर्म धन-धाम आदि सबनते भलीभाँति निष्काम होइ, लोक अरु बेद की विषम विधिन कूँहूं उलंघन करि, ऐसो सर्वोच्च रसिक अनन्यता को डंका बजायो कि—समस्त रसिक अनन्यन के समक्ष, सखीमंडल ने आप कूँ धन्य-धन्य कहि-कहि भूयो-भूयो प्रसंसा कीनी। वाही समय श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को प्रेम-रसामृत भरचौ श्रीमुखचन्द्र एवं नृत्य, गान-तान-रूप, रंग महा-माधुरी कूँ देखि, देह-सुधि बिसारि, ताही छिन आप सदेह निज स्वरूप में मिलि गये। तब सब महतजनन ने जै जै कार करते भये कह्यौ कि—श्रीबीठलविपुलदेवजू ने तो अनन्य धर्म के सर्वोपरि जस की सबन के बीच में रेखा ही खींच दीनी है।

तीरथ सकल लोक बैकुंठ तैं मधुपुरी अधिक संदेह नसाँनौं।
तातैं अधिक निकट ब्रज वैभव ब्रह्मा वेदनि प्रगट प्रवानौं ।।
श्री बिहारिनिदास निकुंजनि सेवत जामैं राधारवन रवाँनौं।
विद्यमान हरि मन्दिर राजतु श्रीबृन्दावन रस खान-खदाँनौं ।।६०।।

यावत तीर्थ एवं लोक तथा बैकुंठ ते हू मधुपुरी को स्वरूप अति ऊँचो है, यामें हमारे मन में संदेह नेक हू नाँइ रह्यौ है। कारन जैसे अंस, कला यावत भगवत

स्वरूपन ते स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजू सर्वोपरि हैं। तैसे ही बिनकी जन्मभूमि श्रीमथुराजी को हू स्वरूप समस्त तीर्थ एवं लोकन ते ऊँचो होइबो स्वाभाविक है। ताहू ते अधिक श्रीब्रज को बैभव अति विशाल है, जहाँ प्रेमस्वरूप श्रीब्रजेन्द्रनंदनजू की अनंत प्रकार ते प्रेमलीला सतत होइ हैं, या बात कूँ श्रीब्रह्माजी ने बेदन में स्पष्ट बर्नन करि, स्वयं हू वत्सहरन लीला में प्रत्यक्ष अनुभव करि लीनौ है। श्रीनित्यविहारी-विहारिनीजू के अनन्य दास तो–जा श्रीवृन्दावन-नवनिकुंज मंदिर में श्रीजुगल अविच्छिन्न एकरस बिहार करें हैं, बिनकूँ अनन्य भाव ते सदाकाल सेवैं हैं। तेई श्रीवृन्दावन रस की खानि एवं खदानो स्वरूप ते पृथिवीमंडल पै प्रगट विराजमान हैं। अर्थात् खान वाकूँ कह्यौ जाइ है जामें सिद्ध वस्तु ही होय है। जैसे सोना की खान ते सोना, हीरा की खान ते हीरा। तैसे ही रस की खान ते रस। खदानो वाकूँ कहै हैं जा जमीन की मिट्टी ल्याइ, कुम्हार बर्तन बनावै है फिर उन वर्तनन कूँ बनाइ वो सिद्ध करै है, तब वो वर्तन उपयोग में आवै हैं, तैसे ही जिन महतपुरुषन को भाव सिद्ध है गयो है, वे जन तो रस की खानि स्वरूप ते श्रीवृन्दावन में सतत रस कूँ बिलसैं हैं। साधकन ने तो श्रीवृन्दावन में बसि रसिकाचार्यन के कथनानुसार चलि-चलिकें, अपने हृदय में सहचरी भावरूपी वासन कूँ बनाइ, वाकूँ सिद्ध करि लेवैं तब ही रस कूँ विलसि सकै है।

उद्धव आदि ब्रह्मादिक दुर्लभ परी प्रमान जुही सुक भाखी।
जाकौ सुजस बखाँनत श्रीमुख स्याँमा स्याँम सहसमुख साखी॥
श्रीबिहारीदास विस्वास तिहीं बल उमंडि मैंड मरजादा नाँखी।
रह्यौं न मन भै भ्रम क्रम श्रम कछु ब्रज रज काज कियो रज राखी॥६१॥

श्रीब्रज रज के महा विचित्र प्रभाव कूँ बर्नन करते भये परमहंस चूड़ामनि श्रीसुकदेवजी महाराज ने कह्यौ है कि–श्रीउद्धव-ब्रह्मादिकन कूँ हूँ यह रज अति दुर्लभ है। स्वयं श्रीजुगल हू या रज के सर्वोपरि जसन कूँ श्रीमुख सों भूयो-भूयो गावैं हैं, जाकी साखि साक्षात् श्रीशेषजी ने वर्णन कीनी है। हमने हूँ या रजरानी के बल बिस्वास पै, उमँगि यावत मर्यादान कूँ उलंघन करि अपने मन के यावत् भय-भ्रम-श्रम-क्रम समस्त रीतिभाँति दूर करि दीने हैं और या रजरानी ने ही हमारी समस्त कामनान कूँ सफल करि दीनी, जासों हम सतत अपने माथा पै याही कूँ धारण करैं हैं।

साधन आंन कोटि तप तीरथ कहा भयौ भजन उदै बिनु भांन।
पंडित पढि पढाइ सठ बूडे ज्यौं भँडिहा भटकत निसि स्वांन।।
श्रीबिहारीदासि बिनु बनिक बनिजई फूलत कृपन ग्रहन दै दांन।
रसिकन कौ रस खेत हेत तजि ये गए कूर कुरुखेत न्हांन।।६२।।

सूर्य सहस श्रीभक्ति महारानी कौ उजेरो जब ताऊँ हृदय में नाँइ होय है तब ताऊँ और-और कोटिक साधन, तप, तीरथ काहू ने करि ही लीने, तौहू बिनते कहा है सकै है। श्रीभगवान की भक्ति सों विहीन और-और साधनन में लगिबे-लगाइबेवारे मूरख लोग पढ़ि-पढ़ाइ ऐसे बूड़ि जाँइ हैं, जैसे स्वान रात में बेकार ही भूसि-भूसि के भटकतो फिरै है। श्रीबिहारीदास भये बिना लोग ग्रहन में दान आदि दै-देकें बड़े फलन की आसा ते अपने मन में ऐसे प्रसन्न है जाँइ हैं जैसे कोई बनिया व्यापार में धन कमाइकैं फूलै है, ऐसे स्वार्थी कूर लोग रसिकन को रसखेत साक्षात् श्रीवृन्दावनधाम सों हित त्यागि कैं, कुरुक्षेत्र न्हाइबे चले जाँइ है।

सीतल संग सुहाइ न साकतु आकतु ह्वै तन ताप तया।
जा मुख तैं हरि कौ जस गावत सो मुख अपने हाथ हया।।
दुर्लभ देह संदेह गया न श्रीबिहारिनिदासि बिचारि लया।
रहिबे कौ चरन सरनहि छांडि गया जु गया सु गयाई गया।।६३।।

साकत कौ संग सुंदर-सुसीतल हैबै पैहू, हम इतेक ऊबि जाँय हैं मानो हमारी देह ताप ते-तै गई हो! श्रीहरि के अमृतमय नाम-जस-गुनन कूँ जा मुख सों गामते, इन लोगन ने भक्ति ते विमुख सिद्धान्त बातन कूँ कहि-कहि, मानो अपने हाथ ते ही अपने मुख कूँ पीट डारचौ है। एकमात्र श्रीहरि की कृपा ते ही देव-दुर्लभ मानव देह कूँ पाय, श्रीभगवद्भक्ति में नाँइ लगि, संदेहन के वसीभूत होइ, श्रीविहारिदासन के सुख कूँ नेंकहू नाँइ विचारि सके, उल्टे श्रीविहारीजी महाराज के श्रीचरनकमलरज की सरनरूपी सर्वश्रेष्ठ, सहज सुलभ श्रीवृन्दावनधाम कूँ पाइकें हूँ जो लोग पिंड देबे के ताईं गयाजी जाँय हैं, बिनकूँ तो ऐसो समझो कि—हमारी रसोपासना ते सदा-सदा के ताईं चले ही गये।

कहूँ कहूँ विरलौ इक कोटिक में भगवत भक्ति सुद्ध जिन साधी।
तिन मैं रसिक अनन्य धँनि धँनि जिनकैं यह रस रीति अगाधी।।

श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा बिन छांडि प्रसाद भये अपराधी।
ए खात फिरत करमठ कौंवनि लौं है गयौ सब संसार सराधी ।।६४।।

हे श्रीबिहारीदास ! कोटानुकोटि परमार्थ-पथ पै चलिबेवारेन में कहूँ-कहूँ बिरले ही ऐसे महतपुरुष मिलै हैं जो श्रीभगवान की बिसुद्ध भक्ति के ही साधनन में चलैं हैं। तिन में हू हमारी अगाध निज रसरीति के अनन्य रसिक जन तो बहुत ही धन्य-धन्य हैं।

श्रीहरि के दासन की कृपा ते बिहीन बहुत से लोग जातीय अभिमान के कारन साक्षात् महाप्रसाद कूँ हूँ त्यागि, अपराध के भागी बनि जाँइ हैं। ऐसे ही कर्माग्रही भगवत्प्रसाद कूँ त्यागि, कौवान की नाईं श्राद्ध के अन्न कूँ जहाँ-तहाँ खाते डोलैं हैं। याही भाँति समस्त संसार श्राद्धी बनि रह्यौ है।

भक्त पिता हठि प्रेत कियौ अैसी सँतति कौ मुँह कारौ करौ।
तजौ कुल कोटि करमठ सील अनन्य बिना मिहरी न वरौ ।।
दरसैं परसैं दुख दोष लगैं रंड पिंडहि भिंडहि देत डरौ।
सबही तैं उदास बिहारिनिदासि की दासिन कैं अँग सँग ढरौ ।।६५।।

जो संतान अपने भक्त-पिता कूँ हटपूर्वक प्रेत मानि, मूँडमुँड़ाइ, प्रेत क्रिया करैं हैं, ऐसी संतान को मुँह कारो करिबो ही उचित है। बिना अनन्य कर्मठ आचरन करिबेवारे कुल की कोटि सुसील स्त्री कूँ हूँ त्यागि देओ। क्योंकि ऐसी स्त्री के दरस-परस ते हू दुख दोष लगै है, वाते सम्बंध करिबे के ताईं तो बहुत ही डरनो चहिये। याते सब सों उदास होइ श्रीनित्यबिहारिनीजू की दासिन की हू दासी भाववारेन को सत्संग सर्वोपरि है।

बोलत काग करटिहनि न्यौंतत निहुरे फिरत निहोरत भूतनि।
खगकी खाल खटीकनि कौ मतु भक्त पिता कियो प्रेत अऊतनि ।।
रसिक अनन्य निकसि न्यारे ह्वै राख्यौ ब्रत हरिदासि सपूतनि।
भगवत धर्म छाँडि छुतिहा भए बांध्यौ गांठि कुकर्म कपूतनि ।।६६।।

जैसे खटीकन कौ तो मत और चमड़ा को व्यापार करिबे के ताईं पक्षिन की खाल कोऊ लेवै–जोकि नितांत असंभव है, तैसें ही जो कपूत बेटा अपने भक्त पिता कूँ हठ पूर्वक प्रेत मानि, कौवान कूँ बुलाय, कटद्यान कूँ न्यौतै है और भूतन ते निहोरे करैं हैं, बिनने श्रीभगवत धर्म कूँ छाँड़ि, छुतिहा होइ, कुकर्म की गांठ बाँधि लीनी है।

याही तें रसिक अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज के सपूतन ने इन सबन ते न्यारे होइ अपने अनन्य व्रत कूँ भलीभाँति निभायौ है।

आइ अकरम प्रतिवाइ लाग्यौ तिनहि तिही छिन सकल साधन बिगारे।
स्वामि द्रोही सुनैं कौंन टेकैं तिन्हें पतित आरूढ आकास तें डारे ॥
धर्म खिसले परैं भटकि घर घर फिरें बुरे दीसें सदन बदन कारे।
कहा बनबास कौ रंग लागै तिन्हें तें न सुधरैं जे गुरु पीर फटकारे ॥६७॥

श्रीभगवत धर्म की दीक्षा लैकें हू जो लोग या प्रकार के अकरमन कूँ करैं हैं, बिनकूँ दोष लगिबे के कारन सब साधन तिनकें ताही छिन बिगरि जाँइ हैं। यद्यपि वे अपने साधन पथ में बहुत ऊँचे हैं तौहू श्रीभगवद् धर्मविरोधी होइबे ते बिनकूँ पतित समझि नीचे गिराय दिये जाँय हैं। स्वामिद्रोही सुनि, अपनो मानि कें कोऊ रक्षा नाँय करै है, याते वे भगवत धर्म ते खिसलि, घर-घर भटकते डोलैं हैं। ऐसे जनन कौ घर एवं मुख कारो ही कारो दीखै है तथा इष्ट-गुरु दोनोंही फटकार देवैं हैं, याते बिनकूँ न तो श्रीवृन्दावन बास को ही रंग लगै है और न वे सुधरैं ही हैं।

गौड लाहौर इक दौर दौरे फिरें दुष्ट कोटि कीनी सो एकौ न सोही।
जहाँ तहाँ विपति, संपति गई हाथ तैं उठत बैठत कहत आहि ओही ॥
सतसंग कौ रंग लागै कहा सठहि जल सैल ज्यौं फुही पाथर न पोही।
भए मति चाल बेहाल बोधा बिमुख सुख न पावै कहूँ स्वामि द्रोही ॥६८॥

स्वामी-द्रोही होइबे के कारन जो लोग स्वारथ में रत होइ, श्रीवृन्दावन को छाँडि, पंजाब, बंगाल आदि दूर-दूर देसन में तो दौरे-दौरे फिरैं हैं और अनेक दुष्टता हू करैं हैं, जो एक हू सोभा नाँइ पावै है, उलटे जहाँ-तहाँ सब ठौर बिनके विपत्ति ही हाथ परै है। श्रीवृन्दावनरूपी अद्भुत संपति हाथ ते चली जाइबे ते, ये उटते-बैटते आहि-ओहि करते भये सदाकाल कराहते ही रहैं हैं। ऐसे सटन कूँ सत्संग कौ रंग या प्रकार ते नाँइ लगै है, जैसे पानी में सतत डूबे रहिबे पै हू पाथरन में पानी नाँइ पुवै है। इन विमुख मूर्खन की बुद्धि सदाकाल अपने ही स्वार्थन में चलायमान रहिबे के कारन बेहाल होइ, सतत दुखी रहैं हैं।

स्वामि द्रोहि गुरु द्रोहि मित्र द्रोही नर जेते।
मात पिता के द्रोह नर्क परि हैं निजु तेते ॥

तेते परि हैं नर्क निजु यामैं सक नाहीं।
साधन कीये अनेक सबैं निर्फल है जाहीं॥
नित्यबिहारीदास कहत काम कृत करत सकाँमी।
ताकौ दरसु निषेध परसि दुख पावत स्वाँमीं॥६९॥

इष्ट स्वरूप अपने स्वामी, श्रीगुरुदेव एवं माता-पिता, मित्र इन सबन ते द्रोह करिबेवारे जगत में जितेक मानव हैं वे निश्चय ही निज नर्क में जाँय हैं, यामें कोऊ सक नाँइ है सकै है। बिनके किये भये अनेक साधन हू निष्फल है जाँइ हैं। नित्य-बिहारीदास श्रीस्वामीजी महाराज ये बात कहैं हैं कि एकमात्र सकामता ही सकामता के कार्य करिबेवारेन कौ दरसन हू निषेध है और बिनके सपरस ते श्रीभगवान हू दुख मानैं हैं।

हरचौ ऊपर बकुल देखि फूल्यौ कहा पेड पोलैं मूल उखरि जाई।
हरिनकसिप कियौ क्रोध प्रह्लाद सौं आपु नरहरि भए करि सहाई॥
और अगनत साखि कौ गनैं सठनि सौं हठहि छाँडत नहीं सजा पाई।
कोटि अपराध अपनें सहैं साँवरे हरिदास के दोष सर्वसु नसाई॥७०॥

जैसे बड़े बिसाल पेड़ के नीचे तें मूल नष्ट है जाइ तब वह पेड़ ऊपर ते कछु समय के लिये भले ही हरचौ-भरचौ-फरचौ-फूल्यौ दीखै किन्तु एक दिन निश्चय ही गिरि जाइगो। ऐसे ही भक्तन के अपराधीजन भले ही कछु समय के ताईं ऊपर ते सुखी से मालुम परैं, किन्तु निश्चय ही एक दिन विनकूं दुख भोगनो परैगो। जब महाबली हिरनकश्यप ने क्रोध में भरि, भक्तराज श्रीप्रह्लादजी के प्रति अनेक अपराध कीने, तब स्वयं श्रीभगवान ने श्रीनृसिंहरूप धारन करि, हिरनकस्यप कौ पेट फारि, श्रीप्रह्लादजी की रक्षा कीनी। ऐसे आपके अनेक चरित्र साक्षी हैं, किन्तु सठ लोग सजा पाइबे पै हू अपनी हठ नाँइ छाँड़ै हैं। श्रीभगवान अपने प्रति किये भये कोटि अपराधन कूं तो सहि जाँइ हैं। किन्तु अपने दासन के प्रति अपराध करिबेवारेन कूं सर्वस्व ही नास करि देवैं हैं।

अनन्य श्रीस्वामी हरिदास के धन्य अमनैक क्यौं टरत अरबराएँ।
घुरत घूमत निसांन नित्त चौहटै चोरटा कहा दुरि बरबराएँ॥
महामधुरे रसैं क्यौं लहै कृपा बिनु खात खरि कटुक खल सरबराएँ।
दांम खरचत खिजत भटकि घर घर फिरत धर्म पाइयतु कहा दरबराएँ॥७१

श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन के हम दृढ़ अनन्यजनन कूँ अनेक प्रकार ते कैसे हू कोऊ अडंगा क्यों न लगावै, तौहू हम टरिबेवारे नाँइ हैं। जिनके नित्य चौरे-चौहट्टे निसान घुरै-घुमै है। अर्थात् सब ठौर डंका बजि रह्यौ है, बिनते ये चोरटे लोग छुपि-छुपि कें बरबरावें तो वाते कहा होइ सकै है। श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य जनन की साँची सरन गये बिना नित्य नवनिकुंज मंदिर कौ महामधुर रस कोऊ कैसेहु नाँइ लै सकै है, जैसे करुवी खर कूँ पसु बड़ो स्वाद लै-लै के खावै है तैसे ही ये पामर विषयन के स्वाद कूँ सरबराय-सरबराय कें लेवें हैं। ये लोग पैसा-पैसा के ताईं तो जान देवें हैं, भटकते घर-घर डोलें हैं केवल धौंस देबे ते ही ऐसे लोगन कूँ अनन्य धर्म कैसे प्राप्त होइ सकै है ?

जिन कैं दिन वस्तु बिचार रहै तिन जांनि विवेकनि चौकस कीन्हौं।
श्रीबिहारिनिदासि भये न बसे दिन दीन ह्वै नाथ कौ नाँउ न लीन्हौं ॥
प्रीति प्रतीति गई तिनकी जिनकौ चित्त बित्त तिनैं सु न दीन्हौं।
तूं गर्व भरयौ भभरयौ फिरै यौं अभिमांन अग्याननि कौं निजु चीन्हौं ॥७२॥

जिन जनन कें रात-दिन अपने वस्तु कौ मन में बिचार बन्यौ रहै है तिन विवेकिन ने तौ चौकस करि कें श्रीहरि की भक्ति कूँ अपने हृदय में विराजमान करि लीनी और जो लोग श्रीनित्यबिहारिनीजू के दास होइ, न तो श्रीवृन्दावन में ही बसे, न दीन ह्वै कबहुँ बिनको नाम हू लीन्यौ, उल्टे श्रीहरि ते ही प्राप्त भये चित्त और बित्त कूँ श्रीहरि में नाँइ लगायकें और-और ठौर में लगाय दीने, ऐसे जनन कौ श्रीनित्यबिहारिनीजू के न तो विस्वास ही है और न प्रीति ही है, तापै हू ये लोग गर्व में भरे भये जगत में भभरे से डोलें हैं। यातें इनके अभिमान सों ही अज्ञान की निज पहिचान स्पष्ट है जाय है।

त्रिविध ताप संताप्र संदेहनि श्री ब्रजपति बिना कौन हरै।
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि भयें न कछु ब्रत नेंम दिनाउ भरै ॥
गाफिल गाल बजायें रहै बल अंत कैं अंत न टेक टरै।
बाँकी थाकि रही कछु मूल करम्म मैं दादि लहै न फिरादि करै ॥७३॥

दैहिक, दैविक, भौतिक एवं कायिक, वाचिक, मानसिक, त्रिविधताप, संताप एवं सन्देहन कूँ हरन करिबेवारो एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज के अतिरिक्त और कोऊ है ही नाँइ ? तौहू बहुत से लोग श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अनन्य दास नाँइ

होइबे के कारन व्रत, नेम आदिकन में ही अपने समस्त जन्म कूँ बिताइ देवै हैं। यदि उन्हें कोऊ समझावै तौ उलटे गाफिल होइ, गाल बजाते भये अंत ताऊँ अपनी हठ कूँ नाँइ छाँड़ै हैं। याते स्पष्ट दीखै है कि अपने मूल कर्मन कौ कछु भोग इनको बाकी रहि रह्यौ है, जासों ये फरियाद करें, तौहू इन्हें निज अभीष्ट वस्तु प्राप्त नाँइ होइ है।

कहूँ जिनि जाहि निबाहि पनैं बिभचारिन कौ संग दुख दहै।
जौपै बाप के लाख टका चल्यौ छाँडि तौ पाँच टकारिनु कौन गहै॥
काहू की आस न त्रास उदास बिहारिनिदासि बिचारि कहै।
धन्य धन्य अनन्य सभा कहियै रस-रीति की प्रीति प्रतीति यहै॥७४॥

निज आश्रितन ते आप स्पष्ट आज्ञा करते भये बोले कि—हे भाई! अपने अनन्यधर्म के अतिरिक्त, और काहू धर्म माऊँ कबहूँ नाँइ जायकें, याही प्रन कूँ भली-भाँति अंत ताऊँ निभावो, क्योंकि व्यभिचारिन कें संग सों तो केवल दुःख में ही दहनो परै है, ताहू पै लाख टका सदृश हमारे श्रीस्वामीजी महाराज को सर्वोपरि नित्यविहार कूँ छाँडिकें पाँच टकारिन सदृश और-और साधारन परमार्थ सुखन को कोऊ विवेकी नाँइ गहैगो, हम न तो काहू की आशा राखैं है, न काहू को भय मानैं हैं, इहलोक-परलोक में सबसों उदास होइ, अति सरस रसीले अद्भुत सुख-समुद्र में सतत निमग्न रहैं हैं। हे विहारिनिदास! या बात कूँ तुम अपने मन में भलीभाँति विचार करो; याही कारन सों तो अनन्यन की सभा में हमें सबहीं धन्य-धन्य कहैं हैं, और हमारी रसरीति की प्रीति एवं बिस्वास याही ते मान्यौ जाय है।

गाइ लैं गाल बजाय समाइ क्यौं सोधि कैं सुद्ध रसै परसै।
सदाचार चलै गुर ग्रन्थ मिलैं मत ताइ तुलाइ कैं चाइ घसै॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि ह्वै चौकस श्रीहरिदास के बास बसै बिलसै।
धन्य धन्य अनन्य महामरमी सु धर्म सचौटी कसौटी कसै॥७५॥

जब ताऊँ भली-भाँति सोधि कैं नित्य रसकूँ स्पर्स नाँय करौगे, तब ताऊँ गाल बजाय-बजाय कैं गाइबे ते हमारे यहाँ नाँय समाय सकौगे। याते श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के दृढ़ अनन्य दास होय, सदाचार में चलि, गुरुग्रंथन के मत अनुसार सब बातनि कूँ भली-भाँति तोल ताय कैं चौकस करि, अपने हृदय में धारन करि लेव और श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमल की रज—श्रीवृन्दावन में अखण्ड बास करते भये या रस कूँ बिलसौ। जगत में महामर्मी वेही जन धन्य-धन्य हैं जो सचाई की

कसौटी पै कसिबे पै सुद्ध निकरै हैं। अर्थात् काहू भाँति के लोभ-लालच एवं आपत-विपत आदि में नाँय परिकैं सदाकाल एक रस वृन्दावन बसते भये अपने अनन्य धर्म कूँ ही सतत निभावैं हैं।

बारक श्रीहरिदास विलोकत तेल की बूँद समुद्र तरी।
आदि करै श्रम साधन कोटिक पंक में ढारि भरी गगरी॥
न तुलै करुनालय लाडिली कौ बल लालहि लै अनुराग ढरी।
श्रीबिहारिनिदासि ह्वै सेय तिन्हैं जिनि दंपति संपति साँचि धरी॥७६॥

श्रीस्वामीजू महाराज के कृपा-भरी दृष्टि सों एक बार बिलोकिबे ते ही साधक सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूँ सहज में या भाँति प्राप्त करि लेइ है, जैसे तेल की बूँद सहज सुभाउ समुद्र तरि जाइ है। याते और-और कोटिक साधनन में परिश्रम करिबो ऐसो है जैसे कोऊ अज्ञानी अपने घड़ा में कीच कूँ ही भरै। जिन श्रीलाड़िलीजू ने साक्षात श्रीलालजू कूँ हू अपने अनुराग में ढारि राख्यौ है तिन करुनानिधि सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के बल कूँ कोऊ पार ही नाँइ पाय सकै है। याते श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्यदास होइ कें जिन बड़भागी श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य जनन ने श्रीजुगलरूपी संपत्ति कूँ संग्रह करि, अपने हृदय में धरि राखी है, बिनकूँ ही तुम सुद्ध साँचे भाव ते सदाकाल सेवो।

जे दिन स्वास—निसा सुख सोवत तौ मुख जोवत प्रान-पती।
नित्त मित्त अहार निद्रा दृढ आसन हारि परै करि काँम खती॥
श्री बिहारिनिदासि उपासि प्रिया परमारथ माँह घटै न रती।
गुरु इष्ट के प्रेम पनें जपनें सुपनें सावधान सु जाँन जती॥७७॥

जो महतपुरुष रात-दिन सोते, जागते स्वाँस-स्वाँस में अपने प्रानपति के श्रीमुख कूँ निहारते रहैं हैं और सदाकाल परिमित आहार, स्वल्प निद्रा आदि सब बातन में अपने सिद्धान्तरूपी आसन पै ऐसे दृढ़ रहैं हैं कि—काम-कामनायें अपनो कितेक हू बल, पराक्रम दिखावैं, वे विचलित नाँइ होय हैं। याते हे बिहारीदास! अपनी प्रियाजू की उपासना याही भाँति ऐसी दृढ़ता सों करौ, जो अपने भजन-साधन में रत्ति भर कबहूँ घटती नाँइ होय! जो लोग अपने इष्ट, गुरु के प्रेम की अनन्यता कूँ ऐसे निभावैं जोकि सुपने में हूँ सावधान रहैं हैं, बिनकूँ ही जती कह्यौ जाय है।

प्रेम भक्ति उपजत ताही छिन पाप ताप अवगुन गति नासै ।
कंचन जिमि बपु धातु परसि रस पलटि रूप मिलवत सुखरासै ।।
जैसे दियौ प्रगट प्रसाद करुना कैं कुंजबिहारी-बिहारिनि-दासै ।
जे जन मन क्रम बचन चरन रज सेवत हित नित श्रीहरिदासै ।।७८।।

जैसे पारस लोहा कूँ सपरस करतखेम सुद्ध कंचन बनाइ देवैं है, तैसे ही जो जन मन-क्रम-वचन ते श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन की रज कूँ हित सों नित सेवैं हैं, बिनमें ताही छिन प्रेम-भक्ति उदय हैकें देह के समस्त पाप, ताप तथा अवगुनन की गति ही नष्ट है जाइ है और वे सुखरासि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के प्रेम कूँ ताही छिन ऐसे प्राप्त करि लेवैं हैं, जैसे श्रीस्वामीजी महाराज ने अगाध करुना में भरि, अपनी अद्भुत कृपा द्वारा यह रस-जसरूपी प्रसाद, प्रगट मोकूँ दै दीन्यौ है ।

ग्यांन हीन दिन दीन भये क्यौं भाजत ज्यौं पँछिन में डेला ।
निर्जन बन गहि रहि बैरागी तृष्णा तरु मनसा मन पेला ।।
श्री बिहारीदास हरिदास दई बुद्धि श्रीगुरु बिनु सीझै क्यौं चेला ।
एक आस धरि बोलै डोलै भीर माँहि निहचिंत अकेला ।।७९।।

ज्ञान ते हीन जन रात-दिन दीन भये जहाँ-तहाँ यों भटकते डोलैं हैं, जैसे डेला फेंकिबे ते पंक्षी उड़ि जाँइ हैं क्योंकि बिनके मन की तरल-तृष्णा सतत पेलती ही रहैं है, याही ते बैरागीजन सतत निर्जन बन कूँ गहि के राखैं हैं । ऐसे गुरुन के बिना चेला नाँइ सीझ सकै है । यह बात साक्षात् श्रीस्वामीजी महाराज ने कृपा करिके हमें समझाई है । याते तुम एक ही सर्वोपरि नित्यबिहार की आसा मन में धरि भीरभार ते अलग होइ, अति निस्चितता ते सतत बोलो डोलो ।

देख्यौ पहरि चुपरि हम चाँमहि काँमहि भजि भरि भरि दुरि ऊदर ।
निघटि गये बिललात बुरी गति छाँडि दियौ छुतिहा मति छूदर ।।
श्रीबिहारीदास है बसि वृन्दावन यह मेरे मन कौ मकसूदर ।
नित नव आस विलास भजन हित भै भ्रम भूख भजावन गूदर ।।८०।।

सुन्दर-सुन्दर वस्त्र-भूषन पहिरि, देह कूँ चुपरि, मन भरि-भरि कें अनेक कामनान कूँ सेवन करिके हमने देखि लीन्यौ है मायिक धन-संपत्ति के निघटि जाइबे ते लोगन कूँ बुरी तरह बिललावनो परै है, याते हमने छुतिहा-छुद्र-विचारन कूँ ही

भलीभाँति छाँड़ि दीन्यौ है। अब तो श्रीबिहारीदास होइ, श्रीवृन्दावन बसिबो ही एकमात्र हमारे मन को मनोरथ बनि गयो है, नित्य नये-नये रस बिलासन की आसा लिये बड़े हित सों सतत हम भजन करें हैं, और यावत भय, भ्रमन की भूख करुवा गूदरी की रहनी ते ही हमारी भाजि गई है।

अखिल अमृत तैं अधिक स्वाद रस मीठौ मैं दीठौ गुन गरुवा।
अचवत गहत बहत पावन पथ तृन हूँ तैं लागत जग हरुवा॥
श्रीबिहारीदास बिनु भयें बिगूचत नहिं रूचत मूचत भ्रम भरुवा।
सूरनि के सिंगार सुख राजत भाजत कूर कृपन सुनि करुवा॥८१॥

अखिल अमृत ते हू अधिक स्वादिष्ट मीठौ तथा गुनन में गरुवौ, करुवा को पानी हमनें भलीभाँति आँखिन ते देख्यौ है। जाकूँ लैकें आचमन करत खेंम, मन या प्रकार अति पावन पथ पै चलन लगै है कि समस्त संसार तृन ते हू हरुवौ लगन लगै है। जो लोग श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे दास नाँय होंय हैं बिनके मन में भ्रमन की भीर लगी रहिबे के कारन करुवा नाँय रूचै है याही ते वे संसार में हू फँसे रहैं हैं। शूर-बीर प्रकृतिबारे तौ अपनौं अद्भुत सुखदायी सिंगार समझि उमँगि कैं करवा गूदरी लै, सतत श्रीवृन्दावन में सुशोभित रहैं हैं और कूर-कृपन कायर प्रकृतिवारे करुवा-गूदरी कौ नाम सुनत खेंम दूर भाजि जायँ हैं।

वेद माल तन कीयें कहा भयौ करिमस कला विवेक विचारी।
सिकलीगर गुरु कुरंद साधु संग रंदा सरस कथा श्रुति सारी॥
लग्यौ मोह मन मैंटि मोरचा प्रेम भक्ति उपजै उजियारी।
श्री बिहारीदास आदरस हृदौ करि लोचन चारु चितै पिय प्यारी॥८२॥

यदि तुमने अपने साधनन के मर्म कूँ विवेक द्वारा बिचार नाँइ करि, वेदन कूँ कण्ठस्थ हू करि लीने, तौहू कहा है सकै है? जैसे जगत में सिकलीगर उस्तरा को डील-डौल आकार-प्रकार बनाइ, कुरंद ते धार निकारि, रंदा ते चिकनो करि, चमकाइ दै है, तैसे हीं प्रथम तौ सिकलीगर की नाईं गुरुदेव साधक कूँ प्रतिकूल बातन सौं छुड़ाइ, परमार्थ के अनुकूल सब आचरनन कूँ उपदेस देइ हैं, फिर कुरंद स्वरूप साधु संग करते-करते साधक के मन में भाव उपजन लगै है, फिर श्रुतिन की सार रंदा स्वरूप सरस रसीली कथा सुनि-सुनि कैं बाको हृदय सरस रंगीलो बनि जाइ है, जासों मोह रूपी मोरचा मिटि, प्रेमभक्ति को उजैरा हृदय में छाइ जाइ हैं, याते

हे बिहारीदास ! अपने हृदय कूँ ऐसो आदर्श बनाओ, जासों अपनी भावरूपी दृष्टि ते श्रीजुगल को मनभामते सतत निहारा करो।

परमारथ दूरि दुरयौ जु हुतौ है रुजिगार व्यौहार करी हठि हाँसी।
अनुरागिनि सौं बैराग करैं विषइनि सों प्रीति प्रतीति न नाँसी ।।
लोभहि बाँधि अधीर किये धृगु क्यौं कटै कंठ दुरास की फाँसी।
बाउ बिहार कौ साज कहावत हैं हम हूँ रस-रीति उपासी ।।८३।।

इन लोगन कूँ देखो कि जो सब परमार्थन ते अति दूर छुप्यौ भयौ नित्यबिहार रस हो, बाको हठपूर्वक रुजिगार-व्यौहार करि-करि कें परमार्थीन में अपनी हाँसी कराइ रहे हैं, अनुरागी जनन ते तो सतत वैराग करें हैं, और विषयिन ते इनकी प्रीति एवं विस्वास नष्ट नाँइ होय है, लोभ ने बाँधि के इनकूँ ऐसो अधीर करि राख्यौ है कि कंठ की दुरासारूपी-फाँसी कैसेहु नाँइ कटै है। तापै हू अति बाह-बाह करिबे योग्य इनकी एक और हू बात है कि–नित्यबिहार कूँ सजाइ-सजाइ कें कहैं हैं, और अपने आपकूँ रसरीति के उपासक बतावैं हैं।

अनन्य भजन कौ नाँउ सुन्यौं नहिं आसन बैठन कौं मरियै।
मंत्र न कंठ कीयौ बिछीया अहि कै मुख हाथ दियें जरियैं ।।
आपु अवन्य लुठै सठ के हठ चंद कौं चाहत हैं परियै।
मन में हुलसैं तन क्यौं परसैं जु उचेन सुचेंन मतैं टरियै ।।८४।।

जिन लोगन ने अनन्य भजन कौ तो कबहूँ नाम हूँ नाँइ सुन्यौ, और अनन्यता के आसन पै बैठिबे के ताईं मरे जाँइ हैं, वे ऐसे हैं जैसे काहू ने बिच्छू को हू मंत्र कबहूँ कण्ठ नाँइ कीन्यौ और वो सर्प के मुँह में हाथ देवैगो तो मरैगो ही। फिर आपने दूजौ दृष्टान्त दैके हू कह्यौकि–जैसे कोऊ भूमि पै लोटयौ भयौ मूर्ख चन्द्रमा कूँ पकरिबे की हठ करै, तैसेही ये मन में तो हुलसैं हैं, पर अपने चित्तकूँ ऊँचो न उठाइबे के कारन बस्तु को स्पर्स नाँइ करि सकै हैं। यातें इनके मन मते सब टरि जाँइ हैं।

दासि भाइ बिनु बहुत बिगूचैं यौं ही गई राइगाराई।
होत कहा अबकैं पछितायैं प्रथम न बाँटि छाँछि में नाई ।।
पावै कहा ढकनि मैं ढूँढै अति छोटी चुटकी न समाई।
छाँडे सरन सुमेर साँवरौ धँनि माँनत धृगु लोक बडाई ।।८५।।

श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज के साँचे दास-भाव के बिना बहुत लोगन के साधन, सयानपनो एवं सब ठाट-बाट योंही चले गये हैं। पहिले ही छाँछ स्वरूप और-और धर्मन ते, अनन्य-धर्मरूपी नवनीत कूँ न्यारो किये बिना अब पछिताइबे तें कहा होइ सकै है। यह नित्यबिहार प्रेम-रस तो इतेक झीनो है कि—और-और स्थूल प्रेम-रस-भाव-रूपी चुटकी ते हू पकरिबे में नाँइ आइ सकै है, ताको तुम श्रुति-स्मृति-शास्त्र-स्वरूप बड़े-बड़े ढकनान के भीतर ढूँढ़ि रहे हो। सुमेरु सदृस सर्वोपरि श्रीबिहारीजी महाराज कौ बल-भरोसो छाँड़ि के तुम जागतिक मान-बड़ाई में ही अपने आपको धन्य-धन्य मान रहे हो।

आवत जात गये गरि बंधन ज्यौं जल मद्धि जोजरी नाव।
और कहाँ लौ कहूँ कृपन मत श्रम करि मरत भक्ति बिन भाव।
श्रीबिहारीदास ह्वै सक्यौ न सठ हठ हारचौ जन्म जुवा दैं दाव।
रह्यौ न टाँकु निजु टेक गहैं बिनु टहलहि टहल टहलि गई आव ।।८६

जल में अति जीर्ण नौका की जैसी स्थिति है जाय है, तैसे ही जनमते-मरते कर्मन कौ बन्धन तुम्हारे गरे और हू अधिक बढ़ि गयौ है, तिहारी येहू बात हम कहाँ ताऊँ कहैं! कृपन बुद्धि के कारन, सतत परिश्रम करि-करि कें हठ द्वारा अपने यावत् जन्मन कूँ योंही गँवाइ, श्रीबिहारीजी महाराज के अनन्य दास कबहूँ नाँइ है सके। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि—अनन्यता की निज टेक गहे बिना, तुम्हारी इज्जत कैसे हू नाँइ रहि सकैगी। ऐसे ही नाना धर्मन में टहलते-टहलते तुम्हारी समस्त आयु टहलि गई है।

दूध की साध चरावत चौंट छुयौं थन ऐंन वहौ उनमाँनियै।
मीडत मीडत डीठि मिटी मसि खोटौ खरौ करि लेत पिछाँनियै।।
श्री बिहारिनिदासि बिरोधनि सौं बकबाद कहा सठ सौं हठ ठाँनियै।।
पूछत आँध फिरै बहके कत धाँन कौ गाँव पयार तैं जाँनियै ।।८७।।

जैसें कोऊ दूध की आसा ते चौंट गैया कूँ चरावै, और जब दूध निकासिबे के ताईं थनन कूँ छुवै, तब बाकूँ स्पष्ट उनमान है जाइ है। ऐसे ही काजर आँजते-आँजते तुम्हारी आँख अंधी है गई, तौहू तुम्हें काजर के खोटे-खरे को ग्यान नाँइ भयौ। अर्थात् रस प्राप्ति के ताईं जिन साधनन कूँ करते-करते तुम्हारो जन्म बीतबे पै आयौ, तौहू तुम्हें आज ताऊँ यह ग्यान नाँइ भयौ कि हमारे इन साधनन में रस है या नाँइ,

याते आप अपने आश्रितन ते कहिबे लगे कि—हे भाई ! इन बिरोधिन सौं बकवाद करिबे ते कोऊ लाभ नाँइ है क्योंकि ये मूरख लोग अपनी हठ कूँ नाँइ छाँड़ि, अज्ञान के वशीभूत होइ, अंधेन की नाईं यौंही बहकते डोल्यौ करें हैं। जैसें धान उपजिबेवारे गाँव की पहिचान पयार ते ही सहज है जाइ है, तैसे ही प्रेम परिपाटी के साधकन की पहिचान बिनकी बातन तें ही है जाइ है।

बाँध्यौ थान चराइ पौंछि मुँह मोटो करि ताजी के जोलैं।
टटुवा टूटी पीठि पलानौं पाखर परें पादि दीयौ पौलैं॥
बकुचा मिहीं माँहि कसि गूदरु आयौ निकसि खसम के खोलैं।
रंग्यो स्यार ऐसै जग डहक्यौ जोगी जादु सिद्ध बिनु बोलैं॥८८॥

श्रीगुरुदेवजू-पाखंड द्वारा जो सिद्ध बनैं, एवं अज्ञानी-श्रद्धालु बिनमें बिस्वास करें, बिनसों सावधान करते भये आपने कह्यौ कि—जैसे कोऊ बड़े डील-डौल वारो जाट मौन धारन करि, बनावटी सिद्ध योगी बनि कें लोगन कूँ ठगिबे लग्यौ होइ, वैसे हीं ये रंगे सियार सदृश पाखंडी लोग, संसार को डहकायो-बहकायो करें हैं। पास में कछु बस्तु न होइबे ते अंत में ये ऐसे थोथे निकरें हैं, जैसे बहुत सुन्दर रेशमी कपड़ा के बकुचा कूँ खोलिबे पै वाके भीतर ते फटे-पुराने, गरे-सड़े गूदर निकरि आये होंइ। अथवा यों समझो कि काहू आदमी ने एक मरियल घोड़ा को वड़ौ मुख और लंबी पूँछ देखि कें बाकूँ उत्तम ताजी घोड़ा समझि, अपने स्थान पै लाय खवायो-पिवायो और जब सवारी करिबे के ताईं बाके ऊपर पलानि डारी, जीन कसी, तो बाकी टाँट टूट गई, पीठ धसकि गई, और पोले दूबरे शरीर ते पाद निकसि गयौ।

बहु बिधि कलपि कपोल बनावत बात सुनावत चुपरी घौटी।
अपनें मन हठ कहत कछू सठ मैंटत कह्यौ परायौ रोटी॥
श्रीबिहारीदास जे परखि न बांधत एक न खरी अंत सब खोटी।
दुरत कहा लीप्यौ भुस पर कौ करुवा होय सु निकसै टौंटी॥८९॥

बहुत से लोग संसार में चिकनी-चुपरी, घुटी-घुटाई कपोल-कल्पित बातन कूँ बनाइ-बनाइ कें गाल बजायौ करें हैं। ये मूरख अपने मन की हठ सों कछु की कछु बात कहैं हैं, जासों सीधे-सादे वक्तान कौ कथन लोगन कूँ अरुचिकर लगन लगै है, ताते बिनकी रोटी हू मारी जाइ है। हे बिहारीदास ! जो लोग सब बातन कूँ बिवेक द्वारा भलीभाँति परखि कें, अपने हृदय में नाँइ धारन करें हैं, बिनके पल्ले सब

खोटी ही खोटी रहि जाइ है और वे ऐसे प्रगट है जाँइ है, जैसे भुस के ऊपर कोऊ कितेक हू लीपै, वो छुप नाँइ सकै है। याते हे भाई जो करुवा होयगो तो बामें टोटी अवश्य होयगी, तैसे ही साँचे परमार्थिन में कछु न कछु विशेषता रहनी-रीति सबनतें न्यारी ही दरसैगी।

जाकौ गुरू भसकै भुसै सिष्य तौंतरौ खाइ।
नाज खात मुंहुँ मारियै ए दोउ पसु प्राइ॥
ए दोऊ पसु प्राइ भाइ बिनु भटकि भये खर।
सनमुख है क्यौं सकैं डरैं बरनाश्रम के डर॥
कहत बिहारीदास मैंड मीडै ही साकौ।
रसिक अनन्य कहाइ कहै न सभा जस जाकौ॥९०॥

जाको गुरु ही भुस को खायो करें, वाको सिष्य तो तोतरो खावैगो, यदि वे नाज खाइबे के ताईं लपकैं तो बिनके मुंह पै लठिया परै है। अर्थात् जब गुरु ही संसार में लगि रहैं हैं, तौ बिनके सिष्य नितांत विषयन में ही फँसे रहैंगे, काहू समय भक्तन के संतसंग में ये चले हू जाँइ तो, इनको मन वहाँ ऐसो मुरझाय जाय है, मानो काहू ने लठिया मारि दीनी हो! साँचो भाव के बिना संसार में भटकि-भटकि कें ये दोऊ खर सहस ही है गये हैं, बरनाश्रम के डर सों श्रीबिहारीजी महाराज के अनन्य जनन के सन्मुख हू नाँइ है सकैं हैं। याते श्रीबिहारीदास या बात कूँ कहैं हैं कि—जागतिक-मर्यादान कूँ साँचे अनन्यजन ही मिटाइ सकैं हैं। जब ताऊँ रसिक-अनन्य कोऊ नाँइ है जाइ, तब ताऊँ अनन्यन की सभा में बिनको जस नाँइ होइ सकै है।

सब दिन दुखी दलिद्री बाहिर घर में छाँडि गये नँदनन्दा।
हाँडी हाथ ताक कौडिनि की मग मग रज छाँनत मतिमंदा॥
श्रीबिहारीदास सौं ऐंठि चलत सठ विषइनि कैं द्वारै छंद बंदा।
किये सिंगार भिखारी डोलत घर-घर फिरत उगाहत चंदा॥९१॥

आनंद-निधि साक्षात् श्रीबिहारीजी महाराज कूँ छाँड़ि कें ये दुखी-दारिद्री-मतिमंद लोग परदेस में कौड़िन की ताक लगायें, हाथ में हाड़ी लै, सब दिन मग-मग में खाक छानते डोलैं हैं। श्रीभगवदीय जनन ते तो ये ऐंठि के चलैं हैं और विषइन के द्वार पै नाना प्रकार के छंद-बंदन को बँधान बाँधि के खुसामद करैं हैं। भक्ती को शृंगार करि, ये भिखारिन की नाईं घर-घर चंदा माँगते डोलैं हैं।

माँगत भीख जनमु गयौ गई न भीख की ऊख।
प्रेम पदारथ दूरि है विन सेयें रज रूख ।।
बिन सेयें रज रूख दुख सहि लेत घनेरे।
कहा कियें अहंकार बिपति आपदा गहि घेरे ।।
होत न सकुच गिलानि मनहि धर्मं लघु लागत।
कहत बिहारीदास भीख भक्ता क्यौं माँगत ।।९२।।

जो लोग श्रीवृन्दावन कूँ त्यागि, परदेसन में जाइ-जाइकें भीख माँगते डोलै हैं, तिनके प्रति लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—इनको समस्त जन्म ऐसे ही भीख माँगते-माँगते चल्यौ गयौ, किन्तु इनकी भीख माँगिबे की भूख आज ताऊँ नाँइ मिटी, सर्वोपरि सुखदाई प्रेम तो मन-क्रम-वचन द्वारा दृढ़ अनन्य भाव सों श्रीवृन्दावन रज-लता कूँ सेये बिना अति दूर है, जाकूँ तो ये सेवैं नाँइ हैं, और अनन्त दुःखन कूँ सतत सहते रहैं हैं। अपने मन में चाहे कितेक हू अहंकार कियो करैं, पै आपत-विपत तो सदाकाल इन्हें घेरे ही रहै है, तौहू ये लोग नेंक हूँ संकोच, ग्लानि नाँइ करैं हैं, धर्म के स्वरूप के आगे ये अति लघु लगैं हैं, याते श्रीबिहारीदास स्पष्ट कहैं हैं कि साँचे भक्तजन भीख कैसे हू नाँइ माँगैं हैं।

घर-घर बहैं भार द्वार रौकैं परदार पौरिही में परि रहैं चारौ जाम जागई। अनहीं बुलायें जाँय ताहि न सुन्यौ सुहाइ तानंनि बनाइ बिन अनुराग रागई ।। स्वामी गुसाँई कहाइ बातैं बहुतैं बनाइ परदा सौ फाटि जाइ जब घिघाइ माँगई। दारी कौं सिंगार जूठिबारी कौ अहार यौं भिखारी को सिंगार कछू नीकौई न लागई ।।९३।।

कोऊ भक्ति कौ बेश लै, परदेस में जाइ, अपने आसन-बासनन कूँ उठाइ, घर-घर डोलतो भयो, काहू बड़े धनपती को घर पूछतो-पूछतो रात कूँ अबेरी बाके घर पहुँच्यौ, पहरेदारन ने जब वा समै भीतर जाइबे ते रोकि दीन्यौ, तब तौ बेचारो पौरी में ही परि, सबरी रात जागते-जागते ही बिताई। भोर होत खेम बिना ही बुलाये धनपति के पास गयौ। वाकूँ इनकी बात वा समय सुनिबे में हू नाँइ सुहाय रही ही, तौहू बिना हीं अनुराग के तानन कूँ बनाइ-बनाइ वाकूँ रिझाइबे के ताईं गावन लग्यौ, देखो ! ये लोग अपने कूँ स्वामी-गुसाईं तो कहावैं हैं, भक्तिभाव, ग्यान, बैराग्य की बहुत सी बातें हू बनावैं हैं, किन्तु जब घिघियाय-घिघियाय के माँगैं हैं,

तब इनको सबरो परदा फाटि, चौरे आ जाइ है। हे भाई ! जैसे व्यभिचारिनी को शृंगार, मेहतरानी को अहार काहू को नीको नाँइ लागै है, ऐसे ही भिखारीन कूँ भक्ति कौ शृंगार सोभा नाँइ देवै है।

नेष्टा कोटि करत पेटन कौं ओट गहत लालची लटोरा।
चुपरि चुपरि मिलवत इत उत की अनहित गति ए चुगल चटोरा ॥
श्रीबिहारीदास सौं मिलत कपट कैं पुनि प्रगटत नटि जात नटोरा।
धृगु जीवौ ऐसौ जसु अपजसु जीवत निलज निघर घटोरा ॥९४॥

कछु अति स्वार्थी लोग पेट भरिबे के ताईं अनेक प्रकार की निष्ठा दिखावैं हैं। ये लालची-लटोरे इत-उत माऊँ की चिकनी-चुपरी बात लगाइ-लगाइकें विना मतलबकें ही औरनि की चुगली कियो करैं हैं। श्रीभगवदीय जनन ते तो ये कपठ सों मिलें हैं और बिनते नाना प्रकार की चुगली हू करैं हैं, बात खुलिबे पै, साफ नटि हू जाँइ हैं। ऐसे निलज लोगन कौ जीवन जगत में अपयस लै-लैकें बेकार ही जाय है।

कछु गुन दोष बिचार कीयौ न मिलै सब कूर कुमंत्र करी।
अपनौं मुख आपहीं मारि सुधारि धरचौ धुबिया मन घालि घरी ॥
स्याँम सहाव करैं जिनकौ तिनकौ ब्रत राखत हेरि हरी।
श्रीबिहारिनिदास बुलाइ लियो सब चारनि के मुँह छार परी ॥९५॥

दुष्ट लोग गुन-दोषन को कोऊ बिचार नाँइ करि, आपस में मिलि, खोटे कामन कूँ करिबे को ही निश्चय करते रहैं हैं। धुबिया मन के बिचारवारे ये लोग अपने मुख कूँ मानो आपही मारि-मारि के सुधार रहैं हैं। श्रीहरि के दासन कूँ दुख दैबे के ताईं दुष्ट लोग चाहे कितेक हू चेष्टा क्यों न करैं, पै जिनकी रक्षा स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज करैं हैं, बिनके आश्रितपने के व्रत कूँ वे आप हीं राखैं हैं। ऐसे ही आपने मेरी रक्षा करि, अपनी सरन में लै, दुष्टन के मुँह पै खाक डारी।

श्री गुरु द्रोह मोह मद छाक्यौ कियौ कुमंत्र कपूत कुवादै।
जिनकी कृपा पेट भरि खायौ दीन पिता दालिद्री दादै ॥
तिन सौं सरिवरि करत अभागे चन्दा छिपत न अंचल अछादै।
रह्यौ गँधाइ जगत में अपजस साधै बैर गली में पादै ॥९६॥

कृतघ्नी स्वभाव के कोऊ-कोऊ कपूत, कुबुद्धि लोग ऐसे खोटे विचार करिबे-वारे होंइ हैं कि मोह-मद में भरि, श्रीगुरुन ते ही द्रोह करिबे लगि जाँय हैं। अनेक

पीढ़िन ते दारिद्री होते भये हू, जिनकी कृपा ते पेट भरि खावन लगे, दुर्भाग्यबस तिनसों ही वे बरोबरी करन लगे हैं। बिन लोगन कूँ इतेक हू ग्यान नाँइ है कि चंदा के आगे हथेली लगाइबे ते वो छिप नाँइ सकै है, ऐसे निर्बुद्धि जनन को अपजस यद्यपि संसार भर में फैलि रह्यौ है, तौहू ये लोग यों कहिकें बैर बाँधन लगे हैं कि तुमने हमारी गली में पादचौ ही काहे कूँ ?

गई सब आव अपराध करि बिमुखई खोइ पति आठ कौ भरम सैका ।
भक्ति व्यौहार कछु भाइ पहिलैं बिक्यौ बहुरि मोल न लहै फटी वैका ।।
धर्म सौं द्रोह करि मोह दाँमनि बँध्यौ ऐब प्रगट्यौ अमल घरी कैका ।
चुगल चुगली करैं जगत फिट फिट करैं थूक डाढी परै हाथ पैका ।।८७।।

मन में अति भ्रम बढ़िबे के कारन कछु लोगन की समस्त आयु, अपराध और विरोध विमुखता करिबे में ही बीत जाइ है। इनकी भक्ति व्यौहार कूँ श्रद्धालु लोग पहिले तो कछु मानै हैं, किन्तु जब इनको स्वारथ चौरे प्रगट है जाइ है, तौ वा भाव-भक्ति को कछु मोल नाँइ रहै है। वास्तव में ऐसे लोग धर्म सों तौ द्रोह करैं है, और धन-संपति के मोह में सदाकाल बँधे रहिबे के कारन अंत में इनको ऐब प्रगट हो ही जाय है, क्यौंकि आखिर अमल रहि ही कितेक देर सकै है। यद्यपि ऐसे लोगन की जगत में फजीती हू होइ है, तौहू ये चुगलखोर चुगली करे बिना नाँइ मानै हैं। याते जो ऊपर कूँ मुँह करिकें थूकै है, वो थूक वाही के मुँह पै परै हैं।

नेष्टा कोटि करत पेटनि कौं ओटि गहैं रुटिहा रुजिगारी ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कैं थरवर ए घर घर भटकत भ्रमत भिखारी ।।
मुख करि रस मन में रिस जैसे परि पंतग पावक न विचारी ।
अगिनि रूप अमनैंकनि सौं अरैं जरि जरि मरत विमुख बिभचारी ।।८८।।

कछु रुटिहा रुजिगारी लोग पेट भरिबे के ताईं अनेक नेष्टा हू दिखावैं हैं और भिखारी बनिकें घर-घर भटकते-भ्रमते हू डोलैं हैं। मुख सौं तौ बड़े मीठे-मीठे बोलैं हैं, और पेट में रिस भरी रहै है। साँचे श्रीबिहारीदास तौ सदाकाल श्रीस्वामीजी महाराज के सिद्धान्त रूपी थर पै अटल-अचल होय, परमार्थ पथ में राज करैं हैं। ऐसे अग्नि-रूप अनन्यन सौं अरि कैं ये विमुख व्यभिचारी लोग या प्रकार ते जरि कैं मरि जाँय हैं जैसें पतंग बिना बिचारें ही पावक में परि अपने प्रान दै देवै है।

जाकौ सदिका खाइयै फिरि तासौं कीजैं बैरु।
ये पापी क्यौं सीझि है होत घराघर घैरु ।।
होत घराघर घैरु मैल व्याप्यौ माया कौ।
खात पियत इतरात नाँउ न निहोरौ ताकौ ।।
समझि बिहारीदास कहत पटतर दैंउ काकौ।
नाँउ लेत सकुचात सबै जग अपजस जाकौ ।।९९।।

कछु लोग जगत में ऐसे हू अति अधम प्रकृति के होय हैं कि जाकौ दियौ भयौ अन्न खाँय हैं, तासौं ही बैर करिबे लगि जाँय हैं, ऐसे पापीन कौ उद्धार कैसेंहू नाँय है सकै है। अति मलीन माया कौ मैल इन पै ऐसो चढ़ि जाय है, जासों सब घर कौ घर ही याही बात कूँ घेरिकें अपनाय लेवै है। जाकी कृपा सौं खाय-पी कें इतराय रहैं हैं, वा मालिक कौ कबहूँ नाम हू नाँय लेवैं हैं। महतपुरुष श्रीबिहारीदास या बात कूँ कहैं हैं कि इनकी उपमा के ताईं जगत में कोऊ होय ही नाँय सकै है, जिनकौ अपजस समस्त संसार में फैल रह्यौ है—ऐसे लोगन कौ तौ मुख सौं नाम हू लैवें में संकोच होय है।

देस दर्व्य थल काल जल कछु न उपेछा जाहि।
रोग भोग सुच असुच में पावन प्रभु भजि ताहि ।।
पावन प्रभु भजि ताहि डाहि लागै जाहि जन की।
तन को कछु न गिलांनि करै मानै सब मन की ।।
कहत बिहारीदास तहां कछु वै नहिं कसमल।
एक नाम निजु भजौ भैया तजि देस दर्व्य थल ।।१००।।

फिर आप बोले कि अति अद्भुत दयालु, कृपालु पतितपावन हमारे श्रीबिहारी जी महाराज ऐसे हैं जो देस, द्रव्य, थल, काल, जल आदि काहू की अपेक्षा नाँय करि कें अपने जनन पै सतत कृपा ही करते रहैं हैं। या प्रकार के अति पतित पावन प्रभु कूँ रोग-भोग और सुचि-असुचि कौ बिचार छाँड़ि, सब समय में मन लगाय कें भजनौं चहिये। ये अद्भुत उदार सिरोमनि प्रभु देह की कछु ग्लानि नाँय करि, केवल मन के भावन कूँ ही सतत ग्रहन कियो करैं हैं, और अपने जनन के हित के ताईं डाह सदृश निरंतर आतुर हुये रहैं हैं। याते श्रीबिहारीजी के दासन कौ कथन है कि—

और-और काहू बात को अपने मन में कश्मल नाँय राखि, एक निज नाम कूँ ही सतत सेवो, अर्थात् श्रीहरिदास नाम कूँ ही निरन्तर रटो।

इक मन कूकर भूसनौं अरु दीनौं हुलकाइ।
श्रीबिहारीदास कहि क्यौं बचै बबकि कांधि चढि खाइ ।।
बबकि काँधि चढि खाइ धाइ लागै बिनु हटकै।
खसमैं हूँ श्रम होइ खोइ पति घर घर भटकै ।।
इन्द्री सकल निरोधि सोधि करि ठौर सुलभ तन।
बिगरी बिडरी घेरि मिलै सूधौ करि इक मन ।।१०१।।

जैसे भूसने कुत्ता कूँ लगै-लगै करि, कोऊ और हू हुलसाइ देवै, तौ वह कुत्ता बबकि कंधा पै चढ़ि खावैगो ही। तैसे ही स्वान सदृश ये मन एक तो सहज सुभाउ ही संसारी विषयन के माऊँ हुलसतो रहै है और तुम हूँ वाकूँ मनभामते विषय बिलसाते रहोगे तो तुमहीं बताओ कि फिर वो कैसे रुकि सकैगो ? याते याकूँ हटकि कें नांइ राखोगे तो धाय-धाय के जागतिक विषयन माऊँ जायगो ही, और ताही कारन घर-घर भटकते हू डोलोगे, जासों इष्ट एवं गुरून कूँ हू दुख होयगो। ताते हे भाई ! मैं तुमसों कहूँ हूँ कि देव-दुर्लभ यह मानव देह तुम्हें सुलभ मिल रही है। अपनी इन्द्रिन कूँ निरोध, वासनान में विगरी भई सबन कूँ घेरि, मन कूँ भलीभाँति सूधो करि श्रीबिहारीजी महाराज के श्रीचरनकमलन में लगाओ।

तीरथ हू कौडी पाँडे कौं कहा मगर मैंडुकी बग भखुला।
आगैं धरी मिश्री न छ्वै सकै मारै मुँहुँ जो खाइयत बखुला ।।
श्रीबिहारीदास पावैं न पिछानैं भौंडे जानि भंडार सुनखुला।
कहा करै मरजीया अभागौ पावै पैठि समुद्र हू सँखुला ।।१०२।।

जैसे कोई दुर्भगा मानव समुद्र में गोता लगाइ कें संख कूँ ही लावै, तथा मगर कूँ केवल मेंड़की-बगुला ही खाइबे कूँ मिलें, ऐसे ही पांडेजी को तीरथ पै हू कौड़ी ही प्राप्त होय, तैसें ही ये लोग प्रेमभक्ति-रूपी मिश्री कूँ तो सपरस हू नाँइ करि सकैं हैं, और दुखदाई मायिक वस्तुन में मुँह मारते डोलैं हैं। अर्थात् साक्षात श्रीवृन्दावन तथा श्रीबिहारीजी महाराज में तो ये लोग मन लगावैं नाँइ हैं, औरु संसारी पदार्थनमें सुख ढूँढते डोलैं हैं। देखो इनकी अज्ञानताकूँ कि-श्रीबिहारिदासनकूँ पाइबे पैहू नाँइ पिछानैं

हैं। अरे मूरख ! सुनि, यह महासुखदाई अद्‌भुत भंडार कैसो सहज में ही तेरे आगे खुल्यौ भयौ है ?

कितोऊ कह्यौ सुन्यौ समुझायौ नैंकु न भयौ चित कठमठा।
अन्नठुररू मन रह्यौ ठौठरौ यों सठ कौ संदेह न नठा।।
श्रीबिहारीदास रमूजहि समुझै गदहा चलै बजायै लठा।
कलाकन्द डारत ओली तैं बाँधे गाँठि लीदि के गठा।।१०३।।

जैसे अनठरो नाज ऊखल में कुटि नाँइ सकै, दँतरा सों दरिबे में नाँइ आवै, और आँच पै गरै नाँइ, ऐसे अनठरे-ठोठरे मन वारे मूरख लोगन कूँ कितेक हू सुनायो समझाओ जाय, न तो बिनके सन्देह ही मिटैं हैं, और न बिनको चित्त नेक हू सरस होइ है। हे बिहारीदास ! जैसें गधा लट्ठ बजाइबे ते ही चलै है, तैसें ही ये सठ विधि-निषेधरूपी-सासन ते ही चलै हैं। ये अपनी झोली में ते श्रीबिहारीजी महाराज के प्रेमरूपी कलाकंद कूँ तो डारि रहैं हैं, और गदहा की लीद सदृस मायिक विषइन की गाँठ बाँधि रहैं हैं।

रज तजि भजें पाषाँन आंन-मति सब विपरीति करत कृत कैदा।
लोभी लोग भोग के लालच बढ्यौ रोग बिनु गुरु सद-बैंदा।।
सेवग तें भयें सत्रु कुमंत्री निकुंज कटाइ कियो नापैदा।
बाढी लढी कुल्हारी घर घर गाडिनि गाहि किये मग मैदा।।१०४।।

सद्‌गुरु वैद्य के बिना लोभी लोगन कें संसारी भोगन के लालच कौ रोग, या प्रकार सों बढ़ि गयौ है कि इन लोगन नें रज को भाव ही तजि दीन्यौ है। इनकी बुद्धि विपरीत भावरूपी कैद में जकड़ रही है, याते इनकूँ कोऊ कितेक हू समुझावै, तौहू ये नाँइ समझैं हैं। खोटे बिचार होइबे के कारन ये सेवक ते सत्रु बनि, लता-कुंजन कूँ जड़ सहित कटबाइ, पाषाण भरि-भरि गाड़ी लाइ, मार्गन कूँ मैदा सदृश करि दीनो है, याही ते घर-घर गाड़ी-कुल्हारी बढ़ती जाँय है।

सेर कौं स्यारु गयार गली गली सेर ही कों घर कौटिक पैठै।
सेरु बिना न सुमेरु सहाइकु सेरु भरैं तब सेर ह्वै बैठै।।
सेर सुहाइ नहीं सिर वाहि में सौ मन गाडि मुरै सठु ऐंठै।
सेर कौं पाइ लडाइ बिहारिनि सोधि लै दासि समाइगौ कैठै।।१०५।।

सियार सदृश स्वभाव के लोग पेट भरिबे के ताईं ही गली-गली कोटिक घरन में जायौ करें हैं। इनकूँ ये ज्ञान नाँय है कि सिंह सदृश दृढ़ अनन्य धर्म के बिना सुमेरु पर्वत सदृश सर्वोपरि परमार्थ हू रक्षा नाँय करे है। याते सेरेक अन्न ते पेट भरि, सबसौं निरपेक्ष, निस्पृह होय, सिंह-सदृश निश्चिन्त रहनौ चहिए; किन्तु इतेक सुखदाई सर्वोपरि अनन्य धर्मरूपी सेरेक बोझ तौ इन लोगन कूँ माथे पै सुहावै नांइ है और सौ मन बोझ की गाड़ी-सदृश जागतिक जीवन ते लैकें अनेक धर्मन की आशारूपी बोझ कूँ खेंचते भये अपने मन में ऐंठे डोलें हैं। मैं तुम सौं कहूँ हूँ कि सेर सदृस नित्य-बिहाररूपी सर्वोपरि अनन्य धर्मोपासना कूँ पाय, साक्षात श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ सतत लाड़ लड़ाऔ, फिर तुमहीं अपने मन में भलीभाँति सोधिकें देख लेवो कि ऐसो तुम्हारो सौभाग्य कहाँ समाइ सकैगो ?

इन्द्रिन कें सुख स्वारथ आरत बात बनाइ गढ़ैं गढि छोलै।
परमारथ प्रीति न पूज की रीति पुरांन की पोथी पचीसक खोलै ॥
बृन्दावन धांम सकांम बसै सठ दैं नगु लैत विषै खरि तोलै।
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि विस्वास न प्रेम बिना झखमारत डोलै ॥१०६॥

ये सठ इन्द्रिन के सुख एवं स्वार्थन में अति आरत होय, गढ़ि-गढ़ि छोल-छोल कें परमार्थ की बात बनावें हैं—वैसें न तौ परमार्थ में इनकी प्रीति है और न पूजा की रीति कूँ हूँ जानें हैं, तौहू पुरानन की पच्चीसन पोथीन कूँ खोलिकें बैठि जाँय हैं। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की दासता में विस्वास नाँय होयबे के कारन ये सकामी सठ अद्भुत प्रेममय सर्वोपरि श्रीवृन्दावनधाम में ऐसें बसें हैं कि जैसे कोऊ अमोल रतन, हीरा, नग आदि कूँ देय कें, बदले में विषयरूपी खर कूँ ही तुलाय लेवै, याते ये स्पष्ट दीखै है कि प्रेम के बिना जगत में ऐसे ही झखमारते डोलें हैं।

जुवती जन जौ मन लै चलै सो सुत पीर बटावै लडावै सुमाई।
संकोच परे प्रांन पालै पिता प्रभु हित सुमितु सुभावँ सु भाई ॥
निबहै न कहूँ कबहूँ सुनि लै सबकों इक ठिकि अवधि बताई।
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि सदा सहाइ सही जाकौ स्याम सहाई ॥१०७॥

जगत में सराहनीय जुवती एवं जन वे ही होइ हैं, जो अपने पति के मन कूँ लैकें चलै हैं, वास्तविक माँ वाही कूँ समझनो चहिये, जो अपनी संतान की पीड़ा कूँ बटाइ लाड़ लड़ावै है, और विपत्ति में प्रानन कूँ प्रतिपालन करै सोई पिता, ऐसे ही

साक्षात् श्रीप्रभु सों हित करावै, वो ही साँचो मित्र, तथा जो स्वभाव सों स्वभाव मिलाइ कै चलै वाकूँ ही भाई समझनो चहिये। किन्तु मैं तुमसों साँची बात कहूँ हूँ कि इन सब जागतिक संबंधन की एक सीमा होइ है, बाते आगे निबाहिबेवारे कोऊ नाँइ दीखै है, याते साँची सहायता बिनकी ही समझनी चहिये, जिनके सहायक एक मात्र स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज ही हैं, और वे ही महत्जन श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के दास बने हैं।

कहा श्रम साधन के जम नेम कहा बिनु प्रेम पुरांन के पाढै।
कहा भइ सोभ सुमेरहि पीठि दैं दीठि दै आडहि कौ करि काढै॥
लाज नहीं बिनु साज भये कज कुंजर तैं गिरि गादहि चाढै।
श्रीबिहारिनिदास कहा धर्मी बिनु धर्म घटै तौ कहा धन बाढै॥१०८॥

बिना प्रेम कें समस्त साधनन कौ परिश्रम, जम, नेम एवं पुराननि कौ पढ़िबौ, सब बेकार ही है। अनन्य धर्मरूपी सुमेरु कूँ पीठ दैकें, औरन के माऊँ देखिबे ते न तो तुम्हारी कोऊ सोभा ही होयगी, न तुम्हें कोऊ हाथ पकरि कै निकार ही सकैगो। जैसे कोऊ हाथी ते गिरि, गधा पै चढ़ै, तैसें हीं श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की अनन्य दासता तें भ्रष्ट होइ, और-और धर्मन के साज-सजाइबे ते कोऊ सुख-संतोस नाँइ मिलै है, तौहू बिनकूँ लज्जा नाँइ आवै है। हे बिहारिदास! अपने अनन्य धर्म कूँ निभाये बिना, कछु धन-संपत्ति हू बढ़ि गई, तातें कहा है सकेगो?

श्रीबिहारी बिहारिनि कौ जस गावत रीझैं देत सर्वसु स्वाँमी।
अमनैंक अनन्यनि कौ धन धर्म मर्म न जानैं कर्मठ काँमी॥
श्रीबिहारिनिदास विस्वास बिना ललचात लजात लहै नँहि ताँमी।
और कहा वरनें कवि बापुरौ बादि बकैं श्रम कैं मति भ्राँमी॥१०९॥

श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के महा विचित्र सरस रसीले, प्रेम अनुराग भरे गुनन कूँ जो भी जन विश्वास पूर्वक उमँग में भरि-भरि कें अनन्य भाव तें गावैं हैं, तिनपै अनन्य-नृपति निज प्रेमावतारी रिझवार सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज अति रीझन में विवस होय, अपने प्रानन को अगाध प्रेम वाके हृदय में भरि देवैं हैं, ये अति मर्म की बात हम अनन्यनि को ही निज धर्मरूपी धन है। कर्मठ सकामी लोग या मर्म कूँ नाँय जानिबे के कारन वस्तु को प्राप्त करिबो तो दूर रह्यौ, अपने मन में लालच करिबे में हूँ लजावैं हैं। या मर्म कूँ जब बिचारे महाकवि हू वर्नन नाँइ करि सके,

तब भ्रामिक लोग तो बेकार ही बकवाद कियो करैं हैं। अर्थात् अति विशुद्ध साँचे प्रेम को स्वभाव ही ऐसो होय है कि अपने प्रेमास्पद के गुनन कूँ सुनि, अति रीझि अपनो सर्वस्व वाकूँ दे देवै है।

रसिक सिरोमनि कृपा कौ, जानौ यहै उपाव।
कुंजबिहारीलाल के, उमँगि उमँगि गुन गाव॥—श्रीललितकिशोरीदेवजू

अम्बर सम्बर बास बसे घमडे घनघोर घटा घँहराँनी।
जद्दपि कूल करारनि ढाहति आँनि बहै पुल ही तर पाँनी॥
श्रीबिहारिनिदासि उपासित यौं निरनै करि श्रीहरिदास बखाँनी।
सबै परजा ब्रजराज हूँ लौं सर्वोपरि कुंजबिहारिनि राँनी॥११०॥

जैसे पानी ते भरी भई घनघोर घटा आकाश में घहरावैं हैं, फिर वो पानी बरषि, नदीन कूँ उमड़ाइ, कूल-करारन कूँ तोरतो-फोरतो चलै है, तौहू वा पानी ने एकमात्र पुलिया के नीचे ते ही निकसनो परै है, तैसे ही श्रीलालजू अपनी प्रेम-रूप-रस माधुरी में भरि, छैल-छिकनिया होय, यावत् प्रेमिन के चित्त कूँ चुराय, कूल-कराररूपी समस्त मर्यादान कूँ तोरि-फोरि कें ही सतत चलैं हैं, तौहू वे सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के प्रेम में दीनातिदीन होय, निरंतर ऐसे आधीन रहैं हैं, जो कि श्रीप्यारीजू के चरनकमलन में परिबो ही अपने प्राननि कौ पालन मानैं हैं।

या सिद्धान्त को भलीभाँति निरनय करि, श्रीस्वामीजी महाराज ने ही यावत् रसिकन के समक्ष बरनन कीनौ है। सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के दास याही सिद्धान्त के अनन्य होइ निरंतर उपासना करैं हैं। ये निश्चय बात है कि श्रीव्रजराज पर्यंत तो या रस-देस में प्रजा स्वरूप हैं, और सर्वोपरि श्रीकुंजबिहारिन रानीजू कौ ही इकछत राज्य है।

हमारे माई श्यामाजू कौ राज।
जाके आधीन सदाई साँवरो या व्रज कौ सिरताज॥

श्री हरिदास कै गर्व भरे अमनैक अनन्य निहारिनि के।
महा-मधुरे-रस पाँन करें अवसाँन खता सिलहारनि के॥
दियौ नहिं लेहि ते मांगहि क्यों बरनैं गुन कौंन तिहारिनि के।
किये रहैं अँड बिहारी हूँ सौं हम वेपरवाह बिहारिनि के॥१११॥

फिर आप प्रेम-देस की और हू मर्म की बात निज आश्रितन कूँ बताते भये

बोले कि—हे भाई ! हम श्रीस्वामीजी महाराज को अगाध प्रेम के ऐसे गर्व में भरे रहैं हैं, जो कि सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू की हू परवाह नाँइ करैं हैं, और श्रीस्वामीजी महाराज की कृपाबल ते महामधुर सार-रस कूँ ही सतत पान कियो करैं हैं। जो रसिक सिला सहस ठौर-ठौर के रस कूँ पी-कें आनंद मानि रहैं हैं, बिनके तो हमारे आनंद कूँ देखि अवसान खता है जाँय हैं। बिन रसन कूँ हमें कोऊ देवै तौहू नाँइ लेवैं है, फिर बिनकी लालसा करिबे की तो बात ही कहा है ? ऐसे रसिक अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज के जो दास हैं, बिनके गुनन कूँ कोऊ बरनन ही नाँइ करि सकै है। और-तो-और हमारी प्रानेश्वरीजू के प्रानन कौ निजस्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज ते हू श्रीस्वामीजी महाराज के लाड़-गर्ब ते हम ऐंड़े रहैं हैं।

यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीनित्यविहारिनीजू ते बेपरवाह कोऊ कैसे है सकै है, तहाँ ये समझनो कि श्रीस्वामीजी महाराज को इतेक अगाध प्रेम श्रीगुरुदेवजू पै है, जासों श्रीगुरुदेवजू गर्ब में भरे रहैं हैं, तब श्रीनित्यविहारिनीजू कौ प्रेम श्रीस्वामीजू ते हू अधिक श्रीगुरुदेवजू में होइबो अनिवार्य है। जहाँ जितेक प्रेम होय है, तहाँ तितेक ही लाड़िलोपनो होय है। लाड़िलेपने में परवाह को प्रश्न ही नाँइ रहै है।



सिद्धांत के पद

भक्ति बिना भागवतै कहै। कंठै सोखैं काया दहै॥
मरम न जानैं करमैं करैं। निगुसाँयौ सब काहू डरैं॥
बिना अनन्य न मर्मैं जानैं। जारु जाति न पिता पहिचानैं॥
भक्त सकाम बनिक हठ ठानैं। जोलौं बीज निज वेद बखानैं॥
साखि प्रगट प्रहलाद पुकारै। पंडित पढ़ै न तत्व विचारै॥
आपहिं श्रम करि आपौ मुसै। मिलवत सठ सरबत में भुसै॥
ज्यौं मदघट पावनु सुरसरी माँहिं। न्यारे पतित छुवै को छाँहि॥
दुरी दुरासा मनसा कढ़ै। प्रगटैं तब मन मत्सर बढ़ै॥
कहत सुनत तन बूढ़ौ भयौ। मन आसा तृष्णा नित नयौ॥
सात द्यौस निष्पृह शुक गायौ। राजा सुनि संदेह नसायौ॥
लोभ छोभ आडो ह्वै रह्यौ। श्रीबिहारीदास जस कह्यौ न कह्यौ॥१॥

जिन लोगन के हिरदै में श्रीहरि की भक्ति तौ है नाँय, और भक्तिरसामृत सों परिपूर्न श्रीमद्भागवतजू कूँ कहिबे लगैं हैं तिनकौ कहिबौ कंठ कूँ सुखाय, देह कूँ दहिबेवारौ ही समझनो चहिये। ये लोग इष्ट-गुरु-भाव सों रहित होइबे के कारन मर्म कूँ बिना समझे ही सब काहू सौं डरते भये कर्मन कूँ करैं हैं। बिना अनन्य धर्म धारण कियें, मर्म कूँ ऐसें नाँय जान सकै है–जैसे जार-युवती ते पैदा भयौ बेटा अपने पिता कूँ नाँय पहिचान सकै है। बनियान की नाँई हठ-पूर्वक सकामता ते ही भक्ति करैं हैं, इन्हें ये ज्ञान नाँय है कि–जब ताऊँ सकामता-रूपी बीज हिरदै में रहै है–तब ताँऊँ संसार नाँय छूटि सकै है–या बात कूँ साक्षात वेद हू स्पष्ट कहै हैं, और याही कूँ भक्तराज श्रीप्रह्लादजी हू प्रगट पुकारि-पुकारि कें कहि गये हैं कि विद्वान पण्डित जगत में वही है जो निष्काम भक्तिरूपी तत्त्व कूँ निरधार करै। अन्यथा तो श्रम करि-करिकें आप ही मरै हैं। ये मूर्ख सरबत-स्वरूप शुद्ध श्रीभक्ति महारानी के स्वरूप में और-औरधर्मरूपी भुस कूँ मिलावैं हैं; जैसें कोऊ परमपवित्र श्रीगंगाजीमें मदिरा के घट कूँ डारि रह्यौ होय। ऐसे भक्तिविहीन ये पतित सबते न्यारे दीखैं हैं–साँचे भक्त-जन इनकी छाया कूँ हू स्पर्श नाँय करैं हैं। इन लोगन की छिपी भई मनसा-दुरासा

सब प्रगट है जायँ हैं, यदि कोऊ इन दुरासा-आदिकन की बात कहै तौ इनके मन में बाके प्रति उल्टी मत्सरता बढ़ि जाय है। परमहंससंहिता श्रीमद्भागवतजी कूँ कहते-सुनते इनकौ तन तौ बूढ़ौ है गयौ; किन्तु मन की आसा-तृष्णा नित नई होती ही जाय है। श्रीसुकदेवजी महाराज नैं निस्पृहता सौं सातदिन में श्रीमद्भागवतजू कौ वर्नन कीन्यौ हो, जाकूँ सुनि कैं राजा परिक्षित के समस्त सन्देह नष्ट है गये। और जिन कहिबे-सुनिबेवारेन के मन में लोभ एवं क्षोभ—दोऊ आड़े है रहे हैं, बिनकूँ श्रीमद्-भागवत रूपी अद्भुत हरि के जस कौ कहिबौ और नाँय कहिबौ एक बरोबर ही समझनो चहिए।

श्रीहरिदास उपासत सब सुख। दरस करत सब नसत दुसह दुख ॥
कियौ विवेक उदै विधु आई। तिहि छिन भ्रम तम गयौ पराई ॥
ओछो अधिक न क्रम श्रम रह्यौ। पूरे प्रेम हरषि हरि कह्यौ ॥
अपने सों अपनायत माँनी। कुंवरिकिसोरी कृपा निज जाँनी ॥
जब लगि पर गुन दोष निहारै। तब लगि अपनी वस्तु बिचारै ॥
अस्तुति निंदा सम करि दोऊ। ताके परैं समझि सुख सोऊ ॥
समता भयें विषमता जाई। तब फिरि डर डर माँहि समाई ॥
कायहि काज न करकचु करै। हरि रति होय सु करत न डरै ॥
श्रीबिहारीदास निरभै जस गावै। रसना रस अचवै अचवावै ॥२॥

जो बड़भागी जन समस्त प्रकार के स्वार्थन कूँ त्यागि, साँचे भाव-भक्ति ते श्री मद्भागवतजू कूँ कहैं-सुनैं हैं, बिनके हृदय में श्रीहरि ते हू अति अधिक भाव, बिनके दासन में होयबौ अनिवार्य है। ताकौं लक्ष्य करिकें आपनैं कह्यौ कि—हे भाई! समस्त भागवतन के सिरोमनि अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज की उपासना करत-खेम तुम सर्वोपरि अद्भुत रसमय सुख सों सुखी है जावोगे, क्यौंकि जिनके दर्शन करत खेंम, सब दुसह दुख नष्ट है जाँय हैं, ऐसे श्रीस्वामीजी महाराज नें अति कृपा करिकैं मेरे हिरदै में विवेकरूपी चन्द्रमा उदय करि दीन्यौं, जासौं मेरे समस्त भ्रम और अज्ञान कौ अँधेरौ ताही छिन दूर है गयौ। अब हमारैं छोटे-बड़े काहू प्रकार के कार्य करिबे कौ परिश्रम नाँय रह्यौ है। श्रीस्वामीजी महाराज नें अति प्रसन्न होय, श्रीहरि के पूर्णतम प्रेम कौ उपदेस मोकूँ दै दीन्यौ। जो कोऊ दृढ़ अनन्य होय कैं, साँचे भाव सौं आपकी सरन जाँय हैं, बिनकूँ अपनी प्राणेश्वरी कुँवरि किशोरी

श्रीस्वामिनीजू कौ निज कृपापात्र समझि, अपनो मानि अपनाइस करन लगैं हैं। याते हे भाई, तुम जितेक समय औरन के गुन-दोष देखिबे में लगावौ हौ, वा समय कूँ अपनी नित्य वस्तु के बिचारिबे में ही लगाऔ। जगत में स्तुति-निन्दा सौं हानि के अतिरिक्त कोऊ लाभ है ही नाँय। इन दोऊन कूँ एक समान समझि, या जगत ते बहुत दूर जो तुम्हारी बस्तु कौ नित्य सर्वोपरि सुख है वामें ही मन लगाओ। जब या प्रकार की निन्दा-स्तुति आदि समस्त बातन की समता तुम्हारे हृदय में आजायगी, तब ही तुम्हारी विषमता चली जायगी, और यावत प्रकार के डर स्वयं ही डरि कैं तुम्हारे हृदय तें भाग जावेंगे। देह के ताईं तौ कबहूँ काहू प्रकार कौ करकच-संग्रह मत करियौं, और श्रीहरि के हित के ताईं कछु हू करनो परै, नेंक हू मत डरियौं। याही सौं हम सतत निर्भय होय, श्रीबिहारी-बिहारिनी जू कौ जस गाय-गाय, सदाकाल रसना-सौं रस पीवें-पिवावें हैं।

फोकट पचै न कछु रे। मेरे कुंजरवन बिन जो कछु रे ॥
थोथौ फटके उडि उड़ि जाय। तामें कहा काढि कन खाय ॥
पाई खोवत दुर्लभ देह। धन दारा के नस्वर नेह ॥
पिछली भुलै स्याम रति मांनि। फिर फिर बँधत नई पहिचांनि ॥
मानुष बिगरि भयौ पसु प्राय। उगिलि उगिलि खाते न घिनाइ ॥
कोठी धोवत निकसै कीच। बिषै सेथ सुख चाहत नीच ॥
या में भर्म नांहि कछु फेर। श्रीबिहारीदास ह्वै हरि तन हेर ॥३॥

जो लोग देव दुर्लभ बिशाल बुद्धिवारी मानव देह पाय कैं हू, सांसारिक बिषयन में लगि रहे हैं, तिनकौं लक्ष्य करिकैं आप बोले कि-मेरे कुँज-रमन श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कौ अनन्य भाव ते भजन किये बिना जो कछु तुम पचि-पचि कैं करि रहे हौ, सो सब फोकट में ऐसें जाय रह्यौ है जैसे थोथे पयार फटकिबे में ही उड़ि जाँय हैं; तिनमें सुखरूपी एक कन हू नाँय हैं, जाकूँ निकारिकैं तुम खाइ सकौगे। ऐसें ही तुम या अपनी देवदुर्लभ देह कूँ नाशवान धन-स्त्री आदि के मोह में बेकार ही खोय रहे हौ। याते पिछलौ समय बीत गयौ सो तो बीत गयो, वाकूँ भूलि अब जो कछु समय रहि गयौ है, बामें एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज सौं ही प्रेम करनौ चहिये, किन्तु उल्टे तुम तौ दिन-प्रतिदिन नये-नये नातेन में बँधते जाय रहे हौ, (पहले माता, पिता, भाई-बन्धु के मोह में बँधि रहै हे, घर में स्त्री आइबे ते वासौं मोह है गयौ;

फिर संतान पैदा होयबे ते और हू मोह करि लीन्हौं—ऐसें ही तुम्हारे नित नये-नये मोह नाना भाँति के बढ़ते ही जाय रहे हैं।) तुम लोग मानवता ते बिगरि प्राय: पशु-सदृश ही है गये हौ। जैसें पशु उगलि-उगलि कें खाय है, तैसें हीं तुम छाँड़ि-छाँड़ि के फिर उनहीं विषयन में लागि जाओ हो, ताहू तुम्हें घृणा हू नाँय आवै है। जैसें माटी की कोठी कूँ कितेक हू बार धोवौ—बामें कीच ही कीच निकरै है—ऐसे ही अधम प्रकृति के मानव ही इन महा दुखदायी विषयन कूँ सेय-सेय कें सदाकाल सुखी होइबो चाह्यौ करैं हैं, किन्तु जो हमनें तुम सौं कह्यौ है, यामें नेंक हू भ्रम नाँय है। याते श्रीनित्यबिहार-रस के अनन्य-सेवी होय, श्रीबिहारीजी महाराज के माऊँ देखौ।

लैना एक न दैना दोइ। झूंठी धामस धूमस होइ॥
नियंता भुक्ता औरैं कोइ। तू दिन दुख क्यौं पावत रोइ॥
ममता करत कहत 'मम देहा। छिन भंगुर जरि ह्वै है खेहा॥
अहंकार मन धोखे परचौ। निकट बसत नरहरि बिसर्यौ॥
धन गुन रूप कहावत भलौ। हम समान को है उजलौ॥
वाद विवाद करत नहिं डरै। हारे जीते काजु न सरै॥
सब प्रपंच निश्चै जिय जांनि। श्रीबिहारीदास ह्वै हरि रति मांनि॥४॥

याही विषय में आपने और हू कह्यौ कि—हे भाई! या मायिक जगत में न तौ कोऊ काहू सों कछु लै ही सकै है, और न कोऊ काहू कूँ कछु दै ही सकै है, एकमात्र वैसे ही धामस-धूमस है रही है। या जगत के नियंता-भोक्ता तो एकमात्र श्रीहरि ही हैं, तुम रात-दिन बेकार ही दुख पाइ-पाइ कें काहे कूँ रोइ रहे हो। ममता में बिबस होइ, तू जा देह कूँ अपनी बताइ रह्यौ है, वोहू देह एक दिन छिन मात्र में हीं जरि-बरि के खाक है जाइगी। तेरो मन केवल अहंकार के कारन धोखे में परचौ भयौ है, जा श्रीहरि के प्रभाव ते ये देह चल-फिर हंसि-बोल रही है, वे श्रीहरि तेरे हृदय में हीं सतत विराजमान रहें हैं, तिनके माऊँ तौ तू कछु ध्यान नाँइ दैकें मायिक धन, गुन तथा रूप आदि मिलिबे ते ही अपने कूँ बड़ो सुन्दर मानि, ये कहन लगै है कि—जगत में हमारे समान भलो एवं उज्ज्वल कोऊ है ही नाँइ, याते तू और-औरन ते बाद-विवाद करतो भयो हू नाँय डरै है, मैं तोते कहूँ हूँ कि—जगत की हार-जीतसों कोऊ काम नाँइ बनि सकै है। ताते इन सब बातनकूँ निश्चय ही प्रपंच जानि, श्रीबिहारीदास होइ,श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के प्रेमकूँ ही अपने हृदयमें धारन करो।

ऐसें क्यों पैयत सुख सार। कुसंग न छूटत बडौ विकार ॥
साधन पाछें लागै धाय। तौ क्रम-क्रम करि कबहूँ गहि जाय ॥
कंटक लोभ लागि लपटाय। अखुटि परैं यह बडौ अंतराय ॥
भक्त मुक्ति के छूटे द्वार। विषै आवरन कठिन किवार ॥
बिनु बैरागै भक्ति न ज्ञाँन। प्रगट पुकारे वेद पुराँन ॥
बात बनायें मन न पत्याय। भाव बिसारें भजन भंडाय ॥
अनभै अनभै गावैं गीत। श्रीबिहारीदास ह्वै रहि मन मीत ॥५॥

निज आश्रितन ते आप फिर कहिबे लगे कि–हे भाई ! तुम्हारे भीतर सबते बड़ो बिकार तौ एकमात्र ये ही बनि रह्यौ है कि तुमतें विषयी लोगन कौ कुसंग छूटिबे में नाँय आय रह्यौ है। तुम कूँ अपने मन में यह सोचनो चहिये कि कुसंग रहते भये यावत सुखन कौ सार स्वरूप सर्वोपरि नित्यबिहार रस कैसे हू प्राप्त नाँइ है सकै है। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–जो तुम प्रेममय साधनन के पीछे धाइ-धाइ कें बड़े अनुराग तें लगि जाओगे तौ, कबहूँ न कबहूँ क्रम-क्रम सों निश्चय ही प्रेम प्राप्त करि लेओगे। तापै मानो आश्रित ने कह्यौ कि–हे महाराज जितेक भजन-साधन मोपै बनि आवैं हैं, हम करैं ही हैं ताकों लक्ष्य करि, आप बोले कि तुम साधनन में तौ लगौ हो, किन्तु काहू न काहू प्रकार कौ लोभ रूपी काँटो तुम्हारे मन में लगिबे पै उखटि परो है, जासों यह बड़ो भारी अंतराय परि, भक्ति-मुक्ति के पथ छूटि, विषयन के आवरन रूपी कठिन किवार लगि जाँय हैं।

यावत बेद-पुरान हूँ चौरें पुकारि-पुकारि कें या बात कूँ कहि रहे हैं कि–हे भाई ! बिना बैराग्य कें न तो भक्ति ही आवै है, न ग्यान ही होइ है, क्यौंकि केवल बात बनाइबे ते मन बिस्वास करै ही नाँइ है और विस्वास नाँइ होइबे पै भाव चल्यौ जाइ है, फिर भजन ही बिगरि जाइ है। याते हे भाई ! श्रीबिहारीदास होइ, अपने मन कूँ मित्र बनाइ, जैसे-जैसे अनुभव होइ, तैसें-तैसें ही श्रीबिहारीजी महाराज के गुनन कूँ गावो।

जो साँचे सौं साँचौ मिलै। तौ कोऊ गनें न लेखौ चलै ॥
भूल्यौ बार बार बौराइ। अब ही मिल्यौ ठीक सब आइ ॥
निरनै करि कागद सब फारि। गाँठी बाँधौ साँच सँभारि ॥
काम कर्म न धर्म सों काम। निरभै भजि श्रीस्यामा स्याम ॥

विधि निषेध सौं को पचि मरै। प्रेम भक्ति में अन्तर परै ॥
मन बच क्रम जो उपजै भाव। तौ लोक वेद सब बिसरि जाव ॥
स्वर्ग नर्क की आस न त्रास। जे रस रसिक बिहारिनिदास ॥६॥

दया करुणा में अति विवस होय, आप निज आश्रितन कूँ और हू समझाते भये कहिबे लगे कि–हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज साँचेन सोंहू अति साँचे स्वरूप हैं, तुम तन, मन, प्राण-रोम-रोमते बिनके साँचे दृढ़ अनन्य दास है जाओ; क्योंकि जब साँचे ते साँचौ मिलि जाय है, तब परस्पर कोई गिनती, हिसाब-किताब, लिखा-पढ़ी आदि नाँय रहै है। अर्थात् श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे दास होयबे पै, तुम्हारे कर्मन कौ कोऊ हिसाब-किताब ही नाँय रहैगौ। फिर तुम कूँ बार-बार या जग में भ्रमनौ हू नाँय परैगौ। अब तक तुम मायिक संसार में बौराय कैं बार-बार भूलते रहे हौ, जासों आवागमन के चक्कर में फँसे रहे हौ। अब तुम्हारे सब ही बानिक बड़े सुन्दर और ठीक-ठीक आयकैं बनि गये हैं। अर्थात् अति दुर्लभ मानव देह, साक्षात् श्रीवृन्दावन को वास, श्रीस्वामीजी महाराज की शरणागति आदि सब बानिक बिनकी कृपा तें सहज बनि गये हैं। याते अपने मन में भलीभाँति निर्णय करि, श्रीबिहारीजी महाराज सौं साँचे अनन्य सम्बन्ध की गाँठ खूब साज-संभारि कैं बाँधि लेवो–जासौं अनन्त जन्मन के सुभ-असुभ कर्मन की लिखा-पढ़ी के कागज तुम्हारे फाटि जायँगे। अनन्य धर्म ग्रहण करिबे पै, तुम्हारौ काहू कर्म-धर्म ते सम्बंध नाँइ रहैगौ, फिर तुम भलीभाँति निर्भय होय, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कौ रसमय भजन करौ। विधि-निसेधन सौं तौ केवल पचि-पचि कैं मरिबौ ही है, उल्टौ प्रेम-भक्ति में अन्तर ही परै है। क्यौंकि पद-पद पै साधक कूँ विधि-निषेध माऊँ दृष्टि राखिबे के कारन स्वाभाविक प्रेम कौ व्यौहार इष्ट सौं नाँय करि सकै है, जब मन, वानी तथा देह में प्रेम कौ भाव उत्पन्न है जाय है, तब न तौ लोक की आवश्यकता रहै है, न वेद की। सब सहज में ही विसरि जांय हैं। जो रसिक जन श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अनन्य दास सर्वोपरि नित्यबिहार रस के सेवी हैं, बिनकूँ न तौ स्वर्ग के सुखन की लालसा रहै है, न नरक की यातनान सौं भय, वे केवल नित्यविहार रस के ही लालायित रहैं हैं।

ऐसे मरि जो बहुरि न मरिये। चरन कमल चित चिंता धरिये ॥
श्रीगुरु गोबिंद आज्ञा नित करिये। तिहि प्रताप फिर जठर न जरिये ॥
औषदि वैद पथ्य उपचारु। यहै सार हरि भजन विचारु ॥

निहकपटै निहकाँम निरंतर । भजि बिहारु प्रिया बन अभिअंतर ।।
इते जतन कहि कार्ते डरिये । जागत खसम न संपति हरिये ।।
जो सेवै सब दिन इहि आसा । तो भै तरि पार बिहारिनिदासा ।।७।।

हे भाई ! श्रीगुरू एवं श्रीबिहारीजी महाराज की आज्ञा में सदाकाल चलि, बिनके ही श्रीचरनकमलन की चिन्ता जीवन-पर्यंत अपने हृदय में धारन करिकें राखोगे तो वाके प्रताप सों फिर तुम्हें कबहूँ भयंकर जठराग्नि में जरनो नांइ परेगो। भवरोग मिटायबे के ताईं, श्रीयुगल के नित्यबिहार को अनन्य भजन ही सर्वोपरि औषधि, वैद्य, पथ्य एवं उपचार है–याते तुम निरन्तर निष्काम, निष्कपट होय कें, श्रीलाडिलीजू के निजमहल वृन्दावन में अखण्ड वास करते भये सर्वोपरि मित्यबिहार को भजन करौ। जैसें मालिक के जागते भये चोरी नांय होय सकै है, तैसे हीं उपरोक्त प्रकार सौं रहिबेवारेन कूँ कबहूँ काहू ते डरनो नांइ परै है। जो साधक सदाकाल सर्वोपरि नित्यबिहार की आसा-लालसान कूँ ही सेवतौ-संजोतौ रहैगो–वो निश्चय ही भवसागर ते पार होय श्रीनित्यबिहारिनीजू को अनन्य दास है जायगो।

कहा भयौ मानुष जन्म लहैं। पसु समान बिन स्याम कहैं ।।
कहत सुनत उत्तम नर देह। जो न ढर्‌यौ इत स्याम सनेह ।।
श्रवन कथा न भक्ति सौं हेत। मृतक समान जीवत ही प्रेत ।।
ताकौ माँस न कोऊ खाइ। यों ही गयौ जन्म डहकाइ ।।
जीवत मरत न लाग्यौ नेग। यों ही खोये जन्म अनेग ।।
संतन सेवौ साधन करौ। प्रेम भक्ति भव सागर तरौ ।।
साकत भक्त बीच बड भेदा। श्रीबिहारीदास यौं बरनत वेदा ।।८।।

अति अद्‌भुत सर्वोपरि नित्यविहार रस, मानव देहधारीन कूँ इतेक सुलभता ते प्राप्त है सकै है तौहू जो लोग श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सौं स्नेह नाँय करैं हैं, बिनकूं लक्ष्य करिकें आप कहैं हैं कि–हे भाई ! यदि तुम श्रीहरि के प्रेम माऊँ नाँय ढरि सके तौ तुम्हें या देव दुर्लभ मानव देह कूँ पायबे पै हू कहा लाभ भयौ। श्रीबिहारीजी महाराज के भजन के बिना, पशुन के समान ही अपने जनम कूँ बिताय रहे हौ, अर्थात् जैसें अहार, निद्रा, मैथुन आदि सौं पशु प्रसन्न होंय हैं और उनके अभाव में दुखी होय हैं, वैसी ही दशा तुम्हारी है रही है। जो लोग मानव देह पाइकें हू श्रीहरि

की कथा कौ श्रवण और भक्तन सौं प्रेम नाँय करें हैं बिनकूँ ऐसें समझौ, जैसे जीवते ही मरे भयेन के सदृश प्रेत बनिकें डोल रहे होंय। तिनके तौ मांस कू हूँ कोऊ नाँय खाय है, और सब जन्म यों ही डहकते-डहकते बीत जाँय हैं। ये लोग ऐसे ही अनेक जन्मन कूँ मरते-जीते बेकार ही गँवाय देवें हैं; किन्तु श्रीहरि सौं नेह नाँय लगावें हैं– याते हे भाई, मैं तुम सौं फिर कहूँ हूँ कि तुम अपने सजातीय सन्तन कूँ सतत सेवौ, सर्वोपरि नित्यबिहार रस की उपासना करौ और प्रेमभक्ति द्वारा भवसागर ते पार है जाओ–क्योंकि बहिर्मुख साकतन में और श्रीहरि के भक्तन में बहुत बड़ो भेद होय है या बात कूँ बेद हू स्पष्ट कहें हैं।

कहा छूटे सों छूटा कहिये। जो बाँधे ही में छूटा रहिये॥
बाँधा छूटा कोऊ नाहीं। भरम नसे ते दोऊ जाहीं॥
छूटा फिर जब तब था अंधा। आँखि भई जब आपहि बंधा॥
जब बंधा तब कहूँ न जाई। श्रीबिहारीदास निज प्रेम की पाई॥९॥

जगत में लोग देह छूटि जाइबे ते छूटि गयौ कहें हैं, किन्तु जो देह रहते भये ही मायिक-दुखदाई सम्बंधन ते छूटि जाँय है बिनकूँ ही छूट्यौ समझनो चहिये। वास्तव में न तौ, कोऊ बँधि रह्यौ है और न कोऊ छूट्यौ हैं– यह तौ केवल भ्रममात्र ही है। भ्रम नष्ट होय जायबे पै न कोऊ बँध्यौ भयौ रहै है, न कोऊ छूटौ भयौ। जा समै काहू ते नाँय बँधि रहे हे, वा समैं तौ हमारी अज्ञान अवस्था ही जब भाव-ज्ञान रूपी आँख है गई तब आपही आयकें, श्रीबिहारीजी महाराज के प्रेम में ऐसे बँधि गये हैं कि अब कबहूँ कहूँ जाय ही नाँय सकै हैं।

साँचौ धर्म अधर्मी काँचौ। अर्थ विचार पुरानहिं बाँचौ॥
यह बडौ ऐब जो सब ही जाँचौ। बैठि अनन्य सभा लटि लाचौ॥
ऐसौ बडौ धर्म हिये धरि नाँचौ। लोक वेद की लगै न आँचौ॥
महा मधुर रस पोषौ पाँचौ। बिपुल विनोदनि उमचि न माचौ॥
श्रीबिहारीदास हरिदासहि राँचौ। साँची लोक सभा में खाँचौ॥१०॥

निज आश्रितन के प्रति और हू आप कहें हैं कि–हे भाई ! समस्त रीति-भाँति सौं अपने धरम में चलिबेवारौ जन ही साँच्यौ कह्यौ जाय है–अन्यथा अधर्मी तौ काँचे ही होंय हैं। याते सदाकाल अर्थ कूँ बिचारते भये ही पुरानन कूँ बाँचो। सब काहू सौं याचना करनौ ही सबते बड़ौ ऐब होय है। याही कारन सों अनन्यन की सभा में

बैठिकैं शर्मिन्दा हौनों परै है–ऐसो बड़ो धर्म अपने हिरदै में धारन करि, प्रसन्नता में सतत नाँचौ, जासौं लोक तथा वेद की नैंक हू आँच तुम्हारे नाँय लगि सकै। अपनी आँख, कान आदि पाँचौ ज्ञान-इन्द्रिन कूँ, महामधुर-रस ते पोषण करते भये श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू के अति विशाल विनोदन में उमँगि-उमँगि कैं नित माँचौ–हे विहारिदास श्रीस्वामीजी महाराज के प्रेम में भली-भाँति रचि, अनन्यन की सभा में साँची लीक खेंचि देवो।

औरहि मारत आपु न मरै। मारै कहा जो मरिबे डरै॥
मरन कहै पुनि मर्‌यौ न जाई। अहंकार मरि मरि पछताई॥
मायावो मरि मार न जानें। मारनहारे बिन पहिचानें॥
मारनहारे सों मिलि मरो। तौ भक्ति मुक्ति ह्वै कातें डरो॥
आपु वाहि एकै करि जानें। अंधे लगै तितै तकि तानें॥
भक्ति ग्यान सों मिलै न अंग। तासों कहा गोष्टि सतसंग॥
श्रीबिहारीदास हरिदासहि गावै। भक्ति ज्ञान अविरोध बतावै॥११॥

जो लोग औरन ते तौ मरिबे की कहैं हैं किन्तु आप नाँय मरि सकैं हैं–अर्थात् औरन कूँ तौ यह उपदेश करैं हैं कि मायिक जगत के यावत् सुख-सम्बंधन कूँ समस्त प्रकार ते त्यागि, दीनातिदीन होय, निर्जन बन में जाय कैं, श्रीहरि कौ भजन करौ–किन्तु आप नेंकहू नाँय त्यागि सकैं हैं–ऐसे स्वयं मरिबे ते डरपिबेवारे लोग औरन कूँ नाँय मारि सकैं हैं। बेर-बेर मरिबे की कहैं हैं, तौहू बिनपै मर्‌यौ नाँय जाय है। अहंकार में ही मरि-मरि कैं वे पछितायौ करैं हैं। माया में फँसे भये लोग, न तौ मरिबौ ही जानें हैं और न मारिबौ ही। क्योंकि सर्वगुण सम्पन्न, सब सुखसागर, सबन के हर्त्ता-कर्त्ता, निज प्रेमस्वरूप, परमोदार सिरोमनि करुणा वरूणालय, श्रीहरि के स्वरूप, रूप आदि अनंत गुणन कूँ बिना पहिचाने न तो ये स्वयं ही मरि सकैं हैं, न औरन कूँ ही मार सकै हैं। याते मारनहारे सत्गुरून ते ही मन मिलाय कैं मरोगे तो जीवन मुक्त होय श्रीहरि के साँचे भक्त है जाओगे।

अपने कूँ तथा श्रीहरि कूँ एक करिकैं मानिबेवारे लोगन के सम्बन्ध में आप कहैं हैं कि जैसें काहू अन्धे आदमी कैं, जित माऊँ ते कोऊ लठिया मारै, वो अंधौ उतमाऊँ ही अपनी लठिया तानैं है। वाकूँ यह ग्यान नाँय होय है कि लठिया मारिबेवारौ कहूँ इत-उतमाऊँ जरूर हटि गयौ होयगौ, तैसें ही श्रीहरि और अपने कूँ एक

करिकें मानिबेवारेन कूँ माया सतत सताती रहै है। ये लोग माया कूँ झूँठी-झूँठी कहिकें हटाइबे की तौ चेष्टा करें हैं, किन्तु बिनकूँ यह ज्ञान नाँय होय है कि यह माया श्रीहरि की है, श्रीहरि की कृपा बिना कैसें हू नाँय मिट सकैगी।

फिर आप बोले कि हे भाई ! भक्ति कौ साधन-सिद्धान्त और ज्ञान कौ साधन-सिद्धान्त परस्पर नाँय मिल सकै है, याते ज्ञानिन सौं मेल-मिलाप सत्संग आदि, भक्तिपथ पै चलिबेवारेन कूँ बेकार ही है। नित्यबिहार के सेवी श्रीबिहारीदास तौ सतत श्रीस्वामीजी महाराज के नाम-जस-गुणन कूँ गावें हैं, तिन जसन कौ स्वरूप भक्ति-ज्ञान दोऊन ते निर्विरोध है।

अक्षर को ग्यांनी उनमांनी। अनभै प्रगट करै विज्ञांनी।
यह हों ए हरि जब जिय जांनी। उपज विवेक भीर भ्रम भांनी॥
सेवा भाव लियो पहिचांनी। दीन भये बिसरें अभिमांनी॥
मोहन मूरति हिये समांनी। मिल्यौ सुभाव प्रीति पय पांनी॥
श्रीविहारीदास कों भयो निदांनी। अपनों जानि आपुही बांनी॥१२॥

अक्षर के ग्यानी तो केवल अनुमान की ही बात कह्यौ करें हैं। और विज्ञानी जन वस्तु को अनुभव प्रगट करिकें ही बोले हैं। क्यौकि बिनकूँ विवेक द्वारा अपनो एवं श्रीहरि कौ स्वरूप भलीभाँति समझि में आइबे ते समस्त भ्रमन की भीर स्वतः दूर है जाय है। ऐसे महतजन श्रीहरि एवं श्रीहरि के दासन की सेवाभाव के मर्म कूँ पहिचान, सब प्रकार के—अभिमानन कूँ त्यागि, दीन है जाँय हैं। तब श्रीहरि की महामोहनी मूरति बिनके हृदय में ऐसी समाइ जाइ है कि—दूध पानी की नाईं इष्ट के स्वभाव सों मिलि कैं, परस्पर प्रेम द्वारा एकरस है जाँइ हैं। स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज ने ही अपनो जानि मेरे हृदय में या बात को भलीभाँति निदान कराय दीनो है।

अटकन मटकन करती है। तो लोगन तें क्यों डरती है॥
नख-सिख आजु बन्यौ सब साज। लाज बडाई बिगरत काज॥
दुरि-दुरि जातें बिसन न होई। जब लगि मिलत नहीं डर खोई॥
बैठि बजार बजाइ निसांन। लखटकिया बस होइ सुजांन॥
राजा चितयौ रानी भई। जाति पाँति की राइ धि गई॥
पाँइ पाँवरी हाथ गिलोल। चितवत नांहिन रतन अमोल॥

राती माँती सुखहि न ओर। मिलि बिलसत नित जुगलकिसोर ।।
लोक वेद सुत पति धन देह। बिसरि गये सब स्याम सनेह ।।
मन मान्यौ जिय जान्यौ लह्यौ। मोसों श्रीहरिदास करन ह्वै कह्यौ ।।
डहकि गई संसारहि जीति। श्रीबिहारीदास मनमानी प्रीति ।।१३।।

कोऊ साधक जुवावस्था में नवीन अनुराग प्रीति तें नित्यबिहार भजन करिबो चाहतो हो, किन्तु लोक-लाज के डरतें मनभायो भजन नाँइ करि पातो हो, ताकूँ लक्ष्य करि, आप दृष्टान्त द्वारा भलीभाँति समझाते भये बोले कि हे भाई ! जैसे नव जोवन रूप-रंग ते सुसज्जित काहू नव युवती कौ मन कोऊ राजकुमार ते लग गयो होइ, किन्तु लोकलाज के डर तें छिप-छिप कें मिलिबे ते मनभायी प्यार-प्रीति वो नाँइ करि सकै ही, वाकूँ समझाते भये काहू सहेली ने कह्यौ कि—जब तेरो मन राजकुमार के ताईं अटकन-मटकन करै है- तेरी वामें प्रीति है, तौ लोगन सों डरिबे ते कोऊ काम नाँइ बनि सकैगौ, या समय तेरो सब साज नख-सिख सों सुन्दर बनि रह्यौ है। लोक-लाज कुलकाँनि के पीछे ही तेरौ सब काम बिगरि रह्यौ है। ऐसे छिपि-छिपि कें मिलिबे तें मन भायो सुख कैसे हू नाँय बिलसि सकैगी। तू काहू को डर नाँय करि, चौरे-चौहट्टे बैठि, अपनी अनन्य प्रीति को डंका जब बजाइ देइगी—तब हीं वो लखटकिया सुजान तेरे आधीन है जायगो। और राजा की नजर परत खेम तेरी जाति-पाँति की सब राँध कटि, एकमात्र "रानी" संज्ञा है जायगी।

हे भाई ! यदि तुम्हारो मन नई जुवावस्था में श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूँ ललकि रह्यौ है, तो लोक-लाज और कुलकानि कौ नेंक हूँ डर नाँइ करि, चौरे-चौहट्टे डंका बजाते भये श्रीस्वामीजू महाराज के अनन्य जन है जाओगे, तब श्रीबिहारीजी महाराज तुम कूँ अपनौ बनाइ, तिहारे समस्त जागतिक मायिक प्रपंच नष्ट करि देवैंगे।

जगत में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह-मात्सर्य आदि के अनेक प्रकार कें काँटे फैलि रहे हैं, जासों साँचो बैराग्य रूपी जूती पहिरि, श्रीनिकुंज मंदिर के भजन कूँ, एकमात्र लक्ष्य करि हाथ में ऐसी अनन्यता की गिलोल लै लेवो कि तुम्हें यदि अमोल रतन हूँ अनायास मिलैं, तौहू अपने लक्ष्य तें बिचलित मत होवो ? सदाकाल अपने इष्ट श्रीजुगलकिसोर के प्रेम कूँ विलसि-विलसि ऐसे रत-मत हुये रहो, जो तुम्हें त्रैलोक्य में और कहूँ सुख दीखै ही नाँय, जब लोक, बेद, सुत-पति, धन, देह आदि सबन सों

मोह नष्ट ह्वैकें, केवल श्रीबिहारी-बिहारिनी जू सों ही प्रेम रहि जायगो तब तुम जिय जान्यौ, मन मान्यौ सुख सहज प्राप्त करि लेवोगे। स्वयं श्रीस्वामीजी महाराज ने अति मर्म की ये बात मोसों कान में कही, जासों संसार की और-और समस्त लालसा नष्ट होइ, सर्वोपरि नित्यविहार रस में मेरी मनमानी प्रीति ह्वै गई।

मेरी चतुरई कछु नाहीं। तुमरी कृपा बिन लागै काहीं ॥
भली पोच समझी नहिं जाहीं। बिना विवेक उसारी ढाहीं ॥
तुमरी अद्भुत कथा अथाहीं। जात न मो जड पै अवगाहीं ॥
श्रीबिहारीदास चरननि की छांहीं। अपनों करि राखौ गहि बांहीं ॥१४॥

आप अपने मन की सांची धारना कूं प्रगट करते भये श्रीस्वामीजी महाराज ते ही स्पष्ट कहिबे लगे कि–हे प्रभो! समस्त संसार के सुख-संबंधन कूं भलीभांति त्यागि, अनन्य भाव ते श्रीविहारीजी महाराज सों प्रेम करिबे में मेरी नेंक हू चतुराई नांइ है, क्योंकि या अद्भुत प्रेम-रस कौ अनुराग आपकी कृपा के बिना काहू कूं कैसेहू नांइ ह्वै सकै है। मैं तो यह हू नांइ समझि सकूं हूं कि कौन सी बात खरी है और कौन सी खोटी, बिना विवेक के वैसे ही लम्बी-चौड़ी हांकतो रहूँ हूँ। आपकी बात ऐसी अद्भुत एवं अगाध हैं जाकूं मर्म मो-सरीखो जड़ बुद्धिवारो कैसेहू नांइ समझि सकै है। याते आपही कृपा करि, अपनो समझि, मेरो हाथ पकरि, भव-ताप-संताप-हारी अपने श्रीचरनकमलन की सुसीतल छाया में सदाकाल बैठाइकें राखौ। तबही मैं या बिचित्र माया-सागर ते पार ह्वै सकूंगो।

गूँगो गुरु मुँह मूँदे खाई। जानै सो जिह जीभ मिठाई ॥
गूँगे की सैन गूँगोई जानै। गूँगो गूँगे ही पहिचानै ॥
जानि बूझि गूँगो ह्वै रह्यौ। गूँगे कौ मर्म न काहू लह्यौ ॥
इत गूँगो उत बोलनहारौ। असमंजस कौ अर्थ विचारौ ॥
धर्म बिरोधिन सों जिन बोलौ। धर्मी मिलैं हियौ सब खोलौ ॥
स्वाद भेद बिन सब सग वक्ता। सो क्यों आवै गूँगे लक्ता ॥
गूँगो करि छांड्यो संसार। गूँगो गावै नित्य विहार ॥
श्रीबिहारीदास हरिदास हितानों। बिपुल बिनोदनि देखि लुभानों ॥१५॥

श्रीस्वामीजी महाराज के निज कृपापात्र, अद्भुत नित्यबिहार रस के अनन्य

सेवी रसिक जनन की रहनी-रीति कूँ बताते भये आप कहैं हैं कि–जैसे गूँगो आदमी मुँह मूँदे ही मूँदे गुर खाइ है, वा गुर के स्वाद कूँ वाही की जीभ जानै है, तैसे ही अनन्य रसिकजन नित्यबिहार के अद्भुत रस-स्वाद कूँ आनंद गूँगे सदृस काहू सों प्रगट न करते भये स्वयं ही लेवें हैं। जैसे गूँगे की सैन कूँ गूँगो ही समझि सकै है, तैसे ही इन रसिकन के स्वरूप कूँ रसिकजन ही पहिचान सकैं हैं। जो लोग जान-बूझि के गूँगे बनि जाइ हैं, वो साँचे गूँगेन के मर्म कूँ नाँइ जान सकैं हैं, और एक गूँगो, दूजो बोलिबेवारो होइ, जैसे बिनमें असमंजस बन्यौ रहै है, तैसे ही सर्वोपरि नित्यबिहार रस के अनन्य उपासक तथा नाना मतन में चलिबेवारेन में असमंजस ही बन्यौ रहै है, याते हमारे अनन्य धर्म-विरोधिन तें अपनी उपासना की बात कबहूँ मत कहौ। यदि रसिक-अनन्य धर्म पालन करिबे योग्य श्रद्धालु मिलि जाय तो, अपने हृदय की सब बातन कूँ खोलि-खोलि कैं समझाइ देउ। जो लोग रस के मर्म की बातन कूँ नाँइ कहि-सुनि-समझि सकैं हैं बिनको गूँगो समझि, इन रसिकन ने भलीभाँति त्याग दीनो है। वे स्वयं संसार की सब बातन ते गूँगे हैकें श्रीजुगल के निरवधि नित्यबिहार को ही सदाकाल गायो करै हैं। याते हम श्रीस्वामीजी महाराज ते ही तो हित करै हैं और रससागर श्रीस्वामी बीटल बिपुलदेवजू के विनोदन कूँ देखि-देखि कें सतत लुभाये रहैं हैं।

यों भजि कुंजबिहारी राव। श्रीबिहारिनि रांनी पर धरि भाव॥
मानुष तन धरि धन्य कहाव। रसिक अनन्य भये गुन गाव॥
नाहिन उद्दिम और उपाव। छाँडि चतुरई चतुर रिझाव॥
जंत्र मंत्र सब दूरि बहाव। कोटिक बसीकरन सतभाव॥
साखि बिहारिनिदास बताव। यह रस जस सुनि संदेह नसाव॥१६॥

फिर आप अद्भुत कृपा में बसीभूत होइ निज आश्रितन ते बोले कि–हे भाई! समस्त भगवत-स्वरूपन के हू सिरमौर, एकमात्र नव निकुंज मंदिर में ही बिहार करिबेवारे श्रीबिहारीजी महाराज को या प्रकार सों भजन करो कि सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनीजू के श्रीचरनकमलन ते उत्तम कुल की पतिव्रतावत दृढ़ अनन्य अपनो संबंध बाँध लेवो, जासों अपने मानव जन्म कूँ सफल करि, समस्त लोकन में धन्य-धन्य कहावोगे। अर्थात् जैसे उत्तम कुल की पतिब्रता अपने पति के अतिरिक्त और काहू कों अपनो नाँइ मानै है, तैसे ही इहलोक, परलोक में तुम न तो काहू कूँ अपनो

करिकें मानो, और न काहू सुख की लालसा ही करो। साक्षात श्रीलालजू कूँ हूँ अपनी प्रानेस्वरी श्रीस्वामिनीजू को प्रान-सर्वस्व, प्रानबल्लभ, प्रानजीवन, प्रानधन समझि कें ही सतत लाड़ लड़ावो।

और एकान्त रसबिलास निजमहल श्रीवृन्दावन रस के दृढ़ अनन्य होइ, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज के अद्‌भुत अगाध गुण-जसन कूँ उमँगि-उमँगि के सतत गावो। मैं तुमतें स्पष्ट कहूँ हूँ कि या महाविचित्र रस की प्राप्ति के ताईं संसार में न तो कोऊ उद्यम है, न कोऊ और उपाय है; याते अपनी समस्त चतुराईन कूँ त्यागि, चतुरसिरोमनि श्रीजुगल कूँ सदा सर्वदा रिझाते रहो।

मानो काहू आश्रित ने यह जिज्ञासा कीनी कि—हे महाराज! सब घरन में बस्तु प्राप्ति के ताईं कछु न कछु जंत्र-मंत्र दियो जाइ है तापै आपने कह्यौ कि—हे भाई! तुम्हारो साँचो भाव ही कोटि-कोटि बसीकरन मन्त्रन ते हू सर्वोपरि महामंत्र है। क्योंकि साँचो प्रेम काहू मन्त्र-जंत्र के आधीन नाँइ होइ है, याते जंत्र-मन्त्रन कूँ तो दूर ते ही त्यागि देउ। श्रीबिहारीजी महाराज तो केवल साँचे प्रेम के ही बसीभूत होय हैं। या विषय में यदि कोऊ प्रमान पूछै तो हम स्पष्ट कहैं है कि—हमने कोऊ जंत्र-मंत्र नाँइ जप्यौ है। एक साँचे भाव के प्रताप ते ही समस्त वस्तु सहज प्राप्त है गई है। तुम हूँ सदाकाल अनन्य होय, या अद्‌भुत प्रेम-रस के जसन कूँ ही सुनो, जासों तुम्हारे सब संदेह अनायास नष्ट है जाँयगे।

श्रीवृन्दावन कौ सौ सुख कहूँ न लह्यौ।
धर्म अर्थ कामना मुक्ति पद भेद भक्ति बहुभाँति कह्यौ॥
परम पवित्र पुलिन सौरभ कन पावन, जमुना नीर बह्यौ।
तिहि सलिता सीतल मन कीनों जिनि संतापनि जगति दह्यौ॥
और लोक बैकुंठ आदि दै अनत कहूँ कछु बचि न रह्यौ।
कामधेनु गनत न कल्पद्रुम सोई दिन देत जोई जु चह्यौ॥
नित नौतन रस छाँडि विषै बसि कितुक मान अपमान सह्यौ।
परम उदार श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि जाँनि जिय सरन-गह्यौ॥१७॥

निज आश्रितन कूँ और हू समझाते भये आप बोले कि—हे भाई! यद्यपि, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा अनेक भाँति की भक्तिन को बर्नन सास्त्रन में कियो गयौ है किन्तु श्रीवृन्दावन नव निकुंज मन्दिर के रसमय सुख-सदृश हमें कहूँ देखिबे में नाँइ

आयौ। जिन त्रिविध ताप-संतापनि तें समस्त जगत सतत दहि रह्यौहै, बिनकूँ सौरभरस ते सने परम पवित्र श्रीजमुना पुलिन-कन एवं सुशीतल जल प्रबाह ने हमारे भलीभाँति नष्ट करि दीने हैं।

श्रीवृन्दावन के सर्वोपरि अगाध सुख कूँ पाइ, हमें ऐसो मालुम परि रह्यौ है– कि बैकुंठ आदि समस्त लोक-लोकान्तरन में कहूँ कछु सुख वच्यौ ही नाँइ है। जहाँ श्रीजमुनाजी हमें इतेक अद्भुत उदारता सों मन चाह्यौ सुख सतत दै रही हैं कि तिनकें आगे कामधेनु और कल्पद्रुम की हू कोऊ गिनती नाँइ है। ऐसे नित्यनूतन अद्भुत रस कूँ छाँड़ि, विषयन के बसीभूत होइ, अनन्त जन्म ताऊँ न जाने कितेक मान-अपमान हमने सहने परें हैं। ताते परमोदार सिरोमनि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज कूँ समझि, बिनकी अनन्य सरन हमने गहि लीनी है।

ह्वै है प्रीति हो परतीति।
गुन-ग्राही नित लाल बिहारनि मानत कपट अनीति॥
करि हैं कृपा कृतज्ञ जानि हित जिनकें सहज समीति।
श्रीविहारीदास गुन गाय बिमल जस नित नौतन रस रीति॥१८॥

मानों साधक ने प्रार्थना कीनी कि–हे महाराज! श्रीवृन्दावन बास एवं श्रीजमुना-स्नान करते भये हमें इतेक दिन है गये, किन्तु हमारे हृदय के ताप-संताप आज ताऊँ नाँइ मिटे हैं, तापै आपने कह्यौ कि–हे भाई! प्रेम होइबे ते ही इनकी प्रतीति मन में आवै है। मानों साधक ने कह्यौ कि–प्रेम तो अति ही दूरूह वस्तु है, हम पै तो नित्य नये-नये अपराध ही बनै है, फिर प्रेम कैसे है सकेगो? तापै आपने कह्यौ–हमारे श्रीजुगल गुनन कूँ ग्रहन करि, एकमात्र कपट कूँ ही अनीति मानैं हैं, याते साधक ने काहू प्रकार कौ कपट, इष्ट एवं प्राणिमात्रसों कबहूँ नाँइ करनो चहिये। समस्त जीवन के घट-घट में आपही विराजमान हैं।

याते तुम भलीभाँति निष्कपट होइ, बिनके अनन्य सरन जावो, वे अति कृपालु-कृतज्ञ सिरोमनि हैं। सहज में ही अपनो जानि तुमसों हित करन लगैंगे। फिर तुम नित्यनौतन रस रीतिमय जस-गुनन कूँ सतत उमँगि-उमँगि के गायौ करौगे।

जे कोऊ गुरु गोविंद नाम गुन गावत गुनत विचारि विचारि।
सेवत सहज सदा वृन्दावन मन क्रम बचन चरन चित धारि॥
पाये सुख न गये आतुरता संपति विपति एक उनहारि।

अहंकार ममता के औगुन छांडि सकल स्वारथ दुख दारि ।।
कबहूँ काल न ख्याल करै डर भूलि न तिन तन सकत निहारि ।
कहि न सकत निसंक सुदृढ भक्त सों माया रही लटी ह्वै हारि ।।
निरभै भए गए भै तमु तरि संगी सस्त्र रहे कर डारि ।
श्रीबिहारीदास यामें भ्रम नाहीं बेद पुराननि कह्यौ पुकारि ।।१९।।

जो साधक अपने श्रीगुरुदेव एवं श्रीबिहारीजी महाराज के नाम, गुनन कूँ भलीभाँति बिचारि-बिचारि कें गावैं हैं, तथा अपने चित्त कूँ बिनके श्रीचरनकमलन में लगाइ, मन, क्रम, वचन ते श्रीवृन्दावनजू कूँ अपनो निज घर समझि, सहज-सदा-काल सेवैं हैं, जागतिक काहू प्रकार की लाभ-हानि होइबे पै कछु सुख-दुख नाँइ मानैं हैं। यावत् संपति-विपति कूँ एक समान समझि, अहंता-ममता के अवगुनन कूँ छाँडि, समस्त प्रकार के स्वार्थ एवं दुःख द्वंदन कूँ सहज बिडारि देवैं हैं। ऐसे महत्पुरुषन ते डरपतो भयो काल भूल की हू भूल में, बिन माऊँ देखिबो तो दूर रह्यौ, ख्याल हू नाँइ करि सकै है।

या प्रकार के सुदृढ़ भक्तन के सामने अत्यन्त बलवान माया हू लटी-दूबरी है, हार मानि, बिनते कछु कहि ही नाँइ सकै है। वे महतजन भय एवं अज्ञान के सागर ते पार होइ, ऐसे निडर है जाँय हैं कि अनादिकाल ते संग रहिबेवारे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि महाशत्रु हू अपने सस्त्रन कूँ डारि देवैं हैं। हे बिहारीदास ! यामें कछु संसय नाँइ है। बेद-पुरान हू या बात कूँ पुकारि-पुकारि के चौरै कहैं हैं।

हरि भली करी प्रभुता न दई ।
हुते पतित अजित इन्द्री-रति तब हम कछु सुमत्यौ न लई ।।
डहकायौ बहु जन्म गमायौ करि कुसंग सब बुधि बितई ।
मान अपमान भ्रम्यौ भक्तनि तन भूलि न कबहूँ दृष्टि गई ।।
पढि पढाय परमारथ न विचारचौ स्वारथ बकि बकि विष अचई ।
लै लै उपज्यौ सुफल बासना जो जिहि जैसी बीज बई ।।
अब सेवत साधुन को संग संतत सींचत फूलै मूल जई ।
श्रीबिहारीदास यों भजो दीन ह्वै दिन दिन बाढै प्रीति नई ।।२०।।

श्रीहरि ने यह तो बहुत ही कृपा कीनी कि हमें काहू प्रकार की प्रभुता नाँइ

दई। पहले प्रभुता मिलिबे पै इन्द्रिन ने जीति मोकूँ पतित बनाइ राख्यौ हो, तब काहू ते हमने कछु सुमति हू नाँइ लीनी। कुसंग में बुद्धि बिताइ अनंत जन्म ऐसे ही डहकाइ-डहकाइ कैं हमने गँवाइ दीने। मान-अपमान एवं अभिमान में ही हम भ्रमते रहे, श्रीहरि के भक्तन माऊँ कबहूँ भूलि में हू दृष्टि नाँइ दीनी। पढ़ि-पढ़ाय कैं हूँ परमार्थ को बिचार नाँइ करि, सदा स्वारथन के ताईं बकि-बकि कैं विषयन के विष कूँ ही पियो। जहाँ-जहाँ जैसे-जैसे बासनान के बीज बोये, तहाँ-तहाँ तैसे-तैसे बिनको फल हू हमने अनंत जन्मन ताईं भोगे। अब श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें संतन के संग कूँ निरंतर सेवें हैं। जैसे मूल कूँ सींचिबे ते वृक्ष हरो-भरो ह्वै के फूलै-फरै है तैसे ही बिनको संग करत खेम अनंत सुख हृदय में फूलि उठैं हैं। हे बिहारीदास! तुम याही प्रकार सों दीन ह्वै कें श्रीहरि को सतत भजन करौ। ताते तुम्हारे हृदय में नित नौतन प्रीति बढ्यौ करैगी।

माया मद मोहे अभिमांन।
थोरे ही सुख सहत दुसह दुख जो गुरु कह्यौ सु कियौ न कांन।
श्रीभागवत चलत दै बाँये अपनी उक्ति आचरत आंन।
कुँजर सौच असौच सदा श्रम समझत नाहिंन अधम अग्यांन॥
संगु कियें समिलित लोगन सों घटत प्रेम यह प्रगट प्रवांन।
कहा कहौं साधक बपुरा की सिद्ध बिगूचे भरत समांन॥
एकै मन एकै परमेस्वर एक ही ताकि रहै दिन मांन।
तोपै काज सरै काहे न श्रीबिहारीदास यों वरनि बखांन॥२१॥

माया मद के कारन अभिमान ने जिनको मोहि राख्यौ है, वे लोग थोरे से क्षणिक सांसारिक सुख के ताईं दुसह-दुखन कूँ सतत सहैं हैं। श्रीगुरुदेव बिनकूँ अनेक बार समझावैं हैं, तौहू नाँय सुनैं हैं। परमहंससंहिता श्रीमद्भागवतजू के बचनन में हू अपनी उक्ति-युक्ति लगाइ विपरीत आचरन करैं हैं। ये बेसमझ अधम-अज्ञानी हाथी के स्नान की नाईं, सदाकाल मलिन ही बने रहैं हैं। अर्थात् जैसें हाथी नहाइ कें फिर अपने देह पै धूर डारि लेइ है; तैसे ही कथावार्ता, सत्संग करते समय तौ इनकी कछु उज्ज्वलता दरसै है, बाद में फिर वैसे ही संसारी बनि, माया-मोह में भूलि-भटकि जाँइ हैं। ऐसे संसार में फँसे भये सम्मिलित लोगन को संग करिबे ते प्रेम घटतो ही चल्यौ जाइ है, ये बात चौरे दीख रही है। कुसंग ते जब परम भागवत श्रीजड़भरतजी

सहस सिद्ध हू मारे गये, तब बेचारे साधकन को तो कहनो ही कहा है? याते श्रीबिहारीदासन ने भूयो-भूयो बखान करि-करि कें ये बात कही है कि–तुम्हारे पास एक ही तो मन है, और एक ही तुम्हारो इष्ट-स्वरूप परमेश्वर है, तब तुम और काहू माऊँ नाँइ देखि कें अपने इष्ट कूँ हीं सदाकाल इकटक देखते रहोगे, तब तुम्हारे सब काम कैसे नाँइ बनि सकेंगे?

अपनी चलहु गैल पहिचांनी।
तित जिन चितवहु बितवहु बुधि जित चलत जगत अभिमांनी॥
जहाँ असूया हिंसा असपर्धा तहाँ तहाँ भक्ति नसांनी।
माला मंदिर कों बंदन करि भजि सतसंग समांनी॥
तिनकौ संग करि हरिदासिनि कौ जिन-तन ताप सिरांनी।
तिनके गुन गावत पावन पथ श्रीमुख सुक व्यास बखांनी॥
बन-बन बिहारी-बिहारनि के संग डोलत वृक्ष वृक्ष रजधाँनी।
सोई सोई मनसा होत तिहीं छिन पूरन सब सुखदाँनी॥
माया के आवरण बहुत दिन यह संधि समझि नहिं जाँनी।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें तन मन प्राँन हिताँनी॥२२॥

निज आश्रितन के प्रति ममता में बिबस होइ आप भलीभाँति समझाते भये कहैं हैं कि–हे भाई! या संसार में परमार्थी एवं जागतिक लोगन की अनंत गैल हैं। तुम अपनी गैल कूँ समस्त रीति-भाँति सों पहिचान के ही चलौ। जा गैल पै अभिमानी जगत चलि रह्यौ है, ताके माऊँ न तो देखो और न अपनी बुद्धि कूँ लगावो, क्योंकि जहाँ-जहाँ असूया, हिंसा-स्पर्धा आदि दोष होइ हैं, तहाँ-तहाँ श्रीभक्तिमहारानी रहैं ही नाँइ हैं। समस्त श्रीभगवत-स्वरूप, एवं मालाधारी बैष्णव जनन कूँ बंदन, आदर, सन्मान करते भये, अपने सजातीय श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित, नित्यबिहार-रस के अनन्य सेवी जनन के सत्संग कूँ ही सतत सेवो, जिनके देह-मन आदि के समस्त ताप-संताप भलीभाँति सिराइ गये हैं।

स्वयं महामुनि श्रीव्यासजी एवं परमहंस चूड़ामनि श्रीसुकदेवजी महाराज ने हूँ कह्यौ है कि ऐसे महतजनन के गुनन कूँ गाइबो ही परम पावन पथ है। या प्रकार की सर्वोपरि रहनी-रीतिवारे महतजन अपनी प्रेम-भावना द्वारा, श्रीवृन्दावन में

वृक्ष-वृक्ष के नीचे श्रीविहारी-बिहारिनीजू के संग-संग अद्भुत रंग में रगमगे हैंकें ऐसे आनंद में डोलें हैं, मानो ठौर-ठोर पै बिनकी राजधानी है रही है। बिनकी जो-जो मनसा होइ है, सोई-सोई अद्भुत सुखदानि श्रीजुगल ताही छिन पूर्न करें हैं। हमने हूँ माया के आवरन में या सर्वोपरि सुख की गाँस कूँ नाँइ समझ्यौ हो। अब हम श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें तन-मन-प्रानन द्वारा श्रीजुगल के सुख सों सतत हित लगाये राखें हैं।

अधमु किये अभिमाँन गयौ।
अपनें आसन सकुचि भूलि ऊँचे पर पग न पयौ॥
को जाने कैसी परतो तब कहा समझते यह समयौ।
गर्वै कहा जीव वपुरा जै विजै धांम तें डारि दयौ॥
भावै सिद्ध जु साध कहत हैं उपज्यौ हो सोई जु बयौ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें आपुन ही अपनाय लयौ॥२३॥

अपने आश्रितन ते आपने कह्यौ कि जो अधम प्रकृति के मानव होइ हैं, वे अपने अभिमान कौं सदाकाल पोषन करि-करि कें ही परमार्थ-पथ ते बंचित रहि जाँइ हैं। याते हे भाई! अपनी जगह पै दीन भये अभिमान सौं सदाकाल सावधान रहि, ऊँची ठौर पै भूलि की भूलि में हू पग मत धरो। हम हूँ यदि सावधान न रहि कें, या अहंकार में आइ जाते तो कौन जाने आज कहा भोगनो परतो। श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते आज जो समय प्राप्त भयौ है, बाकूँ समझिबो ही दुर्लभ है जातो। गर्व करिबे ते जब भगवान बैकुंठनाथ के साक्षात पार्षद जय-बिजय कूँ हूँ अपने स्थान ते पतित होनो परयौ, तब बेचारे साधारन जीवन की तो बात ही कहा ? या बात कूँ समस्त महतजन पुकारि-पूकारि कें कहैं हैं कि चाहे सिद्ध ही क्यौं न होइ, जैसो बौवैगो, तैसो ही नीपजैगो। मैं तुम सों साँची बात कहूँ हूँ कि हमें तो श्रीस्वामीजी महाराज ने अपनी कृपा ते ही अपनाय कैं राखि लीनो।

गये दुसह दुख भए सबै सुख सेवत रसिकराय सिरमौर।
नातरु विवस हुतो ताके कर ग्रसत काल गहि एकै कौर॥
महा मोह अग्याँन तिमिर में हुतौ पतित महामति बौर।
श्रीहरिदास हंकारि उबारयौ इत भजि छूट्यौ दौरा-दौर॥

स्याम सरन छांडै दुख बाढै कहा होत कोनै बल सौर।
लगी आगि बन विस्व दसहु दिसि फिरि फिरि बरत उडत बहु जोर ।।
चतुरदस लोकपाल बेहाल कहूँ कोऊ सुन्यौ न समरथ और।
श्रीबिहारीदास प्रभु तुम तजि अनत कहूँ नाहिनैं दीनदुखिन कौं ठौर ।।२४।।

रसिकराय सिरमौर श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन कूँ सेइबे ते हमारे दुसह-दुख भलीभाँति मिटि, सर्वोपरि समस्त सुख सहज प्राप्त है गये। यदि मैं इन श्रीचरनकमलन के शरन नाँय जातो तो, माया के हाथन में ऐसो भूलि-भटकि रह्यौ हो कि काल पकरि कें मोकूँ एक ही कौर में ग्रसि जातो। अति पतित मंदमति मैं बौरायो भयौ महा मोह, अग्यान के घोर अँधेरे में भटकि रह्यौ हो, किन्तु श्रीस्वामीजी महाराज ने मोय स्वयं ऐसे उबारि लीन्यौ, जैसे इकलौती मैया को बेटा भयंकर अग्नि में फँसि जाइ तो, वाकी मैया कछु सोच-विचार नाँइ करि, अति आतुर ह्वै वा प्रचंड अग्नि में ते अपने बेटा कूँ हुँकारि कैं निकारि लावै है। मैं हूँ संसार की घोर यातनान सों छूटि कें श्रीस्वामीजी के चरनकमलन की महा सुखदाई सरन में आइ परचौ। जो लोग श्रीबिहारीजी महाराज के सरन में नाँइ आवैं हैं, वे कितेक हू रोवैं-गावैं कछु नाँइ होइ सकै है बिनके दुख सतत बढ़ते ही जाँय हैं। जैसे काहू अति सघन बन की दसो दिसान में महाप्रलय की अग्नि लगि जाइ, तैसे ही मायारूपी महा प्रज्ज्वलित अग्नि समस्त विस्व में बड़े जोर-सोर सों ऐसी लगि रही है, जाको कोऊ समझि हू नाँइ सकै है, यदि काहू समय नेक दबि हू जाइ, तौ फिर और हू जोर-जोर सों बरि-बरि कें उठै है। चौदहो भुवनन के लोकपाल हू सुधि-बुधि खोइ, बेहाल ह्वै रहे हैं। या विषम माया के भीषण-ज्वाला ते बचाइबेवारो सामर्थ्यवान एकमात्र श्रीहरि के अतिरिक्त और कोऊ हमने सुन्यौ ही नाँइ है। फिर आप साक्षात श्रीस्वामीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये बोले कि—हे प्रभो ! या प्रकार अति दीन-दुखिन के ताईं आपके श्रीचरनकमलन की ताप-संतापहारी सीतल छाया कूँ छोड़ि कें जगत में और कोऊ ठौर है ही नाँइ !

बोलै कौन भलाई रै भाई। बोलें कछू गांठि कौ जाई ।।
टुक पूछी मैं बाट बताई। पोट धरी सिर धक्के खाई ।।
छूटन कौं कछु उक्ति बनाई। चाबुक मारि दमानक द्याई ।।
बीस कोस की मजल चलाई। गथ परमारथ लियौ छिडाई ।।

द्वंद नगर मानें न दुहाई। बुरा मुगल अविवेक बडाई।।
बैठि भरी कछु दादि न पाई। छूट्यौ होइ गरीब गदाई।।
किया स्याम संतोष सहाई। अहंकार जग बकि बौराई।।
श्रीहरिदास बडे सरनाई। श्रीवृन्दावन जिन दियो दिखाई।।
श्रीबिहारीदास सुख में सुख पाई। निरभै भयौ सुजस रस गाई ।।२५।।

फिर आप अपने आश्रितन ते बोले कि–हे भाई ! जगत में चतुराई दिखाइबे ते कोऊ लाभ नाँइ होइ कें अपने भाव की कछु हानि ही होइ है। या संबंध में आप एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट समझाते भये कहैं हैं कि कोऊ सरकारी आदमी अपनो सामान लिये काहू गाँव कूँ जाइ रह्यौ हो, बिनने काहू संत सों गाँव को मार्ग पूछ्यौ। संतजी ने सहज सुभाउ मार्ग बताइ दियौ। सरकारी आदमी बोल्यौ–"ठीक है, तुमको रास्ता मालुम है, या बोझ कूँ अपने मूँड़ पै धरो और हमें गाँव ताऊँ पहुँचाइ आवो।" संतजी ने छूटिबे के ताईं कछु उक्ति-जुक्ति लगाई, तब वो दमादम चाबुक मारिबे लग्यौ, और पूरी बीस कोस की मंजिल चलाइ कें लै गयौ। जो कछु पास में हुतो सो हू सब छिनाइ लीन्यौ। वो ऐसी अँधेर नगरी ही, कि रोइ-रोइ कें दुहाई दैबे पै हू कोऊ सुनिबेवारो नाँइ हो। वहाँ को राजा हू ऐसो बुरो हो, जहाँ एकमात्र अग्यानिन की ही प्रसंसा है रही। जब संतजी कूँ तहाँ कछु न्याव नाँइ होतो दीख्यौ, तब बेचारे निरास होइ, बड़े दीन, गरीब बनि, तहाँ ते अपनो पिंड छुड़ायौ। ऐसे ही जगत में जब बालक बड़ो है जाइ, तब घरवारे बिनकूँ कामधंधेन में लगाइबे लगैं हैं। यदि वो सहज सुभाउ वा काम कूँ बड़ी हुसियारी ते करि लावै है, तब घरवारे कहन लगैं हैं कि–यह छोरा बहुत हुँसियार है दुकान देखिबे को काम याही के जिम्मे डारो। बेचारे ने कछु युक्ति हू लगाई, दुकान को बहुत बड़ो काम है, मेरे बूते को नाँइ है, तब सब घरवारे नाराज हैबे लगैं। फिर वाने लाचार हैकें घरवारेन के द्वारा बताये भये कामन में लगनो पर्‌यौ। वाको सब समय अब दुनियाँ के गोरख-धंधेन में ही बीतबे लग्यौ। परमार्थ कूँ हूँ कछु सुन्यौ-समझ्यौ हो, सो कबहूँ वाके माऊँ मन के चले जाइबे के कारन, यदि काम-धंधेन में नेक हू हानि है जाय, तौ अरोसी-परोसी, नाते-रिस्तेदार, घरवारे सब अति नाराज होइ समझाइबे लगैं हैं–"या परमार्थ में कहा धर्‌यौ है ? ऐसे प्रमाद करिबे ते तो सब घर बर्बाद है जाइगो–तूँ तो बड़ो समझदार है, भलीभाँति मन लगाइ कें घर-गृहस्थ कौ काम करनो चहिये।" या संसार में ऐसे बिचित्र अग्यान

परमार्थ

कौ राज्य है रह्यौ, जोकि कोऊ सुनिबे-समझिबेवारो है ही नाँइ ? या हाल कूँ देखि कें हम तो भोरे-भारे बनि, गरीबगदाई होइ ऐसे है गये कि जासों दुनिया ने सहज ही हमें निकम्मा समझि लीनौ, तब कहुँ जाइकें हमारो पिंड छूट्यौ । स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज ने हमें संतोष प्रदान करि, हमारी सब प्रकार ते रक्षा कीनी । यह संसार तो अहंकार में भरि, बकि-बकि कें बौराइ रह्यौ है । श्रीस्वामीजी महाराज ऐसे सर्वोपरि सरनागत वत्सल हैं, जिनने साक्षात् श्रीवृन्दावनजू कें दरसन कराइ, समस्त प्रकार की रहनी-रीति समझाइ दीनी । अब हम सदाकाल श्रीस्वामीजी एवं श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रस-जसन कूँ गाइ-गाइ कें निर्भय होइ, सुख में हूँ अद्‌भुत सुख सतत बिलसैं हैं ।

क्यौं बोला मैं बोलि बिगूचा । पिछले पद में सब सुख सूचा ॥
जो बोला सो तहीं तें दूचा । यातैं अब अनबोलन रूचा ॥
रीतौ बोलै भर्यौ न बोलै । जो बोलै तौ संसौ खोलै ॥
भर्म भुलानों बोलि न जान्यौं । श्रीबिहारीदास मनसों मन मान्यौं ॥२६॥

याही बात कूँ समझाइबे के ताईं आप और हू एक दृष्टान्त देते भये कहैं है कि–काहू नगरी के बाहर कोऊ सिद्ध-महात्मा निवास करते हे, वहाँ कौ राजा बिनको ब्रड़ो भक्त हो । प्रतिदिन महात्माजी के दरसनन कूँ आमतो, और सत्संग हू करतो ।

एक दिन राजा बहुत उदास दिखाई दै रह्यौ । महाराज ने कारन पूछ्यौ, तौ राजा संकोच बस कछु नाँइ बोल्यौ । जब महाराज ने बहुत आग्रह कियो तौ राजा कहिबे लग्यौ कि—महाराज ! मेरे कोऊ संतान नाँइ है, समय बीत्यौ जाइ रह्यौ है, रानी हू बहुत चिंता करि रही है, या राज्य कूँ कौन सम्हारैगो । महात्माजी ने मन ही मन कही–याके भाग्य में संतान तौ है नाँइ, और मेरे इतेक आग्रह करिबे पै याने कही है, हम यदि नाहीं करेंगे तो ये और हू उदास है जायगो । महात्माजी बोले–"संतान है जाइगी ।" चिन्ता मत करौ ।

राजा अति प्रसन्न होइ, घर आइ, बधाई बाँटिबे लग्यौ । कछु समय बाद महात्माजी ने वा देह कूँ त्यागि, राजा के यहाँ पुत्ररूप में जन्म लै लीन्यौ । अब तो राजा के महल में उत्सव-बधाइन कौ ओर-छोर ही नाँइ रह्यौ । जब लड़का बड़ो भयौ और वाकौ बोलिबे कौ समय आयौ, तब वो बोल्यौ नाँइ । याही प्रकार बहुत समय व्यतीत है गयौ, तब राजा कूँ चिन्ता भई–वाने मुकतेरे इलाज कराये, तऊ बालक

नाँइ बोल्यौ और दिन पै दिन बाबरेन सरीखो रहिबे लग्यौ, क्योंकि बालक रूप जन्म लिबैवारे तो वे ही सिद्ध महात्मा हे। बिनकूँ सब ग्यान हो, वे समझ गये कि पहिले बोले-सोतो यह आफत उठानी परी, अब और हू बोलते रहे तो न जाने कहा करनो परेगो जब राजा समस्त प्रकार ते निरास है गयो, तब तो राज्यभर में शोक छाय गयौ।

एक दिन वो लड़का राजा के बगीचा में बैठ्यौ हुतो। एक शिकारी तहाँ ही अपनी बंदूक कूँ लैकें इत-उत माऊँ ताकि रह्यौ हो। तब हीं कोऊ पंछी बोलि परयौ ताही समय शिकारी ने गोली मारी और पंछी फड़-फड़ाय के आइ परयौ। राजा के लड़का ने कही–"अरे बाबरे, तू क्यौं बोल्यौ ? बोलिबे ते ही तू मारयौ गयौ। याही ते मैं अब चुप रहूँ हूँ।"

श्रीगुरुदेवजू कहैं हैं कि हे भाई ! या जगत में तुम क्यौं बोलो। बोलिबे ते ही लोग मारे जाँइ हैं। याही ते हम चुप रहैं हैं। बोलिबे की फजीती हमने पिछले पद में भलीभाँति समझाइ दीनी है। जो कोऊ जैसे ही बोलै, तैसे ही मारयौ जाय है, याते हमें अब न बोलिबो ही अच्छो लगै है। मानो साधक ने कही, महाराज ! सब लोग बोलते ही दीखैं हैं, तापै आपने कह्यौ कि–जिनको हृदय बस्तु ते खाली होइ है, वे ही जहाँ-तहाँ बोलते डोलैं हैं, वस्तु ते भरे भये हृदयवारे महतजन प्रथम तो बोलैं ही नाँइ हैं, कदाचित् बोलि परैं तो समस्त संशयन की ग्रन्थिन कूँ भलीभाँति खोलि देवैं हैं। भ्रम में भूले भये लोगन कूँ यह ज्ञान ही नाँइ होय है कि हमने कहा बोलनो चहिये, और कहा हम बोल रहैं हैं। याते नित्यविहार के सेवी श्रीबिहारीदास तौ या जगत सों बोलैं ही नाँइ, बिनको मन तो श्रीबिहारी-बिहारिनीजू तथा श्रीस्वामीजू महाराज सों सतत एकरस मिल्यौ रहै है।

आसा जिज्ञासा नहीं, नहिं आशा उपदेस।
नाम रूप रसना चखनि, को समझै यह देस ॥
को समझै यह देश सहज, सबसों नहिं बोलैं।
बोलैं समयो पाइ, ग्रंथि संशय की खोलैं ॥
भगवत रसिक अनन्य भानु लौं करैं प्रकाशा।
हरैं तिमिर अज्ञान ज्ञान दै पुजवैं आशा ॥

परि गई कौंन हूँ भाँति टेव यह कैसे कें निरवारौं।
सुख संतोष होत जिय जब आनंद वदन निहारौं ॥

मन और प्रकृति परी उनके अंग अंतरु बैठि विचारौं।
छुटि गई लाज काज सुत वित हित निमिष न इत उत टारौं ।।
बाधक तकत बहुत मुसिबे कों काहू की सीख न सम्हारौं ।
कोउ कछु कहौ सुनें न घटैं रुचि बंधु पिता पचिहारौं ।।
जैसे कंचन पाइ कृपन धन गनत रहौं न बिसारौं।
श्रीबिहारीदास श्रीहरिदास चरन रज काज आपनों सारौं ।।२७।।

श्रीस्वामीजी महाराज़ कौ साँचो आश्रय लैबे ते ऐसी टेब परि गई है कि जाको निवारण काहू प्रकार हम कर ही नांइ सकैं हैं। अब तो हमारे मन और प्रानन कूं सुख-संतोष जब हीं होय है, जा छिन श्रीबिहारीजी महाराज को सरस-रसीलो अमृत ते भरचौ भयौ मुखचंद हम आंख भरि-भरि कें निहारें हैं। हमारो मन और सुभाउ अखिल सौन्दर्य-माधुर्य के महासिंधु श्रीस्यामा-स्याम के अंग-अंग में ऐसो अरुझि रह्यौ है कि हम बैठिकैं अपने हृदय में एकरस या माधुरी कूं ही बिचारते रहैं हैं। जाके कारन सुत-वित-सुहृदादिकनकौ हित, एवं लाज-काज सब छूटि, येई महामाधुरी हमारे मन-प्रान में ऐसी बसि गई है, जोकि—एक निमिष हू अपने चित्त कूं इत-उत माऊँ नांइ टारि सकूं हूं। बासना स्वरूप बहुत सी विघ्न बाधायें मोय हटाइबे के ताईं अनेक चेष्टा करैं हैं, किन्तु मैं काहू की सीख नांय मानूं हूं। भाई-बंधु, माता-पिता आदि परिवार हू पचि-पचि कें हार गये, कोऊ कछु कहौ, हम काहू की सुनैं ही नांइ हैं। जैसे काहू महाकृपन कूं अपार धन-संपति कौ खजानौ मिल जाइ, तौ वो रात-दिन बार-बार बाकूं गिनतो-सम्हारतो ही रहै है। ताही भाँति हम नित्यबिहार रस-रूप अद्भुत निधि कूं सतत अपने मन में सार-सम्हार करते रहैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमलन की रज के अनन्य आश्रय सौं अपने सब कामन कूं भलीभाँति हम बनाते रहैं हैं।

भजसि रे मन मनहि बियारैं।
भुलवत कित प्रभु के उपकारैं ।।

जनमतु मरतु भ्रमतु न डरतु निदरतु उलटे बल वस्तु अगारैं।
लाग्यौ फिरत ऊर्धमुख पसु लौं परम विषै विष अति भै भारैं ।।
काम क्रोध मद मोह मुदित मन धन दारा संग्रहतु विकारैं।
कीनों श्रमु सब दिन विवेक बिन सुख सुपनें न लिह्यौ संसारैं ।।

तजत न निठुर लजत न महासठ लै बाँध्यौ ममता अहंकारै।
विवस परचौ न ढर्यौ जानत जब विषै विपति बूडत जल धारै॥
बुधि बाँह सु गुन नेंन बैंन लै राच्यौ चरन कर श्रवन सुढारै।
सुंदर अंग सुसंग समागम संपति सहज सु कस न संभारै॥
ब्रह्मा इन्द्र कीट पसु पंछी को गनि सकै भयौ कै बारै।
श्रीबिहारीदास बड औसर मौसर पाय सुलभ तन जनम न हारै॥२८॥

अरे मन, तू भलीभाँति बिचारि करि कें श्रीहरि कौं क्यों नाँइ भजै है। परम कृपालु दयालु अपने प्रभु के उपकारन कूँ तू काहे कूँ भूलि रह्यौ है। या भूलिबे के कारन ही तू जनमतो, मरतो भयौ अनादिकाल ते माया में भ्रमतो चल्यौ आइ रह्यौ है। ताहू पै या दुख तें तू नेंक हूँ नाँय डरि रहचौ। वो प्रभु सदाकाल तेरे संग ही रहैं हैं, तौहू तूँ बिनके माऊँ नाँइ देखि, महा दुखदाई जहर सदृस विषयन के अत्यन्त भयंकर भार कूँ ऊँट की नाँईं बलपूर्वक लादें फिरि रहचौ है। काम-क्रोध, मद-लोभ-मोह आदि में निसदिन प्रसन्न भयो तू धन-दारा रूपी विकारन कूँ संग्रह करिबे में ही लगि रहचौ है। मैं तुमसों साँची कहूँ हूँ कि—या संसार में प्रत्यक्ष की तौ कहा चलाई, सपने में हूँ सुख नाँइ लिख्यौ है? तू बिना विवेक कें यामें श्रम करि-करि कें वृथा-ही पचि रहचौ है। अरे महा सठ! न तो तूँ या संसार कूँ छाँड़ि ही रहचौ, न तोंइ अपने कुकर्मन पै लज्जा ही आवै, ममता और अहंकार में बँधि कें तू ऐसो बिबस है रहचौ है कि अपने प्रभु के माऊँ नेंक हूँ नाँइ ढरि रहचौ है, और विषय विपत्ति-रूपी महासागर में जानि-बूझि कें डूबि रहचौ है। प्रभु नें बुद्धि गुन, नैंन-बैंन, कान, हाथ, पाँव आदि अंगन कौं सुन्दर समागम करि कें यह मानव देहरूपी कैसी अच्छी संपत्ति तोकूँ सहज ही दै दीनी है, तू श्रीहरि कौ स्मरण-चिंतन करि कैं याकूँ भलीभाँति क्यों नाँइ साज सँवारि लै? तू कितेक बार ब्रह्मा, इन्द्र, कीट, पसु-पक्षी आदि अनंत योनिन में भ्रम-भटकि चुक्यौ है—जाकी कोऊ गिनती ही नाँइ करि सकै है। हे बिहारीदास! यह तुम्हें बहुत ही सुन्दर अवसर मिल्यौ है, यह जो देव-दुर्लभ मानव देह तुम्हें अनायास ही सहज मिली भई है, याकूँ श्रीहरि सों हित किये बिना वृथा ही मत खोवो।

कहा कपट करि सजत सिंगारै।
हरि पिय भजि लजि तजि बिभचारै॥

जानत मन भावनि लावनि बहु लंपट नारि रचैं ज्यौं जारैं ।
क्यौं पत्यात पति अति चतुराइनि कोटि कटाछनि नैंकु निहारैं ।।
संतत सील सजातिन सों मिलि छांडि छदम निहकाम विचारैं ।
सुख संतोष अनुराग बढे रस जो रिझवै इहि भाँति भर्तारैं ।।
सौति साल विष व्याल काल बस बिन विवेक अजहूँ जिन हारैं ।
श्रीबिहारीदास दोऊ सर्वोपरि जो अरपै आनंद उदारैं ।।२८।।

जो साधक संसारिक विषयन कूँ तथा और-और धर्मन कूँ तो मन लगाइ कें सेवैं हैं और श्रीहरि कूँ बिना सांचे भाव के ऊपर ते ही भजें हैं, तिनके प्रति लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—जैसे कोऊ लम्पट व्यभिचारिनी स्त्री परपुरुष ते तो रति मानै और अपने पति ते मनभाँमती मीठी-मीठी बात बनाइ, यद्यपि कोटि-कटाक्षन सों निहारै, तौहू वाके व्यभिचार कूँ जानिबेवारो पति वाकी चतुराईन कूँ नेंक हूँ विस्वास नाँइ करै है। ऐसे ही तुम्हारे मन में श्रीहरि के प्रति साँचो भाव तो है नाँइ, केवल हरि-भक्तन कौ सौ साज-सिंगार बनाइ लीनौ है। या कपट सों घट-घटकी जानिबेवारे श्रीहरि कैसे रीझि सकैं हैं ? यासों हे भाई ! ठौर-ठौर पै मन लगाइबो रूप व्यभिचार तें लज्जित होय, वाकूँ भलीभाँति त्यागि, साँचे भाव सों अपने प्रानप्रीतम श्रीहरि कूँ ही भजौ। निष्कामता पूर्वक, निष्कपट भाव सों संतत शील स्वभाववारे अपने सजातीय महतन सों मिलि, या बस्तु कौ सदाकाल विचार करौ। जो बड़भागी साधक या प्रकार अपने प्राण प्यारे प्रियतम श्रीहरि कूँ रिझायौ करैं, वाके हृदय में सुख, संतोष, अनुराग-रस नित नयो बढ़तो ही जाय है। हे भाई ! बिना विवेक कें माया सौत के दुसह-दुख और महा बिषैले काल-व्याल के बसीभूत होइ या बार तौ अपने जीवन कूँ मत गंवावो। यदि तुम लोक-परलोक, कर्म-धर्म, मन-बुद्धि आदि सर्वस्व प्रभु के अर्पन करि देउ तो तुम्हारी दोऊ ओर तें सर्वोपरि बनि जाइगी।

कैसे करत प्रीति मुरारि ।
एक मनहि अनेक ठौरनि धरत परत न हारि ।।
देह गेह सनेह संपति मान लेत गँवारि ।
लोह पलटैं हेम हारत बिना विमल विचारि ।।
संग संग्रह वैर विग्रह कृपा निग्रह जहाँ ।
भेद भै भ्रम जगत जानत भक्ति ज्ञांन न तहाँ ।।

जोग जग्य कलेस करि करि विविध मारग बहत।
काम रत पसु प्रांन हत ते क्यों भक्ति अनुसरत।।
भक्ति भक्तन कों दई हरि भक्ति भक्तै देत।
श्रीबिहारीदास कें आस श्रीहरिदास प्रेम समेत।।३०।।

जिन लोगन कौ मन तौ मायिक संसार में फँसि रह्यौ है, और भक्तन कौ वेस धारन किये फिरें हैं, तिनके प्रति लक्ष्य करि आप बोले कि हे भाई! ऐसे करिबे ते यावत् विरोधिन कूँ नष्ट करिबेवारे श्रीहरि तुमसों प्रीति कैसे करेंगे? क्योंकि अपने एक मन कूँ अनेक ठौरन पै धरि-धरि कें तुम कबहूँ हारि नाँइ मानि रहे हो। देह-गेह सों स्नेह कूँ ही गँवारपने ते तुमने अपनी संपत्ति मानि लीनी है। बिना उज्ज्वल विचार किये लोह के पलटे में ही सर्वोपरि नित्यविहार रस-रूपी सुबरन कूँ तुम हारि रहै हो। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि जहाँ अनेक प्रकार सों संग-संग्रह, बैर-विग्रह आदि होय कें कृपा को बल भरोसा नाँइ होय है, तहाँ बहुत भाँति के भेद-भय-भ्रम सतत रहैं हैं, ताते तहाँ भक्ति-ज्ञान नाँय रहै है, या बात कूँ समस्त जगत जानै है। जो लोग जोग-जज्ञन में असह्य यातनान कूँ सहि-सहि कें नाना मार्गन में भटकते डोलै हैं, ऐसे आतमघाती, पशु-पामर प्रानी श्रीभक्ति महारानी के सन्मुख कैसे है सकें हैं? क्यों कि श्रीहरि ने अपनी भक्ति एकमात्र भक्तन कूँ ही दै राखी है। याते श्रीहरि के भक्त ही भक्ति दै सकें हैं। हे भाई! याही सों श्रीबिहारीदासन कूँ जुगल प्रेम के अनन्य उपासक श्रीस्वामीजी महाराज की ही एकमात्र प्रेम सहित आसा रहै हैं।

जो चाहै सुख सर्वदा भजि हरि प्रभु प्यारौ।
महा मोह अज्ञान अंध कित होत अँख्यारौ।।
त्रिजग जगत में जिन गिरै जानत अँधियारौ।
छाँडि सकुच संसार की तेरौ पथ न्यारौ।।
बहुत बार तोसों कह्यौ बकि कियौ गिज्यारौ।
साधु-संगति जिन परिहरै हरि भजन उज्यारौ।।
जाति आव बिन भाव-भक्ति के लेखें व्यारौ।
श्रीबिहारीदास प्रभु करत काज सब सकुच लज्यारौ।।३१।।

निज आश्रितन तें आप फिर कहिबे लगे कि हे भाई! यदि तुम सदा-सर्वदा

सर्वोपरि सुख ते सुखी रहिबो चाहौ हौ, तो दृढ़ अनन्य होइ, अपने प्रान प्यारे श्रीबिहारीजी महाराज कौ निरंतर भजन करौ। तुम विवेक रूपी आँखिनवारे होते भये हू अविवेकी अन्धेन की नाईं महामोह के अज्ञान-रूपी अँधेरा में काहे कूँ परौ हो? सत्व, रज, तम त्रिगुनमयी माया के द्वारा रचे भये या संसार में सर्वत्र अँधेरो ही अँधेरो है, या बात कूँ जानते भये हू तुम यामें क्यौं गिर रहे हो। जगत के लज्जा, संकोच कूँ भलीभाँति त्यागि देउ। क्यौंकि तुम्हारो पथ इन सबन ते न्यारौ है। जब इतेक कहिबे पै हू साधक तैयार नाँइ भयौ, तौ दया में बिबस होइ कछु अनखनाते भये आप फिर बोले कि–हे भाई! हमने बेर-बेर बकि के तोसों गिजारौ करि दीनौ, तौहू तुम नाँइ समझि रहे हौ। देखो हृदय में साक्षात् श्रीहरि के भजन को उजारो करिबेवारे सन्तन की संगति कूँ कबहूँ मत छाँडौ। भाव-भक्ति के लेखे बिना, तुम्हारी यह आयु बायु की भाँति बृथा ही बही चली जाइ रही है। अब तुम या पथ के पथिक है गये हौ, तौ सब बातन कौ लज्जा, संकोच त्यागि देउ। हमारे प्राननाथ श्रीस्वामी जी महाराज तुम्हारे सब काम निश्चय ही सम्हार देवैंगे।

ऐसे क्यों हरि पाइये सुनि मेरे बोरा।
मन क्रम वचन विचार चरन चित धरत न धीरा॥
अधम न छाँडै अधमई गुरु कितौ पुकारै।
पर की निंदा करै पतित अपनों ब्रत हारै॥
अपने गुन न पिछानई औरनि बिसराहै।
अपनौं टेंट न टोहई मुख देख्यौ चाहै॥
अपनें किये सरत काज यामें सक नाहीं।
श्रीबिहारीदास विचार रह्यौ फिरि फिर सब चाहीं॥३२॥

याही बात कूँ आश्रितन ते समझाते भये आप फिर बोले, अरे भाई! सुनो, जब ताईं तेरो मन संसार में लग्यौ भयौ है, और साँचे भाव ते श्रीहरि की सरन तुमने नाँइ गही, तब ताऊँ श्रीहरि तोकूँ कैसे प्राप्त हैं सकेंगे? श्रीगुरुदेव कितेक पुकारि-पुकारि कें समझावें हैं, पर न तो मन, क्रम वचन ते बिचारि, धीरज धरि, तैंने श्रीहरि के चरनकमलन में अपनो चित्त लगायो, और न तैंने अपनी अधमता ही छाँड़ी। औरन की निंदा करि-करि कें, पतित होइ, अपने श्री भागवत-धर्म के ब्रत कूँ ही हारि रह्यौ है। जैसे कोऊ अपनी आँख के गोलक पै लटके भये माँस के टेंटरे कूँ

तो देखै नाँइ है, और दूसरे के मुख पै दोष ढूँढ रह्यौ होइ, तैसे ही तूँ अपने औगुनन कूँ तो देखै नाँइ ? दूसरेन की बुराई कूँ देखतो रहै है।

अरे भाई ! तुम्हारो काम तो अपने दोषन कूँ दूर करि, चित्त कूँ निर्मल बनाइ, श्रीहरि के भजन करिबे ते ही चलैगो—यामें कोई संदेह है ही नाँइ। याही ते हम हूँ अपने मन की सब चाहनान कूँ सदाकाल बिचार करि-करि, देखते रहैं हैं।

क्यौं पाइयतु बल बुधि विश्रांम।
ग्यान विवेक विचार मन धरत न ठाम ॥
श्रीवृन्दाबन निधि सब सुख धांम।
मन क्रम वचन अनन्य भजन बिनु नांमै गावै गुन ग्रांम ॥
जांनि भक्ति फल मूल परम पद व्याज विषै छांडत नहीं भ्रांम।
बाढत कर्म न घटत काहू के सेवत देवन सदा सकांम ॥
याही तें धन दारा विवस रस बितवत वृथा गमावत जांम।
श्रीबिहारीदास निरभै भज हरि पद चाहत छूट भयौ निहकांम ॥३३॥

जब तक ज्ञान-विवेक द्वारा मन तें भली-भाँति बिचारि कें, या अद्भुत रसमय भूमि श्रीवृन्दावन-निधि की सरन नाँइ लई हैं, तब ताईं तोकूँ वास्तविक बल, बुद्धि और बिश्राम कैसे मिल सकै है ? या सर्वोपरि निज महल श्रीधाम कौ मन, क्रम, वचन सों अनन्य भाव ते भजन किये बिना नित्यविहार रस प्राप्ति के ताईं केवल नाम-गुनन कूँ गाइबे ते ही कहा होइ सकै है ? परमपद कौ मूल-फल श्रीभक्ति महारानी के स्वरूप कूँ जानि के हू भ्रम में परि, व्याज सदृश और-और धर्मन की आस्था एवं विषयन कूँ नाँइ छाँड़ि रह्यौ है। मैं तुमतें कहूँ हूँ कि—जो जन कामनान में विवश, नाना धर्म एवं देवी-देवतान कूँ सेवैं हैं, बिनके कर्म, नाँइ घटिकें उल्टे बढ़ते ही जाँइ है। याही ते ऐसे लोग धन-धाम, स्त्री-पुत्र आदि संसारिक सुखन में फँसि कें पहर के पहर बेकार बिताते भये अपने सच्चे सुख कूँ गँवाइ देवैं हैं। यदि तू दुखदाई जगत तें छूटि कें निष्काम होनो चाहै है तो सबसों निर्भय-निश्चिन्त होइ, श्रीहरि के चरनकमलन कौ सदाकाल भजन करि।

सब तजि भजि परमारथै सेवत सुख लीजै।
बहुत गयो थोरो रह्यौ, ताहूँ में दिन दिन छीजै ॥

ज्यौं न लगै जल काल कुटिल तौलौं जांनत जीजै।
यह तनु कांचे कलस लों विनसै जो भीजै॥
अपने हरि हितु जाँनि तिनसों कछु कपट न कीजै।
जिन सौंप्यौ धन ज्ञाँन प्राँन मन तिनही कों दीजै॥
प्रीति प्रतीति करत हरि परचो करि लीजै।
श्रीबिहारीदास परचौ भयें हँसि मिलै न खीजै॥३४॥

याही बिषय में आप और हू कहैं हैं कि–हे भाई ! तुम समस्त कर्म, धर्म, आसा, तृष्ना आदि कूँ त्यागि कें एकमात्र अपने परमार्थ कूँ ही भजो, जाके सेवत खेम सुखी होते चले जाओगे। तुम्हारो बहुत सों समय बेकार चल्यौ गयौ है, जो कछु थोरो सौ रह्यौ है, सोऊ दिन-दिन छीजतो जाइ रह्यौ है। जैसे कच्चा घड़ा, जल के सपरस होत खेम नष्ट है जाइ है, तैसे ही यह बात भली प्रकार समझ लेउ, कि जौलों कराल-काल-रूपी जल सौं यह देह को स्पर्स नाँइ भयौ है, तौलौं ही यह जीवित है। याते श्रीबिहारीजी महाराज कूँ भलीप्रकार अपनो साँचो हितैषी समझि, बिनसों भूलि की भूल में हू, कबहूँ कपट मत करौ, और या जगत में जिन महतपुरुषन ने यह अद्भुत ग्यानरूपी धन दीन्यौ है, तुमहूँ अपनो मन, प्रान बिनकूँ ही दै देओ। श्रीहरि एकमात्र साँची प्रीति कौ ही बिस्वास करें हैं, तुम अपनी साँची प्रीति-प्रतीति तें श्रीहरि सों परिचय करि-करिकें देखि लेउ। फिर तो दोऊ ओर ते परिचय भये पै परस्पर हँसि-हँसि के मिलिबे के अतिरिक्त खीझिबे को कोऊ प्रस्न ही नाँइ रहैगो।

प्रभु जू हौं तेरा तू मेरा।
राजी खसम कहा करै काजी लोग बकौ बहुतेरा॥
हौं तू एक अनेक गनें गुन दोस न किसहू केरा।
जल तरंग लौं सहज समागम निर्मल सांझ सबेरा॥
कोउ स्वामी कोउ साहिब सेवक कोउ चाकर कोउ चेरा।
बिना ममत्व इकत्व न ऐसा जगतै भक्त घनेरा॥
तन मन प्राँन प्राँन सों सनमुख अब न फिरै मन फेरा।
श्रीबिहारीदास हरिदास नाँम निज प्रेम निबेरा झेरा॥३५॥

हे श्रीबिहारीजी महाराज मैं समस्त रीति भाँति सों आपको हूँ, और आप

मेरे हैं, क्योंकि जब आप स्वयं मोपै प्रसन्न है गये हो, तब काजी स्वरूप वेद-शास्त्र तो हमारो करि ही कहा सकेंगे ? और जगत के लोग झूठ-मूठ ही बक्यौ करें, ताते हमारो कहा बिगरि सकै है। आप और मैं जब एक है रहैं हैं, तब अनेक गुन-अवगुन होते भये हू काहू को दोष नाँइ देख्यौ जाइ है। मेरो-आपको सहज निर्मल समागम जल-तरंग की नाई सतत एकरस बन्यौ रहै है, यद्यपि स्वामी, साहिब, सेवक, चाकर, चेरा आदि विभिन्न भाव-संबंधन कूँ मानिबेवारे अनेक भक्त संसार में विद्यमान हैं, किन्तु बिना ऐसो ममत्व के हमारो सरीखो एकत्व काहू को नाँइ है रह्यौ है। श्रीस्वामीजी महाराज को हरिदास निज नाम के प्रेम ने इहलोक-परलोक ते भलीभाँति निबेरा कराय, ऐसे अपनो बनाइ लीनो है, जैसे कोऊ व्यक्ति झेरा में गिर जाइबे पै, न तो वो स्वयं ही निकसि सकै है, और न वाकूँ कोऊ निकारि ही सकै है। याते अब हम अपने तन, मन, प्रानन द्वारा श्रीजुगल के प्रानन की रूख के सन्मुख ऐसे रहैं हैं, जोकि काहू के अनेक चेष्टा करिबे पै हू हमारो मन कहूँ इत-उत माऊँ नाँइ फिरि सकै है।

कैसे हरि जस गाइहौं सनमुख ह्वै सब दिन।
कब यह औसर पाइहौं छिन छिन आलस बिन ।।
मन मति मंद महाबली औगुननि संजोयौ।
जिह्वा अति अपराधिनी स्वाद वाद विगोयौ ।।
संतत सुनत असत् कथा श्रवननि पुटि पोयौ।
चंचल नैंन न चैंन भूलि हरि बदन न जोयौ ।।
नासा निर्माइल बिना सौरभ विष भोयौ।
तन अपने रस परस विवस पर आसन सोयौ ।।
ये अपनें बल सूर सबै मिलि हौं गहि गोयौ।
निकसि न सक्यौ सभा संकेत तें संग ही समोयौ ।।
तब मैं सरन तकी भै मानि जानि तिनके डर रोयौ।
श्रीबिहारीदास प्रभु दयासिंधु देखत ही दुख खोयौ ।।३६।।

जो साधक जागतिक विषयन में लिप्त होइबे के कारन श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के प्रानन के सन्मुख नाँइ है सकै हैं, तिनकूँ समझाते भये अपने ऊपरि धरि आपने कह्यौ कि–हे प्रभू ! ऐसी कृपा आप मोपै कब करौगे कि मैं आलस कूँ त्यागि आपके सन्मुख होइ रातदिना आपके जसन कूँ निरंतर गायौ करूँ। क्योंकि यह मेरो

मंदमति मन महाबली सदाकाल अवगुनन कूं ही सजोइ के राखै है, अति अपराधिनी जिह्वा ने परनिंदा, बाद-बिबाद और नाना प्रकार के स्वादन में मोकूं डुबोय बिवस करि दीनौ है। मेरे कान सतत परनिंदा आदि झूठी बातन कूं सुनिबे में ही अपनी तृप्ति मानें हैं। ये बेचैन नेत्र जागतिक बिषयन कूं देखिबे के ताईं निरंतर ऐसे चंचल है रहें हैं कि भूलिकें हूं, आपके मुखारबिंद के माऊँ नांइ देखें हैं। नासिका आपके श्रीअंग के निर्मल सौरभ कौ परित्याग करिकें बिषैली दुर्गन्धन कूं सूंघिबे में लगी भई है और यह तन अपने स्पर्स रस में बिवस होइ, भक्ति, भजन के आसन ते बहुत दूर दूसरे बासनान के ही आसन पै सोयो करै है। इन सब सक्तिसाली सूरबीर इन्द्रिन नें मोहि अपने बल सों या प्रकार दबोचि राख्यौ है कि, मैं इनकी सभा सों बाहर कैसेहू नांइ निकसि सकूं हूँ। इन सबन ने मोकूं इसारा मात्र ते ही अपने संग में समोइ लीनो, जब मेरी एकहू नांइ चली, तब बिनके डर के मारे अत्यन्त भयभीत होय, मैं श्रीस्वामीजी महाराज की सरन में जाइ कें रोइबे लग्यौ। अद्भुत दया के सागर हमारे प्रभु ने मोकूं देखत खेम ही समस्त दुखन सों छुड़ाय सर्वोपरि प्रेम दान दै, निर्भय करि, करुवा-गूदरी मोकूं दै दीनी।

मेरी गूदरी निरबाहु।
हौं नहीं समरथ ऐसो तुम गहौ प्रभु बाहु॥
तुम्हरी माया लोभ लहरि बौरतु गहि ग्राहु।
श्रीबिहारीदास प्रभु राखि लै सरन अबकी ओर निबाहु॥३७॥

फिर आप श्रीस्वामीजी महाराज ते प्रार्थना करते भये बोले कि–हे करुना-सागर! या मेरी करुवा-गूदरी की रहनी कूं आपही कृपा करिकें निबाहौ, क्योंकि मैं ऐसो समरथ नांइ हूँ कि या रहनी कौ निर्बाहि करि सकूं। या दुस्तर संसार-सागर में महाबिचित्र माया की लोभ-लहरि ग्राह की नाईं पकरि, डुबोइ देवें हैं। याते आप सदाकाल मेरी बाँहकूं पकरि,अपनी सरनमें राखि,अंतताऊँ आपही निभाइ देउ।

जब तें सुरत करी प्रभु मेरी।
कीनी कृपा कटाक्ष दीन पर तब फिर इत चितयेरी॥
श्रीहरिदास प्रताप चरन बल बिपुल टहल दई नेरी।
माया मोह प्रवाह परचौ मन बहे जात बुधि फेरी॥
कर्म काल अरु विधी-निषेध कौ संसै दियौ निबेरी।

जाति वरन अभिमान गयौ भ्रम भई महल निजु चेरी ।।
दियो प्रसाद स्वाद सेवा सुख और द्वार अवहेरी ।
श्रीबिहारी-बिहारिनदास कुंज रस जस गावत टेरा टेरी ।।३८।।

तबतें श्रीबिहारीजी महाराज ने मो दीन पै सुरति करि, कृपादृष्टि कीनी, तबहीं हमने बिनके माऊँ देख्यौ है और श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-रज-बल प्रताप तें मेरे प्राननाथ श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू नें साक्षात् श्रीनित्यबिहारिनीजू के चरन-कमलन के अति निकट की टहल मोकूँ दै दीनी है। मेरो मन मोह-माया के अति प्रबल प्रवाह में परि, बह्यौ जाइ रह्यौ हो, बिननें ही कृपा करिकें मेरी बुद्धि कूँ अपने माऊँ ऐसो फेरि दीन्यौ, जोकि कर्म, काल, बिधि, निषेध आदि के समस्त संसय हमारे दूर है गये, और जाति बरन के अभिमान एवं भ्रम भलीभाँति मिटिकें, महल की निज चेरी हम बनि गये। अब मैं और काहू के दरवाजे माऊँ नाँइ देखि कैं, बिनको ही सेवा-स्वादरूपी प्रसाद को महासुख सतत बिलसूँ हूँ, और श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के निकुंज-बिलास रस-जसन कूँ निरंतर टेरि-टेरि कें गायो करूँ हूँ।

हों तौ आयौ सरनै तेरी तूँ मया करि स्वामी। मन वच क्रम स्याम न गायौ सुनि सुनि सुख दुहुँ दिसि धायौ संतत मारग वामी ।। बहुत जन्म जोनिन भ्रम्यौ त्रिजग जगत में रम्यौ कृपन कातर कामी। अब की तब की सब जानत जाकी जैसी ताकी तैसीयै करि बानत तुम हो अंतरजामी ।। गुन-रूप-सम-बैस जोर-ब्रज-नृपति नित नौतन किसोर कैसे कहि आवै। अंतर आरति निवारि निरखों निज बदन सार वारु वारु भावै ।। हों पतित तुम पतित पावन निज जन ताप नसावन औसर बड भारी। अब कैसे मन कपटहि राचत छिन-छिन दिन यहै जाचत दीन दास बिहारी ।।३९।।

आप श्रीस्वामीजी महाराज सौं प्रार्थना करते भये कहैं हैं कि—हे प्राननाथ ! जैसे-तैसे आपकी कृपा ते ही आपके सरन में आइ परचौ हूँ। हे करुना-सागर ! आपसों मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि—अपनो जन जानि, मोपै दया करौ। अब ताऊँ तो या संसार में जहाँ-जहाँ सुख सुन्यौ, तहाँ-तहाँ दिसा-विदिसान में चारोंओर बहिर्मुख होइ, सतत मैं भाजतौ फिरचौ, और साँचे, सुख के सागर श्रीबिहारीजी महाराज कौ भजन मन, क्रम, बचन ते कबहूँ नाँइ कीनौ। याही सों मैं कृपनता तें

बासनान में कातर-कामी होइ, त्रिगुनमयी माया के या संसार में रमि-रमि कें अनेक जन्मन ताऊँ नाना योनिन में भ्रमतो रह्यो। मैं अपने अनन्त अवगुनन कूँ आपसों कहाँ ताऊँ कहों ? आपतो अन्तर्यामी हैं, सब जन्मन की भलीभाँति जानिबेवारे हो, जाकी जैसी होय है, ताकी तैसी ही बनाइ देवो हो। आपकी कृपा के बिना नव योवन के जोर में विभोर, नित नूतन किशोर, व्रजरस-देस के हू सम्राट, सर्वोपरि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के गुन-रूप-सभवेस आदि अद्भुत जसन कूँ कोऊ कैसे गाइ सकै है। मैं तो पतित हूँ और आप समस्त पतितन कूँ पावन करिबेवारे एवं निज-जनन के ताप-संतापन कूँ नसाइबेवारे हो। यह मेरे ताईं बड़ो भारी सौभाग्य को समय है, अब मेरो मन या कपट भरे संसार में कैसेहू नाँइ लगि सकै है, याते मैं दिन-दिन, छिन-छिन अति दीन भयो, आपसों यही जाँचना करूँ हूँ कि मेरे हृदय की आर्तता कूँ मिटाइ, ऐसी कृपा करो--जो सर्वसारातिसार श्रीजुगल की मुखचंद छवि छटा माधुरी कूँ ऐसो महानुराग ते निहारतो रहूँ कि बार-बार निहारिबे पै हू वा छवि-छटा कूँ निहारिबो ही भावै।

सुनि मन मधुकर ज्ञान सिखाऊँ। चरन कमल रति रुचि उपजाऊँ।।
तिहि पथ चलौ जु बहुरि न आऊँ। जनम मरन भै भर्भ भुलाऊँ।।
बसि वृन्दावन उत्तम ठाँऊँ। सतसंगति परमार्थ पाऊँ।।
नित दंपति संपतिहि दिखाऊँ। श्रीबिहारिनिदासि भई गुन गाऊँ।।४०।।

फिर अपने मनसों कहते भये आप बोले कि--अरे मन, तू भँवरा की नाईं छिन-छिन ठौर-ठौर पै डोलतो फिर रह्यौ है। तू नेक मेरी बात तौ सुनि ! मैं तोकूँ ऐसो ग्यान सिखाऊँ और तेरी रति एवं रुचि, दिन श्रीचरन-कमलन में उपजाय दऊँ, जहाँ अति सर्वोपरि अगाध सुख सों तू सदा-सर्वदा सुखी रहै। यह मेरो बतायो पथ ऐसो है कि यापै चलिकें तोकूँ फिर जगत में नाँइ आवनो परैगो, और जन्म, मरन के भय, भ्रम, दुःखन कूँ सदाकाल के ताईं भलीभाँति भूलि जायेगो।

मानो मन ने पूछी कि वह कौनसो सुख है और कौनसो वा सुख कूँ प्राप्त करिबे को उपाय है ? तब आप बोले कि--सर्वोत्तम महारसमय श्रीवृन्दावनधाम में तो तू सदाकाल अखंडवास करि, जहाँ सत्संग द्वारा परमार्थ पथ पै तू चलि सकैगो। फिर मैं अद्भुत सुख-संपत्ति रूपी श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के दरसन तोकूँ कराय दूँगो। तब तू नित्य विकसित अभूत, अनुपम पराग ते भरे भये श्रीचरन-कमलन को

सौन्दर्य-मकरंद को निरन्तर पान करि-करि, उमँगि-उमँगि बिनके ही गुनन कूँ गायो करियो।

अब कछु मेरौ कह्यौ सुनौं।
जो संतत सुख पायौ चाहौ तौ छाँडौ हठ अपनौं ॥
टेढो चाल चलैं बिगरचौ पटु ताकौ मूँड धुनौं।
हम सों बनैं प्रेमतारनि जो उलटि उधेर बुनौं ॥
हम तुमहू ते संखल पथ वांमी बरजें होत सवाये।
श्रीहरिदास कृपा अंकुस करि इत सुख सहज नवाये ॥
प्रकृति बिरोध काज बिगरत तुम काहे कों होत पराये।
श्रीबिहारीदास भई सुमति सबनि में एक भये हरि पाये ॥४१॥

निज आश्रितन ते कहिवे लगे कि हे भाई! यदि तुम सदा-सर्वदा के ताईं सर्वोपरि सुखसों-सुखी रहिबो चाहते हो तो मेरी बात मानि, अपनी हठ कूँ भलीभाँति छाँड़ि देउ, क्योंकि प्रेम-बिरोधी टेढ़ी चालन में चलिबे ते प्रेम को पट बिगरि जाय है, ताते पहिले बिन चालन को मूँड़ धुनि देउ। हमसों बिसुद्ध प्रेमरूपी पट तिहारो तभी बुन्यौ जायगो–जब तुमने इहलोक-परलोक में जहाँ-जहाँ अपनो प्रेम-सुख-संबंध बाँधि राखें हैं, तिन सबन कूँ भलीभाँति उधेर डारोगे?

यह सुनि मानो आश्रित ने कही कि–हे महाराज! हमतो सांसारिक माया-मोह में फंसे भये ऐसे बहिर्मुख है रहें हैं, जोकि यही हमते छूटिबे में नाँइ आइ रह्यौ है, फिर आपसों हमारो अनन्य प्रेम कैसे है सकैगो! तापै आप बोले कि–तुम या बात की चिन्ता मत करौ, मतवारो जंगलो हाथी की नाईं हम तुमते हू अधिक बहिर्मुख ऐसे हुते, जोकि कुकृत्यन ते हमें कोऊ बरजतो तो हम उल्टे दूने-दूने बिनहीं कामन कूँ कियो करते, किन्तु श्रीस्वामीजी महाराज के कृपा रूपी अंकुस ने हमकूँ सर्वोपरि नित्य-बिहार सुख के माऊँ सहज ही नवाइ दीन्यौ। अब हमारी जैसी प्रकृति बन गई है, तुमहूँ वैसी ही प्रकृति बनाइ लेउ, हमारे सुभाउ के विरुद्ध चलिबे ते तुम्हारो काम बिगरै है, फिर तुम हमते पराये काहेकूँ है रहे हो? जब तुम्हारी सुमति हमारी सुमति में मिलिकें सब बातन में एक है जायगी तो साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज तुमको स्वयं सहज ही प्राप्त है जाँयगे।

अब मोहिं सेवन दै सुख साँचौ ।
विकल भयौ भ्रम भूल्यौ सुनि सुनि कृपननि कौ मत काँचौ ॥
नैंन श्रवन रसना मन अंग अंग संग लाय लै पाँचौ ।
श्रीबिहारीदास मिलि संत सजातिन गाय गूढ गुन नाँचौ ॥४२॥

अब हमें सर्वोपरि साँचे सुख कूँ भलीभाँति सेवन देउ, क्योंकि भ्रम में भूलेभये, काँचे मति वारे कृपनन की बात सुनि-सुनिकें हम बिकल है गये हैं। अब तुमहूँ मन सहित नैंन, श्रवन, रसना आदि पाँचों इन्द्रियन कूँ श्रीहरि के अंग-संग में लगाइ लेउ, और अपने सहज सजातीय संतन सों मिलि, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के श्रीनित्यबिहार रसरूपी गूढ़-गुनन कूँ गाइ-गाइ कें सतत नाचौ।

काची सु लाची साँची सु नाँची। पिय के अंग संग रंग राची ॥
लोक लज्या लोभ बड़े सुख बाँची। उतहि संतोष न इत उमचि माँची ॥
अनन्य तन दृढ बिन को सहै आँची। प्रेमकी लीक हरिदास निज खाँची ॥
मन क्रम बचन जनम जुग जुग रहौ जाँची।
श्रीबिहारीदासै परनि प्रांननि सों पाँची ॥४३॥

जिनके अनन्य प्रेम को साँचो उद्देस्य होय है, वे महतजन तो अपने प्रानप्यारे प्रियतम श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रस-रंग में रचि सतत नाचैं हैं। जिनके उद्देस्य में कचाई होइ है, वे ही लोक, लज्जा, जागतिक, पारमार्थिक काहू प्रकार के लोभ में बसीभूत होइ, या अनन्य-पथ सों विचलित हैकें नित्यबिहार रस के परम सुख सों बंचित ही रहि जाँइ हैं। ऐसे भटकिबेवारे लोगन कूँ नेंक हूँ सुख नाँइ मिलै है, क्योंकि या संसार के पदार्थन को कितेक हू संग्रह करि लेउ, वाको लोभ कबहूँ नाँइ मिटिबे के कारन संतोष होइ ही नाँइ है। साँचो प्रेम न होइबे ते या सर्वोपरि नित्यनिकुंज रस में हूँ उमँगि-उमँगि कें वो नाँइ माचैं हैं।

या संसार की भीषण ज्वाला कूँ साँचे दृढ़ अनन्य जनन के अतिरिक्त और कौन सहि सकै है? अर्थात अनन्यता में नेंकहू कचाई रहिबे पै साधक और-और ठौरन में थोरी-थोरी हू रुचि रखिबे के कारन धीरे-धीरे ऐसो पथभ्रष्ट है जाइ है कि बाकूँ संसार के माया-मोह अनजाने में ही धर दबोचैं हैं। याते एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने ही सांचे निज प्रेम की लीक अनन्यन की सभा में खेंचि, स्पष्ट दिखाइ दीनी है। यदि प्रियतम के अंग-संग रस-रंग में रचिबो चाहो हौ तो मन, क्रम, बचन ते जनम-

जनम और जुग-जुग ताऊँ अनन्य प्रेम की ही जाँचना करते रहौ। हमनें पाँचों इन्द्री, एवं पाँचों प्रानन ते ऐसे ही अनन्य प्रीति कौ प्रन करि लीन्यौ है।

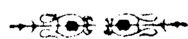
घाली है जो लागैगी।
जै है चली सहज पावन पथ जो विषै रूख न खागैगी ॥
कठिन काल कलि कर्म कुसंगी सावधाँन जो जागैगी।
इत उत बिन चितयें अपनें ब्रत सन्मुख भये न भागैगी ॥
कृपा कवच करि गात घात दृढ छल बल बिन झुकि झागैगी।
श्रीबिहारीदास तौपै साँची बुधि जो स्याम सुखनि अनुरागैगी॥४४॥

जैसे कोऊ बंदूक ते गोली दागै, और बीच में काहू रूख आदि सों न टकरावै, तौ गोली लक्ष्य पै अवश्य लगि जाय है, तैसे ही जो साधक कठिन कलिकाल, कर्म-कुसंग एवं लोक-बेदरूपी समस्त विघ्न-बाधान् को सामना करि, इत-उत-माऊँ विच-लित नाँइ है कें, यावत् छल-बलन कूँ त्यागि, श्रीस्वामीजू महाराज की कृपा रूपी कवच कूँ पहिरि जीवन पर्यंत अपने अनन्य व्रत कूँ निभावें हैं, बिनहीं श्रीबिहारि-दासन पै तो साँची बुद्धि है, और वे ही श्रीबिहारीजी महाराज के सुख सों अनुराग करि सकेंगे।

अँखियाँ भूली कौतुक स्याम।
नव निकुंज बिहरत वृन्दाबन गुन निधान वर वाम ॥
श्रवननि सुजस सुन्यौ भावत रसना गावत गुन नाम।
मनहूँ को मन मोद बढ़ायौ अंग अंग अभिराम ॥
विवस भये रस परस पराँइनि सबनि बिसारे धाम।
काहू कछू सँभार न तन को जात न जानत जाम ॥
निडर भये संग डोलत मेंटत लोक वेद की माम।
श्रीबिहारीदास देखत हूँ तृपति न इहि सुख सदा सकाम ॥४५॥

श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मन्दिर में एकरस सतत बिहार विलसते भये गुन-निधान प्रानप्यारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अद्भुत ललित कौतुकन कूँ देखि-देखिकें हमारी आँख सब कछु भूलि गईं हैं। काननकूँ तो एकमात्र आपकेही सरसरसीले सर्वो-परि जसन कूँ सुनिबो सुहावै है। जिह्वा बिनकें ही नाम-गुनन कूँ सतत गायौ करै है,

और परम सुंदर श्रीअंगन की छबि-छटा ने तो हमारे मनके हू मनको मोद ऐसो बढ़ाइ दीन्यौ है, जोकि मेरो पाँचों इन्द्रिय श्रीजुगल के या अद्भुत बिलास रसरंग में बिबस होइ, अपने-अपने सब्द, स्पर्स आदि पृथक-पृथक बिषयरूप धामन कूँ भलीभाँति बिसारि, देह सुधि भूलि, पहर के पहर याही महामाधुरी में बितावें हैं। लोक, बेद की समस्त मर्यादान कूँ मेटि, अति निडर होइ, श्रीजुगल के संग-संग रूप-रस-माधुरी कूँ निर्विघ्न अवलोकन करि-करिकें हूँ ये तृप्ति नाँइ मानें हैं।



श्रीस्वामीजी की नामावली

श्रीहरिदास गाऊँ, श्रीहरिदास गाऊँ।
श्रीहरिदास नाम गुन गाय-गाय, बिपुल प्रेम पाऊँ॥
श्रीहरिदास नाम-गुन-रूप तन राऊँ।
श्रीहरिदास प्राँननि के प्राँन जिवाऊँ॥

निज आश्रितन पै ममता करुणा के बसीभूत होय, अनन्य मुकुट मणि श्रीगुरु देवजू ने नित्यबिहार प्राप्ति के ताईं निज धारणा स्वरूप उपायन कूँ बताते भये बोले कि हे भाई हमने श्रीस्वामीजू महाराज के नाम तथा गुण अनन्य भाव ते गाये, याते श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू अति रीझि, सर्वोपरि नित्यबिहार प्रेम मोकूँ दे दीनो, जासौं तुमहूँ अपने तन-मन में श्रीस्वामीजू के नाम गुण, रूप कूँ ऐसे प्रेम बिस्वास सौं रमाय लेवो कि तुम्हारे प्राणन के हू प्राण कूँ जियाइबेवारे श्रीस्वामीजू के नाम गुण रूप ही है जाँय।

श्रीहरिदास लैना, श्रीहरिदास दैना।
श्रीहरिदास भजें भैया कछू भै ना॥
श्रीहरिदास द्यौसो, श्रीहरिदास रातौ।
श्रीहरिदास ब्यौहार, श्रीहरिदास बातौ॥

नाम, गुण, सम्बन्ध, सेवा, भजन, उपदेश एकमात्र श्रीस्वामीजू के सम्बन्ध सहित ही कोई देवै तो हम लेवें हैं, और कोऊ सतसंगी जिज्ञासु, आश्रितजन आवें तो वाकूँ श्रीस्वामीजू के सम्बन्ध सहित ही हम देवें हैं। कारण श्रीस्वामीजू के भजन करिबे ते इहलोक-परलोक में काहू प्रकार को भय रह ही नाँय सके है। जय दृढ़

अनन्य भाव ते श्रीस्वामीजू को भजन करिबेवारेन कूँ साक्षात् श्रीनित्यबिहारिनीजू निज अपनो मान लेय हैं, तब वाकूँ यावत् प्रकार के भयन को प्रश्न ही नाँइ रहै है। याते हमारे यहाँ रातदिन सब समय में एकमात्र श्रीस्वामीजू को ही भजन करिबे की ऐसी सर्वोपरि रीति है जो कि व्यवहार तथा बात हू श्रीस्वामीजू के सम्बन्ध कूँ लिये भये ही होय है।

श्रीहरिदास बल - बुधि - कुल - जाति - पाँती।
श्रीहरिदास भेंटत सीतल भई छाती ।।
श्रीहरिदास अंग बिन संग तजि सातौ।
श्रीहरिदास हिलग बिन हेत करि हातौ ।।

कारण हमारे अनन्य जनन के मन, प्राण में बल, बुद्धि, कुल, जाति-पांति श्रीस्वामीजू के चरणकमल सम्बन्ध की ही मानें हैं, श्रीस्वामीजू के अनन्य जनन सों ही मिलि कें हम सुखी होय हैं, श्रीस्वामीजू के सम्बन्ध ते विहीन जन, अति सुशील-शान्तिप्रद एवं सुखदाई होइबे पै हू त्याग देवो, अर्थात् बिनको संग मत करो। क्योंकि श्रीस्वामीजू के हिलग के अतिरिक्त हेत करिबो हमारी उपासना में बाधक स्वरूप होयगो।

श्रीहरिदास प्रेम बिन नेम न सुहातौ।
श्रीहरिदास हित बोलत मिलत महल कौ नातौ ।।
श्रीहरिदास नाम रुचि, श्रीहरिदास नाम सुचि।
श्रीहरिदास नाम लियें जाहिं दुख दोष मुचि ।।

हमारे यहाँ नेम एकमात्र श्रीस्वामीजू सों ही प्रेम करिबे को कीनो जाय है। श्रीस्वामीजू के प्रेम के अतिरिक्त काहू प्रकार को नेम हमें सुहावै ही नाँइ है। श्रीस्वामीजू के सम्बन्ध रूपी हित सों ही बोलिबो, मिलिबो हमारे महल को नातो मान्यौ जाय है, जासों मोकों एकमात्र श्रीहरिदास नाम में रुचि है, श्रीहरिदास नाम ही सर्वोपरि पवित्र करिबेवारो है। या नाम कूँ लेईबेवारेन के यावत् दुःख-दोष स्वाभाविक ही नष्ट है जाँय हैं।

श्रीहरिदास कर्मैं, श्रीहरिदास धर्मैं।
श्रीहरिदास नाम बेधि लै मन मर्मैं ।।

श्रीहरिदास ग्यानें, श्रीहरिदास ध्यानै ।
श्रीहरिदास नाम करि कोटि स्नानै ॥

श्रीस्वामीजू सम्बन्धित ही कार्य्य करिबो हमारो कर्म तथा धर्म है, अन्यथा न कोई कर्म है न कोई धर्म है। याते हे भाई एकमात्र श्रीस्वामीजू के नाम कूँ अति विशाल श्रद्धा, भक्ति, विस्वास प्रेम सों अपने मन के हू, मन के भीतर मर्म में वेध लेउ। हमारे यहाँ श्रीस्वामीजू को स्वरूप, सम्बन्ध, भाव, प्रेम, रस को समझिबो ही ज्ञान है, श्रीस्वामीजू को ध्यान ही ध्यान है और जैसे साधक स्नान द्वारा पवित्र होय के अपनो नित्य नेम करै है, तैसे ही हमारे श्रीस्वामीजू को नाम ही कोटानुकोटि स्नान सदृश पवित्र करिबेवारो है।

श्रीहरिदास नाम मेरे मंत्र माला।
श्रीहरिदास नाम मुद्रा-तिलक भाला॥
श्रीहरिदास सेवा, श्रीहरिदास पूजा।
श्रीहरिदास भजन बिन भाव नाँहिं दूजा॥

जैसे साधकन के सर्वोपरि भजन अपने गुरुमंत्र की ही माला होय है, ऐसे हमारे यहाँ श्रीस्वामीजू को नाम ही मंत्र माला है, और जैसे साधकन के अपनी-अपनी रीति अनुसार तिलक-मुद्रा छाप होय है, ऐसे हमारे यहाँ श्रीस्वामीजू को नाम ही तिलक-मुद्रा माथे को भूषण स्वरूप है, और हमारे यहाँ श्रीस्वामीजू की ही सेवा एवं पूजा होय है। अर्थात् समस्त रीति-भाँति सों श्रीस्वामीजू के भाव-सम्बन्ध विहीन कोऊ साधन-पद्धति होनी ही नाँय चहिये।

श्रीहरिदास भक्ति रति, श्रीहरिदास परम गति।
श्रीहरिदास जसु गावत भई सुदृढ़ मति॥
श्रीहरिदास ब्रज रीति, श्रीहरिदास रस रीति।
श्रीहरिदास नाम लियें सकल साधन जीति॥

मेरी रति एकमात्र श्रीस्वामीजू की भक्ति में ही है, वही हमारी सर्वोपरि परम गति है। श्रीस्वामीजू के नाम, गुन गाते-गाते ऐसी सुदृढ़ मति हमारी होय गई है, जासों श्रीस्वामीजू ही हमारे व्रज रीति हैं, श्रीस्वामीजू ही रसरीति हैं। श्रीस्वामीजू को नाम लेवे ते ही हमने सब साधनन कूँ जीति लीनी है।

श्रीहरिदास निज दरस, श्रीहरिदास रस परस ।
श्रीहरिदास सुख देत, श्रीहरिदास हित हेत ।।
अनन्य नृपति श्रीस्वाँमी हरिदास निज दास ।
श्रीवर-विहारनिदास विलसत विलास ।।४६।।

सर्वोपरि प्रेम को निज दर्शन श्रीस्वामीजू ही हैं, और सर्वोपरि निज रस को परसन हू श्रीस्वामीजू ही हैं, अर्थात सर्वोपरि निज प्रेम एवं रस श्रीस्वामीजू के अनन्य सम्बन्ध ते ही प्राप्त होय सकै है, याते सर्वोपरि सुख-दाता एकमात्र श्रीस्वामीजू ही हैं और बिनके हित सौं ही हमारो अनन्य हित है, सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कूँ निज रसमय विलास-विलसाइबेवारी निज दासी दृढ़ अनन्य एकमात्र श्रीस्वामीजू ही हैं ।

तातें स्यांम भजन करि लीजै ।
बिट कृम भस्म सहज ताके गुन ताहि कहा लै कीजै ।।
जैसे ही घटत अंबु अंजुलि लौं तैसें यह तन छीजै ।
जीवौ अलप विकल पर्यौ घट घुन ज्यौं दारु चरीजै ।।
यहै उपाय सुन्यौ संतनि पै हरि सेवत सुख जीजै ।
श्रवन कीरतन भक्ति भागवत नौ प्रकारनि तरीजैं ।
विषै विकार विरुचि रचि मन क्रम बचन चरन चित दीजै ।।
श्रीबिहारीदास प्रभु सदा सजीवन वदन अंबुज रस पीजै ।।४७।।

जा देह के अंतिम सहज धर्म बिट, कृमि, अथवा भस्म है जाइबो ही है, तब याकी इतेक सार-सम्हार करिबे तें तुम्हारे हाथ कहा परैगो ? या देह सों तो एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज कौ भजन करिकें सर्वोपरि सुख प्राप्त करि लेबो ही परम लाभ है । हे भाई ! जैसे अंजुलि कौ जल सहज स्वभाव ही टपकतो भयो चल्यौ जाइ है, तैसें ही तुम्हारी यह देह तिल-तिल करिकें सतत छीज रही है । थोरी सी जिन्दगी और ताहू पै आदमी के मन में पनपती भई नाना प्रकार की चिन्तान नें या जिन्दगी कूँ ऐसे खोखलो करि दीन्यौ है, जैसे घुन लकरी कूँ चरि-चरि कें पोली करि देइ है । याको एकमात्र उपाइ संत-जनन ने ये ही बतायौ है कि श्रीहरि कूँ सेइ-सेइ कें सतत सुख सों जीवो । विषय-विकारन ते बिरुचि होइ, श्रीमद्भागवतजू के कथनानुसार श्रवण-कोर्तन आदि नवधा भक्ति द्वारा मन, क्रम, वचन सों श्रीहरि के चरणकमलन

में चित्त लगाइ, या दुस्तर माया-सागर ते पार है जावो। हे बिहारीदास ! श्रीहरि ही या भवरोग की एकमात्र संजीवनी हैं, बिनके श्रीमुखकमल के सौन्दर्य-माधुर्य रस कूँ ही तुम सदाकाल पान करौ।

मूरख मतौ कियौ मन मेरे पहिले नासमझ्यौ।
खोयौकाल वृथा विषयिन संग साँचौ जानि बुझ्यौ ॥
अटकत भटकत फिर्यौ पुरनि में परवस प्रीति पच्यौ।
सुनि-सुनि समझ्यौ नहीं महासठ जग जस विमल मच्यौ ॥
आनंद-नंदन सुख-कंदन बिनु दुख-फंदनि में अरझ्यौ।
हारि बिचारि निहारि चतुर्दस कहूँ तें ना सुरझ्यौ ॥
तब धुकि धरनि नवाय सीस श्रीवृन्दावन सरन सच्यौ।
श्रीबिहारीदास सुख आस पूजी सतसंग निसंक नच्यौ ॥४८॥

पहिले नासमझी के कारन मेरे मन ने मूरखन के मत कूँ ही अपनाइ लीनो, और विषयीन के संग कूँ ही साँचो संग समझि कें अपनी बहुत सी जिन्दगी बेकार ही गँवाइ दीनी। जागतिक प्रीति में विवश होय, पचि-पचि कें मैं नगर-नगर और गाँव-गाँव में अटकतो-भटकतो फिरचौ। यद्यपि श्रीबिहारीजी महाराज के अति उज्ज्वल जस को डंका जगत में सब ठौर बजि रह्यौ हो, पर मैं महासठ बाकूँ सुनि-सुनि कें हू नाँइ समझ्यौ। आनंद कूँ आनंदित करिबेवारे सुखकंद श्रीबिहारीजी महाराज सों बिमुख भयौ मैं जगत के महा दुखदाई जाल-जंजालन में ही जकड़चौ रह्यौ। अपनी हारि-बिचारि कें चौदहो भुवनन में मैंने जाँचनाभरी दृष्टि सौं अति कातर ह्वै-ह्वै केहू निहारचौ, पर जब मैं लोकपाल, दिगपाल, देवी, देवता आदि काहू सों नाँइ सुरझि सक्यौ, तब दीनातिदीन होइ अति विनम्रता सों भूमिपै माथौ धरि, सर्वोपरि सुखदाई श्रीवृन्दावनजू की सरन लै लीनी। तब सबसों निसंक होइ, उमँग में भरि मनभाँवतो नाच्यौ। श्रीस्वामीजी महाराज नें कृपा करि कै मेरी समस्त आसान कूँ सुखसाध्य तत्काल पूरी करि दीनी।

मन मेरे अजहूँ होहि सयानों।
हरिपद कमल बिसारि विषै रति कहा फिरत बौरानों ॥
सोई सोई दाइ उपाइ करत नित जो अपनें चित मानों।
भयौ विवस आलस अभिमाँनी नेक न इत नियरानों ॥

सेरकु हाड खाल गज डेडकु इहि ममता इतरानों ।
ताके हित नित करतु परिग्रह अहंकार अरझानों ।।
सुत दारा कौ निरखि निरखि मुख अधम न उबटि अघानों ।
ना कछु आहि न ताहि बिचारत स्वारथ स्वाद बिकानों ।।
जीवत मृतकु भयौ लोभिन संग रहत लोभ लपटानों ।
श्रीबिहारीदास बिन बहुत बिगूचे केतिक बरनि बखानों ।।४६।।

अरे मन ! तू आज हू साँचे विवेक कूँ अपनाइ लै । अर्थात् निष्कपट भाव सौं श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कौ भजन कर । सर्वोपरि सुखदाई श्रीहरि के चरनकमलन कौं बिसारि कें, इन बिषय-बासनान की आसक्ति में बाबरो भयो तू काहे कूँ डोलि रह्यौ है । इन बिषयन की प्राप्ति के ताईं जो-जो दाउ-उपाय तेरे चित्त में आवै हैं, सोई-सोई तू बड़े चाव सों करै है, किन्तु श्रीहरि की भक्ति के ताईं तो अभिमान में भरि तू ऐसो आलस के बसीभूत है जाइ है कि इत माऊँ नेंक नेरे हू नाँइ आवै है । जो देह घृनित पदार्थन ते पूरित सेरेक हाड़–डेढ़ेक गज खालसों मढी भई है, ताकी ही ममता में तू इतेक इतराइ रह्यौ है कि अहंकार में अरुझि याके सुखी करिबे के ताईं रातदिन नाना पदार्थन कूँ संग्रह करतो रहै है । अरे नीच ! स्त्री, पुत्र आदिकन के ही मुखकूँ निरखि-निरखि कैं तू आज ताऊँ नाँय अघायौ, बिना कछु आगौ-पीछौ बिचारैं, तू केवल अपने स्वारथ के स्वादन में ही बिक रह्यौ है । लोभी लोगन के संग रहिकें, लोभ में लिपटि, जीवत ही मृतक रहत है गयौ है । श्रीबिहारीजी महाराज की शरन में आये बिना या जगत में बहुत से लोग ऐसे ही मारे गये हैं, तिनको वर्नन हम कहाँ ताऊँ करें ?

मन मेरे अनत कहूँ जिन जाहि ।
चरन कमल मकरंद स्वाद सुख अलि ह्वै अचै अघाहि ।।
भयौ फिरचौ तेरे बस बहुत दिननि देख्यो अवगाहि ।
अब छबि निरखि महा मोहन की मैंटि पाछिलो पाहि ।।
कर धरि करनि कहें समझावत जो समझै न पत्याहि ।
आतुर स्वाद स्वाँन जूठनि लौं लोभ लठा जिनि खाहि ।।
श्रीवृंदावन बसिबौ इतौ सुख देत कृपा करि काहि ।

मेरौ कह्यौ बिचारि हिये धरि मति पाछें पछिताहि ॥
औगुन सबैं कहूँव कहा लौं कहा बकों बकि बाहि ।
श्रीबिहारीदास रति मांनि जांनि या पद के अर्थनि चाहि ॥५०॥

अरे मन ! सर्वोपरि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के चरनकमलन के सुख-स्वादरूपी मकरंद कूँ भौंरा की नाईं अघाइ-अघाइ कैं सतत पान करि, और कहूँ भूलि की भूल में हू मति जाय। अनेक जन्मन ताईं तेरे बसीभूत होइ, जहाँ-तहाँ संसार-सागर में भटकतो भयो मैं डोल्यौ, अब तू अपनी पहली सब टेबन कूँ छाँड़ि, महामोहन श्रीजुगल की अद्‌भुत छबि कूँ निहारि-निहारि कैं सुखी है जाय। मैं अति प्रेम सों हाथ पै हाथ धरि, तोकूँ समझाइ रह्यौ हूँ—यदि तू मेरी समझ पै बिस्वास नाँइ करैगौ तो, जैसे कुत्ता लोभ के बसीभूत आतुर ह्वैके झूठी पातर चाटतो और लठियान की मार खामतो भयो डोलै है, तैसे ही तू लोभ के कारन विषय-वासनान के स्वादन में आतुर भयौ महा यातनान कूँ सहैगो।

श्रीस्वामीजी महाराज कृपा करि कें श्रीवृन्दावन बास कौ जैसो अनूठौ, अगाध सुख तोकूँ दै राख्यौ है, वह सहज ही कौन कूँ मिलै है याते तू मेरे कथन कूँ भलीभाँति विचारि, अपने हृदय में धारन करि लेउ, अन्यथा तोकूँ पीछे पछितावनो परैगो। अरे मन बकबाय के रोगी की नाईं, मैं तेरे अनेक औगुनन कूँ कहाँ ताऊँ कहूँ; यदि तू मेरे लिखे इन समस्त सिद्धान्त के पदन कौ अति संक्षिप्त सार अर्थ जाननौ चाहै है, तौ वह इतनो ही है कि श्रीबिहारीजी महाराज ते ही सब रीति भाँति सौं अनन्य प्रेम करौ।

मन मेरे तू जिन भुलवै ताहि।
पायौ रतन अमोलक भागनि गये पूछि है काहि ॥
मन क्रम बचन राखि हिरदै धरि कृपननि ज्यौं जडताहि।
छिन छिन गनत विचारत आरत आलस जिन लपटाहि ॥
अपने संत सजातिन सों मिलि कहि सुनि आनँद बढाहि।
यहै सुदृढ ह्वै सुनि सिख मेरी विमुखनि संग जिन जाहि ॥
निर्भै भए गयौ भै सब कौ अब जिनि जिय अकुलाहि।
श्रीबिहारीदास प्रभु सब सुख-सागर लैहैं स्याँम निबाहि ॥५१॥

अरे मन ! तू श्रीबिहारीजी महाराज कूँ कैसे हू मत भूलै। क्योंकि काहू प्रकार बड़े भाग्यन सों यह अद्भुत अमूल्य रत्न तोकूँ मिल्यौ है। यदि हाथ ते निकसि गयो तौ काहू सौं कछु पूछिबे को हू नाँइ रहैगो। जैसें कृपनलोग अपनी जड़ता में सब कछु भूलि, एकमात्र धन-संपति कूँ ही हृदय में धारि कें छिन-छिन ताही कूँ गिनते-बिचारते रहैं हैं, तैसें ही अपने एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज रूपी रतन कूँ तू मन-क्रम-बचन ते हृदय में धरि, अनन्य प्रेम द्वारा सब कछु भुलाय, आलस कूँ त्यागि, निरंतर छिन-छिन मनन-चिन्तन करतौ भयौ बिनकूँ ही देखतो-बिचारतौ रह्यौ कर। अपने सजातीय सन्तन तें बिनके रूप-गुन-माधुरी तथा प्रभाव-प्रताप कूँ कहि-सुनि कें अपने आनंद कूँ सदा-सर्वदा बढ़ातो रह। मेरी या शिक्षा कूँ सुदृढ़ ह्वैकें सुन लै कि बिजातीय बिमुखन कौ संग, तू भूलि कें हूँ मत करियौ। जब ऐसे तू रहैगो, तब यावत् भयन तें पार जाय निर्भय होय, समस्त अकुलाहट तेरी मिटि जायेंगी। और सब सुख-सागर हमारे श्रीबिहारीजी महाराज तोकूँ अपनो जानि, अवश्य निभाय लेवैंगे।

मन मेरौ कहें सुनें न पत्याइ।
नट नागर सुख सागर सर्वसु राख्यौ निकट दुराइ।।
हडिया हाड बिषै खर-पूरा रह्यौ जग मृग बिझुकाइ।
हर्यौ [illegible] [illegible] भजन आपनों निरनै भयौ न जाइ।।
सुख बिसर्यौ घर जरत न जान्यौ घूर बुझावन जाइ।
यों भ्रम भूलि रह्यौ जड तन-मन धूरि धुवाँ लपटाइ।।
इहि अविवेक आबर्यौ बहुत दिन मन की टेव न जाइ।
श्रीबिहारीदास प्रभु तौ सुख सूझै जो तुम देहु दिखाइ।।५२।।

हे नाथ ! यह मेरो मन इतेक बहिर्मुख है रह्यौ है कि जो कितेक हू कह्यौ-सुन्यौ करौ, नेक हू बिस्वास नाँय करै है। जैसें पशु खेत में टँगे भये हाँड़ी के बिजुका कूँ खेत कौ रखवारौ समझि दूर भजि जाय है और हरे-भरे खेत कूँ निर्भय होय कें चरि नाँय सकै है, तैसे ही भ्रम बस, यह मन हूँ बिषय-बासना और खर के समतूल मल-मूत्र-रक्त-मांस आदि सौं भरी भई ही हाड़न की हुँड़िया स्वरूप देह में ही दृष्टि राखिबे के कारन, श्रीहरि के भजनरूपी हरी-भरी खेती कूँ नाँइ चरि सकै है। समस्त सुख के अगाध सागर-नटनागर श्रीयुगल याकें निकट हृदयरूपी-पट में ही छिप रहैं हैं,

बिनकौ भजन करि कैं सर्वोपरि अद्भुत सुख कूँ नैंक हूँ ये नाँइ बिलसै है। या मूरख मन कौ घर तो माया की ज्वालान तें जरि-बरि कैं उजरि रह्यौ है, वाके माऊँ तो ये ध्यान नाँइ देवै है, और घूरा सदृश विषयरूपी जागतिक घर के दुःखन की अग्नि कूँ बुझाइबे में लगि, ताकी धूर-धूवाँ में लिपटि तन-मन तें मलिन है रह्यौ है। अर्थात् साँचो सुख दैबेवारे श्रीहरि कूँ तो याने बिसार दीन्यौ है। बिनके माऊँ साँचो ह्वै नेक हू ध्यान नाँइ देवै है और निकृष्ट पदार्थन ते भरी भई या देह कूँ ही भ्रम बस सुख दैबेवारी समझि, याकी सार-सम्हार के ताईं नाना प्रकार की युक्ति-उपाय करतौ भयौ व्यर्थ ही अपने तन मन कूँ आधिव्याधीन में लपेट रह्यौ है। या अविवेक नें अनंत काल ते मन कूँ ऐसो ढाँकि राख्यौ है कि याकी टेब जाइ ही नाँइ है। याते हे श्रीबिहारीदास के प्रभु, यह सर्वोपरि सुख तो मोकूँ तब हीं सूझैगो, जब आप स्वयं ही कृपा करिकें दिखाइ देवोगे।

हरि पथ चलहि न समझि सबेरौ।
ब्याल सिकाल अलूक लागि है आलस होत अबेरौ॥
कर्म-फंद सनबंध सबनि सों जनम जनम कौ झेरौ।
जांनि बूझि कत होत कृपन तू अबहिं किन करहि निबेरौ॥
कहा करत ममता झूंठे सों दिन दस छयो बसेरौ।
लैहैं ऐंचि बधिक बंसी लौं छुटि जैहैं तन तेरौ॥
जोदिन सोदिन जीवहि तू ह्वै रहि हरिदासन कौ चेरौ।
श्रीबिहारीदास बल तिन्हे भरोसौ स्याम चरन रति केरौ॥५३॥

फिर आप अपने आश्रितन ते बोले कि हे भाई ! तुम समझि-बूझि कें श्रीहरि के भजन-साधन पथ पै शीघ्र ही क्यों नांइ चलौ हौ ? जो आलस बस देर करौगे तौ कालरूपी व्याल, बिषय लोलुपता रूपी सियार तथा देह और इन्द्रीन की शिथिलता रूपी उलूक तुम्हारे मारग में और हू बाधक बनि जायेंगे। ताते तुम श्रीहरि के अगाध सुखरूपी लक्ष्य कूँ कैसे प्राप्त करि सकौगे ? मानो आश्रित ने कही कि अबईं हम या मार्ग कूँ कैसे अपनाय सकैं हैं—भाई-बन्धु, माता-पिता, स्त्री-पुत्र एवं देश आदि के प्रति हू हमारौ कछु कर्तव्य है—पहलैं बिनसौ छुट्टी पाइ लैं, तापै आप कहै हैं कि हे भाई ! इन सब जागतिक संबंध और कर्म-बंधन के चक्करन में तौ तुम जनम-जनम ते फँसते चले ही आइ रहे हौ। तुम तौ जान-बूझि कें या कायरता के बसीभूत है रहे हौ। मैं

तुमसों कहू हूँ कि—अरे भाई ! इन सब बंधनरूपी-संबंधन कूँ आज ही क्यों नाँय निबेरौ करि देउ ? या संसार की सराय में तुम्हारौ बसेरौ केवल दस दिन कौ ही तौ है, फिर तुम इन झूठे क्षण-भंगुर संबंधन ते ममता मानि कें कहा लै लेवोगे ? एक दिना काल तुम्हारे प्रानन कूँ ऐसें हीं ऐंचि लेवैंगो, जैसे बधिक काँटे में फँसाय कें जल-जन्तुन कूँ अनायास ही ऐंचि लेवै है, और तब तुम्हारी ये देह यहीं छूटि जायगी। याते जो थोरे-बहुत दिन या जगत में तुम जी रह्यौ हौ, श्रीहरि के बिन दासन के साँचे चेरे है जाऔ, जिनकूं श्रीबिहारीजी महाराज की अनन्य प्रीति कौ ही एकमात्र बल-भरोसौ है।

हरिजस गायें दिन दस जीवौ।
परत न हाथ कछू पर निंदा गुन औगुन कौ गीवौ।।
बाढत जात समात न मो मन पति पषांन कौ टीवौ।
क्यों तरिहैं भव-सागर भलौ न बिषम-भार सिर लीवौ।।
चलत न कछू संग साँचौ ह्वै स्याम भजन बिनु कीवौ।
श्रीबिहारीदास बिनु बहुत बिगूचे तजि अमृत विष पीवौ।।५४।।

पर निंदा करिबे ते या और-और लोगन के गुन-औगुनन कूँ गिनबे ते तुम्हारे हाथ कछु नाँइ लगैगो। तुम्हारे मन में अभिमान रूपी पत्थरन कौ टीबौ बढ़ि-बढ़ि कें बिसाल पर्वतन की नाईं असीमित होइ मन में समाइ हू नाँइ रह्यौ है। या बिषम भार कूँ अपने सिर पै उठाइबे में कोई भलाई नाँइ है। नेंक सोचो तौ सही, याकूँ लैकें तुम दुस्तर माया-सागर ते कैसे तरौगे ? श्रीहरि के साँचे भजन के अतिरिक्त और कछु तिहारे संग जाइ ही नाँइ सकै है। श्रीबिहारीजी महाराज की दासतारूपी अमृत कूँ त्यागि, विषयरूपी बिष पी-पी कें बहुत से लोग यौंही मारे गये हैं। याते हे भाई ! जब तुम्हें या जगत में थोरे ही दिन जीनो है, तो महासुखदाई श्रीहरि के गुनन कूँ गाइ-गाइ कें ही क्यों न जियौ।

हरि बिनु कूकर सूकर ह्वै हौ।
दाँतनि पूँछि कुरारि पाछिले पाँइन मूँड खुजैहौ।।
साँझ भोर भटकत भडिहाई तऊ न अहार अघैहौ।
जहाँ तहाँ विपति बिडारें त्रिसकारें हूँ लटि कटि खैहौ।।
मीरा मुए निगोडे खसमें हूँ लाज लजैहौ।
लोक-परलोक परमारथ बिनु घर-बाहर बुरे कहैहौ।।

कहा भयौ मानुष की आकृति उनहूँ तें दुगुन दिखैहौ।
श्रीबिहारीदास बिनु भजैं साँवरौ सुख संतोष न पैहौ ।।५५।।

दया, करुना में विवस साधकन को समझाते भये आप फिर बोले कि–हे भाई ! श्रीहरि को भजन किये बिना, तुमकूं सूकर-कूकर ही बननो परैगो। फिर तुम दाँतन सौं पूंछ और पिछले पाँयन ते मूंड कूँ खुजाय-खुजाय, भोर सों लैकें साँझ ताऊँ निरंतर भड़ियाँई करते ही डोलोगे, तौहू तुम्हारो पेट नाँइ भरैगो। अरे मूरख ! जहाँ-तहाँ तुम्हें विपति ही विपति तौ मिलैगी, और सब ठौर बिडारे-तिरस्कारे हू जावोगे, तौहू तुम चाटुकारिता करि-करि कैं, जहाँ जो हाथ लगैगो सोई खाते फिरौगे, और मीरा, मूएं, निगोड़े आदि अपशब्दन सों अपमानित ह्वैकें, अपने प्रभु कूं हूँ लज्जित करावोगे। साँचे परमारथ के बिना, तुम लोक-परलोक और घर-बाहर सब जगह बुरे ही बुरे कहे जाओगे। तुम्हारी केवल मानुष की आकृति ही है, तो कहा भयो ? इन सूकर-कूकरन ते हू दूने दीख रहे हो, हम तुमसों स्पष्ट कहें हैं कि श्रीबिहारीजी महाराज कौ साँची रीति-भाँति सौं भजन किये बिना यों चटोरपनों करते भये फिरौगे, तो तुम्हें कहूँ कबहूँ नेंक हूँ सुख-सन्तोष नाँइ मिलि सकैगो।

हरिजस गावत सब सुधरे।
नीच अधम अकुलीन विमुख खल कितेक गनौं बुरे ।।
नाऊ - छीपा - जाट - जुलाहो सनमुख नाम उचरे।
जिन तिन कौं सुख दियौ साँवरे नाहिंन बिरद दुरे ।।
विवस असावधान सुत के हित द्वै अखरा उच्चरे।
श्रीबिहारीदास प्रभु कोटि अजामिल से पतित पवित्र करे ।।५६।।

कोऊ कितेक हू बुरो, नीच, अधम, अकुलीन, विमुख, खल, पतितन ते हू महा पतित क्यों न होइ, श्रीहरि के जस गाइबे तें सबकी सब भाँति सौं सुधरि जाइ है। नाऊ, छीपा, जाट, जुलाहो आदि जिन-जिन ने श्रीहरि की सरन ह्वैकें, तिनसों अपनो निज संबंध मानि लीन्यो, तिन सबन कूँ श्रीहरि ने अपनो अद्भुत सुख दीन्यो है। भक्तवत्सल प्रभु की यह उज्ज्वल विरदावली कौन ते छुपी भई है ? और तो और मरते समय अचेत अजामिल ने अपने बेटा नारायण को बुलाइबे के ताईं ही द्वै आखर (नारा) प्रेम में विवस ह्वैके उचारे हे। इतेक पै ही साक्षात् श्रीहरि ने रीझि वाकूं अपनाइ लीन्यौ। हे बिहारीदास ! अजामिल सदृस ऐसे कोटानुकोटि

पतितन कूँ श्रीहरि ने पवित्र करि दीने हैं, तिनकी गोनती जगत में कोऊ करि ही नाँइ सकै है, फिर तुम्हें तो अपने प्रभु के बल-भरोसा पै काहू बात की चिन्ता करनी ही नाँइ चहिये ।

हरि जस बिन को भयो सपूत ।
सब जस अपजस बिनु वृन्दाबन कियें सगाई सूत ॥
श्रीहरिदासनि कौ संग न सेवत तिनतें कौंन कपूत ।
पंडित गुनी चतुर अभिमांनी बढ्यौ भरम आकूत ॥
साकत सुत सों जे ममता करें जाये जानि अऊत ।
दोस लगै ताकी महतारी बाप मुगल कौ मूत ॥
सबै सयाँन अयाँन जानि हित आपु अपुनपै धूत ।
श्रीबिहारीदास भये धन्य ह्वै है भजन अनन्य अभूत ॥५७॥

ये बात तुमहीं बतावो ! श्रीहरि के जसन कूँ गाये बिना जगत में आज ताऊँ कौन सपूत भयौ है ? सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कौ निजमहल साक्षात श्रीवृन्दाबन प्रगट पृथ्वीमण्डल पै विराजमान हैं, तौहू बिनते काहू प्रकार को अपनो नातो-संबंध नाँइ बाँधि कैं और-और जितेक जगत में जस प्राप्त कीनें हैं, तिन सबन कूँ तो तुमने अपयश ही समझनो चहिये । श्रीहरि के भक्तन कूँ संग नाँइ करिबेवारे लोगन ते तो अधिक कपूत हो ही कौन सकै है ! अपने कूँ बड़े पंडित, गुनी, चतुर समझि, जो लोग बेतोल अभिमान में भरि, बहकि के बहिर्मुख बेटान तें ममता करैं हैं, और अपने आपको भक्त कहावैं हैं, तिनकूँ तो परमार्थ-पथ में ऐसे अवूत समझनो चहिये, मानो बिनके माता-पिता दोनों ही दोषी हैं । तिनकी सब चतुराई मूर्खता ही है । क्योंकि वे अपने हित कूँ आप ही नष्ट करि रहे हैं । जो बड़भागी जन अनन्य दास होइ श्रीबिहारीजू महाराज को सतत भजन करैं हैं, वे ही जगत में ऐसे अति धन्य-धन्य हैं, जिनकी समता कोऊ करि ही नाँइ सकै है ।

धृग धृग ऐसे जनम जियौ ।
जिनही को पोष्यौ तोष्यौ तन तिनहि सु मन न दियौ ॥
बडो कृतघन सुकृत न बिचार्यौ चरननि चित न छियौ ।
भयौ विमुख विषया के लालच सुखहि न समझि लियौ ॥

भक्त साधारन के अपराधहि काँपत डरनि हियौ।
कौन कुमति साधो अपराधी गुरु करि बैर कियौ ॥
गुरु गोबिंद कहत हैं विवेकी पाँव पखारि पियौ।
श्रीबिहारीदास श्रीगुरु सेवन बिन नाहिन भजन बियौ ॥५८॥

जिन श्रीहरि नें तुम्हारी ऐसी सुन्दर देह पालन-पोषण करि बड़ी कीनी है, और इतनो सुख दियौ है, तिनकूं तैंने अपनो मन समर्पित नांइ कीन्यौ, ऐसे तेरे या जन्म, जीवन कूँ बारंबार धिक्कार है। तू बड़ो कृतघ्नी है, तैंने न तो श्रीहरि के उपकारन को स्मरण कियो, और न अपने चित्त कूँ कबहूँ उन श्रीचरनकमलन ते स्पर्श करायौ, और न कबहूँ तैंने सुन्दर कार्य करिबे को ही विचारचौ। उल्टे तू अपनी नासमझी के कारन इतेक सुख सों बिलग ह्वेकें विषय-बासनान के लालच में लगि रह्यौ है। अरे अपराधी! साधारन भक्त के अपराध ते ही जब बड़े-बड़े महतन के हू हृदय काँपि जाइ है, फिर तैंने ये कैसी कुबुद्धि अपनाय लई है जिन श्रीगुरुदेव के श्रीचरनकमलन में जाइ के माथो नवायो हो, तिनही श्रीगुरुन ते बैर बाँधि लीन्यौ ? याते विवेकी जन कहैं है कि श्रीगुरुदेव तौ साक्षात गोविंदके ही स्वरूप होइ हैं, तिनके श्रीचरनन कूं तौ धोइ-धोइ के हीं सदाकाल पीवनो चहिये। हे बिहारीदास! श्रीगुरु सेवन के बिना दूजो कोऊ भजन जगत में है ही नाँइ ?

गुरु अपराध डरो सब कोई।
साधन श्रवन कहा फल लागै गयौ मूल गथ खोई ॥
काजर सों काजर न ऊजरौ होइ किन देखौ धोई।
जोहि रोग दोस सोई औषद रह्यौ आपकों रोई ॥
कृतघन उपकारहि नहिं मानत राखत तन मन गोई।
कपट प्रीति परतीति न उपजै हला भला दिन दोई ॥
काचौ कटुक सुभाव बाकसौ पाकौ नींबौ मीठौ होई।
आदि मध्य अवसाँन बिमुखई रह्यौ विषै विष भोई ॥
जैसे जारै अगिन कौ अगिनैं सीतल करै न तोई।
श्रीबिहारीदास और न उपाय अब श्रीगुरु चरन सँजोई ॥५९॥

फिर आप समस्त साधक समाज को सावधान करते भये बोले कि हे भाई!

श्रीगुरुदेव के अपराध सों तो सबन कूँ ही बहुत डरनो चहिये, क्योंकि जैसे मूल नष्ट ह्वैबे तें जब पेड़ ही नष्ट है जाइ है, तब फल-फूलन की तो कोऊ आसा ही नाँइ करि सकै है। ताही भाँति परमार्थ-पथ के मूल आधार श्रीगुरुन की अवज्ञा करिबे पै श्रीहरि की भक्ति के श्रवन, कीर्तन आदि समस्त साधन हूँ निस्फल है जाँइ हैं। चाहे कोऊ कितेक हू धोइ-धोइ कैं देखि लेउ, कीच ते कीच नाँइ धुइ सकै है–अर्थात् अनेक जन्मन कौ अपराधी तौ साधक पहले ही होइ है, तिनसों छूटिबे के ताईं श्रीगुरुदेव की सरन लीनी जाइ है। जब बिनको ही अपराध करि बैठ्यौ, तब कैसे फलीभूत है सकै है। जो तुमको रोग है, वाही के बढ़ाइबे की औषधि तुम खाइ रहे हौ। याते तौ तुम्हारी हानि ही हानि होइगी। कृतघ्नी सुभाउ के मानव उपकारन कूँ न मानि कें केवल ऊपर तें तो प्रेम दिखावैं हैं, किन्तु अपने तन, मन के वास्तविक स्वरूप कूँ छिपाइ के राखे हैं। या कपट सों दो चार-दिन के ताईं हला-भला मनोरंजन भले ही है जाइ, किन्तु साँची प्रीति-प्रतीति नाँइ होइ सकै है। काँचे अस्थिर सुभाउ को फल तो करुवो ही होइ है। जासों ऐसे सुभाउ कूँ त्याग देनो चहिये, और पाको दृढ़ सुभाउ ही ग्रहन करनो चहिये। पकिबे पै तो नीम की निबौरी हू मीठी ह्वै जाइ है। अर्थात श्रीगुरु चरनन में आदि सौं लैकें अंत ताऊँ दृढ़ विस्वास एवं प्रीति राखिबे पै ही काम बनि सकै है। किन्तु जो लोग आदि मध्य-अंत सब समय ही बिषय-बासनान के बिष में अचेत होइ, श्रीगुरुदेव ते विमुख रहैं हैं, तिनको काहू अन्य साधन उपाय ते सुख नाँइ मिलि सकै है। जैसे अग्नि ते जरे भये कूँ अग्नि ही सीतल करि सकै है, जल नाँइ करि सकै है। तैसे ही श्रीगुरुदेव के अपराधिन के ताईं और कोऊ उपाय है ही नाँइ। याते दीनातिदीन होईं श्रीगुरुदेव के ही चरनन की सरन जाओ। वो तिहारे अपराधन कूँ छमा करि कें मन की समस्त तापन कूँ दूर करि देवैंगे।

श्रीगुरु सेवत सबै सहाइ।
ज्यौं जल मूल दिये फल फूलनि उमँगि चलत अरुनाइ॥
साधन सिद्ध होत तेही छिन भ्रम तम श्रम नसि जाइ।
तिनसों प्रीति प्रतीति बढत छिन ही छिन सहज सवाइ॥
श्रीवृन्दावन घन नव निकुंज दंपति संपति सुखदाइ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें हस्तामल बिमलाइ॥६०॥

जो बड़भागी जन श्रीगुरुदेव कूँ साँचे भाव ते सेवैं हैं, तिनकी श्रीहरि एवं

संत समाज आदि सब ही परमार्थी जन सहायता करें हैं। जैसे मूल में जल दैबे ते वृक्ष हरो-भरो हैकें फूलतो-फलतो भयो विकसित होतो चलै है, तैसे ही श्रीगुरुदेव के सेइबे तें तत्काल समस्त भ्रम, श्रम अग्यान आदि मिटि कें सबही साधन सफल है जांइ हैं। श्रीवृन्दावन सघन नव-निकुंज मंदिर में निरवधि नित्यबिहार करिबेवारे सर्व सुखदाई–श्रीजुगल रूपी संपत्ति में, छिन-छिन सहज सवाई प्रीति-प्रतीति बिनकी बढ़ती जाइ है। हे बिहारीदास ! ऐसे गुरुसेवी साधक कूँ श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें श्रीजुगल के नित्यबिहार को उज्ज्वल, अद्भुत रस हस्तामलकवत है जाइ है, जैसे मोकूं है रह्यौ है।

परमारथ कों कछू न चहिये स्वारथ कों सब चेष्टा।
आरंभटी साधत संसारहि सबसों करि घर घिष्टा॥
गहि गहि नाँक अँगुरियन गनि गनि बिना प्रेम नेम निज नेष्टा।
क्यौं सँचरै मन निरे अचारै बिन बिचार भये भिष्टा॥
प्रेन पदारथ घटत न जान्यौं क्यौं हूँ बढै प्रतिष्टा।
सबै प्रपंच पुराँन पुकारत पति सूकर की विष्टा॥
ऐसो कौ बडभागी अनुरागी जो आराधै इष्टा।
श्रीबिहारीदास बिरले दुर्ल्लभ कोउ एक विवेकी द्दष्टा॥६१॥

परमारथ के ताईं तो कबहूँ कछु हू तुम्हारे आवश्यकता ही नाँइ दरसै है। तुम्हारी दिनरात समस्त चेष्टा एकमात्र अपने स्वारथ के ताईं ही दीखें हैं। आरंभटी लोग ही सब सों मेल-जोल बनाइ कें संसारिन कूँ साधते रहैं है। ऐसे ही कछु लोग श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के बिना ही नाँक कूँ पकरि-पकरि अँगुरिन पै गिन-गिन कें प्रानायाम आदि प्रक्रियान में ही जन्म कूँ गँवाइ देवैं हैं। प्रेम बिहीन ऐसे थोथे आचारन सों मन भक्ति-पथ पै कैसे चलि सकै है ? हे भाई ! मर्म को बिचार किये बिना केवल आचार कूँ ग्रहण करिबे ते साधक भ्रष्ट ही है जाँइ हैं। तुम्हारी मूल बस्तु–प्रेम-पदारथ तो घटतो जाइ रह्यौ है, जगत में कैसे हू प्रतिष्ठा बढै, या चिन्ता में तुम परि रह्यौ हो। समस्त पुरान पुकारि-पुकारि के कहि रहैं हैं कि यह संसारिक प्रतिष्ठा तो निरे सूकर की बिष्ठा के समान घृनित ही है। हे बिहारीदास ! या जगत में विवेक द्वारा साँचे प्रेम कूँ पहिचान, अनुराग सों अपने इष्ट की आराधना करिबेवारे अति दुर्लभ बड़भागी जन तो कोऊ-कोऊ बिरले ही होइ हैं।

भीख कों और कथा बहुतेरी ।
परमहंस संहिता भागवत छाँडि चलत ढिग ढेरी ।।
मायावी वासना विमुख या रस में आनि खभेरी ।
तरुना पै सूझ्यौ नहीं वूढें आँख होइ गई ढेरी ।।
परचौ लोभ की बंदि आँधरौ जीति लियो चित चेरी ।
बिन पैंनो छैंनी सु भक्ति बिन को काटै जम जेरी ।।
सनकादिक सुक सूत परीक्षत संका सबै निबेरी ।
कहें सुनें समझत न निघर घट घूरत दृष्टि करेरी ।।
परमारथी विवेकिन के हित कहि आवनि मति मेरी ।
श्रीबिहारीदास अनन्य भजन बल ढाहि भस्म की ढेरी ।।६२।।

जो लोग श्रीमद्भागवत जू की कथा धन की लालसा लैकें कहैं हैं, तिनके प्रति लक्ष्य करि आप बोले कि—हे भाई परमहंस संहिता श्रीमद्भागवत जू में श्रीभगवद्भक्ति रूपी अगाध सुख कौ ढेर ठौर-ठौर पै वर्णन है, ताके माऊँ तो तुम अपने मन कूं दै नाँइ रहे हो, वाही अद्भुत कथा कूं कहि-कहि कें स्वारथ सिद्ध करिबे में लगि रहे हो, यदि तुमने कथा ते ही धनोपार्जन करनो है तो भीख के ताईं जगत में और हू बहुत सी कथा-कहानी भरी भई हैं। देखो ! इन बिमुखन ने, अपनी मायिक बासनान में विवश होय या परमोज्ज्वल भक्ति रस कूं हूँ गदलो करि दीनौ है, जुवावस्था में तो बासनान ते अंधे रहिबे के कारन इन कूं कोऊ ग्यान सूझ्यौ ही नाँइ, और बुढ़ापे में नेत्र आदि समस्त इन्द्री जब अपने आप शिथिल है गई। तब और हू लोभ के बंधनन में बँधि, विवश होइबे के कारन घरवारी ने इनके चित्त कूं भलीभाँति जीति लीनौ यमराज की या बंधन शृंखला की अति चिकनी जेरी कूं पैंनी भक्ति-रूपी छैंनी के बिना और कोऊ नाँइ काटि सकै है। यद्यपि श्रीसनकादिक शुक-सूत, परीक्षित आदि समस्त महतन ने परस्पर कहि-सुनि कें यावत संकान कूं निवारन करि दीन्यौ है, तौहू ये रातदिन इन संका-समाधानन की चर्चा हू करें हैं, किन्तु इन वज्रमूरखन के हृदय कूं विवेक स्पर्स नाँइ करै है, और जो कोई इनको समझाइबे कौ प्रयत्न करै, तौ आँख तरेरि कें कर्री नजर सों घूरन लगै हैं। हे बिहारीदास ! हम तो केवल परमार्थी विवेकीन के हित के ताईं ही सब बात स्पष्ट-रूप ते कहैं हैं याते तुम

अनन्य भजन के बल सों अपने हृदय के समस्त भ्रमन की ढेरीन कूं भलीभांति नष्ट करि देवो।

पाँडे पढि पढाय बकि बहके।
परमारथ सपने नहिं सूझ्यौ स्वारथ ही को सहके॥
उपजत नहीं विवेक साँच बिन झूठेही लालच लहके।
सहि न सकत उत्कर्ष और कौ मन मत्सर चित चहके॥
जीवत मरत रहत संसै मन मेंडक कालो दहके।
गए नियराय निघटि बिन बायेहिं ज्यौं बादर पीरी पहके॥
औरन के गुन दोस गनत सठ अपने गुन सुनि गहके।
श्रीबिहारीदास तिन कौ संग तजि जे तृष्णा डाँइनि डहके॥६३॥

ये पंडित लोग पढ़ि-पढ़ाय, बकि-बकि कें हूँ बहकि रहैं हैं। इनकूं परमारथ तौ कबहूँ सुपने में हू नांइ सूझै है। जब देखो, तब स्वारथन के ताईं हीं लपकते रहैं हैं। साँच के बिना विवेक तौ उपजै नांइ है, ये लोग झूठे लालचन में ही लुभाये रहैं हैं। इनकौ मन मत्सरता ते इतेक मरचौ रहै है जो औरन के उत्कर्ष कूं तो सुनि कें हू सहन नांइ करि सकें हैं और जैसे कालीदह के मेढ़क जीवित हैं या मरे भये, यह सदाकाल संसय हो बन्यौ रहै है। ऐसे ही ये पंडित लोग कथा में जब श्रीहरि के रूप-गुन-माधुरी कूँ बर्नन करें हैं, तब तो ऐसो मालुम परै है, मानो इन्हें बस्तु साक्षात सदृस ही दीख रही है। और जब ये घर-गृहस्थ में फँसे भये दीखें हैं तब ऐसो प्रतीत होइ है कि सुद्ध-संसारी भक्ति-पथ ते सर्वथा मरे भये ही हैं। इनको कथा में परमार्थ पथ कौ समस्त कथन ऐसे उड़िजाइ है जैसे बड़े भोर पीरी के बादल बिना वायु के ही इत-उत में निराय जाँइ हैं। ताहू पै औरन के गुननकूं तो ये दोस करि के ठहरावें हैं, और अपने गुन सुनि के मन ही मन फूलि उठें हैं। याते हे बिहारीदास ! जिनके मन कूं तृष्णा-डाइन ने डहकि राख्यौ है, बिनके संग कूं भलीप्रकार त्यागि देउ।

पांडे कहा भयो पढें गुनें।
श्रीवृन्दावन ब्रज भूषन जो किये न प्रभु अपनें॥
बहुतनि की करि आस निरास भये तो को वरनें।
स्वाद न कछू ढेंक के कूवा सुख पायो सपनें॥

काम कर्म अरु धर्म भजन सौं बरनत सबै सनें।
धान गयार पयारहि गाहत न पावत भक्ति कनें ।।
तैसेई वक्ता तैसेई श्रोता सहस आवर्त सुनें।
कियो लोभ आवर्ण दुहुन में कहा छै पाँच गनें ।।
निरनै नीर छीर सुक कीनों उक्त जुक्त न बनें।
अरथ अनर्थ करत पर-स्वारथ मानत देह धनैं ।।
होत गिलानि हानि जिय जाँनत कत बकवाद ठनें।
श्रीबिहारीदास प्रभु प्रगट देखियत मन की साख मनें ।।६४।।

श्रीव्रज रसदेस के हूं भूषण स्वरूप साक्षात् निजमहल श्रीवृन्दावन कूं यदि तुमने अपने प्रभु नाँइ बनाये, तो हे पंडितजी, तुम पढ़ि-गुनि कें पूरे विद्वान हू है गये तौ कहा भयौ। तुमने संसार में न जानें कितेकन की तो आसा कीनी, और कितेकन ते निरास भये हो, जाको वर्नन कौन करि सकै है ? जैसे किसान कूं ढेंकली के कुवाँ ते कछु संतोष नाँइ होय है, तैसे ही सुपने के सुख-सदृश इन आसान ते तुम सुखी नाँइ है सको हो। तुम्हारो वर्नन हू शुद्ध भक्ति ते विहीन कर्म-धर्मादिकन तें सन्यौ भयो भजन को ऐसो होय है जैसे पयार के ढेर कूं गाहिबे ते कन नाँइ मिलि सकै है। और जैसे तुम वक्ता हो, तैसे ही तुम्हारे श्रोता हैं। ऐसे वक्ता, श्रोता चाहे हजार-हजार बार हू कथान कूं कहते-सुनते रहैं, तौहू कहा होइ सकै है ? क्यौंकि जब ताऊँ लोभ को आवरन हृदय में पर्यौ भयौ है, तब ताऊँ अनेकन बार कहिबे-सुनिबे पै हू कछु लाभ नाँइ होइगो। श्रीसुकदेवजी महाराज ने परमार्थ और स्वार्थ कूं दूध, पानी की नाईं न्यारौ-न्यारौ करि वर्नन कीन्यौ है, जामें कोऊ उक्ति-युक्ति नाँइ चलि सकै हैं। तुम लोग अपनी देह और धन कूं ही सब कछु मानि कें अर्थ को अनर्थ करते भये स्वारथ कूं ही परमारथ बतायौ करौ हो। शुद्ध भक्ति के साधनन में स्वार्थमयी कामनान कूं बाधक जानि के हू बर्नन करौ हो, जासों भक्तन के हृदय में ग्लानि, एवं तिहारी हानि ही होय है, फिर ऐसी बकवाद काहे कूं ठानो हो। हे बिहारीदास ! श्रीहरि तो सब के घट-घट की जानिबेवारे हैं, याते तिहारो मन ही स्वयं साक्षी है कि शुद्ध भक्ति के अनुकूल कौन सी बात खरी है ?

बहुत पढे ते बहुत बिगूचे।
सबै त्याग अनुराग भागवत द्वै अखरा सुक सूचे ।।

इत उत भ्रमत भ्रमावत बहुमत मन सन्देह न मूचे ।
अपने ही अज्ञान आपने मुख अपनें कर कूचे ।।
निरनैं करि निबहे न महासठ आइ प्रेम न पहूँचे ।
एक रूप रस वैस बिहारी बिहारनिदासहि रूचे ।।६५।।

ये बिचारिबे की बात है कि–सर्वप्रथम तो प्रेम-देस को एक ऐसो अद्भुत अकथनीय पथ है, जाके मर्म कूं एकमात्र प्रेम-पथ कौ पथिक ही समझि सकै है, क्योंकि प्रेम-पथमें वेईं सहज स्वाभाविक साधन होइ हैं, जो अपने प्रेमास्पाद की रुख अनुसार सुख दैबेवारे होइ हैं, जामें कोऊ विधि-विधान, विद्या-बल, हानि-लाभ, जस-अपजस, सुख-दुख, इहलोक, परलोकमय आदि के झीने स्वार्थ की हू गंध नाँइ समाइ सकै है। इतेक हू नाँइ, हमारो इष्ट ईश्वरता को हू पूर्न स्वरूप है या बिचार कूं हू बिसुद्ध प्रेमी स्वार्थ की गंध मानें हैं। याते जो जितनो ज्यादा पढ़े है, वो उतेक ही अधिक भ्रमन में बहकि कें प्रेम-पथ ते मार्यौ जाइ है। अर्थात् बिभिन्न मत-मतान्तरन सों संबंधित नाना बेद-सास्त्र, पुरान आदि पढ़िबे ते साधक बिचारन के ऐसे बियाबान जंगल में भटकि जाइ है, जहाँ प्रेम-पथ सूझ ही नाँइ सकै है। याते इन सबन कूं भलीभाँति त्यागि, श्रीहरि और श्रीहरि के दासन सों साँचे मन ते अनुराग करौ, ये ही दो बात श्रीसुकदेवजी महाराज ने समस्त भागवत-पुरान में सारातिसार वर्णन कीनी है। जो लोग इत-उत माऊँ बहुत से मत-मतान्तरन में भ्रमते-भ्रमावते रहैं है, तिनके मन के संदेह कबहूँ नाँइ जाँइ हैं। ऐसे लोग अज्ञान के कारन मानो अपने हाथ ते ही अपने मुख कूं पीट रहे हैं। क्योंकि ये महासठ सांचे परमारथ के स्वरूप कूं भलीभाँति निर्णय करि, प्रेम-देस ताऊँ पहुँच ही नाँइ सकें। याते हे भाई! श्रीबिहारीदासन कूं तौ एक-रूप-रस-वैस स्वरूप श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू ही रुचै हैं।

या जीवे तै भलौ मुवा ।
श्रीवृन्दाबन एक ठौर कहुँ परि रह्यौ न पीके लुवा ।।
स्वारथ नगर गरयारे गाहत गूदर मूड दुवा ।
रसना के रस विवस भयौ सुख पायौ पहित पुवा ।।
फिरि फिरि परत भौर में पावत धक्का धूरि धुवा ।
अभिमाँनी अविवेकी आँधरे पसु लों परत कुवा ।।

कह्यो सुन्यौ समझत न महासठ सर्वसु हांनि हुवा।
श्रीबिहारीदास ह्वै अजहूँ भजि जिनि हारहि जनम जुवा ॥६६॥

हे भाई ! सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू कौ निजमहल साक्षात श्रीवृन्दावन में तौ चाँवरन के माँड़ कूँ ही पीकें एक ठौर कहूँ परचौ रहिबो ही अच्छो है, किन्तु तूँ तो करुवा, गूदरी लै स्वारथन के ताईं नगर-गाँव और गली-गलीयारेन में डोलतो भयो जिह्वा के स्वाद में बिबस होइ साग-पूआन कूँ पाइ के बड़ो सुख मानै है, ताके ताईं ही बेर-बेर भीर में जाइ-जाइ, धक्का-धूरि खाय है। अरे मूरख ! अभिमानी-अबिवेकी आंधरे पशु की नाईं तू कूँवा में परै है। अरे महासठ ! हमारे कहे, सुनें कूँ नाँइ समझिबे के कारन तेरौ सर्वसु हानि है रह्यौ है। याते अबहूँ तू हमारी बात मानिकें श्रीबिहारीजी महाराज को अनन्य-भाव ते भजन करि, अपने मानव देह रूपी दाव कूँ मत हारै।

औरें देत निहोरौ बादि।
अपने प्रभु पहिचानें बिनु जन दीसत बुरी निहादि ॥
गर्भ बसत कहा हुतौ गांठि गथ कहा निकस्यौ लै लादि।
अब तब संपति विपति सजीवन सुमरि साँवलो सादि ॥
आगम निगम गावत साखि ताकौ विरद विस्वंभर अनादि।
दीन वचन कित बोलत डोलत घर घर करत फिरादि ॥
श्रीबिहारीदास प्रभु बिन को समरथ कौंन दिवावै दादि ॥६७॥

जो लोग अपने प्रभु कूँ पहिचाने बिना और-और दूसरेन के निहोरे करते फिरैं हैं, वे हम कूँ निहायत बुरे लगें हैं। अरे भाई ! नेंक तो विचार करो ! जब तुम गर्भ में हे, तब तुम्हारी गाँठ में कौन सी हुन्डी हती, और जब तुम्हारो जनम भयौ, तब तुम अपने संग कहा लादि कें लाये हे ? अर्थात जब तुम गर्भ में हते, अथवा गर्भ के बाहर आये, तब तुम्हारे पास कछु नाँइ हो। वा समय परम कृपालु श्रीहरि ने ही तुम्हारो लालन-पालन कीन्यौ हो। याते संपति-बिपति सब समय में रक्षा करिबेवारे संजीवनी स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज कूँ ही सदाकाल स्मरण करौ। अगम-निगम सब गाइ-गाइ कें बिनकी ही साक्षी दै रहें हैं। वे ही समस्त विस्व कूँ पालन-पोषण करिबेवारे हैं। बिनकी ये बिसुद्ध विरुदावली अनादिकाल सों चली आय रही है, फिर तुम दीन बचन बोलते भये, घर-घर फरियाद करते भये काहे कूँ डोलो हो ! हमारे

प्रभु के अतिरिक्त इहलोक-परलोक में ऐसो सामर्थवान और कोऊ नाँइ है, जो तुम्हारी मनभामती लालसान कूँ पूर्ण करि सकै।

जाकें जाइ खबरि बूझत वह स्वामी कै द्वार कौ।
दरसन तै भयौ विमुख चलत कछु रह्यौ न अचार-विचार कौ ॥
खारी कुई गादरी पोखरि धंधौ परचौ अहार कौ।
विसन न छूटत दिन दुख लूटत मार्‌यौ फिरत जुझार कौ ॥
भूल्यौ नाम धाम नहिं पायौ डेरा ढोली खार कौ।
श्रीबिहारीदास अनन्य न ऐसे यह मत बड विभिचार कौ ॥६८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के द्वारे को कोऊ जन, अपने स्वरूप के आचार-बिचार कौ ध्यान नाँइ करि, श्रीबिहारीजी महाराज के दरसनन सों बिमुख होइ, गौनाइत के ताईं परदेस में काहू सेठ के दरवाजा पै गयौ। जब पहरेदार ने सेठ को खबर दीनी, तब वाने पुछवायो कि कौन हैं, कहाँ ते आये हैं ? बिनने कही कि हम श्रीस्वामीजी महाराज के द्वारे के हैं। सेठ ने कहलवाइ दई कि अबहीं हमारे पास समय नाँइ है, बाद में अइयो। वे बेचारे देह कृत्य के ताईं चलते-चलते इतेक बड़े शहर के बाहर काहू खारी कुइयाँ और गादरी पोखर पहुँचे। तहाँ देह कृत्य ते निवृत होइ, भोजन की चिंता में वाही सेठ ते मिलिबे के ताईं चले। किन्तु वाको नाम, धाम सब भूलि गये। चलते-चलते ढोलकी बनाइबेवारेन के मुहल्ला में पहुँचे। याते जो लोग माँगिबे के व्यसन में परि जाइ हैं, वे दुर्भाग्य के मारे भये या प्रकार सों सतत दुख ही दुख लूटते रहैं हैं। श्रीबिहारीजी महाराज के अनन्य दास ऐसे कबहूँ नाँय होंइ हैं। वे या भाँति माँगिबे के सिद्धान्त कूँ बहुत बड़ो व्यभिचार समझें हैं।

भक्त न सोहत माँगत भीख।
आपुन लजत लजावत हरि-गुरु जिनकी भुलई सीख ॥
जितनीयैं आव अहार तितनोई सब दिन समै दुभीख।
इन वचननि परतीति करत रहि इत-उत चितवत खीख ॥
अष्ठ-सिधि नव-निधि मुक्ति पद दै बौरावत दीख।
श्रीबिहारीदास अनन्य न टरि हैं तजि वृन्दाबन बीख ॥६९॥

हे बिहारीदास ! श्रीहरि की भक्ति-पथ पै चलिबेवारे जन भीख माँगते भये

नेक हू सोभा नाँइ पावें हैं। श्रीगुरुन के अनन्य रहिबे की शिक्षा कूँ भुलाइ कें ऐसे लोग स्वयं तो लज्जित होइ ही हैं, और बिनकी माँगिबे की वृत्ति कूँ देखि के श्रीहरि गुरु कूँ हूँ लज्जित होनो परे है। जीवन बिताइबे के ताइँ जितने आहार की जरूरत होइ है, तितनों तौ श्रीहरि सबन कूँ अवश्य देवें ही हैं। वैसे कोऊ आदमी कितेक हू संग्रह क्यों नाँइ करि लेइ, मन में संतोष नाँइ होइबे के कारन बिनकूँ सब दिन सदा-काल दुर्भिक्ष सों ही लगे है। याते हे भाई! इत-उत देखिबे पै तो खाक डारो और इन बचनन पै बिस्वास करि, एक निष्ठ ह्वैकें ही रहौ। श्रीहरि, सकामी लोगन कूँ अष्ट-सिद्धि, नव-निद्धि, अथवा मुक्तिपद देकें ही बहकाइ देवें हैं, किन्तु जो श्रीजुगल-बिलास-रस के अनन्य उपासक हैं, वे निज रस केलि महल सर्वोपरि श्रीवृन्दावन धाम की सीमा कूँ तजि कें एक निमिष के ताईं हूँ, कबहूँ इत-उत कूँ नाँइ टरें हैं।

द्वै द्वै कियें न बात बनें।
द्वै तें दस ह्वै है घट छूटैं हटकत क्यों न मनें॥
गई आव घट कत लटि लालच चुपरत तेल तनें।
ताकौ करत संग संग्रह सठ हठ ही हठ अपनें॥
गीदर खर कूकर सूकर खल काँमी फिरत घनें।
जे निहकाम सूर सिंघनि के संग नौ दस न सुनें॥
श्रीबिहारीदास ह्वै सक्यौ न बोधा बंधन बँध्यौ घनें॥७०॥

आप निज आश्रितन ते कहैं हैं कि हे भाई! द्वै-द्वै लक्ष्य राखिबे तें तुम्हारौ काम कैसे हूँ नाँइ बनि सकै है। तुम अपने मन कूँ क्यों नाँइ हटकौ हो। यदि ये मन याही भाँति भटकतौ रहैगो, तौ तुम द्वै तें बढ़िके दसन सों अपनो नातो नेह मानिबे लगौगे, और तुम्हारी अनन्यता की लक्ष्य छूट जाइगी। तुम्हारी बहुत सी आयु योंही बीत गई है और रही-सही हू चली जाइ रही है, तौहू तुम लोभ, लालच में परि चुपरि-चिकनाइ कें ये देह की ही सार-सम्हार में लगे रहौ हौ, और अपनी मूर्खताभरी हठ धर्मीपने ते या देह के ताईं ही नाना प्रकार के संग-संग्रह करते रहो हो। ऐसे तो गीदर-गदहा, सूकर, कूकर, सदृश कामी खल, टोल के टोल जहाँ-तहाँ फिर्यौ करें हैं, किन्तु जो श्रीभक्ति महारानी-रूपी सिंघनी के निष्काम सूरबीर सिंह-सपूत होइ हैं, वे कहूँ एकठौर नौ दस हू सुनिबे में नाँइ आवें हैं। हे भाई! जब तुम इतेक संसारिक

बंधनन में फँसे रहोगे, तो विवेक पूर्वक श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे अनन्य दास नाँइ होइ सकौगे।

जब तें साधुनि कौ संग छूट्यौ।
तब तें सुजस श्रवन भरि कबहूँ अमृत अघाय न घूट्यौ ।।
तनक प्यास तृष्णा पानी की और बाट पर्यौ फूटयौ।
गोंडे गांव विषै बेहड में यों कृपननि मिल लूट्यौ ।।
छांड्यौ गथ न गह्यौ हों लोभी लोदनि लातनि कूट्यौ।
श्रीबिहारीदास सुनि भज्यौ झटक तब नेकु जनेऊ टूट्यौ ।।७१।।

हे भाई! जब तें हमारो साधुन कौ संग छूटि गयौ, तब तें हमने श्रीबिहारी-बिहारिनी जू कौ रस जस-रूपी अमृत अघाइ के कबहूँ नाँइ पान कीनौ। प्रथम तो हमारे लालसारूपी प्यास ही तनिक सी है, ताहू पै हमारो हृदयरूपी पात्र ऐसो फूट्यौ भयौ, कि जामें श्रीहरि रस-रूपी-अमृत नेकहू नाँइ ठहरै है।

जैसे गाँव के गोड़े में ही कोऊ काहू को लूटि लेवै, तैसे ही इन कृपन-विषयिन ने मिलि कें मेरो परमार्थ भाव-रूपी सब धन घर में ही लूटि लीनौं, मैंने जैसे-तैसे बिनते छूटि कें जब भाजनो चाह्यौ, तब लोभी-बदमास मोकूँ लातन ते कूटिबे लगे। अर्थात् जब मैंने घरवारेन तें ये बात कही कि मैं श्रीहरि कौ भजन करिबे के ताईं घरद्वार छाँड़ि के साधु होऊँगो, तब तौ सबके-सब अति नाराज हौइ, आंख निकारि मोकूँ फटकारिबे लगे, हे बिहारीदास! बिनकी बातन कूँ सुनत खेम मैं भजि दियौ, यामें मेरी हानि तौ कछु भई ही नाँइ, केवल जनेऊ रूपी जाति के बंधन टूटि गये।

यहै कहौ हों कहा डरानों।
कलपि लेत कछु हेत न पावत यातें अति अकुलानों ।।
कै बलहीन भयौ आलस बस कै भयौ भजन में कानों।
कै विषइन संग लग्यौ रंग यह जिय जान घिनानों ।।
राख्यौ बांधि आँधरे पसु लों सूनों सदन निमानों।
खेलत हँसत हँसावत अब वा सुखहि सुमिर पछितानों ।।
यहै-सकुच तेरौ ह्वै कांपै दीन वचन मुख आनौं।
तुम जिन होहु उदास विहारनिदास विरद दै बानौं ।।७२।।

साधक समाज सों आप कहिबे लगे कि हे भाई ! तुमहीं बताओ, अब हमें काहे बात को डर है ? तुम जो कलपि-कलपि कें अकुलाइ रहे हो, तुम्हारे मन को हेत कछु समझ में ही नाँइ आइ रह्यौ है। कैतो तुम आलस-बस बलहीन हैकें अपने साधनन में उमँगि-उमँगि के नाँइ लगि रहे हो, या तुम भजन में काने है रहे हो। अर्थात प्रत्यक्ष स्वरूप श्रीवृन्दावन एवं परोक्ष निजमहल के स्वरूप में कछु भेद मानि रहे हो। ऐसे ही प्रत्यक्ष श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज एवं परोक्ष श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू में। याही भाँति श्रीस्वामीजी महाराज, एवं रसिक-अनन्य-उपासक जन तथा अपने श्रीगुरुदेव इन सबन तें, सहचरि स्वरूप में भेद मानि रहै हो, याही प्रकार नाम-गुण-सेवा आदि समस्त भावन में तुम्हारे भेद-बुद्धि बनी रहै है। ताते तुम्हारो भजन कानो होय रह्यौ है। अथवा विषयिन के संग कौ रंग तुम्हें लगि गयो, जासों तुम अपने जिय में सतत घिनाते रहौ हो। जैसे काहू आँधरे पसु कूँ सूने स्थान में बाँधि दियौ जाइ, तौ वो सदा दुखी रहै है, तैसे ही तुम संसार सों विरक्त हैबे पै हू पहले जगत में हँसते-हँसाते भये, किये गये क्रिया-कलापन के सुख कूँ याद करि-करि कें मन ही मन पछिताते रहौ हौ। तुम साँची-साँची कहौ कि तुम्हारो यह भय, संकोच काहे कारन सों है, और तुम ऐसे दीन-हीन बचन काहे कूँ मुँह ते बोलो हौ। अरे भाई ! तुम भजन के इन समस्त मानसिक सूक्ष्म-बिघनन कूँ भलीभाँति त्यागि, श्रीबिहारीजी महाराज के सर्वोपरि विरद की दुहाई देते भये साँचे भाव सों भजन करौ। या अनन्यन के बाँके-पथ कूँ अपनाइ कें तुम्हें उदास होइबे को तो कोई बात ही नाँइ है।

अपराधनि कौ दंड दै मोकों।
कृपा सुकृत साधन श्रद्धा-जुत सचि राखों रति तोकों।।
रोग भोग संजोग वियोगैं आवत जात न रोकौं।
तुम्हरे रस वस कछुव न जानौं दुख सुख हर्ष न सोकौं।।
अंतरंग बहिरंग मगन मन पाँचौ प्रेम चहोकौं।
श्रीबिहारिनिदासि भई बन बिहरों दिन दम्पति अवलोकौं।।७३।।

फिर आप श्रीस्वामीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये कहैं हैं कि हे प्राननाथ ! जो मेरे अपराध हैं, तिनको दंड मोकूँ आप दै देउ, किन्तु आपके कृपा-प्रताप तें श्रद्धा-युक्त साधन-स्वरूप सुन्दर कृत्यन कूँ मैं अपने हृदय में संचय करि,

आपके श्रीचरनकमलन में ऐसो दृढ़ अनन्य-प्रेम राखूँ कि–रोग-भोग-संयोग-वियोग आदि काहू प्रकार के सुख-दुख आइबे-जाइबे की हम रोक-थाम ही नाँइ करैं। आपके रस-वस सदाकाल ऐसे निमग्न रहैं, कि हमें दुख-सुख, हर्ष-शोक को कछु ग्यान ही नाँइ रहै, अंतरंग और बहिरंग पाँचों इन्द्रिन सहित अपने या मन कूँ आपके प्रेमरस में निमग्न करि, साक्षात् श्रीनित्यबिहारिनीजू की निजदासी होइ, श्रीवृन्दावन में बिहरते भये निरंतर श्रीजुगल की केलि को अवलोकन करतौ रहूँ।

हरि दीननि कों कृपा करें।
कहत यहै गुन रूप प्रेम जल नीचहि ठौर ढरै ॥
जाति रूप कुल सील समझि मन ऊँचे ठौर धरै।
तौ सुनियत सुरपति अभिमांनी तातें कछु न सरै ॥
ऐसी जो उपजै भागनि तैं रसिकनि के पाँइ परै।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें सब संताप हरै ॥७४॥

यह कह्यौ जाइ है कि प्रेम एवं जल कौ गुन, स्वरूप ऐसो होइ है कि ये नीची ठौर माऊँ ही सहज ढरै हैं। ऐसे ही श्रीहरि दीनन पै ही कृपा कियौ करैं है। तुम अपने जाति, कुल कूँ ऊँचौ मानि और रूप सील को सुन्दर समझि, अपने मन कूँ अभिमान-रूपी टीला पै चढ़ाइ राख्यौ है। याते तुमही सोचो, इन सब बातन में सुरपति बहुत ऊँचो है, किन्तु बाते कछु काम नाँइ बनै है। हे भाई ! यदि सौभाग्य ते तुम्हारे मन में ऐसी दीनता की भावना उपजि आवै कि तुम अपने समस्त अभिमानन कूँ त्यागि, रसिकजन श्रीबिहारिदासन के श्रीचरनकमल की सरन में जाइ परौ, वेतो महत्‌जन श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें तुम्हारे सब संतापन कूँ हरन करि लेवैंगे।

जो पै भक्ति सुतंत्र न होती।
तौ अभिमांनी मार डारिते निसुगे सूद न सोती ॥
जदपि दीन अधीन वर्ण आश्रम विमुख होत करि दोती।
क्यों पावैं रसरीत अभागे फोकट सांटे मोती ॥
इत कंचन कौ कोट भजन उत कर्म कांच की पोती।
ताको श्रम करि मरत महासठ समझत नांहिनै वोती ॥

छाक खात स्यामहिं सुख ब्रज में ताकों अपरस धोती।
श्रीबिहारीदास सों यह निज नातौ एक प्रेम कुल गोती ।।७५।।

निज आश्रितन कूँ समझाते भये आप बोले कि हे भाई ! परम दयालु, कृपालु, सरनागत-वत्सल अद्भुत उदार चूरामनि पतित पावन, भक्तमन भावन, अधम-उधारन श्रीहरि की परमपावनी भक्ति समस्त रीतिभाँति सों यदि स्वतंत्र नाँइ होती तो ये कर्म-धर्म, बिधि-बिधान, जाति-पाँति, वरनाश्रम के अभिमानी, निसुगे, निसोती लोग श्रीभक्ति महारानी के पथकूँ ही नष्ट-भ्रष्ट करि देते। फिर सिबरी, जटायु, नाऊ, छीपा, जाट जुलाहा सदन, रसखानि आदि सबन कूँ श्रीहरि कैसे प्राप्त होते। इतेक ही नाँइ अनंत जीव सहज दीनता तें भरि श्रीहरि के नाम, गुन, सरनागति कौ आश्रय लेकें निहाल है गये एवं निरंतर निहाल है रहे हैं तथा होइगें, और तो और स्वयं श्रीहरि हू अपने भक्तन के ही गुनन कूँ गावें हैं तथा बिनके चरनारविंद के रज की लालसा में पीछे लगे डोलें हैं। यद्यपि दीन, अधीन वर्णाश्रम धर्म भक्ति महारानी के ही सतत आधीन रहैं हैं, तौहू ये लोग भक्ति सों बरोबरी करिबे ते विमुख है जाँय हैं। फिर ये अभागे सारहीन कर्मकाण्डन के बदले निज रसरीति रूपी महा उज्ज्वल साँचे मोतिन कूँ कैसे प्राप्त करि सकें हैं। श्रीहरि कौ भजन तौ स्वर्ण को किला सदृश है, बरनाश्रम धर्म काँच के मनियाँ सदृस है। तौहू महामूर्ख ताकू हीं प्राप्त करिबे के ताईं श्रम करि-करि कें मरे जाँय हैं। अपने हानि, लाभ कूँ हूँ नाँइ समझें हैं। जो ठाकुर एकमात्र प्रेम के बसीभूत होइ, ग्वाल-बालन के संग श्रीब्रज में छाक खाइ-खाइ कें सुख मानें है, ऐसे प्रेम-रिझवार श्रीहरि कूँ बिना प्रेम के केवल अपरसी धोती आदि आडम्बरन सों ही रिझाइबे की चेष्टा करें हैं। हमारे श्रीबिहारीजी महाराज कौ कुल, गोत तौ एकमात्र साँचौ प्रेम को ही है, वे केवल अनन्य प्रेम के ही नाँतो-संबंध कूँ मानें हैं।

मोहिं न कछू उजर ब्रजनाथ।
सकुचत कहत इतनीय तुम सों रहों सब दिन साथ ।।
घटि बढ़ि टहल करों सब तुमरी कहत रहों गुन गाथ।
जब फिरि सुनहु श्रवन द मोतन चितये होत सनाथ ।।
मेरी लाज लाड़िली तोहीं सबै तिहारे हाथ।
श्रीबिहारिनिदासकों अब नआन गति तुम्हरे चरनकमल मम-माथ ।।७८

फिर आप श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये कहिबे लगे कि हे

ब्रज रसदेस के हू नाथ ! मोहिं आपसों काहू प्रकार को कैसे हू उजर नाँइ है, किन्तु बड़े संकोच ते केवल इतेक ही प्रार्थना करूँ हूँ कि मैं सदाकाल आपके संग-संग ही रहि कें, छोटी-बड़ी समस्त प्रकार की टहल करतो भयौ, आपके गुनन कूँ सतत गायो करूँ। जब कबहूँ आप अपने गुनन कूँ सुनि मेरे माऊँ नेक निहार लेओगे, सोई मैं धन्यातिधन्य होइ सनाथ है जाऊँगो।

फिर आप श्रीस्वामिनीजू सों कहिबे लगे कि हे लाड़िलीजू, मेरी लज्जा समस्त रीतिभाँति सों एकमात्र आपकूँ ही है, और आपके हाथ में हीं सब कछु है। हे प्रानेश्वरीजू तिहारे श्रीचरनकमलन में अपनो माथो रखिबे के अतिरिक्त अब मेरी और कोऊ गति है ही नाँइ ?

साँचे हो हरि मो तन हेरौ।
जिय जान्यो मन मान्यौं श्रवननि सुन्यौं जु साधुन टेरौ ।।
हुतौ कुसंग भजन में अंतर बिपति बडाई घेरौ।
आदर करि अभिमाँन बढावत तिन तिन तें मन फेरौ ।।
बिगरे मन टूटैं तनाव लौं तार तार अरझेरौ।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें सुख संतोष सकेरौ ।।७७।।

श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये आप फिर कहैं हैं हे प्राणनाथ ! जैसो मेरे जीव ने जानि राख्यौ है, मन ने मानि राख्यौ है, श्रवणन ने सुन्यौ है, तथा संतन ने हू पुकारि-पुकारि के कह्यौ है, तैसे हीं आप अपनी साँची निज-कृपा भरी दृष्टि तें मेरे माऊं देखौ। क्योंकि पहले कुसंगबस बड़ाई-रूपी बिपत्तीन में घिरिबे कें कारन भजन में अंतर परि रह्यौ हो। याते जो लोग बड़ाई करि-करि कें मेरे अभिमान कूं बढ़ायो करें हैं, तिन-तिन सों मेरे मन कूं भलीभाँति या प्रकार बिगारि देउ कि जैसे जाल कूं दोऊ ओर तानिबे सों टूट के तार-तार अलग है जाइ है। श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें अब हमने समस्त रीतिभाँति सों संतोष रूपी सुख कूं अपने हृदय में संग्रह करि लीन्यौ है।

त्यौं त्यौं उपजत है चित चाव।
साँचौ बिरद बिहारीजू कौ सब दिन करत सहाव ।।
प्राकृत गुन दुख-सुख बिष भोयौ पर्यौ पंक में पाव।
इहि विधि कौंन धीर उर धरि है कहौ निकसि क्यौं धाव ।।

मैं श्रम क्रम कछू न कीनों करुनानिधि तिहारियै कृपा उपाव।
गयौ भरम फट फूटि छिनक में ज्यों बदरा बिन बाव॥
अब कोउ आदर करौ निरादर अरु न कहौ कोउ आव।
लोक वेद कुल सील जाति-पति श्री सोभा जस जाव॥
यों सब काज कियो छल-बल कें आनँद निधि दै दाव।
श्रीबिहारीदास आवर्ण मिट्यौ अब हरुवौ ह्वै गुन गाव॥७८॥

जैसे-जैसे हम अपने चित्त में और सब बातन तें संतोष कूं संग्रह करते जांइ हैं, तैसे-तैसे ही हमारो मन चाव में भरि-भरि कें उमंगन लगे है, और सांचे विरदवारे श्रीबिहारीजी महाराज हू त्यौं-त्यौ ही सब दिन मेरी सहायता करें हैं। माया के गुन तथा सुख-दुख रूपी जहर सों बेसुध होय, ऐसो बिबस है रह्यौ हो, मानो पाँव गहरे दलदल में ही फँसि रहे होंइ। या प्रकार जकड़्यौ भयौ कैसे तो कोऊ धीर धरि सकै है और कैसे कोऊ निकसि कें भाजि सकै है, ऐसी विषम परिस्थिति में केवल आपकी ही कृपा-रूपी उपाय सहायक होइ है। मैं हूँ जब कछु श्रम, क्रम, उपाय नांइ करि सक्यौ हो, तौ हे करुनानिधान! आपकी अहैतुकी सर्वोपरि कृपा के बल ते ही मेरे सब भ्रमन के जाल ऐसे छिनकाल में फटि-फूटि कें नष्ट है गये, मानो बिना वायु के ही आकास में छाये भये बादर सहज ही बिलाय गये होंइ। अब चाहे कोऊ आदर करौ, चाहे निरादर। लोक-बेद की मर्यादा, कुलसील, जाति को अभिमान, धन-संपत्ति और श्रीसोभा आदि सों तो, हम ये कहैं हैं कि तुम हमारे हृदय तें चले जाउ। या भाँति आनंद निधि श्रीबिहारीजी महाराज ने नाना दाव-उपाय, छल-बलन द्वारा मेरे सब काम सम्यक् प्रकार बनाइ दीनें हैं। हे बिहारिदास! माया को आवरण हटिबे तें हमारौ चित्त सब प्रकार सों हरुवो होय, अब हम आपके ही गुनन कूं सदाकाल गायौ करें हैं।

श्रीकुंजबिहारी की बलि जैहौं।
जिनकी कृपा प्रेम पद पायौ उमगि उमगि गुन गैहौं॥
जोग जज्ञ वैराग त्याग तप तीरथ निहुरि न न्हैहौं।
तिनके फल अरु फूल कटुक सब थोथे फटकि उडैहौं॥
कबहूँ करूँ न मनोरथ मन में मचलि न खसम खिझैहौं।

ज्यों राखौ त्यों रहौं रुख लियें मुख देखैं सुख पैहौं ।।
बाँके कौ सेवक न साँकरें अनत न कहूँ उमैहौं ।
श्रीबिहारीदास प्रभु सूर धीर दिन इनहीं के सहज समैहौं ।।७९।।

श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मंदिर में निरवधि नित्यबिहार करिबेवारे श्रीबिहारी जी महाराज की हम बलिहारी जाँइ हैं। जिनकी कृपा तें यह अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम हमें सहज ही प्राप्त भयौ है, तिनके अद्भुत गुनन कूँ ही सदाकाल हम उमँगि-उमँगि कै गावैं हैं, जासों अब जोग, जग्य, बैराग, त्याग, तप, तीरथ आदि मूर्त्तिमान स्वयं आयकें निहोरें करें, तौहू हम बिनमें नाँइ न्हावैं हैं। अर्थात्-विशुद्ध प्रेम प्राप्ति के साधनन में ये सब बाधक ही हैं। इनके फल-फूल स्वरूप परिनामन कूँ करुवे एवं थोथे समझि, हमने फटकि-फटकि कें उड़ाय दीनै हैं। इनको तौ मनोरथ करिबो हू हमारे प्राननाथ कूँ ऐसो बुरौ लगै है जैसे काहू की बैयर अपने पति के मन के बिपरीत आचरन करि-करि कें खिजाती होय।

ऐसे अति बिचित्र प्रेम को बाँको बिहार करिबेवारे श्रीबिहारीजी महाराज के दृढ़ अनन्य सेवक और काहू धर्म की संका एवं लालसा नाँइ करि, अतिधीर सूर-बीरन की नाईं, बिनकी ही रुख अनुसार लाड़ लड़ाइ-लड़ाइ, नाचि-गाइ, सतत बिनके ही प्रेम में समाये रहैं हैं।

रसिक अनन्य भयें सुख पैये।
जो जुग सहस जनम कोटिक धरि और उपाय न हैये ।।
तप तीरथ ब्रत नेम होम संजम के श्रम उपजैये।
मथत कपास निरास मंद मति कहत काढि घ्यौ खैये ।।
बाढै भलें भूख भरमनि की फल पायें न अघैये।
यह दृष्टान्त प्रगट कर कंकन द्रपंन काहि दिखैये ।।
श्रीबिहारीदास लोजै तब कहा लुनि जो कल्लर भुस बैये ।।८०।।

आप साधक समाज कूँ समझाते भये कहैं हैं कि हे भाई! साँचो सर्वोपरि सुख तौ एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रस के रसिक-अनन्य होइबे पै ही प्राप्त होइ सकै है। यों चाहे तुम सहस्त्र-सहस्त्र जुग ताईं जन्म धारन करते रहौ, किन्तु सुखी होइबे कौ कोऊ और उपाय है ही नाँइ। तप, तीरथ, ब्रत, नेम, होम, संयम आदि करिबे ते तो केवल श्रम ही हाथ लगै है। इन साधनन सों सुख पाइबे की

आसा कूँ तौ ऐसो समझो जैसे कोऊ मंदमति मूरख घी खाइबे की लालसा सों कपास को ही मथतो होइ। हे भाई! इन सबन के करिबे ते श्रम में परिकें भूख भले ही बढ़ि जाय, किन्तु बिनके फलन ते तुम कबहूँ अघाय नाँइ सकोगे। यह दृष्टान्त या प्रकार को प्रगट है जैसे हाथ के कंगन कूँ आरसी दिखाइबे की आवश्यकता नाँइ होइ है। हे बिहारीदास! जैसे ऊसर भूमि में भुस बोइ कें, कोऊ कछु नाँइ काटि कें लाय सकें है।

जिन हरि चरननि चित दयौ।
बिसरि गये सब रोग दोस दुख मन कौ सूल गयौ॥
सर्व आत्मनि सन्मुख सब दिन श्रद्धा नाम लयौ।
तजि भजि लोक वेद मरजादा मन अमृत अचयौ॥
सुंदर रूप अनूप आप हरि औरहि ठान ठयौ।
अपने कों बहु भाँति दयौ सुख नित नित नेह नयौ॥
ऊसर जोति सींचि खारे जल कर्म कुबीज बयौ।
श्रीबिहारीदास निहकाँम भजन ते जमें न भूज बयौ॥८१॥

जिन बड़भागी जनन ने श्रीहरि के चरनकमलन में चित्त लगायौ, बिनके समस्त रोग, दोष, दुख आदि भलीभाँति मिटि कें, मन के शूल समस्त नष्ट है गये। तन, मन, प्राण सर्वआत्मा तें सन्मुख होइ वे जन श्रद्धापूर्वक श्रीहरि के नाम-गुनन कूँ गायौ करें हैं। बिनको मन लोक-बेद की समस्त मर्यादान कूँ त्यागि, सतत श्रीजुगल के अमृतमय जसन कूँ पान करतो रहै है। अति अद्भुत अनूप रूप तें सुसोभित और ही विचित्र ठान ते ठने भये श्रीहरि अपने निज जनन कूँ नित-नित नये-नये नेह भरे सुखन ते नाना रीतिभाँति सों सुखी कियो करें हैं।

कर्मकाण्डी लोग तो कर्मरूपी कुबीज कूँ ऐसे बोवें हैं, जैसे कोऊ ऊसर भूमि में बीज बोइ, खारे जल तें सींचें। याते हे श्रीबिहारीदास! निष्काम भजन करिबेवारेन कें कर्म ऐसे नाँइ निपजि सकें है, जैसे भुनो भयौ नाज नाँइ निपजै है।

करैं जो सकर्त के मन मानें।
जब जाको जैसी तब ताको तैसोयै बरु कै बानें॥
तउ न उपजत ज्ञान कथा सुनि वृथा उलटि हठ ठानें।

पावत नहीं विश्राम स्याम कौ बिन प्रताप पहिचानें ।।
जाहि निषेधत निंदत फिरि आचरत न लोग लजानें ।
अहमक अविवेकी अभिमांनी कहि सुनि सबै खिसानें ।।
मरिबौ रोग वियोग निवारै ताकौ कहै प्रवानें ।
ऐसो सूर श्रीबिहारीदास प्रभु जो भानैं गढि जानें ।।८२।।

श्रीहरि की इच्छा सर्वोपरि एवं सर्वतंत्र स्वतन्त्र है। वह लोक, बेद, कुल, सील, कर्म, धर्म, आदि काहू के आधीन नाँइ है। जापै श्रीहरि रीझि जाँइ हैं बिनकी बिगरी भई बात हू भलीभांति बनि जाइ है, और ऐसे श्रीहरि सों प्रीति नाँइ राखि कें, जो और-और बहुत से कर्मन के बंधनन में बँधे रहै हैं, बिनकी बनी भई हू बात बिगरि जाइ है। याही बात कूँ अपने आश्रितन तें समझाते भये आप कहैं हैं कि हे भाई ! सर्व सक्तिमान, सर्वोपरि श्रीहरि अपनी इच्छा के अनुसार ही सब काम करें हैं, और जब जाके प्रति जैसी इच्छा होइ है, तब ताही निज इच्छा के अनुसार वाकी भलीभाँति बनाइ देवें हैं। ये कर्मकाण्डी लोग कथा में श्रीहरि के अद्भुत अहैतुकी कृपा के गुनन कूँ सुनें हू हैं, तौहू बिन में प्रेम-बिस्वास नाँइ करिकें उल्टे कर्म करिबे की ही हठ कूँ ठान्यौ करें हैं श्रीबिहारीजी महाराज के सर्वोपरि अद्भुत प्रताप कूँ बिना पहिचानें काहू के मन कूँ विश्राम नाँइ मिलि सकै है। ये अभिमानी ऐसे अहमक अविवेकी होय हैं कि–भक्तिपथ के विघ्न-स्वरूप जिन कर्मन कूँ निंदित तथा त्याज्य बतावें हैं बिनकूँ स्वयं करते भये नाँइ लजावें हैं। और ये ऐसे नासमझ हैं जो इनते कहि-सुनि कैं सब लोग हारि गये हैं।

जो हरि मृत्यु, रोग, वियोग आदि समस्त ताप-संतापन कूँ सहज निवारन करि सकैं, तथा अनंत कोटि ब्रम्हांडन की उत्पति-प्रलय एवं पालन बिनकी इच्छामात्र सों ही सहज-स्वाभाविक होतो रहै है, बिनकी विसुद्ध भक्ति में ये लोग प्रमान पूछैं हैं।

खसमें भावै तित लै धावै ।
एकहि सूत्र जगत मनि-गन लों सहज पर्यौ चलि आवै ।।
जल थल घर बाहिर बन बेहड गहि गिरि सिखर चढावै ।
सूर सुतंत्र सुघर यह मौसर इनही पै बनि आवैं ।।
को माया मन कर्म काल प्रारब्ध न पहुँचन पावै ।
सब दिन सब पर सब कौ नियंता सब की नारि नवावै ।।

अनजानत मानत नाना मत संसारै भरमावै।
लीला-सागर नट-नागर अपनी रुचि रमै रमावै॥
भक्तनि कों परकासत यह मत सहै जु स्याम सहावै।
श्रीबिहारीदास प्रभु को रुख लीयें सुख दै नाचै गावै॥८३॥

हे भाई ! हमारे प्राननाथ श्रीबिहारीजी महाराज की इच्छानुसार ही यह समस्त जगत को ऐसे संचालन होइ रह्यौ है, जैसे सूत में पिरोये भये मनियाँ सहज-सुभाव ही सूत के आधीन चलें हैं। तैसे ही श्रीहरि प्राणिमात्र कूँ अपनी इच्छानुसार जल, थल, घर, बाहर, बन, बेहड़ गिरि-सिखर आदि जहाँ-तहाँ लै जाँइ हैं। क्योंकि माया, मन, कर्म, काल प्रारब्ध आदि बिनके इच्छा ताऊँ कोउ पहुँच ही नाँइ सकै हैं। ये ऐसे अद्‌भुत सूरबीर, सुघर-सिरोमनि स्वतन्त्र हैं जो इनकी बात इनहीं पै बनि आवै है। सब दिन सब पर सबके नियंता स्वरूप सों सब की नारि नवावैं हैं। या महा बिचित्र प्रभाव कूँ नाँइ जानिबेवारे जन ही नाना मतन में स्वयं भ्रमैं हैं तथा औरन कू हूँ भ्रमावैं हैं। लीलासागर, नटनागर श्रीहरि अपनी रुचि अनुसार सतत रमैं-रमावैं हैं। ताते बिनके भक्तन ने अपने मत कूँ प्रकास करते भये स्पष्ट कह्यौ है कि जो कछु श्रीहरि सहावैं वाही कूँ प्रसन्नतापूर्वक सहनो चहिये। याही ते हम श्रीबिहारीजी महाराज की रुख लियें बिनकूँ सुख दै-दै कैं सतत नाचैं-गामैं हैं।

जिनके ग्वाल गुपाल गुसाँई।
सौंपि निडर ह्वै रहें भरोसे पूछत गई न आई॥
अति निरपेक्ष नाम के नाते राखत बिना चराई।
तिनकौ दरस परस जस गावत सुधरी सब हरिहाई॥
जे बिगरी बिडरी बाढी ते हित करि हाथ हिलाई।
चढत चली अनुराग प्रेम भरि दूने दूध दुहाई॥
तिनकी सबै सम्हारि साँवरे लैं पहिले पहुँचाई।
पहिचान्यौं घर खरिक खसम कौ रहत निपट नियराई॥
स्याम धाम विश्राम काम मनसा परि-पूरन पाई।
लाल रसाल अंग अवलोकत अमित अमृत अघवाई॥

सबै अविद्या बिसन वासना हौंन न दई पराई।
श्रीबिहारीदास प्रभु नेह निबाहत उलटावत बुधि बाई ।।८४।।

जिनकी गइयान पै ग्वारिया होइ है, वे लोग अपने गइयान कूँ ग्वारिया के ताईं सौंपि वाके भरोसा पै निश्चिंत निडर होइ, आई-गई की हू सुधि नाँइ राखें हैं। तैसे ही जिन भक्तन ने अपनी इन्द्री रूपी गइयान कूँ ग्वारिया स्वरूप अपने इष्ट कूँ सौंपि दीनी है, वे जन ऐसे निडर रहैं हैं कि कौन इन्द्रिय कहाँ गई, कब आई, कहा कीन्यौ आदि काहू बातन की बिनकूँ नेंक हूँ चिंता नाँइ होइ है, और वे गुपाल ग्वारिया हू ऐसे अति निरपेक्ष हैं कि बिना चराई लिये हीं केवल अपने नाम के नाते सबकी रखवारी कियौ करें हैं। श्रीहरि के दरस-परस करि एवं बिनके जसन कूँ गाइ-गाइ कें बिन जनन की समस्त इन्द्री हरियाईपनो छाँड़ि, सम्यक प्रकार ते सुधरि जाँइ हैं। और जैसे ग्वारिया अति बिगरी, बिडरी हरियाईपने में बाढ़ी भई गैयान कूँ प्रेम ते अपने हाथ में हिलाइ लेवें है, तब वे गइया अनुराग-प्रेम में भरि दूने दूध देवे लगि जाँइ हैं। तैसे ही श्रीलालजू अपने आश्रितन की बिगरी बिडरी इन्द्रिन कूँ अनुराग प्रेम तें हिलाय-हिलाय कें ऐसी सार-सम्हार राखें हैं कि उन्हें सबते पहिले ठीक-ठिकाने पै पहुँचाइ देवें हैं। फिर तो ये इद्रियरूपी गाय अपने श्रीहरिरूपी मालिक के खिरक कूँ ऐसी पहिचान जाँइ हैं कि सब गैल-गिरारेन कूँ छाँड़ि, मालिक के अति निकट ही आइ, प्रेम में बंधी ठाढ़ी होय, रसाल-रूपामृत कूँ मनभाँवतो पी-पी कें नाँइ अघावें हैं। वा समय काहू अविद्या-बिसन-वासनान की सामर्थ्य नाँइ है, जो अपने माऊँ बिनके मन कूँ आकर्षन करि सकें। क्योंकि सदाकाल नेह-निबाहिबेवारे हमारे प्रभु ऐसे भक्तन की बुद्धिरूपी वायु कूँ ही अपने माऊँ पलटि देवें हैं।

ऐसो कीजे खसम गुसाँई।
पूरे प्रेम प्रकासक अँग-अँग निपुन चतुर चतुराई ।।
जोरि तोरि जोर दृढ बानत ढीली उसलि बनाई।
तकि तानत बानत तौलत तब उनहीं तन धुकि धाई ।।
बहुरि सुघरि सुति ढारि छोल छापि सुहस्त सवाई।
जब जाँनी जनके तन मनकी औरै टेढी गुढी गँवाई ।।
कहा कहों सतभाउ स्याम कौ अनसमझी समझाई।
तब हम कह्यौ न मानत हे! अनभै बिनु परत न पाई ।।

खायौ स्वाद निहारी सोभा सबै प्रीति पिछिनाई।
श्रीबिहारीदास प्रभु प्रगट करि दई जे हीं दुरी दुराई ॥८५॥

निज आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि हे भाई ! अपनो खसम स्वरूप इष्ट, गुरु ऐसे बनावो, जो अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम को महामधुर सार-रसमय सर्वोपरि नित्यबिहार की स्थूल एवं झीनी गाँसन कूँ तुम्हारे हृदय में प्रकास करिबे में अति निपुन, चतुर एवं चतुराईन में पारंगत होइ, जोकि प्रानप्रीतम श्रीजुगल के श्रीचरन-कमलन तें तुम्हारे मनकूँ दृढ़ता ते बाँधि यावत और और संबंधन कूँ तोरि, मायारूपी फाँसी की गाँठकूँ ढीली करि देवें, तत्पश्चात तुम्हें तकि, तान, तौलि बिबिध भाँति सों परिक्षण करि ऐसो बनाइ देवें जासों तुम सब समय अपने प्रानप्रियतम के माऊँ ही धाय-धाय के झुक्यौ करौ। तब वे सुघर-सिरोमनि श्रीगुरुदेव छोलि-छापि कें सूत में ढारि, अपने श्रीहस्तकमलन तें ही उमँगतो भयो प्रेम को स्वरूप तुम्हारो बनाइ देवेंगे। जब तुम्हारे हृदय में वैसो प्रेम उदय है जायेगो तब तुम्हारे तन-मन की अनुराग लालसान कूँ समझि, प्रेम देश की औरहू टेढ़ी, झीनी गाँसन कूँ हृदय में दरसाइ देवेंगे। हे भाई! श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे सतभाव की बात मैं तुमसों कहा कहूँ, जो गाँस कबहूँ समझ में नाँइ आय रही हीं, वे सब मोकूँ सहज में ही समझाइ दीनी। पहले हम बिनको कह्यौ यों नाँइ मानि रहे कि अनुभव के बिना मन आगे बढ़तो ही नाँइ हो। जब हमने बिनके निज प्रेम को तो आस्वादन करि लीन्यौ, रूप-माधुरी अवलोकन करि लीनी, तबँ बिनकी पिछली समस्त प्रीति हमारे पहिचान में आय गई। फिर श्रीस्वामीजी महाराज नें जो भी अति छुपी भई गाँस ही, सब मेरे ताईं प्रगट करि दीनी।

ऐसो हो सब ही कौ साँई।
आदि मध्य अवसान एक रस संतत सुखद गुसाँई॥
नये नेह नित राखत ज्यौं दूलह-दुलहिन दुलराई।
गुपत मते की बात मनोहर कहत रहत सुखदाई॥
सौति विमुख दुख मरति जरति मानत न कहो कहाई।
मेरे ही रंग रहत रंगीलौ वे सकाम बहकाई॥
ज्यौं अर्भक हित मातु तातु नित राखत लाड लडाई।
खेलत खात न घटत मेटत हठ करि कोटि बुराई॥

और कहाँ लों कहौं स्याम की करत सबै मन भाई।
श्रीबिहारीदास प्रभु की सब साँची मो मन मांहि समाई ॥८६॥

अति आनंद में भरि रीझन में बिबस होइ, आप बोले कि आदि, मध्य, अवसान, एकरस रहिबेवारो, संतत सुखदाई स्वामी, जैसो हमने मिल्यौ है ऐसो जगत में सब काहू कूँ मिलियौ, जैसे नव दूलह अपनी प्रानप्यारी नव दुलहिन कूँ अति छुपी भई परम सुखदाई मनहरन बात कहि-कहि कें समस्त रीति-भाँति सों सदाकाल दुलराइ-दुलराइ के राखै है, तैसे ही हमारे प्राननाथ नित नये दुलार कियौ करें हैं।

जो लोग श्रीभक्ति महारानी ते बिमुख सौतरूपी दुखदाई माया में लिप्त है रहे हैं, वे हमारे सुख कूँ देखि-देखि के जरे-मरे तो जाँइ हैं, किन्तु हमारी कही-कहाई बातन कूँ कबहूँ नाँइ मानें हैं। हमारो प्रानप्रीतम तो सतत हमारे ही रंग में रंग्यौ रहै है, और वे बिचारे अपनी सकामता में बिबस होइ इत-उत माऊँ बहके-बहके फिरें हैं।

याही प्रसंग में दूजो दृष्टान्त देते भये आप बोले कि जैसे माता-पिता अपने लाड़िले बेटा कूँ नित्य-नित्य लड़ाइ-लड़ाइ के लाड़ कियो करें हैं, तैसे ही तो हमें श्रीस्वामीजी महाराज सतत लाड़-लड़ावें हैं, और जा भाँति माता-पिता अपने बेटा की कोटानुकोटि बुराईन कूँ मेंटि, उल्टे प्रशंसा कियो करें हैं, तैसे ही हमारी समस्त बुराईन कूँ मिटाय, जहाँ-तहाँ आप प्रसंसा ही करै हैं। हम कितेक ही बिनके प्रेम में खेलते-खाते रहैं, बिनको प्रेम नेंक हूँ नाँइ घटै है।

श्रीबिहारीजी महाराज के हित कूँ कहाँ ताऊँ हम कहैं, हमारी सब मनभाई वे सतत करते ही रहैं हैं। बिनके प्रेम की जितेक बात है, सब साँची हैं, हमारे मन में भलीभाँति समाय रही हैं।

जग अहंकार रह्यौ रिस रोहि।
जहाँ सु तहाँ सबनि राख्यौ ममता के गुन मन पोहि॥
अरु यौं कहत करत हम करि हैं सुनत रहत मुख जोहि।
अद्भुत कथा अतर्क तिहारी आसंग भरत न मोहि॥
उत्पति करत प्रलय प्रतिपालत यह मत लियौ न टोहि।
श्रीबिहारीदास चितवत तुमहीं तन सब ताकौ थर तोहि ॥८७॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीबिहारीजी महाराज रंग में भरि जैसे आपको

लाड़-हित करैं हैं तैसे ही और सबन तें क्यों नाँइ करैं हैं। तापै आप बोले कि हे भाई ! ये जगत अहंकार-अभिमान में ऐसो गरक है रह्यौ है, जैसे कोऊ बालक रिस में भरचौ भयौ रोयौ करै। ऐसे ही इन सबन ने जहाँ-तहाँ ममता के गुनन कूँ पोइ राख्यौ है, और यौं कहैं है कि अमुक काम हमने कीन्यौ है और अमुख काम हम हीं करैंगे, या प्रकार के अभिमान भरे इनके बचनन कूँ सुनि कें, हम इनके मुख के माऊँ देखते ही रहि जाँइ है। फिर आप स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज सों ही कहिबे लगे कि–आपकी इतेक अगाध-अद्‌भुत-अतर्क कथा है, जाकूँ समझिबे की मेरी हू हिम्मत नाँइ परै है। आपकी इच्छामात्र ते ही अनंत कोटि ब्रह्मांडन की उत्पत्ति-प्रलय एवं प्रतिपालन है जाय है, ऐसे महाबिचित्र-शक्तिशाली आपके गुनन के माऊँ ये लोग अपनी मन-बुद्धि कूँ नेक हू नाँइ लगावैं हैं। हमने सबको थर देखि कैं अपने चित्त कूँ आपके ही श्रीचरनकममन में लगाइ लीनौ है।

सुनि अहंकार भलौ न भिया।
काहै कौं दुख सुख मानत मन पैयत न बिना दिया॥
बुधि विवेक भजन भरि राखत मोहन हेरि हिया।
श्रीबिहारीदास प्रभु कियौ सु मान्यौ यों जन जानि जिया॥८८॥

साधक समाज कूँ समझाते भये आप बोले कि हे भाई ! मैं तुमसों कहूँ हूँ कि अहंकार करिबो कैसे हू अच्छो नाँइ होइ है। जाकूँ जो कछु बस्तु प्राप्त है, वो सब प्रभु की इच्छा सों ही प्राप्त भई हैं। यातें तुम काहे कूँ दुख-सुख अपने मन में मान रहे हो। तुम अपनी बुद्धि-विवेक में सदाकाल भजन कूँ भरि, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की महा-मोहनी मूरति कूँ ही अपने हृदय में निहारचौ करौ। श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे जन तो जो कछु वे करैं हैं वाही में सुख मानि, सतत प्रसन्नतापूर्वक जगत में जीवैं हैं।

जब तें कियौ साँवरे चेरौ।
कागद फेरि निवारि लियौ हरि मेंटि सबनि सों झेरौ॥
जब हों हुतौ अनाथ नाथ विनु खिच्यौ फिरत मन मेरौ।
सब की कांनि कनावड मानत छिन छिन भ्रम भट भेरौ॥
देव पितर निदरत पाँचों मिलि चितवत कुटुम करेरौ।
रहे सबै चुप चाहि चितैं जब हितू जान्यों हरि केरौ॥
दियौ प्रसाद प्रतीति प्रीति कैं राखि निपट नित नेरौ।

मोल लिये की इती करत को हों जाइ दुघर घर घेरौ ।।
श्रीहरिदास सांटि सांचे बिन को करि सकै निबेरौ ।
श्रीबिहारीदास निरभै पावन पथ लोगहु लगो सबेरौ ।।८८।।

जब तें श्रीबिहारीजी महाराज ने हमें अपनो चेरौ बनायौ है, तब सों सबन तें झेरो सदृश झगरौ मिटाइ, प्रारब्धन के कागजन कूँ फारि, हमें निवारि लीन्यौ है। पहिले हमारो मन बिना नाथ के जहाँ-तहाँ स्वारथन में खिच्यौ फिरतो हो, जागतिक जीवन ते लैंके देवता आदि सबन की कान-कनावड़ माननी परती ही, तथा छिन-छिन अनेक भ्रमन ते हू भटभेरौ हुयो करतो, देवता, पितर आदि पाँचों मिलि कें हमें निदरते, तथा कुटुम्बी हूँ हमारे माऊँ कड़ी दृष्टि ते देखते, किन्तु जब बिनने मोकूँ श्रीहरि को दास जानि लीनौ, तब सबके सब चुपचाप देखते के देखते ही रहि गये। परम कारूणिक श्रीहरि ने बड़ी प्रीति सों अपने अति निकट में ही राखि, प्रेम-विस्वासरूपी महाप्रसाद हमें दै, समस्त रीतिभाँति सों निहाल करि दीनो। पहले मैं काम, क्रोध आदि माया के दुष्ट घरन में फँस्यौ भयौ हतो, तहाँ ते अपनी कृपारूपी मोल चुकाइ, मोकूँ निकारि जैसी अति अगाध प्रीति अब मोते आप करें हैं, वैसी और कौन करि सकै है? श्रीस्वामीजो महाराज सदृस खरे साँचे उपदेष्टा के बिना ऐसो निबेरो और कोऊ नाँइ करि सकै है मैं तोते ये बात कहूँ हूँ कि हे बिहारीदास !—अति पवित्र एवं निर्भय या पथ पै, समस्त जगत शीघ्र ते शीघ्र लगो।

यों जन हरि सों प्रीति करै।
ज्यौं सेवक अपने प्रभु तन सनमुख सतिभाइ ढरै ।।
बिनु साधन क्यौं सिद्धि होत कृत को औगुननि हरै।
काम क्रोध मद मोह मनहि बस करै तौ काज सरै ।।
ज्यौं पसु हित नित देत करब खरि धनी दूध के लोभा।
ऐसे जो जन देह निबाहै भजन बढै बिनु छोभा ।।
तब निर्मल ह्वै रस कहै विमल जस उदित प्रेम तन गोभा।
श्रीबिहारीदास कीजै परमारथ स्याँम मिलें सब सोभा ।।९०।।

फिर आप बोले कि श्रीहरि के जनन नें आपसों ऐसी प्रीति करनी चहिये, जैसे साँचो सेवक अपने प्रभु के माऊँ सतत सन्मुख ह्वै सतभाउ ते ढरचौ रहै है। या

प्रकार ते यदि तुम साधन नाँइ करोगे तो, न तो तुम्हारो भाव ही सिद्ध होइगो, और न औगुन ही नष्ट होयगें। याते हे भाई ! काम, क्रोध, मद-मोह एवं मन कूँ बस करोगे, तब हीं तुम्हारो काम बनैगो। अपनी देह कूँ हूँ या भाव सों पालन-पोषण करौ जैसे दूध के लोभ सों धनी अपने पसु कूँ चरावै-प्यावै है। ऐसे जो जन अपनी देह कूँ निभावै हैं, बिनको बिना काही क्षोभ के भजन बढ़तो ही जाइ है। भजन करते-करते मन निर्मल है जायगो, तबहीं तो उज्ज्वल रसमय जसन कूँ कहन-सुनन लगोगे और तबहीं तुम्हारे तन-मन में प्रेम की गोभ उठन लगेगी। याते हे बिहारीदास परमारथ पथ में धाइ-धाइ के लगौ, क्योंकि श्रीबिहारीजी महाराज की प्राप्ति होइबे ते ही तुम्हारी सब सोभा है।

जन जाही कौ हौ तिन लीनों।
छांडि गये सब रोग दोष दुख तिनको खोज न चीनों ॥
भूल पर्‌यौ अज्ञान भीर में पहिचान्यौ पट झीनों।
काम क्रोध मद मत्सर काहू तिरछो हाथ न कीनो ॥
सांचो विरद बिहारीजू को अपनों विरद न हीनों।
श्रीबिहारीदास प्रभु जान न दीनों यद्यपि हुतौ कमीनों ॥९१॥

हे भाई ! जिनके हम जन हे, बिनने ही अपनी निज कृपा तें हमें लै लीन्यौ है। ताते समस्त रोग, दोष, दुख हमें ऐसे छाड़ि गये हैं, बिनको ढूँढ़िबे ते खोज हू नाँइ मिलै है। श्रीविहारीजी महाराज यद्यपि हमारे हृदय में ही झीने पट के भीतर बिराजि रहे हे, किन्तु हम अग्यानरूपी भीर में भूलिबे के कारन उन्हें नाँइ पहिचान सके। अब काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि कोऊ विरोधी हमें नाँइ रोकि सक्यौ। हे भाई अपनो विरद काहू प्रकार ते हीन नाँइ हैकें ऐसो साँचो सर्वोपरि है जोकि में अति कमीन सुभाववारो हुतो, तौहू श्रीविहारीजी महाराज ने मोकूँ मायिक संसार माऊँ नाँइ जावन दीन्यौ।

स्याँमजू के सरन जे सुख न सिरानें।
तिनकों सुख सुपनें न लिख्यौ जे फिरत विविध बौरानें ॥
करि अहंकार बंधत छूटत सठ अपने ही अज्ञानें।
बांधि रहे अविवेक बडाई टेरें सुनें न कानें ॥
सींचत अरंड आम की आसा फूल फरै न पिछानें।

दरसत परसत खात न जानत आंखि अछत अँधरानें ।।
बहुर्यौ उदिम करत निलज ह्वै इन्द्र भये न अघानें।
ताहू भये अनभये निरधन निघटि गयें न छिमानें ।।
जरत रहत गीली लकरी लौं तन मन मलिन धुंधानें।
ते जानों आतमहत-पसु संसार सोक मैं सानें ।।
थोरी आउ मनोरथ लांबे बिना बाहु बल तानें।
श्रीबिहारीदास बिनु भयें बौरिया बूडे सबै सयानें।।९२।।

जो जन श्रीबिहारीजी महाराज की अनन्य भाव तें सरन जाइ कें अद्भुत, सर्वोपरि सुख ते तो सुखी होइ नांइ हैं, किन्तु और-और नाना धर्म उपायन में बावरेन की नाँई सुख के ताईं भ्रमते फिरें हैं। ऐसे बहिर्मुखन कूं बिधाता ने सुपने में हू सुख नांइ लिख्यौ है। ये मूरख अपने ही अग्यान तें, अहंकार में भरि, नाना कर्मन में बँधे-छूटें हैं। बड़ाई रूपी अविवेक में ऐसे बँधि रहैं हैं, जोकि हम टेरि-टेरि कें कहैं हैं, तौहू नांइ सुनें हैं। इनको ऐसो विपरीत सुभाव बनि गयो है, जैसे कोऊ आम की आसा तें अंडउआकूं सींचै, और फूल-फल आइबे पै हू नांइ पहिचान सकै, इतेक हू नांइ देख रहैं हैं, सपरस करि रहैं हैं, खाइ रहैं हैं, तौहू नाँइ समझि कें आँख होते भये अंधे है रहैं हैं। ऐसी महा दुःखदाई संपति के चले जाइबे पै हू, ये बेशर्म वाही के ताईं, फिर उद्यम करें हैं, इन्द्र भये पै हू इनको मन नाँइ अघावै है, तथा निघटि जाइबे पै ये शान्ति ते नांइ बैठे हैं, याते इनके धन-संपति जैसी भई, अथवा नाँइ भई, ये सतत दुखन में ही ऐसे सने रहैं हैं, जैसे गीली लकरी जरती भई धुँवा में ही लिपटी रहै है, तैसेही इनके तन-मन सतत मलिन बने रहैं हैं जो लोग श्रीहरि की प्राप्ति योग्य मानव देह पायके हूँ संसार के ही सोक में सने रहैं हैं, तिनकूं तुम आत्मघाती पसु सदृस ही समझौ। देखो आयु तो इनकी थोरी सी है और मनोरथन कूं दृढ़ता ते ऐसे लम्बे-लम्बे करें हैं, जैसे कोऊ बिना अपने हाथन के ही बल कूं तानै। मैं तुमसों कहूँ हूं कि श्रीबिहारीजी महाराज के सांचे दास भये बिना बड़े-बड़े सयाने या संसार में ऐसे ही डूबि गये हैं।

अब हूँ बँध्यौ मोह के फंदा।
संकट परें सहाय न कोई तुम बिन आनंदकंदा ।।
अपने ही अज्ञान सहत सठ विविध दुसह दुखद्वंदा।

नस्वर नेह देह सुख माँनत काम क्रोध आनंदा ।।
बिनती करि न सक्यौ सनमुख तुम सों श्रीवृन्दावनचंदा ।
किये आपनें भाये तुम बिसराये ऐसो मैं मतिमंदा ।।
कीनें जतन जिते जानें अब हार पर्‌यौ छंदबंदा ।
श्रीबिहारीदास के भय मोचन तुम दिन-दूलहु मकरंदा ।।९३।।

फिर आप श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये बोले कि हे प्राण-नाथ ! आनंद कंद सर्व-समर्थ आपके बिना संकट परे पै या संसार में मेरो कोऊ सहायक नाँइ है, तौहू इनके मोह के फंदा में अबहूँ फँसि रह्यौ हूँ । याते मैं सठ अपने आप ही अग्यानताबस नाना प्रकार के दुसह दुख द्वन्दन कूँ हूँ सतत सह रह्यौ हूँ । या नश्वर देह-स्नेह के कारन काम-क्रोध आदि में ऐसो आनंद मानि रह्यौ हूँ जो आपके साँचो सन्मुख होइ कें कबहूँ बिनती हू नाँइ करि सक्यौ । मैं मंदमति आपकूँ बिसराइ, अपने मनभाये छल-बल-जतनन कूँ करि-करि कें अब समस्त रीतिभाँति सों हारि परचौ हूँ याते अपने जनन के समस्त भय-दुखन कूँ मोचन करिबेवारे एकमात्र दिन दूलह आपही श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सतत सुशोभित रहो हो ।

अपनें हरि भजि प्राँन पियारे ।
ममता काल व्याल भूल्यौ तू बडौ निलज मतवारे ।।
अपने जाये जारे जीवत जिन जायौ ते जारे ।
डार चढ्यौ पेंडे काटत तू क्यौं जीहै दई मारे ।।
मोह करत जे द्रोह करत हैं ते सत्रु मित्र विचारे ।
तिनकौ संग करि करि न तज्यौ तैं जन्म अनेक बिगारे ।।
जम कौ श्रम जागत नहिं सोवत राखत नर्क उघारे ।
श्रीबिहारीदास ह्वै सक्यौ न सठ हम कहि कहि हित हठि हारे ।।९४।।

फिर आप आश्रितन तें कहिबे लगे कि हे भाई ! तुम अपने प्रानप्यारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज कूँ साँचे मन तें भजन करो, तुम ऐसे निलज्ज मतवारे है रहे हो जो जागतिक ममता में फँसि, काल रूपी व्याल कूँ ही भूलि रहै हो । देखो, तुमने अपने जाये भये हू जराय दीने हैं, जिनते तुम जन्मे हो बिनकूँ हू जराइ दीन्यों है । मानव देह की आयुरूपी डार पै चढ़े भये तुम, रात-दिन द्वारा सतत अपने हाथनतेही पेंड़कूँ काटि रहै हो, फिर स्वयं ही सोचो, तुम जीवित कैसे

रहि सकोगे ? जो तुमसों मोह करि रहे हैं, वे तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरन के शत्रु हैं, बिनकूँ तुमने अपने मित्र समझि राखे हैं, तिनको संग करि-करि कें ही अपने अनन्त जन्म तुमने बिगारि दीनें हैं। अर्थात् जो भी कोऊ जन श्रीहरि के माऊँ लगावै है, बिनकूँ ही या जगत में अपनो मित्र समझनो चहिये। अन्यथा मोह करिबेवारे तो श्रीहरि ते हटाइ कें अपने माऊँ फँसाइबेवारे होंइ हैं, याते बिनकूँ शत्रु ही समझनो चहिये। जमराज कें दूत कबहूँ नाँइ सोइ कें सतत जागते ही रहैं हैं, और नर्कन कूँ हूँ उघारे ही राखें हैं।

जब आपके इतेक समझाइबे पै हू साधक साँचो होइ के श्रीबिहारीजी महाराज के भजन माऊँ नाँइ लग्यौ, तब आप अनखनाते भये बोले, अरे मूर्ख ! तेरे परम हित की बात कूँ हम हठपूर्वक कहि-कहि कें हारि गये, तौहू तू श्रीबिहारीजी महाराज कौ दास नाँइ है सक्यौ।

रे तू बहुरि कहाँ फिर आयौ।
हम जान्यौ पहिले लेखे तें अबहूँ कैं डहकायौ ॥
लोभ लागि उत ही सरक्यौ सठ दूनों सुनि-सुनि धायौ।
कीनौ मत कृपननि मिलि काँचौ श्रम करि मूल गँवायौ ॥
मानुस कबहूँ भयौ न भैया मिलि सतसंग न गायौ।
करुनानिधि-प्रभु कौ रस जस तोहि काहू कछु न सुनायौ ॥
भई न प्रीति प्रतीति भजन धँन-दारा मोह बढायौ।
आनँद निधि राखी न्यारी तू करई खरि बौरायौ ॥
पछितानों परिहर्यौ नरक हूँ उनहूँ वदन दुरायौ।
श्रीबिहारीदास बिनु भजें साँवरौ यों बहुतनि दुख पायौ ॥८५॥

परम कारूणिक श्रीहरि के चरणकमलन ते संबन्ध नाँइ बाँधि, मानव देह कूँ त्यागि, जीव जब जमराज के पास पहुँच्यौ, तब जमराज कहन लगे कि–हमारे पास ते ही तू गयौ हौ, फिर हमारे ही पास आइ गयौ। कहा, पहिले की नाईं, अबके हू तू संसारी विषयन में ही फँस्यौ रह्यौ ? अरे मूर्ख ! तू लोभ में फँसि, इन बिषयन माऊँ ही धाइ-धाइ के लग्यौ। छुद्र, स्वार्थी, कृपन सबरे तेरे संगी-साथिन नें मिलि कें काँचे मत में तोकूँ लगायें राख्यौ, तैंने हू बिनमें ही परिश्रम करि-करि मानव-जन्मरूपी अपनी मूल कूँ ही गँवाइ दीनी। अरे भाई ! कहा, जन्मभर में मानवपनों तोमें कबहूँ

आयौ ही नाँइ। क्योंकि सत्संग करि कें श्रीहरि के जसन कूँ साँचे मन तें तैंने कबहूँ नाँइ गाये। अति अद्भुत करुना के निधि श्रीहरि के रस-जसन कूँ कहा तोकूँ काहू ने कछु नाँइ सुनायौ ? श्रीहरि के भजन में न तो तेरी प्रीति ही भई, न तोहिं विस्वास ही भयौ। धन और स्त्री, बेटान में हीं तैंने अपने मोह कूँ सतत बढ़ायौ। जो अति बिचित्र आनंद की निधि ही, वाकूँ तो अपने मन तें सतत न्यारी राखी और करुवी खर स्वरूप मायिक बिषयन कूँ ही खाइ-खाइ के बौरातो रह्यौ। अब तोकूँ देखि कें नर्क हू पछिताते भये अपने मुख कूँ तोते छिपावें है। मैं तोते साँची-साँची कहूँ हूँ कि श्रीबिहारीजी महाराज के दास हैकें भजन किये बिना याही भाँति बहुतन ने दुख पायौ है।

कहियत पैयत स्याम सुजान।
मन क्रम वचन किये कहत तू करि सतसंग गुरु आँन ॥
सुलभ संग समाज समझि सुनि श्री भागवत पुराँन।
तू नर ए नागर सुख-सागर श्रीहरिदासनि मन माँन ॥
बाँदर - रीछ - गीध - गज - गनिका इते साखि सुन काँन।
श्रीबिहारीदास संदेह न राख्यौ श्री मुख बचन प्रमाँन ॥९६॥

मानो आश्रित प्रार्थना करतो भयौ बोल्यौ कि हे महाराज ! कहा श्रीबिहारी जी महाराज काहू कूँ प्राप्त है जाँइ है, तापै आपको कथन है कि सब महतपुरुष कहते आये हैं, और हमने हू सुन्यौ है कि वे अति सुजान-सिरोमनि श्रीबिहारीजी महाराज अपने साँचे जनन तें अवश्य मिलैं हैं। मैं तुमसों अपने गुरुन की सौगंध खाइ कें कहूँ हूँ कि तुम मन, क्रम, वचन तें सत्पुरुषन को संग करौ, श्रीबिहारीजी महाराज अवश्य प्राप्त है जाँयेंगें। याही बात कूँ श्रीमद्भागवत जू हू कहैं हैं कि महत्पुरुषन के सत्संग द्वारा सब बातन कूँ समझि, अनुराग सों लगिबे ते श्रीहरि सहज-सुलभ मिलि जाँइ है। क्योंकि तू नर है, वे सब सुखसागर नागर हैं, याते बिनने तुम सों मिलिबे में काहू प्रकार को संकोच नाँइ है। ताते तुम अपने मन कूँ श्रीहरि के साँचे दासन ते मिलाइ लेओ। जब बाँदर, रीछ, गीध, गज, गनिका आदिकन की इतेक साक्षी सुनिबे में आइ रही हैं, तब हे बिहारीदास ! तुम तो अपने मन में काहू प्रकार को संदेह ही मत राखो। याही बात कूँ श्रीभगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत जू आदि में श्रीहरि ने स्वयं श्रीमुखकमल ते भूयो-भूयो वर्णन कीनो है।

यातें मोहि कुंजबिहारी भाये।
सब दिन करत सहाउ सुने मैं सुक-नारद मुनि गाये॥
भूलि पर्यौ अपनों घर तब हों उझकत फिर्यौ पराये।
जे गुन सुमिरि लिये सुख दुख के पैंडे सबै बताये॥
जिनकों प्यार तुमहीं तन चितवत ते न जात बौराये।
श्रीबिहारीदास किये ते हित करि अपनें ही संग बसाये॥९७॥

याही ते हमारे मन में सर्व सिरोमनि श्रीकुंजबिहारी ही भाये हैं। परमहंस चूरामनि श्रीसुकदेवजू, महामुनि श्रीनारदजू आदि महतन ने हूँ भूयो-भूयो ये ही प्रसंसा कीनी है कि आप सब दिन सतत अपने जनन की रक्षा करते आये हैं, करें हैं, और करेंगे। ऐसे अति अद्भुत महा सुखदाई अपने निज घर कूं भूलि कें ही मायिक पराये घरन में उझकतो मैं डोलि रह्यौ। अब मैंने बिनके समस्त सुख-दुखन के गुनन कूं भलीभांति समझि सबन कूं पेंड़े बताय दीनें। जो जन प्रेम सों आपके माऊँ देखते रहैं हैं वे मायिक दुःख-सुखनमें कबहूँ नाँइ बौरावें हैं। श्रीबिहारीजी महाराज हू कृपा करि कें जिनकूं अपनो दास बनाइ लेवें हैं, बिनकूं बड़े हित सों अपने पास सतत बसाइ कें राखें हैं।

अब हों कासों बैर करौं।
ऐसें कहत पुकारें श्रीमुख घट घट हों बिहरौं॥
तौ कहियत अपराधी जन जो आज्ञा पग न धरौं।
दूजी किये ते बहुत बिगूचे हौं हूँ नर्क परौं॥
प्रानी सब समान अवलोकों भक्तनि अधिक डरौं।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तैं नित निरभै बिचरौं॥९८॥

जब हमैं श्रीबिहारीजी महाराज ने अद्भुत, अगाध कृपा करि कें अपनो दास बनाइ, श्रीमुख सों पुकारि-पुकारि कें या बात कूं कह्यौ है कि प्राणिमात्र के घट-घट में सदाकाल हमहीं विराजै हैं, तब तुमहीं बताओ हम कासों बैर करि सकें हैं? तापै हू यदि आपकी आज्ञा में हम नाँइ चलैंगें, तो महान अपराधी समझे जायेंगे। क्योंकि आपकी आज्ञा ते दूजी करिबेवारे बहुत से मारे गये हैं। आज्ञा ते प्रतिकूल चलिबे में तो हमहूँ कूं नर्क में जानो परैगो। ताते हम प्राणिमात्र कूं एक समान ही देखें हैं। अर्थात स्त्री, पुरुष, रूप, कुरूप, ऊंच, नीच, धन, निर्धन एवं पशु-पक्षी आदि काहू के

माऊँ बिषम दृष्टि नाँइ करि कें एक समान ही देखते भये श्रीहरि के भक्तन ते तो सदाकाल हम बहुत ही डरते रहैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें अब हम अति निर्भय होय, श्रीवृन्दावन में नित बिचरैं हैं।

कबहूँ दीन ह्वै न हरि गुन गाये।
हम पंडित हम चतुर गुनीं हम कवि अहंकार कहाये॥
सो बिसर्यौ जातें सब सूझ्यौ जठर जरत तैं जाये।
छिन छिन प्रतिपार्यौ न्यारौ करि पुनि पग धरनि धराये॥
बालक - वृद्ध - तरुन - पन तीनों किहि परमान बनाये।
कबहुँ चलत घुटरवनि कबहुँ धायि कबहूँ टेकि उठाये॥
अपने प्रभु पहिचाने बिन अभिमानहि गये गँवाये।
उतपति करत प्रलय प्रतिपालत ए गुन सुमिर न आये॥
काढत काँध जिते देखे ते सबै विविध बौराये।
श्रीबिहारीदास प्रभु अंत भक्ति ही अपनैं विरद धुकि धाये॥९९॥

मानो आश्रित ने कही कि हे महाराज ऐसी कृपा हम पै कैसे होइ जो बिनके बल-भरोसा पै सदाकाल निर्भय हैकें विचरैं, तापै आपने कह्यौ कि हे भाई! तुमने कबहूँ साँचे दीन ह्वै कें श्रीहरि के गुनन कूँ नाँइ गायो। अहंकार में भरि अपने कूँ यही समझते रहे कि हम बड़े पण्डित, चतुर गुनी एवं कवि हैं, जिन प्रभु ने कृपा करिकें तुम्हें सब कछु सुझायो तथा माता के गर्भ में जरते भयेन कूँ जिनने निकारि सब प्रकार ते रक्षा कीनी, एवं छिन-छिन प्रति तुम्हारी सार-सम्हार करते भये पृथ्वी पै पग धरिबो सिखायो। देह की रचना हू ऐसी अति बिचित्रता ते कीनी जोकि बाल, तरुन, वृद्धावस्था सहज सुभाउ ही याकी होती चली जाइ है। बिनकी ही इच्छामात्र ते समस्त ब्रह्मांडन की उत्पत्ति, प्रलय, प्रतिपालन होइ है। ऐसे सर्वसमर्थ महाप्रभु के अद्भुत गुनन कूँ बिना पहिचाने, अभिमान में भरि अपनी आयु कूँ बेकार ही खोय बैठे। याते जिन-जिन लोगन ने अभिमान के कारन, अपने करतूत बल कूँ दिखायो, वे उल्टे विविध प्रकार तें या संसार में ही बौराय गये। अंत में श्रीबिहारीजी महाराज के भक्त ही अपने प्रभु के विशाल विरद के माऊँ धाय कें झुकै हैं।

हरि जस हरि ही के हेत न गायौ।
स्वारथ ही परमारथ मानत परमारथ बिसरायौ॥

हरि रस अमृत बिषै विष मिलवै अँधरे पसु लों खायौ।
जो निरधार कियो सुक नारद सो सुख स्वाद गँवायौ ।।
काहू भाग भयों गुरु सनमुख तिन सतसंग दृढायौ।
श्रवन कथा सुनि सुनि रुचि बाढी कछुक सुकृत उपजायौ ।।
धन दारा आगार बंधु तजि सात समुद्र तरि आयौ।
गो पद जल देहा अभिमांनी बूडत खोज न पायौ ।।
गर्भ बास अति त्रास भक्त सुनि अंतर अति अकुलायौ।
करी कृपा श्रीहरिदास बिहारीदास सहज समझायौ ।।१००।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि हमने श्रीगीता-भागवतजू आदि श्रीहरि के जसन कूँ बहुत गायौ है, तापै आपकौ कथन है कि—हे भाई! श्रीहरि के जसन कूँ तुमने बिनके ही हेत नाँइ गाइ कें अपने स्वार्थ कूँ हीं परमार्थ मानि, साँचे परमार्थ कूँ बिसराइ दीन्यौ है। आँधरे पसुन की नाईं तुमने अमृतरूपी श्रीहरि के रस-जस कूँ बिषैरूपी महाबिष में मिलाइ कें ही खायौ है। जा अद्भुत सुख-स्वाद कूँ श्रीसुक-नारदादि महतन ने निर्धार कियौ, वा सुख-स्वाद कूँ तुमने बेकार ही खोय दीनौ है।

कोऊ-कोऊ महाबड़भागी जन श्रीगुरुन के सन्मुख भये और श्रीगुरून ने हूँ कृपा करि कें सत्पुरुषन के सत्संग में बिनकूँ दृढ़ करि दीन्यौ। तब श्रीहरि की कथा सुनि-सुनि कें साँची रूचि बढ़ि जाइबे के कारन कछुक सुन्दर कृत्यरूपी साधन वे उपजाइ, धन-धाम, बंधु-बांधव, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार आदि सबन कूँ त्यागि, ऐसे आइ जाँय हैं मानों सात समुद्र पार करि आय गये हैं, तौहू देह अभिमान के कारन वाही माया में ऐसे डूबि जाँय हैं, जैसे कोऊ गाय के खुर-खोज के पानी में ही या प्रकार ते डूबि गयो जो फिर ढूढ़िबे पै हू नाँइ मिलै।

साँचे श्रीहरि के भक्त तो गर्भबास के भयंकर दुखन कूँ सुनत खेम हृदय में अति अकुलाइ श्रीहरि की सांची शरण लै लेवैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज नें कृपा करिकें हमें तो या अद्भुत मर्म कूँ सहज में ही समझाय दीन्यौ।

रे चित चंचल अनत न जैये।
जुगल किसोर चरन चिंतन बिनु सुख संतोष न पैये ।।
कहुँ आदर कहुँ होत निरादर बिनु विवेक विष खैये।
मानुस किये होत कित कूकर भँडिहाई न अघैये ।।

कंचन लोह निगड दृढ छूटै मनसा हूँ न बँधैये।
पाप पुन्य दोउ सम सुनियत डहकाये डहकैये।।
परमारथ बिनु जे स्वारथ की सबै जानि दुख दैये।
श्रीबिहारीदास प्रभु कौ आनँद नित नागर नेंकु रिझैये ।।१०१।।

फिर अपने चित्त कूँ समझाते भये आप बोले कि हे भाई ! तेरो स्वभाव सतत चंचल रहिबे को है, मैं तोते कहूँ हूँ कि श्रीजुगल के चरन कमलन कूँ छाँड़ि अनत कहूँ मति जायो करै, क्योंकि बिनके चरनचिंतन बिनु तोकूँ कहूँ सुख-संतोष नाँइ मिलैगो। जगत में तो कहूँ आदर, कहूँ निरादर ही होय हैं। याते बिना विवेक केवल विष कूँ ही खाइबो है। देख श्रीहरि ने तोकूँ मानव बनायो है, तू कूकर की नाइँ भड़ियाई करि-करि के नाँइ अघाइ रह्यौ है, लोह एवं कंचन स्वरूप पाप-पुन्य रूपी बेड़ी सबके परि रही है। ऐसे तो मनोरथ करि के हू तुमने नाँइ बँधनो चहिये। परमार्थ के अतिरिक्त जितेक स्वारथ के कृत्य एवं विचार हैं, वे सब दुख कूँ ही दैबेवारे होय हैं। श्रीबिहारीजी महाराज को अति अद्भुत आनंद सागर सतत एकरस रहै है। याते बिन नागर सिरोमनि कूँ कैसे हू नेंक रिझाइ लेउ। तुम्हारे सब काम सहज बनि जाँयगें।

अद्भुत नट नागर जग बांध्यौ जंजारा।
वेद रिचा रिजु विवस भ्रमै ज्यों पसु बसि बनजारा।।
स्वर्ग नर्क द्वै पंथ करै पुन्य पाप चल्यौ लारा।
भक्ति हीन हरि न चीन्हें बिथक्यौ धन दारा।।
संतत सौच असौच महासठ काम क्रोध अहंकारा।
बाजो हरि साजो बहु रूप रच्यौ संसारा।।
जाति पाँति भाँति वरनआश्रम बुद्धि विकारा।
घट घट जल थल चराचर व्यापक नंदकुमारा।।
व्यासदेव सुकदेव महासुनि महतनि कौ निरधारा।
साखि सहस आगम निगम श्रीमुख पुनि आपु पुकारा।।
भ्रम न छूटै क्यौं 'क्रम खोटै अंत लहै न अपारा।
श्रीबिहारीदास निर्बैर भजौ मुरलीधर प्रान पियारा ।।१०२।।

हे भाई ! अति अद्भुत नटनागर श्रीहरि ने समस्त जगत कूँ बेद, रिचा-रूपी रस्सी के जाल में बाँधि के भ्रममें ऐसे बिबस करि राखें हैं, जैसे पसु बंजाराके बस में होइकें चलै है। स्वर्ग एवं नर्कमें जाइबे के ताईं पाप-पुण्यरूपी दो मार्ग वेद ने निरूपन कीने हैं, ताही अनुसार सबन ने जानो परै है। भक्ति विहीन नर, धन-स्त्री मेंही विवश रहिबे के कारन श्रीहरि कूँ नाँइ पहिचान, काम, क्रोध अहंकार में भरि सतत अपवित्र बने रहैं हैं। साक्षात श्रीहरि ने हीं अनेक प्रकार ते संसार की रचना करि के माया की बाजी ऐसी पसार राखी है कि अपनी बुद्धि के विकार तें सब लोग जाँति-पाँति बरनाश्रम में भाँति-भाँति सों भेद करि अरुझे रहैं हैं। इनकूँ ये ग्यान नाँइ होइ है कि श्रीव्यासदेव, सुकदेवजी आदि महामुनि महतन ने यह निर्धार कीन्यौ है कि घट-घट जल, थल, चराचर में एकमात्र श्रीनंदकुमार ही सब ठौर व्यापक है रहैं हैं। याही बात कूँ आगम, निगम हू सहस्र-सहस्र प्रमाण दैंके भूयो-भूयो बर्नन करें हैं और स्वयं श्रीहरि हू श्रीमुख तें पुकारि-पुकारि के कहैं हैं, तौहू इनके कर्म खोटे होइबे के कारन न तो इनको भ्रम ही छुटै है, न इनको कहूँ अंत ही मिलै है। हे बिहारीदास ! प्रानीमात्र सों निर्बैर होइ, मुरलीधर अपने प्राणप्यारे श्रीबिहारीजी महाराज को सदाकाल भजन करौ।

कर्मठ पै भागवत सुन्यौ सठ ज्ञानी गुरु पै लीनो दिक्षा।
आपुन रसिक अनन्य कहावत सुफल होइ क्यौं सिक्षा॥
मिहरी कें—स्यौराति सीतरा पूर्तहिं पितर अपिक्षा।
बारह बाट अठारह पैंडे क्यौं पूजै मन इछ्या॥
अटवट गोत कनावडौ सब कौ कौंन करि सकै रक्षा।
श्रीबिहारीदास हरिदास भजें सुख यह निज प्रेम परीक्षा॥१०३॥

जिन लोगन ने कर्मकाण्डी वक्ता के मुख सों तो भक्ति प्रधान श्रीमद्भागवतजू की कथा सुनी, और ब्रह्मज्ञान की उपासना करिबेवारे गुरून ते दीक्षा लीनी, फिर आप रसिक अनन्य कहावन लगै, ऐसेन कों उपदेश कबहूँ सफल नाँइ होइ सकै है। ताहू पै स्त्री तो शिवरात एवं सीतरा पूजै, पुत्र-पित्रन की आसा करै, जिनको घर को घर बारह बाट होंइके, अठारह पथन में चलै है, बिनके मन की इच्छा कैसे पूरी होइ सकै है ? क्योंकि अटवट गोत एवं सबको कनावड़ो होइबे के कारन बिनकी रक्षा करिबेवारो कोऊ नाँइ होइ है। हे बिहारीदास ! जो जन श्रीस्वामीजी महाराज को

भजन दृढ़ अनन्यता पूर्वक करें हैं, वे ही तो सर्वोपरि नित्यबिहार सुख तें सुखी होंइ हैं और बिनके निज रसरीतिमय पूर्नतम प्रेम की परीक्षा हू समझी जाइ है।

जो पै घर ही कौ सुख सूझै।
तौ कत विषई विमुखनि की आसा द्वारैं दिन दिन बूझै॥
पायें चांपि चलत पगियानें कन पायें लटि लूझै।
कै आवत पैंडे लूटन कौं अहंकार हठि जूझै॥
देखत सुनत बहुत बीती पै कछू लाज नहिं तूझै।
श्रीबिहारीदास भयें सुख पैहौ पूछ सप्त दै मूझै॥१०४॥

हे भाई ! जिन बड़भागी साधकन कूं अपने हीं घर कौ सुख सूझ जाइ है, वे जन कबहूँ बिषई-बिमुखन की आसा करि कें काहू के द्वार पर नाँइ बूझिबे जाँय हैं। ये स्वार्थी लोग एक तो अति खुसामदिन की नाईं बड़े लोगन के आगे पाँवन कूँ चाँपि-चाँपि के धरें हैं, दूजे कछु स्वार्थसिद्धि है जाइ, तो दीन होइ वहाँ हीं लुभाइ जाँइ हैं। कबहूँ अहंकार में भरे ऐसे दीखन लगें हैं जैसे मार्ग के लुटेरा होंय ? तौहू वाही अपनी हठ में मरे जाँय हैं। या प्रकार देखते-सुनते दुख के धक्का खाते बहुत दिन बीत गये पै तेरे कूँ कछु लाज नाँइ आवै है। मोसों चाहे तुम सौगन्ध दिवाइ के पूँछ लेओ, मैं तुमसों स्पष्ट साँची बात कहूँ हूँ कि श्रीबिहारीजी महाराज के दृढ़ अनन्य दास होइबे पै ही सदाकाल सर्वोपरि सुख सों सुखी होवोगे।

जो तिहारे गुन वरनें ऐसी मति कौंन की। कहि न सकत कुल कोटि रसिक कवि जदपि धरत मुख रसना सेस सत सौंन की। जोइ जोइ करत जु जन्म कर्म सब भक्त हेत हित हौंन की॥ श्रीबिहारीदास प्रभु यहै विचारत आरत ह्वै पतितन के अघ दौंन की॥१०५॥

आप श्रीबिहारीजी महाराज सों ही प्रार्थना करते भये कहिबे लगे कि हे नटनागर सिरोमनि ! आपके अद्भुत, अगाध सर्वोपरि गुनन कूँ बर्नन करि सकें, ऐसी विशाल बुद्धि काहू की नाँइ है। कोटि-कोटि रसिक कबिन के कुल के कुल यदि सत-सत शेष, शौनकादिकन की रसना कूँ हूँ धारन करि लेवें, तौहू बरनन नाँइ करि सकें हैं। आपके जन्म कर्मादिक जो कछु होंइ हैं, वे सब एकमात्र भक्तन के ही हित करिबे के ताईं होइ हैं। इतेक पै हू आप अति आरत हैकें सतत यह विचारते रहो हो कि पतित जीवन के पाप धोइबे में कैसे आवैं ?

हरि कौसो हित न करत माँ बाप।
प्रथम प्रीति पहिचांन दरस दै मेटि सकल संताप।।
सिव को क्रोध निवारि लियो जन आपुन मानि सराप।
दस औतार धरे ताके हित आनँद निधि निहपाप।।
सरन आये कों अभै करत हरि भीर सहत सब आप।
श्रीबिहारीदास प्रभु पावन गुन को आरति हरत अलाप।।१०६।।

फिर आप साधकन सों कहिबे लगे कि हे भाई ! श्रीहरि को सो हित माँ-बाप कैसे हू नाँइ करि सके हैं। श्रीहरि तो अपने जनन की नेंक प्रीति पहिचानत खेम दरसन दै, वाके समस्त संतापन कूँ भलीभाँति नष्ट करि देइ हैं। भक्तराज श्रीअंबरीष जी के ताईं शिव स्वरूप दुर्बासाजी को दियो भयो श्राप कूँ अपने ऊपर लै, दस अवतार निस्पाप-आनंदनिधि श्रीहरि ने धारन कीनें। याते ये स्पष्ट बात है कि जो भी आपके सरन आइ-जाइ हैं वाकी समस्त आपद-विपद-भीर कूँ अपने ऊपर लै भलीभाँति अभय करि देवैं हैं। हमारे प्रभु सदृश परम पावन अति उज्ज्वल गुन-जस और कौन के है सकैं हैं, जो आरतभरी नेंक अलाप सुनत खेम वाके समस्त दुःखन कूँ नष्ट करि देवैं हैं।

स्याम सब ही के जिय की जानत हैं।
करत भक्ति व्यौपार लोभ लगि ताहि कहा कछू मानत हैं।।
अन्तरजामी सब के स्वामी—सहज प्रीति पहिचानत हैं।
श्रीबिहारीदास निहकामनि की रति श्रीमुख वरनि बखानत हैं।।१०७

हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज प्रानीमात्र के जिय की भलीभाँति जानिबेवारे हैं। जो लोग और-और लोभ-लालच एवं स्वारथन ते भरी भई भक्ति करें हैं, ताकूँ कछु नाँइ मानें हैं। सबके अन्तर्यामी एवं स्वामी हैं, जो सबकी सहज प्रीति कूँ भलीभाँति पहिचानें हैं। जो जन सूरबीर सिंहन सदृस हृदय तें निष्काम भक्ति करें हैं, बिनके प्रेम कूँ तो आप श्रीमुख सों नाना प्रकार ते प्रसंसा करते-करते नाँइ अघावें हैं।

संग न अब काहू कौ कीजै।
माला धरें हेत कछु औरै ताहि सु धोका दीजै।।
जहाँ निरंतर परमारथ स्वारथ कछू न सुनीजै।
तिनके संग बढै छिन छिन रति पूँजी कछू न छीजै।।

मानुष तन कागद कौ पुतरा विनसि जाय जो भीजै।
श्रीबिहारीदास साँचो परमारथ नाच गाइ जग जीजै ।।१०८।।

याते हे भाई ! जगत में अब संग करिबे योग्य कोऊ नाँइ रह्यौ है, कारन वेष्णव धर्म की दीक्षा लैकें हूँ, और-और धर्मन को उद्देश्य मन में भरि-भरि कें श्रीहरि कूं हूँ धोखा देवें हैं। ऐसेन को संग करिबे ते कहा है सकै है। जहाँ निरंतर परमार्थ के अतिरिक्त और काहू प्रकार को स्वार्थ नाँइ सुनिबे में आवै, तिनको ही संग तुमने सदा करनो चहिए। बिनके संग सों तुम्हारी भावरूपी पूँजी नेक हू नाँइ छीजि कें सतत बढ़ती ही रहैगी। कागद कौ पुतरा सदृस यह मानव-देह कालरूपी नेक पानी लगत खेम नष्ट है जाय है। याकी एक-एक स्वाँस अति दुर्लभ समझि, साँचे परमार्थ में लगि, नाँच-गाइ कें जगत में जीवो।

जितौक बुलायौ तितौकु बोलौ।
नातरु रहौ मौन मुख मूंदें खुसी खसम की खोलौ।।
कै राखौ दृढ आसन कै डग डोलनि यों ही डोलौ।
और सबै छल बल तौलै पै तुम्हरौ बल जात न तोल्यौ।।
करि ममत्व अहंकार जगत सों झूँठेइ रौलनि रौल्यौ।
श्रीबिहारीदास कों प्रभु नीके करि मन तुमहीं टक टोल्यौ ।।१०९।।

जगत की और-और बातन में तो जितेक अति आवश्यक होइ, तितेक ही बोलो, अन्यथा तो मुख मूंदे मौन रहौ। क्योंकि यह मुख केवल श्रीबिहारीजी महाराज की प्रसन्नता में ही बोलिबे कौ है, ऐसे ही रहनी-रीति कूं बताते भये आप बोले कि कैतो तुम एकही अपने आसनपै सदाकाल दृढ़ रहौ, अथवा कबहूँ कहूँ, कबहूँ कहूँ, योंही डोलते डोलौ, जासों तुम्हारे भजन में अन्तर नाँइ परैगो। या भाँति रहिबे पै तुम्हारो स्वरूप इतेक गंभीर स्थिति को सबन कूं दरसैगो, जाको कोऊ अन्दाज हू नाँइ लगाइ सकैगो। जगत सों ममता तथा अहंकार करिबे तें बेकार के ही रोलान में रूलनो परै है, या प्रकार की रहनी ते रहिबे सों हमारे प्रभु के मन कूं तुम सहज ढूंढ़ि सकोगे।

भोंदू भूल्यौ भटका खाइ अजहूँ समझि चलत न पाइ।
रे तू कौंने गढ्यौ कौने मढ्यौ काके बजायें बाज।
ताहि भुलये फिरत गाफिल नेंकु न जिय में लाज।।
छाँडि अपने खसम को दर करत औरैं साज।

कहा करकच सौं पचै करि काजि तू निजु आज ॥
साहिबन के साहिबै भजि सबनि कौ सिरताज।
श्रीबिहारीदास भये धन्य धन्य अनन्य भजन बिराज ॥११०॥

आश्रित कूँ सचेत करते भये आप बोले, अरे भाई ! अबहूँ तूँ अपने प्रभु कूँ भूलि के इत-उत माऊँ भटकतो डोलि रह्यौ है। जिन प्रभु ने तोकूँ गढ़चौ-मढ़चौ है और जिनके बजाये बाजि रह्यौ है, गाफिल होइ बिनकूँ हीं तू भूलि रह्यौ है। तेरे कूँ या बात की नेक हू लज्जा नाँइ आवै है, ऐसे अपने प्रभु के द्वार कूँ छाँड़ि कें और-औरन के द्वार पै नाना प्रकार के साज-सजातो फिरै है। मैं तोते कहूँ हूँ कि इन सब करकचन तें नाँइ पचि कें तू अपनो निज काम आज बनाइ ले। जो श्रीबिहारीजी महाराज साहिबन के साहिब, सबन के सिरताज हैं, बिनको ही दृढ़ अनन्य होइ कें भजन करिबे पै ही इहलोक-परलोक में सब ठौर धन्य-धन्य कहावैगो।

भक्ति में कहा जनेऊ जाति।
सब भूषन दूषन बिन प्राननि पति छुवै घरनि घिनाति ॥
क्यौं साधै चिरपन अभिमानी बडी जाति इतराति।
बासर सों कैसे सर पावै जदपि ,उजारी राति ॥
कहा हरे रँग भाँग विराजत तुलसी में न समाति।
सोहै नहीं सुहागनि के संग सौति सुरैति कुजाति ॥
वरनाश्रम अपने अपने मत तिन तिन ही सों पाँति।
भगवत धर्म सिरोमनि सेवत लालच मति भ्रमि जाति ॥
गायत्री संध्या तर्पन तजि भजि माला मंत्र सजाति।
श्रीबिहारीदास कौ सुख सर्वोपरि वेद विदित विख्याति ॥१११॥

बिसुद्ध भक्ति कौ स्वरूप कथन करते भये आप बोले कि श्रीहरि की भक्ति में देह संबंधित जाति-पाँति और जनेऊ आदिकन ते कोऊ संबंध नाँइ है। यह देह तो प्रान नाँइ रहिबे पै ऐसी घृणित है जाइ है, याके समस्त भूषण तौ दूषण स्वरूप है जाइ हैं और वाकी घरवारी हू छूइबे में घृणा मानै है। इतैक पै हू बड़ी जाति के अभिमान कूँ तुम बहुत दिनन तें काहे कूँ साधि-साधि कें इतराय रहे हो। यद्यपि उजेरी रात सदृस ऊँची जाति सुन्दर होइ है, तौहू भक्ति स्वरूप बासर की समता

कैसे हू नाँइ करि सकै है। ऐसे ही भाँग हरे रंग की होइबे पै हू श्रीतुलसीजी में नाँइ समाइ सकै है। याही भाँति सुन्दर सुहागिन स्त्री के संग, कुजात सौति सोभा नाँइ पावै है। याते बरनाश्रम में चलिबेवारे अपने-अपने ही मत के जनन के संग ठीक रहैं हैं। सर्व सिरोमनि श्रीभागवत धर्म कूँ सेइबेवारे, जाति के लालच-भ्रम में परिबे ते भ्रामक समझे जाँइ हैं। याते हे भाई! मैं तोतें स्पष्ट कहूँ हूँ कि गायत्री, संध्या, तर्पन आदि कर्मकाण्ड के आचरनन कूँ भलीभाँति त्यागि, मन्त्र की माला सदृश एकमात्र अपने सजातीय जनन कूँ ही सेवो। क्योंकि नित्यबिहार के सेवी श्रीबिहारीदासन कौ सुख सर्वोपरि स्वरूप सों समस्त वेदन में विख्यात है।

भक्त खसम कौ चिरपन कीजै।
ताहि कहा अभिमान जाति पति चरननि चित दीजै॥
आदि मध्य अवसान पुराननि वेद उपनिषद गीजै।
सब भूषन कौ भूषन यह रस जस जो उर भीजै॥
जाको इष्ट धर्म गुरु आज्ञा यह सैली गहि लीजै।
साधारन समझै समझैगो सहसा ही न पतीजै॥
हरि गुरु की करि सेव श्रीहरिदास भजें जग जीजै।
श्रीबिहारीदास अनन्य परम पद पाइ प्रेम रस पीजै॥११२॥

निज आश्रितन तें आपने और हू कह्यौ कि हे भाई! भक्तन नें तो अपने खसम स्वरूप श्रीबिहारीजी महाराज को ही समस्त रीतिभाँति सों उत्तम कुल की पतिव्रतावत सदाकाल के ताईं दृढ़ अनन्य प्रन करि लेनो चहिये। तुम्हें जाति-पाँति के अभिमान ते कहा लेनो है, एकमात्र बिनके ही श्रीचरनकमलन में चित्त कूँ लगानो चहिए। वेद, उपनिषद एवं पुरान आदिकन में आदि-मध्य-अवसान याही बात कूँ भूयो-भूयो गायौ गयौ है। भूषण स्वरूप समस्त भक्तिन कोहू भूषण सर्वोपरि नित्यविहार रस-जस सों जब तुम्हारो हृदय भीज जायगो, तब तुम स्वयं ही सब बात समझि जावोगे। याते या रस-जस के उपदेष्टा अपने श्रीगुरुदेव की आज्ञा कूँ ही निज इष्ट एवं धर्म समझि, भलीभाँति गहि लेओ। ये अति मर्म की बात सहसा समझ में नाँइ आय कें शनैः-शनैः समझते-समझते पूर्णरूप ते विस्वास है जायगो। श्रीहरिगुरुन कूँ निष्कपट, निस्पृह भाव सों सेवते भये श्रीस्वामीजी महाराज को भजन करि-करि कें ही जगत में जीओ। जब बिनकी कृपा ते अनन्यता रूपी परम पद प्राप्त है जायगो, तब मनभाँवतो

प्रेम-रस पियो करियो।

अब न कहूँ सुनियत साँची रीति। सेवक कें प्रभु की परतीति ॥
दास कहावत औरन गावत बिन विश्वास जनम गयौ बीति।
सूखत मुख और ठिरत श्रवन उर सुनत अनन्य भजन की रीति ॥
एक ठौर नहिं साँच लोंन बिन स्वाद न देइ पहीति।
छुटत न लोक लाज वेद विधि करत अविधि आचरत अनीति ॥
श्रीस्वामी हरिदास रसिक दृढ़ एई पै भलें भजैं भै जीति।
तीन लोक अरु स्याम सभा में सुजस विदित गावत जग गीति ॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदास आस करि इनहीं के चरननि सरन समीति ॥११

फिर आप बोले कि हे भाई! सेवकन की साँची रीति अब कहूँ सुनिबे में हूँ नाँइ आवै है। श्रीबिहारीजी महाराज के सेवक तो बनै हैं, किन्तु अपने प्रभु कौ विस्वास नाँइ राखि कें, औरन कें गुन गाइ-गाइ अपने जन्म कूं बितावैं हैं। अनन्य भजन की रीति सुनत खेम, इनके मुख तौ सूखि जाँइ हैं, कान ठिरन लगै हैं, और हृदय काँपि जाय है। इन्हें ये ग्यान नाँइ है कि एक ठौर में हीं साँचो प्रेम किये बिना, जैसे बिना नमक के दाल-साग स्वादिष्ट नाँइ होय है, तैसे ही तुम्हारो भजन बिनकूँ फीको मालुम परै है। जिन लोगन तें लोक-लाज, वेद-बिधि नाँइ छूटै हैं, वे प्रेमपथ में अनीति स्वरूप अविधि आचरन करैं हैं।

दृढ़ अनन्य रसिक श्रीस्वामीजी महाराज नें ही इन सब भयन कूं सम्यक प्रकार जीति, निसंकता तें अनन्य भजन ऐसो कीनौ है, जिनको स्याम सभा, अरु तीनों लोकन में सर्वोपरिता कौ डंका बजि रह्यौ है, तथा समस्त जगत जिनके गुनन कूं सतत गाय रहैं हैं। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के दासिता की आसावारेन ने तो एकमात्र इनके ही श्रीचरनकमलन की शरन में जानों चहिए।

सरन तिहारे श्रीहरिदास।
मन क्रम वचन बिचारि डारि सब समझें भयो उदास ॥
कर्म कठिन बहु जन्म जोनिन भ्रम्यौं भ्रमत रह्यौ गर्भवास।
तिहि सुमिरत भै भीति होत मैं मानत हों तन त्रास ॥
माया प्रबल परम दारुन लैन न देत उसास।
और उपाय गँवाइ गये सेवा बिनु भये निरास ॥

नाहिंन दृष्टि दिन और बियौ बिनु तोहि रसिक रसरास।
श्रीबिहारीदास कों अब करुना करि राखौ चरननि पास ॥११४॥

हे प्राननाथ श्रीस्वामीजी महाराज ! समस्त रीति-भाँति सों बिचारि, यावत साधनन तें सर्वथा उदास होइ, मन, क्रम, बचन द्वारा आपकी सरन में आइ कें मैं परि गयौ हूँ। आपके चरनारविंदन तें बहिमुंख होइ, अति कठिन-कठोर कर्म करि-करि कें अनन्त जन्म अनेक जोनिन में मैं भ्रमतो भयौ बेर-बेर गर्भ में ही बास कीन्यो, तिनके दारुन दुखन कूँ सुमिरन करत खेम भयभीत होइ, अति दुःखित है जाऊँ हूँ। श्रीहरि की माया परम प्रबल एवं ऐसी भयंकर दारुन है, जोकि नेक श्वाँस हू नाँइ लैन देवै है। जितेक उपाय मैंने सोचे एवं कीने वे हू माया के कारन सब छूटि गये, आपकी सेवा के बिना तो मेरो चित्त ही निरास है रह्यौ है। अर्थात् आप कृपा करि कें अपनी सेवा कछु मोते लेते रहौ तो चित्त में कछु आसा-भरोसा एवं शान्ति बनी रहै है। याते हे रसिक सिरोमनि रस-रास आपके अतिरिक्त और कोऊ रक्षा करिबेवारो जगत में हमने दीखै ही नाँइ है, ताते मैं अतिदीनातिदीन होइ, ये प्रार्थना करूँ हूँ कि आप करुना करिकें मोंकूँ अपने श्रीचरनकमलन के पास में ही सदाकाल राखि लेवो।

सुनहुँ औगुन भरचौ उमंगि इत उत ढर्यौ, तुम कृपा करत कबहूँ न कीनों कुचित। हों पतित सहज तुम सदा पावन नाथ जन जाँनि दीन बर कछु बल न वित॥ सबै जग रोष मम दोष दरसत त्रसत तुम मेरे मन बसत जदपि हों जुवती जित। श्रीबिहारीदास यहै आस सुबिलास अभै वरदान दै माँनि हारि जाँनि हित ॥११५॥

हे प्राननाथ ! मैं आपसों साँची कहूँ हूँ कि यद्यपि मैं एकमात्र औगुनन ते भरचौ भयौ इत-उत माऊँ उमँगि-उमँगि कें ढरचौ करूँ हूँ, तौहू आप अपने चित्त कूँ नेक हूँ नाँइ बिगारि कें सदाकाल कृपा ही करते रहो हो। मैं तो सहज सुभाउ सों ही अति पतित हूँ, आप सदा पतितन कूँ पावन करिबेवारे नाथ हो, मोपै कछु बल-वित्त नाँइ होइकें मैं अति दीनन में हूँ दीन हूँ, केवल आप अपनो जन जानि कें मोकूँ अपनाइ लेवो। समस्त जगत मेरे माऊँ केवल दोष ही दोष देखि कें सदाकाल मोते रुष्ट रहि, त्रास देवै है। ऐसे ही यद्यपि आपकी माया ने समस्त रीतिभाँति सों मोकूँ जीति राख्यौ है, तौहू आप कृपा करि कें मेरे मन में ही सतत बसो हो। अपने मन

की एक और हू प्रार्थना करूँ हूँ कि आपको जो सुन्दर बिलास रस है वाकी आसा मेरे मन में लगी रहै है। मेरे अति निकृष्ट आचरनन ते यद्यपि आप हार मानि गये हो, तौहू मेरो हित जानिकें मोकूँ अभय वरदान देवो।

जाकौं करत स्याम सहाइ।
प्रथम वरनों कृपा क्रम क्रम विषै मूल गँवाइ॥
कुल कुटुम्ब बल बित्त हीनों दीन के दुख-दाइ।
अपनें को करि जु लीनों आपुहीं अपनाइ॥
थके बल-बुधि चातुरी चित और न कछु डिठाइ।
सबनि सों मन निठुर कीनों अनत कहूँ न पत्याइ॥
परम-आनंद-कंद श्रीहरिदास सरन सुहाइ।
श्रीबिहारीदास प्रभु चरन चितै नित जिये परचौ पाइ॥११६॥

श्रीबिहारीजी महाराज के कृपा कौ स्वरूप बर्नन करते भये आप बोले कि–हे भाई! श्रीबिहारीजी महाराज जापै साँची कृपा करें हैं, वाकी क्रम-क्रम सों बिषय-बासनान कूँ मूल ते ही नष्ट करि देवें हैं, और कुल, कुटुम्ब, बल बित्त, जो दीन-गरीब साधकन कूँ सदाकाल दुखदाई हैं, बिनते भलीभाँति हीन करि देवें हैं। अपने जनन कूँ स्वयं आप ही अपनाय कें ऐसो करि लेवें हैं जो कि बिनके मन में बल, बुद्धि, चतुराई सब थकी सी होइ कें काहू प्रकार को अभिमान रूपी ढिठाई चित्त में रहै ही नाँइ है। जगत में सबन सों मन कूँ ऐसो निठुर करि देवें हैं, जो काहू में बिस्वास नाँइ रहै है। बिनने एकमात्र परम आनंदकंद श्रीस्वामीजी महाराज की सरन ही जाइबो सुहावै है। ऐसे श्रीबिहारीदास अपने प्रभु के श्रीचरनकमलन के सनमुख होइ, परिचय पाइ-पाइ कैं, अति अगाध सुख सों जीवें हैं।

खाँन पाँन की विपति न मांनत संपति स्यामतमाल।
सुभग सरीरैं अरुझी देखों सरस बेलि नव बाल॥
सुंदर बर राजत निकुंज ग्रह नित निज जन प्रतिपाल।
जा काहू उतकर्ष न भावत प्रतिकूलनि उर साल॥
कोउ पूजैं देव-पितर बोलत लरिकनि सों कहि लाल।
सबदिन जात मल्हावत पतितनि बिना विवेक बेहाल॥

आस करत नीरस जनन को चितवत नव-नव ख्याल।
संधि न सूझत जो घत बूझत परम विषै विष व्याल॥
स्याम सिंघ के बलहिं न जानत मानत स्वाँन सृगाल।
श्रीबिहारीदास निर्भै भजि हरि-पद छाँडि सबै जंजाल॥११७॥

अद्‌भुत संपत्ति स्वरूप स्याम तमाल लाल सों लपटी भई अति सुन्दर, सरस रसीली कनकबेलि नव बाल श्रीस्वामिनीजू कूँ सतत निहारिबे के कारण मोकूँ खान-पान की हू कोई बिपत्ति नाँइ मालुम परै है। ऐसे अति श्रेष्ट, सुन्दर बर श्रीजुगल, श्रीवृन्दाबन नवनिकुंज मन्दिर में, निज जनन कूँ समस्त रीतिभाँति सों प्रतिपालन करते भये नित नव सुसोभित रहैं हैं। हमारो या प्रकार कौ सर्वोपरि उत्कर्ष जा काहू ने नाँइ भावै है, बिन प्रतिकूलन के हृदय में सतत साल हुयो करै है। ये बेचारे तो कोऊ देव-पितरन कूँ ही पूजै हैं, कोऊ अपने लरिकान कूँ ही लाल कहि-कहि कें दुलार कियो करैं हैं। ऐसे पतित बिना विवेक कें संतान कें ही लालन-पालन में बेहाल होइ, नीरस-जनन की ही आसा करि-करि नये-नये ख्यालन ते बिनें रिझायो करैं हैं। ये लोग श्रीभगवत स्वरूप ते संबंध-सुख, एवं दुखदाई मायिक संबंधन के मर्म कूँ नाँइ समझिबे के कारन परम जहर सदृस बिषय रूपी व्याल के संग ही खेलते रहैं हैं। सिंह सदृस श्रीबिहारीजी महाराज के बल कूँ नाँइ समझि, श्वान-शृंगाल-सदृश छुद्र देव-पितरन कूँ ही मनायो करैं हैं। याते हे बिहारीदास! मैं तुमसों कहूँ हूँ कि इन यावत जंजालन कूँ त्यागि, सब सों निर्भय होइ, एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज को ही भजन करौ।

हरि मोंहिं यों अपनाय लियो।
जहाँ जहाँ बिघन जान्यौ अपनें कों तहाँ तहाँ जतन कियो॥
हौं तौ पतित अपराधी अतिसै कृपा कटाक्षि जियौ।
श्रीबिहारीदास प्रभु अति करुनामय प्रगट प्रसाद दियौ॥११८॥

श्रीहरि ने या प्रकार ते अपनो बनाइ लीन्यौ है कि मेरे ताईं जहाँ-जहाँ बिघ्न बाधा जानी, तहाँ-तहाँ ही आपने मेरी रक्षा कीनी। मो सरीखे अति पतित, अपराधी कूँ अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा जिवाइ लीन्यौ। अति करुनासागर श्रीबिहारीजी महाराज ने ये प्रगट कृपारूपी महाप्रसाद मोकूँ दीन्यौ है।

तुम तजि कौंन सुखनि कौ दाता ।
सबै स्वारथी सहाइ न कोऊ बंधु - पिता - सुत - माता ।।
तुम निरपेक्ष निबाहत सब दिन पूरन त्रिभुवन ताता ।
तुम से प्रभु तजि अनत करत रति ते पसु प्राननि-घाता ।।
तुम उदार सुकुमार सहज सुंदरवर मुरि मुसिकाता ।
श्रीबिहारीदास छवि निरखि मनोहर गौर-स्याम रँग राता ।।११९।।

श्रीबिहारीजी महाराज सों हीं प्रार्थना करते भये आप बोले कि हे प्राननाथ ! आपके अतिरिक्त, अद्‌भुत-अगाध सर्वोपरि सुख कूँ देबे वारो जगत में और कोऊ नाँय है । माता-पिता, भाई-बंधु, सुत आदि एकमात्र सब स्वारथ के ही संगी हैं । त्रिभुवन के सदाकाल, एकरस रक्षक, अति निरपेक्षता तें सतत आप सद्दस निभाइबेवारे, सर्वोपरि परम दयालु स्वामी कूँ छाँड़ि कें, जो लोग औरन ते प्रेम करैं हैं, वे पशु एकमात्र अपने प्राननि कूँ ही घात करि रहैं हैं ।

आप दोऊ परम सुकुमार, समस्त उदारन के सिरमौर, सुन्दरता की सीवाँ, अति सरस रसीले रंग तें भरे भये सतत मुरि-मुरि कें परस्पर मुस्कराते रहौ हौ, हे बिहारीदास ! ऐसे अद्‌भुत श्रीजुगल कूँ आँख भरि-भरि, निहारि-निहारि बिनके ही रंग में सदाकाल रंगे रहौ ।

सुनि मन आपनों परसंग ।
एक मन एकै मनोहर एक लगौना रंग ।।
एक मन में सवा मन सों होत हीं रस भंग ।
द्वै भये दस भये पहिलैं सौ भये सहसंग ।।
पर्‌यौ तरल-तमाल तृष्ना सबै हलायौ अंग ।
नैन बैंन श्रवन प्राँननि एक मन करि मंग ।।
श्रीबिहारीदास विचारि सुख भयौ एक ही में पंग ।।१२०।।

अपने मन सों हीं समझाते भये आप कहैं हैं कि हे भाई ! एक ही तो तू हमारे पास मन है, और एक ही महा मनोहर गौर-स्याम छवि-छटा को लगौना रंग है, याते तू यदि नेक हू और कछु मिलाय लेवैगो तो सब रस भंग है जायगो । एक ते दो होइबे ते फिर द्वै-ते दश, दश-ते शत-सहस्र ऐसे ही होते चले जायंगें, तू ऐसी तरल

तमाल सदृस तृष्णा में परि जाइगो, जासों तेरो अंग-अंग, रोम-रोम हिल जायगो।

याते तुम अपने नैंन, बैंन, श्रवन, प्रान, मन सबन कूँ एक ही श्रीबिहारीजी महाराज में निमग्न करि देओ। हम समस्त रीति-भाँति सों बिचार-बिचारि कें बिनके ही रंग-सुख में पंगु है गये हैं।

जिनकें लाग्यौ हरि-रस-रंग।
तिनकें प्रगट देखियत हरि अनुराग अभंग॥
बिसरि गये संसार सहजहीं करत न संग्रह संग।
श्रीबिहारीदास दरसत ही मुख छबि भई मनसा मति पंग॥१२१॥

जिन बड़भागी जनन के मन में श्रीबिहारीजी महाराज के रस कौ रंग लगि गयौ है, बिनकें आपको अभंग अनुराग प्रगट दीखन लगै है। यावत संसार-सुख सहज में ही बिसरि, वे कोई संग-संग्रह, नाँइ करैं हैं। ऐसे श्रीबिहारीदासन के श्रीमुख छबि कूँ निरखत खेम मन-मनसा, बुद्धि सब पंगु है जाँइ हैं।

हरि मोहिं कहत कछू कहि आवै।
तुम्हरी कथा अगाध-सिंधु हरि को तरि पारहि पावै॥
बुधि विवेक बल बिना जीव को धमकि धार पर धावै।
दस दिसि सावधान अपने कृत माया चितहि गिरावै॥
जो जिहि दाय-उपाय होत बस तिहि रूप भिलि गावै।
बच्यौ न चंद्र इंद्र ब्रह्मा तिनहूँ बिन तार नचावै॥
इती मर्जाद उलंघि कै को निकट राज के आवै।
राख्यौ सरन श्रीबिहारीदास श्रीहरिदास कृपा-दुलरावै॥१२२॥

फिर आप श्रीहरि सों ही कहै हैं कि हे प्राननाथ! आपकी कथा एवं चरित्र इतेक अगाध समुद्र सदृस हैं, जिनकूँ न तो कोऊ तरि ही सकै है, और न कोऊ पार ही पाय सकै है। मोपै हू कछु ते कछु ही कहिबे में आवै है। या बेचारे जीव के पास तो बुद्धि, विवेक, बल कछु नाँइ होइबे के कारन धमकि-धमकि कें मायारूपी नदी की धार में ही धायौ करै है। यद्यपि यह अपनी चेष्टा द्वारा समस्त ओर तें सावधान हू रहै है, तौहू माया याके चित्त कूँ गिराइ देवै है। जिन-जिन दाव-उपायन सों ये जीव बस में आवै, वही रूप बनि कें आपकी माया आय जाइ है। साधारन जीवन की तौ

कहा चलाई ? चन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े दिग्गजन कूँ हू ये बिना तार नचायौ करै है, फिर माया की इतेक बिकट सीमा कूँ उलंघि कें आपके निकट कौन आइ सकै है। श्रीस्वामीजी महाराज ने अपनी निरहेतुक कृपा ते मोकूँ सरन में राखि लीन्यौ, याते हम सतत आपके नये-नये दुलार कियौ करें हैं।

मेरें उदिम कौन करै।
जाकौ मन हरि लियौ बिहारिनि ताहि सबै बिसरै ॥
बुद्धि विचार कियो बलकें उतहीं अहंकार ढरै।
दियौ वित श्रीहरिदास कियौ हित चितवत चित न टरै ॥
गावत प्रियहिं लडावत आवत गहिवरि हियौ भरै।
पावत महाप्रसाद प्रेम भर कर तें कौर गिरै ॥
जागत सोवत सुख मुख जोवत सपनें हूँ न सरै।
हरि - रस - वस आलसी अधम कोऊ जिन दोष धरै ॥
अनमाँग्यौ आगें आवत अनभाँवतौ गरें परै।
अज्ञा मानि लेत मांथे धरि देत जु समझि थरै ॥
विधि - निषेध अरु कर्म - धर्म कौं फटकै खेह खरै।
श्रीबिहारीदास विस्वास बढ्यौ मन निधरक बन बिहरै ॥१२३

आप आश्रितन ते बोले कि अब हम साधनन के उद्यम काहे कूँ करें, जिनको मन साक्षात श्रीनित्यबिहारिनीजू ने हरन करि लीन्यौ है, तिनके सब साधन सहज बिसरि जाँइ हैं। जो लोग अपने मन-बुद्धि-बिचार-बल द्वारा साधनन कूँ करें हैं, वे अहंकार माऊँ ढरि जाइ हैं। हमें श्रीस्वामीजी महाराज नें बड़े हित करिकें ऐसो प्रेम रूपी वित्त दै दीन्यो है, जोकि बिनके माऊँ निहारते-निहारते कबहूँ चित्त टरै ही नाँइ है। श्रीनित्यविहारिनीजू कूँ लड़ाइ-लड़ाइ, गामते भये हमारो हृदय ऐसौ भरि आवै है कि महाप्रसाद पाते समय हू कर ते कौर गिरि जाय है। जागते-सोमते अद्भुत सुख भरे श्रीमुखचन्द्रन कूँ जोवते रहैं हैं, और तो और स्वप्न में हूँ देखते-देखते हमारो मन नाँइ भरै है। श्रीहरि के रस-बस आलसी ह्वैबे के कारण हमसों यदि काहू को सन्मान नाँइ बनै तो मैं प्रार्थना करूँ हूँ कि मोकूँ कोऊ दोष मति दीजो। यदि कोई ये बात कहै कि भोजन के ताईं तो आपने उद्योग करनो ही परतो होइगो, ता लक्ष्य सों आप बोले कि बिना ही माँगे इतेक आगे आइ जाइ है, जाकूँ हम पाइ

हूँ नाँइ सकैं हैं। बड़ेन की आज्ञा कूँ सन्मान पूर्वक अपने माथा पै धारन करते भये निज अनन्यधर्म अनुसारही कार्यन कूँ हम करैं हैं। बिधि-निषेध एवं कर्म-धर्म आदिकन कूँ तो हमने फटकि-फटकि कें भक्तिरूपी कन कूँ निकारि खरचौ करि लीन्यौ है। हे बिहारीदास ! हमारे मन में बिस्वास बढ़िबे के कारन निधरक श्रीवृन्दावन में सतत बिहरैं हैं।

जो कोउ बानिक करै कोटिक तौ या ब्रत तें न टरों।
आज्ञाकारी दास बिहारी रुख लै सुख संचरों।
कुञ्ज-महल की टहल निरंतर अंग-अंग परनि परों।
जोहन मिथुन महामोहन की नैंननि रूप भरों॥
श्रवन सुजस नासा स्त्रक चंदन सब संताप हरौं।
चरन चपल बागौ कर बीरा नए नए काज सरौं॥
करि निज प्रीति सजातिन सों मिलि अंग अंग अंक भरौं।
माथे श्रीहरिदास चरन रज सोई लै तिलक करौं॥
महाप्रसाद स्वाद रसना गुन गाऊँ बन विचरौं।
यह जिय कृपा बिचारि चतुर चित इत सुख सहज ढरौं॥
यह वासना टरौ जिन कबहूँ जो सत जन्म धरौं।
सुनि सुजान रति-दान प्रिया हित नित निरभै न डरौं॥१२४॥

अपने अनन्यता के दृढ़ब्रत कूँ प्रकाश करते भये आपने कथन कियौ कि यदि कोऊ कोटिक प्रकार के बानिक बनाइ-बनाइ कें हमारे आगे धरैं, तौहू हम अपने अनन्य व्रत तें टरिबेवारे नाँइ हैं। श्रीस्वामीजी महाराज की आज्ञा में सतत चलि, श्रीबिहारी-बिहारिनी जू की रुख-अनुसार हम सुख कूँ संचय कियो करैं हैं। श्रीजुगल के अंग-अंग की प्रेम-नदी में निरन्तर परचौ भयौ, एकमात्र श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर की ही टहल हम कियौ करैं हैं। अद्भुत प्रेम-बिलासी महामोहन श्रीजुगल की परस्पर रंगभरी देखन के विचित्र रूप कूँ अपने नैंननि में सतत भरूँ हूँ। श्रवननि तें बिनके सर्वोपरि रस-जसन कूँ सुनि, नासिका ते बिनकी प्रसादी चंदन-माला आदि कूँ सूँघि, समस्त संतापन कूँ हम दूर करि देवैं हैं। पाँयन ते बिनकी सेवा में बड़ी चप-लता ते चलि, हाथनि तें बागौ, शृंगार आदि कूँ सजाय, श्रीमुख में बीरा अरोगबाय, ऐसे नये-नये सेवा कार्यन कूँ सतत बड़ी उमँग तें कियो करूँ हूँ। अपने सजातीय

उपासकन ते निज प्रीति करि, अंग-अंग सों मिलि, अंक भरूँ हूँ। श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरनकमलन की रज सदाकाल हमारे माथे पै बिराजै है, वाको ही मैं तिलक करूँ हूँ। रसना ते महाप्रसाद के अद्भुत स्वाद लै-लैकें, तथा बिनके गुन गाइ-गाइ कें निरन्तर श्रीवृन्दावन में बिचरूँ हूँ। इन अद्भुत कृपा-गुनन कूं अपने मन में बड़ी चतुराई तें बिचारि-बिचारि, याही सुख माऊँ सहज ढरचौ रहूँ हूँ। मैं आपसों यही प्रार्थना करूँ हूँ कि यदि मेरे शत-शत जन्म क्यों न होंइ, तौहू मेरी ये बासना कैसे हू कबहूँ नाँइ टरियो। हे सुघर, सुजान, सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज ! ऐसो प्रेम-दान कृपा करि कें मोकूं देओ, जो निर्भय-निडर होइ श्रीप्रियाजू सों नित-नित, नव-नव हित करतो रहूँ।

करुवे कामरि सों रति मति कब ह्वै हैं या गति जोग।
जमुना कूल कदम्ब कुंज ग्रह बन बसि मेटौं सोग॥
चना चबेना छाछ जमुनजल पत्र पुष्प फल भोग।
तिनकें आगें ऐसे सुनियत खटरस फीके फोग॥
अटल निहाल करौ जिन ऐसे ज्यौं डहकाये लोग।
बिषै बासना हरौ सासना बहुत जन्म कौ रोग॥
परयौ रहूँ द्वारैं दुलराऊँ गाऊँ प्रेम प्रयोग।
श्रीबिहारीदास प्रभु अबँ यह औसर बन्यौ है सरन संजोग॥१२५॥

श्रीस्वामीजी महाराज ते प्रार्थना करते भये आपने और हू कह्यौ कि हे प्राननाथ ! या प्रकार की गति-जोग बनाइबे की कृपा मोपै आप कब करौगे कि मैं करुवा-गूदरी की रहनी में रत-मत होइ, श्रीजमुनाजी के किनारे कदमन की कुंज में बैठि, वृन्दावन वसतो भयो, अपने समस्त सोक-संतापन कूं भलीभाँति मिटाइ दऊँगो। चना-चबैना, छाछ एवं श्रीजमुना जल, पत्र, पुष्प, फल आदि जो कछु सहज प्राप्त होयगें, बिनके आगे ये सब षटरस पदार्थ फीके मालुम परैंगे। जैसे और लोग खान-पान के सुख-स्वादन में सतत डहकते डोलें हैं, ऐसे नाँइ डहकूं। आप या प्रकार की कृपा करो जो मैं अटल-अचल-निहाल है जाऊँ। मेरी समस्त बिषय-बासना एवं सासना आदि अनन्त जन्मन के रोग कूं भलीभाँति कब हटाइ देवोगे। हे प्रभो ! आपके सरन में आइबे कौ यह अति सुन्दर अवसर मोकूं प्राप्त है गयो है, याते अब मैं आपके द्वार पै परचौ-परचौ श्रीजुगल के प्रेम-प्रयोगन कूं सतत दुलराइ-दुलराइ कें

कब गायो करूँगो।

भैया हरिदास सदा भै हीन।
कर करुवो कामर काँधे धरि बाँधे कटि कोपीन ॥
बन बन रटत बिचारत आरत संतत स्याम अधीन।
पर्म नरम रस रीति लडावत गावत सुजस नवीन ॥
कर्म धर्म यों कहत बापुरे हम सेवक दिन दीन।
तिन सों को करि सकै बराबरि प्रकृति काल बल छीन ॥
पारसि करत परसि सतसंगहि प्रगटत गुन प्राचीन।
श्रीबिहारीदास निश्चें मन मान्यौ जांनि हरि हित कीन ॥१२६॥

मानो साधक के मन में यह चिंता भई कि या प्रकार की निष्किंचन रहनीं तें सदाकाल कछु न कछु चिन्ता बनी ही रहैगी, ताको लक्ष्य करिकें आप बोले कि–हे भाई ! हमारे श्रीस्वामीजी महाराज कर में करुवा, कटि में कोपीन, काँधे पै कामरी के अतिरिक्त और कछु नाँइ राखि कें समस्त रीति-भाँति सों निर्भय रहैं हैं। प्रेम में अति आरत होइ बन-बन में या प्रकार लाड़-लड़ाइबे कूँ विचार करते रहैं हैं, जासों साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज सतत आधीन बने रहैं हैं। परम नर्म निज रसरीति सों श्रीजुगल कूँ लड़ाइ-लड़ाइ कें नये-नये जसन कूँ सतत गायौ करें हैं। कर्म-धर्म आदिकन के करिबे की तो कहा चलाई, वे बेचारे स्वयं दीनातिदीन होइ, आपके सेवक बनें रहैं हैं। जिनके समक्ष प्रकृति एवं काल के समस्त बल छीन है रहे हैं, ऐसे अद्भुत, शक्तिसाली, सर्वसिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज की समता करि ही कौन सकै है ? जाकूँ आपके सत्संग को सहज नेक सपरस है जाय है, वाको पारस सदृश नित्यसिद्ध निज प्रेम को स्वरूप बनाय देवैं हैं। श्रीबिहारीजी महाराज की कृपा तें आपके इन अद्भुत गुनन कूँ हमारो मन निश्चय रूप सों मानि गयौ है।

कियो दुख सुख कौं निपटि निदांन।
खान पान पायें कत फूलत दिन दस भयौ दिवांन ॥
निवटि गयें बिललात बुरी गति यह अहमक अज्ञांन।
बहुर्‍यौ उदिम करत निलज ह्वै घर घर भटकि गुमांन ॥
तृष्ना तिनहीं के दारिदु दिन संतोषी धनवांन।
श्रीबिहारीदास सेवत सुख पायौ साखि सु प्रगट प्रमांन ॥१२७॥

साधक समाज सों उपदेस करते भये आप बोले कि–हे भाई ! दुख-सुख के स्वरूप कूँ हमने भलीभाँति निदान करि लीन्यौ है। जो लोग थोरे दिन के ताईं ऊँचौ पद, एवं खान-पान, मान-सन्मान आदि मायिक धन-संपति पाइ कें अपने मन में जो फूलै हैं, वे लोग एकमात्र अहमक, अज्ञानी ही हैं, फिर ये निर्लज्ज वाके चले जाइबे ते बुरी रीति सों बिललाय, वाही की प्राप्ति के ताईं घर-घर भटकते भये डोलें हैं। इन लोगन कूँ ये ज्ञान नाँइ है कि जिनके मन में तृष्णा लगि रही है, वे ही दारिद्री होइ हैं, संतोषी ही साँचे धनवान होय हैं। या सम्बन्ध में अपनो ही प्रमान दैकें आप बोले कि–जब सों हम संतोष कूँ संग्रह करिबे लग गये हैं, तब सों ही समस्त रीतिभाँति सों सुखी होते चले जा रहैं हैं।

मेरे बल बाँके बिरदैत कौ।
हेट हेट को जपत बार दिन भक्त बतसल बानैत कौ।।
आवत इन्द्र अचाहीं बिचर्यौ दल बादल अमरैत कौ।
कृत्या कियो जर्यौ आपुन हीं मान मर्यौ बँभनैत कौ।।
दुष्ट भक्त कौ द्रोह कियौ हरि उदर विदार्यौ दैत कौ।
जिनके ऐसो खसम सहायक कहा खुसै अरि सैंत कौ।।
रसिक अनन्य बाँह गहि राख्यौ आदर करि करि खेत कौ।
साँचौ गर्व बिहारीदासै अधिक बिहारनि केत कौ।।१२८।।

जिनको सदाकाल ते अति सर्वोपरि बाँकों विरद, एवं भक्तवत्सलता को बानो है, बिनको ही हमारे बल है। फिर बेर-बेर वार, तिथि, दिन तथा ग्रह, ग्रहन, सगुन-असगुन आदिकन कूँ काहे कूँ हम मनाते डोलें। देखो ! श्रीव्रज कूँ डुबाइबे के ताईं इन्द्र कितेक प्रलयकारी दल-बादलन कूँ सजाइ के लायो, किन्तु आपने ऐसी रक्षा कीनी, जो कि श्रीव्रजमण्डल को बाल हू बाँकौ नाँइ भयो। ऐसे ही परम भागवत श्रीअंबरीषजी पै, महर्षि दुर्बासा ने कोप करि कृत्या चलाई, किन्तु बेचारे आप ही अपने महर्षिपने के अभिमान कूँ खोइ, रक्षा के ताईं ठौर-ठौर भटके। अंत में श्रीअंब-रीषजी महाराज के चरणारविन्द की शरन आइबे पै ही प्रान बचे। याही भाँति भक्तराज श्रीप्रह्लादजी ते द्रोह करिबे के कारन साक्षात श्रीहरि ने नृसिंह स्वरूप धारन करि, दुष्ट हिरनाकुश के उदर कूँ फारि, अपने जन की रक्षा कीनी। सर्वसमर्थ, सर्वोपरि सक्तिसाली कर्त्तुमकर्त्तुं; अन्यथाकर्त्तुं स्वयं श्रीहरि जिनके सहायक हैं, झूठ-

मूठ के द्रोह करिबेवारे बैरी बिनकूँ बिगारि ही कहा सकें हैं। इतेक हू नाँय, हमारो हाथ तो रसिक अनन्य-नृपति चूरामनि स्वयं श्रीस्वामीजी महाराज ने बड़ो लाड़-प्यार मय आदर करि-करि के पकरि राख्यौ है, याते हमें श्रीनित्यबिहारिनीजू के माऊँ को और हू अधिक बल-भरोसो है।

जब तें प्रभुहिं नवायौ माथ।
तब तें सुख ही में सुख दीनों लीनों गहि हरि हाथ॥
अज्ञा हीन दीन न भयौ पै तज्यौ न स्वामी साथ।
श्रीबिहारीदास चेरें सों राच्यौ सहज सनेही साथ॥१२९॥

हे भाई! जब तें हमने अपने प्रभु श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमलन में माथो नवायौ है, तब ते ही बिनने मोकूँ सुख में हू अति अद्भुत सुख दीने हैं। याहीं संबंध पै रीझि, श्रीबिहारीजी महाराज ने हमारो हाथ पकरि लीनौ है।

श्रीस्वामीजी महाराज की अगाध दया, करुना, ममता, उदारता कूँ मैं कैसे हू व्यक्त नाँइ करि सकूँ हूँ, क्योंकि मैं इतेक बहिर्मुख, जो कि न तो कबहूँ आपकी आज्ञा में ही चल्यौ, और न आपके आगे कबहूँ दीन हू भयौ, तौहू आपने मेरो संग छिनमात्र के ताईं हूँ कबहूँ नाँइ छाँड़्यौ। इतेक हू नाँइ मेरे सों दूलह सदृस अति लाड़-प्यार तें सतत आप राचे रहैं हैं।

सांचो सांचे के जिय भावै।
मन रंजन नैननि कौ अँजन जहाँ तहाँ दुलरावै॥
पूरे प्रेम निरन्तर रस ओछौ उतरु बनावै।
यद्यपि ढीठौ देत निलज ह्वै झूंठौ दृष्टि दुरावै॥
जैसे मूल कमल बसि दादुर आदर कबहुँ न पावै।
ता रस कौ अधिकारी मधुकर कोस सौक तें धावै॥
भीतर चेष्टा बाहर नेष्टा माटी धोय दिखावै।
हाँकि दियौ खर लादि भोर में परस अपरस कहावै।
खेलौ खूट खिजावत खसमें बांधें नेष्ठा नेम।
श्रीबिहारीदास ये फटकि पिछौरी सब थोथी बिनु प्रेम॥१३०॥

मानो आश्रित के मन में यह बिचार आयौ कि हमने हू श्रीस्वामीजी महाराज

के चरनन में माथो नवाइ राख्यौ है, पै आज ताऊँ ऐसे सुख ते सुखी कबहूँ नांइ भये, ताको लक्ष्य करिकें आपको कथन है कि जो जन तन, मन, प्रान, रोम-रोम तें साँचे अनन्य हैकें आपकी सरन आवें हैं, साँचे सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज के वे ही जन ऐसे मन भावें हैं कि जिनको आप अपने मन को रंजन एवं आँखिन को अंजन स्वरूप बनाइ, जहाँ-तहाँ दुलराइ-दुलराइ कें वाकी प्रसंसा कियो करें हैं। जिनके मन में सांचो पूरन प्रेम होइ है वे जन ऐसे भ्रम नांइ कियो करें हैं। ओछे प्रेमवारे ही बातन कूं बनाइ-बनाइ कें उत्तर दियौ करें हैं। यद्यपि निर्लज्ज होइ श्रीस्वामीजी महाराज के संबंध को दावो देवें हैं, किन्तु झूठे होइबे के कारन, समय पै आँख छुपाइ जाँइ हैं।

जैसे कमल की जड़ में ही रहिबेबारो मेंढक कमल के स्वरूप कूं नांइ समझै है, और भ्रमर कमल के रस को लोभी एवं अधिकारी होइबे के कारन सौ कोस ते हू धाइ के आवै है। ऐसें ही श्रीबिहारीजी महाराज के स्वरूप कूं नांइ समझिबे के कारन, जिन लोगन के हृदय में तो अनेक प्रकार की चेष्टा लगी रहै है, ऊपर तें नेष्टा दिखाइबे के ताईं देह रूपी माटी कूं धोइ, तिलक बनाइ, अपरसी होइ ऐसे आ जांय हैं जैसे काहू कूँ लादि, भीर में हाँकि दियौ जांइ, फिर वो हटो-हटो करतो चलै है। ऐसे खेला-खूंट सहस ऊपर की ही निष्ठा में बँधे भये अपने प्रभू कूं उल्टे ये खिझावें हैं।

साँचे श्रीबिहारीदासन ने प्रेम को आश्रय लै, प्रेमविहीन इन थोथी बातन कूं फटकि-फटकि कें निकारि दीन्यौ है।

प्रेम जो होय तौ रहै न छानों।
जदपि इत चलि जात विवस तन मन उतही तकि तानों॥
जोजन सहस अकास बसै ससि कुमुद उदै रति मानों।
तैसीये चौंप चकोर चंद की किरनें प्रान समानों॥
स्वाति बूंद चातक पिक पावस मोर गगन घहरानों।
ए सब साखि समझिबे कौं सुनि हित हितूनि हितानों॥
जिन सों प्रकृति विरोध न बनई ते धर्म विरोधी जानों।
दरस परस जस सुनत धुनत सिर हँसत वदन बिलखानों॥
रसिक अनन्य ते धन्य धर्म बल रहत गर्व गर्वानों।
श्रीबिहारीदास बलि बलि प्रेमिन पद राखत रज सिर सानों॥१३१॥

यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीबिहारीजी महाराज में हमारो तो बहुत घनो

प्रेम है, ताको लक्ष करि आपने कह्यौ कि — हे भाई ! यदि प्रेम काहू के मन, प्रान में होइ, वो कैसे हू छिप नाँइ सकै है। प्रेमी ने काहू कार्य में बिवस होइबे के कारन यदि देह सों इत-उत माऊँ जानो हू परै, तौहू वाकौ मन अपने प्रेमास्पद में ही खिच्यौ रहै है। जैसे हजार जोजन दूर आकास में चन्द्रमा बसै है, तौहू वाके उदय होत खेम, कुमुदिनी और चकोर अपने प्रान समान वाकी किरनन कूँ देखन लगे हैं। ऐसे ही स्वाती की बूंदके ताईं चातक, पावस रितुके ताईं पिक, तथा बादर की गरजन पै मोर सदा लालायित बनें रहैं हैं। ये सब उदाहरन प्रेममय अनुराग आसक्ति समझिबे के ताईं हमने कह्यौ है, किन्तु वास्तविक प्रेमी तो अपने प्रेमास्पद के हित के ताईं सतत अनुरागी हुयों रहै है। जो लोग अपने सुभाउ कूँ भलीभाँति जीति, प्रेमास्पद के सुभाउ सों अपने सुभाव कूँ नाँइ मिलाइ सकैं हैं, बिनकूँ प्रेमधर्म के विरोधी समझनो चहिये।

जगत प्रीति करि देखी नाहिने गटी कौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौं देखे प्रकृति विरोध बन्यौ नहिं कोऊ।।

यद्यपि बहुत से लोग दरस-परस हू करें हैं तथा जस हू सुनें हैं, किन्तु प्रेम के बिना सदाकाल अपने मूँड़ कूँ ही धुनते रहैं हैं, वे जन हँसते भये हू ऐसे मालुम परें हैं, मानो रोय रहे होंय ?

वे ही प्रेमी रसिक अनन्यजन धन्य-धन्य हैं, जो अपने प्रेम-धर्म-रूपी गर्व सों सतत गर्वीले हुए रहैं हैं, ऐसे प्रेमीन की हम बार-बार बलिहारी लै बिनके श्रीचरन-कमलन की रज में अपने माथा कूँ सतत लाग्यौ राखैं हैं।

मेरे बिषै बिसन वर वाम।
तन गोरी मन भोरी नवल किसोरी राधा नाम।।
निस बासर जागत सोवत चितवत अँग अँग अभिराम।
अंजन मंजन करत परम रुचि चोंप चौगुनी काम।।
ताको हिलगि तजे मैं अपने कर्म धर्म धन धाम।
दई पीठि सब जगतें लगतें पायौ बन विश्राम।।
यह छबि छुयें भयौ हों छुतिहा छांडि दिये दुख दाम।
लीनें अंक निसंक रहत नित सदा सुहागिलि स्याम।।
या रस बिनु सब निरस निरासा ज्यों पसु प्यासौ धाम।
श्रीबिहारीदास बिनु रांडै डहकें हाड लपेटे चाम।।१३२।।

सर्वोपरि प्रेमीन के चरनकमलन की रज के प्रताप तें मेरे प्रान और मन के विषै एवं बिसन सर्वसिरोमनि, सर्वश्रेष्ठ वर-बाम एकमात्र श्रीस्वामिनीजू ही है गई हैं, जिनकी छिन-छिन नव-नवायमान नवकिसोरता ते भरी, गौर छबिछटा है, तथा नवलकिसोरी, अति भोरी श्रीराधा जिनको नाम है। परम सुसोभित आपकी अंग-अंग माधुरी कूँ रातदिन सोते-जागते हम सतत निहारते रहैं हैं। मन की परम रुचि एवं चौगुनी चौंप-चाव सों बिनकी अंजन-मंजन आदि समस्त प्रकार की सेवा कूँ निरंतर करतो रहूँ हूँ। आपकी ही हिलग में अपने कर्म, धर्म, धन-धाम सब कछु त्यागि, यावत जगत सों पीठ दे, निजमहल श्रीवृन्दावन में हम सतत बिश्राम करें हैं। या छबि-छटा कूँ सपरस करि, छुतिहान की नाईं मैं सबन सों ऐसौ अलग है गयो हूँ कि- और-और सुख-स्वरूप धर्मन कूँ दुखदाई समझि, भलीभाँति छाँड़ि दीने हैं। याते परम सुहाग-सिरोमनि श्रीजुगल कूँ सदाकाल नित अपने अंक में अति निसंकता तें लिये रहैं हैं। इनके रस के अतिरिक्त और-और यावत रसन तें हम ऐसे अति निरास रहैं हैं जैसे काहू प्यासे पशु कूँ घाम में बाँधि दियो जाय, तब वो अति सुष्क, निरस है जाइ है। श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे दास हुए बिना जागतिक लोग चाम ते लिपटी भई हाड़-मांस की राँडन के माऊँ ही सतत डहकते रहैं हैं।

धर्मै को पारै बिनु धर्मी।
कहा कियौ पढि पढि अक्षर बिनु मन मत्सर मति भर्मी॥
विमुखनि कौ जल अन्न अभख भखि बढ्यौ विरोध विकर्मी।
याही तें लरि-लरि मरत जरत जुर त्रिविध दोष गुन गर्मी॥
कूर कृपन मन कुटिल कुटेढे कहाँ नेह निजु नर्मी।
भक्ति न सूझत विमुखनि बूझत चक्षु चोंधरे चर्मी॥
कहूँ कहूँ सुकृती सेवत निकुंज महल निजु मर्मी।
श्रीबिहारीदास साहस जिन छांडौं स्वांग लजै बेसर्मी॥१३३॥

याते आपने स्पष्ट कह्यौ कि हे भाई! प्रेमी प्रान कौ धर्मी हुए बिना प्रेम धर्म कूँ कोऊ नाँइ पालन करि सकै है। क्योंकि अक्षर स्वरूप प्रेम तत्व के पढ़े बिना और-और धर्मन कूँ पढ़िवे तें मन में मत्सरता एवं मति में भ्रम ही बढ़ि जाइ है। ऐसे लोग बिमुखन कौ अन्न-जल खाइ-खाइ कें बिकर्मी होइ परस्पर विरोध बढ़ाइ लेवैं हैं। याही ते लरि-लरि कें ऐसे जरैं-मरैं हैं, जैसे त्रिदोष ज्वर में गुनन की गर्मी बढ़िबे ते-

जलन है जाय है। ये समझिबेकी बात है कहाँ तौ कूर, कृपन, कुटिल कुटेढ़ो स्वभावको मन, कहाँ सर्वोपरि प्रेममय निज रसरीति कौ नर्म-कोमल नेह, बिनकी आँखिन पै तो चौंधरो चर्म चढ़ि जाइबेते सुद्ध भक्ति हू इन्हें नाँइ सूझै है, ताते विमुखन के घर-द्वारन पै ही बूझते-जूझते डोलै हैं।

श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर के रस कूँ सेइबेवारे मर्मी महा बड़भागी-सुकृति जन कहूँ-कहूँ ही विरले मिलैं हैं। याते हे बिहारीदास ! तुम अपने साहस कूँ कबहूँ नाँइ छाड़ि कें निज धर्म में सतत अडिग बने रहौ, अन्यथा तुम्हारे वेष कूँ हूँ लज्जा होइगी, तथा तुमने हूँ लोग धिक्कारेंगे। - - - - - -

* गोपिन के विरह कौ अंग *

रंगीली क्यों बिसरति बतियाँ।
रतिपति रस वस भये परस्पर लिखी सुहस्त छतियाँ।
उनही अंकनि प्रान रहत पै करत काम खतियाँ।
वर विषु घोरि पिवायौ होतौ अनहित कत हतियाँ।।
स्याम सनेह विसार सखी सुनि कागद की पतियाँ।
श्रीबिहारीदास प्रभु बहुरि सुमिरि हैं सुखद सरद की रतियाँ।।१३४।।

श्रीब्रज रस देस के विरह के स्वरूप कूँ दिखाते भये आपने कह्यौ कि लाल के विरह में अति विवस होइ श्रीस्वामिनीजू सखी सों कहिबे लगीं कि हे सखी ! वा प्रानप्यारे की रंग ते भरी रंगीली बातें हृदय तें कैसे हू नाँइ बिसरें हैं। जब हम दोऊ परस्पर प्रेम रस में बिवस हे, तब बिनने अपने श्रीहस्तकमलन ते मेरे हृदय पै कछु अंक लिखे हे, एकमात्र विन अंकन के सहारा ते ही मेरे प्रान रहि रहे हैं, किन्तु वे अंक मेरे हृदय में काम-प्रेम-रस निरंतर उपजाते रहैं हैं। बिनकी प्रेम-रसभरी छबि-छटा, रंगभरी रसीली बातें, तथा प्रेमभरी अनेक क्रियायें चित्त कूँ सतत अति व्यथित करें हैं। या प्रकार हमारे प्रानन कूँ हतिबे ते तो वे बिष घोर के पिवाय देते तो अच्छो होतो। सखि ! मालुम परै है कि बिनने हमसों स्नेह ही बिसारि दीन्यौ है, क्योंकि प्रेम के व्यवहार में हू, वे कागद की चिट्ठी भेजें हैं ? श्रीस्वामिनीजू की अति व्यथित स्थिति कूँ देखि, सांत्वना दिसामती भई सखी बोली कि हे प्यारीजू ! देखो, वे प्रानप्यारे सरद-रात्रि के सुखन कूँ कबहूँ न कबहूँ फिर हू याद करेंगे।

हरि बिनु क्यों राखौं ए प्रान ।
लागत नैंन निमेष जिते सखि बीतत कलप समान ।।
हों बलहीन भई समझावति मानत सपत न आन ।
जानति हों छुटि जैहैं तन तव सुमिरत बैंनु बखान ।।
रटई रहत कहत कब मिलि हैं अवधि बीच नियरान ।
श्रीबिहारीदास प्रभु बिरहिन कौ दुख मिलि मेटौ स्याम सुजान ।।१३५।।

फिर आप सखी सों अति कातर ह्वै कहिबे लगीं कि हे सखी ! वा प्रानप्यारे के बिना अपने प्रानन कूँ मैं काहे कूँ राखूँ ? एक-एक निमिष मोकूँ एक-एक कलप के समान बीत रह्यौ है । इन प्रानन कूँ मैं समझाते-समझाते अति बलहीन है गई हूँ । कितेक हू सौगंध खाइ-खाइ कें इन्हें समझाऊँ हूँ, तौहू ये नाँइ मान रहैं हैं । याते मैं भलीभाँति जानूँ हूँ कि वा प्रानप्यारे के बैंन बजाइबे के सुख कूँ याद करत खेम यह मेरो तन अवश्य छूटि जाइगो । बिनके मिलिबे की अवधि छिन-छिन रटती भई, अपने प्रानन कूँ समझाती रहूँ हूँ कि अब तो आपके आइबे को समय निकट ही आय गयो है । श्रीस्वामिनीजू की इतेक अगाध विरह-व्यथा कूँ देखि, श्रीगुरुदेवजू बोले कि हे सुजान-सिरोमनि प्रभु ! इन बिरहिन के दुखन कूँ आप मिलि के शीघ्र ते शीघ्र मिटाइ देवो ।

बिहारी बानिक की बलि जाँउ ।
निस दिन रूप मनोहर नैंननि अवलोकत न अघाँउ ।।
लिये रहों रुख निकट एकटक भूलि न अब अलसाँउ ।
छिन छिन गनौं कृपन के धन लों धरौं हृदै करि ठाँउ ।।
अबहूँ कबहूँ काहू लालै परसत हूँ न पतियाँउ ।
बहुर्यौ वचन वियोग जिन कहौ यह भै डरनि डराँउ ।।
तुम सों जोरि तोरि सब सौं मन नेंकु न सकुच लजाँउ ।
श्रीबिहारिनिदासि भई दुलराऊँ गुन गाऊँ लै लै नाँउ ।।१३६।।

यद्यपि साधकन कूँ सर्वोपरि नित्यबिहार रस एवं ब्रज रस देस के अति बिसाल भेद कूँ स्पष्ट दरसाइबे के ताईं उपरोक्त दो पदन में श्रीब्रज के विरह कौ स्वरूप आपकूँ बर्नन करनो परचौ, किन्तु श्रीगुरुदेवजू कौ हृदयकमल पर्म-नर्म रस-रीतिमय सुकोमल होइबे के कारन, अति व्यथित ह्वै उठचौ, ताते कहिबे लगे कि मैं

तो महा-सरस-रसीलो, अविच्छिन, नित्य एकरस संयोगात्मक विहार रूपी बानिक पै ही अपने तन, मन, प्रान सर्वस्व न्यौछावर करूँ हूँ। आपके ही अति विचित्र मनोहर रूप कूँ नैनन तें निहारि-निहारि कबहूँ नाँइ अघाऊँ हूँ। भलीभाँति आलस कूँ त्यागि, आपके ही अति निकट में रहि, इकटक रुख लियें सतत लाड़ लड़ायो करूँ। अपनी या अद्भुत निधि कूँ, अति कृपन की नाईं छिन-छिन गिनतो भयौ हृदय में धारन करि के राखूँ। अब मैं काहू लालच में नाँइ परि कें, और-और स्वरूपन कूँ सपरस करते भये हू नाँइ पत्याऊँगो। इतेक हू नाँय-कोऊ भूलि में हू वियोग बचन नाँइ कहि देवै, या डर ते मैं बहुत ही डर रह्यौ हूँ। हे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू! सबसों तोरि कें, आपसों ही जोरिबे में काहू ते मैं नेकहू लज्जा-संकोच नाँइ करूँगो। आपकी निजदासी भयो, आपके ही अति सरस-रसीले नाम-गुन एवं जसन कूँ दुलराइ-दुलराइ कें सतत गायौ करूँगो।

साँचे प्रेम को गुरु गोपी।
सबै निसंक चली हरि सनमुख लै अपने उर ओपी॥
सुत पति परिहरि मन न कछू धरि बरजत क्रोध न कोपी।
मेंटि मिली मरजाद लाज जे लोक वेद आरोपी॥
मगन भई सुन्दर सरूप सुख सब वासना अलोपी।
श्रीबिहारीदास रस रमी स्याम संग सब बाधिकन दै धोपी॥१३७॥

साँचे प्रेम को सहज सुभाउ ही ऐसो होइ है कि अपने प्रेमास्पद के अतिरिक्त लोक-वेद की दृढ़ मर्यादान कूँ, बिना ही सोच-बिचारें तिनका की नाईं तोरि, अपने प्रेमी के अनुराग में धाइ-धाइ के वो चल्यौ करै है। या प्रेम कूँ आचरण द्वारा साँचो उपदेस करिबेवारी जगत में एकमात्र साक्षात श्रीब्रजसुन्दरी ही हैं, जिनने मुरलीनाद सुनि, अपने हृदय में श्रीमुरलीधरन कूँ धरि, अति निसंकता पूर्वक बिनके ही सन्मुख वाही छिन चल परीं। पति, पुत्र, स्वजन आदि सबन कूँ त्यागि, मन में कछु बिचार नाँइ करि, घरवारेन के क्रोध ते भरे बरजिबे की हू अवहेलना करती भईं, बिना ही काहू प्रकार को रोष किये श्रीवृन्दावन के माऊँ या प्रकार ते धाइ कैं चलीं, जैसे नदी उमड़ि-उमड़ि कें समुद्र के माऊँ जाँय हैं। लोक-वेद ने जितेक लाज और धर्म की मर्यादा बनाइ राखी ही, तिन सबन कूँ भलीभाँति मेटि, यावत बासनान कूँ नष्ट करि, समस्त बाधकन कूँ धक्का दै, अपने परमकमनीय, त्रिभुवन मोहन, प्रानजीवन, स्याम-

सुंदर स्वरूप रस में जाय रमन कीनौ।

* श्रीव्रज संयोग-रस कौ अंग *

आजु क्यौं मरगजी उरमाल।
देखिये विमल कमल नयन जुगल लगत न पलक प्रवाल ।।
अति अरसात जँभात रसमसे रस छाके नव बाल।
अधर माधुरी के गुन जानत बनत न वचन रस ढाल ।।
फबे न पेच सुदृढ़ सिथिल अलक विगलित कुसुम गुलाल।
परत न कछू सँभार सुभग अंग डगमगात पग चाल ।।
बिबस पर्यौ तन मन अपनैं रग पग भूषन जुत भाल।
साखि देत सब प्रगट पिसुन तन काहे कौं दुरवत लाल ।।
अब कछु समझि सयान बनावत बातें रचित रसाल।
श्रीबिहारीदास पिय प्रेम प्रिया बस बसे हैं कुंज निसि ख्याल ।।१३८।।

फिर आप श्रीब्रज रस-देस के संयोगात्मक स्वरूप कूँ दरसाते भये बोले कि– एक समय श्रीलालजू श्रीवृन्दावन कुंज में मिलिबे को संकेत प्यारीजू ते करि कें हू, काहू और सखी के घर चले गये। बड़े भोर जब आप प्यारीजू के पास आये, तब आप बोलीं कि हे प्रानप्यारे ! आपकी बनमाला आज कैसे मिड़ि रही है, अति उज्ज्वल नेत्रकमल अरुन ह्वै, पलक हू नाँइ लगाय रहैं हैं। मानो काहू नव बाल के रस में छके भये अति आलस में भरि, जँभाई लै-लैकें रस में रसमसाय रहैं हैं। आपके श्रीअधरोष्ठ वा अद्भुत माधुरी के गुनन कूँ भलीभाँति जानिबे के कारन नीकी रस-ढार सों बचन हूँ बिनपै बोलिबे में नाँइ आइ रहैं हैं। पाग के पेंच सिथिल होइबे तें भलीभाँति नाँइ फबि रहे हैं और अलकावलीन ते फूलहू झर रहे हैं। श्रीअंगन की सम्हार नाँइ होइबे ते चरनकमल डगमगाइ कें परि रहें हैं। तन, मन इतेक बिबस होय, तहाँ लग्यौ है कि जासों बिनके पग के भूषण कौ रंग आपके भाल पै लगि रह्यौ है। इतेक व्यंगात्मक बचन प्यारीजू के श्रीमुख सों सुनि, मानो श्रीलालजू सब बातन को कछु और ही बनाइ-बनाइ के उत्तर दैबे लगे, तब आप बोलीं कि हे प्रानप्यारे ! आपकौ समस्त अंग स्पष्ट साक्षी दै रह्यौ है, फिर आप काहे कूँ मोते छुपाय, चतुराईभरी रसाल बातन कूँ करि रहे हो। हम भलीभाँति जान पाईं हैं कि हे प्यारे ! अपनी प्रानप्यारी के प्रेम में बिबस होइ, सब निशि आप कुंज में बिनके संग खेले हो।

जानति हैं हम बतियाँ भोरी।
जिन के छल बल रस बस रहत स्याम तुम ते हम उनमाने थोरी थोरी।।
हमरैं सरल सुभाइ सरल मति तुम छल करि बहु भांति निहोरी।
हम सों कपट रहत नटनागर चित चोर्यौ नवनागरि गोरी।।
रगमगे नैंन बैंन मधुरेई मन हरत रँगे कुमकुम रस रोरी।
श्रीबिहारिनिदासि बलि बलि सुंदर वर प्रेम प्रगट कीनी सब चोरी।।१३९।।

तू बातैं बहुत बनावत बानि।
हम न कहैं मुख देखी कबहूँ काहू की करि कानि।।
अब न रहि है स्याम या ब्रज में काहू सों पहिचानि।
सुनि सुंदरि तेरे रूप मोहनी सब टोंननि की खानि।।
अति प्रवीन आधीन किये तैं मन मिलयौ पै पानि।
श्रीबिहारीदास क्यौं दुरति दुराई प्रीति विदित जग जानि।।१४०।।

फिर दूसरी सखी कहिबे लगी कि हे प्रानप्यारे ! आपकी भोरी-भोरी बातन कूँ हम सब जानें हैं, छल-बल करि जिनके रस-बस आप है रहे हौ, बिनकौ हू हमने थोरो-थोरो अनुमानं करि लीनौ है। हमारे तो सदाकाल सरल सुभाउ, सरलमति रहै है, और आप छल-बल द्वारा नाना भाँति तें निहोरे करि-करि कें राजी करि लेओ हो। हे नटनागर ! आपके चित्त कूँ तो वा नवनागरि गोरी ने चोरि राख्यौ है, और हमसों सतत कपट करते रहो हो। रस की रोरि में आपके श्रीअंग तो जहाँ-तहाँ कुमकुम स्वरूप पीक ते रँगि रहे हैं, और नेत्रकमल रंग में मगन है रहे हैं, बोलनि हू माधुरी ते भरी भई है, ये सब तिहारी विचित्र शोभा मन कूँ बरबस चुराय रहीं हैं। हे सुन्दरबर ! मैं आपकी बेर-बेर बलिहारी जाऊँ हूँ, प्रेम ने सब आपकी चोरी प्रगट करि दीनी है। इतेक पै हू जब श्रीलालजू चतुराई की बात बनाइबे लगे, तब श्रीप्यारीजू बोलीं कि हे प्यारे ! तुम बात बहुत बनाइ-बनाइ के कहौ हौ, पै हम कबहूँ काहू की कान नाँइ करि कें जैसी देखें, तैसी कहैं हैं। मालुम परै है कि अब या ब्रज में आप काहू सों पहिचान राखिबे जोग्य नाँइ रहौगे। हे मनमोहन ! आपको यह मनमोहनी रूप सब टोनान की एकमात्र खानि है, याते आप बड़े-बड़े चतुरन कूँ हूँ आधीन करि, दूध पानी की नाईं अपने मन तें बिनके मन कूँ मिलाइ लेवो हो। हे प्यारे ! तुम चाहे कितेक हू चतुराई द्वारा अपनी बातन कूँ छुपावौ, किन्तु आपकी ये

प्रीति कैसे हू नांइ छिपि कें, समस्त जगत में विदित है गई है।

※ प्रगट व्रजवास कृपा-स्वरूप अंग ※

कृपा मैं जानी अब ब्रज भूप।
लीनौं हरि गहि बाहु महाबल रति संश्रित भै कूप।।
मिटि गये पाप संताप ताप तन चितवत स्याम सरूप।
श्रीबिहारीदास गुन कहै कहाँ लौं उपमा अमित अनूप।।१४१।।

श्रीब्रज में बसिबे के अद्‌भुत सुख कूं अनुभव करते भये श्रीगुरुदेवजू साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज ते ही कहिबे लगे कि हे ब्रजभूप! आपकी कृपा मोपै है या बात कूं मैं अब भलीभाँति जानि गयो हूँ, भय-भ्रमरूपी या संसार कूँवा में मेरी रति है रही ही, वामें ते आपने बलपूर्वक मेरे हाथ कूँ पकरि, निकारि लीन्यौ। आपके दरसन करत खेम ही मेरे यावत पाप, ताप, संताप भलीभाँति मिटि गये। आपके गुनन कूँ तो मैं कहाँ ताऊँ बर्नन कर सकूं हूँ, जिनकी उपमा ही अति अमित अनूप है।

रुचे मोहिं ब्रजबासिन के टूक।
जारत तृन अभिमान अविद्या मनहुँ अग्नि के ऊक।।
काजहि काज कहा करकच सों रह्यौ मौन ह्वै मूक।
श्रीबिहारीदास हरिदास दई बुद्धि गई हिये की हूक।।१४२।।

अब हमें इन ब्रजबासिन के ही घर-घर के टूक रुचें हैं, जो अभिमान अविद्या रूपी तृनन कूं जराइबे के ताईं मानो साक्षात अग्नि की ज्वाला स्वरूप हैं। श्रीस्वामी जी महाराज ने अद्‌भुत कृपा करि कें ऐसी बुद्धि दीनी, जासों हमारे हृदय की समस्त बासनान की हूक नष्ट है गई। अब हम काहू करकच सों कोऊ काम नांइ राखि कें सदाकाल सब सों मौन रहैं हैं।

हौं ब्रजबासिन कौ पाल्यौ पीला।
आसपास रखवारौ डोलों बोलों हरि जस लीला।।
आहट पाऊँ टेरि जगाऊँ जपना भगना भीला।
माथो पीठ पोंछि पुचकारत हिलै लियौ मन मीला।।
होंन न देउँ बिगार खसम को भलौ सुभाव सुचीला।
जान्यौं ब्रजपति हौं पहिचान्यौं यह कर खेत कनीला।।

भँडिहाई जानौ नहिं ऐसे भँडिहा भ्रमत कुचीला।
कारे मुंह अँधियारे घर घुसि भूसत खोलि कुठीला॥
मैले तन कैसे मन फूले पायें चँदिया चीला।
कछु छीकै कछु छाक छिडावत फबत कमरि कुतुकीला॥
भूख प्यास सहि द्वार न छांडौं तो रस गोरस झोला।
श्रीबिहारीदास लै नाम बुलावत श्रीहरिदास कौ हठीला॥१४३॥

श्रीब्रज में सदाकाल बसिबेवारे अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज एवं रससागर स्वामी श्रीबीठलविपुल देवजू कौ मैं पालतू पीला स्वरूप हूँ। बिनको ही दियौ भयौ नित्यबिहार रसरूपी अद्भुत धन कूँ अपने हृदय में विराजमान करि सतत श्रीजुगल की रस-जस लीलान कूँ गातौ रहूँ हूँ। बा अद्भुत धन की चारों-ओर ते ऐसी रखवारी करतो रहूँ हूँ, जो नेक हू मायारूपी चोर को आहट सुनत खेम अपने गुरुदेव सहस श्रीजपना, भगना भीला जू सों सब स्थिति जाइ के कहूँ हूँ। वे हू मोते अति अधिक प्यार करते भये, मेरे मन, चित्त कूँ नित्यबिहार रस में डुबोय, अपने मन तें मेरे मन कूँ मिलाय, हिलाय लेवैं हैं। या प्रकार मैं अपनी गुरुन की बस्तु कूँ भलीभाँति सम्हारि कें राखतो भयौ कबहूँ बिगार नाँइ होवन दऊँ हूँ। याही तें हमारे श्रीगुरुदेव मेरे सुभाउ की सदाकाल प्रसंसा करते भये कहैं हैं कि याने तो अति बिसाल ब्रज रस देस कूँ हूँ पालन-पोषण करिबेवारौ श्रीवृन्दावन निकुंजबिहार रस स्वरूप कूँ सम्यक प्रकार पहिचान, अपने हृदयरूपी खेत कूँ अति सुन्दर बनाइ लीन्यौ है। जो निज स्वार्थ-परायन, अति मलीन सुभाववारे कुत्ता की नाईं अनेक ठौर भड़ियाईं करते डोलैं हैं, ऐसे भड़ियाई करिबो तो याने जान्यौ ही नाँइ है। वे नितान्त स्वार्थ की भावना ते अपनो मुँह कारो करि शुद्ध भक्ति रूपी उजेरा ते विहीन अँधेरे घरन में घुसि, अति कठोर साधनन कूँ करि, अपने को बड़े ऊँचे साधक कहि-कहि कें पुकारैं हैं। अर्थात बड़े लंबे-लंबे उपवास, जल सैया, चौरासी धुनी आदि या प्रकार के कठोर साधनन कूँ करि-करि कें अपनी ख्याति करैं हैं, किन्तु स्वार्थ के साधनन तें मलिन होइबे के कारन बिनको मन कबहूँ प्रसन्नता में नाँइ फूलै है।

जैसे कुत्ता काहू के घर में घुसि, नाना उपायन तें छींका की धरी भई बस्तु कूँ उतारि, काहू की बँधी भई छाक कूँ उठाइ, खाइ-खाइ के उछल्यौ करै है, तैसे ही कछु लोग अनेक घरन में जाइ, नाना प्रकार की उक्ति-युक्ति तें ऊँचो, छिपी भई

बातन कूँ हूँ निकारि ल्यावें हैं। याहीं प्रकार की चतुराइन में वे लोग प्रयत्नशील रहैं हैं, किन्तु साँचो आसरौ काहू को नाँइ लेवें हैं।

फिर आप अपनो अनन्य व्रत बताते भये बोले कि यदि मोकूँ श्रीस्वामीजी के रस-जस की एक बूँद हूँ नाँइ प्राप्त होइ, तौहू मैं भूखे-प्यासेन की नाईं रहि, श्रीस्वामी जी महाराज के घर के अतिरिक्त और काहू की बातन कूँ अपने मन ते नेक हू सपरस नाँइ करूँगो। याही रहनी पै मेरे श्रीगुरुदेव रीझि, मोकूँ श्रीहरिदास कौ हठीला संबोधन करते भये श्रीस्वामीजी महाराज के अति सरस-रसीले सर्वोपरि रस-जस कूँ सदाकाल पिवायौ करें हैं।

मोहिं ब्रजबासिन सों बनि आई।
जिनके तन मन बसत निरन्तर स्यामा स्याम सहाई॥
निसिबासर निरखत नैंननि सुख विसद बिहार सदाई।
वारों मुक्ति पदारथ चारों चतुर्दस लोक बडाई॥
जिनकी चरन रेंनु जाँचत ऊधो ब्रह्मा हूँ न पाई।
तिनकों सर्वसु दियो अपनपौ जानि सिरोमनि राई॥
आसन असन बसन संभासन दरस परस सुखदाई।
श्रीबिहारीदास बडभागो अति अनुरागी की बलि जाई॥१४४

बिनहीं ब्रजबासिन तें हमारी बनि आई है, जिनके तन, मन में निरंतर एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को ही तौ आसरो है, तथा बिनकें ही अद्भुत विशद नित्य विहार कूँ अपने हृदय में अवलोकन कियौ करें हैं। ऐसे ब्रजबासिन पै ही चारों प्रकार की मुक्ति एवं चतुर्दस लोकन की बड़ाई हम वारनें करें हैं। बिनके ही श्रीचरनकमलन की रज कूँ साक्षात श्रीब्रह्मा, उद्धव आदि महत्पुरुष सतत वांछा कियौ करें हैं। तिनकूँ सर्वसिरोमनि समझि साक्षात श्रीजुगल ने हू सर्वस एवं अपनपौ ऐसो दै दीन्यौ है कि बिनके संग-संग आसन, असन, बसन, संभाषन दरस-परस आदि सुखदाई कार्यन कूँ सतत कियौ करें हैं। या प्रकार के अति अनुरागी बड़भागी जनन पै हम बार-बार बलिहारी जाँइ हैं।

मेरे गति ब्रजपति कैं ब्रजवासी।
जिनकें प्रान जीवनि धन राधा वृन्दाविपिन विलासी॥

सँग सहचरी श्रीहरिदासी मोहि सहायक उभै उपासी।
श्रीबिहारीदास निरभै भजि हरि पद तजि लोक वेद को हांसी ।।१४५

याते आप बोले कि हे भाई ! मेरे गति कै तो साक्षात ब्रजपति-श्रीबिहारी-बिहारिनी जू कै बिनके ही दृढ़ अनन्य उपासक श्रीव्रजवासी, जिनकी प्रान-जीवनि धन एकमात्र श्रीवृन्दाविपिन विलासिनी श्रीप्यारीजू, तथा निज अंग-संगिनी सहचरी श्रीहरिदासीजू हैं। ऐसे उभय उपासक व्रजवासी जन ही मेरे सतत सहायक हैं याते हे बिहारीदास ! लोक-बेद की हाँसी कूँ त्यागि, सब सों निर्भय होइ, श्रीयुगल चरणा-विन्द कूं दृढ़ अनन्य भाव ते भजौ।

※ निज रस-रीति-उपासना कौ प्रगट स्वरूप ※

श्रीकुंजबिहारी सर्वसु सार।
श्रीस्वामी हरिदास उद्धरे रसिक अनन्यनि कौ आधार ।।
नित्य प्रगट गावत नहिं पावत सब श्रुति तत्व विचार।
इहि निज नाम धाम वृन्दावन निरनै नित्य बिहार ।।
काम केलि रस और न परसत प्रेम समुद्र अपार।
नित नव जोवन जोर किसोर किसोरी कंठ सिंगार ।।
मत्त मुदित सहचरि सेवत नित लता ललित आगार।
जानत सबै जगत ज्यौं जुवती छुवत न भै भूप भण्डार ।।
जनम करम पूरन प्रभु के सब आस पास परिवार।
अंस कला सब अवतारनि कौ अवतारी भरतार ।।
श्रीकृष्ण चरित्र त्रिधा त्रिभुवन बहु भक्ति भेद बिस्तार।
जहाँ जोइ रस तहाँ तहीं वैस सुख देत सबनि उदार ।।
गाय ग्वाल गोप गोपी जन न्यारौ ब्रज व्यौहार।
सब तें दूरि दुरचौ दुर्लभ क्यों सुलभ होत सुकुमार ।।
जो चाहै चित दै निजु महलनि के अंग संग अनुसार।
श्रीबिहारीदास जे यह मत गावत तिनकौ वार न पार ।।१४६।।

श्रीगुरुदेवजू ने साधक समाज पै अति कृपा, दयामें विवस होइ, सूक्ष्मातिसूक्ष्म सर्वोपरि निजमहल कौ रस-जो साक्षात श्रीलक्ष्मीपति एवं श्रीव्रजपति कूँ हूँ अति

दुर्लभ है, ताकूं दैबे के ताईं, आपने भिन्न-भिन्न समस्त परमार्थन के स्वरूप कूं निदान करते भये, प्रथम कर्म-ज्ञान एवं बैंधी भक्ति के स्वरूप कूं भलीभाँति बर्नन कीनौ। तदुपरान्त श्रीव्रजरस देस के संयोग-वियोगात्मक रस कौ स्वरूप निरूपण कियो।

श्रीबिहारिनदासि जू सुख की रासि सबै गुन कूं सु प्रकास कियौ।
कर्मठ, ज्ञान पठंत पुरान सु भक्ति निदान को भेद कियो॥
तामें व्रजरीति सुप्रेम समीत सु लीला प्रकार दिखाइ दियौ।
ताते रसरीति बढ़ै मन प्रीति सु नित्यबिहार सुसार गियौ॥–श्रीनागरीदेवजू

फिर आपने निज रसरीति कौ स्वरूप प्रकास करते भये कह्यौ कि–हे भाई! प्रथम-समागम-एकान्तरसबिलासनिज़ महल श्रीवृन्दावन के दृढ़ अनन्य श्रीबिहारी-बिहारिनीजू ही सब सारन के सार स्वरूप एवं हमारे प्रानन के सर्वस्व धन हैं। ये अति दुर्लभ नित्यबिहार रस अनन्यनृपतिश्रीस्वामीजू महाराज ने एकमात्र रसिक-अनन्यन के ताईं ही प्रानाधार स्वरूप जगत में प्रगट कीन्यौ है। श्रीभगवत तत्व कूं नित्य गायन करिबेवारे वेद-उपनिषद् आदि हू या नित्यबिहार रस कूं प्राप्त नाँइ करि सके। जिनको निज नाम श्रीकुंजबिहारी, धाम श्रीवृन्दावन, और नित्यविहार ही निर्णयात्मक बिनको दृढ़ अनन्यरस है। वे अपार प्रेमसागर-कामकेलि रस के अतिरिक्त और काहू रस कूं स्वप्न में हूँ सपरस नाँइ करें हैं। नवजोवन के जोर में बिभोर श्रीकिसोर-किसोरीजू परस्पर एक दूसरे के कंट-सिंगार सतत बने रहैं हैं। ललित लता नवनिकुंज भवन में प्रेमरस में मत्त मुदित स्वरूप सों सहचरिजन ही नव-नव नेह ते रुख अनुसार सतत बिनकूं लाड़-लड़ावें हैं। इन सहचरिन के अतिरिक्त और समस्त प्रेमी सर्वोपरि या नित्यबिहार कूं ऐसे सपरस नाँइ करि सकें हैं, जैसे चक्रवर्ती भूप के भंडार कूं भीरु प्रान को व्यक्ति भय के कारन नाँइ छू सकै है।

यद्यपि प्रभु के यावत अवतार एवं बिनकी लीलायें अपने-अपने स्वरूप में सब परिपूर्न हैं, तौहू ये सब श्रीकुंजबिहारी के आसपास परिवार स्वरूप ही हैं। जगत में जितेक अंस, कला, अवतार भयें हैं, तिन सबन के भरन-पोषन करिबेवारे अवतारी स्वरूप एकमात्र श्रीकुंजबिहारी ही हैं।

लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीव्रजेन्द्रनंदन की द्वारिका, मथुरा एवं व्रज तीन प्रकार की लीलायें हैं। तिनमें भक्ति के अनेक भेद होइबे के कारन बिन लीलान कौ अति बिसाल बिस्तार है गयौ है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही भक्तन की भावनानुसार

स्वरूप, रूप तथा लीला आदि सों उदारतापूर्वक सबन कों सुखी करैं हैं। तामें श्रीव्रजलीला के तीन प्रकार के भेद हैं— वात्सल्य, सख्य, शृंगार।

इन सबन ते अति दूर, छुपे भये, एकमात्र श्रीवृन्दावन नवनिकुंज महल में ही, कोमलातिकोमल, काम-प्रेम-रसमय अविच्छिन बिहार करिबेवारे, अति सुकुमार, श्रीजुगल के स्वरूप कूँ, स्थूलरस वैस के विलासी कैसे हू ग्रहन नाँइ करि सकैं हैं ?

यदि तुम्हारौ चित्त याही सर्वोपरि नित्यबिहार के ताईं ललचावै है तौ निज-महल की सहचरी साक्षात श्रीहरिदासीजू के श्रीचरनकमलन कौ दृढ़ अनन्य आसरो लै, बिनके ही कथनानुसार साधनन में लगौ। हे बिहारीदास ! जो बड़भागी जन हमारे या सर्वोपरि नित्यबिहार के साधनन में दृढ़ अनन्य होइ कें लगि रहैं हैं, एवं लगैंगे, तिनके बड़भाग कूँ तौ हम कहि ही कहा सकैं हैं, किन्तु जो जन या सिद्धान्त में दृढ़ विस्वास राखि कैं कहैं-सुनैं, गावैं हैं, तिनकी बुद्धि एवं सौभाग्य को कोऊ वारपार ही नाँइ है।

प्रथम रसिक ह्वै आपुन तब रस की रसिकन पै सुनि बात।
नीरस कवि सब वक्ता श्रोता बिनु समझैं झुकि जात ॥
व्याहे नहीं बरात भात बिन खाये क्यौं इतरात।
गाँठत कूर कान सों चूतर कहि आये अनखात ॥
प्रेम प्रताप माधुरी महातम मिलवत सठ न लजात।
सात छांनि कौ फूँस पिटभरा अँधरे पसु लों खात ॥
हीरा वैरागिरही पैयत घूर खनत न खिसात।
साधन और और सिद्धांत बिनु पाये पछितात ॥
राख्यौ बाँधि अविवेक महा भ्रम क्यौं संदेह नसात।
अभिमान्यों दरवान ज्ञान की कौन कहै कुसलात ॥
याही तें दुर्लभता सब कों लक्ष्मीपति ललिचात।
जद्दपि राधाकृष्ण बसत ब्रज बिनु विहार बिललात ॥
बिनु श्रीहरिदास बिहारैं सेवत दरस परस नहिं तात।
तें क्यौं पावहिं महामाधुरी बन बसि संग न समात ॥

गुरु ग्रन्थन मत सदाचार चलि चौकस करि गहि घात।
श्रीबिहारीदास बिरले अनन्य धन्य जे विहार रँग रात ।।१४७।।

फिर या सर्वोपरि रस प्राप्ति के ताईं उपाइ बताते भये आपने कह्यौ कि हे भाई ! पहिले तुम यावत कर्म-धर्म, लोक-वेद, महातम तथा ईश्वरता आदि समस्त सुख-स्वादन की लालसान कूँ भलीभाँति त्यागि, अति विसुद्ध रसिक स्वरूप सहचरि भाव के अनन्य आश्रित होइ, अपने सजाती रसिकन पै जाइ कें, या रसरीति की समस्त गाँसन कूँ भलीभाँति सुनौ-समझौ। प्रेम-रस सों बिहीन हृदयवारे नीरस कवि, सब वक्ता-श्रोता, विना ही समझें इत-उत माऊँ झुकि जाँइ हैं। ये लोग हमारी रस-रीति सों या भाँति अनभिज्ञ हैं जैसे काहू कौ न तो विवाह ही भयौ, और न काहू के विवाह में बराती ही बनि के गये, अर्थात न तो हमारे रस कूँ बिनने कछु आस्वादन ही कीन्यौ, और न रसास्वादन करिबेवारे रसिकन कौ संग ही कीन्यौ है, इतेक पै हू रस के ग्याता बनि कें इतराते भये कूर कान सों चूतर कूँ वैसे ही गाँठ रहैं हैं। यदि इनते कोऊ कहै तो उल्टे अनखनाते भये आँख निकारे हैं। प्रेम में तो प्रतापरूपी ईश्वरता, और रूप-गुन आदि महामाधुरीन कूँ महातम में मिलाय, ये निर्लज्ज मूर्ख, ऐसे प्रसन्न होय हैं, जैसे कोऊ बहुत दिनन कौ भूखौ आँधरो पशु पुरानी छानि के सड़े-गरे फूस कूँ ही खाइ, अपनो पेट भरि, प्रसन्न होय है।

सर्वोपरि नित्यबिहार-रस-रूपी हीरा इहलोक-परलोक के यावत सुख-संबंधन ते भलीभाँति बैराग करिबे ते ही प्राप्त है सकै है। घूरा सदृस स्वार्थन ते भरे भये कार्यन में ही खोजते भये ये लोग नाँइ खिसावैं हैं।

जिन लोगन के साधन तो और प्रकार के हैं, और सिद्धान्त और हैं, बिनकूँ वस्तु प्राप्त नाँइ होइबे पै आखिर में पछितामनो ही परै है। यदि कोऊ ये बात कहै कि हे महाराज ! इनकूँ भलीभाँति समझायो जाइ तो वे नित्यबिहार रस के अनुकूल अपने साधनन कूँ बनाइ लेवैंगे। तापै आपको कथन है कि अविवेक सों बँधि, महा-भ्रमन में परि, ये लोग ऐसे संदेह करन लगै हैं, जिनको मिटिबो ही कठिन है। ताहू पै अभिमानरूपी दरबान इनके हृदय में ऐसो जबरदस्त बैठ्यौ है, जोकि ज्ञान की बात कूँ बुद्धि ताऊँ पहुँचन ही नाँइ देवै है, साधारण जीवन की तो कहा चलाई ? ईश्वरता के मूल स्वरूप साक्षात श्रीलक्ष्मीपति हू या रस के ताईं ललचाते ही रहि जाँइ हैं, यद्यपि स्वयं श्रीराधा-कृष्ण जू ही हैं, तौहू श्रीव्रज में बसिबे के कारन, बिना

नित्यबिहार रस के विरह-वेदना ही अनुभव करें हैं। अर्थात् श्रीजुगल इतेक अति ऊँचे सर्वोपरि प्रेम-रस-विलास के महानुरागी हैं, कि निरंतर परस्पर प्रान सों प्रान, मन सों मन, श्रीअंगन ते श्रीअंग, रोम-रोम मिलाये, अनिमिष अंखियाँन ते अनादिकाल ताऊँ विहार परायण रहैं हैं, तौहू विनके प्रान, मन नाँइ अघावें हैं, फिर वे पद-पद पै, स्थूल-विरह-वियोग कूँ सहते भये निज मन ते कैसे फूलि सकें हैं, यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीव्रज-रसदेस कूँ ही अनेक महानुभावन ने अनंत प्रकार सों भूयो-भूयो गायो है, कहा बिनके प्रेम में श्रीजुगल कबहूँ प्रसन्न नाँइ भये ? तहाँ या प्रकार समझनो, उदार चूड़ामनि श्रीजुगल यावत् प्रेमिन के प्रेम-संबंध-भाव अनुसार सबन कूँ सतत सुखी करें हैं, किन्तु बिनके निज प्रान उपरोक्त विहार के अतिरिक्त छिनमात्र के ताईं हूँ सुखी नाँय है सकें हैं। ज्ञाता पुरुषन कूँ येहू विचारिबे की बात है कि श्रीव्रज में विना ईश्वरता के संमिश्रण कियें, ऐसो कोऊ धाम-देस बनि ही नाँइ सकै है, जो कि श्रीजुगल सदाकाल निरंतर परस्पर विहार परायन रस कूँ विलसते रहैं, ईश्वरता के संमिश्रण करिबे ते विशुद्ध रस को ही स्वरूप नाँइ रहै है। याते श्रीगुरुदेवजू ने स्पष्ट कह्यौ कि हे भाई ! बिना श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रय-संबंध लिये चाहै कोऊ क्यौं न होइ, नित्यबिहार प्राप्ति तो दूर रह्यौ दरस-परस हू नाँय है सकें हैं।

जुगल नाम निसदिन रटै, सेवें नित्यबिहार।
स्वामि नाम अंकित नहीं, काढ़ि मुहर टकसार ॥–श्रीस्वामी ललितकिसोरी देवजू

जो लोग श्रीवृन्दावन में अखंड बास हू करें हैं किन्तु श्रीस्वामीजी महाराज ते अनन्य संबंध नाँइ बाँधें हैं, वे जन नित्यबिहार रसरूपी महामाधुरी में कैसे हू नाँइ समाइ सकें हैं, याते श्रीस्वामीजी महाराज के ग्रन्थ, रसरीति मतानुसार वाही सदाचार में चलि, अपने लक्ष्य कूँ चौकस करि, हृदय में भलीभाँति धारण करिकें राखो। या रस-रंग में रँगे भये महाबड़भागी अनन्य श्रीबिहारीदास बिरले ही कहूँ-कहूँ प्राप्त होय हैं।

रसिकनि कें रसरीति रसायन।
कर्म धर्म दालिद्र न परसत दिन दरसत मन भायन ॥
सदा संजोग भोग भोगी बल विरह वियोग नसायन।
दाता भुक्ता बड़े अजाचक ए लछिन न छिपायन ॥
जच्छ किन्नर विद्याधर गंधर्व गुनी द्वार दुलरायन।

पावत नहीं उचित प्रेम बिनु कीरत करत प्रताप परायन ॥
यद्यपि विविध भिखारी अधिकारिन तें दूरि दुरायन।
साधक सिद्ध साहु संग ही सब धन अभिमाँन नवायन ॥
अतुलित अमित पार नहिं पावत विभव सेष श्रुति गायन।
भक्ति मुक्ति व्यौहार पूंजी लै उद्यम विविध उपायन ॥
क्यों पावें रस रीति प्रीति बिन दुर्ल्लभ निजु ब्रज जायन।
या रस कों ललचात लजाते लछिमीपति नारायन ॥
इहिरस विवस भयौ ब्रज भूषन लटकि लग्यौ परिपाँयन।
जाचत नित्य विहार विहारी ललितादिक सुख दायन ॥
सहज समाज सदा वृन्दावन बिपुल विनोद बढ़ायन।
सहचरि श्रीहरिदासी के अंग संग श्रीबिहारिनिदास विलसत चितचायन १४८

जैसे जगत में धन-संपत्ति प्राप्त करिबेके ताईं लोग व्यौपार आदि अनेक उद्यम बड़े बिस्तार सों करते भये बहुत सी विघ्न-बाधान कूं सहन करें हैं, किन्तु जो लोग रसायन बनायबो जानें हैं बिनकूं बिना काहू परिश्रम-उद्वेग के सहज में हीं मनमान्यौ धन प्राप्त ह्वै जाइ है, तैसे ही अति विशुद्ध सहचरि भाववारे रसिक उपासकन कें श्रीजुगल की रसरीति-महामाधुरी ही रसायन स्वरूप है। अर्थात् रसिकन के रस की रीति-रसायन स्वरूप या प्रकार समझनो, जैसे प्रथमसमागमएकान्त रसबिलास निज महल में दोऊ श्रीजुगल, बिलासमय महारंग तें भरे भये परस्पर अवलोकन करि-करि महामनमथ की रंग-तरंगन कूं सतत बढ़ायौ करें हैं। फिर अद्भुत छबि-छटा-माधुरी सों भरे मुसिक्याय-मुसिक्याय, रहसि रसमय परिहासन की परस्पर दोऊ बहस करन लगें हैं, बिन बहसनि में श्रीजुगल के तन, मन, प्रान रोम-रोम महागूढ़ सुरत रसरंग के झूला में झूलन लगें हैं। तब तान तरंगनि द्वारा दोऊ गावन लगें हैं, कबहूँ अलग-लागन कूं लै-लै कें अद्भुत नृत्य करन लगें हैं। कबहूँ गलबहियाँ दैकें महामधुर बोलते भये कुंज-कुंज प्रति डोलें हैं, कबहूँ-कबहूँ सबकी दृष्टि बचाइ, निभृत निकुंज में जाइ खेलें हैं। कबहूँ परस्पर होरी, डोल-हिंडोल आदि रस विलसैं हैं। या प्रकार रूप, रंग, छबिछटा-महामाधुरी की अगाध वरषा करते भये दोऊ सतत विहार करें हैं।

कबहुँक रंग हिंडोरे झूलत गौर स्याम तन राजैरी।

× × ×

कबहुँक कुंज-कुंज प्रति डोलैं बोलैं हँसि मधुरी बानी री।
× × ×
कबहुँक दृष्टि बचाय सबनि तें रंगमहल दोऊ खेलैं री।
—श्रीस्वामी नागरीदेवजू

जो महा बड़भागी या रसरीति की प्रेमभाव सों भावना करें हैं, तिनकूँ बिनकी कृपा तें नेंक रंग लगत खेम, रसाइन की नाईं, यह रस ऐसो सहज सिद्ध है जाइ है, कि श्रीजुगल सतत हृदय में खेलते भयें हूँ मन में नाँइ मावें हैं।

गह्यौ संग अनन्य नृपति कौ रंग लाग्यौ जब हिये।
भये साधन सिद्ध तिनके तिही छिन अनहीं किये॥ —श्रीगुरुदेवजू

ऐसे रसिकजन दारिद्र स्वरूप कर्म-धर्मन कूँ तौ कबहूँ सपरस हू नाँइ करें हैं। मनभामते सदा संजोग-रस-रूपी विलास-बल पै, विरह-वियोगरूपी रसन कूँ हूँ, बिनने अपने मन तें निवारण करि दीने हैं, तथा दाता, भुक्ता एवं बड़े अजाचकपने के लक्षण हू बिनके स्पष्ट दरस्यौ करें हैं। ऐसे महाबड़भागी महानुभावन के द्वार पै जक्ष-किन्नर, विद्याधर, गंधर्व, देवता आदि बड़े-बड़े गुनीजन बिनके जसन कूँ दुलराइ-दुलराइ के गान कियो करें हैं, किन्तु जो लोग ईश्वरता मिश्रित, प्रेम-रसके ही गुन-प्रताप गावें हैं, बिनकूँ अति विशुद्ध एकान्त-रस-विलास निज महल के सहचरि भावरूपी उचित प्रेम के बिना यह निज रस कैसे हू प्राप्त नाँइ है सकै है। बहुत से साधक यद्यपि विविध प्रकार ते जाँचना हू करें हैं, तथा अधिकारी हू बनें हैं, तौहू ये महारस ही, बिनते अति दूर छुप्यौ भयौ रहै है। जितेक परमार्थी-साधक, सिद्ध, साहूकार-सत्संग आदि धन के अभिमानी जन हैं, तिन सबन की नारि नबाइबेवारो ये महारस—इतेक अद्भुत, अतुलित, अमित, अपार है, जाकी वैभव कूँ स्वयं श्रीशेषजी तथा समस्त श्रुति निरंतर गान करें हैं, तौहू पार नाँइ पावै हैं। अनेक परमार्थीजन भक्ति-मुक्तिरूपी पूँजी के व्यौहार द्वारा विविध प्रकार के उद्यम-उपायन में लगे हैं, किन्तु जो रस-रीति श्रीव्रज में प्रगट होइबेवारे स्वरूपन कूँ हू अति दुर्लभ है, वो रस दृढ़ अनन्य प्रीति के बिना कैसे प्राप्त है सकै है?

या रस के ताईं साक्षात् श्रीलक्ष्मीपति नारायण हू लालच करिबे में अपने मन में लज्जा माने हैं। प्रेमदेस श्रीव्रज के भूषण स्वरूप स्वयं श्रीलालजू हू—या अति झीने एवं अद्भुत रस में विवश होइ, सुखदाइक-श्रीललितादिक सहचरिन के श्रीचरन-कमलन में परि-परि सतत जाँचना कियौ करें हैं।

ऐसे सर्वोपरि महारस की श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर में सहज समाज लगी रहै है। जहाँ हमारे गुरुदेव रस-सागर श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू—या रस के विनोद कूं सतत बढ़ायौ करैं हैं। निज सहचरि श्रीहरिदासीजू के अंग-संग रहि, हम हूँ बड़े चित के चाव सों या निज रसरीति के महाविचित्र सुख कूं निरंतर विलसते रहैं हैं।

सब रस कौं रस तिलक सिंगार।
जैसें सब अंग अंग कौ भूषन अतिसै लसत लिलार॥
वरनाश्रम कृपननि मैं राजत भगवत भक्त उदार।
कायर कोटि कटक में झूझत सूर सजैं हथियार॥
निसि नक्षत्र तौही लों जौलों ससि न कियौ उद्गार।
तैसें हीं महाराज के आगें परजा कौ व्यौहार॥
नाँम बीज नाँमी तरु साखा साधन पुहप अपार।
विविध भाइ फल मेवा बाकस निज रस रूप बिहार॥
निरौ अचार कहा लै कीजै करौ दिवेक विचार।
श्रीबिहारीदास प्राननि कों श्रीहरिदासै प्रान अधार॥१४८॥

फिर आपने रस के पथ पै चलिबेवारे साधकन कूं बताते भये कह्यौ कि—समस्त रसन को तिलकु स्वरूप सर्वसिरोमनि एकमात्र शृंगार रस ही ऐसो है, जैसे नव-नायिका अपने अंग-अंग में अनेक भूषणन कूं सजावै है, तौहू वाके मस्तक को ही भूषण अति शोभा पावै है। ऐसे ही अति कृपन वरनाश्रम धर्मीन में, उदार श्रीभगवत भक्त ही सुसोभित होइ हैं। यद्यपि फौज में अनेक व्यक्ति सतत मरते रहैं हैं, तौहू सूरबीर निर्भीकता पूर्वक लरिबे के ताईं अपने हथियारन कूं बड़ी उमंग ते सजायो करैं हैं, ताते ही समस्त फौज में बिनकी शोभा न्यारी दीखै है। ऐसे ही तारागनन की शोभा तब ताऊँ ही होइ है, जब ताऊँ चन्द्रमा उदय नांइ होइ, और याही भाँति राजा के आगे परजा के व्यौहार कूं समझो। इन दृष्टांतन द्वारा आपने स्पष्ट दिखाय दीनौ है कि—सिंगार-रस के अनन्य रसिकन कौ स्वरूप और-और रसन के उपासकन ते स्वाभाविक ही अति ऊँचौ होय है। फिर साधन पद्धति कूं वर्णन करते भये आपने कह्यौ कि हे भाई! प्रथम बीज स्वरूप नाम हृदय में बोइबे तें, नाम के अनुसार ही नामी के स्वरूप कौ अंकुर हृदय में उदय होइ है। ता पीछे नामी के स्वरूपानुसार, वृक्ष के पुष्पन की नाईं साधक के हृदय में अनेक साधन उदय है जाँय हैं, बिनकूं

करते-करते फलस्वरूप नाना प्रकार के भाव आ जाँय हैं, तिन भावन में हू वाकस स्वरूप छिलकान कूँ त्यागि, निज रसरूप नित्यविहार कूँ साधक प्राप्त करि लेइ है।

ऐसे श्रृंगार रस के भावना में चलिबेवारे साधकन ने विवेक द्वारा भलीभाँति विचार करनो चहिए, कि एकमात्र नित्यविहार प्रेमरस भावना ते विहीन हम निरो अचार करिके कहा लाभ उठावैंगे ? श्रीबिहारीदासन के तो प्रानन के हू प्रानाधार-स्वरूप केवल श्रीस्वामीजी महाराज के नाम-गुन, जस ही होय हैं।

सर्वोपरि नित्यविहार सु न्यारौ।
बरस मास अरु पक्ष पहर पल काहे कों गनि दिन धारौ ॥
साधारन राधा आराधत साधत कृष्ण पियारौ।
जनम करम वृषभानुसुता नंदनंदन सिष्टाचारौ ॥
करि सतसंग सजातिन सों मिलि संसै सबै निवारौ।
सेवत महा माधुरी रसिक अनन्यनि कौ ब्रत भारौ ॥
माया काल रहित त्रिगुननि तें इहि मत हेत हमारौ।
नित्त निमित्त संधि समझे बिनु सोदिन स्वाद विगारौ ॥
औरै काम प्रेम औरै रस औरै वैस विचारौ।
उपदेस्यौ श्रीहरिदास बिपुल श्रीबिहारीदास दुलारौ ॥१५०॥

अपने नित्यबिहारके उपासकन तें आप कहिबे लगे कि हे भाई! श्रीस्वामीजी महाराज कौ सर्वोपरि नित्यबिहार जब समस्त प्रेम-रस देसन सों न्यारौ है, तब तुम सृष्टि रीति अनुसार प्रगट होइबेवारे स्वरूपन के वर्ष, मास, पक्ष, पहर, पल काहे कूँ गिनि-गिनि कें अपने मन में धारन करौ हौ। श्रीनंदनंदन, वृषभाननंदिनी जू की सृष्टि आचरन अनुसार लीला होइबे ते लोग श्रीस्वामिनीजू कूँ साधारन एवं श्रीलालजू कूँ प्रधान मानें हैं। ताते अपने सजातीय नित्यबिहार के उपासकन को संग करि, तुम यावत संसयन कूँ भलीभाँति मिटाइ लेउ। क्योंकि रसिक अनन्यन को या प्रकार को बड़ो भारो व्रत होइ है, जो एकमात्र निरंतर एकरस रहिबेवारी सर्वोपरि महा-माधुरी कूँ ही वे सतत सेवन करें हैं। हमारौ हू हेत एवं मत यही है जो कि त्रिगु-नात्मक माया-काल तें रहित है ताही रस कूँ अनन्यभाव तें सेवो।

नित्य एवं निमित्त लीला के स्वरूप-रूप-अनुराग-आसक्ति की संधि कूँ समझे बिना ही, केवल स्वाद लेबेवारे स्वादी जननें या रसके स्वाद कूँ बिगारि राख्यौ है।

निमित्त लीला ते नित्यबिहार को काम, प्रेम, रस वैस सब न्यारो ही है, जाकूं एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज नें ही प्रगट होइ कें जगत में उपदेस दीनौ हैं। श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू की अगाध कृपा ते हम हूँ सतत याही रस कूं दुलराय-दुलराय कें सेवें हैं।

को सरि करै हमारी राधा।
यदपि नाम महातम सेवत और वैस या रस में बाधा ॥
अंग संग नवलकिसोर किसोरी एक वैस रस सिंधु अगाधा।
जागत अनुरागत निसिवासर लगत न नैन निमेष न आधा ॥
नित्यविहार अधार हमारें एक प्रेम निज नाम अराधा।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुलबल सब अभिलाष मिली सुखसाधा १५१

मानो आश्रित ने यह प्रश्न कीन्यौ कि हे महाराज ! जहाँ-जहाँ श्रीस्वामिनी स्वरूप कौ प्रेम बिलास है, तिन सब प्रेम बिलासन कूं उपासकजन एक समान ही मानें हैं, फिर हमारो नित्यबिहार, सर्वोपरि, सब तें न्यारो कैसे मान्यौ जाइ सकै है ? तापै आपने कह्यौ कि—हे भाई ! प्रथम-समागम-एकान्त-रस-बिलास-निज महल श्रीवृन्दावन की ही दृढ़ अनन्य प्रेम बिलासनी सर्वोपरि नित्यबिहारिनी हमारी स्वामिनी श्रीराधा की समता और-और रस वैस स्वरूप कैसे करि सकैं हैं ? यद्यपि श्रीराधा नाम महातम के आधार पै सब कूं एक समान ही समझि, ये लोग सेवें हैं, किन्तु इन लोगन कूं ये ग्यान नाँइ है कि और-और रस-वैस, स्वरूप हमारे सूक्ष्माति-सूक्ष्म रस देस में बाधक ही हैं।

अर्थात् जैसे ब्रह्मवैवर्त पुरान के कथनानुसार गोलोक धाम में श्रीस्वामिनीजू के स्वरूप कूं या प्रकार कौ बर्नन है कि एक समय श्रीलालजू के प्रेमबिलास सुख कूं नाँइ झेलिबे के कारन आप अचेत है गईं, तब श्रीलालजू वाही स्थिति में आपकूं छाँड़ि, श्रीबिरजाजू के महल में जाइ, प्रेमबिलास बिलसन लगे। जब आप सचेत भईं, तब लाल कौ या प्रकार कौ व्यवहार देखि, अति कुपित होइ, अनन्त सखिन कूं संग लै, श्रीबिरजाजू के महल पै गईं। तहाँ द्वारपाल श्रीदामाजू ने आपकूं भीतर जाइबे तें रोकि दीन्यौ। वा समय बड़ो कोलाहल मचिबे के कारन श्रीलालजू तौ अर्न्तध्यान है गये, श्रीबिरजाजू नदी स्वरूप ह्वै कें बहन लगीं। कोप में विवस श्रीस्वामिनीजू ने श्रीलालजू के प्रति जब भर्त्सनाके सब्द कहे, तब द्वारपाल श्रीदामा

जू ने रुष्ट होइ श्राप दीन्यौ कि मृत्युलोक में प्रगट होइ, १०० वर्ष ताईं श्रीलालजू कौ वियोग सहन करौ।

श्रीमद्भागवतजू के कथनानुसार दूजो आपकौ स्वरूप या प्रकार कौ बर्नन है कि–महारास में जब लालजू आपकूँ समस्त सखिन ते न्यारी लै एकान्तमें बिहरि रहे, तहाँ चलते-चलते जब आप श्रमित है गईं, तब आप लालजू तें बोलीं कि हे प्यारे ! अब मैं अधिक नाँइ चलि सकूँ हूँ, याते आप अपने कंधा पै बिठाइ, जहाँ इच्छा होइ लै चलौ। वा समय श्रीलालजू ने आपके श्रीचरनकमलन कूँ सहराइ, कंधा पै बिराजमान करि, मनबांछित स्थल पै लै जाइबौ तौ दूर रह्यौ, उल्टे श्रीस्वामिनीजू कूँ कंधा पै बिठाइबे के छल सों लता पै चढ़ाइ, आप अंतर्हित है गये।

स्वकीया परकास में लोक रीति-अनुसार लीला होइबे ते श्रीलालजू कौ समस्त दिन गइया चराइबे वन में जाइबो, श्रीस्वामिनीजू को समै-समै पै श्रीबरसाने आइबो, आदि स्थूल संयोग-वियोग स्वाभाविक ही होतो रहै है।

परकीया परकास में पैंड़-पैंड़ पै विरह, बाधान की प्रधानता कूँ महतन ने स्पष्ट ही भूयौ-भूयौ बर्नन कीन्यौ है।

काहू-काहू महतपुरुषन नें उपरोक्त समस्त रसदेसन तें भिन्न, श्रीवृन्दावन-नव-निकुंज मंदिर में एकमात्र नित्यकिसोर वैस सों श्रीजुगल कौ विलास वर्नन कीन्यौ है, तौहू बिनके स्वरूप में ईश्वरता कौ सम्मिश्रण, विलास में निद्रा-भोजन कौ अवकास एवं समय-समय पै श्रीब्रज में प्रगट होइ, स्थूल रस कौ आधार होइबो, आदि सूक्ष्म प्रेम-रस बिरोधी लक्षन स्पष्ट उनके वर्नन में दीखें हैं।

अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस स्वरूप हमारे श्रीजुगल तन, मन, प्रान, रोंम-रोंम तें सतत परस्पर दृढ़ अनन्य ऐसे है रहें हैं, कि जिनकूँ अनन्त कोटि महाप्रलय व्यतीत है गये, अनादिकाल तें आज ताऊँ परस्पर निहारते-निहारते निहारिबो भान नाँइ भयौ है, मिले-मिले मिलिबो भान नाँइ भयौ है और न आधे निमिष के ताईं वे पलक ते पलक लगाइ सोये ही हैं।

ऐसे महानुराग रस-स्वरूपा एकमात्र हमारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू ही हैं, जिनके अति सरस रसीली-रूपमाधुरी की अमृतरूपी दल-दल में आसक्त-सिरोमनि लाल के श्रीनेत्रकमल ऐसे फँसि रहे हैं, जो अनेक उपाय करिबे पै हू नाँइ निकरि सकें हैं। आपकी बिबि-कुच संपुट-संधि में तो श्रीलालजू को चित्त ही खोइ गयौ है।

ऐसे ही कबहूँ काहू कारनबस हमारी प्रानप्यारीजू श्रीलालजू के नेत्रकमलन तें नेंक हू इत-उत में है जाँइ, तो इतेक पै ही आप अति कातर ह्वै श्रीस्वामीजू सों प्रार्थना करन लगे हैं। इतेक हू नाँइ हमारी प्रानप्यारीजू के श्रीचरनकमल चिन्हन कूँ ही लालजू अपनो इष्टदेव समझि, भावना द्वारा अनेक प्रकार तें लाड़-लड़ावें हैं। कबहूँ-कबहूँ अपने इष्टदेव स्वरूप चरणचिन्हन के रूप की प्रसंसा करते-करते बेसुध हू है जाँइ हैं। याही भाँति श्रीलालजू की अद्भुत आसक्ति के अनन्त स्वरूप हैं, जिनको वर्नन कैसे हू नाँइ है सकै है। याते ये भलीभाँति स्पष्ट है कि हमारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के प्रेम-रूप-रस की समता करिबेवारो और कोऊ स्वरूप है ही कैसे सकै है?

इन श्रीजुगल कौ ही सर्वोपरि नित्यबिहार एकमात्र हमारे प्रानन कौ आधार है और ताकी प्राप्ति हू केवल अति बिसुद्ध प्रेम द्वारा बिनके ही निज नाम रटिबे ते है सकै है। श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू की कृपाबल तें हमारी समस्त अभिलाषायें सुख-साध्य पूर्न है गईं हैं।

एक राधा व्रज में बसै, एक राधा रासविलास।
तीजी राधा कुंज में, दुलरावैं हरिदास॥
राधा नाम विभाग करि, समझौ रसिक सुजान।
जन्म करम जाकौ नहीं, एक रस वैस समान॥

× × ×

सरि कौन करै मेरी प्यारी की।
जाकौ रूप रूप कौ मौहै पलक न लगै विहारी की॥—स्वा०श्रीललितकिशोरीदेवजू

प्रगट ललिता रूप श्रीहरिदास निज नामहि रटै।

जै श्रीवृन्दावन नव निकुंज में संतत सहज बिराजत जोरी।
अति अगाध महिमा रस जिनकौ सो पैयत इक कृपा किसोरी॥
सुक नारद से भक्त मुक्त सनकादिक सुहृदन हूँ तें चोरी।
श्रीबिहारीदास जस कहैं कहाँलौं रसना सहस तौऊ मति थोरी॥१५२॥

जय हो जय हो श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर की, जहाँ सहज-स्वाभाविक ही यह जोरी बिराजती भई एकरस बिहार करै है। अर्थात् सब ही रसिक महानुभाव भलीभाँति जाने हैं कि शृंगार रस की चर्म-सीमा को स्वरूप नवनायिका के प्रथम-

समागम-एकान्त-रसविलास महल में ही होय है, जामें हमारी सर्वोपरि श्रीनित्य-विहारिनीजू समस्त नवनायिकानकी चूड़ामणि, प्रथम-समागम-निज महल श्रीवृन्दावन में ही एकमात्र निरंतर विहार करें हैं। या रस महल की इतेक अद्भुत, अति अगाध, झीनी निर्विवाद महिमा है, जो केवल नित्यविहारिनी श्रीस्वामिनीजू की कृपा ते ही प्राप्त है सकै है।

महामुनि श्रीसुकदेवजू तथा देवर्षि श्रीनारदजू से तो परम भक्त, और नित्य-मुक्त श्रीसनकादिक, एवं परम सुहृद, श्रीव्रज-रस देस को परिकर, तिन सबन ते हू अति दूर छुपी भई यह जोरी निरंतर निकुंज में ही खेलै है। हे श्रीबिहारीदास ! बिन श्रीजुगल कौ रस-जस हम एक रसना तें कहाँ ताऊँ बर्नन करि सकैं हैं, सहस्र-सहस्र रसना है जाँय, तौहू हमारी बुद्धि बहुत थोरी है।

साधन सबै प्रेम के तरहर।
निकसत उमँगि प्रगट अंकुर वर पात पुराने परिहर।।
गुन सुनि भई दरस की आसा दरस्यौ परस्यौ भावै।
जब परस्यौ तब बोल्यौ चाहै बोलें हूँ हँसि आवै।।
तब हँसि मिलै मनोरथ मन सों मदन मोद उपजावै।
नव नव भाइ बिलोकत अंग संग मिलि खेलैं सचुपावै।।
ज्यौं सेवक स्वामी निज नामी रहत निकट नित नेरें।
श्रीबिहारीदास तब वार पार तें कौंन नाँम लै टेरें।।१५३।।

या प्रेममय जोरी की उपासना करिबेवारेन तें आपने कह्यौ कि—हे भाई ! इहलोक-परलोक के यावत् विधि-विधान-साधन एवं संबंध तथा सुखनकूँ पुराने पत्तान की नाईं भलीभाँति त्यागि, सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनी जू के श्रीचरनकमलन तें विशुद्ध प्रेममय संबंध बाँधि, बिनके गुन-जस सुनिबे ते तुम्हारे हृदय में नये-नये सरस-रसीले प्रेम अनुराग के भाव अंकुरित है जाँयगे।

मानो साधक ने प्रार्थना कीनी कि हे महाराज ! आप जैसी आज्ञा करि रहे हैं, ऐसो सुद्ध प्रेम-अनुराग साधारन साधकन कूँ कैसे उदय होयगो ? ताको लक्ष्य करि, आप बोले कि जैसे काहू के गुन सुनिबे ते वाकूँ देखिबे की लालसा मन में है जाइ है, जब वाकूँ देखै है, तब सपरस करिबो चाहै है, जब सपरस करि लेय है, तब बोलिबे को मन करै है, जब बोलन लगे, तब परस्पर हँसन लगैं हैं। हँसिबे पै तो दोउन के

मन, मनोरथ एक होइ, मदन-मोद उपजन लगें हैं। वा समय बिनके हृदय में ऐसी अद्भुत आसक्ति है जाइ है कि परस्पर अवलोकन करि-करि, नये-नये रंग-रंगीले भावन ते मिलि, खेलिबे ते ही सुख पावें हैं। फिर वो हृदय ते ऐसे संग रहें हैं, जैसे स्वामी के संग सेवक, नाम के संग नामी। ऐसो प्रेमी नदी के या पार ते वा पार की नाईं ऊँचे सुर सों नाम लै काहे कूँ पुकारैगो ?

मेरौ मन श्रीवृन्दावन अटक्यौ।
राख्यौ श्रीहरिदास विपुल बल भूलि न इत उत भटक्यौ ॥
बिसरे विस्व विलास त्रास उपहासनि नेकु न मटक्यौ।
उपज्यौ अति आनंद हिये सुख सुफल प्रेम लै लटक्यौ ॥
दियौ प्रसाद प्रतीति प्रीति कें महल कुमहलन हटक्यौ।
श्रीबिहारीदास दंपति सुख चैननि नैंन मधुर रस गटक्यौ ॥१५४॥

फिर आप अपनी स्थिति कूँ बर्नन करते भये बोले कि हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू की कृपा बल तें हमारो मन या निजमहल श्रीवृन्दावन में ऐसो अटकि गयौ है, जोकि भूलि की हू भूल में कहूँ इत-उत माऊँ नाँइ भटकै है। विश्व के समस्त बिलास हमारे हृदय तें भलीभाँति बिसरि, काहू के भय एवं उपहासन सों नेक हूँ बिचलित नाँइ होइ हैं। और हमारे हृदय में अति आनन्द उपजिबे ते, अपने प्रेम कूँ सुफल मानि, हम वाही सुख में झूमते रहैं हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज ने कृपा करि, प्रीति-विश्वासरूपी महाप्रसाद दै, यावत् गैंरसाल महलन तें मोकूं हटकि दीनों है। यातें अब सुख चैनरूपी श्रीजुगल को महा-मधुर रस, नेत्रन द्वारा अविच्छिन्न हम गटकते रहैं हैं।

मेरे नित्य नेम निकुंज निधाँन।
यह पतिव्रत विदित करिहौं गाइहौं गुन गाँन।
मोहि दियौ प्रेम प्रसाद श्रीहरिदास रति मन माँन।
अटल महल की टहल निसदिन करत हियौ सिराँन ॥
बहुत बहुतनि डरत निहुरे फिरत लोभ लुभाँन।
जहाँ जैसौ तहाँ तैसौ सुनत कायर काँन ॥
तपनि ब्रतनि आचार आतुर करत आसा आँन।
साधन कोटि खद्योत सम जुत नाम जिमि बिनु भाँन ॥

सबै बल तकि तौलि देखै लगत लवन समाँन।
श्रीबिहारीदास बिस्वास बरबस किये सुघर सुजाँन ॥१५५॥

हे बिहारीदास! श्रीस्वामीजी महाराज ने मोते बड़ो हित मानि, ऐसी अद्भुत प्रेममयी कृपा कीनी है, जाते अटल ते हू अटल सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू कौ निजमहल श्रीवृन्दावन की टहल करि-करि के, रातदिन हमारौ हृदय अद्भुत सुखन ते सिरायौ रहै है। अब हमने उत्तम कुल की पतिब्रतावत दृढ़ नेम श्रीनिकुंज मंदिर के टहल कौ ही लै, अपने या अनन्य व्रत कूँ भलीभाँति जगत में विदित करि, बिनके ही नाम-गुन-जसन कूँ दुलराइ-दुलराइ कैं सदाकाल गावैंगें। बहुत लोग बहुतन ते डरते भये लोभ में बसीभूत होइ, सबके निहोरे करते रहैं हैं। जहाँ जैसो देखैं, तैसे ही बनिबेवारे कायर प्रकृति के लोग ही प्रायः सुनिबे में आवैं हैं। और-और आसान में आतुर होइ, वे लोग, तप, ब्रत, अचार आदिकन में ही लगें रहैं हैं, उन्हें ये ग्यान नाँइ है कि श्रीहरि के नामरूपी सूर्य के आगे जितेक कोटानुकोटि साधन हैं, ते सब खद्योत समान ही हैं। हमने सबन के बल कूँ भलीभाँति तकि, तौलि कें देखि लीन्यौ है, वे एकमात्र नमक के समान खारे ही खारे मालुम परैं हैं। सुघर, सुजान सिरोमनि श्रीजुगल कूँ हमने अपने साँचे बिस्वास-बल तें ही बरबस वस करि लीनें हैं।

सतगुरु गोविंद वैद बिहारी।
दोनौं मधु मथि प्रेम सु औषधि हर उपाधि उपचारी॥
नेंकु बदन दरसें दुख जानत बिनु परसें कर नारी।
काम कुरोग ग्रसित संश्रित मन तृष्णा हरी हमारी॥
अति निरपेक्ष उदार कहावत संतत सब सुखकारी।
श्रीबिहारीदास से हुते मृतक की प्रगट प्रतिज्ञा पारी॥१५६॥

सद्गुरुन के अद्भुत प्रभाव एवं स्वरूप कूँ बताते भये आपने कह्यौ कि स्वयं सद्गुरु ही वैद्य एवं गोविंद साक्षात श्रीबिहारीजी महाराज के स्वरूप होइ हैं। बिनन्नें कृपा करि कें सरस सनेह स्वरूप शहद में मथि कें प्रेमरूपी औषधि दै, उपचार द्वारा ही हमारी समस्त उपाधिन कूँ नष्ट करि दीन्यौ है। जैसे अति सुजान वैद्य बिना नारी पकरें ही मुख कूँ देखि, समस्त रोगन कूँ निदान करि लेवैं हैं, तैसे ही हमारे श्रीगुरुदेव ने काम कुरोग, ग्रसित संसृत मन की यावत तृष्णान कूँ भलीभाँति समझि हरन करि लीनी। आप उदार सिरोमनि, अति निरपेक्ष, ऐसे संतत सब सब सुखकारी हैं कि मो

सरीखे मृतक की प्रतिज्ञा कूँ प्रगट पूरी करि दीनी। (अर्थात् जैसे कोऊ परमार्थ भाव-रूपी प्रानन तें सम्यक प्रकार बिहीन मृतक समान व्यक्ति, काहू महत्पुरुष के संग तें नित्यबिहार प्राप्ति की प्रतिज्ञा अपने मन में करि लेवै, तौ उदार चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज अपनी निर्हेतुक कृपा द्वारा वाकी प्रतिज्ञा कूँ पूरी करि देवैं हैं।)

श्रीबिहारीदास हरिदास कौ दुर्लभ दरसन पाइ।
अंग-संग नित्यबिहार में लीनों मृतक जिवाइ॥

बाँके विरद बुलावत सांचे।
सर्वसु रीझ देत रसिकनि कौं गुन गावैं अरु नांचे॥
आपुन हूँ मिलि हँसत हँसावत सुख पावत रुचि रांचे।
श्रीबिहारीदास प्रेम की परिपाटी कबहूँ उमचि न मांचे॥१५७॥

श्रीबिहारीजी महाराज को साँचो वाँको विरद समस्त जगत में प्रसिद्ध है। क्योंकि आप ही एकमात्र ऐसे अद्भुत रिझवार-सिरोमनि हैं, जो अपने रसिकन कूँ सर्वस्व दै, बिनके गुन गाइ-गाइ कें सतत नाचै हैं, और बिनसों मिलि, परस्पर हँसते हँसामते भये, सुख पाइ-पाइ कें बिनकी ही रुचि में राचे रहैं हैं।

मानो काहू साधक ने कह्यौ कि हे महाराज ! हम तो बहुत दिनन तें श्रीबांके बिहारीजी महाराज के ही है रहे हैं, मोपै या प्रकार कृपा कबहूँ नाँइ भई है, तापै आपने कह्यौ कि हे भाई ! जैसे पति-पतिनी के, पिता-पुत्र के, रूप-गुनन की प्रसंसा सुनि, विचारि-विचारि कें मन ही मन रीझि-रीझि फूलैं हैं ताही रीत्यनुसार श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजी महाराज कूँ अपने प्रानन के हू निज प्रान समझि, विनकी अति सरस रसीले रूप के महामाधुरीमय विहार कूँ मन ही मन विचारि एवं सुनि रीझन में विवश होइ, या प्रेम परिपाटी ते तुम कबहूँ उमँगि-उमँगि कें नाँइ माचे हो।

दीनानाथ कब करिहौ कृपा मोकौ रहिहौं चरननि पासा।
चरननि चित लाउँ गुन गाउँ पाउँ प्रेम प्रकासा॥
नील सुपीत हरित मनि कंचन धरि हौं दुति बासा।
हरषि हरषि मौंन रहौं निरखौं नव नित्य विलासा॥
पतित पावन भक्ति भावन पूरिहौ मन आसा।
इहि भरोसे रटत रहत नित नित्य बिहारीदासा॥१५८॥

फिर आप श्रीबिहारीजी महाराज सौं प्रार्थना करते भये बोले कि हे दीनानाथ ! ऐसी कृपा मोपै कब करोगे, जोकि मेरे हृदय में प्रेम कौ प्रकाश होइ, सदाकाल आपके श्रीचरनकमलन के निकट रहि, चित लगाइ गुनन कूँ गायौ करूँ। नील-सुपीत-हरित-कंचन मनि-सदृस आप दोऊन की दुति कूँ अपने हृदय में निरंतर बसाइ कें राखूं। आनन्द में प्रसन्न होय-होय मौन रहि, छिन-छिन, नवनवाइमान आपके रस बिलासन कूँ निरखतो रहूँ।

हे समस्त पतितन कूँ पावन करिदेवारे, भक्त मनभावन मेरी या आसाकूँ कब पूरी करौगे। मैं याही भरोसा तें नित-नित आपके नाम-गुनन कूँ रटतो रहूँ हूँ।

अपनों करि काहे बौरावौ।
करुनानिधि नित विदित जगत जस हमहि कहा जो विरद लजावौ ॥
उक्ति जुक्ति बिनती संभ्रम तें कहत रहत दुख दोष नसावौ।
अपनी रुचि राचौ विरचौ तुम प्रेम परसि कैसेंई बनावौ ॥
ज्ञानी अभिमानी हौं नाहीं जन जाने कछु कहौं कहावौं।
तुमहि न दोस लगै न मोहि अहंकार सु मोमन मतें दृढावौ ॥
मोहि न सकुच होइ न तुम्हें झुकि तिहीं रीति पग धरनि धरावौ।
श्रीबिहारीदास प्रभु सब सुखसागर त्योंही राखौ ज्यों तुम सुख पावौ ॥१५८

हे करुनानिधि, जब आपने मोकूँ अपनों करि लीन्यौ है, तब मेरे मन कूँ इत-उत माऊँ काहे कूँ भटकाइ रहे हो। यह अति उज्ज्वल जस समस्त जगत में आपको सर्वोपरिता ते विदित है, वाकूँ ही यदि लज्जा भई तो हमारो ही कहा बिगरेगो। मैं अनेक उक्ति-जुक्ति, बिनती एवं संभ्रम तें सतत कहतो ही रहूँ हूँ कि मेरे दुख-दोषन कूँ आप कैसे हूँ कृपा करि कें नष्ट करि देउ। अपनो रुचि अनुसार ही आप राचो-विरचो, किन्तु मेरो सपरस प्रेम ते कैसे हू बनाइ देवो। ज्ञानी-अभिमानी मैं नाँइ हूँ, अपने कूँ आप को ही जन समझि कें कछु कहि-सुनि रह्यौ हूँ। मेरी मन-बुद्धि कूँ आप कृपा करि कें, ऐसी दृढ़ करि देवो, जासों आपके प्रति तो काहू प्रकार को दोष नाँय लगि, आपकूँ झुकनों नाँइ परे, और मेरे कूँ कबहूँ अहंकार नाँइ हैकें, आपसों काहू रीति को संकोच नाँइ रहै। हे सबसुखसागर हमारे प्रभू ! जैसे-जैसे आप सुख पावो, ताही भाँति मोकूँ आप चलावो।

कहा घटत अभिमान कियें बिजु ।
भूल्यौ फूल्यौ फिरचौ बहुत दिन भली करै जो तौ अजहुँ तिजु ।।
भजन न जानि भयौ हरि चेरौ ह्वै है भट भेरौ भये खिजु ।
सुभग स्याम कौ सरन छांडि कत काम क्रोध मद मोह बँध्यौ रिजु ।।
जाति रूप कुल सील न मानत राना रंक न सुघर सुपच द्विजु ।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुलबल चरनकमल रतिमानि अनन्य निजु।।१६०

फिर आप आश्रितन कूं समझाते भये बोले कि हे भाई ! हम श्रीबिहारीजी एवं श्रीस्वामीजी महाराज के हैं, या अभिमान करिबे में तुम्हारो कहा घटै है । बहुत दिनन तें बिनकूं भूलि, अग्यान में फूले-फूले तुम फिर रह्यौ हो, बहुत भली करो, यदि आज हू तुम इन सब भूलन कूं त्यागि, श्रीबिहारीजी महाराज के ह्वै जाओ । तुम भजन के स्वरूप कूं भलीभाँति समझि, श्रीहरि के चेरे नाँइ ह्वै जाओगे, तौ यमराज ते भटभेरो होइबे पै वो तुम पै खिझैगो । परम सुन्दर श्रीबिहारीजी महाराज की चरन-सरन छाँड़ि, काम-क्रोध, मद-मोह की रस्सी में काहे कूं बँध्यौ रहिबो चाहो हो ? श्रीबिहारीजी महाराज के दरबार में जाति, रूप, कुल, सील, राजा, रंक, सुघर-सुपच एवं द्विज आदि काहू की अपेक्षा नाँइ है । श्रीस्वामीजी एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू के कृपा बल तें श्रीबिहारीजी महाराज के चरनकमलन सों निज अनन्य नातौ मानि प्रेम सों भजन करौ ।

को जाने हरि क्यों रुचि माने ।
काहू कों श्रम करवाय बहुत दिन काहू की बात सहज ही बाने ।।
पंडित सुघर साखि देवे कों बहुत पचत कवि कोटि सयाने ।
कूर कुरूप न बस काहू के जाको फबै सु परि परि ताने ।।
महा प्रपंच रच्यो माया कौ ऐसौ को बपुरा जु पिछाने ।
श्रीबिहारीदास प्रभुकी अद्भुत गति नेति नेति श्रुति सुमृति बखाने ।।१६१।।

श्रीहरि कहा बात पै प्रसन्न होइ हैं, याकूं कोऊ नाँइ जानि सकै है । काहू पै तो बहुत दिनन ताऊँ अनेक प्रकार के परिश्रम करावैं हैं, और काहू की बात सहज में ही बनाइ देवें हैं ।

श्रीहरि की प्रसन्नता के उपाय बताइबे के ताईं, बड़े-बड़े विद्वान पंडित, सयाने-सयाने अनेक कवि, प्रमान दै-दै, कोटिन रीति सों पचैं हैं, तौहू कोऊ निर्णय

नाँइ करि सकें हैं। हमारे श्रीबिहारीजी महाराज कूर-कूरूप काहू के बस नाँइ हैं, जाकी जैसे बनि जाय है, वो ही अपनी लम्बी-चौड़ी हाँकै है।

माया को महा प्रपंच सागर स्वरूप, ठाट-बाट आपने ऐसो अति अद्‌भुत रचि राख्यौ है, जाकूँ ऐसो बापुरो कौन है? जो पिछानि सकै? हमारे प्रभु की ऐसी अति अद्‌भुत गति है, जाकूँ श्रुति-स्मृति हू नेति नेति कहि कें ही अपने वर्णन कूँ समाप्त करें हैं।

अपने जानि भजन निज नेमें।
तिनकौं आप स्याम श्रीस्यामा संथा देत पढावत प्रेमें।।
साधन सकल सिथिल मन कीने सेवत द्वै तन मृदु मनि हेमें।
श्रीबिहारीदास हरिदास सुविद्या यह निज धन धरि राखि हृदै में।।१६२।।

श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रित-जनन पै श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की अद्‌भुत रीझन कूँ वर्णन करते भये आपने कह्यौ कि हे भाई! जो कोऊ विधि-ज्ञान, ईश्वरता, महत्ता आदि प्रेम-विरोधी भावन ते सम्यक प्रकार मन हटाइ, एकमात्र अपनायसमय दृढ़अनन्य-भाव सों श्रीस्वामीजी महाराज को भजन करें हैं, तिन जनन पै श्रीजुगल अति रीझि स्वयं ही वाकूँ क्रम-क्रम सों संथा दै-दैकें प्रेम कूँ पढ़ावै हैं। पढ़ते-पढ़ते वो साधक अपने मन तें यावत् और-और साधनन कूँ सिथिल करि, जब एकमात्र श्रीजुगल कूँ ही अनन्य प्रेम सों सेवन करन लगै, तब हीं आपके मन कूँ संतोष होइ है।

ऐसो अद्‌भुत बनाव साधक को कैसे बनै, ताकूँ लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि हे भाई! या सर्वोपरि बस्तु के प्राप्त करिबे की सबतें ऊँची सुविद्यारूपी निज धन श्रीस्वामीजी महाराज के नाम, रूप, गुण-जस तथा अनन्य संबंध कूँ अपने हृदय में छुपाइ, सदाकाल दृढ़ता ते राखो।

कहिये बात हितू अपने सों मन माने जाने जो जीकी। अपनी सुहाइ स्वारथ की जेती तेती तिनकौं तैसिय सब नीकी।। तिन सों मौन ह्वै रहियै पूछै हूँ कहिये न कछु कहा स्वाद बात कहत रसना होत फीकी। श्रीबिहारिनदासि कों स्यावासि देत रीति मुकुटमनि कहत श्रीस्यामा स्याम हमरे मनमानी अनन्य गही नीकी।।१६३।।

नित्यबिहार प्राप्ति की या महाबिचित्र गाँस कूँ अपने मन में इतेक छुपाइ के

राखौ, कि जब ताऊँ तुमने ऐसो हितैषी नांइ मिलै, जोकि तुम्हारे मन में तो बापै पूरो भरोसो होइ, और वो तुम्हारे जिय की बातन कूँ भलीभाँति जानतो होइ, तब ताऊँ काहू कें पूछिबे पै हू मत कहौ। जिन लोगन कूँ प्रेमविहीन अपने स्वार्थ की ही बात कहिबो, सुनिबो अच्छो लगै, बिनसों तैसी ही साधारण बात कहि-सुनि कें अपनो पिंड छुड़ाय लेनो चहिए। क्योंकि बिना हितैषी अपनी बात कहिबे में कोऊ स्वाद नांइ आइ कें, उल्टी अपनी रसना ही फीकी परि जाइ है।

हमारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कूँ श्रीस्वामीजी महाराज के प्रेम की ही अनन्य गटी अति नीकी लगै है, ताते वे रीझि-रीझि वाकूँ सतत स्याबासी देवैं हैं।

बुरौ मानियत कब तें काकौ।
काहू कों घर द्वार न उझकत जिन्हें बिसन निज कुंज लता कौ॥
खेलत हँसत हँसावत सुख दै बढ्यौ लोभ मन या ममता कौ।
देखत जियत विहार अहारै जीवनमुक्त तिन्हें डर काकौ॥
विनती सुनों विवेकी साँचे झूठै एक डगर जिन हाँकौ।
बिनु समझैं अपराध परत सिर कंचन कांच कसौटी आँकौ॥
ताकौ सुजस बखानत श्रीमुख स्यामास्याम कहत जस जाकौ।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुल बल भजन अनन्य सभा में साकौ॥१६४॥

यदि कोऊ साधक अपने मन में ये सोचै कि हम सबतें अलग श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मंदिर के ही नित्यबिहार कों अनन्य भाव तें भजन करैंगे, तो बहुत लोग हम सों बुरौ मानि जाँइगे, ताको लक्ष्य करि, आपने कह्यौ कि हे भाई! कौन-कौन नें किन-किन पै कब सों बुरो मान्यौ है। अर्थात जगत में जितेक ऋषि, महर्षि एवं कबिजन, पुरानन के वक्ता आदि महत-पुरुष भये हैं, तिन सबन के बर्नन में भेद-बिभेद स्पष्ट दीखै है। तापै जिनकूँ श्रीवृन्दावन निज-कुंज लता-मंदिर के सर्वोपरि नित्यबिहार को व्यसन होइ हैं, वे काहू के घर-द्वार पै, आसा-लगाय कें नाँइ झाँकें है, अपने प्रान-जीवन श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के संग सतत खेलते-खिलामते, हँसते-हँसामते, बिनकी ही ममता के लोभ में परे भये जीवन्मुक्त होय, अहार स्वरूप निजबिहार कूँ देखि-देखि कें अति निर्भीकता पूर्वक जगत में जीवैं हैं।

फिर आप विवेकी जनन तें बिनती करते भये बोले कि आप लोग समस्त रस-देसन के स्वरूप कूँ समझिबेवारे हो, साँचे रसिक-अनन्य-बिलासी एवं झूठेन कूँ

एक ही करि कें निरूपन काहे कूँ करौ हो ? वास्तविक स्वरूप कूँ यथार्थ निर्धार किये बिना कहिबे में उल्टे सिर पै अपराध ही परै है। याते आप लोगन ने कंचन तथा काँच कूँ कसौटी पै कसि, भलीभाँति निरधार करि, कहनो चहिये।

जो जन श्रीजुगल के जसन कूँ छान-बीन करि, भलीभाँति समझाइ-समझाइ, सर्वोपरिता तें गावै हैं, बिनके सुजस कूँ स्वयं श्रीस्यामास्याम श्रीमुख तें बेरि-बेरि बखान कियो करैं हैं।

याते हे बिहारीदास ! श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू के कृपा बल पै अपने अनन्य भजन कूँ महती सभान में हू निसंकता पूर्वक कहौ।

ऐसो कौंन गर्व गंजन मन निर्मल करैं मंजन।
महा प्रचंड दंड को दाता ताहि न समझत विमुखनि कौ मुख भंजन ।।
राखत मान निदान करत हरि रसिक अनन्यनि कौ मन रंजन।
श्रीबिहारीदास अनयास सुखद श्रीहरिदास दिये स्यामा स्याम से सज्जन १६५

श्रीगुरुदेवजू के श्रीमुख सों या प्रकार की बात सुनि, साधक के मन में जब यह चिंता भई कि महती सभा में या बात कूँ कहिबेवारे हम एक-दो जन ही होइगें, तब कैसे होइगी ? ताको लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि समस्त गर्वन कूँ चूर्न करि, मन कूँ मंजन सदृस अति निर्मल, उज्ज्वल बनाइ देवैं ऐसो श्रीबिहारीजी महाराज सदृस और है ही कौन ? अपने अनन्य-जनन के दोषीन कूँ अति प्रचंड दंड दै, मुख भंजन करि, निज रसिक अनन्य उपासकन कौ सदाकाल मान-सनमान दैकें ही राखै हैं। याही ते श्रीस्वामीजी महाराज नें कृपा करि श्रीस्यामा-स्याम सरीखी सुखदाई महा-निधि हमें अनायास में ही दै दीनी है।

देखत बदन प्रसन्न होत मन आनंद की निधि कुंजविहारी।
अपनों करि राखौ मन मोहन मोहि मया करि सब सुखकारी ।।
हों कपटी कूर कृपन कायर अति तातें कियें करत मनुहारी।
अपने बल-बुधि परत न आसंग पासंग परसन कृपा तिहारी ।।
तुम सुनियत परम उदार चहूँ जुग साखि सदा सेवक भैहारी।
अपनों विरद विचार चतुर चित करि सुदृष्टि इत नेंकु निहारी ।।
द्वारै दुलराऊँ जस गाऊँ पाऊँ दरस प्रसाद बिहारी।
श्रीबिहारीदास प्रभु जाऊँ कहाँ अब तुव सरनागति गतिव हमारी ।।१६६।।

फिर आप अद्भुत आनंद को निधि श्रीबिहारीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये कहिबे लगे कि—सब सुखकारी आपको श्रीमुखचंद दरसन करत खेम मेरो मन अति प्रसन्न है जाइ है। हे मनमोहन ! अपनी अद्भुत कृपा सों, मोह-ममता द्वारा अपनों करिकें मोकूँ राखि लेउ। मैं अनेक दोषन ते भरचौ भयौ, अति कपटी, कूर, कृपन, कायर हूँ, ताते बार-बार मैं आपकी मनुहार करूँ हूँ। अपनी बुद्धि, बल ते मेरी नेकहू हिम्मत नाँइ परै है। यदि आपकी कृपा कौ लवलेशमात्र हू सपरस है जाय तो, मैं समस्त रीतिभाँति सों निहाल है जाऊँगो। मैंने महतन के श्रीमुख तें सुन्यौ है कि—आप चारों जुगन में परम उदार, एवं अपने भक्तन के भय कूँ सदा हरन करिबे-वारे हो। हे चतुर चूरामनि ! चित्त में अपनों विरद बिचारि, नेंकु सुदृष्टि करि, मेरे माऊँ देखो। मैं एकमात्र इतेक ही चाहूँ हूँ कि आपके द्वार पै परचौ-परचौ आपके रस-जसन कूँ दुलराइ-दुलराइ सदाकाल गायौ करूँ, और आपके दरसन-प्रसाद पायो करूँ। हे बिहारिदास के प्रभु आपकी शरनागति के अतिरिक्त मोकूँ और कहूँ ठौर नाँइ है, याते अब मैं कहाँ जाऊँ ?

हो कृतग्य कृपानिधि तुमरे कौंन कौंन उपकार सम्हारौं।
कहि न सकौं गुन कोटि जनम धरि रोंम रोंम रसना जो धारौं ॥
उत्तम जन्म भजन यह औसर मौसर होत न काज संवारौं।
भाव भक्ति कौ भेद बतायौ श्रीगुरु बचननि तें प्रतिपारौं ॥
सब विपरीत आचरत हों खरि पलटै कूर कपूरहिं डारौं।
करत बिषै व्योपार बिकल मति हौं सठ हाँनि नफा न विचारौं ॥
जहाँ जहाँ विपति करी सब संपति अनसमझें कृतघन हौं हारौं।
श्रीबिहारीदास हरिदास कृपा तें कुंजबिहारी अब छिन न बिसारौं ॥१६७॥

हे कृतज्ञ सिरोमनि, कृपा के निधि ! आपके कौन-कौन उपकारन कूं— मैं सम्हार सकूँ हूँ। यदि कोटानुकोटि जन्म धारन करि, मेरे रोम-रोम में रसना है जाइ, तौहू आपके गुनन कूँ पार नाँइ पाइ सकूँ हूँ। अति उत्तम मानव जन्म, भजन को सुन्दर अवसर पाइ कें हूँ, मोसों अपनो काम नाँइ बनायो जाइ है।

जिन गुरुन ने आपके भाव-भक्ति कौ भेद बतायो, तिनके वचनन कूँ कृपा करि कें आप प्रतिपालन कराओ। क्योंकि मेरे सब आचरन ऐसे विपरीत हैं, जैसे कोऊ कूर, अपनी झोली तें कपूर कूँ डारि, खर की गाँठि बाँधि लेवै। सब दिन बिषय-

व्यौपारन में, मेरी मति ऐसी विकल है रही हैं, जोकि मैं अपनी हानि-लाभ कूँ हूँ नाँइ बिचारि सकूँ हूँ। मैं ऐसो महामूर्ख कृतघ्नी हूँ कि बिना विवेक कें, जहाँ-तहाँ विपति रूपी ही संपत्ति मैंने संग्रह करि लीनी है। फिर आप आश्रितन ते कहिबे लगे– श्रीस्वामीजी महाराज ने मोपै ऐसी अद्‌भुत कृपा कीनीं हैं कि अब मैं श्रीकुंजबिहारी-विहारिनीजू कूँ एक छिन हूँ नाँइ बिसारूँ हूँ।

स्याम संधि सूझे बिन बूझे अजहूँ कछु आइ जाइबो फिरि।
अंकुर नूत प्रवल ग्याँन अभिमाँन पवन के बेग जात किरि ।।
धार परचौ दीसत दीरघ सब जो हरि कृपा करी न चढ्यौ गिरि।
श्रीबिहारीदास निहकाँम भजन बिन कामक्रोध मदमोह फव्यौघिरि ।।१६८

साधकन ते आप कहिबे लगे कि हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज कौ अद्‌भुत स्वरूप सुख की संधि समझे-बूझे बिना जगत में जन्म-मरनरूपी आवागमन बन्यौ ही रहै है। यद्यपि सत्संग द्वारा प्रबल ग्यान कौ नयौ अंकुर हू हृदय में उपजि जाइ, तौहू अभिमान रूपी पवन चलिबे ते वो सूखि जाइ है। श्रीबिहारीजी महाराज की कृपारूपी पर्वत पै बिना चढ़े, माया नदी के प्रबल, प्रवाह में परे भये जीवन कूँ आप अति दूर दीखैं हैं। हे बिहारीदास ! निष्काम भजन के बिना सभी जीव काम, क्रोध, मद, मोह के घेरा में घिरे भये फबि रहे हैं।

कहा गर्वै रे मृतक नर।
स्वाँन स्यार कौ खाँन पाँन तन एंठि चलत रे निलज निडर ।।
यहै अवधि बहु विदित जगत में बाँभन बडे भये बीरबर।
मरत दुख्यौ हियौ न जियौ कियौ न सहाउ साहि अकबर ।।
त्रासनि निकस न सकत सुर असुर राखे रोंथि काल कर तर।
इतहि न उतहि बीच ही भूल्यौ फूल्यौ फिरत कौन के थर ।।
सुखद सरन हरि चरनकमल भजि वादि फिरत भटकत घर घर।
श्रीबिहारीदास हरिदासविपुल बल लटकि लग्यो संग सर्वोपर ।।१६९।।

अरे मृतक मानव ! तू काहे कूँ व्यर्थ के गर्व में गर्बीलौ है रह्यौ है, जा देह कूँ पाय, निर्लज निडर होइ, सब सों ऐंठ-ऐंठ कें चलै है, वो तेरी देह एक दिन स्वान, स्यार के खाइबे की संपत्ति है जाइगी। देखो, यह बात जगत में भलीभाँति बिदित है कि यावत देहधारिन में बाँभन देह सबतें उत्तम मानी जाइ है। तिन बाँभनन में हूँ

बीरबल बहुत बड़े भये हैं, बिनके मृत्यु के समय सम्राट अकबर कौ हृदय यद्यपि बहुत दुख पायौ, तौहू वाकूँ जीवित वो नाँइ राखि सक्यौ। कराल काल ने सुर, असुर आदि सबन कूँ ऐसो रौंथि राख्यौ है कि वाके त्रास तें आज ताऊँ कोऊ निकसि ही नाँइ सक्यौ ? तेरी स्थिति न तो श्रीभगवद् भक्तन में ही है और न श्रीहरि के ही घर में, बीच में ही भूल्यौ भयौ तू, कौन के ठिकाने पै फूल्यौ-फूल्यौ फिरै है। याते मैं तोसों कहूँ हूँ कि घर-घर को भटकिबो छाँड़ि, सर्वसुखदाई श्रीबिहारीजी महाराज की सरन में चल्यौ जाइ।

देखो, हम श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीस्वामी बीठलविपुल देवजू की कृपा-बल तें सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी जू के अद्भुत सुख-संग में धाइ कें लगि गये हैं।

रीझ्यौ राड राँड के चामें। सुमिरत नाँहि हरि अमृत नामें ॥
चुपरत सोंधे अतर फुलेल। सो तन छूटत मारियत डेल ॥
विट्‌ क्रम भस्म सु ताकी रीति। तासों पतित करत हठि प्रीति ॥
स्याम उदार करत सब काँम। उझकत फिरत पराये धाँम ॥
बीते बहुत जनम जुग जाँम। छांडत हठ न पर्‌यो पथ बाँम ॥
कहि सुनि कथा न अधम घिनाय। फिरि फिरि सोवरि सूँघन जाय ॥
जो बरजै तौ उठै रिसाय। श्रीबिहारीदास तासों न बसाय ॥१७०॥

अमृत-सदृस श्रीहरि के नाम कूँ सुमिरन नांइ करि, चमारन की नाँई राँडन के चमड़ा पै ही तू रीझि रह्यौ है। सुगंधित अतर-फूलेलन तें तू, जा देह कूँ चुपरि रह्यौ है, वो देह कालरूपी डेल के लगत खेम ही एक दिन छूटि जाइगी। या देह को अन्तिम परिणाम एकमात्र विट-कृम-भस्म ही है, वासों, पतित, तू हठपूर्वक प्रीति करि रह्यौ है। मैं तोते कहूँ हूँ कि तू काहे कूँ पराये घरन में उझकतो डोलै है, उदार सिरोमनि श्रीबिहारीजी महाराज तेरे सब काम सहज में ही बनाइ देवैंगे। बहुत जुग एवं जन्म डोलते-डोलते तेरे ऐसे ही बीत गये हैं, तौहू तू बहिर्मुख पथ में परि, अपनी हठ कूँ नाँइ छाड़ि रह्यौ है। अरे अधम ! तुमने कितेक कथा कहि-सुनि लीनी, तौहू तेरे मन में घृना नाँइ होइ कें, बेर-बेर उन्हीं अपार दुखरूपी योनिन में जाइ-जाइ कें परै है। यदि तुम्हें कोऊ बरजै तौ उल्टे रिसावन लगौ हो, याते हमारो हू कछु बस तुम सों नाँइ चलै है।

जो पै मन की दुविधा न गँवाई । ताके दरस परस करि हरि न हिताई ।।
सेवै आन आन कछु गावै । बिन बिस्वास न दास कहावै ।।
अपनी कुटिल कला नहिं खोई । पूजा करत प्रसन्न न होई ।।
हरि हरि करत हरत हरि भै भ्रम । बिन सतभाइ करत सबदिन श्रम ।।
सौ मन रासि सकेलि उठाई । इक कन आस अनत नसि जाई ।।
साधन श्रवन सुनें सब कीनें । तन पचि मरै बिना मन दीनें ।।
जहाँ मन तहाँ मनकी मनसा धरि । अपनें प्रभु सों खेलि नित निडरि ।।
अपने झूठन आपु लजाई । कौन धों साँच अनन्य कहाई ।।
कुवँरि किसोरी सुभाव कलपतरु । जैसो जाचक तैसो देत तिन्हैं वरु ।।
श्रीबिहारीदास हरिदासहि गावै । विपुल प्रसाद प्रेम पद पावै ।।१७१।।

जिन लोगन ने अपने मन की दुबिधा, नाँइ मिटाई है, तिनकूँ दरस-परस करते भये हू श्रीहरिसों हित नाँइ होय है, वे इहलोक-परलोक के संबंध मानि, सेवैं तो काहू को हैं, गुन काहू के गावें हैं, याते बिना बिस्वास श्रीहरि के दास नाँइ कहाइ सकैं हैं। अपने मन की कुटिल-कलान कूँ नाँइ खोइबे के कारन, पूजा करते भये हू बिनतें श्रीहरि प्रसन्न नाँइ होइ हैं। श्रीहरि तो साँचे भाव ते नेक हरि-हरि करत खेम समस्त भय एवं भ्रमन कूँ हरन करि लेवैं हैं, और बिना सतभाव के जो भी कछु करौ केवल परिश्रम ही होइ है।

जैसे कोऊ व्यक्ति सौ मन रासि कूँ एकत्रित करि उठाइ लेइ, तैसे ही कोऊ श्रीहरि के प्रसन्न करिबे के ताईं बड़े-बड़े साधन करै, किन्तु एक कनमात्र हू आसा दूजे की मन में राखिबे ते वाके सब साधन निष्फल है जाँइ हैं। बहुत से साधक ऐसे श्रद्धालु होइ हैं, कि जहाँ-तहाँ जो कछु साधन सुनें, वे सब करन लगें हैं, किन्तु बिना मन दियें केवल देह तें पचि-पचि कें ही मरिबो है। याते साधक ने भलीभाँति सोचि-समझि कें जहाँ अपनो मन होय, तहाँ ही मनसा स्वरूप लक्ष्य को करि, अपने प्रभु सों नित्य निडर ह्वै मनभाँवतो खेलनो चहिये। बिना मन दियें सब साधन झूठे ही होइ हैं, तिनतें तो अपने कूँ ही लजावनो परै है। या रहनी ते रहते-रहते, कब तुम श्रीबिहारीजी महाराज के साँचे अनन्य कहाइ सकौगे ? हमारी प्रानप्यारी श्रीकुँवरि-किसोरीजू कौ सहज सुभाउ कलपवृक्ष सदृस है, जो जैसो जाचक बिनकी शरण में जाइ है, तैसो ही बर वाकूँ दै देवैं हैं। याते हम सदाकाल एकमात्र श्रीस्वामीजू कूँ

ही गावैं हैं, जासों श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू की कृपा तें सर्वोपरि प्रेम-पद हमने सहज प्राप्त करि लीन्यौ है।

जितनें ठौरनि मन धरै तिन तिन सों ममता करै तितनों ही दुख पावैगौ। एक आराधें सब साधें तू एक अनेकनि सों जिन अरुझे अपने प्राँननाथ कब गावैगौ ।। बिना प्रतीत समीति न पावत योंही भ्रमत बहुत जन्म गमावैगौ। श्रीबिहारीदास अनन्य भजन बिन कृतघन कृपन तू कैसें धों मुख दिखरावैगौ ।।१७२।।

फिर आप आश्रित सों कहिबे लगे कि हे भाई ! या जगत में जितेक ठौरन पै तू अपने मन कूँ धरैगो, तथा जिन-जिन तें ममता करैगो, तितनों हीं तू दुख पावैगो। एक श्रीस्वामीजी महाराज की ही आराधना करिबे ते, सब काम तेरे सहज सिद्ध है जाँयेंगे। तू एक ही है, अनेकन सों अरुझिबे ते अपने प्राननाथ श्रीबिहारीजी महाराज के जसन कूँ कैसे गाइ सकैगो ? बिना दृढ़ बिस्वास के बिनकी प्राप्ति नाँइ करि, योंहीं भ्रमते-भ्रमते, अपने अनन्त जन्मनकूँ बेकार ही गँवाइ देवैगो। हे कृपन कृतघ्नी! अनन्य भजन किये बिना, श्रीबिहारीजी महाराज के आगे अपने मुख कूँ कैसे दिखाय सकैगो।

प्रीति न भली भजन बिन और।
कहा कहों काहू सुख पायो एक मन धरि द्वै ठौर ।।
श्रीबिहारीबिहारनिके चरनकमल तजि अनत देत चित तेव महामति बौर।
श्रीबिहारीदास थोरे मन उबिट्यौ कृपा करी सिरमौर ।।१७३।।

याही प्रसंग में और हू समझाते भये आपने कह्यौ कि हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज एवं श्रीस्वामीजू के भजन के बिना, और कहूँ प्रीति करिबो अच्छो नाँइ है। मैं तुमसों पूछू हूँ–एक मन कूँ द्वै ठौर धरिबे ते, आज ताऊँ कहा काहू ने सुख पायो है ? श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के चरनकमलन कूँ छाँड़ि जो जन अनत चित देवें हैं, बिनकी बुद्धि महा बाबरी है रही है। श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें, हमारो मन तो थोरे में ही सब तें उपराम है गयौ।

मेरो मन एक ही ठौर भलौ।
निस बासर जागत अरु सोवत सुपनेहूँ न चलौ ।।
श्रीबिहारी बिहारनि के पद पंकज यों अलि ह्वै अचलौ।
श्रीबिहारीदास वन बसत पाईयत संतत सुख अगलौ ।।१७४।।

हे बिहारीदास ! हमारो मन तो सदाकाल एक ही ठौर सर्वोपरि नित्यबिहार में लग्यौ भयौ ही भलौ है। हम यही चाहैं हैं कि रात-दिन जागते-सोते, सुपन में हूँ या रस ते कहूँ नाँइ चलि कें श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू के श्रीचरनकमलन में भौरा हैके अचल है जाइ। मानो साधक ने प्रार्थना कीनी कि–हे महाराज ! ऐसो अद्‌भुत सुख हमें कैसे प्राप्त होइ सकै है ? तापै आपकौ कथन है कि हे भाई ! श्रीवृन्दाबन में अखंड बास करिबे ते, सबते परे कौ संतत सुख सहज प्राप्त है जाय है।

सब बेली लागत ललचोंहीं।
बातें बहुत बनाइ चतुरई चलत आपनी गोंहीं ।।
दुरत न किये दुराव देखियत निपट उघारो ओंहीं।
आलस श्रम उपजावत हमकौं कहत सुनत अनखोंहीं ।।
कस न खटात समात न मोमन संसार की सकुचोंहीं।
श्रीबिहारीदास कौं रुचि उपजावत स्याम सुहाती सोंहीं ।।१७५।।

मानो साधक ने फिर प्रार्थना कीनी कि–हे महाराज ! हम तो बहुत दिनन ते श्रीवृन्दाबन में बसि रहे हैं, तौहू या सुख सों नेक हू भेंट हमारी नाँइ भई, तापै आपने कह्यौ कि हे भाई ! तुम्हारी समस्त बासनायें अभीं ताऊँ और-और लोभ-लालचन में ही ललचाइ रही हैं। बात तो तुम चतुराई ते बहुत लम्बी-चौड़ी बनाइ-बनाइ कैं कहि रहे हो, किन्तु चलौ हो सतत अपने सुख-स्वाद, स्वार्थन माऊँ। ऊपर की भाव-भक्तिन की बातन तें, तुम्हारी स्वार्थ की लालसा, नाँइ छुप कें, चौरें दीख रहीं हैं। या प्रकार की खाली बात बनाइबेवारेन ते हमें आलस एवं श्रम होइबे तें अनखावनी लगैं हैं। तुम केवल संसार के संकोच में ही परि, परमार्थ में नाँइ खटाइ रहे हो, ऐसी तुम्हारी बात हमारे मन में नाँइ समाइ रही है। हमें तो एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज के प्रेम की ही बात रुचिदायक लगैं हैं।

बहे जात संसार सिंधु में स्याम सु गहि कर काढे।
माया काल विघन न करि सकै चितवत हीं उत ठाढे ।।
इन्द्रहि देखि दुरावत दारिदु स्वान सुभाव न छांडे।
होत कहा अनसहै सुरनि कें सीस पाँव दै चाढे ।।
गनत न तृन बरषत सुमेर सुख अष्टमहा सिधि आढे।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुल बल सुदृढ प्रेम दिन बाढे ।।१७६।।

आप एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज के प्रेम की बात सों ही प्रसन्न होंइ हैं, यह सुनि, साधक के चित्त में चिंता भई कि—हम तो सतत मायारूपी संसार-सागर में ही बह रहे हैं, फिर श्रीबिहारीजी महाराज के प्रेम की बात, हम पै कैसे बनि आवैगी, ताको लक्ष्य करि आपने कथन कियौ कि हे भाई ! या संसार-सागर में हम हूँ ऐसे ही बहे जाइ रहे हे, किन्तु करुणासागर श्रीबिहारीजी महाराज ने ही हमारो हाथ पकरि, ऐसे निकासि लीन्यौ, जो मायाकाल कछु बिघ्न नाँइ करि, दूर ते ही देखते के देखते ठाड़े रह गये। स्वान सुभाउवारो इन्द्र, दारिद्र-स्वरूप अपने राज्य कूँ, भय सों छुपाइबे लग्यौ। ऐसे इर्ष्यालू देवतान की कछु बस नाँइ चलिबे के कारन हम बिनके माथा पै पाँव धरि के चढ़ि गये। अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिन के देवगन जो सदाकाल जीव कूँ माया में ही लिप्त रखिबो चाहैं हैं, बिनकी कछु नाँइ बसाइ सकी।

अब हम सर्वोपरि नित्यविहार सुख के आगे, और-और सुमेरु सदृश सुखन की वर्षा एवं अष्ट महासिद्धिन कूँ तृन के समान हू नाँइ गिनै हैं। श्रीस्वामीजी एवं श्रीस्वामी बीटलविपुलदेवजू की कृपा-बल सों हमारे दृढ़ ते हू दृढ़ प्रेम रात-दिन बढ़चौ ही करें हैं।

मैं पायौ हरिधन नाम मेरे कहा चहिये।
और श्री वृन्दावनधाम मेरे कहा चहिये।।
बिनु विवेक भ्रम भूलि स्याम तजि कत वृथा दुख सहिये।
सेवत सदा बढै न घटै व्यापै आपु अगनि ना दहिये।।
तसकर त्रासन बास बसै चहिये न कहूँ गहिये।
निर्भै प्रगट पुकारत मुनिगन इहि अवलम्ब निबहिये।।
नित संपति दंपति दुलरावत सुजस बखाँनत रहियै।
वेद पुरान प्रवान नाम गुन उपमा अमित कहा कहियै।।
श्रीबिहारीदास विस्वास भगति ही श्रीगुरु प्रताप सुख लहियै।।१७७।।

हे भाई ! जब हमने साक्षात श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं श्रीस्वामीजू महाराज कौ नामरूपी अद्भुत धन मिल गयौ, जासों इहलोक-परलोक के समस्त कार्य भली-भाँति सफल है सकैं हैं, और निजमहल श्रीवृन्दावन कौ बास मिलि गयौ, फिर तुमहीं बताओ—अब हमें और कहा चहिये। बिना विवेक भ्रम-भूलि में परि, श्रीबिहारीजी महाराज कूँ छाँड़ि, काहे कूँ वृथा दुःखन कूँ सह्यौ करें। सदाकाल बढ़िबेवारो, महा

सुखदाई-अति बिचित्र हमारे या धन कूँ, नाँइ सेइबे के कारन, लोग अपने आप आँच में दह रहैं हैं। सतत दुखदाई जागतिक सुख-सम्बन्ध स्वादरूपी चोर, तुम्हारे चारों ओर बसि रहें हैं, इनकूँ ग्रहन करिबो तो दूर की बात है, भूल में हूँ इनकी चाहना मत करियो। महामुनिगन अति निसंकता तें चौरें पुकारि-पुकारि कें कहैं हैं कि– श्रीहरि के नाम-धाम को आश्रय लै, जन्मभर निभाइ देउ। श्रीजुगलरूपी संपत्ति कूं निरंतर दुलराइ-दुलराइ, बिनके सुन्दर जसन कूँ बखानते रहौ। बेद, पुरान हूँ याही बात कूँ प्रमानित करें हैं कि श्रीहरि के नाम-गुनन की ऐसी अद्भुत, अमित महिमा है, जाकूँ कोऊ बर्नन करि ही नाँइ सकै है। तौहू हे बिहारीदास ! भक्तजन ही या बात पै विस्वास करि, श्रीगुरुन् के प्रताप ते या महासुख कूँ लहैं हैं।

श्रीहरिदास रसिक बडभागी।
स्यामा स्याम भजन कबहूँ के जिन देह सनेह न त्यागी ।।
जीवन मुक्ति अनियास कृत हरि रस वस अनुरागी।
श्रीबिहारीदास श्रीगुरु प्रताप तैं विषया विषै न लागी ।।१७८।।

श्रीबिहारीजी महाराज के रसिक अनन्यदास सबन तें बड़भाग्य-सिरोमनि हैं, क्योंकि श्रीजुगल के भजन कूँ देह की ममता में परि, छिनमात्र के ताईं हूँ जिनने नाँइ त्याग्यौ। वे सदाकाल जीवनमुक्त, देह की क्रियान कूँ अनायास ही करते भये श्रीहरि के रस के वस होइ सतत अनुरागी बने रहैं हैं। ऐसे श्रीबिहारीदासन कूँ श्रीगुरुन के प्रताप तें बिषयरूपी बिष, कबहूँ लगि ही नाँइ सकै है।

मैं संग पायौ ओर निबाहू।
रसिक अनन्यनि सौं मन मान्यौ अब न बूझि हौं काहू ।।
छांडे कूर कृपन करमठ सठ जिनके मन न उमाहू।
मारग विविध बहुत बहकावत उपजावत दुख दाहू ।।
श्रीवृन्दावन धन धर्म राधिका लीनैं गहि बल बाहू।
श्रीबिहारीदास कौं सुलभ भयो सुख दुर्लभ अगम अगाहू ।।१७९।।

फिर आप बोले कि हे भाई ! या जगत सों लैकें श्रीनिकुंजमंदिर ताऊँ निबाहिबेवारे, रसिक अनन्यन कौ संग हमें मिलि गयौ है, बिनसों ही हमारो मन भलीभाँति मानि, अब काहू तें कछु पूछिबे की आवश्यकता ही नाँइ रही है। कूर, कृपन, कर्मठी मूर्खनकूँ तौ हमने भलीभाँति त्यागिही दीन्यौ है,क्योंकि बिनके जितेक बिधि-आचरन हैं,

वे सब अपने स्वारथ भाव तें ही भरे भये होंइ हैं। वे काहू पै प्रेम द्वारा इहलोक-परलोक के अपने सुख-स्वार्थन कूँ न्यौछावर करिबो जानैं ही नाँइ है। स्वयं अनेक मार्गन में बहकते भये, औरन कूँ हूँ बहकाते रहैं हैं, जाकूँ देखि हमारे चित्त में दुःख तथा डाह उपजन लगै है। दुर्लभ ते हू दुर्लभ, अगम कूँ हू अगम, अगाध ते हू अति अगाध, श्रीवृन्दावनधाम, श्रीस्वामिनीजू को रसिक अनन्य निज धर्म, सर्वोपरि नित्य-विहार रसरूपी अद्‌भुत धन कूँ, श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते सहज-सुलभ प्राप्त करि, दृढ़ता पूर्वक हमने गहि लीनौ है।

अब तें मन कहि कहा विचारी, काहे कौं सहत दुसह दुख भारी।
दिन सौं जनम भजन यह औसर बहुरि कुकाल कठिन निसिकारी॥
दुर्‌यौ जठर जबहि तिहिं दिन बढी विपति सु कस न सम्हारी।
टँग्यौ रह्यौ दस मास उर्धमुख हा ब्रजनाथ हौं सरनि तुम्हारी॥
खान पान अभिमान अधम गति आतुर ह्वै आपदा न टारी।
चल्यौ और ही चाल न चितवत जानत तैं यह बाट बिसारी॥
खायौ परि सोयौ सब खोयौ जोयौ मुख सुत बित अरु नारी।
आदि अंत संतत दुखदानि संग बँध्यौ सुतौ कहि कौंन चिन्हारी॥
को काका बाबा को भैया नाहिं काहू कौ कोउ हरि बिनु हितकारी।
श्रीबिहारीदास ह्वै अजहुँ लौं भजि राधापति पिय कुंजबिहारी॥१८०॥

अपने मन ते फिर आप कहिबे लगे कि हे भाई! सब बातन कूँ तैंने भलीभाँति सुनि-समझि लीनी है। अब तू कहा बिचार करै है? जब मन नें उमँगि के कोऊ उत्तर नाँइ दीन्यौ, तब आप बोले—या प्रकार के अति दुसह-दुखन कूँ तू काहे कूँ सहन करै है। जैसे दिन में सब बस्तु सहज में ही दीखन लगैं हैं, तैसे ही मानव देह में इहलोक-परलोक के यावत सुख-दुःखन के स्वरूप सहज समझ में आ जाँइ हैं। भजन करिबे योग्य यह मानव-देहरूपी अवसर अब तो तेरे को अनायास सुलभ है रह्यौ है, जाके चले जाइबे पै, ऐसी कठिन कुकाल काली रात्रि तोकूँ मिलैगी, जो कहूँ कछु नाँइ सूझैगो।

अर्थात जल-थलमें अनंत प्रकारकी पशु-पक्षी, सुर-असुर आदि योनि कितेक जुग ताऊँ तेरो को मिलती रहेंगी, जाकूँ कोऊ गिनती नाँइ करि सकै है। बिन योनिन में केवल अपनो पेट भरिबो, एवं बिषय-भोग के अतिरिक्त परमार्थ कौ कोऊ संस्कार ही

उदय नाँइ होइ है। जा दिना तू उर्धमुख सों दस महीना ताऊँ, टँग्यौ भयौ, माता के गर्भ में जरि रह्यौ हुतो, वा अति भयंकर दुख कूँ तू काहे कूँ याद नाँइ करै है। तब तौं तू पुकारि-पुकारि कें, रोमतो भयौ, कहि रह्यौ हो कि हें ब्रजनाथ ! मैं तुम्हारी ही सरन हूँ। अब वा दशा कूँ भूलि, अधम ! तू खान-पान अभिमान में ही लगि, अति आतुर होइ, अपनी आपत्ति कूँ नाँइ टारि रह्यौ है। जान-बूझि के हू तू अपने मार्ग कूँ छाँड़ि, और-और चालन में ही चलि रह्यौ है। कैतो तू खाइ-खाइ कें सोइ जाइ है, कै अपनी बहू, बेटा एवं धन माऊँ देखतो रहै है। ऐसे ही तैंने अपनो सब जन्म खोइ दीन्यौ है। ये सब पहिले-पीछे तथा अब, सब समय में केवल दुःख ही देबेवारे हैं। तू इनके संग बँध्यौ भयौ, ये नाँइ सोचै है कि—तेरी इनसों कबतें कहा जान-पिछान है, श्रीहरि के अतिरिक्त, काका, बाबा, भैया, स्त्री, पुत्रादिक कोऊ काहू कौ हित करिबेवारो नाँइ है। याते हे भाई ! जो बीत गई, सो तो बीत गई, अबहूँ तू श्रीस्वामीजी महाराज कौ दास होइ कें श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनीजू कौ अनन्य होय भजन कर।

मन हठ छांडि दै अहमेव।
कुटिलई अविवेक बूडत विकट वाँकी टेव ॥
हितू जाने कहत तोसौं भेदि या निजु भेव।
विषै तनु वैराग करि अनुराग हरि की सेव ॥
ब्रह्म सेष, सुर असुर सिरोमनि बंदनी अंतेव।
सांवरो सति भाइ भजि नव कुंज देवी देव ॥
मानुषी तनु तम तरन कौं यह बडौ लाहा छेव।
श्रीबिहारीदास विस्वास गावहु सुजस नामनि षेव ॥१८१॥

इतेक समझाइबे पै हू जब मन नाँइ मान्यौ, तब आप फिर कहिबे लगे कि, अरे मूर्ख मन ! इतेक हठ तू काहे कूँ करि रह्यौ है ? तोकूँ ऐसी बिकट बाँकी टेब परि गई है, जो सतत अपनी कुटिलता सों अविवेक में ही डूबतो जाय है। हितू जानि कें तोतें मैं अति मर्म की बात कहूँ हूँ कि समस्त विषयन कूँ भलीभाँति त्यागि, एकमात्र श्रीहरि के चरनकमलन की सेवा में ही सतत अनुराग कियो करि। श्रीब्रह्मा, सेष, महेश, सुर-असुर आदि सबन कें सिरमौर एवं बंदनीय अंत में श्रीहरि ही हैं। याते साँचे सतभाव सों श्रीनिकुंज-मंदिर के अधीश्वर श्रीजुगल को ही भजन करनो चहिये। यह देव-दुर्लभ मानव-देह माया-सागर तें पार जाइबे के ताईं हीं तोकूँ मिली है। इतेक

बड़ो लाभ, काहे कूँ तू छाँड़ि रह्यौ है। केवल बिनके नाम-जसन कूँ बिस्वास पूर्वक गाइ-गाइ कें या जीवन कूँ निभाय लेउ।

तुम विनु और नाहिं सहाइ।
को निपुन नटवर वेष बिनु हौं कहौं काहि सुनाइ॥
तन तपन सब प्रकृति गुन गन गहत लोभ दिखाइ।
हीन मति अति पतित जांनि हतत दिन दुखदाइ॥
सिव नारद सारद सचीपति बहो डरनि डराइ।
यहै विपति बिचारि विकट निकट रटत् अति अकुलाइ॥
श्रुति सुमृति सब साध सोधे सुन्यौ यहै उपाइ।
दीजै चरन सरन सदा जो जीवों तुव गुन गाइ॥
रति केलि मंगल कुंज आलय उदित नव नव भाइ।
इहै आस बिहारीदासै सुनि सुघरवर राइ॥१८२॥

फिर आप श्रीहरि सों ही प्रार्थना करिबे लगे कि हे नटनागर सिरोमनि! आपके बिना मेरो और कोऊ सहाइ करिबेवारो नाँइ है, जासों मैं अपने दुखन कूँ कहि के सुनाय सकूँ। माया के समस्त गुन-गन, मोकूँ अति पतित-दीन-दुखी जानि, लोभ दिखाइ-दिखाइ, तन कूँ तपाते भये सतत हनन करैं हैं। मेरी तो कहा चलाई? आपकी माया इतेक प्रबल बलवान है कि—साक्षात श्रीमहादेवजू, नारदजू, सेषजी, सारद एवं शचीपति श्रीब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े देवगन हू याते बहुत डरते रहैं हैं। या प्रकार की अति बिकट बिपत्ति कूँ विचारि, अकुलाइ-अकुलाइ, आपकी सरन में परचौ, सतत मैं रट लगाये रहूँ हूँ।

समस्त महतन ने श्रुति-स्मृति आदि सबन कूँ सोंधि, एकमात्र यही उपाय बतायौ है, कि आप कृपा करिकें अपने श्रीचरनकमलन की ऐसी साँची सरन दै देउ, जोकि आपके गुनन कूँ गाइ-गाइ कें सदाकाल जीऊँ। हे सुघरबर राइ! मेरी आपते केवल यही अभिलाषा है कि श्रीवृन्दावन नवनिकुंज-मंदिर की महामंगलमयी रति-केलि में अपने नये-नये भावन कूँ उपजाय, लाड़-लड़ायो करूँ।

हमसे पतितन कौंन सम्हारै।
साँचो विरद उदार सिरौमनि गुन औगुन न विचारै॥
विधि निषेध आचार न जानत ऐसे अन अधिकारै।

मोहन मुरलीधरन धीर बिनु को अति अधम उधारै ॥
आपुन अति अनुराग हितू लौं बोलि निकट बैठारै ।
अपनौ सहज दिखाइ प्रेम भर दै प्रसाद प्रतिपारै ॥
सुनियत यहै सुभाउ स्याम कौ दीननि निपट निहारै ।
श्रीबिहारीदास निरपेक्ष महाप्रभु बिनु को काज सँवारै ॥१८३॥

याही प्रसंग में श्रीबिहारीजी महाराज सों आप और हू कहन लगे कि हे प्राननाथ ! मेरे सद्दस पतितन कूँ आपके अतिरिक्त, और कौन सम्हारि सकै है ? हे उदार सिरोमनि ! ऐसो साँचो विरद एकमात्र आपको ही है, जो अपने जनन के गुन-औगुनन के माऊँ कबहूँ नाँइ देखौ हो । ताहू पै मैं ऐसो अनधिकारी, जो कि बिधि-निषेध, आचार आदि कछु नाँइ जानूँ हूँ याते परम धीर-सिरोमनि मनमोहन मुरली-धरन के अतिरिक्त, मो सरीखे अति अधमन कूँ कोऊ उद्धार नाँइ करि सकै है । ऐसे परमोदार-सिरोमनि केवल आपही हो, जो बड़े हितैषीन की नाईं, निज जनन कूँ अनुराग सों बुलाइ, निकट में बिठाइ, सहज प्रेम हृदय में भरि, अपनो प्रसाद दै-दैकें सदा-सर्वदा प्रतिपालन करो हो । हमने महतन के श्रीमुख तें ये हू सुन्यौ है कि श्रीबिहारीजी महाराज को सुभाउ दीनन कूँ ही निपट निरंतर निहारिबे को है । हे बिहारीदास ! ऐसे अति निरपेक्ष महाप्रभु के बिना हमारे काम कूँ और कौन बनाइ सकै है ?

मन मेरे भजि ले श्रीकुंजबिहारी ।
सब सुख सागर रूप उजागर अँग सँग प्रीतम प्यारी ।
वृन्दावन निज कुंज महल में करत केलि भुज चारी ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदास लडावति जीवन प्रान हमारी ॥१८४॥

अरे मेरो मन ! समस्त सुखन के सागर, रूप उजागर श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर के ही दृढ़ अनन्य बिहार करिबेवारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू को तू भजन करि, जिनकौ सहचरि परिकर ही, रुख अनुसार सतत लाड़ लड़ायो करैं हैं । ऐसे निरंतर अंग-संग रहिबेवारे श्रीजुगल ही मेरे जीवन, प्रानाधार-स्वरूप हैं ।

बसिबौ श्री वृन्दाबन को नीकौ ।
छिन छिन प्रति अनुराग बढ़त है दरस बिहारीजो कौ ॥

नैंन श्रवन रसना रस अचवत अँग संग प्यारी पी कौ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि अँग सँग बिछुरत नाहिं रती कौ ।।१८५।।

समस्त साधक समाज कूँ समझाते भये आप बोले कि हे भाई ! श्रीवृन्दावन को बसिबो ही सबतें नीको है, जहाँ छिन-छिन प्रति तो हृदय में अनुराग बढ्यौ करै है, और अति दुर्लभ श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज के दरसन सहज सुलभ होते रहैं हैं। साँचे उपासक जन नैंन, श्रवन एवं रसना द्वारा मनभामते रस कूँ सतत पान करते भये मन सों निरंतर श्रीजुगल के अंग-संग ही रहैं हैं। ऐसे श्रीबिहारी-बिहारिनी जू के अनन्यदास नये-नये लाड़-लड़ामते भये छिनमात्र हूँ श्रीवृन्दावन तें नाँइ बिछुरैं हैं।

प्यारी जू मोकों कृपा करौ।
ऐसी रुचि उपजै जिय मेरे तुमहिं न छिन बिसरों ।।
आपुन अपनी करि प्रेम बढ़ावहु निज रसरीति सौं हियौ भरौ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि कहत यों विपिन बिहार ढरौ ।।१८६।।

सिद्धान्त के पदों की समाप्ति में समस्त साध्य-साधनन के मर्म को हू सार निज रसरीतिमयी कृपा की याचना करते भये श्रीगुरुदेवजू ने सर्वोपरि श्रीनित्य-विहारिनीजू सों ही प्रार्थना कीनी कि—हे प्रानप्यारीजू ! मोपै आप ऐसी कृपा करौ, जो मेरे हृदय में तो या प्रकार की रुचि उपजि जाइ, जासों मैं छिनमात्र कैसे हू नाँइ आपकूँ बिसारि सकूँ, और आप स्वयं ही मोकूँ अपनी करि, प्रेम कूँ बढ़ाइ, निज रसरीति सों मेरे हृदय कूँ भरि देउ। जितेक आपके निज दास हैं, सबन को एकमात्र यही कथन है कि—श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर के विहार के माऊँ ही साधक ने ढरनो चहिये।

।। इति सिद्धान्त के पद सम्पूर्ण ।।



रस के सवैया

सब ठाकुर कौ ठाकुर हरि ता ठाकुर कौ ठाकुर ठकुराँइनि ।
माँनु दाँनु दै प्रांन प्रिया पति रति जाचतु परताप दुरांइनि ।।
निजु रस रीति प्रतीति प्रगट करि धन्य जनम मांनत परि पांइनि ।
कर कंकन दर्पन देखो न श्रीबिहारिनिदास लहै मन भांइनि ।।१।।

जनम अनेक किये जल-थल में छल-बल बुधि विचार बढाइनि ।
ब्रज वीथिन बिहरचौ नाना रंग नांगे पग भाग्यौ संग गाइनि ।।
श्रीबिहारीदास बिन सुख न सुनायौ सुहृद सखा भ्राता पित मांइनि ।
ठाकुर ठग्यौ लग्यौ संग डोलत इहि लेखैं ठाकुर ठकुराँइनि ।।२।।
निसिदिन अविछिन प्रपन्न भजै तौ माया फंद तैं सुखहीं सटकै ।
महलिनि सौं सुख जांनि पिछांनि करै तौ तबै ताकौं को हटकै ।।
निरखि परखि हरखि नई नित केलि महारस तौ गटकै ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि भनैं निजु कुंजन में मन जो अटकै ।।३।।
अवनी रची स्यांम सुधाम सखी जु बही सलिता सुख पुंजनि की ।
मृदुमनि भूमि लता रही झूमि सु केलि कला सुख दुञ्जनि की ।।
सित नील अरुन सुपीत प्रसून कहा लौं कहौं अलि गुंजनि की ।
श्रीबिहारीबिहारिनिदास कहैं चित तैं न टरैं छबि कुंजनि की ।।४।।
नख सिख लासि ए रूप की रासि सांवल गौर सु संगनि की ।
कवनीय किसोर मिले निसि-भोर सुरति केलि करैं रति रंगनि की ।।
मांग सुहाग फबी सिर पाग जु हास बिलास अनंगनि की ।
श्रीबिहारिनिदासि की दासी लहैं चित तैं न टरैं छबि अंगनि की ।।५।।
बांके मते मन बांकी ए बात सु बांकी ये घात लहै कौ तिहारी ।
बांको निकुंज गली बन बांकौ सु बांको बसोठि बिलोकनि हारी ।।

बांकौ भजन अनन्यनि को धन बाँकी ये मौज लहैं दिन हारी।
बाँकौ बिहार करैं मिलि माँननि बाँकी बिहारिनि बाँके बिहारी ।।६।।

दरसैं परसैं अंग अंग लसैं बिलसैं सुख सिंधु न प्रेम अघैहौं।
निरखैं नित नैंन सु माधुरे बैन श्रवन सुचैंन सुनैं गुन गैहौं ।।
दंपति संपति संचि हियैं धरि या सुख तैं न कहूँ चलि जैहौं।
नित्य बिहार अधार हमारैं श्रीबिहारी बिहारिनि की बलि जैहौं ।।७।।

समैं-असमैं रस पोषन कौं सुख दै रुख लै न कहूँ चलि हौं।
चितै चित चैन रहौं बिन बैन सु नैंन सों नैंन की सैंन लहौं ।।
नित्य बिहार अधारु हृदै धरि आपनें प्रांननि यों पलि हौं।
रवनीहि रमैं सुख देत हमें श्रीबिहारीबिहारिनि को बलि हौं ।।८।।

प्रिया पिउ यौं मन बांटत नाटत नाहु निहोरि निहारिनि की।
सुख सौं रतियां छवि सौं छतियां मधुरी बतियाँ मनुहारिनि की ।।
हौं तौ रीझि रही रस भीजि बिहारिनिदासि बिलासि तिहारिनि की।
मेरी लाडिली लाल लडावत हैं हौं बलि जाऊं बिहारि विहारिनि की ।।९।।

अंजनु मंजनु कै मनि-कुंदनु फुंदनु ह्वै नियरे रहनौं।
कबहूँ कर कंठ धरौं कबहूँ उर संपुट मैं न कहूँ कहनौं ।।
श्री विहारिनिदासि जराव जरचो जुग प्रेम पुहाइ लियौ लहनौं।
पहिरौ कि धरौं न डरौं दिन देखि हौं ए मेरी आँखिन कौ गहनौ ।।१०।।
द्वै द्वै दुहूँ ओर सनमुख निसि भोर निमुष निमेष न लगत अकुलात हैं।
खेलन कौं मन फूल तन न रहैं दुकूल अंग अंग मिलि कैसैं सकुच समात हैं।।
अति अद्भुत रूप गौर साँवल सरूप मनहूँ मनसा कापै कहै गहै जात हैं।
श्रीबरबिहारिनिदासि दंपति ए सुखरास देखत दुहूँन दोउ द्रिग न अघात हैं११

गुन रूप निधि दोऊ नागर इनसे एऊ पटतर देवेकों न बनें काहू आन सौं। वारौं कोटि अनंग ब्रह्मांड कोटि कोटि सुख और बारौं कोटि छवि ससि-सत-भान सौं ।। जै श्री बिहारिनिदासि रास गावत प्रेम बिलास २२

पावत सुख निवास रागिनी रंगान सौं। सघन मगन बन सुख के सदन कुंज खेलत चतुर राधे चतुर सुजान सौं ॥१२॥

स्यांँम कुंचुकी के भोरें छोरत बंद टटोरैं विमल सु तन गौरैं हँसी मुख मौंन में। विवस रसिकराइ पाए हूँ अरबराइ हौं ही रही अरगाइ रीझि रोंन चौंन में॥ अंग में अंग झलमलाइ रुचि में सुरुचि पाइ चतुर किधों भुराइ हौं हूँ भूली भौन में। श्रीवरुबिहारिनिदासि अंक में निसंक हांसि मैं हूं देखै सुखरासि सनेह सलौन में ॥१३॥

आतुर ह्वै न चलैं चकि चौंप सौं चातुर चाहि रहे चित चैंननि।
मौंनही मौंन में मान मनाइ मिलाइ लिये मन सौं मन मैंननि॥
श्रीबिहारिनिदासि बिलोकि वधू वन वृंद विनोद बढै बिनु बैंननि॥
नित नवीन निकुंज में नागरि नागर नेह निहारति नैंननि ॥१४॥

स्यांमा-स्याम सुकुंवार अंग अंग अलंकार सबही की शोभा सब सोभा वारि डारियै। जो न पहिरचौ सुहाइ ताहि पहिरै बलाइ पहिरि जु बहुरि उतारि तृसकारियै॥ इनकौ भजन मन रंजन सज्जन मिलै अंजन-मंजन सखी सोऊ न सँभारियै। श्रीबिहारिनिदासि यौं कहति सुख सार बिहार में सिंगार भारु काहे कौं सिंगारियै ॥१५॥

सामुहीं चाह्यौ न जात अली कै हियौ हुलसै नव जोवन मोरैं।
पाँनिप लोचन ज्यौं मुक्ता ढरि डीठि कहूँ ठहराति न ठौरैं॥
ज्यौं-ज्यौं बिहारिनि मंद मुरै हँसि रूप चुयौ परै घूँघट ढोरैं।
सिंगार करौ न करौ तो खरौ रंग न्यारियै वोप सुहाग की औरैं ॥१६॥

अंतर तैं रति हानि निरन्तर मैं रस ही रस लै निबहै।
पिय के श्रम मोहि संकोच सखी सुख में दुख देखत कौंनु सहै॥
भूषन दूषन जानि यहै छबि जा छिनु में सुख लालु लहै।
श्रीबिहारिनिदासिनि जे कहनौं गहनौं न गहौं कर कंठ गहै ॥१७॥

अपनें मन प्रेम कौं नेम नहीं तो कहा भयौ जो सखि सीख सिखाई।
तैं यहै सिखयौ लिखयौ जिय पत्र लियैं मनु लाखुक चंचलताई॥

भई जु बिहारिनिदासि कहै रस में रिसि मोहि सुनी न सुहाई ।
बैठे हौं छाँडि गई इक ठौर तैं कहा सिरमौर सौं और बनाई ।।१८।।

मेरौ कह्यौ नहीं माँनति माननि जानति हू कत होति हौ भोरी ।
ताकि तुहीं तिनके तन की गति पान बिना जैसे चंद चकोरी ।।
और सबै असहाइ बिहारिनि-दासि लै आइ लडाइ निहोरी ।
जैसैं जीयैं सुख सींच हियैं सिरमौर कैं और नहीं गति गोरी ।।१९।।

जो करै न काहू की काँन कहै हितु जाँनि जैसे प्रिया पगु धरैं हँसि मुख स्याँम तन । जो जांने भाइ विभाइ राग ही में रीझि रिझाइ प्यारी-पिउ सुख पाइ हँसि देखि अनुराग घन ।। श्रीबिहारिनिदासि कौ यहै विसनु राधा नाम हृदै धरि बसि रहैं वृन्दाबन । चाहिये महल में टहल कों एक ऐसी ढीठ बसीठ बिनु न मिलै रूठे ईठ मन ।।१९।।

अरुझी मकरंद कैं लोभ लगी तन सैनी मनौं अलि-बालनि की ।
हों कहा बरनौं अलबेली महा-मधुरी गति मंद-मरालनि की ।।
श्रीबिहारिनिदासि कैं और नहिं सिरमौर सबै नव बालनि की ।
सखी स्याम सकाम सची सिर सुंदरि बैंनी विसाल रसालनि की ।।२०।।

उपमा नहिं आन बखानिबे कौं मन मानिबे कौं अनुराग रचोटी ।
सिखा-नख लौं हरि हेरत हैं सुप्रिया तन कंचन अंचन औटी ।।
श्रीबिहारिनिदासि सराफि सही करी सौंपि सखी कसि काम कसौटी ।
करी रवि रेख दुधा तम में मनु मंग सुरंग सुहाग सचोटी ।।२१।।

सेवत कोटिक काँम कला अँचला चल चोंर मनों छत्र ढार कौ ।
नासिका नैन सुबैंन श्रवन सभा कुच उच्च सुभाउ उदार कौ ।।
उरगे हरि यों ढरि आपुहीं आइ रहे गहि पाइ अहार बिहार कौ ।
श्रीकुंजबिहारिनि राज विराजत फूल फब्यौ सिरमौर सिंगार कौ ।।२२।।

अपनैं कर बाँनत हूँ कलनाँ ललनाँ नहिं मानत तैं कब मैंदी ।
तुही सखी साखि कहै जिनि राखि सनमुख सौं मुख जोरि जुरैंदी ।।

श्रीबिहारिनिदासि लहै सुखरासि महा-मदमत्त गयंद गयैंदी ।
सेंदुर स्वेद में भेद मृगमद गोरे ललाट लसै वर बैंदी ।।२३।।

अलबेलीयैं बातैं अलबेलीयै लाल की घातैं गनी न परति मोपै मननि हरति हैं । यह मैं जिय में जानी रसिक सुराज-रांनी लालहि विवस भए अंक में भरति हैं ।। देखि बिहारिनिदासि अपनैं सुकृत हाँसि सखिन के नैंननि कौं सुफल करति हैं । री फूल फबि रहे अवतंसन सोहत सुठि श्रवननि फूल फूले फूल सौं धरति हैं ।।२४।।

अलकैं पलकैं नेंकु घूँघट ओटि की कोटि कियै न रहैं हटकैं ।
नृत्त करैं मनु प्रांन जुरैं सु मुरैं जितही तित लैं लटकैं ।।
श्रीबिहारिनिदासि बिलासि बसीरस क्यौं निकसै इनि कैं अटकैं ।
माइ न्याइ ही लाडिलौ लाल लट्टू भट्टू भेद भरी भृकुटी मटकैं ।।२५।।

सारु में चारु निहारि बिहारिनि मर्दत माँन मदन कौ मौं ।
और कहाँ लौं कहौं न कही परै कोक कला कल केलि की खौं ।।
श्रीबिहारिनिदासि दुलारी कौ दूलहु ताकि रह्यौ तरुनी तन त्यौं ।
यह काँम कला पुनि मेटि अली अँखियाँ नहीं देति अलिंगन सौं ।।२६।।

उज्जल नील-कनक कनौ मनि मौज की चौज भयौ चित चेरौ ।
कर कौ कर ही रह्यौ रंग सरूप बिचारत चितु दै चित्र चितेरौ ।।
बलिहारी हाहारी बिहारी कहै सुख दै मुख मोरि इतै हँसि हेरौ ।
तैं पोहि लियौ गुन गूढ समर्थ सुनथ कैं हथ परचौ मन मेरौ ।।२७।।

चंचल के कर अंचल कौ सखी स्याम सकाम तैं वाम तसी ।
झुकी मुख मोरि मरोरि करै बरजोर लै अंक किसोर कसी ।।
श्रीबिहारिनिदासि सहाउ कीयैं रस हीं रस यौं बस कै बिलसी ।
ये तऊ ललचात लजात नयौ मुख अंबुज आनंद रासि हँसी ।।२८।।

अरुनाधर अंजन रंजित ह्वै बिथके अलि बंध कलोलनि मैं ।
बिथुरी अलकैं सिथली पलकैं जु लखो ललिता गति गोलनि मैं ।।

श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि कहै बलि चाल डगमगी डोलनि मैं।
मुसकानि सयांनी पिछांनि प्रिया पिय की कछु पीक कपोलनि मैं ॥२९॥
रहैं अंग संग अनंग हरैं मनु नीरद नील दामिनी दमकैं।
बरनी न परै छवि कौ कवि तै सत सेस महेस की बुद्धि समकैं ॥
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि निकुंजन निरखत ही सुख प्रेम रमकैं।
चितै वर राज बिहारिनि नित्त अद्‌भुत जोति चिबुक चमकैं ॥३०॥

कोमल विमल कल वलय विचित्र बाहु नाहु टोहै मोहै मन मनहुँ मृनालसी। विच विच फूल स्यांम सेत पीत राते अति सीतल सुंगध समरंधन सम्हालसी॥ करझि अरझि झूंमि झूंमि झूमिका से पाछैं आछैं देखि छबि बिहारिनिदासि ह्वै निहालसी। भूषन दूषन सब डारे न्यारे न्यारे करि कुंवरि कुंवर कंठ सौहै कंठ-माल सी ॥३१॥

जदपि हुती न न्यारी कहत हाहारी प्यारी विचित्र बिहारी बंद बाहु सौं कसत री। प्रांन प्रांननि सौं सीर बाँटत होत अधीर एक ही सुर स्वास विस्वास ह्वै हँसत री॥ श्रीबिहारिनिदासि रोम रोमनि कहाँ लौं व्यौरौ ताफता की मौज अति ताहूँ तैं लसत री। चोली सी अमोलो प्रीति ऐसे सुख में समीत स्याम तन मन गोरैं गात में गसत री ॥३२॥

❀ ❀ ❀

सोंनो सो स्याम गढावत हो मन प्रांन दियै दृग दिष्ट उहाँई।
चंपे की माल गरैं पियरी पहुँची कर पियरें ही पाट पुहाई॥
पियरे पट केसरि खौरि खुली पियरी झलकैं अंग अंग सुहाई।
प्रांन प्रिया जू के प्रेम की बात श्रीबिहारिनिदासि कही मुँह आई ॥३३॥

❀ ❀ ❀

रूठनौं तूठनौं यों रस बूठनौं तूठनें तैं अति रूठनौं भावै।
प्रेम प्रवीन प्रिया पिउ आतुर चातुर केलि कला गुन गावै॥
नाँहि करैं तब पाइ परैं हँसि आलस यौं मन मोद बढावै।
श्रीबिहारिनिदासि कैं प्रेम अभंगु सुरंग में रंग अनंग बढावै ॥३४॥

तोकौं बोलत कुंजनि कुंजबिहारी प्रिया ललना मन भाइकु री।
लई बोलि अमोल दै सैंन पठाइ कही न परी इतराइकु री॥
ईहिं औसर और न आँन गटी श्रमु मेरौ बृथा न गँवाइकु री।
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि भनें साँवरौ सुखदाइक नाइकु री॥३५॥

बिगसे मुखचंद अनंद सनें सचि हार कुच बिच भाँति भली।
उत तैं रस रासि हुलास हियैं इत चौंप बढी मिलि स्याम अली॥
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि सदा सुख देखत राजत कुंज-थली।
तजि मान अयान सयान सबै लाल कौ ललना सुख दैं न चली॥३६॥

अति मोल अमोल मनों रति रंग भयौ मृग स्याम फिरै गौहना।
चुभ्यौ चित चारु जु प्यार प्रिया सु निहारत आरत प्रेम घना॥
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि सदा सुख सींचति है मुख कौ जोहना।
अँचला चँचला न रहै अटक्यौ प्रिया हार सज्यौ मन कौ मोहना॥३७॥

आवत हीं सब साथ सखी कछु कंथ नहीं तिहि पंथ न नेरौ।
कछु कारौ अंध्यारौ उजारौ करै जग कोटिक काम कला हँसि हेरौ॥
रह्यौ परकासि बिहारिनिदासि मिल्यौ कि भयौ भ्रम हीं भट भेरौ।
हौं जानौं नहीं उन दूरिहिं तें मन मोहन मोहि लियौं मन मेरौ॥३८॥

आरतवंत सुकंत इकंत कहैं निमंत सु हौं सुनि धाई।
तुही तुतरात सी औरहीं भाँति संदेसे से पूछत सामुहीं पाई॥
री हौं कहा कहौं कहा पठाई सखी तूं भलै मेरीऐ बुलाइये आई।
री हौं प्रांन करी कलकान सुकाहू सयाँन परचौ न रहाई॥३९॥

॥ इति सवैया सम्पूर्ण ॥



रस के पद

प्रात समैं नव कुंज द्वार ह्वै ललिता ललित बजाई बीना।
पौढे सुनत स्याम-श्रीस्यामा दंपति चतुर प्रवीन प्रवीना।।
अति अनुराग सुहाग परस्पर कोक कला निपुन नवीन नवीना।
श्रीबिहारीदास बलि बलि बंदसि पर मुदित प्रान न्यौछावरि कीना।।१।।

जागत ही जागत गई निसि बीति हों सब देखि सखी सुख चैन। अपने अपने सुख सहित हरषत करषत सखी भये मगन मन मैंन।। बिथुरी अलक पलक आलस वलित नैंन बैंन। चारचौं पहर बिहरत यों सखी भोर भयै श्रीबिहारिनिदासी के हँसि ढरे उर ऐंन।।२।।

लाडति लाडली नवरंग अपने लाल बिहारी के संग। अलसाने जानें मैं प्रात प्रिया-पति विपरीतरति यों सुख दै अंग अंग।। विगलित कच कुसुम सिथिल पाग मरगजी मंग। श्रीबिहारिनिदासि की स्वामिनी स्यामहिं देखे सखी सुख प्रेम की परनि ढरनि रंग अनंग।।३।।

रसिकलाल के अंग संग जागीरी सुख चैन सों रैंन सगरी। सोभित सीस कुसुम, सिथिल अलकें, तामें कहूँ कहूँ री माँग मोती बगरी।। अरुन नैंन सलोल, मोहन मधुरे बोल, रची है पीक कपोल, प्रेम सुभग री। सुवस किये बिहारी, दास बलि बलि प्यारी, सुरति निपुन नित, सुहाग भाग अनुराग अगरी।।४।।

भोर ही कर सों कर जोरें अंग अंग मोरें आलस लेत जँभाई। पिय के अंक निसंक सबै निसि, हुलसि हुलसि विलसि आनंद में उनीदोयैं उठि आई।। अंग राग अनुराग रही फबि, छबि बरनी नहिं जाई। अति सुख भरि भरि उमँगि, बिहारनिदासि सों कहति ऐसें हों लाल लड़ाई।।५।।

धँनि सुहाग अनुराग री तेरौ तू सर्वोपर राधे जू राँनी। नख सिख अँग अँग बाँनी, प्रीतम प्राँन समाँनो, रसिक किसोर सुरति सुख दानी।।

को जानें वरनें वपुरा कवि अद्भुत छवि न जात बखांनी । श्रीबिहारीदास पिय सों रति मांनी मैं जानी सयानी तोहि सब निसि सुख सिरानी ।।६।।
मुख पट ओट न करि प्यारी ।
काहे कों झूठियें झुक-झुकति रसिकनी कहत हैं रसिक बिहारी ।।
तू जो इतौ हठ करति चतुर प्रिया रति के चिन्ह देखिये निहारी ।
नव किसोरैं मिलि किसोरी मांन तजि श्रीबिहारिनिदासि बलिहारी ।।७।।

जगाई री भई बेर बडी । अलबेली खेली पिय के संग अलकलडे की लाड लडी ।। तरनि किरनि रंध्रनि ह्वै आई लगी निवाई जानि सुकर पर तब हों ही ह्वै रही अडी । श्रीबिहारीदास रति बरनैं को कवि जो छबि मो मन माँझ गडी ।।८।।

जिन जगावैं जुगल नवल निज नेह सुख । जागे जामिनि सैंन मैंन मानिनीरवन प्रान जीवन मेरे मन भवन दवन दुख ।। श्रमित अमित बिहार, सुरत सुखद सुमार, ए सुकुमार तन मनहि दियें लियें रही रुष । श्रीवर बिहारिनिदास लोल लोचन लासि निरखि सुखरासि हसि मिलत सुंदर सुमुख ।।९।।

जागे जाने क्यों मन माने । झगरत जुरत किसोर किसोरी बडे भोर में बुतबतात उनमाने ।। ओढे उलटि बसन संभ्रम निसि पलटि लेत पहिचाने । श्रीबिहारीदास दम्पति को सुख निरखत हरषत सखी वारति तन मन प्राने ।।१०।।

आजु लाडिली लालहि जगाइ जागी । सकल निसि कुंज बसि, प्रिये बल बाहु कसि, विलसि अंग अंग अनुराग रागी ।। रोम रोमनि अरुझि, सकत नेंकु न सुरझि, अति सुघर मधुर रस प्रेम पागी । श्रीबिहारीदास सकाम, गौर स्याम सुधाम, चितै वितवत जाम लता लागी ।।११।।

कुंज सैन रस ऐंन प्रिया पिय बने हैं विचित्र वर बागे । चंदन बंदन विविध मन रंजन अंजन की छबि मानो चित्र सों किये सुतन अंग अनंगनि दागे ।। अपने अपने रस आनन्द विवस भये आलस बिनु अनुरागे । श्रीबिहारिनिदासि गायौ भायौ जो इनके मन पुनि हंसि हंसि उर लागे ।।१२

यों हँसि हँसि कहत हैं बात सुनि तिन बातनि हूँ न पत्यात।
कोमल करन सों मुख मूँदि राखत श्रवननि तन न जात॥
वचन रचन बनत नाहिंन पुलकित सब गात।
श्रीबिहारिनिदास के नैंननि में सुख सैंननि लटपटात॥१३॥

आजु की छबि अँग अँग रही फबि ऐसी मति कौंन की को वरनैं कवि। उपमा आहि न काहि बताऊँ गाऊँ इन्हें सुनि जाहिं सबै दबि॥ हँसत खेलत मिलत सकल निसा गत लटकि चलत पग धरत अवनी ठबि। श्रीबिहारिनिदासि संगम सुख सूचित देखि री देख आनंद उदै रवि॥१४॥

माननी मन हरन मनोहर।
वचन रचन रुचि राचि रहे जुरि कुंज कुटी तन मगन प्रेम भर॥
अंग अंग आलिंगन चुंबन हँसत रिसात सहज सुंदरवर।
श्रीबिहारीदास दुलरावत गावत जुगलकिसोर सुजस सर्वोपर॥१५॥

तू मन मोहनी री मोहन मोहे री अंग अंग। अगमनी अलकैं झलकैं वर उर पर छूटी लट मुख हँसत लसत दसनावलि सहज भृकुटि भंग॥ मृग मधुप लों स्याम, काम बस तजे बन बेली धाम, सौरभ सुर सबद सुनत फिरत संग संग। श्रीबिहारनिदासि स्वामिनी सुखरासि रहसि फिर चितयौ हित यों मानि आंनि उर अंग रंग अनंग॥१६॥

मुदित मोहन अंग सोहन को मन मोहनी तैं मोह्यौ री मोहन। जदपि रहत हंसत खेलत अंग संग निसदिन छिन न तजि सकत गोंहन॥ अद्भुत रीति जीति प्रीति प्रिय पै मन बच क्रम किये कहत तुम सों सखी कर पद पर आरोहन। श्रीबिहारीदास की स्वामिनी सुनि रही मौन चितै मुसिक्यात पत्यात न सोहन॥१७॥

मोहन लाल रसाल सों मोहिं अनबोलें हूँ बोल्यौ भावै।
जब कबहूँ हौं रहों री मौन ह्वै हंसि मन मोद बढावै॥
तान अतीत अनागत अंग संग मिलि मधुरे सुर गावै।
श्रीबिहारीदास स्वामिनी के रस रसिक रस ही में रस उपजावै॥१८॥

बिहारिन लाडिली हो लालहिं सकल सुखन की दांनि।
चितवत चित तोषत पोषत तन मन मनसा रस सांनि ॥
दरस परस रस हास परस्पर विचित्र तिहारी बांनि।
धन्य जनम मानत अनुरागी जब उर लागति आंनि ॥
बिहरत बन रति मानि निरंतर निदरि कांम की कांनि।
श्रीबिहारनिदासि लडावत छिनि छिन हिलग हिये की जानि ॥१९॥

मेरी स्वामिनी प्रसन्न बदन साँवरो सुखरासि।
इनहिं लडाऊँ अनुदिन छिन छिन लहों स्याबासि ॥
फूली फूली टहल करों मन के मननि हुलासि।
अनन्य श्रीहरिदास बिपुल बलि बलि बिहारिनिदासि ॥२०॥

साँवरो नवरंग।
तैसिय तन धन-दामिनी दुति कुंवरि किसोरी गोरी कौ संग।
इहि रस रसिक उपासित स्वार्तिहि चातिक लों जल जाचत लागत नंग ॥
श्रीबिहारिनिदासि अनन्य भजन बिनु साधन आन न करत कछु ढंग ॥२१॥

भोर भये भोगी रस बिलसि भये ठाढे। जागे जाँमिनी जमाइ भामिनी अंग संग समाइ, स्वास सिथिल डरनि डरत देत आलिंगन गाढे ॥ घूमत रस मत्त मगन, सूधे हू न डग परत पगन, छिन छिन चित चौंप चौजनि मौज मनोजनि बाढे। अति रस में रसिक राइ, सोभा बरनी न जाइ, श्रीवरबिहारनिदासि लडाय, प्रेम रंग रंगि काढे ॥२२॥

प्यारी तेरे नैन सुख चैन रस रंग राते। स्याँम अम्बुज अधर सरस दल मधुर मानों पान करि मधुप मकरंद माते ॥ और अंग अंग अवलोकि बल-हीन भये छके छबि छैल सुंदर सुहाते। मुदित उघरत लसत उठत घूमत हसत सुरत सुख सुमिरि अकुलात याते ॥ अलक घूँघट ओट पलक पट बस नहीं उदित मुदित ह्वै डगमगात गाते। कियो चाहत दरस परस पुनि पुनि पिय, तन प्रेम बल लटकि लटकि जाते ॥ देत अवलंब न विलंब करि सुघरवर चरन कर धरत नेंकु न सकाते। मिले फिर ईठ अति ढीठ

आतुर्य ह्वै अभिलषत छिन छिन बिलसत न अघाते ।। मननि करषत सुखनि बरसत श्रीबिहारीदास परिहास प्राननि हिताते । सहचरी ह्वै भजौं पल पास क्यौं तजौं संग बसि हों मानि कोटि नाते ।।२३।।

लाल ललना रस रँग भरे भारी । उमंगि उमंगि हुलसत विलसत नित लाडिली रसिकवर विचित्र बिहारी ।। कूजत केलि कलोल हँसि मृदु मीठे बोल बोलें खोलें छंद-बंद करें मनुहारी । प्यारी को सहज मान सहि न सकें सुजान नाहीं करैं मन हरैं हंसि उजियारी ।। कहत कछू न बनें देखि सखी सुख सनें हाव भाव को बरनें मन मति हारी । जोरी राजै सुकुमारी वारनें दास विहारी छिन छिन बलिहारी प्यारी पर वारि डारी ।।२४।।

मोहन मोहे री सुठि सोहै ।
नव निकुँज न्यारी प्यारी मिलि जब हंसि चिबुक टटोहै ।।
मात करत रतिपति जुवतिन मिलि बंक विलोकनि जोहै ।
श्रीबिहारीदास दिन जोजत यह सुख या उपमा को को है ।।२५।।

बिहरत लाल बिहारिन दोऊ श्रीजमुना के तीरें तीरें ।
अद्भुत अखंड मंडल भुव पर बर भामिनि भुज भीरें भीरें ।।
तामें ह्वै ससि श्रवत सुधा श्रम-जल-कन मुख छबि नीरें नीरें ।
उपजत किरन कपोल विमल हंसि लसि दसनावलि हीरें हीरें ।।
कुंज गगन घन अलक बदरिया चलत परस्पर सीरें सीरें ।
लोचन चारु चकोर चितै हित पीवत अधीर न धीरें धीरें ।।
उमंगि मिलत अनुराग नवल वर कल कुंडल चल बीरें बीरें ।
श्रीबिहारीदास सुरझत नहिं तन मन अरुझि अरुन पट पीरें पीरें ।।२६।।

रसमसे दरसे मैं प्रात बतबतात मंद मंद मुसिक्यात । घूमत नैंन बैन विचित्र रचित रुचिर कुसुम सैंन सुरत रंग अरबरात ।। अति सुख मुख मधुरे मधुरे पांन करत प्रीतम न अघात । श्रीबिहारी बिहारिनिदासि विलोकत रोकत अंग अंग संग रंग भरे पग डगमगात ।।२७।।

लटपटाइ रहे गहि प्रिया पिय तन मन प्राननि में । कहा कहों गुन

रूप अनूपम आनंदनिधि दोउ गावत मृदु मृदु मिलि ताँननि में ।। उपजत मदन मोद दुहुँ कोद अति विनोद वचन रचन आँननि में । श्रीबिहारी बिहारनिदासि दरस हंसि कहत प्रिया प्रति मेरौ सुख तुम्हारी रति मांननि में ।।२८।।

चलत लटकत अटकत लर छूटी छबि देखि सखी बलि जाई ।
मंद मंद मुसिकत मुख दरसत इहि विधि रीझ रिझाई ।।
कबहुँ कबहुँ विरमत कौतिक मिस विहरत अति सुख श्रमहिं नसाई।
इहि रस विवस बिहारिनिदासी कैं विचित्र बिहारी राई ।।२६।।
यहै सुख री सुख सार विहार निहार ।
और इन्हैं न सुहाय सखी मेरे को बरने जंजार ।।
रहन न देत बसन भूषन तन सहज सजे अंग अंग सिंगार ।
श्रीबिहारनिदासि दरस मुख सुख निधि सरस चितवनी चार ।।३०।।

आधी आधी अंखियन री चितवत चित चोरति । सुरत अंत अरसात गात तुतरात बात कहि आवत भावत री लालन मन जब जँभाति कर मोरति ।। यों ही नित सहँज सुभाव स्याम तन रहि री मान न करि बार बार मनुहार करति हों पांइनि परें निहोरति । श्रीबिहारीदास सुख देत निरन्तर पिय प्यारी इहि विधिँ छिन छिन रति जोरति ।।३१।।

प्रीतम प्यारी मिलत जैसो सुख होत री देखौ मेरी आँखिन भरि । सैंननि ही बतियाँ कहिहौं गहिहौं री चरन छतियाँ पर धरि ।। तन मन प्रान करोंगी न्यौछावरि आवहुरी निरखि निरखि नागरी नागर । श्रीबिहारनिदासि के मन अंगना में खेलो हँसो अनुदिन छिनक जाहु जिन टरि ।।३२

मनावत लाल री मानिनी मान किये न बने ।
तूही तूही करै तोहि हिरदै धरै तेरे गुननि गने ।।
तन सों तन मन सो मन मिलि प्राननि सों प्रान सने ।
श्रीबिहारनिदासि कौ मानि कह्यौ सु लह्यौ सुख अपने सींचि स्याम सजने।।३३

माई हों मोही । मैंहूँ सुन्यौ हुतौ मन मोहन अंग अंग सोहन

तातें नेकु फिरि हौं जोही ।। बरजत हुती संग की सब सखी सुधि बुधि न रही हों न जानौं कहाँ को ही । श्रीबिहारीदास स्वामिनो स्याम सनमुख विलसत सुख कहत सखी सों स्यामा जू यों सोही ।।३४।।

महामत्त मानिनी मनोहर मान सरोवर खेलें ।
छिरकत छींट कटाक्षनि छवि सों छैल उमँगि रस झेलैं ।।
बाढत अति अनुराग परस्पर प्रेम भुजनि बल पेलैं ।
ह्वै गयौ खंड खंड जल इत उत सुख सागर की रेलैं ।।
उदित मुदित जुगराज विराजत लाज नवल अवहेलैं ।
ह्वै रहे मगन लगन अंग अंग तन चीर चिकुर न सकेलैं ।।
भोजे बसन निवारि सिंगारत सखी गुहि माल धमेलैं ।
श्रीबिहारीदासि दरसि सुख बरनत जल थल कुंजनि केलैं ।।३५।।

भोजन करत भली भाँति सोभा बहुभाँतिन कही न जाति ।
कोमल करनि लेत देत लाल प्रिया मुख मुरि मुरि मुसिकाति ।।
विविध विंजन मन रंजन बदननि की क्रांति ।
अतिसतृष्ण तृषित क्षुधित पाइ सुधारस विवस भूलि न जात ।।
बारंबार निहारत आरत इनहि यहै हितात ।
श्रीबिहारिनिदासि यहै सुख सेवत निरखि हरषि आँखिन सिरात।।३६

भोजन करत दुहूँ दिसि देखौं ।
कहत न बनत विनोद विहारी बिहारिनि लै उर लेखौं ।।
अंग अंग अवलोकि लेत दोउ क्षुधित स्वाद की सेखौं ।
वचन रचन रुचि में रुचि पावत सब रस रसिक विसेखौं ।।
पान करत मकरन्द प्रिया पिय अवधि प्रेम की रेखौं ।
यहै अहार विहार निरन्तर करत न पाक परेखौं ।।
इहि रस तुष्ट पुष्ट मेरे प्यारे तुम सुंदर वर वेषौं ।
श्रीबिहारनिदासि कहत नैंननि सौ तुम जिन लगौ निमेषौ ।।३७।।

भोजन करि बैठे दुलहिन दूलहु ।
अचवन लेत कमल आनन सखि निरखि हिरखि छबि फूलहु ।।
बीरी परस्पर लेत खवावत रूप वैस सम-तूलहु ।
दासि बिहारनि बिपुल रसिक श्रीहरिदासी दंपति रस झूलहु ।।३८।।

आरति कीजै सुंदरवर की ।
नागर नवल निकुंज इन्दु जुग अखिल ताप तम हर की ।।
नव विलास मृदु हास मनोहर श्रवत सुधा सुख कर की ।
श्रीबिहारीदास लोचन चकोर नित अंस प्रिया भुज धर की ।।३९।।

नव निकुंज सुख पुंज प्रिया पिय करत हैं कल केलि । स्याम तमाल रसाल सों लाडिली हांसि कुसुम फल फलित मानों ललित बलित बेलि ।। अंग अंग संग रंग अनंगनि रहे रति रस झेलि । श्रीबिहारीदास दुलरावति गावति दंपति कौ सुख सहित सखी सहेलि ।।४०।।

मुहाँचुही ज्यौ ज्यावत दोउ नेंकु न इत उत दृष्टि जात । यहै प्रीति परतीति निरन्तर पल नहिं लागत अनुरागत नित कित बासर कित निसि बिहात ।। मन ही मन उपजत तरंग अंग अंग भरे रंग ए हँसि वे मुसि-क्यात । श्रीबिहारिनिदासि आसक्ति उपासित दंपति को सुख निरखि निरखि आँखि न अघात ।।४१।।

अँखियाँ लाल की ललचौंहीं ।
इत उत चितै हँसत सकुचत से पुनि बात कहत गहि गोंहीं ।।
नैंन श्रवन नासा अवलोकत भाल तिलक दरसौंहीं ।
श्रीबिहारीदासि स्वामिनी रस वरषति यह सुख समझति होंहीं ।।४२।।

हरति मनु हाँसि सु प्रकासि विकसित विसद देखि रीझी वदन कमल की भाँति री । चिकुर सचिक्कन घनें सरस सौरभ सने रहें रस लुब्ध मनों मत्त अलि पांति री ।। जदपि निरखत रूप निपट अति निकट ह्वै तदपि लोभिन मेरी आँखि न अघात री । कोटि कोटिक किरन, सघन कानन भवन उदित गन अगन दुति काम की कांति री ।। उलटि रीझे रसिक,

भये भामिनि बसिक, भुजन भरि भरि भेंटि, मधुर मुसिक्यात री। मिले सुख सिंधु रति रवन दंपति दोउ श्रीबिहारीदासिन विलसि हिये सुख सांति री ॥४३॥

आवत दोऊ गावत प्रीतम री रंग भरे रस अंस-प्रिया-भुज दियें। ताल काल सुर सात अतीत अनागत घातनि लेत विकट औघर गति कहत लालन प्रति सीखौ जू कुंवरि सिखियें॥ कछु मुसिक्यात सकात रसिक मन सकुच रहत मुख रुख लियें। बलि बलि बिहारनिदासि नव बानिक पर दिन जीजत दरस पियें ॥४४॥

* डोल *

झूलत डोल निकुंज में नागरी-नागर सकल गुन निधाँन।
गावत हँसि मिलावत नैननि नृतत लेत भृकुटी माँन॥
जोवन जोरत मुख न मोरत सुरत पूरत तान विताँन।
रीझि कहत ललिता हरिदासी श्रीबिहारीदासि पिय जाननि मनि जाँन॥४५॥

रसिकराय झूलत डोल झुलावत ललना पल नहिं लागत री निमेषनि नैना। पान करत मुख मधुरे मधुरे रस प्रेम परस्पर रहे इकटक चित चैना॥ हुलसि हुलसि विलसत अंग अंग संग राग रंग रह्यौ कह्यौ न जाइ मोपै उपमा देत कछु आवै मन मैं ना। श्रीबिहारीदासि सखि रीझि परस्पर आई सब निकट कुंज कुटी के तट अपनों अपनों सुख लैना ॥४६॥

डोल झुलावत कुंजबिहारी।
रमकि धरत पग नव जोवन भरि अति आनंद दुलारी॥
सारँग राग अलापत लाल रसाल दै दै करतारी।
कबहुँक हँसत हँसावत रीझि रिझावत प्रीतम प्यारी॥
री तब कर गहि लेत किसोर-किसोरी पुलकि भरत अँकवारी।
श्रीबिहारीदास दंपति नव नव छबि पर छिन छिन बलिहारी॥४७॥

डोल झुलावत लालबिहारी नाँउ लै लै बोलें लालन प्यारी।
हों दूलहा दुलहिनी दुलारी सुंदरवर सुकुमारी॥

नखसिख सुँदरि सिंगारी केस कुसुम सुहस्त सँवारी।
स्याम कंचुकी सुरंग सारी अंचल चंचल छबि न्यारी ॥
बारम्बार बदन निहारी अलक झलक झलमलारी।
रीझि रीझि लालन लैं बलिहारी पुलकि भरत अँकवारी ॥
कोक कला निपुन नारी कंठ सुघर सरस भारी।
सुजस गावत दास बिहारी बिहारनि की बलिहारी ॥४८॥

* चंदन *

सोभा री चंदन बंदन की तन सोभा।
मानहुँ निसि नक्षत्र प्रगटे घन विमल बसन बिच ओभा ॥
करि सिंगार सहचरि लै आई सुख देखन के लोभा।
श्रीबिहारीदास स्वामिनी मुख निरखत काँम विवस चित चोभा ॥४६॥

पिय प्यारी चंदन चित्र कियें।
मानहुँ काँम प्रेम के अंकुर सींचत दृष्टि दियें ॥
अति अभिलाष लाल ललना मिलि सीतल होत हियें।
श्रीबिहारीदास दंपति दुलरावति इहि सुख सखी जियें ॥५०॥

मेरे लाल प्रिया की भाँवती।
रहति कुँज सुख पुँज रहसि रति मधुर मधुर सुर गावती ॥
अपनें कर कोमल अंग अंग प्रति भूषन बसन बनावती।
नैन श्रवन मन दियैं रहत उत छिनक न छबि बिसरावती ॥
अति प्रवीन सब भाइ सहज सखी मध्य सुरस उपजावती।
श्रीबिहारीदासि बलि वैस किसोरनि आपुन रीझि रिझावती ॥५१॥

धूमरे गगन गरजि गरजि ओल्हरि आये री बरसन कों। तैसोई करि सिंगार स्याम सुभग अंग अंग उमँगि इत अवनी रवनी पिय मुख सुख दरसन कों ॥ नान्हीं नान्हीं बूँद वचन चनक मूँद अरुन हरित प्रेम भरित पीयरे पट परसन कों। श्रीबिहारीदास स्वामिनी स्याम सब रितु राजत रहे लटपटाइ उर सों उर सरसन कों ॥५२॥

धूमरे गगन गरजत घन मंद मंद बरषत वर वृन्दावन सघन सरस पावस रितु सुहाई। चातिक पिक मोर मुदित नाचत गावत भरे रंग निरखि निरखि दंपति सबँ सम्पति सुखदाई ।। तैसीये सरस सरद निसि आई तैसीयै निकुंज कुसुमनि छाई तैसीयै ललना लाल लडाई कंठ लपटाई। श्रीबिहारनिदासि गाई गूढ ओढनी उढाई रीझि रहे अंग भीजि मिलि मलार गाई ।।५३।।

गावत राग मलार मिले मन बिहरत वन वन बूँदनि में। भींजे पीताम्बर सारी कंचुकी करत न्यारी कहत हाहा री प्यारी छोरत छबि फबति फूँदनि में ।। सूके बसन बनाय प्यारी पिय पहिराइ सुख ही में सुख पाइ सोल फूल गूँदनि में। श्रीबिहारिनिदासि स्वामिनी स्याम निकुंज बसाइ सेज हेज बाढी रुचि रूँदनि में ।।५४।।

नान्हीं नान्हीं बूँद बन सघन मानों प्रेम बरषै पांनी। सींचि सींचि मन मोद बढावत गावत प्रीतम प्रियहिं रिझावत कहि कहि काम कहांनी ।। फुहिनि पात चुचात गात सिरात रीझि भींजि अंग संग रंग रसिक रवांनी। श्रीबिहारीदास सुख संपति दंपति विलसि विलसि रस पावस रितु रति मांनी ।।५५।।

हरी हरी भूमि अरुन बूढें अरु नाचत मुदित बन मोर। सारी सुही जुही सिर गूँदे बूँदे बचन मृदु स्याम गगन घन घोर ।। हरषि हरषि वरषत मन ही मन प्रेम परस्पर आनंद हियें हिलोर। श्रीबिहारीदास दंपति सुख दरसत छिनहीं छिन रंग बढचौ दुहूँ ओर ।।५६।।

श्रीकुंजबिहारी प्यारी के संग पहिरें कसूँभी सुरंग सारी। नव किसोर तन बनत पीत पट वरन वरन निरखि निरखि मनमथ मन हारी ।। अंग अंग पुलकि जनावत मिलि मलार मन हरत परस्पर सरसताननि न्यारी। वरवस किये बिहारीदास प्रिया रहे निकट इकटक मुख निहारी ।।५७।।

तू राग रंग रंगीली रंगीले लालन संग सोहत सुहाग भरी। तेरे रस

विवस बसत विपिन बिहारी तू ही धन प्रान प्यारी तोसों प्रेम परनि परी ॥ तू इनको सिंगार ए तिहारौ सिंगार प्यारी तैसीयै तू उमँगि अँग अंग ढरी । श्रीबिहारीदासि हरिदासि दुलरावै दिन देखि देखि जीवत तुव मुख कुंज ररी ॥५८॥

* हिंडोरा *

हरियारौ सावन सुहावनों मन भावनों लागत अति नीकौ । इन उन बनि में बदरनि की छहियाँ गहि बहियाँ बोलत डोलत बन बन तैसोई संग सबही कौ ॥ जहाँ तहाँ झुलावत झूलत जुगल नवल रीझि रिझावत आवत अनुराग भरि राग रंग प्यारी पीकौ । विचित्र बिहारिनिदासि कहत दरसत जे इहि सुख दिन धन्य धन्य भाग त्रिया तिनही कौ ॥५९॥

हिंडोरें व झूलन आई नई रितु सावन तीज सुहाई । कुंज कुंज तें निकसि हरि भूमि अरुन वरन मानों चंद वधू सी श्रीस्यामा जू हरखि बुलाई ॥ अपने अपने मेल मिलें अनुराग मलारहि गावत ताननि रुचि उपजाई । श्रीबिहारीदास स्वामिनी स्याम के संग बाढ्यौ रंग अँग अँग रीझ रिझाई ॥६०॥

रस भरे प्राँन प्रिया-पिय झूलत फूलत अँग संग सरस हिंडोरें । अति आतुर आसक्त भये वस भृकुटि कटाक्ष झकोरें ॥ छूटि टूटि गये हार बार बंद छोरत छवि बहुभाँति निहोरें । श्रीबिहारीदासि सुख देख निरन्तर पिय प्यारी यों हँसि मुखसों मुख जोरें६१।

हरषि हिंडोरना री झूलत नवल किसोरी-किसोर । रहसि बहसि हँसि हँसि उर लागत अनुरागत झोटा व देत जोवन जोर ॥ श्रमित न राखे रहें गूढ गुन गाढे गहें चित चुभि रहें अँचल चंचलनि के छोर । श्रीबिहारिनिदासि सु विलास विवस दंपति दरसत ए तन मन मगन निस भोर ॥६२॥

बीबी साँवला मतवाला तेरा ।
और अमल नँहि भाँवदा मुझनूं सु तैं मन मोह्या मेरा ॥

सुहबत मुहबत बडा रस औसरु साँझ सबेरा।
सूरति खूब खुमारी प्यारी नकुल नेह घनेरा ।।
भरि भरि पीवैं पिवावैं तूहीं अचगरी अति अनेरा।
प्रेम पिछांनि महा मद छाके सुँदर सपरस नेरा ।।
बिना मिले पिय लाज का डर था डर ही डर निवेरा।
श्रीबिहारनिदासि सहायक सोफी कुँज महल में डेरा ।।६३।।

प्रिया जू उनीदी हैं ललन जगोहैं।
सहज विराजमान विवि सुँदर सहचरि के मन मोहैं ।।
चार जाँम निसि जात न जानें काँम विवस ललचोहैं।
होत अधीर छिनहि छिन डीठ्यौ सु देत होत सकुचोहैं ।।
कछु आलस अंग अंग मुरत तित बैठत ह्वै हित सोहैं।
कछु मुद्रित मुकलित लोचन चल चितवत भौंह रिसोंहैं ।।
करत प्रसन्न किसोर कुँवर बर चारु सु चिबुक टटोहैं।
विहरत एक प्रेम रस प्रीतम प्राँन जीवन मुख जोहैं ।।
पाँनी पांन पवन सुख आसन असन वसन सिथलोहैं।
तोषत पोषत रहत निरन्तर श्रीबिहारनिदासी कै यह गोहैं ।।६४।।

इन्हें हौं न जानों जागत किधों सोवत से।
पौढे प्रेम प्रजंक अंक कर टारत उर टक-टोवत से ।।
बिथुरी अलक पलक बरुननि बिच नैन चलत मुख जोवत से।
श्रीबिहारिनिदासि देखत ढिंग ठाढी गाढे गुन गहि गोवत से ।।६५।।

झूठेंही झुकति टुकति कित आई। हों हूँ चौंकि चाहि रही री रसन दसन गहि कहि न गई सुमुख मौंन सैंन दैं सखी समुझाई ।। मेरी सीखि सुनि आली जो तेरे अति उताली ऐंसें चलि अपनी छाँह छिपाई। श्रीबिहारीदासि की स्वामिनि स्याम के अंग संग आगें पाछें रही सखी अरगाई ।।६६।।

कुँज महल में नवल ये नागरी-नागर नवकेलि सुरत रचेरी सरस रस रंग।

प्रेम मुदित ह्वै उदित परस्पर रोम रोम उपजत अंग अंग अनंग ।। बिच बिच लाड लडावत भावत गावत तान तरंग । श्रीबिहारीदास स्वामिनी हरचौ सर्वसु अनउदिम भुव भंग ।।६७।।

रगमगे रँगीले दोऊ सुरत रस रसीले छबि सों छैल छबीले ढीले नैंन बैंन । रस बस मगन मदन मद तन मन सघन कुँज भवन जागे सुख चैंन ।। सुघर सुख की रासि बाँधे दृढ प्रेम पासि उठत हियें हुलास परत पगै न । लटकि लटकि जात अंगअंगमें समात स्यांम सोभा गोरेगात कहत बनै न।। हरषि हरषि हियें ग्रीवा भुज भरि लियें अधर मधुर पियें जियें सत मैंन । मधुर मलय बहत श्रम कौ अम्बु हरत विलसत ए न अघात प्रात हू भयेंन ।। सखी मन में सिहाइ लाडिली लाल लडाइ निकट समयौ पाइ आई सुख लैंन । योंही खेलौ प्रान पियारे निमिष न होउ न्यारे श्रीबिहारिनिदासि दुलारे धारे उर ऐंन ।।६८।।

मानत नाँहि री मनायौ प्यारी तू कौलौं करि रही री हठ मोसों । नाँहि कहूँ सुनी न समझी न देखी नैंननि तिहुँलोक गुन रूप निपुन जो करि सकै री सरि तोसों ।। तुव हित नित चितवत छिन ही छिन तिनसों क्यों कीजै मन मैलौ अनदोसौं । श्रीबिहारीदासि की विनती मांनि रसिक राधे रहसि मिलि री तजि रोसौं ।।६९।।

कहत न बनत गनत सु रसिक वर दूलह की बतियाँ । इतहि नैंन उत बैंन इतै कर कोमल माल सुधारि धरत इत तकत आँन आँन घतियाँ । कबहुँक बाँह गहत न कहत कछु सकुच सकुच मुसिक्यात बात कहि उपजावत रस रतियाँ ।। श्रीबिहारीदास स्वामिनी स्याम की कहत सखी सों सब सुखद श्रवन बहु भतियाँ ।।७०।।

आज कौतुक वृन्दावन बंसीबट ।
घूँघट मुकट काछनी काछें आछें नाचें जमुना तट ।।
देसी सुलप सुधंग अँग मिलि ताँन तिरप में निपुन मनों नट ।
नैंम विरस रस रह्यौ परसपर विवस भये छबि निरखि छुटी लट।।

सारी सिर सँवारि प्यारी सखी पिय के अंग झाँपति पियरे पट ।
श्रीबिहारीदास हरिदासी के संग गावत रीझि राग गौरी ठट ।।७१।।

श्रीबिहारी बिहारिनि गावत रस रंग भरे परस्पर फूलत करत किलोल । एकनि के कर किन्नरि एकनि कर ताल रबाब मृदंग राजत सुवस भये विवि सुंदर चितवत चकृत अलोल ।। बन प्रसून बरषत सुरपुर तैं सोंधौं सरस अतोल । उडत अबीर कुमकुमा छिरकत अरु बंदन बहु-मोल ।। पिय डारत लपटात लागि उर प्रिया विसेष बर लोल । राखे न रहत श्रमित सुन्दर प्रति दै सर्वसु रस ओल ।। रीझि निरखि रस रीति प्रीत जन सुनत मधुर मृदु बोल । श्रीबिहारीदास बलि बलि विनोद नित बारति प्राँन अमोल ।।७२।।

स्याँमा-स्याँम सुखदायक सोहत सहज संग अभंग ।
मनि कंचन घन दामिनि नख पर रतिपति वारों कोटि अनंग ।।
चलत नृत्त सुर सप्त वचन रुचि उपजत तान तरंग ।
श्रीबिहारीदास बलि बलि लाडिली-लाल पाग में सुभग मंग ।।७३।।

रसिकवर रसिकनी रस रासि ।
रसिक-सुघर रसिकन की जीवनि जुगल परस्पर हासि ।।
कोक कला संगीत सिरोमनि अँग अँग लावनि लासि ।
इहि रस दंपति संपति पर बलि विसद बिहारिनिदासि ।।७४।।

रास मंडल मधि निर्तत दोऊ । विमल भूमि विमल द्रुम दल नभ नृत्य निरंतर आलस न सोऊ ।। ज्योंही ज्योंहीं अपने अंग नृत्तत इत त्योंही त्योंही अपने अँग निर्त्तत उत वेऊ । उपजावत गति में गति उकति रहत न हारि मानि मन कोऊ ।। रीझि रीझि वारति सखी तन मन धन अद्भुत कौतिक जुवति जोऊ । देत असीस बिहारिनिदासी इन रसिक अनन्यनि के सुख में सुख होऊ ।।७५।।

सरद निसि उज्यारी उज्ज्वल रस विवस बिहारी ।
नाचत गावत अपने अपने रँग भरे सुख भारी ।।

कर सों कर जोरत कटि सों कटि लटकि न्यारी।
श्रीबिहारिनिदासि की आंखिन आगें नाचत प्रीतम प्यारी ।।७६।।
कुंजनि कुँजनि करत केलि।
कुंडल मंडल अति रस भरे बोलत डोलत लाडिली लाल नवेलि ।।
लटपटात गात गलित ललित माल धमेलि।
श्रीबिहारीदासि दुजनि भुजनि राखत उर सकेलि ।।७७।।
फब्यौ है लडैतीजू के कंठ स्याँम मखतूल को फौंदा।
कछु श्रम स्वेद भेद तन मन न समात क्रांति बहु भांति लसत रस सौंदा ।।
अँग अँग आलिंगन अभरन बारौं कोटि मदन मद रौंदा।
श्रीबिहारिनिदासि स्वामिनी स्याँम संतत सेवत सखी सुखपैयत अनहौंदा ।।७८।।

छकिए रहति न कहति समझि कछु बात तोहि असर री मदन मद। तैसेई मत्त रहत किसोर गहि पाइ ज्याइ मोहिं प्याइ पीवत जोवन सद ।। जाके नाम काँम उपजत तुव वाँम अमल बल ज्यौं भावै त्यौं तन मनहि मरद। जै श्री विचित्र बिहारिनिदासि कहति भई विवस जुवती जन सब रस प्रेम परे रद ।।७९।।

तैसेई नव कुँवरकिसोर-कुवरि नव-जोवन वारें। अलकलडी अलबेली बतियनि सुनि बहु भतियन सुख पाइयत पुनि नव नव नेह निहारें ।। खेलत हँसत हँसावत रस वस रीझि-रीझि रस रीति प्रिया पिय भूषन बसन परस्पर बारें। श्रीबिहारीदासि स्वामिनी स्याम अंग संग सहाव करि धरि राखे उर विहरत लाज बिडारें ।।८०।।

मरगजी अँगिया छूटे बंद आनंद उर न समाई। तैसेई अंजन मन रंजन अँचल छबि छीटें रही फबि कहूँ कहूँ पीक की लीक लाल के मन रही छबि छाई ।। सुरत के अन्त आलस वस रस भरे बहुरि उमँगि ढरे रहे लटपटाई। भूषन वसन पहिरें न मंजन करें श्रीबिहारनिदासि अल-बेली लाल लडाई ।।८१।।

आजु फूल अँग अँग न समाती। छबि सों छोरि स्याम कटि पट इत

गोरे गात छूटि गई गाती ।। नीवी नाभि निरखि बंद ही बंद मिलवत करि मानिनि मुसिक्याती । श्रीबिहारीदासि स्वामिनी स्याम सुरति रस विवस भये बिलसत थिरथाती ।।८२।।

आनन पर अलकैं झलकैं आलीरी मानों आये री अलि कमल आस पास । एकनि कों दई आड अटकि राखे सोंधे सनी बैंनी पाछैं आछैं एक अरुझे श्रवननि पर सुमन सुबास ।। तैसेई खंजन नैंना निमुष न रहै चैना तिनकों जतन करें भृकुटी धनुष धरें मनमथ सर साधें तिलकु त्रास । श्रीबिहारीदासि स्वामिनी सौं स्याम कहत सब सुख लहत जब चितवत दुरि मुरि मुख हँसि बिलास ।।८३।।

गावत लालन संग नवल नागरी । संगीत सुघर सुर सरस सप्त लेत सुंदरि ताल सचित ललन कहत गुननि आगरी ।। रीझि सुवस भये रसिक बिहारी बिहारनि रँग रँगे रस रागरी । जसु गावति सचुपावति दासि बिहारिनि राजत चिरु चिरु अनुराग सुहागरी ।।८४।।

ललनु कहत नैंकु बहुरचौ कहौ प्यारी जैसी तोपै आवै राग रचना रचि । मधुर तान बंधान बखान तैं राख्यौ अंतर अमृत सचि ।। और नारि जो सँवारि-कहैं सत सम न होंहि जो रहैं तेउ पचि । श्रीबिहारीदासि पिय परसि प्रिया पग बिनतीव मानियैं कहों एक जचि ।।८५।।

गुन की सरि को करि सकैं तोसौं तुव प्रताप भरिपूर रह्यौ अखिल विश्व सुजस सर्वोपर । लेत विकट अवघर गति ताँन मिलावत गावत मधुरे मधुरे सुर रीझि रहे नटनागर ।। कौंन कौंन अंग को गुन वरनौं सब अँगनि नागर आगर तुव धन्य धन्य तन मन वारौं एक रोम पर । श्रीबिहारीदास पिय जानि प्रकृति रस बस करि राखे कुंजबिहारी सुघर वर ।।८६।।

झूलत डोल बिहारी-बिहारनि राग रह्यौ रमि घुमडि कांन रे । अँग अँग मिलि गावत नव नव गति उपजावत रति अतीत अनागति आँन आँन रे ।। लेत अलापि लाल-ललना मिलि संच सप्तसुर मधुर तांन रे ।

श्रीबिहारीदास की स्वामिनी रस वरषति निरखि निरखि सखी रीझि रही रस मगन गांन रे ।।८७।।

हों बलि जाऊँ लाडिली के लाल की। भाँवतिन के भाँवते बिहारी बिहारिनि रसिक रसाल की ।। फूले हैं गुलाल लाल पेंच पागके अलक झलक छबि तिलक भाल की। भोंहनि हँसत इत उत चितवत नैंन कमल कृपाल की ।। कपोल करनफूल नासा सुक समतूल कंठ मोति छबि जोति चिबुकनि चाल की। अधर मधुर मुख मुरली कर पर बांनिक बाहु विसाल की। हृदै जगमगै जराव की चौकी छबि अतुलित बनमाल की ।। भरि भरि नैंन हृदै आनंद सुख मानत लाल निहाल की। फैंटा लटकि चाक चरननि तन कहा कहौं चाहि रही चलनि उताल की ।। श्रीबिहारी-दास पिय की प्रकृति इत प्रेम प्रिया प्रतिपाल की ।।८८।।

मानिनी मन मोहति मोहन पिय कौ।
अद्भुत कथा कहौं इक सुनि सखी जितो है सहज बल तिय कौ ।।
अनउदिम अनयास भये बस स्यांम भांवतौ जिय कौ।
श्रीबिहारीदास नवकुंज केलि मिलि बिछुरत नांहि रतिय कौ ।।८९।।

आनंदकंद दूलहु मकरंद श्रवत मंद मंद वृन्दावनचंद बिहारी। मधुरे मधुरे हँसत लसत दसन-बसन छबि पर ससि कोटि करौं बलिहारी ।। वे कला कृशहीन तुव प्रवीन पूरन पावन किरन पांन करत निज जन मन हरखि नैन निहारी। श्रीबिहारीदासि पिय-प्यारी रस बस मगन सघन उपमा देत कछू न बनें बलि लाडिली लाल तिहारी ।।९०।।

रहसि रस वस करि पिय प्यारी। कबकी निहोरति झूठियै झुक झुकति काम कसोटी कसति देखि स्यांम की सु गति श्रमित करत मनुहारी ।। आरति-हरन सुख-करन सुभाव तेरौ मेरौ कह्यौ मांनि जांनि हौं हितू तिहारी। श्रीबिहारीदास की स्वामिनी सुघर सुकुमारी नैंन सैंन निहारी ऐसें सुख देहु बलिहारी बलि लाडिली लाल कुंजबिहारी ।।९१।।

कब के बैठे बिनती करत चरन धरत सुंदर वर सुकुँवार किसोर।

अति ही आतुर चातुर चपल धीरज न धरत चितवत छिन छिन तुव विधु वदन ओर ।। प्रीत उदै करि सुदृष्टि किरन तृषित मोहन नैंन चकोर। श्रीबिहारीदासि पिय पाइ सुधा रस उमँगि ढरे तन मन आनन्द न थोर ।।९२।।

रहि न सकत निमिष न न्यारे प्रांनपति प्रेम भरेरी। नैंन बैन श्रवन सखी राखे उर पर धरि मैं पिय परखि खरेरी ।। मैं ज्यौंहीं ज्यौंहीं कसे त्यौंही त्यौंही बसे मन सनमुख चितै इत उत न टरेरी। श्रीबिहारीदास की स्वांमिनी वचन सुनत अनुकूल भई फूल अंग अंग रस रंग ढरेरी ।।९३

करत सिंगार परस्पर अँखियां आरसी करि मेरी। जदपि अंग अंग अनेक नग दिपति तदपि लई हौं नवल नागरी नेरी। अंजन मंजन कै मनरंजन जहां जहां चाहि चितवत हरि तहां तहां तित हों हेरी ।। श्रीबिहारीदासि स्वामिनी स्यांम सखी नेंकु न बिसरत कहत हमारे तन मन प्रीति निजु तेरी ।।९४।।

गुन तौ कछु निजु वरन्यौं पै रूप की निकाई न जाति कही। अंग अंग माधुरी मनोहर कापै परत लही ।। करत केलि भुज कंठ मेलि झेलि सुरत सिंधु सुख देत लाल ललनां प्रेम उमही। श्रीबिहारीदासि पिय रसिक सिरोमनि आदि मध्य अवसांन एक रस दंपति सुरति निबही ।।९५।।

तेरे किये मांन री व्यापत प्रांननि के प्रांन। इहि डर डरपत जिन घटै हेत मन ही मन कलपि लेत नांहि करत वादि संकेत विसरे सबै सयाँन ।। जदपि तू करुनामय लाडिली पालत मो मन चोंप की चाडिली अंग अंग सुख दै वर बाडिली सकल गुन निधाँन। श्रीबिहारीदासि रस विलास हुलसि प्रेम प्रकासि यों राजौ साजौ रति दै अधरामृत पाँन ।।९६

* राग अडानों *

गोरे तन तनसुख की सारी सूही सिर अतिहीं सोहति मन मोहत री। अंग अंग में झलक, लाल के मन ललक,नैंकु न लागै पलक,निरखि निरखि मुख तामें स्याम कंचुकी चुहचुही ।। आए कुंज में रहस रस ही रस परसि

पूजी मन आस अरु वासना जिय जुही । श्रीबिहारिनिदासि बलि बलि या बांनिक पर और न सुहाइ बहु भांति बरनत कवि यह छबि फबत तोसी तुही ।।९७।।

चिरजीयौ लाल रसाल प्यारीजू तेरौ लाडिलो कौ लाल । चितवत चित-वितहिं चुरावत, मधुरे बैंन श्रवन सिरावत, नैंनन ही पुनि देख्यौ भावत, खिलौंना सो तेरे मनकौ ख्याल ।। तेरे हित नित दरस परस हुलसि हुलसि हियें सरसत तू तन मन प्रान प्यारी तोसौं प्रेम परनि ढाल । श्रीबिहारीबिहारिनिदासि मिले सुख मुख देखत होत निहाल ।।९८।।

सुनि नव नागरी जू पिय सों तू काहे कों मान बढावति । रहि न सकत तुम बिनु तुम इन विनु बिन देखें दुख पावत तातें मोहिं अनहूँ कहें कहि आवति ।। जिय विचारि उत्तर निवारि कत करत आरि मो तन निहारि कहि काहे कौं प्रीति दुरावति । श्रीबिहारीदासि पिय प्रानपति अतिसै सुख पावत जब तू सनमुख नैंन सौं नैंन मिलावति ।।९९।।

राजत रंग भरे रति नैंन उनींदे री सोभा देत ।
सकुचि सकुचि बिगसत सखी अरुन असित सेत ।।
मानहुँ अम्बुज पर जुग पुतरी अटके अलि संकेत ।
अति रस लुब्ध तजि न सकत हँसत सुरत हेत ।।
सब सुख सूचत अति अनुरागे जागे री स्याम समेत ।
श्रीबिहारिनिदास अँग संग मनोहर मोहन मन हरि लेत ।।१००।।

* राग सोरठा *

रसिकवर बन बोली चलि आली ।
नव निकुंज नायक मन मोहन तू नव जोवन वाली ।
सुनहु सुघर सुर ज्ञान सिरोमनि बात कहत कित ठाली ।
इत आसक्त अधीर उतै वे आतुर करत उताली ।।
श्रीबिहारिनिदासि सहचरि संग लै चली अली प्रीति प्रतिपाली ।
राख्यौ पन इनको मन दोऊ बीच मिले बनमाली ।।१०१।।

प्रिया संग खेलिये हो लला जाकी तुम करत हे अभिला।
लाडिली के अँग अँग सबै गुन तूं निधि कोक कला॥
नव निकुंज सुख के पुंज नवल महल भला।
श्रीबिहारिनिदासि दोउ बल तौलत को अबला प्रबला॥१०२॥

* राग कल्यान *

नैंननि सों नैंन जोरें इत उत मुख न मोरें। मंद मंद हासि मन हुलासि श्रवत सुधा मानों द्वै ससि मिलि चारि चकोर के भोरें॥ जिहीं जिहीं अंग परनि परैं तित हीं तित हरै हरैं ढरैं ढिग अंग अंग अनंगनि रोरें। श्रीबिहारिनिदासि प्रवीन प्रिया पिय यों बिहरैं भरि भुज सनेह निहोरें॥

देखि देखि मुख जीवत यों सुख मानत हैं रस रंगी।
कबहुँ कोमल कर सों बंद छोरत कंचुकि कसन सुरंगी॥
नई नई प्रीति प्रतीति प्रिया सों नई रुचि चौंप सुचंगी।
श्रीबिहारनिदासि की स्वामिनी स्यामहि नचावत होत त्रिभंगी॥१०४॥

कहत स्याम-स्यामा सों मोकों दरसन देत रहौ जू।
अँचल अलक पलक सु निरन्तर यह संकोच सहौ जू॥
यह विनती मानिये श्रवन सुनि नाहिन वचन कहौ जू।
श्रीबिहारिनिदासि कहत रुख लियैं यह सुख सहज लहौ जू॥१०५॥

देखि री कुंज नव किशोर खरे अपनी प्यारी के रंग भरे। रंग ही में रंग बाढयौ रंग रंग मिलि प्रेम गाढयौ रगमगे श्रीबिहारीबिहारिनि उमंगि रंग ढरे॥ सूचत नख सिख सब सुख अति ही आनंद प्रफुलित मुख अँगनि अंग अरे। श्रीबिहारिनिदासि कों दै सुख आपुन हिलि मिलि यों विहरें॥१०६॥

स्यामा स्याम अंग संग रंग रंगे रसिकाई। सौरभता मत्त मुदित मनसिज विवसाई॥ नित नवीन प्रेम प्रवीन ए दुलहा दुलहिनि अधीन देखत ही बनत बाँनिक छबि वरनो न जाई। श्रीबिहारिनिदासि रीझि रही अचपलनि की चपलाई॥१०७॥

विहरत बन नव नव रंग राजत कुंज रवन रवनी ।
कंठ लागि लाडत लालन कैं सु माँननि मन भवनी ।।
कबहुँक झुकि झंपति अँचल मुख चँचल उर अवनी ।
नाहु बाहु गहि वदन विलोकत बिहँसि बचन चवनी ।।
लाल प्रसंस लगत छिन छिन पग छाँडियै हठ ठवनी ।
श्रीबिहारिनिदासि हिलि मिलि खेलौ सुखदाँनि कुंवरिकवनी ।।१०८।।

अनभती अँखियनि चितवति रिझवति हैं मन लाल कौ नव बाल चलति लटकति गति आवत हैं सुख दैन । तन सिंगार सुकुंवारि समझि कह्यौ स्याम सौं ज्यौंही त्यौंही मुख रुख लियें नैंन सैंन बिन बैंन ।। चलि आये सुख पाइ नवल निकुंज में सुख पुंज प्रिया-पिय उदित मुदित मन मैंन । श्रीबिहारीदास स्वामिनी स्याँम बरवस किये सुरत रति जीति यौं गर्व गनैंन ।।१०९।।

सुख में सुख भयौ मनावत । हँसि हँसि रुखे रुखे ह्वै रहत स्याँम सनमुख रुख लियें रस ही रस रोस नसावत ।। जितहीं जित चितवत तितहीं तित चितै चतुर चिंतवितहि चुरावत । श्रीबिहारीदास परबस प्रिया पिय देखि सखी सुख परनि ढरनि माई न्याइ ही रसिक सिरमौर कहावत।।११०

प्यारी जू के बदन कमल पर अलकावलि मानों आनि बैठे मधुप गन । तिनहिं निवारत सँवारत सिंगार मिस स्याँम काँम वस रहे जकि थकि तहां दरस परस बाढो लाल के ललक मन ।। करत विलास हांस मिथुन मन हुलास हिलि मिलि खेलें दोऊ सुख के सदन । प्रेम कौ पार न पावै, लाडिली लाल लडावै, आपुन रीझ रिझावैं कहत न आवै श्रीबिहारिनिदासि गावै बढावै मोद मदन ।।१११।।

फूले फूल बसीले तन में सब इन्हीं के मन की फूल । नैंन कमल मुख कमल सखी कुच कमलनि ऊपर मनहुँ अलक अलि भूल ।। चरन कमल कर कमलनि पूजत फूलत सिथिल दुकूल । श्रीबिहारिनिदासि सुवास मगन नव कुंज मंजु में झूलत गहि भुज मूल ।।११२।।

संगीत-सागर गुननि आगर रूप उजागर रसिकराई। गावत तान तरंग अंग अंग रस बरसावत प्यारीजू कौ सुजस कहत लाल लडाई ।। जानति जुवती दाइ उपाइ उपजावत भाइ भुज भरन करन आतुर चातुरताई। श्रीबिहारिनिदासि की स्वामिनी स्याम हँसि रस बस किये रीझि रहे रसिक चरननि लपटाई ।।११३।।

आवत हैं री अति आनंद में ललना लाल।
कुंज कुंज डोलनि मृदु बोलनि प्रान प्रिया सों ख्याल ।।
हँसि हँसि सुख मुख सों मुख मिलवत लेत देत हिल मिलि रसिकनी रसाल।
श्रीबिहारीदासि स्वामिनी स्याम सखी सुख दै करत निहाल ।।११४।।

* राग बसन्त *

सहज बसंत कामिनी कंत। नित बिहरत मिलि इनहिं न अंत ।।
फूले तमाल लता लपटंत। जब हँसत सुगंध जीवत सब जंत ।।
श्रीविचित्र बिहारिनिदास कसंत। रस बर्षत विपिन अंग संग में मंत ।।११५

आजु बसंत खेलत देखि।
बिपिन बसन सुरंग भूषन विविध वरन विसेखि ।।
नैंन पुट भरि भरि प्रिया पिय आनि उर अवरेखि।
जै श्रीवर बिहारिनिदासि यह सुख जन्म जीवन लेखि ।।११६।।

फूलन की सारी प्यारी पहिरें तन। फूलन की कंचुकी फूलन की ओढनी अंग अंग फूले फूल ललना के मन ।। फूलन के हार उर फूलन की माला फूलन के आभरन केस गूंथे फूल घन। फूलनि के हाव भाव फूलन के चोज चाव विविध वरन फूल फूले श्रीवृन्दावन ।। फूली फूली सखी आईं बीन बीन फूल लाईं पञ्चम सुर सुहाई रचिन वितान गन। फूल सों लाडिली पाई फूल सों लाल लडाई श्रीबिहारिनिदासि गाई फूले फूले प्रेमपन ।।११७।।

नवल बसन्त नवल वृन्दावन। नव परिमल अलि लुब्ध तरुनि तन ।।
नव पराग अनुराग मगन मन। नव विहार बलि दासि रसिक जन ।।११८

जै श्रीवृन्दावन आनंद न अंत। तहाँ श्रीस्यामा संतत बसंत॥
सब रितु राजत रसिक संग। ताके सुखदाइक सब अंग अंग॥
उपजत तन अनंत अनंग रंग। यौं विहरत अनुरागी अभंग॥
नख सिख रस श्रीमंत मंत। सखि प्रेम पुलकि कामिनी कंत॥
घन दाँमिनि ज्यों मिलि लसंत। हों दिन दरसौं बिलसत हसंत॥
कनकलता कुसुमित रसाल। ताके लोभ सु अलि साँवल तमाल॥
जाके अधरबिंब सिंदूर भाल। भई बिपुल पुलक मनसा बिसाल॥
ललित बलित श्रीफल बिलास। ताके नव जोवन मंजरी सुवास॥
ताके अलक भृंग मधु गंध लोभ। अंचल चंचल चित छुवत छोभ॥
जंघ कदलि मृदु भुज मृनाल। ताके नीलोत्पल लोचन गुलाल॥
ताके चरन कमल कर कमल लाल। सखि प्राँन जीवन मोहन मराल॥
रुचि रवनी कवनी किसोर। जानत नहिं निसि गत भये भोर॥
चितवत प्यारी विधु वदन ओर। पिय पाँन करत लोचन चकोर॥
पुनि नाभि निरखि नागर गंभीर। अति व्याकुल ह्वै बैठे अधीर॥
पुनि नीवी बंद अवलंब स्याम। सखि बचन रचन रिझवत सकाम॥
आतुर चातुर अति बड विनोद। सखि रहसि बहसि मन मदन मोद॥
दोउ चाहि रहे दृगदृष्टि जोरि। छोरत छबि कर छंद बंद निहोरि॥
सुख आलिंगन चुंबन मिलाप। कूजति कोकिल कोमल अलाप॥
हार टूटि कल वलय फूटि। गये कसनि कंचुकी चिकुर छूटि॥
आली बाली वर विमल वारि। सेवत सींचत सुख मुख निहारि॥
दोऊ सकत न विवस बसन सँभारि। श्रीबिहारिनिदासि हँसि हँसि सिंगार॥

आजु बसंत बन्यौ सखि वन में।
फूल सों लाल लडाय लाडिली खेलत मत्त मदन मे॥
फूली लता ललितादिक देखति फूल बढी तन मन में।
फूल सों दासि बिहारिनि गावति फूल के सुख सदन में॥१२०॥

विहरत राजरितु बनराइ।
जहाँ नित्त उदित नव नव भाइ॥

सहज कुसुम समूह नख सिख सुंदरी सुखदाइ।
लाल अलि आसक्त सौरभ मिलि विलसि विलसाइ॥
अंग राग पराग रंगे अँग पिय पियूषै प्याइ।
मत्त घूमत नैंन जुगवर सैंन, मैंन नचाइ॥
सहज सरद बसंत रितु रतिपति लियें ललचाइ।
देखि यह सुख जियें हम सब सुख दियें समुदाइ॥
या रसै सेवत न नीरस सरस कुकवि कहाइ।
सब रसनि कौ राज रस या बिन न हियौ सिराइ॥
सुनि समझि उपदेस श्रीहरिदास दिन दुलराइ।
जै श्रीवर बिहारिनिदासि बिपुल विनोद विसदनि गाइ॥१२१॥

नवल वृन्दावन नवल बसंत।
नव द्रुम बेलि केलि नव कुंजनि नवल कामिनी कंत॥
नव अलि अलक झलक नव कोकिल नव सुर मिलि विलसंत।
नव रस रसिक बिहारिनिदासी कें नव आनंदहि न अंत॥१२२॥

* राग केदारौ *

जोरी अद्भुत आजु बनी।
वारौं कोटि काँम नख छबि पर उज्वल नीलमनी॥
उपमा देत सकुच निरउपमाँ घन दामिनि लजनी।
करत हासि परिहास प्रेमजुत सरस बिलास सनी॥
कहा कहौं लावन्य रूप गुन सोभा सहज घनी।
श्रीबिहारिनिदासि दुलरावति श्रीहरिदास कृपा वरनी॥१२३॥

हँसि मिलिबो मेरे चित तें न टरई।
सहज चितै चित चोर परस्पर प्रेम बचन सरस सुर ढरई॥
मदन मुदित बंद ही बंद छोरत उर जोरत मुख पर मुख धरई।
परम कृपाल रसाल लाडिली लालहिं लपटि लटकि भुज भरई॥

प्यारी जू प्राननाथ रस विलसत श्रम जल कन वरषत मन हरई ।
श्रीबिहारीदास अँचल चंचल कर इहि औसर आनंद अनुसरई ।।१२४।।

ऐसे सुख पाइयत सखी सुख देखत ।
आतुर मुख निरखत चंचल कर बनत न चित्र उर लेखत ।।
प्रिया हँसति सकुचत मोहन छिन छिन रति रसहि विसेषत ।
श्रीबिहारीदासि लोचन ललितादिक लगत न नैंन निमेषत ।।१२५।।

मधुरे मधुरे बोल बोलि निरमोल रही क्यों तू अबोलिये । बोलिये जू बहुरि नैंन श्रवन मन सीतल होत तन तेरे कहत प्यारी बोलि इत उत न डोलिये ।। तब चितै मुसिक्याइ ललन अकुलाइ लिये उर लाइ प्यारो जू रसिकराय तुही धों समुझि रह्यौ अरुझि विरह बंद खोलिये । श्रीबिहारीदास प्रीतम प्यारी सों कहत छिन छिन प्रति रति दृष्टि पला प्रान तोलिये ।।१२६।।

कछु न सुहाइ समाइ न मन में लालन ललना ललना करै । तोसों लाल कही मैं कही रहो मुख मोरि जोरि दृग देखत हूँ न सरै ।। यह न प्रीति की रीति लाडिली जानत हौ तुम नेम प्रेम कौ जो जिंहि भाइ ढरै । श्रीबिहारीदासि प्रीतम प्यारी मिलि खेलत मैं मान मनावत बहुरि मान जिन करै तातैं फिर फिर पाँइ परै ।।१२७।।

जू जानत हौ मेरे मन की मैं कब माँन कियौ । तुम मेरी जीवन जिय कौ ज्यौं जानत हो कित मानत हौ पिय संभ्रम वचन बियौ ।। क्यौं अन-बोले ह्वै रहे गहे से मन कहि वचन समझाइ सुनत हँसि आयौ हुलसि हियौ । श्रीबिहारीदासि प्रीतम प्यारी प्रति बोलत खोलत कर कंचुकी कुच छलि मुख अमृत पियौ ।।१२८।।

नव निकुंज भवन में लाडत लाडिले लाल संग लाडिली । रूठे तूठे जानें जात न मोंहि मनावत आतुर चातुर चोज करैं चित चाड चाडिली ।। होड बदाबद गावत रीझि रिझावत दोउ री हँसि जात छबीली सुजान

छबीले तान कछु सुर छाडिलो। श्रीबिहारिनिदासि बलि रस भीनें लीनें उर सुघर सुंदर कोक कला वर वाडिलौं ॥१२९॥

अपनी लाडिली लाल लडाइये। अपने अपने मन कौ भायौ पायौ री सुख सदन वदन वदन जोरें मदन मोद बढाइये ॥ आपुन ही हिलिमिलि खेलौ हँसौ मन में बसौ जैसे नैंननि सुख पाइये। रस ही रस बस किये श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनिदासि सदा सुखदाइये ॥१३०॥

नैंन सुफल करि जुगल नवल देखि री देखि मन दै।
बैठे करि मंजन मनरंजन अंजन नैंन निमेषनि दै॥
बाँनत विविध कुसुम अवतंसनि अंसनि हँसि भुज दंडनि दै।
श्रीबिहारिनिदासि रसमत्त परस्पर मिलि विहरत सखियनि सुख दै ॥१३१॥

देखि री देखि सखो कौतुक कुंज खिरकी। कुसुम अनेक रंग रुचिर सेज्या सुरंग सीतल बहत मंद सुगंध समीर की ॥ खेलत सुंदरी स्याम अंग अंग अभिराम ग्रीसम समयौ जानि जमुना नीर छिरकी। श्रीबिहारनिदासि बारी जै श्रीस्यामा सुकुमारी सीत भीत भई प्यारी पिय हिय हिरकी ॥१३२॥

ए रस रंग रसिक राजैं। अंग अंग सुखदायक अति ही आतुर चातुर चपल किंकनी नूपूर बाजैं ॥ उपजत मदन मौज दुहुँ दिसि चौज चितै मानौं नृत्य करें अंग अंग अनंगनि साजैं। श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि विलासहिं गावत हरषि सुजस सेवत सुख समाजैं ॥१३३॥

फूलन की सारी चोली फूलन को लहँगा। फूलन की पाग बांधे फूल कर बाँन साधें फूलन को उपरेंना मोल माई महँगा॥ फूलन की सेज सोहै फूल बैठे मन मोहै फूल सों जामिनी जाम हौं न जानौं कहँगा। श्रीबिहारिनिदासि फूली गावति रस में झूली और फूल इहि फूल सब छबि छहँगा ॥१३४॥

नव निकुंज मन्दिर में ए फूल फूले री वृन्दावन।
जुगल नवल मुख कमल विराजत गौर वरन साँवल तन॥

सरस पुलिन सेवत सज्या सखी उपजत कोटि मदन मन।
झूलत फूलत प्रेम परस्पर सौरभ स्वास मलय पवन ।।
महा माधुरी पीवत नैंननि अलि सहज सनेह सुख सदन।
श्रीबिहारिनिदासि रसिकन की जीवनि संतत सुखद धनी धन ।।१३५।।

देखत सिरानें नैंन बैन मधुरे सुनि श्रवना।
हाव भाव चित चाव चतुर मुख चुंबित प्रमुदित रति रवना ।।
परम सुवास सेज सुखदायक रची है सुहस्त स्याम कुंज भवना।
श्रीबिहारीदास अंग अंग सीतल भये मंद सुगंध परसि पवना ।।१३६।।

दूलह दुलहिनि दिन दुलराऊँ।
कुमकुम मुख माँडों मँडवा-तर नवल निकुंज बसाऊँ ।।
विविध वरन गुहि सुरंग सेहरे रसिकनि सीस बँधाऊँ।
कोमल पीठि दीठि करि ईठनि डीठि मिलै बैठाऊँ ।।
पाँन परसि हँसि वचननि रुचि अँचल चँचलहिं गहाऊँ।
परम नरम रस-रीति प्रियाजू की प्रीति निरन्तर गाऊँ ।।
उत्कंठित जाँचत जुवतिन हित केलि बेलि वरषाऊँ।
श्रीबिहारीदास हरिदासी के संग देखि दुहुँन सचुपाऊँ ।।१३७।।

कुंजमहल जुगल नवल यों जागे।
बतरस बीति गई रजनी सब सोये री नेंकु निमेष न लागे ।।
सूचत सबै सुभाइ सखी सुनि रहसि मिले अँग अँग अनुरागे।
अंजन अधर पीक नैंननि कहुँ कहुँ जावक छबि सेंदुर दागे ।।
अति आनंद मगन सुरत-सदन मोहन-मन मगन मरगजे बागे।
श्रीबिहारीदास धँनि धँनि ललितादिक जे सुख निरखत सहज सभागे।।१३८।।

निरखि निरखि ललिचात लाल अलकावलि भीजी अरगजैं।
लोचन लोल अलोल विराजत सोहत बागै मरगजैं ।।
अंग अंग सचुपाइ परसपर उदित भए दोऊ वरगजैं।
श्री विचित्र बिहारिनिदास बिपुल बलि सुजस गाइ गरगजैं ।।१३९।।

आजु कछू और बनाव बन्यौ ।
हास बिलास भेद भृकुटिन तैं उपजत रसहि सन्यौ ।।
अंग अंग प्रति पट भूषन तन साँवल सुभग ठन्यौ ।
जागत जामिनि बढ्यौ री जितौ सुख कापै परत गन्यौ ।।
अति आनन्द मगन मन सुरत सदन छिन न बिहात जन्यौ ।
श्रीबिहारीदास नव कुंज केलि मिलि मनमथ मान हन्यौ ।।१४०।।

बिहरत दोऊ अति रंग भारे । अंसनि पर भुज दियें बिलोकत वदन जोति रति होत परस्पर निरखि कोटि मदन मन हारे ।। अति अनुराग सुहाग भये बस रहि न सकत निमुषहु न्यारे । श्रीबिहारीदास दंपति मंदिर राजत निकुंज जित सुंदर सुघर सुकुंवारे ।।१४१।।

बादि ही गहर करत बातनि बातनि बितई राति । स्याम सुघर सुख पुंज निकुँज में बैठे बडी वार के हों याही तें अकुलाति ।। ऊतर दै मोहिं उलटावति मो मन में न समाति । अपनों सुख सुमरि सखी री समयौ गये तें तब तू मोही सों सतराति ।। आरत क्यों न निवारत पिय की नाहिंने सही जाति । श्रीबिहारीदास प्रीतम हित प्यारी सुनि श्रवन उठि चलि मुसिकाति ।।१४२।।

केलि सोभा सखी अति बन बिराजैं । फूल में फूल अनुकूल सब द्रुम लता लपटि भावै भजति स्याम सुख साजैं ।। और रोचिक रसिक रहत राधा बसिक सघन तन तडित मिलि मधुर मृदु गाजैं । मुदित मोरी मोर देत चित चहूँ ओर रीझि कुंवरि किसोर सब सुख समाजैं ।। कहत श्रीमुख धँनि धन्य रसिक अनन्य रहत सनमुख सुखद मम केलि काजैं । श्रीबिहारीदासिनि विदित सुख समै मिलि हँसत सुजस रसना रसत सब दिन सुधँनि आजैं ।।१४३।।

लाल बलि बलि सुखदाई हो मोहनी मोहन रंग भरे । प्यारी लाल लटकत आवत भावत निज जन जुवतिनि रीझि रिझावत तन मन श्रवननि सिरावत गावत तान वितान तरे ।। निकुँज-भवन रसिक-रवन उदित

मुदित सुगति गवन विविध विरह मदन-दवन कोटि मनसिज मन हरे। श्रीबिहारीदास सुख सदन वदन निरखत छबि नेंन टगाटग तैं न टरे ॥१४४॥

गनत रहत गुन गननि लाल गोरी के गरब गरबीलौ। कंचन तन धन के आनंद में ऐंडाइल अरबीलौ॥ करत विहार अहार विपिन बसि पान सुधाधर रसिक रसीलौ। तैंसिय सुखद सहचरी दासि बिहारिनि लैं मिलियौ अंग संग सुवस बसीलौ ॥१४५॥

राजत रास-रसिक रस रासे।
आस पास जुवती मुख-मण्डल मिलि फूली कमला से॥
मध्य मराल मिथुन मन मोहन चितवत आतुरता से।
वचन रचन सुर सप्त नृत्य गति मदन मयंक विकासे॥
बाजत ताल मृदंग अंग संग मंद मधुर मृदु हासे।
घूंघट मुकुट अटक लटकत नट अभिनव भृकुटि विलासे॥
वारत कुसुम सुगंध देखि सखी आनन्द हिये हुलासे।
तृन तोरति रति जोरति छिनु छिनु विपुल बिहारनिदासे ॥१४६॥

सकुचत हँसति हरखि प्यारी।
काम विवस रस निकट आए नव नागर नागरि नेह निहारी॥
जानि प्रिया पिय मन की अटक अंग सुधंग सिंगारी।
श्रीबिहारीदासि दिन देखत कौतुक या सुख की बलिहारी ॥१४७॥

आवत लाल बीच ही पाये।
आतुर जानि महा मनमोहन मोहनी अंग अंग अरुझाये॥
करि मनुहारि निहारि वदन विधु अधर मधुर पिय प्याये।
श्रीबिहारीदास दंपति सुख सीवाँ समर संताप नसाये ॥१४८॥

गुन रूप निधि दंपति राख्यौ रस अतिही। उपमा कौंन कौंन देंउ सखी री सुघर सिरोमनि रसिकराय दोऊ लेत आँन आँन गति ही॥ सुनि सखी चकृत निहारि बिसार अपनपौ कह्यौ न जाय बहु भति ही। श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि त्रिलोकति छिनु छिनु यह छबि बिहरत नव नव रति ही॥

दूलह दुलहिनि के संग झूलौ ।
गावत मिलत तार सुर संच सो तान माँन जिनि भूलौ ।।
लिये सुभाव सहज सुंदरि कौ प्रतिकूलत अनुकूलौ ।
श्रीबिहारीदास ह्वै स्याम काम रस कुंज केलि मिलि फूलौ ।।१५०।।

बिहारीलाल बाँकुरौ बिराजै ।
सोहत सहज सिंगार प्रिया उर छिन छिन प्रति रति साजै ।।
उपमा कोटि करों न्यौछावरि इनहिं निरखि निपट छबि छाजै ।
श्रीबिहारीदास हरिदास बिपुल बल गाइ गूढ गुन गाजै ।।१५१।।

ललित गति नूपुर चलत चरन बाजै । रही जकि जुवति नृतत सु पग धरति परस संगीत गति वारति सत समाजै ।। अंग अंग अभिरामिनी बिनु भाइ भांमिनी सहज इत उत चितै समर सर साजै । श्रीबिहारीदास स्वामिनी रीझ रस बस किये रमनि रमि रसिक संग कुंज बसि भ्राजै ।।

नेंकु मानिनी मान निवारिये ।
यहै जानि जिय मानि सयानी हो आई हों समझ सवाँरिये ।।
रचि रुचिर नव कुंज कुसुम तर सुरत सु समयौ सँभारिये ।
विरहज स्याम अधीर पीर अति आतुर पिय अँकवारिये ।।
मिलि रस रंग अंग अंग पिय संग सरस कुसुम सुकुमारिये ।
श्रीबिहारिनिदासि सुख निरख हरखि तृन तोरि प्रान धन वारिये ।।१५३।।

मोहनी मोहन रंग भरे ढरे कुंज कुटी तन गावत रीझि रिझावत भावत मो मन आवत हैं सुख दैन । तान अतीत अनागत घातनि लालन लेत मिले सुर सातनि ऐसे कहति सुघर वर बिहारिनि लालबिहारी सों लैंन ।। जानि स्याम सरस हियैं पूछि हैं जू मोहि सपत दियें काहिहों री मुख रुखहि लियें निरखि मगन मैंन । श्रीबिहारीदासि सुख सुरति सुभट अंग अंग अटकत नव नट कटिपट झटकत लटकत लाइ लैहौं उर ऐन ।।

ए निजु नागरी नागर रगमगे रस भीनें । अधरन मसि अरुन नैंन अदल बदल लीने ।। अंग अंग रस अवेस सखी सराहति अति सुदेस रीझि

बाढी दुहुन के मन दर्पन करि दीने । श्रीबिहारिनिदासी कों दै सुख अपनौ हँसत कसत भुजनि उरजनि उरमीने ॥१५५॥

कुंजनि कुंजनि मिलि खेलत जुगल नवल नागरी नाहु । पुष्पनि के गुच्छ सुच्छ कर गहैं अघ्राँन लेत देत दुहुँनि होत अति उछाहु ॥ वचन रचन बनत नाँहि बीरी लै कर सों मुख भरत रस ही रस ढरत यों हँसि धरत अंस बाहु । श्रीबिहारीदास की स्वामिनी रसिक रामिनी यों ही सब दिन जाने जात न इन्हैं प्रेम के नेम निबाहु ॥१५६॥

माई री नव निकुंज महल में बैठे रसिक स्याम स्यामा बनि आई । जे जे मुख मुसिक्याइ कही प्रीतम तेते मन भाई ॥ तैसेई अंग भूषन पट लट सगबगी तैसियै सहज सोभा सिर न्हाई । श्रीबिहारिनिदासि की जोरी पौढी साँवल गौर ललिता देति दुहाई ॥१५७॥

एक ओढनी ओढि पौढें प्रिया प्रिय प्रेम प्रजंक । अर्ध निसा रस रीझि भीजि रहे अपने अपने कर ऐंचत हँसत निसंक ॥ सखी राखत उर पर अंचल तर लटपटाइ रहे सीत भीत ह्वै यों गाढे गहि अंक । श्रीबिहारनिदासि निरखि सखी या छिन की छबि पर वारत तन मन अरु वारति सब रस रंक ॥१५८॥

फूल सों फूल डोल झूलैं कुंजबिहारी । फूल सों सखी समाज आज राग रंगु रह्यौ कह्यौ न जाइ मोपै फूल सों झोटा देत प्रबल प्रान प्यारी ॥ भई फूल ही में फूल सिथिल कटि दुकूल रहे गहि भुज मूल वदन निहारी । विवस बिहारिनिदासि की स्वामिनी सों स्याम कहत बहुरि झूलि हैं बलि अबकें राखि हाहारी ॥१५९॥

* राग केदारौ *

रास रवनी-रवन रसिक नवरंगी । विपिन भू तलप नाँहि अलप मंडल रचित सुरत नृत्तत उदित मुदित अंग संगी ॥ सभा कल कुंज सुख पुंज संपति सहित सघन मनि दीप्त वन कुसुमित सुरंगी । कहूँ भृंगी कहूँ मृगी कौतिक कहूँ नैंन सैंननि बिना बैंननि विहंगी ॥ ससिहि भूल्यौ भवन

गवन जमुना पवन रहे मनु वारि अनुरागनि अभंगी। तहाँ नहीं कछु श्रम तम न गम विरह भ्रम माँन लवलेस प्रवेस न प्रसंगी।। विमल गोरे गात मनहुँ निसि गत प्रात आइ ऊभी भई उरजनि उतंगी। सकल सुख साधि आराधि राधा गुरै धरत पग चपल साँवल तन तृभंगी।। सबद रसनावली ताल नीवी बंद वलय बाजत मृदंग नूपुर उपंगी। रेख परवाँन अति जानि सनमुख सुलप मिलि चलत लटकि गति ग्रीव भ्रू भंगी।। कोक संगीत अवघर सुघर लाडिली अलगलागनि लेत अनगति अनंगी। उपजि औरैं और रसिकवर सिरमौर रीझि रहे गहि ठौर सरस अंग अंगी।। तहाँ सखी संखल निमेष अंकुस सकुच जीति गज वरै मनों मिलि मन मद मतंगी। बहुरि प्रिया पिय विहँसत हंसत प्रेम घन भये मन मगन तन तरलित तरंगी।। श्रीहरिदासी खरी बिपुल प्रेमनि भरी मननि लैं अनुसरी अंकनि उछंगी। श्रीवर बिहारनिदासि कहति सुखसार सुजस त्रैलोक सर्वोपर सुमंगी ।।१६०।।

रास में रसिक नृत्तत रंग भारे। गौर साँवल अनूप, निपुन गुन गन रूप, निरखि सत-जूथ, कुल काँम बलिहारे। तरनि तनया कूल सरद निसि अनुकूल विविध मुकलित फूल भँवर गुंजारे। रिषभ षडजात पंचम सुर सप्त मिलि लेत करताल उघटत नवल लारे।। उलटि नागर लेत प्रिया तन चित देत ज्योंही ज्यौंही कहत त्यौंही त्यौंही चरन धारे। लाग कट्टर डाट भुवविलासनि साट लेत गति सुधंग वर अंगन सँभारे। चतुर सहचरि नारि सुनि श्रवन सुर धारि हरषि तन मुदित मन प्राँन धन वारे। चित चकित चंद गति मंद उडगन सहित सरस विवि वदन भूतल निहारे।। करनि सों कर जोरि, सब जुवति चित-चोर, 'स्याम नागर गौर, रमत न्यारे न्यारे। कुंज चले रहसि रस वरषि आनंद हँसि श्रीबिहारीदासनि उभै प्राँनपति प्यारे ।।१६१।।

* राग विहागरौ धमारि *

होरी रस रंगारो। खेलत स्याम प्रिया गौरारी।।
प्रेम सहित सखि श्रीवृन्दावन सेवत जल जमुनारी।

ढिग ढिग कुँजनि कुँजनि कूलनि फूलि रही फुलवारी ।।
सकल सुगंधनि रंध्रनि लै लै वहत मलय सुखकारी ।
छिरकत छुवत सुधाधर पुहुप पराग उडावत डारी ।।
गावत चैत सुनावत चाचरि सहचरि अति चतुरारी ।
सुनत श्रवन मन मोद भयौ खेलन कों हरषे कुँजबिहारी ।।
कहैं प्रिया मेरैं को खेलै लाल करैं मनुहारी ।
अति सुख में सुख देखि सखी री देत परस्पर गारी ।।
खेलत झेलत अति रंग में रंग रहसि बहसि हँसि डारी ।
अरुन वरन नव कुमकुम के रंग पीक कपोलनि पारी ।।
सब अंग चित्र बिचित्र बिहारी बिहारनि सुरति सिंगारी ।
तन मन वारि देत छबि पर तृन तोरत कौतिक हारी ।।
निसि दिन इहि सुख जोजत पीजत प्याइ सुधापिय प्यारी ।
मत्त भये जुगराज विराजत मिलत मुदित भुज चारी ।।
अति श्रम सिथिल भये दोऊ जन तिहिं छिन सखी सँभारी ।
श्रीबिहारनिदासि दरस मुख सुख दिन धन्य पहर पलधारी ।।१६२।।

* राग धनाश्री *

हमारौ माई लालबिहारी मन हरचौ जै जै श्रीवृन्दाविपिन विलास ।
नव निकुंज सुख पुंज में फूले बहु भांतिन सुमन सुवास ।।
अलिकुल संकुल गुंजहीं रस लोभी तजि नेकु न जात ।
मुदित सिखी कुल निर्त्तहीं कूजित कल कोकिल सुर सात ।।
त्रिविध समीर बहै तहाँ सीतल री अति मंद सुगन्ध ।
जल कमलनि वन परसि कें सुख-दाइक रोचिक रति-बंध ।।
तरु-फल-फूल मधुर झिले छै रितु बसंत रहत हित स्याम ।
नित नौतन संपति सबै सेवत श्री स्यामा अभिराम ।।
और कहों सुख सुनि सखी संजोगी रस परस विहार ।
प्रेम मगन संतत सदा सावधान अंग अंग न संभार ।।

सब गुन रूप अचागरी सेवत अपनें अपनें भाइ।
दंपति मुख-सुख निरखहीं निसिदिन जात न जानत जाइ ।।
कोऊ कर किन्नर साजहीं कोउव कर लीनें कठतार।
कोऊ आवझनि बजावहीं सब मिले हैं सँच गति भेद अपार ।।
झाँझ मुरज डफ बाँसुरी बीना मुख चंग उपंग रसाल।
अरु बाजे बहु को गनें जे लियैं हैं सुघर सुंदरि नव बाल ।।
ललितादिक सखी मिलि चली देखन पिय प्यारी को अनुराग।
जमुना कूल कदंब तरु राजत वर भामिनि सुभग सुहाग ।।
पूरन आनंद-कंदिनी करुनानिधि सुख-सिंधु उदार।
रसिक कुंवर पर वरषहीं जब बोलत वचन कुसुम सुकुँवार ।।
प्यारी मोहन सों हँसि कह्यौ आवहु जू मिलि खेलें फाग।
सुनि मन मुदित उदित भये को वरनें कवि तिनिको भाग ।।
मनि कंचन की पिचकाई लई है कुंवरि भरि अपनें हाथ।
तिनहीं कों तकि तकि छिरकहीं जे अपनें प्राँननि के नाथ ।।
मोहन दृष्टि दुराय कें चले अनति तकि औरै घात।
दाव न पावत भरन कों बहुरयौ प्यारी छिरकि हँसि जात ।।
छबीले छदम कछू कियौ और सखी दै आगे ओट।
नख सिख लों सुंदरि भरी मानौं सचे मदन के लूटे कोट ।।
कामिनि करि कटि पट गह्यौ अलक छुवत नैंननि भयो मेल।
पान करत मुख माधुरी बाढ्यौ प्रेम परिस्पर खेल ।।
भूषन बसन सबै सनें सोंधे विविध बरन बहु मोल।
अरगजा रंग रुचि कीच में पानि परस हँसि करत किलोल ।।
मंडल मध्य विराजहीं मनो नव कमलनि विचि उज्वल हंस।
ठुमकि ठुमकि गति मति हरें जब धुकि धरति विमल भुज अंस ।।
सुघर सिरोमनि गावहीं तान तरंग अनंग नचाय।
हाव भाव उपजत घनें उमग्यौ उर आनँद न समाय ।।

मृदु मालति कल नव लता नव तमाल अंग अंग अरुझात।
पुलकि पुलकि आँकों भरें परिरंभन चुंबन न अघात ।।
गौर-स्याम तन अति बनें दोउव रंगे हैं प्रेम के पाग।
नील अरुन छबि पीत में कौन करि सकै अंग विभाग ।।
निरखि श्रमित मुख सहचरी दोऊव धरि राखे उर माहिं।
और निकट निज कुंज में बैठारे करि कुसुमनि की छांहि ।।
कोऊ कर चरन पलोटहीं कोऊ अंचल पोंछत मुख वारि।
कोऊ छबि पर तृन तोरही कोऊ प्रेम पीवत जल बारि ।।
कोऊ कर स्त्रक चंदन लियें कोऊव कर लीनें उपहार।
याही सुख सचु खेलिये बहुर्यौं बलि कीजै विशद विहार ।।
जै जै श्रीहरिदास कृपा करी जथासक्ति गाई रस रीति।
जिनके यह रस सेइये श्रीबिहारीदासि करि तिनसौं प्रीति ।।१६३।।

श्रीवृन्दावन सहज सुहावनौं।
नवल नव नागर-ए-नव नागरे नेह निधान ।। बना हूंवै ।।
होरी खेलन के मतैं, नवल नव नागरि-ए-बनि बैठे करि ठाँन। ,,
माँन मनावत प्रथमहीं-ए-दोउ करत परस्पर आँन ।। ,,
रोंटि मेंटि मिलि खैलहीं-ए-हँसि दिये हैं दुलहिनी पाँन। ,,
नवल निकुंज बिराजहीं-ए-रबि तनया के तीर ।। ,,
भृंग बिहंग कुलाहलौं-ए-नव नव जुवतिन की भीर। ,,
स्याम ओर की साँवरी-ए-गोरी के गोरे गात ।। ,,
उमँगि चली चित चोंप सों-ए-अपनी अपनी गहि घात। ,,
सब सखी मन अनुसारनी-ए-उन साजि लई सब सौंज ।। ,,
लालरतनमनि की कुंडी-ए-केसर की औंजा-औंज। ,,
कस्तूरी कर्पूर सों-ए-साखि कुमकुमा आदि ।। ,,
चंदन मलयागिरि घिसौ-ए-गौरामेदि जवादि। ,,
बाजे बाजें अनभती-ए-सब मिले संच सुरतार ।। ,,

बीन अमिरती आवझी-ए-वर विन्नर कठतार ।। बना हूंबै ।।
गावत चैत सुहावनों-ए-मेरे पिय प्यारी के हेत ।। ,,
खेलत मेंलें मिलवहीं-ए-बद्यौ सबनि संकेत । ,,
लै लावनि लाँगै कसी-ए-बेंनी कटि सौं लपटाइ ।। ,,
आधे कुच कंचुकी कसी-ए-अति आनंद उर न समाइ । ,,
अज्ञा लै सनमुख भई-ए-दीनी है जुगति जनाइ ।। ,,
अरगजा पिचकाई भरीं-ए-भरत परस्पर धाइ । ,,
चोबा के चहले मचे-ए-भये अंबर अरुन अबोर ।। ,,
हारि जीति नहीं समझहीं-ए-अति रस मगन गंभीर । ,,
फाग खिलावत फूल सों-ए-दैं सैंननि ही सनकारि ।। ,,
नैंन कमल कज्जल भरे-ए-मची है कटाक्षिन मार । ,,
इक झुकि बैठी पीठ दै-ए-इक मानिनि ह्वै मुख मोरि ।। ,,
एक मनावत दीन ह्वै-ए-इक पाइनि परत निहोरि । ,,
दिन दुलहिनि कों दुलरावहीं-ए-दिन दूलह कों दैं गारि ।। ,,
गावत सुख दै रुख लियें-ए-मुख चुंबत भरि अंकवारि । ,,
सोंधे में सोंधी सबैं-ए-कौन पिछानें काहि ।। ,,
सबै प्रेम रस रंग रंगी-ए-रहे रसिक मुख चाहि । ,,
मेरौ कुँजबिहारी कौतिकी-ए-इहि कौतिक रह्यौ लुभाइ ।। ,,
मत्त भये रस माधुरी-ए-पीवत सुख दै धाइ । ,,
होरी खेलत रंगु रह्यौ-ए-सब गोरी लई बुलाइ ।। ,,
को गोरी को साँवरी-ए-मोसों कहो स्याम समझाइ । ,,
स्याम कहें गोरी सबै-ए-गोरी के तन मन स्याम ।। ,,
निरखि बदन तनमय भये-ए-यों सुफल किये सब काम । ,,
बातनि रहसि बहसि बढी-ए-इहि विधि खेलें फाग ।। ,,
अपने रसिकन की रसरीति को-ए-प्रगट–कियो अनुराग । ,,
सखी सहेली सहचरी-ए-श्री हरिदासी सुखरासि ।। ,,
बिपुल बिहारिनिदासि कों-ए-हँसि रीझि दई स्याबासि ।।१६४।।

* राग सूहा बिलावल *

श्रीवृन्दावन कौ री चोज मनोज बढतु रहै।
कुँजनि कुँजनि केलि नवेलि नवल कहैं॥
कहैं नवल नवेलि केली सुनि सखी सुख पावहीं।
मंद मंद मधुर मिले सुर सरस गीतहिं गावहीं॥
प्रथम प्रिया आराधि साधि सब पाईये।
प्रीतम अति अबलंब सु रसिक रिझाइये॥
रिझाइ अति अवलम्ब प्रीतम फूल तन मन में बढै।
नेम गहि निर्बाहु इहि रस प्रेम प्यारी कौ पढै॥
रहसि बहसि बदी होड परस्पर मन हरैं।
रसहीं रस उपजाइ उमँगि अंग अंग ढरैं॥
ढरहि रंग उमँगि रँगीले जिही अंग परनि परैं।
निपुन नागर नवल दोउ हरषि हँसि अंकों भरैं॥
बहुरि कुंवरि कुरि रोड कोड के चाडिले।
हारी होड न देत लेत लटि लाडिले॥
लटि लेति परस न देत अपनों अंग अति नव नागरी।
कोक कुसल किसोर बरवस किये कुँवरि अचागरी॥
अति आसक्त दुहुँ दिसि रिसहिं नसावहीं।
अति आनंद सुधाधर पीवत पिवावहीं॥
प्याइ अधर सुधा महामधु मत्त मिलि कौतिक कियौ।
किये कौ सुख अल्प सखि सुनि कह्यौ भरि उमग्यौ हियौ॥
दंपति संपति सहित सबै सुख सूचहीं।
नख सिख कौतिक रासि विलसि कल कूजहीं॥
कूजि कल कंठी कृशोदरि स्याम श्रवन सुहावनी।
वारि पिय सुकुंवारि पर मनु देत रीझि रिझावनी॥
रीझि रहे सिरमौर और उबटी सबै।

तरुनि तरंग अनंग अंग लपटी जबै ।।
लपटि स्यामतमाल बाला बेलि कोमल लौ लई ।
हासि कुसुम उदित उरोजनि नेह नाजुक नित नई ।।
निजु रस रीति प्रतीत विपिन बसि तौ लहै ।
रसिक अनन्य नृपति कौ संग समझि गहै ।।
गह्यौ संग अनन्य नृपति कौ रंगु लाग्यौ जब हिये ।
भये साधन सिद्धि तिनके तिही छिन अनही किये ।।
नित्यविहार अधार श्रीहरिदासी दियौ ।
विपुल बिनोदनि देखि सु जनम सुफल कियौ ।।
कियौ जनम सुफल अपनों और प्रानी जे सुनें ।
संग मिलि सरधा बढै सुख दुर्लभ ब्रज जुवती जनें ।।
स्यामा कौ आधार राजरस तौ कह्यौ ।
सब रस कौ रस सार विहार विसद गह्यौ ।।
गह्यौ विसद बिहार अपनों जानि निजु कीनी मया ।
श्रीवरबिहारनिदासि सुखनिधि दुलहिनी की दिन दया।।१६५।।

* राग जैतश्री *

हो हो रंगीली नागरी हो ।
रंग रत्ता मत्ता तेरे री नैंन बैन सलौने चाव ।
मोहि लिता मिठ बोलन डोलन मोहन रसिक राव ।।
साँवली बैनी मनों अलि श्रेनी सोंहदा झब्बा अन्त ।
लटकि चली अलबेली रस बस कारन कामी कन्त ।।
उज्जली जोति झलकदा मोती उच्ची नक्क लवंग ।
एक अलक झलक कपोलनि विथुरी मोतिन मंग ।।
अधर मधुर रस चखियाँ अँखियाँ अंजन ऊपर लीक ।
सेज सुरत रस केलि कलोलनि प्रेम परी सखि पीक ।।
चौसर चंप गुलाब दी माला दलमली अंग अंग ।

कुंज भवन रवन रमी प्यारे पिय के रंग सुरंग ।।
चोली चित्र मित्र अलि भीनी अंग राग अनुराग ।
निसि जागे रति रंग मनोहर पागि रहे गल लाग ।।
उच्च कुच्च नवरंगे चँगे अँचल अति उदार ।
लाडिली लाल लडावंदा भावंदा गावंदा नित्त विहार ।।
छैल छबीली की छाइ रही छबि अंग अंग उर और ।
कटि पट कच छूटी सरबसु लूटि लियौ सिरमौर ।।
सखी सब गल्लाँ लखियाँ अँखियाँ कुझन किती गल्ल ।
सुनि सुनि सुख नेह सनेहीदा हँसि मिली मुख भल्ल ।।
श्रीकुंजबिहारी प्यारी पर वारी जीवन प्रीतम प्रान ।
श्रीबिहारनिदासि जथामति तुव गुन लावनि रूप निधान।।१६६

तू ना कर मान मनोहर लाल लडावैगौ ।
छिन छिन मान अयान करहु न सयान समझि सुकुंवारी जू ।
प्यारे पिय की पीर न जानत व्याकुल विरह बिहारी जू ।।
आसन सैन सुहाय न परस्यौ असन बसन कर बीरा जू ।
दरस परस की आस अवधि बदि हों आई दै धीरा जू ।।
सुंदर सुघर उदार धीरवर होत विलम्ब अधीरा जू ।
विन श्रम हौं लै मिलऊँ लालहिं और निपट पथ नीरा जू ।।
तनत हिये मन सुनत उठत भयौ मोहि अचंभौ भारी जू ।
पिय तन पीठि दीठि मो तन हँसि पूंछत कुंवरि कहाँ री जू ।।
पिय के अंग संग अनुराग रमित श्रम आलस केलि बिसारी जू ।
सदा समीप सुहाग नयौ नित तू कबहूँ होत न न्यारी जू ।।
प्रेम अवधि तुव प्रान पिया सुनि मन संभ्रम उपजावै जू ।
श्रवन सुनत नैंनन देखत मुख बचन प्रतीति न आवै जू ।।
अंग अंग बसन दसन रसनावलि कटि तट चरननि चित्र बनावै जू ।
कर कंकन दर्पन देखत मोहिं इहि कौतिक हँसि आवै जू ।।

सुनि सुनि समझि समझि सखि बैननि नैंन सैंन जिय जानी जू।
सकुचति हँसति न चितवत इत उत लटकि लाल लपटानी जू।।
मन कौ मन मन के मन सों मिलि मगन भये तन लीना जू।
रस में रिस रिस में रस उपजत रसिक प्रवीन प्रवीना जू।।
श्रीवृन्दाविपिन विलासनि विलसत श्रीबिहारीदासि पिय प्यारी जू।
रूठत तूठत सब सुख बूटत या रस की बलिहारी जू।।१६७।।

* राग आसावरी *

निकुंज विराजिये जू।
नव जोवन जुग राज विहारी विहरत नव रति साजिये जू।।
मदन सदन मैदान विपिन रन रुपे रसिक मन धीर।
वे उनके वे उनके छल बल तौलत गुननि गम्भीर।।
उबटि वदन उमहे मन रंजन सज्जन सहज सुभाइ।
अंजन अनी नैंन सर सूधे भृकुटिन चाप चढाइ।।
विवि उरोज गज कुंभनि पर अँचल चल ढाल ढुलाइ।
चँवर चिकुर चमकत मनसिज के फौजनि सिलह सजाइ।।
कंचुकी कवच कसत कटि गाढे पीरे वसन बनाइ।
बीरी बसीठ चुनौती दै सखी कीजियै जुद्ध अघाइ।।
घोष रोस हनि बचन निसानें चढे तुरंग चित चाइ।
छोटी खुरी कटाक्षनि खूँदत उपजत अगनित भाइ।।
बोलत भृंग बखानत विरदनि सुनत सरस सहनाइ।
उमडि परत समुहाइ सुभट नट नख छत छबि रहि छाइ।।
खंड खंड भये गंड रदन छद दै भुज दंड सहाइ।
लूटत महामाधुरी घूँटत घूमत अंग अंग घाइ।।
पीक कपोलनि पर सोंनित सद सोहत सुरत सुमार।
जीत रहे संग्राम सूर दोउ सम-बल-बैस उदार।।
तजत न खेत हेत हठि गाढे अप अपने चित छोह।

खेम कुसल सल फबी रौतई पाये निपट निलोह ॥
जै श्री बिपुल बिहारिनिदासि खवासी करत रही अंग संग ।
रसिक अनन्य सिरोमनि श्रीहरिदासीजू के प्रेम अभंग ॥
गावत गीत मीत मिलि बैठे सब रिस रोष नसाइ ।
सुरत समैं के अंत उदित भये मुदित भये दुलराइ ॥
कहत सुनत सेवत जे यह सुख ते धनि कौतिक हार ।
श्रीवृन्दावन दिन बजत बधाई बलि बलि विशद विहार ॥१६८॥

* राग गौरी *

चलौ जू कौतिक देखन जाँहि ।
सूचत सखि सुख प्रेम परस्पर नव जुवतिनि मिलि मांहि ॥
गावति प्रेम भरी मन भावति फूली अंगन मांहि ।
नव वन नव निकुंज नव पल्लव नव दल सीतल छांहि ॥
विविध रंग चित्रित बीथिनि चलि विमल जमुन जल न्हांहि ।
कोमल कूल मूल वंशीवट निकट अटक कछु नांहि ॥
सुंदर पुलिन नलिन नाना रंग अलि अवली अरझांहि ।
उडत पराग राग रंजित रस मत्त मुदित गुंजांहिं ॥
त्रिविध पवन मृदु गवन परम रुचि परसत श्रम नसि जांहि ।
अति रति रुचि राजत संपति सुख दंपति हिये हितांहि ॥
तहाँ बिहरत द्वै मीत मनोहर बन बसि अनत न जाँहि ।
मृदु कुंदन मनिमय अवनी पर रमनी रमन रमांहि ॥
आज समाज सहज सुख वरषत हरषत मिलि मन मांहि ।
कोमल काम प्रेम मधुरे रस रहसि बहँसि किलकांहि ॥
मानौं मल्ल जुगल जीतन हित नित छल बलहिं तुलांहि ।
राती गाती छाती कसि कटि पीत बसन फहरांहि ॥
अंगराग मर्दत भुज दंडनि मुख मंडित मुसिक्याहिं ।
बिन बैननि सैंननि सुख नैंननि चितै चितै इतरांहि ॥

हाव भाव भृकुटिन मटकत नट अटकि लटकि लपटांहि ।
अपनी अपनी गों गहि घातति बातनि बिहँसि रिसांहि ॥
कबहुँ कबहुँ जुरि जुरि अंग अंग मुरि परसत हूँ न पत्यांहि ।
अति लावन्य निपुन लाघवता पुनि सनेह नियरांहि ॥
सकल कला कोविद विद्यानिधि काहू धीरज नांहि ।
हाथापाई करत नवल बल अति व्याकुल अकुलांहि ॥
छाँडत गहत गहावत भावत अति रसमसि मिलि जांहि ।
गूढ भाइ गाढे आलिंगन चुम्बन सखी सिहांहि ॥
अति सुगंध समरंध भये मिलि अलि नलिनी बलि जांहि ।
सहज सुरति रस मत्त परस्पर अंक निसंक समांहि ॥
सुखद खुमारी कुंजबिहारी पुनि ऐंडाहि जँभांहि ।
ए पुजवत वे निजवत इहि रस अचै अचै न अघांहि ॥
श्रीबिहारनिदास लडावत त्यौं त्यौं अलकलडे लडकांहि ।
उमा रमा को सची सरस्वती ब्रजजुवती ललचांहि ॥
तिनकौ दरस देव दुर्ल्लभ जे आराधा राधांहि ।
भुव बसि वृन्दावन नहिं सेवत ते प्रानी पछितांहि ॥१६८॥

मोहन मोहनी सुहेलरा गाऊँ ।
लाडिली लाड गहेलरा लडाऊँ ॥

श्रीवृन्दावन घन सहज सोभा मन लोभा उपजावै ।
जिनकों कृपा करें श्री स्यामा तिनहि सुन्यौ जस भावै ॥
बिपुन बिलासनि प्रेम प्रकासनि जो निज प्रेमहि पाऊँ ।
ज्योंहीं ज्योंही कुंजबिहार करौ मिल त्योंहीं त्योंहीं तुमहि लडाऊँ ।
सुनहु सहेली प्रेम गहेली कौतिक एक दिखाऊँ ।
अंचल जोरि चितै तृन तोरौं तन मन मोद बढाऊँ ॥
रायबेलि सतबरग सेवती बिच बिच चंपक कलियाँ ।
रचि रचि चौसर हार गुदैं गुद पहिरावन चलि अलियाँ ॥

मिस

कुसुमित कुंज गुंज अलिमाला चंदन चरचित गलियाँ ।
सुखद समीर बहत सौरभ जल कमल विराजत थलियाँ ।।
सारस हंस चकोर मोर पिक चातिक भाषा भलियाँ ।
गावत रस जस पिय प्यारी कौ सखि सुनि पग प्रेम न टलियाँ ।।
कबहुँक बाल सलज्ज सु पिय तन कबहुँ हँसत मुख मोरी ।
कबहुँक निपुन सुरत सुख सागर नागरि नवल किसोरी ।।
छिन छिन प्रति दंपति नव नव रति अंग अंग अभिरामा ।
प्रथम समागम स्याम दिनहि दिन दूलह दुलहिनि स्यामा ।।
अंसन अंस जोरि भुज वल्लभ भामिनि जामिनि जागे ।
विलसत हँसत हँसावत रस बस अति आनंद अनुरागे ।।
नौतन तरल तमाल लाल मिलि लता ललित फल फलियाँ ।
देत असीस विहारनिदासी करहु नवल नित रलियाँ ।।१७०।।

* राग काफी *

रस भीने बिहारी मन हरचौ हो । ऐसी जुवती धीरज धरै कौ ।।
इक कौतिक देख्यौ सुनि सजनी आजु तरुनिजा तीर ।
विमल तमाल लता लपटी सब सुक पिक भृंगनि भीर ।।
हंस हंसिनी नलिन पुलिन मिलि पत्र बिलोल समीर ।
दंपति संपति सहज सु देखत बढी मनसिज मन पीर ।।
सुभग वरन तनु स्याम मनोहर सुंदर नैंन विसाल ।
वंसी सरस मधुर सुर गावत गुन गन रूप रसाल ।।
हों ही लेत प्रीति परचौ अलि ए अति प्रेम प्रवीन ।
पलक ओट बन बोलत डोलत व्याकुल तन मन लीन ।।
औचक अचक आइ ऊभे भये हों ही सहज सुभाइ ।
कह्यौ कछू न लह्यौ मन कौ मत दरस परस अकुलाइ ।।
कंप पुलक तन स्वेद भयौ भ्रम मोपै कह्यौ न जाइ ।
अति चंचल अंचल गहि मेरौ बचननि रुचि उपजाइ ।।

तैं हूँ मान सयान दृढायौ मैं गाढे करे प्रान।
प्रीतम पानि उरज परसे हँसि मनहुँ विसिख वर बान ॥
विह्वल भये भाँवते पिय राखी उर कंठ लगाइ।
वदन निहारि निवारि सकुच सखि अधर मधुर रस प्याइ ॥
सर्वसु श्रीहरिदासी कौ सर्वोपर नित्य विहार।
बिपुल विनोद सदा वृन्दावन रसिक अनन्य अधार ॥
ललितादिक सेवत संतत सुख वरषत हरषि उदार।
श्रीविहारिनिदासि विलास मगन मन मधुर प्रेम रस सार ॥१७१॥

* राग गौरी *

कुंजबिहारी हरषि बुलाई इहाँ जो होडी हेली री।
काजु करौ निज आजु हमारौ तू मेरी सुखद सहेली री ॥
खेलत हे इक ठौर भोर मैं पूछी प्रेम पहेली री।
घाल मिलावौ मांगत मत्त भई झुकि नेह नवेली री ॥
हारी होड न देत लाडिली छाँडि चली अवहेली री।
बैठी मान गंभीर कुंज नवजोवन गर्व गहेली री ॥
मेरे मन रुचि राचि रही मोसों काल्हि भली विधि खेली री।
मेरी इनकी जानत है सब तू मन मते महेली री ॥
वचन रचन सुनि चली सहचरि आतुर तन तलबेली री।
भोरे भाइ आइ ढिग बैठी जानत गटी गवेली री ॥
देखि अनमने स्याम सखी संग सुमरि समौ कल केली री।
हारि मानि निज नाहु भये बस अंस बाहु हँसि मेली री ॥
मेटी रोंट अटक नटवर भेंटत भरि भुजन सकेली री।
उमडि चले मन मदन मनोहर मान मेंड पग पेली री ॥
स्याम तमाल रसाल लाडिली गौर वरन वर बेली री।
कुंज मंजु वरषत पुहुपांजलि चंप गुलाब चमेली री ॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि मिले सुख रास रसिक रस झेली री।

रीझैं देत दुलहिनी दूलहु फूलहु प्रेम सहेली री ॥१७२॥

मृदु रस रंग रंगीली नागरी रस रंगे हैं रसिक सुकुँवार ।
दोउ इकरस वैस विराजहीं सुख साजत विसद बिहार ॥
जै श्रीवृन्दाविपिन विलोकहीं सब द्रुम दल बेलि विकास ।
निज आनंदहि सूचहीं मिलि करत परस्पर हास ॥
कुंजावलि कुसुमावली अलि अवलिन के वृन्द ।
कौतिक भूले कौतिकी मिलि पान करत मकरन्द ॥
सुमननि सेज सहज सजैं बनि बैठे अंक निसंक ।
अंगराग अंग मरगजे मनों उपजे हैं मदन मयंक ॥
कज्जल मंजुल अरुनई मिलि कलित कपोल तँबोल ।
यों हिलि मिलि रस बस भये हंसि मृदु मुख मीठे बोल ॥
माँग पाग धसि खसि रही सनि मृगमद सिंदूर ।
अति श्रम-जलनि सिथिल भये बलि राते बदन गरूर ॥
दसन बसन रसना रसै बस पाँन करत मन धोर ।
उरज करज परसें हँसे रस विवस बिसर गये चीर ॥
इहि रस मत्त मगन भये मन मोहन मिथुन किसोर ।
बिपुल बिनोदनि वरषहीं यहै रहनि निसि भोर ॥
इहि सुबास रस परसहीं दिन दरसें केलि कलोल ।
सुनि दोन वचन आधीन के यों लीन भई बिन मोल ॥
इनके अंग संग कौ सुख को कहै अभिकृत अभिसार सिंगार ।
श्री बिचित्र बिहारिनिदासि कें निरवधि नित्य बिहार ॥१७३॥

* साँवरी सहेली *

मन मोहन भेष पलटि चले साँवरी सहेली अपनों नांउ बनाइ ।
प्रेम सहेली सों मिली श्रीस्यामा मोहि मिलाइ ॥
प्रेम सहेली यों कह्यौ तू मेरौ सीख सुभाउ ।
यों मिलिये यों बोलिये ज्यौं उपजै चित चाउ ॥

तैं कह्यौ भलो मन भाँवतौ अब बन्यौ दाउ उपाउ।
हों दैउं कहा सुख तेरोई तोमें सबै समाउ॥
जो तू कहि है सोई करि हों सखि तेरे पाइनि पाइ।
बातनि हिलि मिलि रंग रह्यौ फूली अंग न माइ॥
प्रेम सहेली कुंज में साजे सकल सिंगार।
केस कुसुम बैंनी गुही सोंधे सरस सुढार॥
जूरे चंपौ जगमगै मधि मुक्ता-मनि लाल।
बिच बिच मल्ली मौलसरी झब्बा सुरंग गुलाल॥
पटियन प्रेम बनाइ लिख्यौ अरुन सरस सीमंत।
भ्रम तम श्रम सब दूर होत सीसफूल हुलसंत॥
सेंदुर कौ तिरछौ तिलक बिच मृगमद बिंदुली बनाइ।
तन मन निरखि हरषि भयौ रीझि प्रिया जू की पाइ॥
अति वाँकी भोंहैं सोहें अंजन नैंन विसाल।
चितवत चितहि चुरावहीं जुवतिवृन्द नव बाल॥
खुटिला खुभो जराव के अवतंसनि मनि लाल।
बेसरि मुक्ता झलमलै अधर मधुर सु रसाल॥
दसनावलि कल कुंद लों मुख हँसत, लसत बहुभाँति।
रवि ससि कोटिक दामिनी सकुचि दुरत लजि जाति॥
रसनावलि गुन गन गनें जाचत रति सुख सार।
चंदन वंदन कौ झलक चिबुक चखौंडा चार॥
कंठपदिक छूटी लरें उज्ज्वल जलज सुदेस।
राते डोरा दुरंग भये पहिरें प्रेम अवेस॥
अतलस की अँगिया लसति अति आनँद उदित उरोज।
हँसति दुरति अंचल मुख दै तन घन मुदित मनोज॥
बिविध वरन बहु भाँति जाति सारी सुमन सुबास।
लहँगा महँगा मोल नहीं कोमल विमल बिलास॥

कर पहुँची चारि चारि चूरी कंकन बलय बाजूबन्द ।
अँगुरिन मुंदरी सुंदरी नखनि लसत सत इंदु ।।
अरधचंद बाँकी चौकी उपमा दैउँ सु काहि ।
झाबनि पर फौंदा फबे मनों उपजे हैं मदन उमाहि ।।
त्रिवली उदर सुहावनी मधि मोहन नाभि गंभीर ।
छीन मध्य कटि किंकनी मुखरित मुदित अधीर ।।
सुंदर सुभर नितंबिनी जंघनि मनि मौज विलोल ।
सरस स्निग्ध सुवन बनी गुल्फ पिंडुरियां गोल ।।
पगनि घूँघरा बाजनें ऐडी अंगुरी लाल ।
लटकि चलति गज-गति लजति सीखत सुगति मराल ।।
चूरा चौका चाँदनी पग नखनि दसहु दिसि जोति ।
जित ढरि चरन धरनि धरति तितही प्रीति प्रगट होति ।।
अंग अंग निहारति मन हरति आरति तन मन काँम ।
प्रेम सहेली लै चली नवल कमल कुंज-धाम ।।
मेघ महल परदा फुही बहुबादल विमल वितान ।
अद्‌भुत वन आनंद मई तहाँ राजें श्रीस्यामा रसिक निधान ।।
रतन-खचित सारौंट पर बैठी बनि विस्तार ।
प्यारो प्रीतम कौ हित चित धरें हुलसति हँसति उदार ।।
सोहत सखी समूह में जोति मदन भई भूप ।
पचरंग छत्र चमर ढरें मन मोह्यौ स्यामा रूप अनूप ।।
प्रेम सहेली फिर चितयौ कछुक सिखै लई लाज ।
चली चली जब निकट आईं चंचल सहज बिराज ।।
चौंकि परी चितयौ सबनि यह को आई आन ।
प्रेम सहेली यों कह्यो यह सरस निपुन गुन गान ।।
एक प्रेम सबहिन भयौ लै आई वर वाम ।
प्रेम सहेली आगें ह्वै बोलि लई निज नाम ।।

प्रेम सहेली यों कह्यौ यह मेरे कुल सील समाँन।
सर्वसु प्रेम हिये सच्यौ लै मिली अप बपु प्राँन ।।
देखत मन औरै भयौ आदर कियौ सराहि।
नवल किसोरी यों कह्यौ तू मो ढिग ते जिन जाहि ।।

नख सिख सुंदर मोहनी श्रीस्यामा जू के प्रान।
अंग अंग रस वरषहीं नागरि सुघरि सुजान ।।
नवल किसोरी यों कह्यौ मुहिं अपनौ सो सिंगार सिखाइ।
सुनत श्रवन मन सुख भयौ सीखौ बलि कह्यौ लडाइ ।।
पांनि परसि हँसि लै चली नव केसरि की कुंज।
अरुन स्याम सित पीत मधुप गावत रस जस पुंज ।।
प्रेम सहेली पहिलहीं रचि सचि सीतल सेज।
सकल सोंज उपयोग भोग प्रान प्रिया जू के हेज ।।

तन रोम हरष पुलकावली कीनों कुंज प्रवेस।
काम कुंज अभिरामही बहुभाँतनि बढ्यौ अवेस ।।
अब कछु राग सुनाइ सखी रही रुख लियें मुख चाहि।
प्रगट प्रेम न जनावई गावत उमहि उमाहि ।।

जाके गावत तान तरंग अनंग नचैं लीनी कंठ लगाइ।
भेंटत भुजनि भरम गयो मिली अंग अंग समाइ ।।
मधुर प्रेम रस सिंधु बढ्यौ गई निसि नसि भयो भोर।
विलसत हँसत न जानही भोरहु जुगलकिसोर ।।

प्रेम सहेली के प्रेम कों गावत, ललना लाल।
छिन छिन प्रति रति विस्तरत करत प्रान प्रतिपाल ।।
जो तुम मेरे प्रान पियारे रंग भरे उमंगि ढरे रस रासि।
तौ हौं तुम्हरौ जस गाऊँ दिन दुलराऊँ,
तू तौ मेरी जीवनि बिहारनिदासि ।।१७४।।

* बड़ो सहेली *

सहेली मेरौ लालबिहारी ऐसौ रगमग्यौ श्रीवृन्दावन कौ चंद ।
जाके दरस परस सुख पाइये मन उपजत अति आनंद ।।
नख सिख रसिक सुरस भरचौ मो प्रान प्रिया के रंग ।
मो विन नेंकु न रहि सकै विहरत अनुराग अभंग ।।
अवधि प्रेम की साँवरौ मिलि करत नई नित केलि ।
या रस तें नेंकु न टरें हम दोऊ नवल नवेलि ।।
तो ते कछु न दुराइहों सखि तू मेरे हित प्रान ।
तैं मेरे रस बस कियौ वर सुंदर सुघर सुजान ।।
तोहि सुन्यौ भावत भट्ट रुचि आछे मन की दौर ।
तोसौं छिन छिन मन मिलै हों बहुत कहोंगी और ।।
श्रीवृन्दावन सहज सुहावनों राजत जमुना के फेर ।
कुंज कुंज अलि गुंजहीं मनों सदन मदन के मेर ।।
इक दिन अति आतुर मिल्यौ नव चंपक कुंज किसोर ।
तन मन की मोसों सब कही सखि याकी प्रीति न थोर ।।
जित जित हों तित ही चलै तित आपुन हूँ चलि जाइ ।
तित ही मोहूँ लै चलै कछु आनंद कह्यौ न जाइ ।।
कुंज कुंज कौतिक घनों लै तहीं तहीं विरमाइ ।
ता छिन ते ता ठौर तें सखि आगें चल्यौ न जाइ ।।
जल थल कुंज पुलिन बन घन रंग रह्यौ भरि कह्यौ न जाइ ।
सब पंछी द्रुम तृन जलनि अलि कमलन चलत डुलाइ ।।
मेरे मन के आगें हीं फिरै अति संपति सहित सुहाइ ।
जब चाहों ताही ससै रति तैसिय ह्वै मिलि जाइ ।।
श्रीवृन्दावन जो सु कृपा करें तौ निज सुख मनहि समाइ ।
हमें इनहीं की आस अनत सुख सुपने हूँ न सुहाइ ।।
लाल रतन मनिमुक्तामय तरु ललितै लता उदार ।

स्यामैं सेवत नित नए फल फूल प्रेम के भार ।।
नारिकेलि नव नारंगी सत अंब मौर बहु ठौर ।
देखत सोभा बन घनों रस रीझि रह्यौ सिरमौर ।।
श्रीवृन्दावन जब देखौं तब हीं नयौ नित लेत प्रेम उपजाइ ।
या रंगु रस में मन झूमई तो भूलि पाछिलौ जाइ ।।
जा दिन तूँ पाछैं रही मोहि मिल्यौ सामुहौं आइ ।
मोहिं अकेली देखि कैं कछु सुख ही में सुख पाइ ।।
तब पूछी संग की कहाँ मैं उत्तर दियौ बनाइ ।
नव कुंदन की कुंज कौ तैं पतौ मिलायौ आइ ।।
तब सुनि सुख दूनौं भयौ मन फूल्यौ अंग न समाइ ।
तो तन चितै चितै हँसि मेरे पाइनि पर्यौ लडाइ ।।
तब मेरौ मुख चूंब्यौ माथौ चूंब्यौ अरु चूम्बे नैंन कपोल ।
तेरे देखत सब भयौ यों कह्यौ लियौ विन मोल ।।
इक दिन नवल निकुंज में नटु रह्यौ लता सौं लागि ।
हों फूलनि के ख्याल ही मोहि मिल्यौ मदन मद जागि ।।
ताकी बातनि और न पाइये अति गावत सुघर सुदेस ।
खेलत छिन छिन ख्याल में मोहि मिलत मनोहर वेस ।।
गुन गन रूप अचागरौ अति चंचल अंग अंग ।।
कोक मनों सुख ही पढ्यौ तन उपजत अनंत अनंग ।।
तब मेरौ हाथ छुयौ हियौ छुयौ पुनि कर परसि कपोल ।
चितवत ही चित वित हर्यौ मेरे सुनत मधुर मृदु बोल ।।
इक दिन कालिंदी के कूल ही ठाडौ ललिता के संग ।
तैं मोसौं तबहीं कह्यौ यह तेरे ही रस रंग ।।
तू कछु उनहि मिलावती करत सैन ही बात ।
मोसौं मेरी सी कहै उनकी पुजवत सब घात ।।
प्यारी जू तुम हम सौं ऐसी कहौ तेरे पिय के प्रेम अवेस ।

तेरे मन कौ भाँवतौ मिलि करि रमत सुदेस ।।
प्यारी जू हम साँझ समै साँझै कहें कहें भोर सों भोर ।
बात कहौ सो समझिये पै मन कौ ओर न छोर ।।
सखी तू जानत सब दिन की सबै घट नट नागर की बात ।
कौतिक नित नये करै बहु निपुन कला सत सात ।।
अजू तुम मिले सयाने चतुरई विच भोरी हूँ दै दै जात ।
मेरौ यहै सहज सदा सुख देखत सुनत न अघात ।।
मोहन सों मुख की कछु कहि आवै पै जिय तें निकसि न जाइ ।
सब दिन इहि सुख जीजिये नेंकु तुम सों कहत लडाइ ।।
भावत सब ही भाँवतौ सुनि तेरे सुख संतोस ।
तेरे सुख तेई सुखी अरु है समरथ सब घोस ।।
सखी इकदिन हों जमुनाजल न्हातिही मैं देख्यौ वन में जात ।
ना जानों कित ह्वै मिल्यौ हों चौंक परी सब गात ।।
केस कुसुम बेंनी सिथिल गई जलजमनि माला टूटि ।
कर्नफूल खुटिला खुले कंचुकी नीबी बंद छूटि ।।
सादौ भेष उताइलौ फिर सच्यौ आपने हाथ ।
बेंनी गुहत कछू कह्यौ मोहिं राखि आपने साथ ।।
सखी तोहू सों न जनावई मोसौं हरुवे हाहा खात ।
नेंकु निकट ही ओट होत तब तोही सौं बिललात ।।
प्यारीजू तुम इनही कौ कह्यौ करौ कछु होंतौ नहीं अनखात ।
भीर परै जो साँकरें कछु हौं संग तैं नहिं जात ।।
तुम्हारी इनकी अटपटी एकौ जानी न जाइ ।
अनजानत हूँ जानिये पै प्रेम न बरन्यौ जाइ ।।
प्रेम आहि कहै कोऊ यह सुख दुख लाभ कि हानि ।
रिसही में हाँसी आवै हों कहत नहीं कछु बानि ।।
सखी तोतें अधिक न जानिहों कोऊ कहै तौ लागौं पाइ ।

मेरे मन संसै रहै मोसों तू कहि दाइ उपाइ ॥
प्यारी जू तुम मेरौ कह्यौ करौ ए कहें सु कीजै बेग ।
सखी तेरौ कह्यौ कहा करौं यह लावनि भर्यौ अनेग ॥
मोहन करिहौ कहा सु कीजिये यों सुनत भयौ चित चाव ।
जगत बिदित हम हूँ सुन्यौं तू रसिक रंगीलौ राव ॥
प्यारी जू तेरे बरन बसन करौं तन तेरे ही उनहारि ।
तेरी सी बातैं लगें कहि जीवें बदन निहारि ॥
तौलौं चलौं मिलों तोहीलों पहिचानि है न कोइ ।
मिलें मिलायें रंग रहै तौ खेल चौगुनों होइ ॥
मोहन आहि भली जो ह्वै आवै तौ मिलहु सखी सों जाइ ।
बहुर्यौ मिलि हैं कुंज में लियौ जलहू कौ सुख पाइ ॥
तब निकट सुनत ही सहचरी फिरि चितयौ नैंन विशाल ।
मनि चूरा चौकी चूरी दै राती बेंदी भाल ॥
सखो देखत है याकौ मतौ यह याकी टेब न जाइ ।
बरजत ही बरजत हठि आयौ फोंदा फुली बनाइ ॥
तब लाल सकुच ठाढो भयौ कछु रूप न बरन्यौ जाइ ।
चितै चितै मुख साँवरौ तन उपजत अगनित भाइ ॥
तन मन प्रान पलटि परे लीनें उर सों उर लाइ ।
रस बस भये न जानहीं निसवासर गयौ बिहाइ ॥
सखी तेरे संग सुख पाइये सब तेरै किये सहाय ।
सुरत रंग में रंग रह्यौ रस रीझि रह्यौ गहि पाइ ॥
सुंदर तेरी कृपा कहा कहों यह रस जस प्रेम प्रकासि ।
बलि बलि श्रीहरिदास की जिन करी बिहारनिदास ॥१७५॥

* राग बिलावल *

मेरे पिय प्यारी कौ झूमिका सखि कहत परस्पर प्रेम ।
लाल बलि लाडिली हो ।

ए दोऊ निमुष न बीछुरें सखि इन्हें प्रेम कौ नेम ।।
प्रथम लडैती गाइहों जाकौ श्रीवृन्दावन धाम ।
पुनि रसिक रंगीलौ गाइहों जाकौ कुंजबिहारी नाम ।।
नख सिख सुन्दर सोईई दोऊ अद्‌भुत रूप अपार ।
एक प्राँन तन द्वै धरें अति मधुर प्रेम रस सार ।।
पहिलौ झूमक ताहि कौ जाकौ सोहत सहज सुहाग ।
दूजौ झूमक ताहि कौ जाकैं बाढत अति अनुराग ।।
पूरन प्रेम प्रकासनी श्रीस्यामा अति सुकुमारि ।
मोहन जू के नैंन चकोर लों ससि जीवत बदन निहारि ।।
नव चंपक तन कामिनी पिय सुभग साँवरे अंग ।
दोऊ सम वैस बिराजहीं लजि लागत पगनि अनंग ।।
नित नवल किसोरी नागरी नित नागर नवल किसोर ।
प्रेम परस्पर झूमहीं जुरि दोऊ नव जोबन जोर ।।
तन मन अरझिं न सुरझिहीं दोऊ मगन मदन मद मोद ।
प्रेम सहेली सुंदरी दोऊ दौरि लिये गहि गोद ।।
झूमत झूमत आवहीं छबि अंसनि झूमकि बाहु ।
कुंज कुटी तन मन दियें दोऊ फूलत नागरी नाहु ।।
झूमक झाबा झलकहीं नीबीबंद बाजूबंद ।
तरकि तरकि बंद टूटहीं सुख लूटत अति आनंद ।।
स्याम अधर अंजन भये मिलि राते नैंन कपोल ।
श्रम जल कन वदन विराजहीं मनों नव मुक्ता निरमोल ।।
अब औरै छबि छाजही सखि देखौ मन दै धाइ ।
अपनों सर्वस साँवरौ लेहु ललना-लाल लडाइ ।।
झूमक सारी झूमहीं सखि पहिरें झूमक देंहि ।
हरषि हरषि रस वर्षहीं सखि निरखि निरखि सुख लेंहि ।।
श्रीवृन्दावन दिन झूमिका सखि झूमि रह्यो-फल फूल ।

सुनि मन मुदित सबै आईं झूमि कालिंदी के कूल ।।
मेरे कुंज रवन कौ झूमिका गुन गावत कोकिल कीर ।
प्रेम उमँगि हियौ भर्‌यो सुख झूमत जमुना नीर ।।
माते मुदित सिलीमुखा झूमि देत मधुर सुर घोर ।
आनंद उमँगि अलापहीं कल नाचत मोर चकोर ।।
झुंडनि झुंडनि मृग मृगी जुरि नैंननि झूमक देंहि ।
सुंदर वदन निहारहीं सुर सबद श्रवन भरि लेंहि ।।
निरखि निरखि मुख रुख लियें बहुरी सब सीस नवाइ ।
तन मन गुन अर्पन कियो सुख दीनों दुहुनि अघाइ ।।
तब उनमान्यौं मन कौ मतौ सखी लै चली सुहित जनाइ ।
सुंदर पुलिन सरस कन झलकत कमल कुमुद देखौ आइ ।।
तहाँ सारस हंस प्रसंसित झूमका देत सुगतिन दिखाइ ।
प्यारी हार पीताम्बर पिय सों रीझि दियौ सुख पाइ ।।
आगें उमँगि चलत लटकत सखी झूमक दै दुलराइ ।
तहाँ नये नये रस छाकत कौतिक उझकत छबि रहि छाइ।
कदली कुंद कदंब अंब बन बीथिनि वर विरमाइ ।
तन वन किधों वन तन भयौ कछु व्यौरौ वरन्यौ न जाइ ।।
मनि-मंडल मुक्ता महल बहु रतन सार चित्रसाल ।
कनक-कलस छाजे झलकत बहु झूमत रतन प्रवाल ।।
मधि मंजुल नव कुँज किसलय-दल सीतल सेज सुरंग ।
कोमल कुसुम सरस सौरभ सब सम पराग बहु रंग ।।
जाके परदनि द्वार झरोखनि झूमत मनसिज मदन अनंग ।
तहाँ बैठे रीझि सराहि रसिकवर निरषि हरषि अंग अंग।।
चिबुक टटोरत छंद बंद छोरत परसत हँसत उतंग ।
याही रस खेलत पुनि पुनि पिय प्यारी लेत उछंग ।।
अंग-राग अनुराग रँगे दूलह दुलहिनि द्वै देह ।

सहचरि कहत सुरति सुख-सागर झूमौ सहज सनेह ।।
जै जै श्रीहरिदास प्रताप चरन बल बिपुल सु प्रेम प्रकासि ।
मेरे गौर-स्याम कौ सरस झूमिका झूमि बिहारिनिदास ।।१७६।।

मनुहारि करें मनुहारि लला ।।टेक।।

श्री राधा आराधि लला । इहि निज नेम आराधि लला ।।
प्रेम करो जिन बादि लला । पिय पग परसनि की साधि लला ।।
सुनि सुँदरि सुकुँवार लला । माननि मान निवारि लला ।।
विन अपराधन गारि लला । कोमल करहिं न टारि लला ।।
नैन चलै च्वै वारि लला । पिय की पीर बिचारि लला ।।
हों तन मन धन द्यौं वारि लला । मम वचननि प्रतिपारि लला ।।
इती करत कित आरि लला । अपने सुखहिं सँभारि लला ।।
इहि रस मन अनुसारि लला । हों आई सेज सँवारि लला ।।
नव निकुंज पग धारि लला । प्रीतम मुखहिं निहारि लला ।।
सुंदरि मुरि मुसिक्याइ लला । स्याम सखी सुख पाइ लला ।।
अद्भुत उक्ति उपाइ लला । इक कौतिक देखौ आइ लला ।।
बतरस लीनी लाइ लला । फूली अंग न माइ लला ।।
उदित मुदित मन माँहि लला । चली अली गहि बाँह लला ।।
नव दल सीतल छाँह लला । आपु निहोरी नाहु लला ।।
ललित वलित द्रुम बेलि लला । सबै सँवारति केलि लला ।।
बढ्यौ मदन मद मोद लला । वीथी विपिन विनोद लला ।।
रबितनया के तीर लला । कोमल मलय समीर लला ।।
अति आसक्त अधीर लला । विनय निवारत चीर लला ।।
चितवत विवि मुख ओर लला । लोचन चारु चकोर लला ।।
नित ही नवल किसोर लला । दोउ नव जोवन जोर लला ।।
मिलि मेटी पिय की पीर लला । बिहरत प्रेम गंभीर लला ।।
मिलि विलसत निसि भोर लला । मेरे चित के चोर लला ।।

छिन छिन पद प्रतिकूल लला। स्याम सहज अनुकूल लला॥
दै आलिंगन दान लला। मानिनि के धन मान लला॥
दै अधरामृत पान लला। पालि प्रिया मम प्रान लला॥
अब जिन करहु निदान लला। सतर भौंह अपमान लला॥
गौर स्याम कौ संग लला। देखि दुहुन कौ रंग लला॥
रतिपति की गति पंग लला। मन अनुराग अभंग लला॥
इहि रस बस सुखरासि लला। जस गाइ बिहारिनिदासि लला॥१७७

* राग सुहौ बिलावल *

नूपुर रव श्रवन परी। सुनि स्यामहिं सुधि बिसरी॥
बिसरी सबै सुधि सुनत स्यामहिं पीत वसन कहूँ खिसे।
कहूँ मुरली मुकुट कहूँ प्रान प्यारी में वसे॥
जकि थकि रहे तिहिं ठौर। श्रोता सुघर सिरमौर॥
श्रोता सुघर सिरमौर सुंदर विश्व मोहन मोहियै।
सखी कछु आसक्त सूचत विवस ह्वै हरि सो हियै॥
नित करत कुंज कौतूह। मिलि सुखद समर समूह॥
मिलि सुखद समर समूह सुर सर स्याम यों मरमनि हये।
देखि मुरलीधरन की गति गर्ब मुरली के गये॥
मोहन मुख मौन धरी। पुनि सुनिबे की साध करी॥
करी साध सुनाइ प्यारी बहुरि चरन चपल किये।
सप्त सुर संगीत वारत रीझि पिय पद उर लिये॥
प्यारी पिय अंक भरे। आनँद आँसू उमंगि ढरे॥
ढरे आनँद अश्रु पिय के पलक सों पल ना लगें।
पाय सोभा सिंधु तन मन मत्त सब जांमिनि जगे॥
माधुरी धर वर व्योंम। रस धार वरषत रोंम॥
रोंम रोंम बसीकरन गुन प्रिया तन सेवत सदा।
नव निकुंज विहार राजत महा मत्त मदन मदा॥

ए नित कौतिकी कुंवर किसोर। जानत नहिं निसि गत भोर ।।
भोर जानत नहिं निसि गत नवल नव रुचि क्रीडहीं।
अनन्य श्रीहरिदासि अँग सँग बिपुल प्रेमनि व्रीडहीं ।।
ए वन विहरत प्रेम प्रवीन। नागरी नेह नवीन ।।
नागरी नेह नवीन छिन छिन या सुखै कासौं कहौं।
महामधुरे रस उपासक स्वाद भेदी जो लहौं ।।
यह रस रसिकनि कौ रस सार। यह रस रूप विसद विहार ।।
रस रूप विसद बिहार जिनकें और सुन्यौ न भावई।
जै श्रीवर विहारिनिदासि रसिकनि हरषि सुजस सुनावई ।।
यह रस रसिकनि कियो है निदान।
यह रस सुनहु तजि अभिमान ।।
अभिमान तजि भजि सुनहु प्रानी जन्म जन्म के श्रम मिटैं।
प्रगट ललिता रूप श्री हरिदास निज नामहि रटैं ।।१७८।।

* राग सारंग *

इहि रस सहज पर्यौ मन मेरौ।
रूप अनूप निरखि सचुपावत वदन सुधानिधि घेरौ ।।
अलक झलक सोभा सुख सागर अवलोकत भयौ चेरौ।
अरुन अधर मुक्ता छबि पावत मुसिकन हूँ अरझेरौ ।।
नैंन सैंन बिन मोल बिकानों फिरत नाहिने फेरौ।
श्रीवृन्दाविपिन विहार रति मानी श्रीबिहारनिदास नित नेरौ ।।१७९।।

प्यारी जू सुंदर वदन तिहारौ।
निरखि निरखि प्रीतम सचुपावत निमुषहु होत न न्यारौ ।।
मंद हासि परिहासि परस्पर नव नव नेह निहारौ।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि रहसि रस वृन्दाविपिन विहारौ ।।१८०।।

प्यारी तेरे तन की सोभा बरनी न जाइ।
जा जा अंग निरखत ए नैंना तहीं तहीं रहत लुभाइ ।।

नवल रूप अनूप माधुरी पान करत न अघाइ।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि अंग संग नख सिख रही हों समाइ ॥१८१॥

कहों री जो कहिबे की होइ।
श्रीबिहारी बिहारनि कौ सुख सखी री जानत नाहिने कोइ ॥
प्रेम मगन रस मत्त रहत नित तन मन प्रान समोइ।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि लडावत अंग संग रही भोइ ॥१८२॥

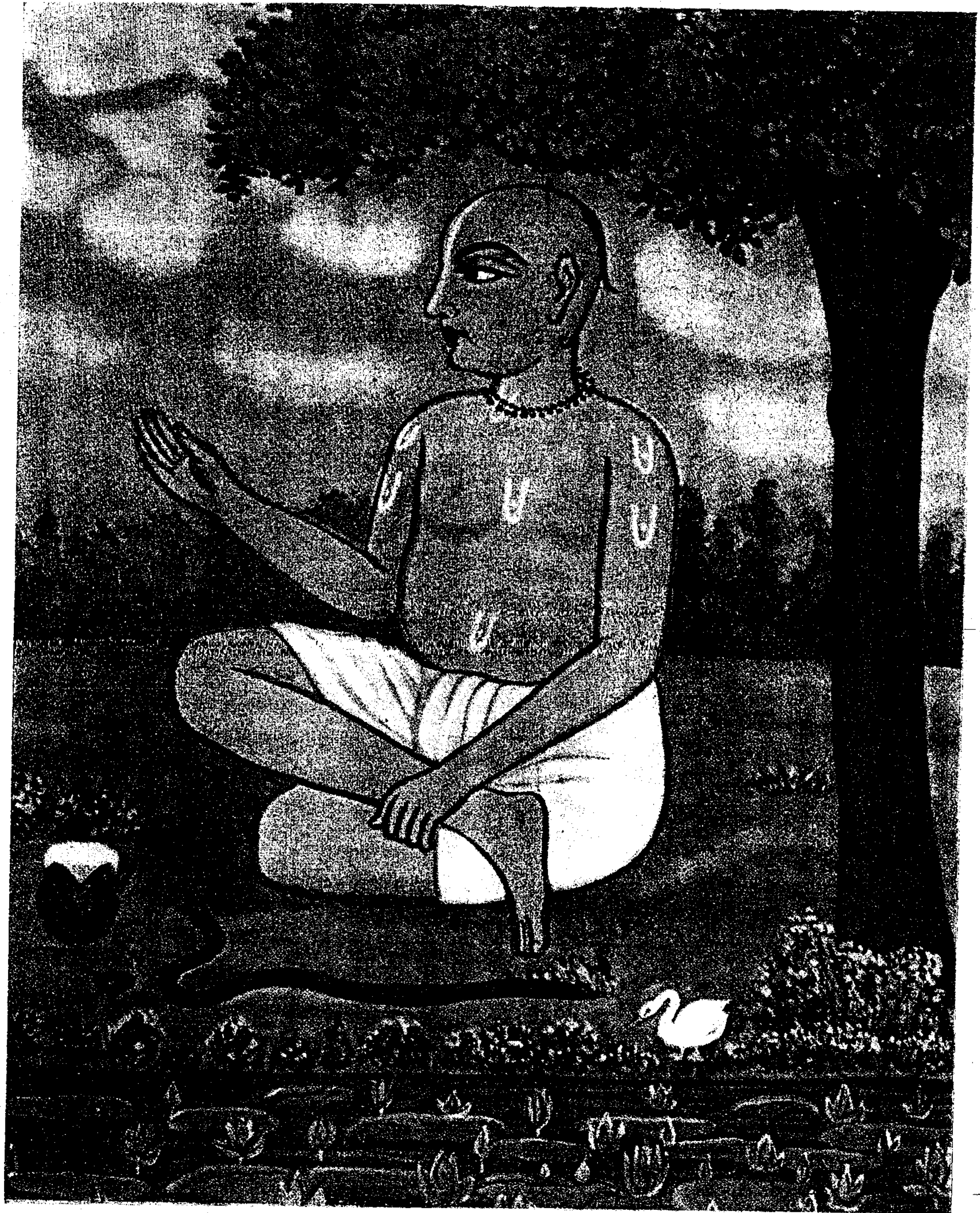
खेलत हैं रस रंग में नव रंग बिहारी।
अंग संग प्रानपति लाडिली सुंदर नवल दुलारी ॥
अति अनुराग सुहाग भरी छिन छिन बदन निहारी।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि लडावत विलसत हैं सुख सारी ॥१८३॥

* राग देव गंधार *

प्यारी झूलत अति रसमाती।
पिय के अंक निशंक हिंडोरे लटकि लपटि लडकाती ॥
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागत अति रस रसिक न अघाती।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि रहसि रति विपिन अंग संग समाती ॥१८४॥

प्यारी अति रस प्रेम प्रवीन।
सुंदरि अति सुकुंवारि लाडली लाडति लाड नवीन ॥
दरस परस सुख देत निरन्तर छिन छिन प्रति मिलि लीन।
श्रीबिहारीबिहारनिदासि लडावत विपिन बिहार सुख कीन ॥१८५॥

॥ इति श्रीगुरुदेवजू की बानी सम्पूर्ण ॥



स्वामी श्री नागरी देवजू

श्री स्वामी नागरीदेवजू की प्रशंसा

श्री स्वामी सरसदेव जी–

श्री हरिदास के वंस उजागर नागर नेह नये नित साजैं।
रस रीति सों प्रीति प्रतीति बढी श्री विहारी विहारनिदासि निवाजै॥
तनकृति की वृत्ति परी सहजै रहसै नव नित्यविहार सों गाजैं।
सरस सुसार विचारि कह्यौ धनि धन्य श्री नागरीदास विराजैं॥१॥

गरुवो गुन गम्भीर धीर धरमीन बखान्यौ।
सेवत नित्यविहार सुजस रसिकन मन मान्यौ॥
करुवो अरु कोपीन गूदरी सहज सदाई।
कुंजनि कुंज विलास सुजस रसना रस गाई॥
श्रीविहारिनिदासि प्रताप बल रजधानी रज राखि थरि।
श्रीनागरिदासि उदारवर कौन करि सकै तोर सरि॥२॥

श्री स्वामी नवलदास जी–

दरस परस रुचि सरस बोल अमृत मुख बानी।
कर कमलनि सिर धरत भीर भ्रम जात न जानी॥
करी कृपा निजु जानि संग रसिकन कौ पायौ।
श्री वृन्दाबन विमल रस जस जुगल मिलि गायौ॥
दासी रसाल निजु गुन कहत पारस कंचन प्रगट तुव।
श्रीनागरीदास सनमुख भयें साधन तिहि छिन सिद्ध हुव॥३॥

कूर कृपन और दुखित जानिकें सहज दियो वृन्दावन वास।
भावत सुद्ध सुभाव अनन्य अति विभचारी इंद्री दै घास॥
लीनें गहि निरबाहि प्रिया बल जिनकें मन रति यों बिस्वास।
काम सहायक देत कामना परम कृपाल नागरीदास॥४॥

श्री ध्रुवदासजी–

कहा कहौं मृदुल सुभाव अति, श्री सरस नागरीदास ।
श्री विहारी विहारिनि को सुजस, गायो हरषि हुलास ।।५।।

प्राचीन वाणी से उद्धृत :—

श्रीविहारिदास गुरु कृपा महा वैराग प्रेम हद ।
विपुल सहज अनुराग विलोकत वर विहार सद ।।
गाई अद्भुत केलि झेलि रस रहत मगन मन ।
अरुझी स्याम तमाल बेलि कल कनक सार कन ।।
श्री नागरीदास भीज्यो हियो श्रीकुंजविहारी सर गम्भीर ।
अनन्य नृपति श्री हरिदास कुल भयो धुरंधर धर्म-धीर ।।६।।

श्री सीलसखीजी–

सरस नागरीदास आस जिनकी करौं ।
चरन कमल मकरन्द आपने उर धरौं ।।
कोमल मधुर पद ललित श्रेनी जिन करी ।
वृन्दाविपिन विहार सार सुख सों भरी ।।
भरी वन संपत्ति जिनके रोम रोमनि जगमगैं ।
सरस नागरिदास बानी भूरि भागनि उर लगैं ।।
श्री हरिदास की आस हिय में विपुल पद नीकै भजैं ।
वर विहारिनिदास के बल विपिन वन विथिन गजैं ।।७।।

श्री किशोरदासजी–

नागरीदास सरस सुख मूल ।
नित्यविहार अपार सार तैं छिन छिन प्रति अनुकूल ।।
रसिक अनन्य अनन्त महन्त मनि विगसत वदन प्रफूल ।
दासकिसोर सहायक सब दिन लोभ काम मद सूल ।।८।।

श्रीनागरीदेवजू की बानी

※ साखी ※

चरन कमल रज सेइहौं, मन वच क्रम यह आस।
अपनों सरवस जानिकैं, बलि जाय नागरीदास ॥१॥

श्रीस्वामीनागरीदेवजू महाराज ने अपनी बानी के प्रारम्भ में ही, सर्व प्रथम अपनो निज ध्येय प्रकास करते भये आपने कथन कियौ कि–मेरे तन, मन, प्रान, रोम-रोम कौ निज सर्वस्व, सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी, नित्यबिहारीजी एवं श्रीस्वामीजू महाराज के श्रीचरन कमलन की रज श्रीवृन्दावनजू ही हैं। तिनकूं मन, क्रम बचन ते सदाकाल दृढ़ अनन्य होइ निरंतर सेवन करतो भयौ मैं बलिहारी जाऊँ, यही एक-मात्र हमारी आसा है।

लै करुवो कौपीन कामरी, कुंजनि कुंजनि कूल विलास।
तब मिलि हैं मीत मनमुदित, श्रीबिहारीबिहारिनिदासि खवासि ॥२॥

अति निरपेछि संग संग्रह, अनन्य आँन गति नाँहि।
श्रीबिहारिनिदासि उपासि सुख, संग पैठि महल मन माँहि ॥३॥

श्रीवृन्दावनजू में या आसा सों रहिकें सबसों भली-भाँति वैराग्य करि, करुवो-कोपीन,कामरी लै, श्रीस्वामीजीमहाराज की कृपा बल पै लता-लता के नीचै श्रीजुगल के रस-विलास कौ अनुभव करौगे तब हीं मनकूं मुदित करिबेवारे मनभावते मित्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू एवं बिनकी निजदासिन की खास-खवासी प्राप्त होइ सकैगी।

यावत प्रकार के संग एवं संग्रहनतें अति निरपेक्ष होइ, ऐसे दृढ़ अनन्य है जाओ-जोकि श्रीस्वामीजी महाराज के चरन कमलन कें अतिरिक्त और कहूँ तुम्हारी गति ही नाँइ रहै। तब हमारे श्रीगुरुदेवजू के निज रस रीति महल सुख में तुम्हारो मन प्रवेस करि सकैगो।

नित्य विहार सार सबको, अति दुर्ल्लभ अगम अपार।
अनन्य धर्म संधि समझै बिन, माया कठिन किवार ॥४॥

हे भाई! समस्त परमार्थन कौ हू सार एवं अति दुर्लभ अगम अपार, सर्वोपरि नित्यबिहार रस ऐसो है, जब ताऊँ अनन्य धर्म की स्थूल-झीनी यावत संधिन कूं

भली-भाँति नाँइ समझि लेओगे तब ताऊँ मायारूपी अति कठिन किवार लगे भये हैं। अर्थात्—महामधुर सार रस को सर्वोपरि नित्यबिहार के अनन्य विलासी श्रीबिहारी-बिहारनीजू के अतिरिक्त जब और-और स्वरूपन के रस-विलास-सुख-सम्बन्ध मानत खेम, विशुद्ध अनन्य धर्म नाँइ रहै है, तब और-और परमार्थन की तो वामें समाई है ही कैसे सकै है? मायिक देह-सम्बन्ध-सुख-स्वादन की तो तहाँ कोऊ चर्चा ही नाँइ चलावै है।

यहै उपदेस उपाइ श्रीबिहारिनिदासि कृपा तैं जानैं।
नित्य सिद्ध बिनु नागरीदासि, कहा कोउ पहिचानैं ॥५॥

या नित्य बिहार प्राप्ति के ताईं सर्वोपरि अनन्य धर्म की संधि कौ उपदेस एवं उपाय जगत में एकमात्र श्रीगुरुदेवजू की कृपामय वानी द्वारा ही समझि में आइ सकै है! क्योंकि—निजमहल के नित्यसिद्धन के अतिरिक्त या संधि कूँ और कोऊ समझि ही नाँइ सकै हैं।

गुन धन हीन सुदीन प्रेम उर, राखत गुन गंभीरा।
श्रीनागरीदासि यौं वस्तु छिपावत, ज्यौं गूदर में हीरा ॥६॥

जगत में जैसे काहू व्यक्ति के पास न तो धन ही होइ, और न काहू प्रकार को गुन ही होइ, जैसे वो सहज सुभाव दीनातिदीन होइके रहै है, तैसीही रहनी तें रहि, या सर्वोपरि नित्यबिहार रस कूँ अपने हृदय में ऐसे छुपाइ कें राखौ-जैसे कोऊ हीरा कूँ अपनी मैली-कुचैली फटी-पुरानी गूदरी में सीम छुपाइ कें राखै हैं।

हीरा कौं ललिचात लिवासी, परचौ पूंजी न मर्मी।
श्रीनागरीदासि बिहारै चाहत, बिना अनन्य धन धर्मी ॥७॥

ठौर-ठौर में श्रद्धा रखिवेवारे लिवासी जन सर्वोपरि नित्यबिहार रसरूपी हीरा कूँ यद्यपि ललचावैं हैं, किन्तु बिनकूँ न तौ बस्तु के स्वरूप कौ ही ग्यान है, और न दृढ़ अनन्यधर्मरूपी बिनकेपास पूँजी ही है,औरन वे पूर्नतम प्रेमरस बिहारके मर्म कूँ ही जानै हैं। याते बिना अनन्य धर्म के धर्मी भये नित्यबिहाररस कूँ कैसेहू वे प्राप्त नाँइ करि सकैं हैं।

श्रीनागरीदासि अनन्यनि कौ गढ, बन बाँकौ कहा कोऊ पावै।
नित्यविहार नित्य सिद्धन को, तू काहे को मूंड मुंडावै ॥८॥

हे नागरीदास! प्रथम—समागम—एकान्त—रस विलास—निजमहल श्रीवृन्दावन

दृढ़ अनन्यन कौ ही बाँकौ किला है। नित्यसिद्धन को ही ये निज धन है। बिनकी निज कृपा तें बिहीन कोऊ कैसेहू प्राप्त नाँइ करि सकै है। अपने साधन बलपै मूँड-मुड़ाइबो तो एकमात्र बेकार ही है।

काहू कौ वस नाँहि तुम्हारी कृपा तें सब होय श्रीबिहारीबिहारिनि।
श्रीहरिदास सहज रति वरनौं, श्रीवृन्दावन अति रम्य।
श्रीविपुलविहारनिदास कृपा बिनु, सबकें मननि अगम्य॥

आप कहावत रसिक कृपन मति, कायर मत्सर लोभ लिवास।
ठग बग डिंभी कपट प्रेम बिन, तिनहि न मन विस्वास॥९॥

कछु लोग जगत में ऐसे हू होइ हैं जोकि अपने कूँ रसिक कहावैं हैं, किन्तु बिनको सिद्धान्त इतेक कृपनता कौ होइ है जो नेक-नेक कर्म-धर्म बिधि-बिधान आदि-कन को नाँइ त्यागि सकैं हैं। तामें बिनके प्रान हू इतेक कायर होइ हैं, जो प्रेमिन की नाईं कबहूँ नाँइ उमँगि सकैं हैं, और इहलोक-परलोक के लोभ-लालचन को लिवा-सीपनो मन में सजाये मत्सरता ते हू भरे रहैं हैं। ऐसे बगुला सदृस ठग- डिंभी लोगन के कपट कौ प्रेम होइबे के कारन विश्वास ही नाँइ उपजै है !

भक्ति भाव विस्वास न उपजै, घर घर रसिक कहाईं।
बिन अनन्य संसार सिंधु में, फिरि फिरि गोता खाईं॥१०॥

ऐसे ही बहुत से लोगन के भक्तिभाव में तो विस्वास ऊपजै नाँइ है, तौहू घर-घर में अपने कूँ रसिक कहावैं हैं। मैं तुमसों साँची बात कहूँ हू कि बिना दृढ़ अनन्यता के बेर-बेर संसार में ही गोता खानो परै है।

श्रीगुरु सन्धि सुभाव न पावत, गावत जग जस धूता।
बिना अनन्य विहारै चाहत, क्यों पावहुगे पूता॥११॥

सर्वोपरि नित्यबिहार के एकमात्र दाता श्रीस्वामीजी महाराज के सिद्धांत एवं स्वभाव की संधि प्राप्त नाँइ होइबे के कारन, धूर्त लोग केवल संसार के ही जसन कूँ गावैं हैं, किन्तु बिना दृढ़ अनन्य उपासना किये नित्यबिहार कैसे प्राप्त हो सकै है?

नादी नृत्य निपुन बहु बादी, स्वादी मिल्यौ न कोई।
श्रीनागरीदासि अनन्य बिन, सब गये चतुर गथ खोई॥१२॥

सब्दन की वाक् चातुरी द्वारा वाद्-विवाद करिबेवारे तो जगत में बहुत मिले,

किन्तु रस कौ स्वादी एक हू नाँइ मिल्यौ, हे नागरीदास ! सहचरि भाव के दृढ़ अनन्य भये बिना बड़े-बड़े चतुर परमार्थ रूपी पूँजी कूँ खोइ के यौंही चले गये ।

कै खानों कै सोवनौं, कै नित्य उठि करत बिगार ।
श्रीनागरीदासि अनन्य प्रभु, भजि तजि मन जंजार ।।१३।।

आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि—हे भाई ! तुम अपने समय कूँ केवल खाइबो, पीबो, सोइबो, एवं मल-मूत्र आदि त्यागिबे में ही व्यतीत करि रहे हो, मैं तुमसों कहूँ हूँ कि—इन सब क्रियान कूँ स्वाभाविकता में छाँड़ि, मन के समस्त जंजारन कूँ दूर करि, अपने प्रभु के अनन्य भजन में सतत लगे रहौ ।

रोग भोग सुख देह दुख, कै जाडौ कै घाम ।
श्रीनागरीदास परपंच तजि, भजि श्रीस्यामा स्याम ।।१४।।

याही बिषय में आपने और हू कह्यौ कि तुम सतत देह के सुख-दुख रोग भोग एवं सर्दी-गर्मी आदि के माँऊ ही देखते रहौ हौ । हे नागरीदास ! इन सब प्रपंचन कूँ भली-भाँति त्यागि, श्रीजुगल के भजन में मन लगाओ । अर्थात् ये सबतो सहज सुभाउ ही आते-जाते रहैं हैं ।

श्रीनागरीदास अनन्य धन, धर्म सुदृढ उर धारि ।
दंपति सम्पति संचि हियैं, सुख सोवो पाँव पसारि ।।१५।।

हे नागरीदास ! अनन्य-धर्मरूपी सर्वोपरि धन कूँ सुदृढ़ता पूर्वक धारन करिबे ते, श्रीजुगल रूपी महाविचित्र संपत्ति तिहारे हृदय में संचय है जावैगी, फिर ता सुख सों सुखी होइ, निसंकता पूर्वक पाँव पसारि के सोवो ।

अब कोउ कहो कूर कुटिल यह, कामी कृपन कहो कोउ मौंनी ।
यौं कौतिक कृपा निरखैं नित्य, श्रीनागरीदासि लियैं रस थौंनी ।।१६।।

अपनी स्थिति कूँ प्रकास करते भये साधकन सों आप कहिबे लगे कि हे भाई ! चाहे कोऊ अब हमें कूर, कुटिल, कृपन, कामी अथवा मौनी क्यौं न कहै, इन बातन माऊँ हमारौ कोऊ ध्यान ही नाँइ है । श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें रस विलास-मय श्रीजुगल के अद्भुत कौतुकन कूँ मनभावते हम या भाँति निरन्तर निहारते रहै हैं, जैसे कोऊ गाय के थन कूँ मुंह में लै दूध कूँ पीतौ होइ ।

श्रीबिपुल बिहारनिदास को, मैं पायो पूरो संग ।
श्रीनागरीदास फूलत सदा, देखि दुहुनि कौ रंग ।।१७।।

हे नागरीदास ! रस सागर श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू तथा अनन्य मुकुट-मनि श्रीगुरुदेवजू दोऊन कौ हमें भली-भाँति पूरौ संग प्राप्त भयौ है। बिनके अद्भुत रसमय रंगन कूँ देखि-देखि कें हम निरन्तर फूल्यौ करें हैं।

कुंज पुलिन कौतिक घनौं, मिलि खेलत रस रासि।
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि संग, सुख निरखि नागरीदासि ॥१८॥

श्री जमुनापुलिननवनिकुंज–मन्दिर में रमरास श्रीजुगल, दोऊ मिलिकें, अद्भुत नये-नये अगाध कौतुक स्वरूप खेलन कूँ निरन्तर खेलै हैं। हे नागरीदास ! सहचरि भावसों बिनके संग-संग तुम मन लगाइकें,विचित्र सुखनकूँ संतत देखते रहौ।

बिपुल बिहारिनिदासि तैं, अब छिन छिन मन आनंद।
यौं निरखत नागरीदास नित, दूलहु दुलहिनि मकरन्द ॥१९॥

श्री स्वामीबीठलबिपुलदेवजू एवं श्रीगुरुदेवजू के संग सों हमारो मन अब छिन-छिन आनन्द में फूल्यौ नाँइ मावै है। बिनकी ही निज कृपातें नित्य दूलह-दूलहनि के रस–बिलास कूँ मनमाने हम देख्यौ करें हैं।

ये दोउ विहरत आनन्द उदित मन, अंग राग अनुराग।
फूली दासि श्रीनागरी, नवल अंग अंग पराग सुहाग ॥२०॥

हे नागरीदास ! दोऊ श्रीजुगल के हृदय कमलन में अति बिचित्र आनन्द तौ उदित है रह्यौ है, और अनुराग अंगराग की नाईं रोम-रोम में रमि रह्यौ है। हम देखि-देखि के फूले नाँइ माँय रहे हैं और बिनको सुहागरूपी नवल पराग हमारे अंग-अंग एवं रोम-रोम में भरि रह्यौ है।

* सवैया कवित्त *

यहै सिद्धि साधन बाध नहीं कछु मैं सुख ही मन माँहि लही।
सुख सौं सनबंधहि अंध न जानत मानत कूर कृपन कही ॥
श्रीनागरीदास हुलास कहै नव प्रीति प्रिया पिय सौं निबही।
नित ही मेरे नेम बिहारीबिहारिनि बिहारिनदासि उपासि सही ॥१॥

हे नागरीदास ! मेरे साँचे सही उपास्य स्वरूप एकमात्र श्रीगुरुदेवजू ही हैं, या अपने नेम कूँ मैं नित्य-नित्य सदाकाल बड़ी सावधानी ते निभाऊँ हूँ। क्योंकि यह मर्म भेदी सिद्धान्त साधक एवं सिद्ध काहू अवस्था में विपरीत नाँइ होइ सकै है। प्रेम के मर्म ते अनभिज्ञ अग्यानी जन साँचे सुख-संबन्ध कूँ नाँइ जानिबे के कारन कूर,

कृपन, उपदेष्टान की बातन कूँ ही मानि लेवें हैं। मैं तुमसों हुलास पुर्वक कहूँ हूँ कि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के दृढ़ अनन्यदास ही हमारे उपास्यदेव होइबेते श्रीजुगल नई-नई प्रीति सों सदाकाल हमें सुखी करै हैं।

यदि कोऊ ये बात कहै कि सिद्ध एवं साधक अवस्था में श्री गुरुदेवजू ही साँचे सही उपास्य कैसे होइ सकें हैं ? ता विषय में या प्रकार समझनो कि–सिद्ध अवस्था में तो सर्व सिरोमनि साक्षात् श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की निज प्रानस्वरूप आप ऐसी हैं कि जैसे प्रान समस्त रीति भाँति सों देह को हित कियौ करै है, तैसे ही तो आप श्रीस्वामिनीजू के स्वाँसन के हू स्वाँसन की रुख समझि, निरन्तर लाड़ लड़ावें हैं, और प्यारीजू के प्रान स्वरूप श्रीलालजू कूँ महागूढ़रसमय अद्भुत बिहार सुख सों सुखी करिबे के ताईं सतत लालायित एवं प्रयत्नशील रहैं हैं। और तो और, स्वयं श्री स्वामिनीजू अतिरीझि,अपने श्री मुख कमल सों ही कहैं है कि-सखि!प्रेम बिलास में जब मेरे मन में हूँ संसय रहि जाइ है तब तूही मोकूँ दाव-उपाउ बतावै है। याते प्रेम के मर्म कूँ जानिबेबारी तोते अधिक मैं और काहू कूँ नाँइ मानूँ हूँ।

सखी तोतें कछु न दुराइहौं, तू मेरे हित प्रान।
तैं मेरे रस बस कियौ, वर सुन्दर सुघर सुजान॥
तातें अधिक न जानि हौं, कोउ कहै तौ लागौं पाँइ।
मेरे मन संसै रहै, तू कहि दाइ उपाइ॥–श्रीगुरुदेवजू
जानि सहचरि आपनी नित केलि रस पोषैं हियो।
हँसि कहत पिय सों हित करन ऐसो नहिं कोऊ बियो॥
चतुर पिय नागर सिरोमनि जानि प्रिय की लाड़िली।
छिन छिन कहत मेरी बिनय कीजौ तुम सदा सु चाड़िली॥–श्रीसीलसखीजी

ऐसे श्रीगुरुदेवजू की साँची कृपा कौ नेक आभास हू जिन महापुरुषन पै है जाइ, तिनकूँ श्रीनित्यबिहारिनीजू अपने निज प्रानन ते हू इतेक अधिक प्यारौ करिकें राखें हैं, जाकूँ बर्नन करिबे की काहू कौ सामर्थ नाँइ है ! जामें श्रीलालजू के प्रान तो बिनपै इतेक बिकि जाँइ हैं जोकि स्वयं बेहू नाँइ कहि सकें हैं।

सर्वदा बस कुंवर मोहन कुंवरि सो हँसि यों कहैं।
हित करन इन सम और नाहिन सुख समाजनि लै बहैं॥
इहि गर्व मदमाते रहैं नित चित्त और न आवहीं।
जै श्री बर बिहारनिदासजू की कौन सम सरि पाँवहीं॥

साधक अवस्था में हूँ आपके स्वरूप कूँ या भाँति समझनो कि जो नित्य-बिहार व्रज-रस देस ते अति दूर, समस्त रसिकन ते हू छुप्यौ भयौ, प्रथम समागम, एकान्त–रस–बिलास–निज–महल श्रीवृन्दावन में ही निरन्तर हिलोर लै रह्यौ,जामें श्रीजुगल इतेक विभोर है रहे कि–अनन्त कोटि महा प्रलय व्यतीत है गये, तौहू दोऊ श्रीजुगल कूँ न तो मिलिबो ही भान भयौ,और न देखते-देखते देखिबो ही ? फिर तहाँ निद्रा भोजन के अवकास की तौ चर्चा ही कैसे है सकै है?ऐसेसर्वोपरि महारस बिलासी श्रीजुगल श्रीहरिदासीजू के प्रानन कूँ दृढ़ अनन्य भाव ते सदाकाल सेवैं हैं। बिन श्रीस्वामीजी महाराज के मन,प्रान एवं स्वाँसन की रूख अनुसार श्रीजुगल को लड़ाइ-लड़ाइ के हमारे श्रीगुरुदेवजू आप के इतेक अद्भुत लाड़िले है रहे हैं कि जहाँ-तहाँ श्री गुरुदेवजू की प्रसंसा श्रीस्वामी जी महाराज करि-करि दुलार कियो करैं हैं।

भक्ति पथ में ये निर्णीत सिद्धान्त सर्वमान्य है कि जो महतपुरुष जिन जनन कूँ अगाध मायासागर तें निकारि, श्रीहरि के माऊँ लगावैं हैं, वे गुरुदेव श्रीहरि ते हू अधिक उपास्य स्वरूप सहज स्वाभाविक माने जाँय हैं, तामें हमारे गुरुदेव श्रीस्वामी बिहारिनिदेवजू महाराज तो समस्त परमार्थन कौ सार स्वरूप सर्वोपरि नित्यबिहार रस के एकमात्र दाता हैं, याते आप साँचे सही उपास्य-स्वरूप स्वतः सिद्ध हैं,

साँचो साँचे के जिय भावै।
मनरंजन नैननि कौ अंजन जहाँ-तहाँ दुलरावै ।।–श्रीगुरुदेवजू

उपरोक्त प्रकरन तें भलीभाँति स्पष्ट होइ है कि श्रीगुरुदेवजू कौं ही अपनो साँचो सही इष्ट मानिबेवारो जन ही सर्वोपरि प्रेम के मर्म कूँ ग्याता समझ्यौ जाइ है।

श्रीबिहारिनिदासि जू सुख की रासि सबै गुन को सुप्रकासि कियो।
कर्मठ ज्ञान पठंत पुरान सुभक्ति निदान को भेद कियो ।।
तामैं ब्रज रीति सुप्रेम समीत सुलीला प्रकार दिखाय दियो।
तातें रस रीति बढै मन प्रीति सुनित्यबिहार सुसार गियो ।।२।।

निज आश्रितन तें आप बोले कि हे भाई ! हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू सर्वोपरि सुख की साक्षात निज रासि हैं,जिनने अद्भुत रसदेस के नित्य बिहार की समस्त स्थूल-झीनी गाँस एवं गुनन कूँ कृपा-बसीभूत होइ, हम सबन के ताईं प्रकास करि दीन्यौ है। कर्म, ग्यान, बेद-पुरान एवं समस्त प्रकार की भक्ति के भेदन कूँ भली-भाँति निदान करि, भिन्न-भिन्न स्वरूप सों अपनी बानी में बताय दीनौ है।

जामें प्रेम प्रधान ब्रज-रस-रीति लीलान कूँ हू अनेक प्रकारतें दिखाइ कें,समझायौ है। जासों बिनकी कृपा ते निज-रस-रीति-बिलास, साधक के हृदय में सहज आइ कें वामें ही दृढ़ अनन्य प्रीति नित-नित बढ़न लगै है।

विपुन विनोद बढै मन मोद श्रीस्वामिनि कोद अगाध हियौ।
बलि नागरीदासि अनन्य प्रकास कृपा करि चरननि वास दियौ॥
दयौ बनबास सुथाह दिखाय आनंद बढाय बुलाय लियौ।
राग रंग सही सुख यौं बिलसैं छिन ही छिन अंग सुसार पियौ॥३॥

हे श्रीनागरीदास! हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू श्रीवृन्दावन में बिनोद करते भये या भाँति बसैं हैं कि जिनको छिन-छिन मन कौ मोद बढ़तौ ही जाइ है। अपनी प्रानेस्वरी के माऊँ ही हृदय की अगाध टूटन सदाकाल बिनकी बनी रहै है। मैं बिनपै सतत तन, मन, प्रान सों बलिहारी जाऊँ हूँ, जो आपने कृपा द्वारा मेरे हृदय में दृढ़-अनन्य भाव प्रकास करिकें, अपने श्रीचरनकमल के निकट ही मोकूँ निवास दै दीन्यौ है। श्रीवृन्दावन निजमहल के अथाह प्रेम कौ स्वरूप दरसाइ, सर्वोपरि नित्यबिहार रस में मोकूँ मिलाइ लीन्यौ। ताते हम छिन-छिन सर्वोपरि सुसार रस कूँ पी-पी कें सही राग-रंग सों दोऊन कूँ लड़ाइ-लड़ाइ कें सहज-सुख बिलसैं हैं।

विस्व विलास त्रास न मानत भक्ति ज्ञान विधि मुक्ति निबेरे।
साधिक सिद्ध प्रसंसित जाके सुताके तिन्हैं बल है चित हेरे॥
निकुंज भवन रवन रमैं ज्यौं जुगल नवल रहैं नित नेरे।
श्रीहरिदास भजैं सुखरासि श्रीबिहारिनिदास सदा गति मेरे॥४॥

आश्रितन ते कहते भये आप बोले कि-हे भाई! मेरे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू ने समस्त विश्व बिलासन, ते नेंकहू भय नाँइ मानि, भक्ति,ज्ञान, मुक्ति आदि सबन कूँ भली-भाँति निबेरौ करि दीन्यौ है।

जगत में जितेक महाबड़भागी सिद्ध एवं साधक भये हैं तिन सबन ने श्रीस्वामीजी महाराज की सर्वोपरि प्रसंसा मुक्त-कंठ ते गाई हैं, बिन श्रीस्वामीजू के श्रीचरनकमलन कौ एकमात्र बल भरोसो आपके हृदय में सदाकाल भर्‌यौ भयौ रहै है। श्रीवृन्दावन नव-निकुंज-मन्दिर में दोऊ श्रीजुगलतन-मन-प्रान-रोम-रोम सों एक भये जैसे सतत रमन करें हैं, तैसे ही आप बिनके निकट में निरन्तर रहैं हैं। सुखरासि श्रीस्वामीजी महाराज कौ अनन्य भजन सतत एकरस आप कियौ करैं है, ऐसे

श्रीगुरुदेवजू ही मेरे एकमात्र सदाकाल गति हैं।

दुर्लभ देह सन्देह नसाइ लडाइ प्रिया पिय पाय धनै।
मौसर होत जु औसर चूकत कोटि करै फिर तो न बनै।।
प्रीति प्रतीति बढै रसरीति सौं पूरन काम यौं राखि मनै।
नित्य नागिरीदासि के नेम यहै श्रीबिहारिनिदासि उपासिपनै।।५।।

याही प्रसंग में आप और हू कहिबे लगे कि–हे भाई! देव-दुर्लभ यह मानव देह तोकूँ मिली है, याके यावत् संदेहन कूँ त्यागि, अपने निज धन श्रीजुगल कूँ नये-नये लाड़ लड़ावौ। ऐसो सुन्दर मौकौ यदि तुम चूक गये तौ कोटि-कोटि यत्न करिबे पै हू तुम्हारौ फिर दाउ नाँइ बनि सकैगो। अपने मन में परिपूर्न कामना निज रसरीति सों ही प्रीति-बिस्वास बढ़ाइबे की सदाकाल राखो। या बस्तु के प्राप्ति के ताईं अति मर्म की बात बताते भये आप बोले कि–सर्वोपरि नित्यबिहारिनी के अनन्य उपासकन कौ एकमात्र श्रीगुरुदेवजू के चरनकमलन की उपासना कौ ही दृढ़ प्रन होइ है।

दुर्लभ संग अभंगनि तें गुरु बासिन वृन्द जौ सुख चहौ।
श्रीहरिदासि सेइ सुखरासि लडाइ प्रिया गुन नाम कहौ।।
श्री नागरीदासि प्रकासि कहै हित सुखद बिहारै तो निबहौ।
श्रीकृष्णदासि प्रिय बिपुल बिनोद श्रीबिहारिनिदासि उपासि रहौ।।६।।

यदि तुम अद्भुत सर्वोपरि सुख ते सदाकाल सुखी रहिबौ चाहौ हौ, तौ श्रीगुरुजनन कौ अति दुर्लभ संग तुमने सहज प्राप्त है रह्यौ है, अभंग रूप ते तिनके संग सदाकाल रहौ। सुखरासि श्रीस्वामीजू महाराज कूँ सेवते भये लड़ाइ-लड़ाइ कें श्रीप्रियाजू के नाम गुनन कूँ सतत कहौ। श्रीनित्यबिहारिनी जू की दासी या बात कूँ चौरे पुकारि-पुकारि के कहै हैं कि श्रीस्वामीजू महाराज सों अनन्य हित सदाकाल निबाहोगे, तबहों महा सुखदाई नित्यबिहार तुम्हें प्राप्त है सकैगौ। मैं तो रससागर श्रीस्वामी बीठलविपुलदेवजू, श्रीस्वामी कृष्णदासजी तथा श्रीगुरुदेवजू की उपासना में ही सतत रहूँ हूँ।

लाडिलीलाल के प्रेम सहायक दाइक सुख सबै गुन रासी।
राग के रंग रिझावत गावत भावत हैं नित श्रीहरिदासी।।

अंग संग रहें मन स्वास लहें रसरीझि प्रिया पिय देत स्याबासी ।
वलि नागरीदासि लडावत यौं धन्य धन्य अनन्य बिहारिनिदासी ।।७।।

हे नागरीदास ! हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनी एवं नित्यबिहारीजू के परस्पर कौ जो अति अद्भुत अगाध गूढ़ प्रेम है, तामें छिन-छिन सहायता करि, महा बिचित्र सुखदाई समस्त गुनन की रासि हैं । दोऊ श्रीजुगल कूँ सतत राग-रंग में रिझाइ-रिझाइकें श्रीस्वामीजी महाराज के नित लाड़िले हुये रहैं हैं । श्रीयुगलके सदाकाल अंग-संग रहि, स्वाँसन के हूँ स्वाँसन की रुख कूँ ऐसे लहते रहैं हैं, जासों दोऊ रीझि-रीझि कें बेर-बेर बिनकूँ स्याबासी दियौ करें हैं । हमहूँ अपने तन-मन-प्रान सदाकाल न्यौछावर करते भये लड़ाइ-लड़ाइ आपकी जय-जयकार मनायो करें हैं ।

अद्भुत रूप अनूप भरी सुखरी रंग अंग फबी चुनरी ।
श्रीहरिदासि सनेह सलौंन सबै विधि अंग रचो उनरी ।।
बलि नागरिदासि लडावत गावत तान तरंगनि तू सुनरी ।
सुखदाइक देखि बिहारीबिहारिनिदासि सहाइ सबै गुनरी ।।८।।

हे भाई ! हमारी प्रानेश्वरी श्रीबिहारिनदासीजू अति अद्भुत अनूप-रूप एवं सुख तें भरी-पूरी हैं, जिनके श्रीअंग पै रंग सौं भरी चूनरी अति बिचित्रता तें फबि रही है । श्रीस्वामीजी महाराज के अति सलोने सनेह नें ही समस्त रीति-भाँति सों आपकूँ सिगारचौ है । महाबिचित्र-तान-तरंगन द्वारा गाइ-गाइ कें श्रीलाड़िलीजू कूँ आप लड़ाइ रहे हैं, तिनपै हम बेर-बेर बलिहारी जाँय हैं, ऐसी सरस-रसीली अति अद्भुत तान-तरंगन कूँ तुम कान लगाय कें तो सुनौ, और परम सुखदाई आपके स्वरूप कूँ आँख भरि-भरि कें देखो । जाके माऊँ ये नेक हू कृपा दृष्टि द्वारा देख देवें हैं, वामें सहज सुभाउ सर्वोपरि समस्त गुन स्वयं ही आइ जाइ हैं ।

बैन श्रवन सुनौं रसना गुन गाऊँ सरूप अनूप विचारौं ।
नासिका आस सुबास उतीरन माला सुमन बसन सिंगारौं ।।
बंदन सीस करौं दिन यौं मनकी मनसा इत उत न टारौं ।
श्रीनागरीदास के आस यहै निज नैन बिहारिनिदासि निहारौं ।।९।।

फिर आप बोले कि हमारे तन, मन, प्राननि में एकमात्र यही निज आसा है कि अपने प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू के श्रीमुखकमल के बैंन तो श्रवनन ते सुन्यौ करूँ,

रसना तें बिनके रसमय गुनन कूँ सदाकाल गायो करूँ। हृदय में बिनके अति अनूप स्वरूप कूँ बिचारचौ करूँ। आपके श्रीअंग-प्रसादी माला कूँ सूँघूँ, उतीरन बस्त्रन तें अपनो शृङ्गार कियो करूँ, और अपने माथा कूँ आपके श्रीचरनकमलन में, ऐसे नित राखूँ, जो मन की मनसा नेक हू इत-उत माऊँ नाँइ टरि सकै। अपने निज नैंननि तें सदाकाल आपके दरसन करतो रहूँ।

सर्बसु श्रीहरिदास उपास अनन्यनि कै धन कुंजबिहारी।
पारस प्रेम रसिकन के रसरीति रसायन प्रीतम प्यारी॥
निरखैं परखैं हरखैं अंग अंग अनंग उदै रति रंग दिहारी।
सदा सुख मत्त बिपुल बिहारिनिदासि श्रीनागरी की बलिहारी॥१०॥

जिन महतपुरुषन के साँचे भाव द्वारा श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की दृढ़ अनन्य उपासना होइ है, बिनके ही श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मन्दिर में अनन्यभाव ते बिहार करिबेवारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू निज धन हैं। क्योंकि पारस स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज कौ प्रेम सपरस होत खेम, वे ऐसे रसिक बनि जाँइ हैं कि बिनके श्रीजुगल की रस-रीति ही रसायन स्वरूप है जाइ है। फिर वे मनभाँमती नई-नई श्रीजुगल की रसरीति कूँ निरखि-निरखि, परखि-परखि कें आनंद में फूले नाँइ मावें हैं। अंग-अंग में बिनके अनंग रति उदय होइ रंग बरषन लगै है। याही भाँति सर्वोपरि सुख में मत्त श्रीगुरुदेवजू अपनी नवनागरीजू की छिन-छिन बलिहारी लै-लै के सतत श्रीवृन्दावन में बिनोद करैं हैं।

जाके हृदै श्रीहरिदास बसैं भैया ताहि कहा कछु है अब कीवैं।
बसैं बन वृन्द सुछन्द भयैं धन धर्म अनन्य सदा सुख जीवैं॥
रहैं गर्व भरे रसप्रान प्रिया कें फिरैं उनमत्त महा मधु पीवैं।
श्रीनागरीदासि विलासि बिहारिनिदासि भंडार लियें दिन दीवैं॥११॥

निज आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि हे भाई! जिनके श्रीहृदयकमल में रूप, रंग-रसमय-भाव-बिहार ते भरे भये श्रीस्वामीजी महाराज बसैं हैं, तिनकूँ और कछु करिबे को आवश्यकता ही नाँइ रहै है। वे जन अनन्य धर्म कूँ अपनो निज धन समझि, अति सुच्छंद होइ, सदाकाल श्रीवृन्दावन में बसि कें सर्वोपरि सुख सों जीवैं हैं। साक्षात श्रीप्रानप्रियाजू के गर्व में गर्वीले ह्वै महामधुर रस कूँ पी-पी कें उन्मत्त भये डोलैं हैं। हे नागरीदास! याही महारस-बिलास कौ अगाध भंडार लियें, हमारे

श्रीगुरुदेवजू निज अनन्य आश्रितन कूँ सतत दान देवैं हैं।

न जानत जात निसा-दिन काल न कर्म कलेवर के न डरौंसैं।
बिपुन सुधारस पाँन करैं कहौ काहि त्रिषा जाहि आप परोसैं।।
श्रीनागरीदासि विलासि बिहारिनिदासि कृपा सु विनोद करौसैं।
श्रीबिहारीबिहारिनि को मुख जोवत सोवत श्रीहरिदास भरोंसैं।।१२।।

जिन बड़भागी महतपुरुषन कूँ श्रीगुरुदेवजू की कृपा सों यह महारस प्राप्त है जाइ है, तिनकूँ और-और रस-सुख-स्वाद को तृष्णा नेंक हूँ नाँइ रहै है। दिन-रात कब बीति जाइ है, याकूँ हू ग्यान नाँइ होइ है। साक्षात् मूर्तिमान काल एवं प्रारब्ध-कर्मन तें हूँ वे जन नाँइ डरैं हैं। हे नागरीदास! श्रीगुरुदेवजू की अद्भुत कृपा बल सों, वे जन रस-बिलास में सतत बिनोद करैं हैं। श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के मुखकमल कूँ निरन्तर अवलोकन करते भये, श्रीस्वामीजी महाराज के बल-भरोसा पै सदाकाल निसंकता तें सोवैं हैं।

* कुँडलियाँ *

यह जोवन जल बरषि ज्यौं नदी उमडि करारे ढाहिं।
जल सूकै जोवन घटै त्यौं गयैं आव पछिताहिं।।
गयैं आव पछिताहिं काहि पूछै बिन स्यामहिं।
मिथ्या सब दिन खोय जोय दारा धन धामहिं।।
दुर्लभ तन तूं सोधि मन भजि बड अवसर जानि यहै।
नित्य कित चूकत तहाँ तू सुनि सठ नागरीदासि कहै।।१३।।

ऐसो महा बिचित्र सर्वोपरि सुख साधकन कूँ सहज सुलभता ते प्राप्त है सकै है, तौहू जो जन जागतिक सुखन में भूलि रहे हैं, तिनको लक्ष्य करि आपने कह्यौ कि—हे भाई! जैसे बरसाकाल के जल सों नदी उमड़ि-घुमड़ि के अपने आस-पास के कूल-करारन कूँ तोरती-फोरती चलै है। जल सूखिबे पै वो ही दूबरी-पतरी है जाइ है। तैसे ही ये तुम्हारो जवानी कौ जोवन चार दिनन कौ ही है। याके चले जाइबे पै तुमकूँ पछितामनों ही परैगो। वा समय तुम्हारे ये सब संगी-साथी कोऊ नाँइ काम आइकें, एकमात्र श्रीबिहारीजी महाराज ही रक्षा करि सकैंगे। याते अब हीं ते तुम श्रीबिहारीजी महाराज के माऊँ लगौ। तुम झूठे धन-धाम स्त्री-पुत्रादिकन माऊँ देखि-

देखि के अपने जन्म कूँ बेकार ही खोइ रहे हो। तुम्हें यह बड़ी दुर्लभ मानव-देह मिली है, याते भलीभाँति सोचि-समझि, मन कूँ सोधि श्रीहरि कौ भजन करौ। ऐसो दाव फिर जल्दी तोकूँ नाँइ मिलैगो, ताहू पै, तू मूरख, अनंत जन्मन ते, तथा अबहूँ नित-नित या अद्‌भुत अवसर को चूकि रह्यौ है।

※ सवैया ※

कोउ कहै उद्दिम साधि उपाधि अगाध सु बात कैसैं उर आनैं।
कोउ कहै व्याज विचार करो तुम कोउ धन कालहिं जात न जानैं॥
अपनी अपनी सब साँच कहैं न लहैं नट नागर नेह निधानैं।
श्रीनागरीदासि के नाथ के हाथ ए बादि बकैं बकवादि अयानैं॥१४॥

बहुत से लोग ऐसे कहै हैं कि बेदोक्त विधि-बिधान अनुसार साधन-उद्यम करिबे ते ही नित्यबिहार की प्राप्ति है सकैगी, किन्तु बिन साधनन में अनेक प्रकार की अगाध उपाधि भरी भई है, जोकि बिसुद्ध प्रेम-पथ के पथिकन के हृदय में कैसे हू नाँइ आइ सकै है। कछु लोगन कौ ऐसो अभिमत है कि महातम को बिचार करिके ही साधन करनो चहिये। ये लोग अमूल्य समयरूपी धन कूँ प्रेम-पथ में नाँइ लगाइ कें, साधारन फलन में बेकार ही खोवें हैं। यद्यपि जाके जैसी समझ में आवै है, अपनी-अपनी सब साँची कहैं हैं, किन्तु नटनागर, श्रीबिहारीजी महाराज कौ स्नेहरूपी खजानों ये लोग कैसे हू नाँइ लै सकैं हैं। बेसमझो के कारन बेकार में ही ये बकबाद करैं है, क्योंकि सर्वोपरि नित्यबिहार रस हमारे प्राननाथ श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा के ही हाथ में हैं।

कटि कोपीन काँमरी काँधे यौं फूले फिरत श्रीहरिदास विपुल वर।
निजु धन धर्म धाम वृन्दावन सेवत दासि बिहारिनि के थर॥
अमनैक अनन्यनि धंनि निहकाम रहैं गर्व गर्बानि प्रेम भर।
श्रीनागरीदास उदास भयो जग सुख संतोष गहैं करवो कर॥१५॥

यावत जागतिक सुख-संबंधन तें सर्वथा उदास होइ, जब हमने करुवा-गूदरी की रहनी ग्रहन करि लीनी, तबहीं हमारो मन परम संतोष पाइ, सम्यक् प्रकार तें सुखी है गयो। याते अब हम श्रीस्वामीजी महाराज एवं श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू की कृपा बल पै कटि में कोपीन, कंधा पै कामरी धरि फूले-फूले फिरैं है। हमारौ सर्वस्व निज-धन अनन्य धर्म, श्रीवृन्दाबन कौ बास, तथा श्रीगुरुदेवजू के आश्रय कूँ

सतत सेइबो है। क्योंकि अनन्य निजदास ही, सबन सों निष्काम रहि, प्रेम के गर्व में भरे गर्बीले बने रहैं हैं।

लोक वेद मरजाद गहै न लहै सुख आपु कलंक कुसंग निवासी।
बैठत आँनि अनन्यन के आसन दासन प्रेम प्रसंग उदासी॥
साहिब सेवक रीति न जानैं क्यों मानैं महासठ बुद्धि बिनासी।
ह्याँ सुद्ध अनन्य बसैं बन बृंद खरिकु खरो खोटौ लोग लिवासी॥१६॥

हमारे निजमहल श्रीवृन्दावन की उपासना में खरे ते हू खरे बिसुद्ध अनन्यजन ही समाइ सकैं हैं। लिबासी जनन कूँ तो हमारे यहाँ सब लोग खोटो ही मानैं हैं। कारन वे लोग लोक तथा बेद की मर्यादान कूँ गहे रहिबे के कारन, बिसुद्ध प्रेम-देस में कलंकी एवं कुसंग निवासी समझे जाँइ हैं। ऐसे जन प्रेम सुख सों कबहूँ सुखी नाँइ होइ सकैं हैं। ताहू पै अनन्यन के आसन पै तो आइ के बैठि जाँइ हैं, किन्तु इष्ट की दासता तथा प्रेम के प्रसंगन ते सदाकाल उदासीन रहैं हैं। और तो और स्वामी, सेवक की रीति को हू नाँइ जानैं हैं। महासठन की बुद्धि ऐसी बिनास है रही है, जो समझाइबे पै हू नाँइ मानैं हैं।

सुख दुख के देह संदेह कछू न भजन भ्रम भूलि विलसै।
साधिक सिद्ध सुहाय सुधर्म अनन्य ह्वै आन की आस नसै॥
ह्याँ कृपा सुखसार तैसें त्रिसकार अग्याँन आरूढ तैं मूल खसै।
सुनि नागरीदास कहै सुलहै सुख सिद्ध कै संग ह्वै सिद्ध बसै॥१७॥

हे नागरीदास! मैं तुमसों कहूँ हूँ कि जो जन श्रीगुरुदेवजू के कहे भये उपदेसन कूँ हृदय में धरि कें, वाही अनुसार चलैं हैं, तेई जन सिद्ध ह्वै, आपके संग बसैं हैं, वे जन देह के सुख-दुखन माऊँ कछु संदेह नाँइ करि, भ्रमन कूँ भलीभाँति भूलि, भजन के सुख कूँ मनभाँमते विलसैं हैं। जगत में वे ही साधक सिद्ध होइ हैं, जिनने और-और यावत आसान कूँ अपने मन तें नष्ट करि, अनन्य धर्म ही सहज सुहावै है। हमारे यहाँ समस्त सुखन कौ सार-स्वरूप जैसे श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा कूँ हीं मानैं हैं, तैसे ही सलल्यता में आरूढ जनन कौ तिरस्कार हू होइ है, याते इन अग्यानिन को परमार्थरूपी मूल हू चल्यौ जाइ है।

राखि हृदै प्रिय प्रेम सुधारस सार दुराइ दिखावत बूर।
करि विषै तन माया प्रपंच कृपा बिनु बस्तु लहै क्यों मूर॥

श्रीगुरु प्रेम प्रसन्न बसे बन धर्म अनन्य महा मन सूर।
श्रीनागरीदासि कों दै सुख संग श्रीबिहारिनि जाँनि परचौ गर कूर ।।१८।।

साक्षात् श्रीनित्यबिहारिनीजू सों ही प्रार्थना करते भये आप बोले कि हे प्रान-जीवन प्यारीजू ! अपने प्रेम-रस-सुधारूपी धन कूँ छुपाइ कैं, सार हीन विषय-प्रपंचरूपी भुस कूँ काहे कूँ दिखाय रही हौ, आपकी कृपा के विना, श्रीवृन्दावन में बसि, गुरून के प्रेम तें प्रसन्न होइ, अनन्य धर्म कूँ महामना शूर-बीरन की नाईं हृदय में कोऊ धारन नाँइ करि सकै है। याते मेरे हृदय में अपने प्रेम कूँ भरि, सुखदाई संग दै, गरे में परचौ भयौ मो कूर कूँ समस्त रीतिभाँति सों आप निभाइ लेवो।

श्री गुरु इष्ट अनन्य उपासना आस कहूँ मनसा मति धावै।
रुख ले सुख स्वास गनें तो बनैं तब सेवक साहिब कै मन भावै ।।
जानि कृपा हित दें चित जौ पै भृंग ह्वै कीट सरूप कौं पावै।
श्रीनागरीदास बिलास रस बस होय तजौ बसु तौ बसु लावै ।।१९।।

निज आश्रितन ते आपने कह्यौ कि—हे नागरीदास ! यावत् मायिक धन-संपत्तिन कूँ त्यागि, सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के रसविलास-उपासना को दृढ़ अनन्य होयगो, सोई प्रेम-रस रूपी अद्भुत धन कूँ प्राप्त करि सकेगो। याते तुम श्रीगुरु एवं इष्ट की अनन्य उपासना में ऐसे लगि जाओ, जोकि तुम्हारी मन, मनसा, आसा एवं बुद्धि काहू समय कहूँ नाँइ जाइ सकै। क्योंकि साहिब के मन वही सेवक भावै है, जो सदाकाल अपने स्वामी की रुख अनुसार स्वाँसन कूँ गिन-गिन के, बिनकूँ सुखी करै है। तिनहीं महतपुरुषन के कृपा के स्वरूप कूँ समझि, बड़े हित सों चित्त कूँ अपने इष्ट में ऐसे लगाइ देउ, जैसे कीट भृंग को स्वरूप बनि जाइ है।

अति दुर्लभ दूरि भयो बन बाँकौ यह माया महा भ्रम कों कियो आडौ।
काम कुरोग कुसंग कलेवर काल जंजाल ग्रसे जुर जाडौ ।।
समझि सकै न कृपा उपदेसहि कूर कृपननि को मत छाडौ।
श्रीनागरीदास अनन्य ह्वै कुंजबिहारी-बिहारिनि के सुख लाडौ ।।२०।।

श्रीवृन्दावन सबतें दूर अति दुर्लभ बड़ो बांको सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू को निजमहल है। जाकी प्राप्ति में एकमात्र माया के महाभ्रम ही बाधक है रहे हैं। कामरूपी कुरोग एवं अनेक प्रकार के जबरदस्त कुसंगन में फँसे भये लोग, समय के

जंजारन में जाड़े के ज्वर की नाँई ग्रसित है रहे हैं, याते साक्षात् कृपा स्वरूप उपदेसन कूँ हूँ नाँइ समझि सकें हैं। हे नागरीदास ! ऐसे कूर-कृपनन के मत कूँ समस्त रीति-भाँतिसों त्यागि, श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य होइ, श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनीजू कूँ लड़ाइ-लड़ाइ सतत वा सुख के लाड़ में भरे रहौ।

लोभ को डिंभि कियें हियें हरि हेत बिना भ्रम भूलि फसे।
गुरु इष्ट सौं प्रेम न नेम कछू धृग धृग महा काल व्याल डसे ॥
नित नागरीदास बिलास बिना रुचि मानों बिषै खरि खात भुसे।
माया प्रपंच कुसंग बंधे सठ काँमिनि काँम कुरोग ग्रसे ॥२१॥

श्रीहरि सों साँचो हित किये बिना तुम भ्रम में भूलि, लोभ दंभ में फँसिबे के कारन, न तो तुम्हारे गुरु-इष्ट सों कछु प्रेम है और न काहू बात कौ नेम है। यातें तुम बार-बार धिक्कार देवे योग्य, महा कालरूपी-व्याल ते डसे भये हो। नित नागरीदास श्रीस्वामीजी महाराज के रस बिलास की रुचि बिना, भुस एवं खरस्वरूप विषयन कूँ ही सतत तुम खाइ रहे हो। तापै हू माया-प्रपंच कुसंग तें बँध्यौ कामिनी के कामरूपी कुरोग ने और हू ग्रसि राख्यौ है।

कपि कौतुक बाँधि नचावत ज्यौं नट त्यौं भ्रम भूलि कै प्रीति पच्यौ।
उपज्यौ बिनस्यौ बहु नाम सकाम ह्वै साधि बिषै जुग ज्योंनि जच्यौ ॥
अब दोनों कृपा करि वास बिपुन बिहारी-बिहारिनि रूप रच्यौ।
भयें नागरीदास बिना यौं बिगूचत ज्यौं ज्यौं नचावत त्यौं त्यौं नच्यौ ॥२२॥

याही प्रसंग में आप और हू बोले कि हे भाई ! जैसे नट बंदर-बंदरिया कूँ बाँधि, नचाइ-नचाइ कें अनेक कौतिक करै है, तैसे ही भ्रम में भूलि, जगत के प्रीति में पचि-पचिकें मैं नाचतो रहो। अनंत जुग कामनानमें विवश भयो विषयनकूँ सेइबेके कारन, अनेक जोनिन में उपजतो-विनसतो रह्यौ, ताते बहुत से नाम मेरे धरे गये। अब श्रीहरि ने बड़ी कृपा करि कें श्रीवृन्दावन कौ बास दै दीन्यौ, जासों श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रूप, रस महामाधुरी में मेरौ मन रच्यौ रहै है। नवल नागरीदास भये बिना याही भाँति माया जैसे-जैसे नचावै, तैसे-तैसे ही नाचि-नाचि कें, बहुत से लोग मारे गये हैं।

रोग भोग संजोग वियोग विधाता बनाय दयौ याकौ धर्म यहौ।
दुख सुख तैं माया प्रपंच निवारि विचारि निजु सुख जो निबहौ ॥

विलोकि विपुन विहार अधार अनन्य व्है नागरीदास कहौ ।
इहै बिट कृम भस्म निसानी दुख की देह पै सुख चहौ ॥२३॥

बिट, कृम, भस्म होइबेवारी दुख-स्वरूप जा देह ते तुम सुखी होइबे की चेष्टा करि रहे हो, याको तो धर्म रोग, भोग, संयोग-वियोग बिधाता ने सहज सुभाउ ही बनाइ राखे हैं। ताते विवेक द्वारा दुख-सुखरूपी माया-प्रपंच तें अपने मन कूँ भली-भाँति हटाइ, श्रीस्वामीजी महाराज के निज सुख ते सुखी होइबे के प्रन कूँ जीवन पर्यन्त निबाहि लेउ। अपने कूँ तुम श्रीनागरीदास समझि दृढ़ अनन्य ह्वै, प्रानाधार स्वरूप सर्वोपरि श्रीवृन्दावन नित्यबिहार कूँ अवलोकन कियो करौ।

सुख दुख को देह दुराव नहीं लोक लज्या कपट तैं खोलि दये ।
पुनि काढ्यौ कुबुधि तैं सोधि कृपा करि आप लै औरहिं ठान ठये ॥
बिहरैं उर अंबुज में सुख पुंज प्रिया-पिय रंग सौं नेह नये ।
नित नागरीदास विलास विलोकत भयौ बनवास निसंक भये ॥२४॥

हे नागरीदास! श्रीस्वामीजी महाराज ने अब हमें लोक-लज्जा एवं कपट तें समस्त रीति-भाँति सों निवारन करि दीनौ, ताते अब हमारे मन में काहू प्रकार के दुख-सुखन कौ बिचार नाँइ रह्यौ है। आपने अपनी करुना, कृपा द्वारा हमारी कुबुद्धि कूँ दूर करि, समस्त रीति-भाँति सों सोधि, श्रीवृन्दावन रसमाधुरी कूँ ऐसो पिवाइ दीन्यौ, जो कि नये-नये नेह तें भरे सुख-पुंज श्रीजुगल, हमारे हृदयकमल में सतत बिहार करें हैं। बिनकी कृपा बल सों ही, अद्भुत बिलास कूँ निहारि-निहारि, निसंकता पूर्वक श्रीवृन्दाबन में हम बास करै हैं।

उपज्यो कहूँ प्रेम ऐसो न हिया तातैं दुख सुख फिरत ठिल्यौ ।
गुन गायैं बिना न सुजान सुखी मुख मौंन गह्यौ मानौं मंत्र किल्यौ ॥
सुख जीवत नागरीदास कृपा श्री बिहारी-बिहारिनिदास हिल्यौ ।
या देह कौं कष्ट सहै सु गनैं न, कर्म को हीन कुसंग मिल्यौ ॥२५॥

साधक कूँ समझाते भये आप कहन लगे कि हे भाई! कर्म के हीन होइबे के कारन तुम्हें कुसंग मिल रह्यौ है, ताते तुम्हारे हृदय में ऐसो प्रेम कबहूँ नाँइ उपज्यौ, जासों तुम दुख-सुखकूँ भलीभाँति भूल जाते। सुजानसिरोमनि जन तो अपनेइष्टके अनुरागसों गुन गाये बिना कैसे हू सुखी नाँइ है सकै हैं, किन्तु तुम गुन गाइबे के विषय में ऐसे मौन रहौ हौ, मानो काहू ने तुम्हारे मुख कूँ मंत्र तें कील दीनौ है। श्रीस्वामीजी

महाराज की कृपा तें देह के दुःख-सुखन कूँ कछु नाँइ गिनि, श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की दासिन के संग हिल्यौ भयौ मैं बड़े अद्भुत सुख सों सदाकाल जीऊँ हूँ।

बेटा बहू और कुटंब सबै तिनको सतसंग न जात बखान्यौं।
असमंजस बात बिगूचत घात अनन्य महा विष में रस सान्यौं॥
श्रीनागरीदास उदास भये बिन गूढ प्रिया सुख क्यों परै जान्यौं।
श्रीबिहारी-बिहारिनिदासि कृपा बिन है सुख संग सठासुठि बान्यौ॥२६॥

हे भाई ! श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की दासिन की कृपा के बिना, बेटा, बहू एवं कुटुम्ब-परिवारवारेन कौ संग तुम्हारे ऐसो जबरदस्त बनि रह्यौ है, जो कहिबे में ही नाँइ आइ सकै है। या प्रकार की अनहित असमंजस बातनि में फँसि, अनन्य धर्मरूपी घात कूँ बिगारि, रस में महाविष तुमने सानि लीनौ है। हे नागरीदास ! इन सबन सों निरास भये विना श्रीनित्यबिहारिनीजू कौ सर्वोपरि महागूढ़ रस कैसे हू नाँइ जान्यौ जाइ सकै है।

काम क्रोध मद मत्सर मोह तैं लोभ छोभ जरि जाँहि सबै अरि।
नाँहिन और समर्थ सुजान तन मन ताप संताप हरौ हरि॥
श्रीनागरीदास कै आस विलास प्रिया पिय प्रेम सौं राखौ हृदै धरि।
आपुन ही अपनाय करौ किन काटो कर्म की फाँसि कृपा करि॥२७॥

फिर आप श्रीस्वामीजी महाराज सों प्रार्थना करते भये बोले कि हे प्राननाथ! आप स्वयं ही मोकूँ अपनाय, कृपा करि मेरे कर्मन की फाँसी ऐसी काटि देउ, जो काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, मोह, लोभ, छोभ आदि यावत बड़े प्रबल बैरी भलीभाँति जरि जाँइ। हे सुजान सिरोमनि ! आपके बिना और कोऊ ऐसो सामर्थवान नाँइ है, जो मेरे तन-मन के ताप-संपापन कूँ समस्त रीति-भाँति सों हरन करि सकै ? श्रीजुगल के रस बिलास-सुख की ही आसा-लालसा आपही कृपा करि मेरे हृदय में भरि देउ।

बखानत प्रेम प्रताप महातम साँच न स्वाँग कसै कसि काँची।
साधिक सिद्ध भयो तो कहा कुंवरि किशोरी कृपा नहिं जाँची॥
श्रीगुरु प्रेम प्रसन्न बिहारनिदासि श्रीनागरी के रंग राची।
रे बुद्धि बिवेक बिचारि इहै जु कहै सु लहै तो करै सब साँची॥२८॥

साधकन सों आप बोले कि—हे भाई ! प्रेम कूँ तुम प्रताप एवं महातम में मिलाइकें वर्नन करौ हौ, याते तुम्हारो रसिकता कौ स्वांग साँचो नाँइ होइ कें कसिबे

पै सब कांचौ ही निकसै है। यदि तुमने सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू की कृपा अनन्य भाव तें नाँइ जाँचना कीनी, तो साधक, सिद्ध कछु है जावो, तौहू श्रीस्वामिनीजू के निज रस-देस सों तो वंचित ही रहि जाओगे। हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू अपने गुरुन के प्रेम सों सदा प्रसन्न रहि, कुंवरि किसोरी लाड़िली के रंग में सतत राचे रहैं हैं। बुद्धि-विवेक द्वारा तुम भलीभाँति विचार करौ; सब लोग या बात कूँ कहैं हैं कि—श्रीगुरुदेवजू ने जो कह्यौ है, वाकूँ तुम्हारो मन लहि लेवै तो, सब साँची ही साँचो होती चली जावैगी।

चात्रिक ज्यौं घन चंद चकोर विपिन विनौद विलोकि हिया।
ज्यौं जल मीन जियत मकरंद कौ पान करै अलि व्है कैं हिया।।
दरसैं परसैं नित्यनागरीदास प्रिया पिउ राखि हृदै मँहिया।
मनसा बाचा कुंजबिहारी बिना गति आन अनन्यनि कै नहिया।।२९।।

निज आश्रितन तें समझाते भये आप बोले कि—हे भाई! दृढ़ अनन्य जनन के मन बाणी में अपने इष्ट श्रीकुंजबिहारी के बिना इहलोक-परलोक में और कोऊ गति ही नाँइ रहै है, जैसे चात्रिक घन, एवं चकोर चन्द्रमा के माऊँ सतत देखतो रहै है, तैसे ही श्रीवृन्दावन के महारसमय बिलास कूँ हीं वे महतजन सतत निहारते रहैं है, और जैसे मछली को जीवन पानी ही होय है, तैसे ही श्रीजुगल के अंग-सुगंध कूँ भ्रमर की नाईं पी-पी कें वे जीवें हैं। ऐसे ही हे नागरीदास! श्रीजुगल के सतत दरस-परस करते भये बिनकी महामाधुरी कूँ अपने हृदय में भरि कैं राखौ।

निंदत बंदत है अनबूझ न सूझत प्रतीत बिना ढिग ढेरौ।
प्रपंच बिषैं बस धर्म बिना अनुराग की दृष्टि न बस्तु क्यौं हेरौ।।
नित नागरीदास विपुन सुधा रस पाँन करत तिन्हें कित छेरौ।
जै श्री गुरु प्रेम प्रसन्न सबै सुख संच सों संच मिल्यौ मन मेरौ।।३०।।

हृदय में ही विराजमान वस्तु नासमझी एवं विश्वास ते विहीन होइबे के कारन इन्हें नाँइ सूझ रही है। याते ये अनन्य धर्म सों रहित होय, विषय-प्रपंचन में फँसे भये हैं। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि अनुराग की दृष्टि भये बिना बस्तु कैसे हू नाँइ दीख सकै है। फिर जो महतपुरुष सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के अनन्य दास होय, एकमात्र श्रीवृन्दावन रस-सुधा कूँ ही सतत पान कियौ करैं हैं, बिन्हें तुम काहे कूँ छेरो हौ। जय हो जय हो! हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू की, जिनकी ही प्रेम-कृपा के

कारन सर्वोपरि साँचे सुख सों, साँचो हैकें मेरौ मन मिलि गयौ है।

कौन करै तप तर्पन तीरथ तीन प्रकार कहाँ मन लाऊँ।
कौन करै ब्रत संजम नेम सुप्रेम पुनीत प्रसादहिं पाऊँ॥
कुंजनि वास निवास रसिक श्रीनागरीदास विलास बढाऊँ।
चित्त लगाय उभै पद अंबुज नित्यबिहारीबिहारिन गाऊँ॥३१॥

निज आश्रितन ते आप कहिबे लगे कि हे भाई! अब मैं नित्य निरंतर रस-बिलासी श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के चरनकमलन में चित्त लगाइ कें, बिनके ही गुनन कूँ सदाकाल गाऊँ हूँ। तब तप, तर्पन तीरथ आदिकन में लगाइबे के ताईं तीन प्रकार ते मन कहाँते लाऊँ। ऐसे ही ब्रत, संयम, नेम मेरे कौन करै? मैं तो सदाकाल परम पवित्र प्रेम प्रसाद ही पाऊँ हूँ। श्रीवृन्दावन लता-कुंजन में बास, एवं रसिकन के निकट निवास करि श्रीजुगल के बिलास कूँ सतत बढ़ाऊँ हूँ।

भूल्यौ हो भ्रम के विषै बेहड में अनसमझै जु रह्यौ जकि थक्का।
कछु न सुहाइ समाइ हृदै में गुरु वचननि चरननि चित तक्का॥
लाल रसाल अंग अवलोकत ढाहि कोटि दुर्जन किये रक्का।
तब पायो बन विश्राम कुंज नव संग छुडाय कियो मन इक्का॥३२॥

रसिक मुकुटमनि हमारे श्रीगुरुदेवजू ने कृपा करि, सबको संग छुड़ाइ, एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के चरनकमलन में मेरो मन लगाइ दीन्यौ, पहले हम बिना समझे भ्रमन की भूलि में परि, बिषय बेहड़ में ऐसे जकि-थकि रहे, जोकि परमार्थ की कोऊ बात न तो हमें सुहाइ रही और न हमारे हृदय में समाइ रही। जब सों श्रीगुरुदेवजू के बचन एवं चरनन में चित्त लगायो है, तब सों ही रसाल लाल के श्रीअंगन कूँ अवलोकन करि-करि काम-क्रोध आदि मायिक दुर्जनन के किला कूँ ढाहि, बिनकूँ महारंक मानन लगे। याते अब हम बड़े हुल्लास सों श्रीवृन्दावन-नवनिकुंज में अगाध सुख सों विश्राम करैं हैं।

※ रस के सवैया कवित्त ※

विमल कमल कर्पूर पुलिन रज सेवत जल जमुना जुगराजै।
मृदु मनि भूमि खचित कंचनमय मनसिज सुमन सेज सुखसाजै॥
नव निकुंज विहरत दोउ प्रीतम श्रीनागरीदास सहचरी समाजै।
भृंग विहंग सरस सौरभता अद्भुत विविध भाँति बनराजै॥३३॥

ललित लता झूमी द्रुमबेली मनिमय रज कर्पूर सुहाई ।
त्रिविध पवन मन भवन मधुप कूजत पंछी जमुना रस छाई ।।
कुँज महल कुसुमित सज्या पर विहरत कुँवर कुँवरि सुखदाई ।
ललितादिक निरखत हरखत नित जैं जैं श्रीवृन्दावन सुखदाई ।।३४।।

कुँज की केलि नव बेलि बाढत रहै प्रेम को नेम अनुराग मन छायौ है । सुखद रस रीति सों प्रीति बाढी सुदृढ साँच सों साँच अनुसंग मन भायौ है ।। सुकुँवारी सहज जोहै स्याँम को मन मोहै अंग सो अंग मिलि रंग बरषायो है । प्यारी पिय को रहसि परस्पर को बहसि जै श्रीवर बिहारिनिदासि हरषि सुजस गायो है ।।३५।।

लाल अलबेलौ अलबेली संग बनी वधू, करन काँम केलि कुँज में बसायो है । बोलनि हँसनि मिलनि खेलनि रसीली प्रिया, ललित रसीलो लाल कंठ लै लगायो है ।। निकट खवासी निजु दासी लियैं बीरी कर, जुगल लडैंती रंग रीझि वरषायो है । श्रीवृन्दावन वीथिन में जमुना पुलिन बीच नित्य को बिहार श्रीबिहारिनिदासि पायो है ।।३६।।

* कुँडलियाँ *

श्रीनागरीदास न बोलनो देखि खसम के ख्याल ।
हानि लाभ परसैं नहीं नित्य नवतन रस बाल ।।
नित्य नवतन रस बाल लाल उर लपटी देखौं ।
छिन छिन प्रति सुखरासि रहसि रति केलि बिसेखौ ।।
नैंन श्रवन रसना गुन गाऊँ अति अनुराग ।
विपिन बिनोद बिहार बिन सब सुख लागत नाग ।।३७।।

* सवैया कवित्त *

मानों नृतत हैं दस चंद नख द्रुति व्है कर काम प्रकास किया ।
चकि चौंध रहैं हरि हेरि मनों तान तरंग के रंग जिया ।।
दासि श्रीनागरी के गहि पाइ रिझाय रसिक सुअंक लिया ।
अति कोक कला गुन गान सुजान बजावति बीन प्रवीन प्रिया ।।३८।।

सहज सनेह निज सुख धन धरि उर अंतर अपने प्रान राखि रखवारे हो । अलक पलक जिन अंतर अपनैं सुनहु सुजान मुख जीवत निहारे हो ॥ अतिहि व्याकुल कित काहे को कुंवर तुम तन मन मेरे अति प्रीतम पियारे हो । दासि श्रीनागरी हित तुहीं पिया मानि चित प्राननि के प्रान मेरे नैंननि के तारे हो ॥३८॥

※ सरस चौबोला ※

सरस मुदित मन फूल सरस प्रेम सु पग परसैं ।
सरस बिहारिनिदासि सरस दिन दंपति दरसैं ॥१॥
सरस कुंज कौतिक सरस सरस रसिक रस रासि ।
सरस सुमुन सुख सेज बलि सरस नागरीदासि ॥२॥
सरस मृदुल मनि भूमि सरस वृन्दावन राजैं ।
सरस मदन सुख सदन सरस सम्पति सुख साजैं ॥३॥
सरस जमुन कल कूल सरस रस सरसी कुंजैं ।
सरस हंस कुल कमल सरस दरसत सुख पुंजैं ॥४॥
सरस लता द्रुम लिपटि सरस रस बल्ली फूली ।
सरस सुमन रस मत्त सरस रस अवली भूली ॥५॥
सरस सुखद बहै पवन सरस सुक पिक सुर गावैं ।
सरस काम कल केलि सरस मन मोद बढावैं ॥६॥
सरस छः रितु जु बसन्त सरस सौरभ सुखकारी ।
सरस रंग मनि महल सरस खेलत पिउ प्यारी ॥७॥
सरस उबटि सिर खोरि सरस रस कुंवर किसोरी ।
सरस सुरंग पट पहरि सरस राजत नव जोरी ॥८॥
सरस कुसुम गुहि केस सरस कर चित्र सँवारैं ।
सरस सुजस सुख सेज सरस बिवि वदन निहारैं ॥९॥
सरस स्याम सँग गौर सरस अंग अंगनि राजैं ।
सरसहि मोज मनोज सरस रति रंग विराजैं ॥१०॥

सरस बिहँसि रस रहसि सरस गुन गूढनि खोलैं।
सरस स्वाँस सुर सञ्च सरस मृदु हँसि हँसि बोलैं ॥११॥
सरस सम्पति गुन गान सरस तन मन आकरषैं।
सरस रसिक मन रीझि सरस रस रंगनि वरषैं ॥१२॥
सरस गौर गुन गरुव सरस नव नाहु निहोरैं।
सरस प्रिया पिउ प्रान सरस विवि चिबुक टटोरैं ॥१३॥
सरस उमँगि अनुराग सरस अंकनि भरि लेहीं।
सरस ललक नहिं पलक सरस रस चुंबनि देहीं ॥१४॥
सरस पियत मकरन्द सरस विलसत न अघाहीं।
सरस नेह रस रंग सरस अंग अंग अरुझाहीं ॥१५॥
सरस विचित्र विनोद सरस विहरत रंग भारी।
सरस मत्त मन मगन सरस रस कुंजबिहारी ॥१६॥
सरस भोग भोगी सरस, सरस सुगंध जल पान।
सरस नागरीदास सरस रस, सेवत सरस सुजान ॥१७॥
सरस सिरोमनि स्वामिनी, सरस सुखद हरिदास।
सरस विपुल मन रूपनी, सरस सुघर रस रासि ॥१८॥
सरस सहेली सरस मँन, सरस बिहारिनिदासि।
सरस नागरीदास सरस सुख, सेवत हियेँ हुलासि ॥१९॥
सरस सनेह नव नागरीदासी दरस रति रंग।
फूलत तन मन में सुखी, पिउ प्यारी अंग संग ॥२०॥

* नवल चौबोला *

प्रथम प्रेम पग परसि नवल नित नवल बिहारिनिदासि।
नवल नागरीदासि नवल सुख सेवत नवल उपासि ॥१॥
नव वन नवल निकुंज सदन सुख नवल परस्पर हासि।
नवल प्रिया पिउ नवल प्रेम बलि नवल नागरीदासि ॥२॥
नवल सेज सुख लीजै नवल नेह नव ख्याल।
नवल केलि फूले करत हरत मन नवल लाडिलीलाल ॥३॥

नवल किसोर नव रूप नवल छबि पटतर देऊँ कहि काहि ।
नवल नैन मृदु बैन नवल सुख जीवत हैं मुख चाहि ॥४॥
नवल एक रस बैस नवल नेह सखी नवल काँमिनी कंत ।
नवल विहार विलोकि नवल सखी नव आनंदहि न अंत ॥५॥
नवल हाँसि रस रासि नवल नित नवल विचित्र विनोद ।
नवल ललक पलक न लगै, नवल मदन मद मोद ॥६॥
नवल दरसि रस परसि नवल उर नवल लटकि लपटात ।
नवल सुधाधर पान नवल करि नवल न नेकु अघात ॥७॥
नवल सुरत रति रंग नवल सखी नवल सहज अनुराग ।
नवल विहार विवस नव नागर नागरी सहज सुहाग ॥८॥
नवल प्रेम को नेम नवल नित नवल सहज आनंद ।
नवल प्रीति रस रीति नवल दोउ दिन दूलहु मकरंद ॥९॥
नवल मनोजनि मोज चोज हित नवल दरसि मुख मौन ।
नवल छैल छबि छुवत नवल अलि यह सुख बरनै कौन ॥१०॥
नवल कमल मुख नैन नवल अलि पियत नवल मकरंद ।
नवल लाडिली लाल नवल सुख नव रति आनंद कंदु ॥११॥
नवल गौर लसैं नवल छबि नवल अंग अंग अनंग ।
नवल स्याम नव ख्याल परस्पर बिहरत नव नव रंग ॥१२॥
नवल करत सिंगार नवल प्रतिबिंब निहारें ।
नवल सुमन गुहि केस नवल कर चित्र सँवारें ॥१३॥
नवल कवच कसि कंचुकि नवल वसन अभिराम ।
नवल सुभट सनमुख जुरें नवल करत संग्राम ॥१४॥
नवल निकुंज नव खेत नवल नव कुसुम तलप मैदान ।
नवल भृकुटि धनुषनि धरैं नव नैन कटाक्षिन बान ॥१५॥
नवल सुरति संग्राम नवल मची मौज मनोजनि मारु ।
नवल सूर समवैस नवल दोउ अद्भुत नवल विहारु ॥१६॥

नवल कसनि कसि कंचुकी नवल हार गये टूटि।
नवल प्रेम अंग अंग मिले नवल करत रस लूटि ॥१७॥
नवल मत्त मधुपान करि नवल न अंग सम्हार।
नवल रंग घूमत रस झूमत नव रति सुरत सुमार ॥१८॥
नवल सेज सुख सहचरी नव निकुंज कल छांह।
नवल प्रेम प्रिया पोषि नवल दोउ लै राखै उर माँह ॥१९॥
नवल सहेली सजै नवल रति नवल चतुर चित चाइ।
नवल सुरत सुख सेज नवल ये सेवत नव नव भाइ ॥२०॥
नवल बिपुल मन सहचरी नवल सुखद हरिदासि।
नव निकुंजबिहारिनिदास नवल बलि नवल नागरीदासि ॥२१॥
नवल नागरीदास नित सेवत सहज सुभाइ।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि के सुख में रही समाइ ॥२२॥



श्रृंगार रस के पद

* राग भैरौं *

करत केलि कुंज कुंज कुंवर कामिनी। अद्‌भुत बन रूप राज सहचरि अति सुख समाज गौर स्याम मौजनि घन वरषि दामिनी ।। पुलिन नलिन विविध फूल जल थल कालिंदी कूल लेत सुखन देत प्यारीजू रवन रामिनी। दासि श्रीनागरी नवेलि-नागर नव रंग झेलि बिहरत अंग संग श्रीहरिदासि स्वामिनी ।।१।।

नव निकुंज सुख के पुंज मत्त मुदित मधुप गुंज कोकिल कल कीर काम कूजत केलि सुहाई। हँसत खेलत रहसि रवन रुचिर तलप त्रिविध पवन दवन दुख दंपति रुचि राजें रसिक राई ।। कोक कला निपुन अंग अंग गावत सुर सप्त संग तान मान मोहति मन मुख मुरि मुरि मुसिकाई। दासि श्रीनागरि सुजान रीझि नागर वारत प्रान चरन गहत कहत वचन रहत लपटाई ।।२।।

झिलमिले अंग अंग अनंग गौर सुभग साँवल संग राजै रसभरे रंग वर विचित्र बिहारी। रुचिर कुसुम तलप रचित सौरभ अति आनंद संचित बार बार यह जचित मान दान दै प्यारी।। हिलि मिलि दोउ गाँन करत ताँन तरंगनि मननि हरत रीझि रीझि पाँइनि परत रहत मुख निहारी। लाडिलीलाल सुख की रासि रंग रह्यौ प्रेम प्रकासि कुंजबिहारी बिहारिनि-दासि नागरि की बलिहारी ।।३।।

अलबेले लाल लाडिली विलसत अलबेले अंग अंग अनुरागे।
अलबेले नैन बैन अलबेली विलोकनि अलबेले रति जागे ।।
अलबेली मौज नेकु न पलक लागी अलबेले हँसत लसत उर लागे।
अलबेली नागरीदास संग सहचरि अलबेले सुरत रंग पागे ।।४।।

रसिक रंगीले छबीले दोऊ जोओ सखी सुख रासि।
सुरत रंग अंग अंग संग मिलि करत परस्पर हासि ।।

नये नेह क्रीडत दोऊ चौज मौज मनोजनि प्रेम प्रकासि।
विहरत नवल निकुंज जुगल मिलि नवल नागरीदास ॥५॥

नव रंग छबीली अलकलडी अलबेली।
सुरत रंग अंग अंग सिथिल अलबेले लाल संग खेली ॥
अलबेली मौज बिलोकैं बिहारी बिहारिनि नेह नवेली।
श्रीनागरीदास नव कुंज महल अलबेली संग सहेली ॥६॥

रगमगे अंग अंग संग राजैं रसिक सुरति रंग जागे निसि नवल नेह सुंदर सुखदाई। कबरी कुसुम सिथिल अलक अंजन अधर पीक पलक वदन झलक ललित ललक ललनाँ लाल लडाई ॥ हँसि हँसि मृदु कहत बैंन नैंन सैंननि मुदित मैंन मोहत मन रीझि लै सखी आरसी दिखाई। दासि श्रीनागरी नवेलि विहरत भुज कंठ मेलि नव निकुंज सुखद केलि करत हैं मनभाई ॥७॥

* राग श्याम कली *

मुसिक्यात जात सखी कहत बात।
प्रेम मुदित ह्वै उदित प्रिया-पिय पुलकि पुलकि लपटात गात ॥
अनंग रंग रस रूप अनूपम फूले अंग अंग न समात।
श्रीनागरीदासि दंपति दुलरावति निरखि निरखि नैंन न अघात ॥८॥

देखि सखी प्रिया आजु बनी।
स्याम तमाल जु अंस भुजा मानों कनक-लता फूली मृदु कवनी ॥
केस कुसुम अलकै झलकैं छबि भृकुटि नैन राजै विधु वदनी।
अधर दसन छबि उदित मुदित रवि जुग ताटंक नासा जलजमनी ॥
ये मृदुहास ईषद अनंग प्रकास सौरभ सरस प्रमत्त धनी।
चिबुक चारू राजैं ग्रीवा हार उर कुच कंचुकी स्याम सुभग तनी ॥
रोम रोम लसैं सारी सुमन कृश कटि नाभि नितंब सुपद रवनी।
अंग अंग निपुन नव कोक कला गुन वरषि माधुरी सहज घनी ॥

बलि बलि नागरीदासि ए रूप की रासि श्रीबिपुल बिहारनिदासि भनी। कल केलि करें अनुराग ढरें प्यारी प्रीतम हेत रमें रमनी ॥९॥

देखि री आजु नव निकुंज करत हैं कल केलि। गावत रस रंग भरे उमगि-उमगि अनुराग ढरे राग रागिनी सुरत सिन्धु रसिक रम्य रस झेलि ॥ मधुरें मधुरें हँसत लसत अंग अंगनि मिलै कसत रीझि रीझि मन में बसत अंस भुज मेलि। बलि नागरीदासि श्रीकुंजबिहारी प्यारी के संग मुदित यौं मिलि खेलि ॥१०॥

मोहनी मोहन रंग भरे।
खेलत हँसत लसत वर आँनन प्रमुदित मत्त अरे ॥
कुंज कुटी अभिराम धाम सुख नव नव कल केलि करे।
लोचन चारु निहारि परस्पर रस अनुराग ढरे ॥
रंग अनंग अंग प्रति साजैं सनमुख सूर लरे।
बलि बलि विशद श्रीदासि नागरी उर सुख संचि धरे ॥११॥

खेलें हँसें सखी रंग महल मनमोहन मदन मद छाके।
सुरत रंग अंगअंग संग रति कसि रस रूप मोजनि अति बाँके ॥
परिरंभन चुंबन सुख देखें सहचरि जुगल झरोखनि झाँके।
बिहरत दासि श्रीनागरी नागर उठत तरंग नेह नव साँके ॥१२॥

प्रात समैं दोउ उठे प्रजंक पर सौरभ सरस स्वाद लपटात।
लोचन ललित अरुन निसि जागे सुरत अंत पुनि पुनि ललचात ॥
अति रस मत्त सुरति सुख सागर वचन रचन कहि मृदु मुसिकात।
श्रीनागरीदासि दंपति रति विलसि विलसि सुख ए न अघात ॥१३॥

* राग बिभास *

आवत रंग भरे दोउ गावत। कुंज कुंज सुखपुंज प्रियापिय प्रेम परस्पर मोद बढावत ॥ सहज सप्त सुर उमंगि उमंगि उर तान तरंग रंग उपजावत। पुलकि पुलकि तन उदित मगन मन सहज सुघर वर रीझि रिझावत ॥ सुखद सुरति रति अति अनूप गति रसिक सखी हित सुख

बरषावत। श्रीबिहारीबिहारिनिदासि सुखद संग नवल नागरीदास मन भावत ।।१४।।

लाडति लाल लडेते सौं लाडिली री देखिं बैठे हैं भरि अंक।
निकुंज भवन रसिक रवन प्रान प्रियापिय प्रेम भरे मुदित मदन मयंक ।।
हँसत विलसत हुलसत परस्पर सुख मुख विलोकनि बंक।
बलि नागरीदास की स्वामिनी स्याम सदा विहरें रस नवनेह निसंक ।।१५।।

विचित्र विनोद विहारीलाल रसीले हो रस रंग।
सेज सुरति पागे निसि जागे प्रेम प्रिया अंग संग ।।
अरुन अधर अंजन छबि पीक कपोल पलक भ्रू भंग।
अति आलस जुत नैन रसमसे कसे हैं कसोटी अनंग ।।
लटपटी पाग अलक विवि सोभित स्याम सुभग अंग अंग।
दासि श्रीनागरी के रस वस विहरत अनुराग अभंग ।।१६।।

लटपटात गात गलित लाडिलीलाल लसत हँसत भुजनि कसत काम नैननि नेह निहारैं। एकही सुर-स्वांस सैंन विहरत वर विचित्र बैंन अधर-सुधा सहज सुंदर पियत मधुर धारैं ।। छाके रसमत्त मगन अँग अँग अनुराग सघन वर बिहारिनिदासि लै उर सेवति श्रम निवारैं। बलि बलि नव नागरीदासि श्रीकुंजबिहारी सुख की रासि रीझि ललित श्रीहरिदासि तन मन धन वारैं ।।१७।।

मंजन करि मन मोहनी मोहन मुदित परस्पर करत सिंगार। माँग सुहाग कुसुम रची पाग अति अनुराग पहिरि उरहार ।। मृगमद आड बनी वर बेंदी अंजन नैंन निरखि मुख चारु। श्रीनागरीदासि बलि बलि विचित्र बिहारी बिहारिनि हुलसि विलसि सुख सारु ।।१८।।

देखि सखी बिहरत दोउ प्रीतम नव निकुंज नव नव कल केलि।
खेलत हँसत लसत वदननि विवि अंसनि अंस भुजा मृदु मेलि ।।
सुरत अन्त अरसात गात लपटात सरस सौरभ रस झेलि।
श्रीनागरीदासि बलि नव तमाल पिय प्यारी सरस कनक नवबेलि ।।१९।।

बैठे नव निकुंज मंदिर में गावत राग विभास प्रवीन।
नव किसोर चित चोर भोर प्यारी अतिही सरस बजावत बीन ॥
कोक निपुन गुन सुघर लाडिली पियहिं रिझै रस बस करि लीन।
श्रीनागरीदास बलि बलि ललितादिक फूलत दिन देखि रसिक नवीन ॥२०॥

झूलत डोल नवल स्याम प्रिया इत गोरी।
नव निकुंज नव रंग महल अति विचित्र बनी यह जोरी ॥
भृकुटि कटाक्ष निहारत नैननि बैंन वदत चित चोरी।
गावत ताँन तरंग अनंगनि रीझि कहत हो हो होरी ॥
डाँडी छांडि खेल करत परिरंभन चुंबन देत निहोरी।
कच कुच कर कंचुकी रस परसत विहरत कुंवर किसोरी ॥
तब सहचरी अति अनुराग उडावत बूका बंदन रोरी।
निरखि नागरीदासि दंपति छबि विपुल प्रेम भई भोरी ॥२१॥

* राग बिलावल *

छबीली नागरी हो, सारी सुमन सीस फूल राजै मोतिन मंग सुरंग।
कबरी कुसुम करनफूल झलमलैं अंग अंग ॥
आननि अलकावली छबि बैंदी भृकुटी भाल।
अरुन अधर दसननि दुति लोचन लोल विसाल ॥
नासामनि चिबुक चारु कंठ जंगाली पोति।
कुच कमल कंचुकी चित्र द्वै लर मोतिन जोति ॥
बाहु बलय लँहगा लसैं कटि नूपुर रव रसाल।
लटकि चली पग प्रेम प्रिया मोहे मत्त मराल ॥
बैठी सौरभ सुख सेज पर पोषित पिय प्रान।
रोंम रोंम सींचत रस दै अधरामृत पान ॥
हँसत लसत प्रेम मुदित उदित अति उदार।
परस सरस सुरत रंग वर विचित्र विहार ॥
अंग अंग माधुरी तरंग सुंदरी सुकुंवारि।

अद्भुत मौजनि चौज रहत नित नागर नैनि निहारि ।।
श्रीकुंजबिहारी बिहारिनिदासि सुप्रेम प्रकासि ।
नव नव रति रंग महल सेवै श्रीनागरीदासि ।।२२।।

नागरी नव रंग बिपुल मन ।
स्यामतमाल रसाल किसोरी कनक लता मानों गौर सुभग तन ।।
दरस परस रस रंग भरे दोउ वचन रचन मृदु कहत धनी धन ।
श्रीनागरीदास बलि कुञ्ज सदन में करत केलि कल यहै प्रेम पन ।।२३।।

बिहारिनि लाडिली सुख रासि ।
रूप अनूप महा मन मोहनी सहज छबीली हासि ।।
अंग अंग अनंग रंग स्याम संग विलसत मननि हुलासि ।
इहि रस मत्त मगन अनुदिन बलि जाइ नागरीदासि ।।२४।।

* राग टोडी *

कह्यो न परत हुलास अँखियन को । ललित अरुन डोरें लसत रति रंग बोरे सूचत सुहाग भाग नेह नखियन को ।। सिथिल कटि की डोरी मेरी गरबीली गोरी आन आन भाँति आवै सुवास कल कखियन को । नागरीदासि बलि तलप सुफल फली देखि नेक अब जाग्यौ भागि सखियन को ।।२५।।

लटपटात अरसात प्रात उठे आलस उनींदें घूमत नैंन ।
बिथुरी अलक सोहै जो है मन मोहै लोचन जुगल जागे पागे रति मैंन ।।
अलकलड़े अलबेले बिहारी बिहारनि रंग रूप रस एैंन ।
तैसी सुखद सहेली लडावति दासि श्रीनागरी सुरति सुख दैंन ।।२६।।

* राग सारङ्ग *

बिहरत जमुनाजल जुगराज ।
श्रीवृन्दाविपिन विनोद सहित नव जुवतिनि जूथ समाज ।।
छिरकत छैल परसपर छबि सौं सखि सम्पति रति साज ।
नवल नागरीदासि श्रीनागर खेलत मिलि भलैं आज ।।२७।।

* राग श्री *

एरी नवल नव रंग सों बैठे भाव यौं बनि बैठे फूलनि की नाव। अद्भुत छबि फबि रही परस्पर संग सहचरी यौं जगमगे जटित जराव॥ विमल जमुना जुगराज विराजत मानों फूले फूल चित चाव। यह कौतुक जल विहारि देखि दासि नागरी गुन निधान नव नागर उपजत नव नव भाव॥२८॥

* राग सारङ्ग *

रूप रासि सुघर गुन रासि रसिकवर चारु चितै मुसिकात। अंग अंग रस रंग भरे अनुराग ढरें दोउ लटकि लटकि लपटात॥ हँसत खेलत बाढ़त अनंग सुख संग सखी सहज विलसत ए न अघात। श्रीनागरीदासि बलि बलि विनोद नित्य नव दम्पति रति निरखत नैन सिरात॥२९॥

* फूल डोल विहागरौ *

झूलत फूलत स्यामा स्याम।
फूल डोल कौ फूल बनायो फूले सुभग सुभ ग्राम॥
फूलन ही की सेज्या राजत फूलनि ही के धाम।
उभै अंग पर फूल परस्पर उपजावत अभिराम॥
फूलन के आभूषन राजत देखे पूरन काम।
श्रीनागरीदासि निरखि ललितादिक फूल सों फूली भाम॥३०॥

फूल सों सोहति अति स्यामा सुकुवाँरी। फूलन को साज समाज आजु बन्यौं फूल सों लडावत रसिक बिहारी॥ फूली जहाँ तहाँ कुंज मधुप करत गुञ्ज फूले जस गावत कोकिल-सुक सारो। श्रीनागरीदासि वारी फूले फिरत बिहारी फूली छवि सखी देखि जात बलिहारी॥३१॥

फूलन के हार डोर फूलन की माला, फूल सों रसिक नव रचित रसाला। फूलन के आभरन फूल गूंथे केस घन फूलन की सारी चोली फूली नव बाला॥ फूलनि की सेज बनी फूल बैठे धन धनी फूलनि के महल विचित्र विसाला। फूल सों विलास हास फूली श्रीनागरीदास फूलन की छबि देखि भई हौं निहाला॥३२॥

* राग गौरी *

खेसत कुंवरि कुंवर नवरंगी ।
नव निकुंज नव रंग महल सखी गुंजत अलि सुर सरस बिहंगी ॥
बाजत ताल रबाब बीन डफ झाँझि मुरज किंनरि सारंगी ।
एकनि कर कठतार अधोटी एक बजावत मधुर मृदंगी ॥
भरत अरगजा रह्यौ रंग परस्पर गौर स्याम तन लसत अनंगी ।
बिहँसि परस्पर रंग बढ्यौ अति उडत गुलाल कुसुम सुरंगी ॥
बहत रहत अनुराग निरन्तर सहज सुखद स्वामिनि अंग संगी ।
बलि बलि नागरीदासि फूलि मन गावति रस जस प्रेम अभंगी ॥३३॥

* राग कान्हरो *

अलमस्त रहैं अलबेले लाल, लाडिली के रसमाते ।
छकी छबि सों पलकें बर बरुनी नैननि में मुसकाते ॥
मुख अम्बुज वर स्याम मधुप मकरन्द पीवत न अघाते ।
दासि श्रीनागरी रूप रंग रुचि अंग पीत भए राते ॥३४॥

नव जोवन लाड गहेली, प्यारी तू रहति मदन मद छाकी ।
रूप रंग रस श्रवत माधुरी वदन विलोकनि बाँकी ॥
अति आसक्त अमल मौजें नैन पियाले पियैं लाल रहे झाँकी ।
श्रीनागरीदासि रस मत्त बिहारी बिहारिनि नेह निसाँकी ॥३५॥

* राग अडानौं *

कुंज महल खेलैं हँसैं परस्पर रंग बढ्यौं अनुराग। स्यामा स्याम गुन रूप तरंग अंग अंग सुंदर सोहैं सहज सुहाग ॥ लटकि लटकि लिपटात बात कहैं हँसि हँसि फूले अंग अंग अलि नैन पराग ।' दासि श्रीनागरी आगें ललिता हरिदासी गावत बीन सुनावत राग ॥३६॥

* राग केदारो *

नव निकुंज सुख पुंज प्रिया पिय नैनन जोरैं ।
अति आसक्त रहत निस-बासर मुसकत हैं मुख मोरैं ॥

लगत न नैकु निमेष नेह नव भृकुटी चपल चित चोरैं।
सुरत रंग अंग संग विवस रस उर कर चिबुक टटोरैं॥
हँसत लसत लाडिली लाल पीवत अधर सुधा मधु घोरैं।
श्रीनागरीदासि बलि विचित्र बिहारनिदासि रीझि तृन तोरैं॥३७॥

देखि देखि चितवत सोंही।
इत उत दृष्टि न होत निरन्तर बात कहत हँसि गोंही॥
माल सुधारत केस सँवारत चोज मनौज नये ललचोंही।
बलि श्रीनागरीदास की स्वामिनी स्यामैं दै सुख स्यामा योंही॥३८॥

खेलत लाडिली लाल रहसि रसिक वर। देखि देख दोउ दृग जोरैं मुसिक्यात मुख मोरैं भृकुटी धनुष धरें काम कटाक्षिन सर॥ गौर स्याम अंग अंग, राजैं रस भरें रंग उपजे मौज मनोज मुदित मननि हर। दासि श्रीनागरी नाहु हँसि हँसि अंस धरैं बाहु रीझि रीझि रस बस भए प्रेम परस्पर॥३९॥

खेलत चतुर चौंप चौगान।
मंदिर नवल निकुंज बिराजत नव रंग मदन मैदान॥
मन तुरंग गुन गैंद कटाक्षिन दृग टौलनि कुच ठीया परवान।
भई हाँसि रस प्रेम परस्पर रीझि सखी श्रीनागरी पर वारौं प्रान॥४०॥

रसिक रसिकनी किसोर नृतत रंग भीने। गौर सुभग स्याम तने नटवर वपु वेष बने तत्तठुमक ठुमक थेई थेई उघटत गति लीने॥ कोक संगीत सुघर गावत सुख सर्वोपर तान तिरप लेत प्यारी पहिरैं पट झीने। अधर दसन दुति प्रकास अलक झलक भ्रू विलास तार सुरन चोरत चित नवल नेह नवीने॥ रीझि रवन मोहि रहे धाय चपल चरन गहे लये लाल ललना हँसि अंस बाहु दीने। दासि श्रीनागरी नवेलि नागर मिलि करत केलि आनँद रस झेलि खेलि पुरन प्रेम प्रवीने॥४१॥

बिहरत अति आनंद भरे रसद काम प्रेम परनि परे।
नव नव रंग महल मनि मंडल कुसुमित विमल बितान तरे॥

कोमल कुसुम सहज सौरभ सुख अनंग रंग अंग अंगनि अरे ।
लोचन ललित विलोकि वदन विवि निमुष न नेह निमेष टरे ।।
मुरत न सूर सुरत सनमुख रहत अधर मधुर मधु पान करे ।
रस वस हँसि श्रीबिहारी नागर नागरीदासि के रंग भरे ।।४२।।

लाडें श्रीस्यामा स्याम सैंन, पोढे सहचरी अंक ऐंन ।
अंग अंग कसें मुख लसें ललित हँसे निरखि निरखि नेह नैंन ।।
उपजत मोज मनोज मत्त मन मधुर मधुर बोलत मृदु बैंन ।
श्रीनागरीदासि नव रंग बिहारी बिहारिनि सुरत सुख दैंन ।।४३।।

रंगे अंग संग रंगीले ।
तन में तन मिलि मनमोहन सोहन छबि सौं छैल छबीले ।।
पीयें जीयें मकरन्द स्वाद सुख अति स्वादी अरबीले ।
श्रीनागरीदास कुंजबिहारीबिहारिनि सुरत रंगभरे ढरे अनुराग रसीले ।।४४

* राग बिहागरो *

राजें रंगमहल जुगराज नैन सैंन बातें करें ।
सजें सहचरि छत्र बिचित्र बिहारी प्यारी पर चमचमात चौंर ढरें ।।
अद्भुत रूप रंग मनसिज मौजनि मननि हरें ।
सेवत श्रीनागरीदासि खवासि सुख रीझि रीझि हँसि अंक भरें ।।४५।।

रसिक रसीले रंगीले छबीले दिन दूलह-दुलहिनि दुलारी । सौरभ सेज सदन मुदित मत्त मदन जोरि विवि वदन बिगसत उजियारी ।। लीयें रुख स्वर स्वास परसें अंग अंग सुबास मौजनि हँसे हुलास बिहारिनि-बिहारी । अंग अंग सुरत रंग बिहरें प्रेम अभंग दासि श्रीनागरी अंग संग रहे नागर निहारी ।।४६।।

* राग बंगाल *

ए नव नागरी सब गुन आगरी मेरो मन मोहि लियो ।।टेक।।
रूप रंग रुचि श्रवत माधुरी निरखि छके छबि नैन ।
बचन रचन सुर सुनत श्रवन रस रसन बिसारे बैन ।।

मुकलित पुहुप पराग अंग अंग नासिका मत्त सुबास।
नव जोवन उरज मंजरी रस छाके मधुप मकरन्द हुलास ॥
मेरे तूं तन मन धन लाडिली तू मम जीवन प्रान।
श्रीनागरीदासि कहैं कुंजबिहारी बिहारिन नेह निधान ॥४७॥

* राग बसन्त *

विहरत विपिन भरत रंग ढुरकी।
हरषि गुलाल उडाइ लाडिली सम्पति कुसमाकरकी ॥
कसुंभी सारी सोधें भीनी ऊपर बंदन भुरकी।
चोली नील ललित अञ्चल चल झलक उजागर उरकी ॥
मृदुल सुहास तरल दृग कुंडल मुख अलकावलि रुरकी।
श्रीनागरीदासि केलि सुख सनि रही मैंन ललक नहिं मुरकी ॥४८॥

* राग मलार *

झूलत ललना लाल हिंडोरें राजैं सुभग स्याम तन गोरें। अंग अंग हरषत सुख वरषत मिलि मन करषत नैनन सों नैना जोरें॥ उपजत मोज मनोज चोज रति सुरत रंग रस उमँग्यो दुहुँ ओरें। श्रीनागरीदास बलि बलि विचित्र बिहारिनिदासि मिलैं सुख विहरत जुगल किसोरें ॥४९॥

पावस रितु आई सबनि के मन भाई तैसोई श्रीवृन्दावन राजैं सुखदाई। तैसीये घननि की घोर धनुक चहुँ ओर तैसेई नाचैं मोर तैसिय चात्रिक पिक बोलनि सुहाई॥ तैसीये भूमि हरी हरी डोलैं बूढे रंग भरी लता अनुराग ढरी रही छबि छाई। निरखि नागरीदासि प्रिया पिउ सुखरासि विलसत मनन हुलासि गावत मलार लाल ललना लडाई ॥५०॥

झूलत दोउ रंग हिडोरें सोभा तन साँवल गोरें।
नेह नवल निरखि नैन बैननि चित चोरें गावत सुर थोरें थोरें ॥
तान तरंग अनंगनि रोरें रीझि रंग भीजि रसिक हँसि हँसि उर जोरें।
विवस बिहारी बंद छोरें चारु चिबुक टटोरें ॥
बिलोकि प्रिया-प्रीतम वोरें नवल नाहु निहोरें।

लाडिलीलाल भरि भुज कोरें विलसत मिलि नव किसोरें ॥
निरखि नागरीदास प्रान वारत तृन तोरें ॥५१॥

* राग आसावरी *

श्री वृन्दाविपिन विनोद मोद अति रति मन भाई ।
पुलिन नलिन नव रंग सुभग जमुना फिरि आई ॥
सारस हंस चकोर मोर नृतत गति माई ।
कमल कुंज कलपद्रुम लपटि लता ललिताई ॥
चित्रित दल फल फूलनि पीत असित अरुनाई ।
विविध फूल फूले मधुरितु माधिवका मधु आई ॥
कूजित कोकिल कीर भीर भृंगनि गुंजाई ।
त्रिविध पवन मृदु गवन भवन मन अति रुचिदाई ॥
बन वीथी विचित्र सुरंग अनंग चित्र चतुराई ।
रंग महल मनिमैं प्रतिबिंबित धर झाँई ॥
कुसुमित विमल बितान लाल मुकतन छबि छाई ।
अद्भुत सखी सुख दम्पति सम्पति देखि सिहाई ॥
रतन खचित सारोट सेज्या सौरभ सरसाई ।
बैठे निकुंज झरोखनि विचित्र बनै बनराई ॥
छत्र चँवर जुगराज सजैं सहचरि सुखदाई ।
ललितादिक झूंमि झुंडनि झूँमक दै दुलराई ॥
एक अरगजा सरस सुगंध अबीर उडावत आई ।
एक बाजे विविध बजावत गावत सुरनि सुहाई ॥
एक नृत्त गीत सांगीत उघटत सब्द सुनाई ।
तान तिरप में मान जान अतिसै सुघराई ॥
रुख लै स्वास सुरन सेवत सखी करत बधाई ।
उडत पराग रह्यौ रमि राग सुरंग बढाई ॥
करत कुंज कौतूहल प्रीतम प्रियहि रिझाई ।

तब कहत प्रियाजू सौं लाल ललित मुख करत बडाई ॥
रीझि रसिक बीरी देत बसन भूषन पहराई ।
दोउ गुन रस रूप अनूप सकल अंग सुंदरताई ॥
प्रतिबिंबित विवि वदन विलोकत अति चपलाई ।
अंग अंग पुलक ललक मन लालन लेत जँभाई ॥
अति उदार सुकुंवार त्रिषित आतुर अकुलाई ।
तब जानि विवस मन मोहन मानिनि मृदु मुसिकाई ॥
तब हँसि कसि कामिनि कंत लटकि उर कंठ लगाई ।
दरस परस रस सरस अधरसुधा मधु प्याई ॥
मगन मन मुदित छबीली छबीले लाल लडाई ।
गए चिकुर चन्द्रिका छूटि कुसुम मनो मधुप उडाई ॥
कहुँ अंजन कहु बंदन चंदन चित्र बनाई ।
इहि विधि खेलें फागु सरस अनुराग सदाई ॥
न जानत कुंवरि किसोर कित नसि निसि जाई ।
राग रंग अंग संग बिहरत अति सुख पाई ॥
श्रीबिहारीबिहारिनिदासि सुखद संग सुरति सुहाई ।
श्रीनागरीदासि निरखि छबि तृन तोरति बलि जाई ॥५२॥

चलि सखि देखन जाँहि कौतिक आज भलौ री ।
अपनो अपनो सोंजि साजि सब बेगि चलौ री ॥
सुखद तरुनिजा-कूल फूल फूले कमल कली री ।
तहाँ सारस हंस चकोर मोर झूमें आनि अली री ॥
फूली ललित लता द्रुमबेली सोभा अमित बढी री ।
कूजित कोकिल कीर कुंज अटाँनि चढी री ॥
अलि कुल कुसुम समूह सरस वितांन तनें री ।
देखि तहाँ खेलत नवल नवेलि केलि कल हरत मनें री ॥
बाजे बाजत रंग संच सुर तार बनें री ।

वर किन्नरि कठतार बीन डफ सरस घनें री ॥
गावत फाग सुहाग राग रस रंग पनें री।
सहेलिन कौ अनुराग भाग कवि कौन गनें री ॥
मुदित प्रिया-पिय अंग अनंग विनोद करें री।
सोंधें सुरंग अबीर अरगजा निसंक भरें री ॥
गौरस्याम अभिराम बसन सुरंग बनें री।
सारी सुमन सुवास पीत पट लसत तनें री ॥
दोउ राजत अमित अपार सुसार विहार करें री।
उदित मदन मद मोद भुजा हँसि अंस धरें री ॥
रति दांन अधर रस पान विलसत अंक भरें री।
विवि विधु बदन निहारि नैंन रस रंग ढरें री ॥
बाढचौ रंग अपार हार मुक्ता-लर टूटी।
कंचुकी कसन सुदेस कुसुम अलकावलि छूटी ॥
अति माधुर्य्य सनेह परस्पर विवस भए री।
दोउ सुरति श्रमित अति जांन सहचरी अंक लए री ॥
यह फाग नयो अनुराग सुहाग कह्यौ न परै री।
श्रीवृन्दाविपुन विनोद कौंन सुख-सिंधु तरै री ॥
सेवत सुख रुख जानि नए सिंगार ठये री।
बलि-बलि नागरीदासि की स्वामिनि नेह नये री ॥५३॥

* राग सारङ्ग *

श्रीगुरु कृपा जथा मति वरनों श्रीवृन्दावन अति राजैं री।
आस पास जमुना रस झूंमी सुखद रमित अति भ्राजैं री ॥
सखी मृदुल सुवास पुलिन कन झलकत विमल कमल अति फूले री।
नील अरुन सित पीत अधिक छबि सौरभ मनमथ मूले री ॥
सारस हंस चकोर कुलाहल कूजित कल सुख भारी री।
अति रस मत्त चलत मधुरी गति लटकनि की छबि न्यारी री ॥

कुंज सघन घन नव नाँनाँ रंग फूली हित रति सूचे री।
सम्पति सुख सब सोंज सजैं यौं दम्पति अति मन रूचे री ।।
अद्भुत सहज विविध निरमित धर मणिमै मृदु अति सोहै री।
नव कर्पूर रमित रज राजत वरने ऐसौ कवि कोहै री ।।
सुंदर सुभग सरोवर नाँनाँ सहज रमी सुखदाई री।
मनसिज रंग समूहन कौतिक रही जित तित छवि छाई री ।।
नृतत मत्त मयूरनि झुंडनि बोलत मधुरी बानी री।
कोकिल कल सुर कीर भोर अति कूजित काम कहानी री ।।
ललित लता नाँनाँ रंग फूली माधुरी कुंद चंबेली री।
चंपक लता और बकुल केंवरौ केतुकी कदम्ब सहेली री ।।
सुनि-जूथिका रूप मंजुरो कुंजें बेलि निवारी री।
दौंना चंपौ गुलाब जुही अति फूली सखी फुलवारी री ।।
पारिजात केसरि जु कलपद्रुम फलित लालमनि सोहै री।
सौरभ सरस गुच्छ मुकतन के झलकत छबि मन मोहै री ।।
अति रस मत्त सुजस अलि गुंजै स्याम अरुन सित पीरे री।
नव पराग अनुराग त्रिविधि बहैं सीतल मन्द समीरे री ।।
छै रितु बसंत सदा वृन्दावन सेवत सुख मन लीने री।
अपने अपने भाइ भजत सब सावधान चित दीने री ।।
नारिकेलि नवनूत सदा फल नीबू फलित सुपारी री।
ललित लवंग लता जु इलाइचि दारचौ दाख छुहारी री ।।
द्वै द्वै रूप किये सेवत सखी नाना रति सुख साजैं री।
मन्दिर नवलनि मनिमै मंडल अनंग रंग रति काजैं री ।।
सौरभ मृदु सेज्या बहु रंगनि रचि रचि सहज बनाई री।
विहरत नित नवल दोऊ प्रीतम कुंवरि कुंवर सुखदाई री ।।
नव नव रंग नए नित साजैं खेलत छिन छिन भारी री।
जो इच्छा मन करत सोई अब जाचै श्रीकुंजबिहारी री ।।

कबहुँक रंग हिंडोरैं झूलत गौर स्याम तन राजैं री।
वर किन्नरि कठतार बीन डफ रहत सबै सुख साजैं री।।
गावत चैत परस्पर झुंडनि रंग अनंग बढावैं री।
झूलत फूलत विपुल विनोदनि रीझि दुहुँन पैं पावैं री।।
कबहुँक कुंज कुंज प्रति डोलैं बोलैं हँसि मधुरी बानी री।
अरुन पीतपट लसत सुभग तन देत सकल सुखदानी री।।
कबहुँक दृष्टि वचाइ सबन तैं रंग महल दोउ खेलैं री।
दरस परस सुख केलि कलोलनि राग रंग रस झेलैं री।।
बीरी परस्पर खात खवावत मधुर मधुर मृदु बोलैं री।
नैन सौं नैन मिलाइ छन्द बन्द कर कंचुरी बन्द खोलैं री।।
परिरम्भन चुंबन जु अधर मधु पीवत त्रिपति न मानैं री।
प्रमुदित मत्त रहत जु निरन्तर निसि दिन जात न जानैं री।।
अंगराग अनुराग रँगे दोउ सुरत विवस जब जानैं री।
श्रीहरिदासी बिपुल बिहारिनिदासि दोउ उर आनैं री।।
फेरि सिंगार हार रति साजैं यौं नित नेह बढावैं री।
बलि बलि नागरीदास दरसि सुख प्रमुदित प्रेम लडावैं री।।५४।।

मेरे लाल लडैती रंग भरे मिलि खेलत छिन छिन होरी।
सुरति रंग अंग अंग छिरकत नित नवल छबीली जोरी।।
नव गुन रस रूप विराजहीं कोक कला अति जान।
तान तरंगनि मन हरैं मिलि गावत रसिक निधान।।
प्रेम उमँगि चित चौंप सौं चितवत विवि मुख सुखरासि।
कर कपोल परसें हसें अंग अंग अनंग प्रकासि।।
पुलकि पुलकि प्रीतम-प्यारी लीने उर सौं उर लाइ।
महामाधुरी पान कै उपजत नव नव भाइ।।
नवल निसंक अंक भरैं मन मगन भए चित चाइ।
रस सागर नागर नवल क्रीडत अति सुख पाइ।।

तान तरंग मन भाँवती छबि उपजत रति दुहुँ कोद।
रंग भीने लीने सहचरी संग बढे विचित्र विनोद ॥
नैन मैंन रंग रगमगे मृदु बैन सिथिल सुकुंवार।
श्रीविचित्र बिहारनिदासि के उर आनन्द करत विहार ॥
सरस सुहागिनि सहचरी नागरी नवल किसोर।
नित नव निकुंज सुख पुंज में मिलि बिलसत निस भोर ॥५५॥

महामत्त मन मोहनी-मोहन खेलत हैं रस होरी हो।
प्रेम सहित सेवत सब सम्पति लिए रुख सुख सोई सोरी हो ॥
सखी बाजे विविध बजावैं मधुरे सुर गावैं सहचरि चहुँ ओरी हो।
सुक पिक भृंगनि राग रह्यौ रमि सुर देत हैं मोरा मोरी हो ॥
मोज मनोजनि चोज लाडिली लाल लेत चितै चित चोरी हो।
सौरभ सरस अंग अंग अरगजा छिरकत छबि स्यामा गोरी हो ॥
छन्द वन्द तकत छबीले इत भामिनि भेद भृकुटी भरि भोरी हो।
सुर-स्वासनि कसत हँसत कहि कहि रीझि रीझि कहत हो हो हीरी हो ॥
अंग संग सुरति हिंडोरैं झूलत फूलत उर कर चिबुक टटोरी हो।
अद्भुत रंग अनंग प्रेम रस विहरत कुंवरि किसोरी हो ॥
दोऊ लटपटात घूँमत मद झूमत नैननि नेह नयो री हो।
मधु मकरन्द दुलहिनीदूलहु पीवत मुदित मधु घोरी हो ॥
फूले वदन कमल लोचन मानों मधुप पराग प्रेम रंग रोरी हो।
रगमगे बसन कसन कंचुकी छबि बिथुरी अलक कच डोरी हो ॥
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि सुखद रति वरनैं ऐसो कवि को री हो।
रहैं मगन दासि श्रीनागरी-नागर नव अविचल जोरी हो ॥५६॥

झूलत फूलत लाडिले मिलि अंग संग सुरति हिंडोरें।
आभूषन बाजे बाजहीं मधुर मधुर सुर थोरें ॥
सप्त सुरनि राग रमि रह्यौ गावैं हँसे संग सहचरि चहुँ ओरें।
मदन मुदित मन माँनिनी नव नेह सौं नवल निहोरें ॥

वचन रचन सुनि लाल के प्यारी मुसकति हैं मुख मोरें ।
दूलह दुलहिनि लाडिली नव रंग अनंगनि रोरें ॥
विवि विधु वदन विलोकही रंगे लोचन ललित चकोरें ।
मैंन ललक पलक न लगैं यों हँसि-हँसि चिबुक टटोरें ॥
हाव भाव चित चौंप सौं कंचुकी छन्द बन्द छबि छोरें ।
छबि सों छैल छबि छिरकहीं अंग अरगजा रंग घोरैं ॥
मोज मनोजनि चोज सों छुटैं भृकुटी कटौक्षि झकोरें ।
रीझि रसिक रस बस भए सौरभ रस सिंधु हिलोरें ॥
अधरसुधा मधु माधुरी पीयें जीयें मुखसों मुख जोरें ।
फूले अलि पराग अनुराग सों रति रगमगे हित चित चोरें ॥
यों विहरत नवल निकुंज में राजें सुभग साँवल तन गोरें ।
श्रीबिहारिनिदासि लडावहीं भई विपुल प्रेम मन भोरें ॥
जै जै श्री हरिदास प्रताप तें सुख लह्यौ सरस सिरमोरें ।
नागरिदास बलि बलि हौं तुम नित नवल किसोरें ॥५७॥

* राग जैतश्री *

मेरी सहज रंगीली नागरी राजति स्याम संग गोरी हो ।
दिन दूलह दुलहिन लाडिली अति विचित्र बनी यह जोरी हो ॥
नव निकुंज सुख पुंज में प्यारी उबटि वदन सिरखोरी हो ।
सारी सुरंग स्याम कंचुकी गुहि कबरी कुसुम कचडोरी हो ॥
तब चित्र चतुर नख सिख कियैं दैं अञ्जन मृगमद रोरी हो ।
खुभी पोति चारि चारि चुरी पग नूपुन की धुनि थोरी हो ॥
सुंदरवर कर दर्पन लियैं मुख निरखत कुंवरि किसोरी हो ।
जाचत रति चित चौंप सौं नव नागरी नाहु निहोरी हो ॥
प्यारी नख सिख सुंदरि मोहनी मृदु मुसकत हैं मुख मोरी हो ।
श्रवत सुधा ससि माधुरी प्रिय प्रीतम दृष्टि चकोरी हो ॥
अंग अंग अनंग उदित भए दै परिरम्भन रस रोरी हो ।

सुरत रंग तन मन रँगे गुन गूढ ग्रन्थि हँसि छोरी हो ।।
दोउ उमँगि उमँगि रस विलसहीं घन दामिनि भामिनि भोरी हो ।
सब सम्पति को सुख सूचहीं यों खेलत हैं रस होरी हो ।।
श्रीबिहारी बिहारिनिदासि को सुख वरनें को मति थोरी हो ।
बलि बलि नागरीदास दरसि सुखै रीझि वारत मन त्रन तोरी हो ।।५८।।

मेरी रसिक रंगीली नागरी मिलि खेलत पिय संग होरी हो ।
सखी नव निकुंज सुख पुंज में अति राजत अद्‌भुत जोरी हो ।।
अरुन पीत पट कंचुकी तन नृतत अति रंग साजैं ।
सखी भूषन रव सुर सञ्च सौं मानों मृदंग ताल डफ बाजैं ।।
अलि आनंद विराजहीं नव कोकिल कल सुर गावैं ।
सखी द्रुमबेली फूली लता नव पुहुप पराग उडावैं ।।
सौरभ सरस पवन बहै नवरितु बसन्त सुखकारी ।
सखी अति आनंद उमँगि ढरैं रस बरसत कुंजबिहारी ।।
अंग अंग अरगजा रंग छिरकहीं नव नेह नयो अनुरागो ।
सखी मुदित परस्पर खेलहीं अति सुरति रसीली फागो ।।
हाव भाव भ्रू-भंगनी अति चौंप बढी चित चारौ ।
वदन विलोकत माधुरी मची मौज मनोजनि मारौ ।।
कर कमलनि परसैं हँसैं उर आननि अलक सँवारौ ।
जुगल नवल रस पान कैं भये विवस वसन न सँभारौ ।।
सुरत रंग अंग रगमगे अति भ्राजत कुंवरि किसोरी ।
संग सुखदाइक सहचरी रीझि रीझि कहत हो हो होरी ।।
ए रसमत्त मगन रहैं नित नौतन नित्य त्रिहारौ ।
छिन छिन प्रति रति विलसहीं मृदु रस जस करत अहारौ ।।
जै जै श्री हरिदास प्रताप तें बलि बिपुल बिहारनिदासि ।
बलि नागरीदासि दरसि सुखै सेवै सन्तत प्रेम प्रकासि ।।५९।।

स्यामा प्यारी कुंजबिहारी राजत अद्‌भुत जोरी हो ।

अति रसमत्त परस्पर बिहरत खेलत हैं रस होरी हो ।।
सोंधें सरस अबीर अरगजा छिरकत कुंवरि किसोरी हो ।
हाव भाव चित चाव बढ्यौ अति बूका बंदन रोरी हो ।।
रत्न खचित पिचकारी हाथनि भरि लई मृगमद रोरी हो ।
वे उनके वे उनके ताकत मुसकत हैं मुख मोरी हो ।।
कोउ करतार कोउ कर किन्नरि सञ्च सुरनि गति थोरी हो ।
बीना मुरज पखावज बाजत विविध डफनि की जोरी हो ।।
कोकिल कीर अलापनि में सुरताल देत गुन गोरी हो ।
लेत अतीत अनागत नागर निर्त करत मुख मोरी हो ।।
राग रंग सब को मन करषत भई अविचल मति भोरी हो ।
तन मन प्रान करों न्यौंछावरि या छबि पर तृन तोरी हो ।।
श्रीहरिदासी इष्ट उपासी या सुख में मति मोरी हो ।
श्रीनागरीदास की दासि परम रुचि जैसें चंद चकोरी हो ।।६०।।

※ राग धनाश्री ※

सब सखी मिलि झूमक देहिं मेरो लाल बिहारी मन हरयौ हो ।।टेक।।
श्रीहरिदासि सहज रति वरनौं श्रीवृन्दावन अति रम्य ।
श्रीबिपुलबिहारनिदासि कृपा बिनु सबके मननि अगम्य ।।
कमल कुमुद फूले जल थल सखी सुखद तरुनिजा कूल ।
सारस हंस चकोर ललित गति लटकि चलत मन फूल ।।
नव निकुंज सुख पुंज मनोहर उदित कमल की कांति ।
नृत्य करत सिखीकुल फूली कौतिक नाँनाँ भाँति ।।
द्रुमबेली फूली लता नितही रितु सरद बसन्त ।
अद्‌भुत भूमि रंग राजैं अति सोभा सुख ही न अन्त ।।
रज कर्पूर सुगंध त्रिविध बहै सीतल मन्द समीर ।
अति रसमत्त मुदित कल कूजित सुक पिक भृंगनि भीर ।।
सेवत काम अनन्त कला नित कुंज महल आगार ।

लाल रतन मनि मुक्ता झूमत रचित वितान अपार ।।
कनक खचित मनि मंडल पर राजैं कुंवरि संग सुकुंवार ।
मृदु मनि स्याम तमाल लता मानों कनक कुसुम उरहार ।।
ललितादिक सखी आईं झूमि सब आवज साजि मृदंग ।
एक लियें करताल झाँझि डफ वर बाँसुरी मुखचंग ।।
एकनि कर कठतार अधोटी मुरज रबाब उपंग ।
एक लियें किन्नरि कर बीना बजावति गावत तान तरंग ।।
एक अरगजा कनक कलस भरि सौंधैं सरस रसाल ।
एकनि कर पिचकाई एकनि कर बूकाबंदन अरुन गुलाल ।।
एक लियें बीरी कर कंदुक और कुसुमनि के हार ।
झूमत सुघर सुनावति चाचरि सप्त सञ्च सुरतार ।।
प्यारी हँसि मोहन सों बोली आवो जू मिलि खेलें फाग ।
सुखद वचन सुनि स्याम सहेलिन बाढ़्यौ अति अनुराग ।।
ललिता ले पिचकाई दीनी स्यामा जू कौ आइ ।
छिरकत भरत भाँवते पिय कौं रहसि बहँसि हँसि जाइ ।।
मोहन भरि पिचकाई ले कर छलबल तकत उपाउ ।
नागरि नवल प्रवीन प्रिया ये क्यौंहू न पावत दाउ ।।
दृष्टि बचाइ अलि आगे लै बूका बंदन अरुन गुलाल ।
आय अचानक भरि प्यारी हँसि होरी है बोलत लाल ।।
कामिनी कटि पीतांबर कर गहि कहत वचन मुसिकाइ ।
बहुरि भरो चपल नट नागर नख सिख छबि रही छाइ ।।
भूषन वसन सबै सनें कुमकुम सौंधौ गुलाल ।
निरखि हरखि सुख प्रेम उमगि गुन गावत सखी नव बाल ।।
गौर स्याम तन रुचिर मनोहर चितवत विवि मुख ओर ।
करत सुधा रस पान परस्पर लोचन त्रिषित चकोर ।।
दरस परस रस मत्त भये दोउ बिलसत हँसत अनंग ।

अंग अंग सुख बरषत हरषत खेलत भरि रस रंग ।।
राग रंग रस सुख बाढ़चौ अति सोभा सिंधु अपार।
बिपुल प्रेम अनुराग नवल दोउ करत बिहार अहार ।।
श्रीवृन्दाविपिन विनोद करत नित छिन छिन प्रति सुखरासि ।
काम केलि माधुर्य प्रेम पर बलि बलि नागरीदासि ।।६१।।

* राग गौरी *

लाल मन मोहनी हो ।
काम कुंज कल कौतिकी मनमोहनी हो मनमोहन मन हरि लेत।
अद्भुत रूप अनूपम छबि प्यारी पियहि सहज सुख देत।।लाल०।।टेक।।
केस कुसुम कबरी लसैं मोतिन मंग अभंग।
अलक झलक श्रवननि खुभी बैंदी विचित्र सुरंग ।।लाल०।।
भ्रू भंग तरंग अनंग नचै ललित गति लोचन लोल ।
नासिका नथ निरखि कैं ललित लाल लिये मोल ।। ,,
अरुन अधर दुति दसन की चिबुक चारु स्याम बिंदु ।
झलक-कपोलनि छबि छई वारों कोटि रवि इन्दु ।। ,,
चित्रित चोली उर लसैं कण्ठ जगमगति पोति।
मृदु मनि लाल गुलाल की द्वै लर मोतिन जोति ।। ,,
बाहु विचित्र वलय लसैं कृसि कटि किंकिनि जाल ।
पग नूपुर मनि चूरा लसैं गति मोहत मत्त मराल ।। ,,
सारी सुवन लँहगा लसै स्याम सुभग गोरे गात ।
निरखि नव नैंन सिरात स्याम खेलन कौं अकुलात ।। ,,
निरखि हरखि वरषत सुखै हँसि कसि काम किसोर ।
लाल उदित मदन मन मुदित ह्वै छुवै अंचल छबि छोर ।। ,,
हँसत लसत लाल रुख लियें कहत मधुर मृदु बैन ।
बहँसि रहसि रस रंग बढचौ सैंन मैंन सुख चैंन ।। ,,
चारु चितै चित वित हरैं मिलि अंग अंग सलोल ।

विहरत भुज डाँडी गहैं झूलैं सुरति रंग हिंडोल ।।लाल०।।
सौरभ सरस अंग अरगजा छिरकि मुख उरज सरोज ।
श्रम जलकन छबि छीटैं फबी अंग मोज मनोजनि चोज ।।लाल०।।
अंग अंग रति प्रेम सौं मन तरंग झोंटा देति ।
रीझि बसन भूषन अलकैं छुटी वारों मोती कुसुम समेति ।। ,,
उदार अधर मधु माधुरी प्याइ पीवत कुंवरि किसोर ।
रस वस मत्त मगन भए नहिं जानत निसि भोर ।। ,,
कपोल पलक रँगे पीक सों अधर अंजन अनुराग ।
सुरत खेल अति रंग रह्यौ सरस रस फाग सुहाग ।। ,,
सेवत सुख रुख सहचरी ललित जै श्रीहरिदासि ।
श्रीबिहारीबिहारिनीदासि अँग सँग फूलत बलि नागरीदासि ,, ।।६२।।

स्यामा नागरी प्रवीन ।
सकल गुन निधान राजैं नागर नेह नवीन ।।
नख सिख छबि रूप की रासि सोहति मोतिन मंग ।
अलक झलक देखत छबि मोहे लाल अनंग ।।
कबरी कुसुम ग्रन्थित कच तिलक बिंदुली भाल ।
बंक भृकुटी मोहत मन चपल नैंन बिसाल ।।
अति दुति ताटंकनि छबि भ्राजत लोल कपोल ।
अधर दसन मुसिकनि सखी मधुरें मधुरें बोल ।।
सुभग नासा सोहति अति बेसरि मनि लाल ।
मुक्ता बहु भाँति लसे चिबुक बिंदु रसाल ।।
कंठ पदिक छुटी लरैं मिहि जंगाली पोति ।
हेम जटित चौकी छबि जगमगें अति जोति ।।
कुच जुग स्याम कंचुकी यौं राजत मोतिन हार ।
उर अम्बर उडगन मनों कीनों है उदगार ।।
भुज मृनाल जुगल वलय झाबनि फोंदा स्याम सुढार ।

पुहुप सुरंग फूले मनौं मदन विटप डार ।।
त्रिवली नाभि कटि नितम्ब किंकिनि सुरतार ।
करभ जंघ जेहरि छबि नूपुर झनकार ।।
जुगल कमल अरुन चरन राजैं बहु भाँति ।
नख मनि गन देखत छबि मोहन मन साँति ।।
पचरंग ढिग अरुन सारी लहँगा पीत दुकूल ।
गोरे तन भोरे मन देखत लालहि फूल ।।
निरखत छबि अंग अंग मोहे स्याम प्रवीन ।
चकचौंधी लागी नैंननि लाल भए आधीन ।।
कुंज कुंज डोलनि बहु लीनें सखी संग ।
मुदित मोर नृतत देखि दामिनि घन रंग ।।
दम्पति रति सोहत अति विलसत सुखसार ।
श्रीललितादिक देखत दिन सर्वसु प्रान अधार ।।
जै श्रीवरु बिहारिनिदास कृपा ते सेऊँ सुख रासि ।
छिनु छिनु प्रति बलि बलि नवल नागरीदासि ।।६३।।

रूप अनूपम मोहनी रंग राचे लाल ।।
मोहे कुंवर किसोर लाड गहेलरी रंग राचे लाल ।
बदन सुधा ससि श्रवत री पिवत नैंन चकोर रंग राचे लाल ।।
नैंन कमल मुख कमल कें चरन कमल कर लाल ।
तन मन फूले कमल री मोहन मुदित मराल ।।
हासि कुसुम जोवन लता अलि आसक्त तमाल ।
बचन रचन सुनि सब्द के मृग मन मोहे रसाल ।।
ये घन तुम दुति दाँमिनी मिलि वरषहु प्रेम सुहाग ।
आलस क्यों बलि कीजिये हिलि मिलि खेलौ फाग ।।
सुनत भयो चित-चाउरी सुघर सिरोमनि जाँन ।
सहचरि सश्च सुरनि लियें करत मधुर कल गाँन ।।

श्रीकुंजबिहारी खेलहीं प्रेम भरे रस रंग।
बूका बंदन मेलहीं कुमकुम कुसुम सुरंग॥
मदन मुदित अंग अंग री करत सुखद कल केलि।
उर कर वर परसैं हँसैं जुगल नवल रस झेलि॥
पियत सुधाधर माधुरी चित्रित पीक कपोल।
अंग अंग अनुराग री कहत मधुर मृदु बोल॥
राग रंग अति रँग रह्यौ श्रीहरिदासि विनोद।
विचित्र बिहारिनिदासि री बिपुल बढावत मोद॥
छिनु छिनु प्रति रति साजहीं कुंज-सदन सुख रासि।
मधुर प्रेम रस विलसहीं बलि बलि नागरीदासि॥६४॥

खेलत आजु रसिक बर नवल कामिनी कन्त।
नव बन नव निकुंज नित्य नव आनन्द हि न अन्त॥
नव द्रुम बेलि केलि नव सुखद तरनिजा कूल।
तहाँ भृंग विहँग कुलाहल मत्त मुदित मन फूल॥
पुहुप पराग पवन बहै बिलसत नाना रंग।
नव अनुराग नई रति नवल सहचरी संग॥
सञ्च सप्त मधुरे सुर गावत सरस धमारि।
सुनत श्रवन मन हरषित नेह नवल सुकुंवारि॥
गौर स्याम रति सागर नागर नवल किसोर।
मौज मनोज मनहीं मन उठत तरंग दुहुँ वोर॥
खेलत अति रस मेलत रंग भरे सुख रासि।
मदन मुदित दोऊ मिलि करत परस्पर हासि॥
भृकुटि कटाक्षनि चितवत प्रिया अंचल की कोर।
श्रवत सुधा ससि माधुरी मोहन नैंन चकोर॥
रोंम हरष पुलकावली विहरत प्रेम गम्भीर।
गावत रीझि रिझावत सुघर सुरति मन धीर॥

कबरी कुसुम केस कटि कसन कंचुकी छूटि।
सहज सुधा सुंदरवर पीवत अधर मधुर रस घूँटि ।।
अंजन अधर पीक कपोलनि नख सिख चित्र बनाइ।
अंग अरगजा श्रमजल मानों छिरकत छबि रही छाइ।।
रहसि रवन तन मन मिलि भए मगन मद मोद
तब श्रीहरिदासी सहचरी धाय धरे दोउ गोद ।।
जैश्रीबिपुल बिहारिनिदासि दरसि सेवत नव नव भाइ।
श्रीनागरीदासि निरखि दम्पति छबि तृन तोरत बलिजाइ।।६५

हो हो होरी खेलें री मोहन अपनी प्रान प्रिया संग सोहन।
गावत ताँन तरंग परस्पर हँसत भेद भरि भोहन ।।
भरि सोंधें सुरंग अबीर रंग रस बरषत रीझि रिझोहन।
श्रीनागरीदास रस मत्त बिहारी बिहारनि मुख छबि जोहन ।।६६।।

* राग बिहागरो *

बिहरैं श्रीस्यामा स्याम उदित अनंगे। सौरभ सदन सुख सेज सुरंगे ।।
गौर साँवल झलमलैं अंग अंगे। मौजनि मनोज मनौं नृतत सुधंगे ।।
लटकति ग्रीवाँ गति भेद भ्रूभंगे। उघटत सब्द ग्रिग्रि ताता थुंग थुंगे ।।
बाजत बलय मानौं मधुर मृदंगे। कुंणित किंकनी सुर नूपुर उपंगें ।।
सादीयैसहजादीयै सुंदरि सोहै सीस मंगे।मोहैहैं निरखि मोहन नासिका लवंगे।।
प्रतिबिंबित विवि बदन दुरंगे। लगत न पलक नैना नेह भये नंगे ।।
सोभित सुभट पट नट नवरंगे। काम कटाक्षिन बान धनुष भ्रूभंगे ।।
अधर मधुर जीति प्रीति रति रंगे। मान न विरह भ्रम तहाँ न प्रसंगे ।।
जचि रचि सचि सुख ललनु त्रिभंगे। प्रेम प्रवीन प्यारी हँसि कसि रंगे।।
रोंम रोंमनि रमन रमे आनंद उतंगे। रस बस प्यारी प्रीतम लेत उछंगे।।
सुरत संगम सिंधु प्रेम की तरंगे। तन मन मगन चतुर चित चंगे ।।
विटप लपटी लता कूजे ज्यौं विहंगे। पुहुप पराग अलि अंगनि आलिंगे।।
विपिन विनोद नित यहै हौं जाँचिगे। रसिकअनन्य श्रीहरिदासी सुखसंगे।।

विचित्रबिहारीबिहारिनिदासिसबअंगे। सेवैं श्रीनागरिदासि प्रेम अभंगे।।६७

※ राग मारू ※

जै श्रीवृन्दावन विराजैं। जहाँ नित बिहरैं रसिक राइ ।।टेक।।
झिलिमिलि झिलिमिल आस पास जमुना अति सोहै।
मिलि खेलैं दोउ जला थला देखि मेरो मन मोहै।।
सौरभ कन पुलिन रंग विमल कमल फूले।
सारस हंस चकोर मोर मृदु कुजित कल कूले।।
कुसुमित कल कुंजलता विविध रंग फूली।
मत्त मुदित गुञ्जति अलि अवली फिरैं भूली।।
बहै सीतल मन्द सुगन्ध पवन सुक पिक सुर गावैं।
सुनि श्रवन रवनी रवन मदन मोद बढावैं।।
बनी वीथी विचित्र चित्रित धर प्रतिबिंबित झाँई।
मंडल मनिमय मौज महल सुकतन छबि छाई।।
पुहुप वितानिनि झलमलै झरोखनि सहचरी दुलरावैं।
अति अद्भुत सुख सेज सरस लाडिली लाल लडावैं।।
गौर सुभग। साँवल सखी अंग अंगनि राजैं।
पहिरैं पट पीत अरुन मौजनि छबि छाजैं।।
विलोकत विवि वदननि छबि हँसि हँसि उर लागैं।
वचन रचन कहैं प्रिया जू सों लाल यहै रति माँगैं।।
मंद मंद मधुरे मधुरे सप्त सुरनि गावैं।
ताँन तरंग भृकुटी भंग अंग अनंग नचावैं।।
दोउ रूप उदित प्रेम मुदित मत्त मननि करषैं।
गुन रीझि सुरति अंग संग हरखि सुखनि बरसैं।।
श्रीकुंजबिहारी बिहारनिदासि सुखद सन्तत करैं खवासी।
नव नव रति छिन छिन प्रति सुख निरखि नागरीदासि ।।६८।।

प्यारी सहज मनै हर लेत, तूं मन मोहनी री मोहन हेत ।।

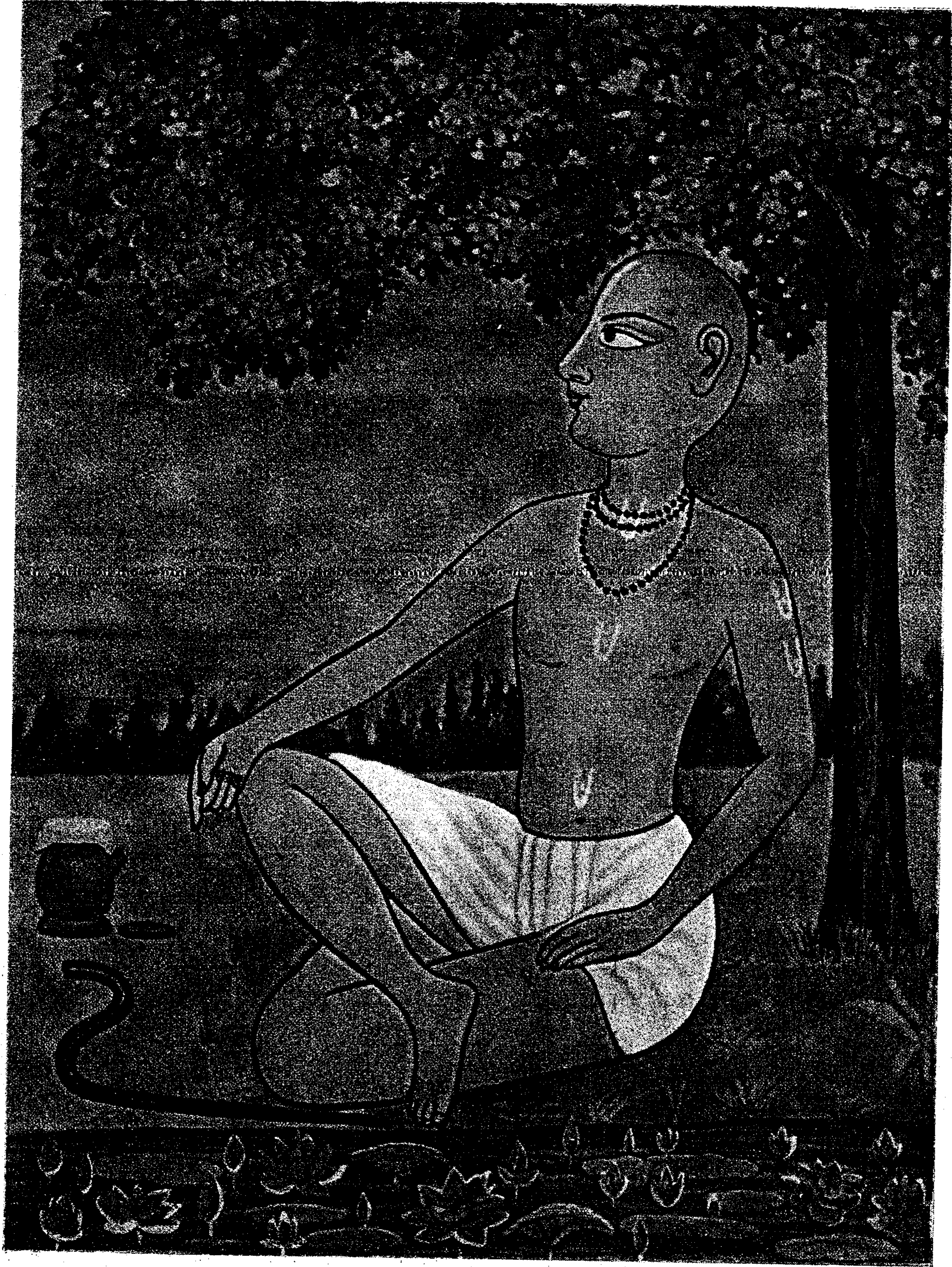
तुम अति प्रेम प्रवीन हो प्यारी सुघर सिरोमनि जान।
मन क्रम वचन विलासनी मेरे तुम बिन गति नहिं आन ।।
तूं तन तूं मन में बसी तूं मम जीवनि प्रान।
तूं सरबसु धन मानिनी दे मोहि मान रति दान ।।
भामिनि तुव भुव क्षेप हो मोपै सह्यौ न जाय।
अञ्चल पल अलकावलि के अन्तर मन अकुलाय ।।
मो मन ऐसी होत है प्यारी तो तन में मिलि जाउँ।
तुव मुखचन्द चकोर लों नैना पानु करत न अघाउँ ।।
श्रवन सुजस रसना रसों तुव करत रहौं गुन गान।
जाचत ज्यौं जल मीन लौं तुव दरस परस अघ्रान ।।
तुव लावनि गुन निधि आगरी अब जिन करहु निदान।
पूरन प्रेम प्रकासिनी दै मोहि अधर मधु पान ।।
तब ललित वचन सुनि स्याम के प्यारी नैननि में मुसिकाय।
व्याकुल विरह विलोकि कैं प्यारी लिये हैं लाल उर लाय ।।
मैं मानु कियो तुम सों कबै प्यारे कलपि कलपि कित लेत।
मेरे प्रीतम प्रान हो पिय जीवनि तुमहिं समेत ।।
लटकि लगी उर स्याम कै हुलसति हंसति उदार।
कोक निपुन नव नागरी बरवस कीनैं सुकुंवार ।।
भये मदन मत्त रस माधुरी सुख वरषत सुख न अघाइ।
निरखि हरषि रस फूलहीं श्रीललितादिक सुख पाइ ।।
सुरति रंग में रंग रह्यौ कुंज सदन सुख रासि।
श्रीबिपुल बिहारिनिदासि पर बलि नवल नागरीदासि ।।६९।।

* राग मलार *

अपनी जू नवल प्रिया संग नवल हिंडोरें लाल झूलत हैं ।।टेक।।
श्रीवृन्दावन घन सहज सोभा आनंद सिंधु न थोर।
जहाँ सुभग जमुना कूल कमल जु सारस हंस चकोर ।।

बोलत मधुर सुहावने अति मधुप कलरव घोर।
नव कुंज कोकिल कीर चातृक गावत जस चहुँ ओर ॥
तैंसिय पावस रितु भली घन मन्द गरजन घोर।
तैंसिय दामिनि धनक चहुँ दिसि बोलत मीरी मोर ॥
तैंसिय भूमि सुहावनी सखी हरित नाँनाँ भाँति।
रही अति छबि छाइ जित तित चन्द्र बधुन की पाँति ॥
नव लता ललित तमाल पल्लव विविधि नाँनाँ जाति।
अति प्रेम भरि अनुराग झूँमी फूल फल बहु काँति ॥
रचित कुसुम वितान नाँनाँ बहत त्रिविध समीर।
निरखि सम्पति विवस ह्वै मन बढत मनसिज पीर ॥
तहाँ रच्यौ रंग हिंडोरनाँ सखी सहज चंपक कुंज।
नव केलि नाँनाँ सुखद सम्पति सरस सौरभ पुंज ॥
रमकि झूलें नवल दोउ गौर साँवल गात।
पीत पट छबि सुरंग सारी अंचल धुजा फहरात ॥
सप्त सुर मिलि मधुर दोउ करत हैं गुन गान।
तैंसिये सहचरि संग गावत संच सुर बंधान ॥
राग रागिनि मिलै प्यारी लेत विकट सुर तान।
सुनि थकित नागर चरन गहि सखी रीझि वारत प्रान ॥
बढत अति अनुराग छिन छिन करत नव नित रंग।
ए सुरत सागर मधुर जोरी सहज संग अभंग ॥
तैंसिय सुखद विहार स्वामिनि दासि नागरि संग।
तोरि त्रिन बलि जात छबि पर वारत कोटि अनंग ॥७०॥

॥ इति श्रीनागरीदेवजू की बानी सम्पूर्ण ॥



स्वामी श्री सरस देवजू

श्री स्वामी सरसदेवजू की प्रशंसा

प्राचीन वाणी ते–

श्रीविहारीदास को दास जु गावत विपुल विहारें ।
श्री सरसदास रस-रासि महल नव केलि निहारें ।।
श्री कुंजविहारी इष्ट वृष्टि रस महा मधुर अति ।
षीर नीर ज्यों कियो लियो सुख सर्वोपर रति ।।
सहज सींव वैराग वर महामत्त उर रस छयो ।
श्री स्वामी हरिदास कै वंस हंस अद्‌भुत भयो ।।१।।

सरस विपिन वसि प्रकास आस सरस रसिक रासि अनन्य निवास पद कमलनि सिरनांवतो । ग्यान ध्यान क्रियावान उपमाकों ना समान कोऊ निरअभिमान रसिक नरेसनि सुहावतो ।। नागरी सरस हेत प्रीतम समेत निरखि लेत देत निज प्रसाद स्वाद सुख पावतो । श्री स्वामीजू को विपुल वंस अंस श्रीविहारीजू को सरस रस-सागर उजागर भयो भावतो ।।२।।

श्री किशोरदासजी–

सरसदेव श्री नागरीदास ।
नित्य सिद्ध अवतार अलौकिक उर अद्भुत विस्वास ।।
बानी विमल जुगल रस सानी गावत उदित हुलास ।
दासकिसोर उपास विहारी छिन छिन प्रेम प्रकास ।।३।।

सरस श्री नागरीदास उदार ।
मानो दास विहारनि प्रगटे बरनन करन विहार ।।
मृदुल सुभाव मान मन मर्द्दन बर्द्धन इष्ट उचार ।
दासकिसोर कीन पद परसत दरसायो सुख सार ।।४।।

श्री स्वामी पीतांबरदेव जू–

प्रगटे श्री सरसदेव रस भीनें ।
निधिवन नित्यविहार विलोकत प्रिया लाल उरलीनें ।।
श्री हरिदासी विपुल विहरनि सरस प्रिया रस दीनें ।
श्री ललित रूप रस विवस विहारी विहारनि के वल कीनें ।।५।।

प्रगटे सुख निधि रसिक प्रवीन ।
श्रीसरसदासि रस रूप उदौ करि रसिकन हिय सुख कीन ।।
श्रीविहारनिदासि की दासि प्रकासी अंग अंग सरस नवीन ।
सरद समै मिलि मंगल गावैं पीताम्बर रस भीन ।।६।।

सब मिलि गावत आज बधाई ।
प्रगटी सहचरि सरस प्रिया की सरद महासुखदाई ।।
श्री हरिदासी विपुल विहारनि नागरि नवल लडाई ।
श्री रसिक उदारहि दियो कृपाकरि पीताम्बर पहिराई ।।७।।

श्री स्वामी ललितकिशोरीदेवजू–

प्रगटी सरस सरस रंग भीनी ।
गुप्त केलि रस रास प्रकासी अद्भुत प्रीति नवीनी ।।
छिन छिन प्रति आनन्द बढावत महाप्रेम रस लीनी ।
श्रीहरिदास ललित वपु धारचौ रसिक सु अति परबीनी ।।८।।

श्री नागरीदास जी–

प्रगटे श्री सरस सिरोमनि आज ।
श्रीविहारनिदासि को दास कृपा वपु रसिकनि को सिरताज ।।
फूले तन मन मंगलरी बनि आयो सोभा राज ।
श्री हरिदासी विपुल विनोदनि छायो सकल समाज ।।
सरद जामिनी भामिनि आई अंग अंग उदित विराज ।
वदन कमल लखि फूल कमोदनि नरहरि नव सुख साज ।।९।।

श्रीसरसदेवजू की बानी

* कवित्त सवैया *

विविध वर माधुरी सिंधु में मंगन मन बसत वृन्दाविपिन वर सुधामी।
महल निजु टहल में सहल पावै न कोउ छत्रपति रंक जिते कर्म कामी ।।
रसिक रस रीति की रीति सों प्रीति नित नैन रसना रसत नाम नामी।
हृदै कमल मध्य सुख सेज राजत दोउ रसिकसिरमौर श्रीहरिदासस्वामी ।।१।।

अति सरस-रसीली, रंग-रंगीली जोरी की अनंत-अनंग रंग तें रंजित, नेहभरी अवलोकन-महामधुर मुसिक्यान, सरस-सुकोमल प्यारभरी बतरान, अति गूढ़ रहस्य रसमय हास-परिहास आदि महामाधुरी रस-सिंधु में रसिक सिरमौर श्रीस्वामीजी महाराज कौ मन निरंतर निमग्न रहै है। समस्त धामिन कौ हू धामी, सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि निजमहल श्रीवृन्दावन में सतत आप विराजें हैं। जा महल की निज टहल कूँ महारंक ते लैकें छत्रपति आदि जितेक कर्म एवं कामी हैं, कोऊ कैसे हू नाँइ प्राप्त करि सकै है। श्रीस्वामीजी महाराज कौ एकमात्र निज रसरीति की रीति सों ही, अनन्य प्रीति एवं विश्वास है, और बिनके श्रीनेत्रकमलन में श्रीजुगल कौ रूप-रस-रंग महामाधुरी या प्रकार की अद्भुतता तें भरी रहै है कि दरसन करत खेम, महाविचित्र रंग-सागर हृदय में हिलोरन लगै है। ऐसे ही आपकी रसना ते श्रीलाड़िली-लाल के अति रसभरे नाम-गुन सतत स्रवित होते रहैं हैं, जिनकूँ सुनि भावरूपी नेत्रनि के आगे श्रीजुगल प्रत्यक्ष दरसन लगैं हैं, और श्रीहृदयकमल में तो सरस रसीले बिलास-मनोरथनकी सुख-सैय्या या भाँति अति अद्भुत सजी रहै है, जापै दोऊ श्रीजुगल अति विचित्र मनभामते निरन्तर खेलते ही रहैं हैं। ऐसे समस्त रसिकन के मुकुटमनि एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही जगत में अनन्य-नृपति चूरामनि प्रगट भये हैं।

जमुन कल कूल कल केलि कल कलपतरु तीर छबि भीर बसत वर विश्रामी। मंजु नव कुंज सुख पुंज गुंजैं सुनत सरस अनुराग गुन राग धामी ।। पक्ष लक्ष लक्ष जे अलिक्ष लक्षिन सुच्छि निरखि निरपेक्षि लता ललित नामी। नैन पुतरिन ऊपर सुख सेज क्रीडत दोउ अनन्य मनि धन्य श्रीहरिदास स्वामी ।।२।।

श्रीजमुनाजू के परम रम्य तट पै, सुन्दर कल्पवृक्ष के नीचे, जहाँ समस्त अलौकिक सोभा सिमिट के छाइ रही हैं, तहाँ सरस, अनुराग माधुरी तें परिपूर्न परम सुखदायिनी मंजु नवकुंज के मध्य श्रीस्वामीजी महाराज कौ बिश्राम स्थल है। आप भौरान की गुंजार श्रवन करते रहै हैं तथा अतिसरस रसीले महा अनुराग तें श्रीजुगल के रसमय गुनन कूँ ऐसी बैचित्री ते गावैं हैं, मानो बिन राग-रागनीन के मूल स्वरूप स्वयं आपही हैं। फिर स्वामी सरसदेवजू ने स्पष्ट कह्यौ कि, श्रीस्वामीजी महाराज के अगाध स्वरूप कूँ यदि लाख-लाख पक्षन द्वारा बिचार-बिचार कें निर्णय कियौ जाइ, तौहू वा स्वरूप कौ लक्षन हू प्राप्त होइबो अति दुर्लभ है। क्योंकि जिनके श्रीनेत्रकमलन की पुतरिन में अगाध प्रेममय, अति कोमल काम के भाव सदाकाल या भाँति विचित्रता ते भरे रहैं हैं जिन भावन के बशीभूत होइ श्रीजुगल निरन्तर बिलसि-बिलसि के इतेक सुख बोध करैं हैं, मानो कामकेलि की सुख सैय्या में ही पौढ़ि रहे होंइ। याते परम हुलास सों जय-जयकार करते भये आपने कह्यौ कि जगत में यावत अनन्यनि में मनि स्वरूप एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही अति धन्य-धन्य हैं।

फबी अति अैंड सबै मन मैंड सदा संग क्रीडत कुंज किसोरा।
रसरीति सों प्रीति प्रतीत निरन्तर चौंप बढी जैसें चन्द चकोरा॥
अति आनन्द में अमनेक बिराजत गाजत भाजत लोग लटोरा।
सरस सिरोमनि श्रीहरिदासि अनन्य जननि को न्यारोई तोरा॥३॥

अनन्य जनन की ऐंड़, याही ते सर्वोपरि स्वरूप सों सदाकाल न्यारी ही फबै है, क्योंकि बिनने अपने मन तें समस्त मेड़ मर्यादान कूँ भलीभाँति मेटि दीन्यौ है। या बात पै रीझि नवनिकुंज मन्दिर के अनन्य बिलासी किशोर बिनके संग सदा-सर्वदा क्रीड़ा कियौ करैं हैं। निज रसरीति सों ही प्रीति एवं प्रतीति होइबे के कारन बिनकी चौंप ऐसी बढ़ती रहै है, जैसे चन्द्रमा ते चकोर की। या प्रकार के निजदास सतत आनन्द में भरे गरजते रहैं हैं। जहाँ-तहाँ के स्वाद लैबेवारे लुटेरा लोग या रहनी कूँ सुनत खेम इत-उत माऊँ भाजि जाँइ हैं। ऐसे सर्वसिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज के निज दास अनन्य जनन कों एक न्यारौ ही दृष्टिकोण होइ है।

कर्म धर्म और ज्ञान विज्ञान भक्ति न आन हृदै में आनौं।
वेद रमापति रामहिं आदि दै श्रीव्रजराजहिं कोउ जो बखानौं॥

अति दुर्लभ नित्य विहार हमारे जू श्रीहरिदास प्रगट प्रवानौं।
सरस सुसार विचारि बिहारिनिदासि बिना हौं विहार न जानौं ।।४।।

कर्म-धर्म-ज्ञान-विज्ञान तथा और-और यावत् भक्तिन कूँ हूँ मैं अपने हृदय में कबहूँ नाँइ आवन दऊँ हूँ, और तो और वेद प्रतिपादित तत्व, साक्षात् श्रीबैकुण्ठनाथ, भगवान श्रीराघवेन्द्र एवं स्वयं श्रीव्रजेन्द्रनन्दन जू आदि भगवत् स्वरूपन कूँ हूँ कोऊ कितेक वर्नन करौ, किन्तु हमारे यहाँ अति दुर्लभ श्रीजुगल कौ नित्यविहार-रस की अनन्य उपासना है। जा नित्यविहार कूँ एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने ही जगत में प्रगट कीनौ है। विन श्रीस्वामीजी महाराज के उपदेश वचनन कूँ आश्रितन के प्रति भिन्न-भिन्न करि भलीभाँति समझाइबेवारे श्रीगुरुदेवजू ही श्रीस्वामीजी महाराज के प्रति दूजे सहज कृपा स्वरूप प्रगट भये हैं। याते हमने ये प्रन करि लीनौ है कि स्वामी श्रीविहारिनिदेवजू के बिना, वा नित्यविहार कूँ हूँ हम नाँइ निहारैंगे।

जाके हियै हरिदास हितानें ते जानि बिहारिनि के अनुरागी।
संसार की दृष्टि में दृष्टि न नेष्ठा इष्ट आराधत हैं बडभागी ।।
सदा थिर चित्त बसैं बन नित्त प्रिया पिउ हित्त रहैं लवलागी।
सरस बिहारी बिहारिनिदासहि देखि प्रसन्न यहै सुख माँगी ।।५।।

जिन महत्पुरुषन कौ हृदयकमल श्रीस्वामीजू महाराज सों साँचो हित करै है, बिनकूँ ही सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू के अनुरागी समझनो चहिए, क्योंकि बिन महतन की दृष्टि संसार की दृष्टि में नाँइ होइ कें, वे महाबड़भागी अनन्य नेष्ठा द्वारा सदाकाल अपने इष्ट को ही आराधन करैं है, बड़े स्थिर चित्त सों सतत निजधाम श्रीवृन्दावन में बसि, श्रीजुगल के हित सों ही लौ-लगाये राखै हैं। सरस-सिरोमनि श्रीबिहारी-विहारिनीजू के अनन्य दासन कूँ देखि, बड़े प्रसन्न होइ बिनके सुख कूँ ही माँग्यौ करैं हैं।

श्रीहरिदास के वंस उजागर नागर नेह नये सुख साजैं।
रसरीति सौं प्रीति प्रतीति बढी श्रीबिहारीबिहारिनिदासि निवाजैं ।।
तन कृति की बृति परी सहजैं रहसैं नव नित्त विहार सौं गाजैं।
सरस सुसार विचारि कह्यौ धन्य धन्य श्रीनागरीदासि बिराजैं ।।६।।

अनन्य नृपति श्रीस्वामीजी महाराज के वंस में प्रगट उजागर-नागर सिरोमनि श्रीस्वामीनागरीदेवजू श्रीजुगल के नित नये सुखन कूँ नव-नव अनुराग तें निरंतर

सजायौ करैं हैं। निज रसरीति सों ही जिनकी प्रीति एवं प्रतीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहै है। एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के निज अनन्यदास श्रीगुरुदेवजू ही जिनके सम्यक प्रकार ते रक्षक हैं। देह कृत्य बिनके सहज सुभाउ होय, नव-नित्यबिहार के रहस्य में सदाकाल गरजते रहैं हैं। जिनने समस्त रसन कौ सार स्वरूप सर्वोपरि नित्यबिहार कूं निर्णय करि बर्नन कीनौ है, ऐसे श्रीस्वामी नागरीदेवजू अति धन्य-धन्य होइ, सर्वोपरिता ते बिराजैं हैं।

अति दुर्लभ सार बिहार गह्यौ जु लह्यौ नहिं नारद वेद न भेऊ।
जा रस कों बस नांहि रमापति पावैं नहीं सनकादिक तेऊ॥
ता रस की अधिकारिनि जानि श्रीबिहारिनिदासि की दासि सु लेऊँ।
सरस परस को स्वाद कहै सुनि जै जै श्रीनागरीदास कों सेऊँ॥७॥

जा सर्वोपरि नित्यबिहार रस के भेद कूं सब तत्वनि कौ प्रथम वक्ता बेद, ईश्वरता के मूल स्वरूप स्वयं श्रीबैकुण्ठनाथजी, भक्तिपथ के आचार्य श्रीनारदजू नित्य मुक्त श्रीसनकादिक आदिकन कूं हूँ नांइ प्राप्त भयौ, वा अति दुर्लभ रस की एकमात्र अधिकारिनी श्रीबिहारिनदासीजू ही हैं, वे ही या अति सुरस रसीले नित्यबिहार रस कूं स्वयं आस्वादन करि-करि कृपा विवश होइ, निजजनन तें कह्यौ करैं हैं। तिनकी अनन्य दासी श्रीनागरीदासीजू की जय-जयकार करतो भयौ मैं सदाकाल बिनको अनन्य आश्रय लै, सेऊँ हूँ।

* छप्पय *

गरुबो गुन गम्भीर धीर धरमीन बखान्यौं।
सेवत नित्य बिहार सुजस रसिकनि मन मान्यौं॥
करुवौ अरु कोपीन गूदरी सहज सदाई।
कुंजनि कुंज विलास सुजस रसना रस गाई॥
श्रीबिहारिनिदासि प्रताप बल रजधानी रज राखि थरि।
श्रीनागरीदास उदार वर कौन करि सकै तोर सरि॥८॥

फिर आप बोले कि हे सर्वश्रेष्ठ उदारसिरोमनिस्वामीश्रीनागरीदेवजू! आपकी समता जगत में करि ही कौन सकै है? आप गुनन में अति गरुवे-गम्भीर एवं परम धीर ऐसे हो, जोकि बड़े-बड़े धर्मीन ने आपके जसन कूं भूयो-भूयो वर्नन कीनौ है, तापै हू सर्वोपरि नित्यविहार रस कूं अनन्यभाव तें आपको सेइबोरूपी सुजस कूं

रसिकन के मनन ने हू भलीभाँति मानि लीनौ है। अति निष्किचन करुवा-गूदरी की रहनी तें रहि, लता-लता के नीचें कुंजबिलास रस के सुजसन कूँ रसना तें उमँगि-उमँगि निरन्तर गाओ हो। रसिक अनन्य मुकुटमनि श्रीगुरुदेवजू के कृपा-प्रताप-बल सों श्रीवृन्दावन रजधानी में सदाकाल स्थिरता तें बसौ हो। ऐसे आपके सर्वोपरि जसन पर मैं बेर-बेर बलिहारी जाऊँ हूँ।

※ सवैया कवित्त ※

अरु त्यौं भै भ्रम भेद विभेद संदेह सनेह गए मन के।
बीज अरु कूट के ढेर ढये सब प्रालब्ध मिटि गये तन के ॥
सरस परस को स्वाद कहैं गुन गाय बिहारी-बिहारिनि के।
जै जै श्रीनागरीदास प्रसन्न भए सब साधन सिद्ध भये जिनके ॥९॥

जय हो जय हो श्रीस्वामी नागरीदेवजू! जिन बड़भागी जनन पै आप नेक प्रसन्न भये, बिनके समस्त साधन ताही छिन सहज सिद्ध है गये। तैसे ही बिनके मन के भय, भ्रम, भेद-विभेद, संदेह और-और स्नेह आदिक सब भलीभाँति चले गये। अनादिकाल ते संचित, बीज-कूट और प्रारब्ध के ढेर जो लगि रहे हे बे सब नष्ट होइ के, देह के भोग हू मिटि गये। वे महतजन सरस रसीले नित्यबिहार को आस्वादन करि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के गुन गावन लगे।

लालच लोभ के छोभ चल्यौ मन चंचल चित्त भयो मति बौरैं।
देह के स्वारथ आरत ह्वै परमारथ प्रेम लह्यौ नहिं ठौरैं ॥
सरस सनेह को रंग विसारि विचारि ले श्रीगुरु हैं सिरमौरैं।
श्रीबिहारीबिहारिनिदास बिना न कहूँ सुख संग सुहाइ न औरैं ॥१०॥

निज आश्रितन ते आपने कह्यौ कि हे भाई! सब लोगन कौ मन लोभ, लालच के क्षोभ में चंचल होइबे के कारन मतवारो है रह्यौ है, देह के सुख-स्वारथन में ऐसे आर्त है रहे हैं, जो अपनी ठौर पै ही प्राप्त होइबेवारो प्रेमरूपी सर्वोपरि परमार्थ ताकूँ हूँ नाँइ लेवैं हैं। भलीभाँति बिचारि कें मैं तुमसों कहूँ हूँ कि सर्वसिरोमनि श्रीगुरुदेवजू कौ अति सरसरसीले रंग सुख कूँ बिसारि कें और कोऊ सुख तथा काहू कौ संग हमें कैसे हू नाँइ सुहावै है।

कुट्टन गाफिल होत मन न इतहि देत काहे तू अचेत भयौ जरतु है भरम सौं। और न कोउ सहाव प्रभु के सरन आव औसर महा चुकाव

समझि ले मन सौं ।। काहे कौ मरत वहिं वृन्दावन बसि रहि सरस साहिब कहि लाडिली ललन सौं । तन धन सब गयौ काम क्रोध लोभ नयो चौंकि परचौ तब जब काम परचौ जम सौं ।।११।।

साधक समाज कूँ चेतावनी देते भये आप कहिबे लगे कि अरे मूर्ख ! तुम गाफिल काहे कूँ है रहे हो ? जो अपने मन कूँ इत माऊँ नाँइ लगाय, भ्रम में परि, अचेत होय, मायिक संसाररूपी अग्नि में ही जरि रहे हो । मैं तुमसों कहूँ हूँ कि या जगत में और कोऊ रक्षा करिबेवारो नाँइ है, याते शीघ्र तें शीघ्र अपने प्रभु श्रीबिहारीजी महाराज के सरन में आइ जाओ, यह बड़ो भारी अवसर या समय तुम्हें सहज प्राप्त है रह्यौ है । या बात कूँ अपने मन में भलीभाँति समझि, संसार में नाँइ मरि, श्रीवृन्दावन बसि, सरससिरोमनि श्रीलाड़िली-ललन कूँ अपनो साहिब बनाय, मनभाँमते लाड़भरे लड़ाइ-लड़ाइ गुन गाओ । देखो तुम्हारो तनरूपी धन तो दिन-प्रतिदिन छीन होतो जाय रह्यौ है, काम-क्रोध-लोभ नित नये-नये बढ़ते जाय रहैं हैं, याते हे भाई जब जमदूतन सों तुम्हारौ काम परैगो, तब तुम घबरावन लगोगे ।

अब कैं जनम जान्यौं जनम्यो नहीं हुतौ कितेक जनम धरि धारि ऐसै ही जरायौ है । यहै द्यौस दस तू अधिक सौं जियौ चाहत मानों अबकें तूं काल बेग ही दै खायौ है ।। ऐसे झूंठे ही प्रपञ्च मांहि ऐसी वस्तु हाथ आवै ताहि तू गँवावै ऐसौ कौंनै भरमायौ है । ऐसे सुखहिं समझि लेहि चित वित इत देहि सरस सनेह स्याम संग सुख पायौ है ।।१२।।

याही प्रसंग में आप और हू कहिबे लगे कि या देह के सुखन के ताईं ऐसे लगि रहे हो, मानो "याही जन्म में हमें यह प्राप्त भई है ।" मैं तुमसों कहूँ हूँ कि ऐसे तुम्हारे अनंत जन्म-जनमते–मरते बीत चुके हैं । तुम समझ रहे हो, मानो काल बेग ही आय गयौ है, कछु दिन और रहते तौ अच्छो हो । हे भाई ! एकमात्र ऐसे झूठे प्रपंच में इतेक सर्वोपरि एवं अद्भुत वस्तु प्राप्त है सकै है, ताकूँ तुम गँवाइ रहे हो, ऐसो कौन नें तुम्हें भरमाइ दीन्यौ है । मैं तुमसों अपनी ही बात कहूँ हूँ कि–सर्वोपरि नित्यविहार रसमय सुख कूँ भलीभाँति समझि, अपने चित-बित कूँ इत माऊँ दृढ़ता सों लगाइ, सरस सनेहभरे श्रीबिहारीजी महाराज के संग अगाध सुख हमने प्राप्त कीने हैं ।

स्याम भजैं भ्रम दूरि भयो भैया भय न रह्यो जब तैं चितयै हरि।
काम कुरोग कुसंग कुमंत्र कुकाल कलेस कछु न रहे अरि।।
कलि कामिनि कंचन लागति कर्म कुभार भये सु गये भसमें जरि।
सरस हियें रस रास प्रकास बिहारी-बिहारिनि पूरि रहे भरि।।१३।।

आपने और हू कह्यौ कि हे भाई! श्रीबिहारीजी महाराज कौ मन लगाइ के भजन करिबे तें हमारे समस्त भ्रम दूर है गये हैं, और जब सों बिनने कृपाभरी दृष्टि द्वारा हमारे माऊँ देख्यौ, तब सों ही यावत् भय हमारे नष्ट होइ, काम-कुरोग, कुसंग, कुमंत्र, कुकाल-कलेश आदि काहू शत्रु को लेशमात्र हू नाँइ रह्यौ है। कराल-कलि-काल एवं कामिनी-कंचन, तथा कर्म-कुभार आदि सब जरि के भस्म है गये हैं। ताते हमारे हृदय में अति सरसरसीले रसरासि श्रीजुगल कौ प्रकास होइ, रोम-रोम में आनंद भरि रह्यौ है।

काहू की आस न त्रास करैं पकरैं अपने व्रत को निरधारो।
लोग लिवास लियें मनु लाखकु लालचि जनन काज विगारौ।।
धृग जीवन दै धर्मैं धन आनत मानत धन्य कियैं मुंह कारो।
सरस सुसार बिहार अधार अनन्य जनन्य को पैंडोई न्यारो।।१४।।

हे भाई! नित्यबिहार के दृढ़ अनन्य उपासकन कौ सबते न्यारौ कछु बिचित्र ही पथ होइ है। वे महतजन मायिक जीवन ते लैकें और-और परमार्थ, स्वरूपन ताऊँ न तो अपने मन में काहू की आसा ही राखें हैं और न काहू कौ भय ही मानें हैं। अपने व्रत में सदाकाल निश्चयात्मक रूप तें दृढ़ रहैं हैं। लिवासी लोग लाखन प्रकार लोभ-लालचन में मन लगाइ, अनन्य धर्म कूँ बिगारते भये, लजावें हू नाँइ हैं। जो लोग अनन्य धर्म कूँ हारि धन कूँ लाइ, अपने कूँ धन्य मानें हैं, हमारे यहाँ बिनको मुख कारो एवं जीवन धिक्कारबे योग्य होइ है। याते समस्त सरस रसीले रसन कौ हू सार स्वरूप नित्यबिहार ही जिनकौ प्रानाधार है, तिन जनन कौ पैंड्यौ ही कछु न्यारो होइ है।

को जाने कब कहा होइगो सुख सन्तोष पोष नहिं भ्राम।
छाँडहि संगति गफिलई जनन की समझो विरद मनोहर नाम।।
सरस परस पाएँ दिन फूलत श्रीवृन्दावन निजु रस धाम।
स्याम सरन आए को यहै गुन जीवत जिन न लह्यौ विश्राम।।१५।।

हे भाई श्रीविहारीजी महाराज के साँचो शरन आइबे को यह स्पष्ट लक्षन है कि या जीवन में ही बिनको मन परम सुख सों सुखी होय, विश्राम पाय जाय है। यदि देह रहते-रहते मन साँचे सुखसों पोषण नाँइ हैकें, श्रामिक बन्यौ रह्यौ तौ, कोऊ नाँइ कहि सकै है पीछे कहा होयगो ? याते हे भाई बहिर्मुख गाफिल जनन की संगति कूँ सम्यक् प्रकार त्यागि कें श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के अति सरस-रसीले मनोहर नाम एवं परम उदार विरदावली के स्वरूप कूँ समस्त रीतिभाँति सों समझो, बिनको नेक सपरस होत खेम फूले-दूले निजमहल श्रीवृन्दावन रसधाममें निरंतर तुम बसोगे।

पूरन प्रेम को नेम न जान्यौं खान पान अनतै बितयौ।
झूठीयै आस उदास रहत मन कपट वचन के कूर गयौ ॥
सरस परस परसै को यहै गुन तामो तजि कंचन न भयौ।
कह्यौ सुन्यौ समझ्यौ कितन्यौं जो जीवत ही तन मन सुखी न भयौ ॥१६॥

याही विषय में आप और हू बोले कि हे भाई ! तुमने कितेक हू परमारथ कहि, सुनि, समझि लीने। तौहू तुम जीते-जीते तन-मन ते सुखी नाँइ भये। याते स्पष्ट है कि पूरन प्रेम के नेम कूँ नाँइ जानि कें, खान-पान आदिक और-और सुखन में ही अपने समय कूँ, तुमने बिताय दीनो है। सरस-रसीले प्रेम को तो सपरस करिबेको ही यह गुन है कि–पारस-लोह की नाईं ताही छिन अति उज्ज्वल सुबरन करि, और-और सुखन कौ संस्कार हू नाँइ रहनु देवै है।

तुम्हारौ तो मन झूठे नाशवान सुखन की आसा में ही सतत उदास हुयौ रहै हैं। और कूर स्वभाव होयबे पै हू, अपने कूँ प्रेमी जनाइबे के ताईं कपट के बचन बोलौ हो, याते तामो सदृश माया कूँ त्यागि, कंचन सदृश उज्ज्वल प्रेम-स्वरूप तुम आज ताऊँ नाँइ भये हो।

माखन आस कपास मथै सठ स्वाद की साधनि जीभ लटी।
कंज करील सुवास कुबास कसैं बिन, मानत एक सटी ॥
सरस परस की संधि यहै जू गये बड़भागि अनन्य गटी।
श्रीबिहारिनिदासि विना न विहार यहै असमंजस बात ठटी ॥१७॥

जो साधक श्रीगुरुदेवजू के चरनकमल की दृढ़ अनन्यभाव तें सरन तो जाइबो चाहै नाँइ, और सर्वसिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज कौ नित्यबिहार रस प्राप्त करिबो चाहैं हैं, ताको लक्ष्य करिके आपने कह्यौ कि हे भाई ! तुमने यह बहुत बड़ी असमंजस

बात, जो कैसे हू नाँइ होइबेवारी हैं, वाकूँ अपने हृदय में ऐसी धरि लीनी, जैसे काहू मूरख की जिह्वा माखनके स्वादकी ताईं तो लटपटाइ रही हो, और मथे कपास कूँ। तैसे ही काहू की नासिका सुबास-कुबास ते अनभिज्ञ होइबे के कारन अरुनकमल एवं करील के फूलन कूँ एक समान ही समझै है। अर्थात् नवनिकुंज मन्दिर कौ सर्वोपरि नित्यविहार के अद्भुत प्रेम-अनुराग आसक्तिमय रस-विलास कूँ तथा स्थूल संयोग-वियोगात्मक रसन कूँ एक ही करिके मानै है, किन्तु जिन महाबड़भागी जनन कूँ अति सूक्ष्म सरस-रसीली संधि कौ नेक हू ज्ञान है जाय है, वे ताही छिन सर्वोपरि नित्य-विहार-रस के लालायित होय श्रीगुरुदेवजू के श्रीचरनकमलन कौ साँचे मन ते दृढ़ अनन्य आश्रय लै लेवैं हैं।

करी सु भली अबहूँ सु भली करि हैं जु भली न बुरी अरि हैं।
भली सुख संधि सुतो इन मध्य भलौ अपनो व्रत ना टरि हैं॥
भलै रस रासि सरस सुभाब भलै गुन नाम हियैं धारि हैं।
अपनें मन नाँहिं बिचार कछु करि हैं श्रीहरिदास भली करि हैं॥१८॥

निज आश्रितन सों कहते भये आप बोले कि–हे भाई! तुम अपने मन में पूर्न बिस्वास सों सदा-सर्वदा यह निश्चय राखो कि श्रीस्वामीजी महाराज ने अब ताऊँ जो कछु कीनौ है, और करि रहैं हैं, तथा आगे जो कछु करैंगे, सब भली-भली ही करैंगे। क्योंकि बुरो करिबो तो आप जानैंही नाँइ हैं। जो सर्वोपरि सुख आपके हृदय-कमल में सतत समुद्र स्वरूप सों हिलोर लै रह्यौ है, वोही सुख निज जनन कूँ सतत दियो करैं हैं। या दृढ़ब्रत तें, आप कैसे हूँ टरिबेवारे नाँइ हैं। अति सरस-रसीले रसरासि आप रसभरे तो सदाकाल भाषन करैं हैं, और श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के रसभरे ही नाम-गुनन कूँ आश्रितन के हृदय में धरैं हैं। याते हम बिनके ही बल-भरोसा पै, अपने मन में कछु विचार नाँइ राखिकें अति निश्चिंत निर्भय होइ, सदाकाल पाँव पसारि कैं सोवैं हैं।

ऐसो तन ऐसो मन तैसोई श्रीवृन्दावन भजन को करि पन काहे तू अचेत है। संसार सागर तरि काहू के थरि ह्वै मरि साँवलो साहिब करि क्यों न सुख लेत है॥ निलज उछकि अब हाथ मीडैगो तूं तब धौं को काको सब झूठो संकेत है। ऐसो राज ऐसो साज सरस समाज आज करि किन लेहु काज ढील कित देत है॥१९॥

और हू समझाते भये आप बोले कि हे भाई ! देव दुर्लभ ऐसी सुन्दर बुद्धिवारी तो तुम्हें मानवदेह मिली है, जासों सब कछु समझि सकौ हो ? तापै ऊँची ते ऊँची ठौर पै लगिबे योग्य तिहारे पास ये मन है । तैसे ही समस्त धाम-धामिन कौ मुकुटमनि परमोदार शिरोमनि श्रीस्वामिनीजू कौ निजमहल श्रीवृन्दावन तुम्हें प्राप्त है रहैं हैं । याते मैं तोतें कहूँ हूँ कि तू भजन कौ ही दृढ़ प्रन करि, काहे कूँ अचेत है रह्यौ है । श्रीबिहारीजी महाराजकूँ अपनो सर्वस्व, स्वामी मानि, बिनके ही श्रीचरनकमलन की रज पै अपने जीवन कूँ अर्पन करि, संसार सागर ते पार जाइ तू क्यों न सुखी होइ है । अरे निर्लज्ज ! संसार में कोऊ काहू कौ नाँइ है, क्यौंकि ये मायिक संबंध सब झूठे ही होइ हैं । याते तू अबहीं इनते मुख मोरि लें, अन्यथा हाथ मीडि-मीडि के पछितामनो ही परैगो । ऐसो अद्भुत सरस-रसीलो तौ साज-समाज, ताहू में श्रीस्वामीजी महाराज को आश्रयरूपी राज्य पाइके, अपनो काम बनाइबे में तू काहे कूँ ढील दै रह्यौ है ।

अब हीं बनी है बात औसर समझि घात तऊ न खिसात बार सौक समझायो है । आजु काल्हि जैहैं मर काल व्याल हू तें डरि भौंडे भजन ही करि कैसो संग पायो है । चित-वित इत देहु सुखहि समझि लेहु सरस गुरुनि ग्रन्थ पन्थ यौं बतायो है । चरन सरन भय हरन करन सुख तरन संसार कों तूं मानस बनायो है ॥२०॥

आपके इतेक समझाइपै हू साधक, सबन कूँ त्यागि, एकमात्र भजन करिबे के ताईं जब तैयार नाँइ भयौ, तब आप फिर बोले कि हे भाई ! समस्त भयन कूँ हरन करिबेवारे, सब सुखदाता, श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमलन की सरन जाइ माया-सागर ते तरिबे के ताईं ही तोकूँ श्रीहरि ने मानव बनायो है । तापै तू समझि, यह तेरो बड़ो ही सुन्दर अवसर बनि रह्यौ है; हम तेरे कूँ अनेकन बार समझाइ चुके हैं, तौहू तोकूँ लज्जा नाँइ आवै है । कालरूपी व्याल तेरे माथा पै छाइ रह्यौ है, याते तू थोरे ही दिनन में मरि जाइगो । ताते तू डरि, अति सावधान होइ, भजन को शीघ्र ही प्रन करि ले । तेरे कूँ कैसो सुन्दर समागम आज सुलभ है रह्यौ है । या अद्भुत सुख कूँ सोच-समझि अपने चित-वित कूँ इत माऊँ लगाइ देवो । हमारे श्रीगुरुजनन ने अपनी सरस-बाणी-ग्रन्थन में संसार तरिबे को एकमात्र यही उपाय बतायो है ।

बजाइ गजाइ अनन्य भए भैया भै भ्रम भाजि गये तिनहीं के।
घुस फुस करैं मन मांहि डरैं रस हौंस मरें मनसा मति फीके।।
नस्वर निंदक बंदक बाधक जानि सबै सुख द्यौस दुती के।
कहा ह्वै रह्यौ मूक करें न द्वै टूक सरस मनोरथ तौ लहै जी के।।२१।।

मानो आश्रित ने प्रार्थना करते भये कह्यौ कि हे महाराज ! मैं अपने मन सों तो एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के ही संबंध की आसा-भरोसा सदाकाल राखूँ हूँ, केवल ऊपर ते ही सबकूँ साधि के याते चलूँ हूँ जासों कोऊ कलेश नाँइ होइ ? तापै आप बोले कि हे भाई ! जो साँचे जन होइ हैं, वे तो डंका बजाते भये, गरजि-गरजि कें चौरे अनन्य है जांइ हैं। तिनहीं जनन के भय-भ्रम समस्त रीति-भाँति सों भाजि जांइ हैं। जिन लोगन के मन एवं मनसा फीकी होइ है, बेई रस की हौंस करते भये हू सबसों डरि, इत-उत माऊँ घुस-फुस कियौ करें हैं। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि–निंदा-स्तुति करिबेवारे बाधक स्वरूप लोगन कौ दुख-सुख थोरे ही दिनन कौ होइ है।

इतेक समझाइबे पै हू, जब आश्रित कछु नाँइ बोल्यौ, तब आपने कह्यौ कि यदि तुम अपने सरस-रसीले मनोरथन कूँ सफल करिबो चाहौ तो काहे कूँ मौन है रहे हो; इन सबन सों अब ही द्वै टूक क्यौं नाँइ करि देवो ?

दीन दुखी वपुरा भ्रम भूखे ते देहिं कहा मन माँगि लजैयै।
एक गूदरी सेरुक अन्न या देह को बाँधि दियो सु जहाँ तहाँ हैयै।।
सुकदेव रमापति को सुख दुर्लभ सुल्लभ पाय सु क्यों न लडैयै।
सरसहिं देत अभै दिन दांन दियैं श्रीबिहारिनि जू के अघैयै।।२२।।

जो स्वयं दीन, दुखी एवं भ्रम् में परि सतत भूखे रहैं हैं, वे बेचारे दै ही कहा सकैंगे। ऐसे लोगन ते जाँचना करिबो हू बड़ी लज्जा की बात है। जब ताऊँ श्रीबिहारीजी महाराज ने जगत में या देह कूँ राखनी है, तब ताऊँ निर्बाह के ताँई एक गूदरी, सेरेक अन्न को ऐसो बंधान बाँध दीन्यौ है, जोकि जहाँ-तहाँ कहूँ न कहूँ ते अवश्य ही मिलि जाइगो। याते याकी कछु चिन्ता नाँइ करि, जो सुख साक्षात श्रीबैकुण्ठनाथ एवं परमहंस चूरामनि श्रीशुकदेवजू कूँ हूँ अति दुर्लभ है, वो सुख सहज सुलभ तेरे आगे है रह्यौ है, वाकूँ तू क्यौं नाँइ लड़ावै है। सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू के दिये बिना कोऊ नाँइ अघाइ सकै है।

माया महा मद मोह बिषै लियैं लोभ की लाठि फिरै अररानी।
कहूँ धीरज धर्म विवेक रह्यौ नहीं मार किये सब कीच की घानी ॥
जीव सुरंक कहा बपुरा सुक सनकादिक नारद हूँ भै मानी।
सरस सुदास गरीब भलें लिये राखि कृपा करि कुंज की रानी ॥२३॥

माया के अति भयंकर प्रभाव कूँ बर्नन करते भये आपने कह्यौ कि हे भाई! यह भगवत माया महामद, मोह एवं बिषयन के लोभ की लठिया लिये सतत सबके ऊपर अरराती डोलै है, जासों कहूँ धीरज-धर्म-विवेक नाँइ रहि कें, सबन कूँ पीस, कीच की घानी बनाइ दीनो है। जीव बेचारो रंक तो चीज ही कहा है? साक्षात् श्रीसुक, सनकादिक, श्रीनारदादि बड़े-बड़े महामुनि हू याते भय खावैं हैं। हम गरीबन कूँ, श्रीस्वामीजी महाराज के दास होइबे के कारन श्रीनिकुंजेश्वरीजू ने कृपा करि कें माया ते बचाइ, राखि लीनो है।

स्वारथ को परमारथ खोवत रोवत पेटनि कों दई मारे।
भीख कों भेष अनेक बनावत जाचत सूद महा मतवारे ॥
भूख बडी भगत्यो न सम्हारत आतुर ह्वै परदेस सिधारे।
सरस अनन्य निहाल भये जिन कोटि वैकुंठ लता पर वारे ॥२४॥

ये लोग बिधाता के मारे भये अपने पेट के छुद्र स्वारथन के ताईं ही, सर्वोपरि परमार्थ को खोइ के, सतत रोमते रहै हैं। भीख के ताईं, अनेक बेष बनाइ-बनाइ महा मतवारे शूद्रन के द्वारन पै जाइ जाँचना करते डोलैं हैं। माँगिबे की भूख इनकी इतेक बढ़ गई है, जो अपने स्वरूप कूँ बिचार नाँइ करि अति आतुर है, परदेस चले जाँइ हैं। जिन दृढ़ अनन्य जनन ने श्रीवृन्दावन की लतान पै ही कोटानुकोटि बैकुंठन कूँ हूँ न्यौछावर करि दीने, तेई बड़भागी जन अति सरस-रसीले रस के अनन्य होइ, निहाल है गये।

काहू धन मद मान मद काहू जोवन मद काहू राज मद होत झूठी बात को। काहू गुन गान मद काहू जोग ध्यान मद दान स्नान मद काहू रूप गात को ॥ काहू जाति जोति मद काहू बेद रीति मद कुटंम समीत मद द्यौस पाँच सात को। सदा मनमोहन मोहनी जू के मद मात्यो सरस सुसार पायो बाँकी कुंज घात को ॥२५॥

हे भाई ! जगत में काहू कौ तो धन-मद, काहू कौ अपनी मान प्रतिष्ठा, काहू को जोवन को ही, काहू के राज-मद आदि सब झूठी बातन कौ ही मद होइ है। ऐसे ही काहू कूँ गुन गाइबे कौ, काहू को जोग, ध्यान, काहू कौ तीरथ-दान-स्नान, एवं काहू कूँ अपने रूप, गात कौ हू मद होइ हैं। काहू कूँ ऊँची जाति कौ, काहू कूँ अपनी जोति कौ, काहू कूँ बेदरीति अनुसार चलिबे कौ, काहू कूँ बड़े कुटुंब-परिवार को ही, ये सब मद थोरे ही दिनन के समझने चहिए। सदा-सनातन, सरस सिरोमनि-प्रान लाड़िली-मनमोहिनीजू के रस-बिलास मद में मतवारौ मनमोहनजू की कुंजबिलास-घातन के मद में हम नित्य निरंतर मदमाते रहैं हैं।

सहज बनी है बाँनि तहाँ न हित की हांनि यहै निजु जीय जाँनि साँच ही सुभाव है। ऐंचि खेंचि बनै न तूं औगुन गुन गनें रे करि देखि जतन सौ बादि को खिजाव है। वेद पोथी न लिखंत सहज जहां ममंत तहाँ न सुख को अंत छिन छिन चाव है। लोभ क्षोभ छांड़ि दे तूं सुखहि समझि ले सरस परसिबे को और न उपाव है ॥२६॥

हे भाई ! जहाँ हित करिबे ते काहू प्रकार की हानि हो ही नाँइ सकै है, वा सर्वोपरि श्रीवृन्दाबन निकुंजमहल में लाड़-लड़ाइबे की हमारी सहज बानि परि गई है। तुम हूँ या बात कूँ अपने हृदय में भलीभाँति समझि लेओ ? वहाँ एकमात्र साँचे सुभाव द्वारा ही प्रेम कियौ जाइ है। तुम ऐंचि-खेंचि करते भये गुन-औगुनन कूँ गिन रहे हो। प्रेम करिबे ते ही प्रेम को स्वरूप समझि में आवै है। व्यर्थ बाद-बिवाद ते कहा होइ सकै है ? सहज सुभाउ ममत्वमय प्रेम के स्वरूप कूँ बिधि-बिधानन सों निरूपन करिबेवारी श्रुति-स्मृति हू नाँइ लिखि सकैं हैं। क्योंकि जहाँ सहज ममता के सुख कौ छिन-छिन चाव ऐसौ चढ़चौ रहै है, जाकौ अंत कबहूँ आवै ही नाँइ है। याते यावत प्रकार के लोभ-छोभन कूँ समस्त रीति-भाँति सों त्यागि, सर्वोपरि महा-बिचित्र सुख कूँ मन लगाइ के समझो। अति सरस-रसीलो सर्वश्रेष्ठ नित्यविहार कूँ प्राप्त करिबे के ताईं और कोऊ उपाय है ही नाँइ ?

**श्रीवृन्दावन कुंज भरे रस पुंज मनोहर दुम नये सुखदाँनी।
करैं कल केलि रहैं रस झेलि निकट नवल नवेलि सुजाँनी ॥
उपासि बिहारिनिदासि सदा सुख रासि अनन्य बिहार बखाँनी।
सरस परस प्रिया पिय के पग पूरन आनंद सौं रति माँनी ॥२७॥**

महागूढ़ सुरत-रसबिलास रंगमहल श्रीवृन्दावन में सहज सुभाव सबन के तन-मन-प्रान हरन करि, अद्भुत नये-नये सुखन कूँ सतत देबेवारे श्रीजुगल परम मनोहर कल-केलि-रस-सुख कूँ झेलि-झेलि कें, एक प्रान द्वै देह स्वरूप सों सतत निकट रहि, मनभामते खेल खेलें हैं। ऐसे महाबिचित्र एकरस आनंद स्वरूप की दृढ़ अनन्य-उपासना एकमात्र श्रीगुरुदेवजू ने ही जगत में बर्नन कीनी है। बिन श्रीगुरुदेवजू के ही श्रीचरनकमलन कूँ सपरस करि, समस्त रीतिभाँति सों परिपूर्न प्रेम-रसामृत सिंधु श्रीजुगल सों हमारी रति है गई है।

अर्थात् पूरन आनंद कहिबे को आपकौ अभिप्राय यह है कि—जैसे ब्रह्मानन्द तें कोटि गुनो अति अधिक श्रीहरि की सुद्ध भक्ति में आनंद है। सुद्ध-भक्ति ते हू कोटानु-कोटि गुनो आनंद श्रीव्रज के बातसल्य रस में। ऐसे ही उत्तरोत्तर बिसुद्ध शृङ्गार रस को आनंद समझनो चहिये, ता शृङ्गार कौ सार भयो मधुर रस। मधुर ते भयौ महा-मधुर, महामधुर कौ हू सार रस भयौ श्रीजुगल कौ प्रथमसमागम-एकान्त-रस-बिलास निजमहल कौ निपट नित्यबिहार रस, याही परिपूर्न-आनंद स्वरूप रस सों आपने रति मानी है।



श्रीसरस बिहार रस के पद

* राग विभास *

लाडिली लालन रंग भीने अंग अंग छबि बहु भाँती।
साँवल गौर वदन अंबुज पर विथुरी अलक अलि पाँती ।।
अरुन नैन अनियारे अंजन पीक पलक अलसाँती।
वचन रचन रुचि दसन दमक दुति अरुन अधर मुसकाँती ।।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागति प्रिया लटकि लपटाँती।
छके सुरति रस विवस विलोकत सरसदास उर साँती ।।१।।

भोर भयें श्रीबिहारी-विहारिनि मिलि मुसिक्यात।
निसि के अनुरागे जागे जुरि जुरि मुरि मुरि अंग अंग लिपटात ।।
अनंग के रंग रंगीले छबीले सिथिल तन मन अरबरात।
सरसदास बलि२अलि बैस पर किसोरी-किसोर नईछबि निरखि नैंनसिरात२

रसमसे रसिया रस भीनें हार बार रहै छूटि मन हरन। सब निसि जागे रगमगे लोचन पागे रंग रति अति सुरंग अंग अंग सकल सोभा आभरन ।। सारी सरस सनी सोंधे सिर, अति सुदेस रही केस ते खिसि सोभित अद्भुत वरन। निरखि हरषि मुख सुख पावत, दिन दूलह दोऊ सरस सखीन के सुख करन ।।३।।

लाल प्रिया को सिंगार बनावत।
कोमल कर कुसुमन कच गूंथत मृगमद आड रचित सचुपावत ।।
अंजन मन रंजन नख वर कर चित्र बनाय बनाय रिझावत।
लेत बलाय भाय अति उपजत रीझि रसाल माल पहिरावत ।।
अति आतुर आसक्त दीन भये चितवत कुंवर कुंवरि मन भावत।
नैंननि में मुसिकानि जाँनि पिय प्रेम विवस रस कंठ लगावत ।।
रूप रंग सींवाँ ग्रीवाँ भुज हँसत परस्पर मदन लडावत।
सरसदास सुख निरखत निहाल भये गई निसा नव नव गुन गावत ।।४।।

* राग देव गंधार *

आजु अति राजति नागरी नाहु ।
बन घन कुंज कुंज प्रति डोलत अंसन पर धर बाहु ।।
फूली लता परसि रस हँसि भरे गावत अधिक उछाहु ।
मंद मंद गति अति छबि उपजत निरखि सखी बलि जाहु ।।
आनंद मगन भये लटकत नट पट भूषन तन जाहु ।
सरसदास सुख रासि लाडिलो लालन संग किलकाहु ।।५।।

सरस बिहारिनि सरस बिहारी सरस दासि सुख रासि ।
सरस बिहार सरस रंग भीनें सरस परसपर हासि ।।
सरस ललित सरस मदन गति सरस अंग लिपटानि ।
सरस स्वास सुर संच सौं सरस मदन सुखदानि ।।
सरस मदन सुख सदन में सरस लाडिलो लाल ।
सरस सुरति रति रंग रस सरस कुंज में ख्याल ।।
सरस छबीले वदन विवि विगसत सरस सनेह ।
सरस रंग रस बस भये एक प्राँन द्वै देह ।।
सरस बरस रस जुगल छबि सरस मगन मद मोद ।
सरस ललक लाडन अति उपजत इतै दोउन की कोद ।।
सरस कुंज सुख पुंज में सरस जनम करि लेखि ।
सरस सिंगार विहार में सरस चतुर मुख देखि ।।
सरस परस परसाद यह सरस संग सुख पाइ ।
सरस विहार विलोकत निसिदिन सरसदास बलि जाइ ।।
सरस कहै सरसै रहै सरस संग जो होय ।
सरस कुंज में द्वै जनैं ज्यौं भावै त्यौं जोय ।।
दरसन परसन प्रेम को कीजै तन मन लाय ।
चतुर सिरोमनि लाडिलो सरस संग सुख पाय ।।६।।

कुंजनि कुंजनि डोलत लाल ।
उमंगि उमंगि मन मोद बढावत लाडिली सों करि ख्याल ।।
द्रुमलता लिपटत लटकत फूले कर परसत हँसत रसाल ।
सरसदासि सुखरासि प्रिया पिय प्राँननि के प्रतिपाल ।।७।।
गोरे तन में प्रतिबिंबित फूल बीनत लालबिहारी ।
जब जब हाथ परत न तबहीं हँसि जात हैं प्यारी ।।
अरबराइ आँको भरत करत हैं छिन छिन मनुहारी ।
सुरति विवस विहरत दोऊ प्रीतम सरसदास बलिहारी ।।८।।

* राग विलावल *

रस भरे लाल-लाडिली आवत ।
कुंज सदन मन मदन मुदित अंग अंग सुरत रंग उपजावत ।।
घूमत नैंन बैंन आलस जुत पट लट लटकत आवत ।
प्रेम उमंगि मन पुलकि पुलकि तन कंठ सों कंठ लगावत ।।
मगन भये मुसकात छबीले हरषत रीझि रिझावत ।
सरसदास सुख रासि रसिकवर विचित्र विनोद बढावत ।।९।।
श्रीबिहारी प्यारी को खिलौना ।
नाना रूप रँग रति अँग अँग प्रति अति रस रसिक सलौना ।।
अति आसक्त रहत जु छबीली छैल छबीले सों तन मन रौना ।
सरस लाडिली लाल ख्याल को काहू परति पगौना ।।१०।।

* राग सारंग *

वदन झलक मोहन वस कीनें ।
तामें मृदु मुसकानि छबीली बिथुरी अलक नेंन रंग भीनें ।।
रीझि रीझि वारत मन छबि पर विवस भये आँको भरि लीनें ।
तन मन मगन भये पिय-प्यारी सरसदास सुखरासि नवीनें ।।११।।
देखि वदन कुंज करत केलि ।
कोमल कर गेंदुक उछारत लटकत नवल नवेलि ।।

मानों मत्त गजनी गज मिलि विहरत भुज दंडनि पेलि।
जुरि जुरि अँग अँग अनंग अमित रति रहैं रसिक रस झेलि ॥
विवस माधुरी पान कैं बाढी ललक नवेलि।
सरसदासि सुखरासि प्रिया पिय अंग संग मिलि खेलि ॥१२॥

बिहरत जमुना जल सुखदाई।
गौर स्यॉम अंग अंग मनोहर चीर चिकुर छबि छाई ॥
कबहूँ रहसि बहसि हँसि धावत प्रीतम लेत मिलाई।
छिरकत छैल परस्पर छबि सौं करु अंजुली छुटकाई ॥
कबहूँ जल समूह रस झेलत खेलत लै बुडकाई।
महा मत्त जुगवर सुखदाई रहे कंठ लपटाई ॥
क्रीडत कुंवरि कुंवर जल थल में मिलि रंग अनंग बढाई।
हाव भाव आलिंगन चुंबन करत केलि मन भाई ॥
भीजे बसन निवारि सहचरी नउतन चित्र बनाई।
रचे दुकूल फूल अति अंग अँग सरसदास बलिजाई ॥१३॥

रूप रासि बिहारी अति बनैं।
नवल किसोरी गोरो के संग अंग अनंगनि में सनैं ॥
प्यारी दमदमाति दामिनि उर स्यॉम सचिक्कन तन घनैं।
गरजत गुन गंभीर वरषि रस सरसदास सींचत मनैं ॥१४॥

हौं बलिजाऊँ नवल पिय प्यारी।
नव निकुंज सुख पुंज महल में दंपति श्रीहरिदास दुलारी ॥
अति आसक्त रहसि वहसि हँसि उर लावति मिलि अँग अँग सुखकारी।
अति उज्जल रस बिलसत विवि सुंदर श्रीसरसदास या छबि पर बारी॥१५॥

जुग मुख छबि बरनी न परैं री।
उपजत मैंन परस्पर बैंननि नैंननि में मुसकात हरैं री ॥
अंस भुजा दीनैं भीने रँग रहसि बहसि हँसि अंक भरैं री।
विवस भये विहरत पिय प्यारी सरसदास उर संचि धरैं री ॥१६॥

वे वाके वे वाके नैंननि प्रतिबिंब में सिंगार जनावत। चतुर रूप गुन रासि सुघर दोउ अपनें अपनें करि रचि रचि सखिहिं दिखावत ॥ इतहि सँवारि विलोकत उन तन वे उन तन चितै चितै चित चौंप बढावत। सरसदासि सुखरासि प्रिया-पिय पुलकि पुलकि हिल मिलि मधुरे सुर गावत ॥१७॥

अलबेली अलक झलक आँनन अति अलकलडी सुख देत।
अलबेली अँखियन पलु ना लागत अलबेली बतियन मुसकत मन हरि लेत॥
अलबेली चाल चलति अलबेली अलबेली ताँननि माँन समेत।
सरसदास अलबेले लाल वारति मन छिन छिन कहि न परै छबि जेत ॥१८॥

जोरी मत्त मगन सुखरासि।
आलस वलित ललित लोचन मिलि करत परस्पर हासि॥
विहरत मिलि अंग अंग सुखदाइक ललना लाल हुलासि।
आनंद-निधि गुन निधि लावनि निधि निरखि सरस सुख रासि ॥१९॥

* राग मलार *

पावस रस बस बिहरैं बिहारी देखि देखि मुख सुखकारी।
रतिपति अति गति उपजत अंग अंग रंग अनंग सुकुवाँरी॥
सारी सुही फुही फबि छबि पिय पीत बसन तन मन हारी।
वर विनोद मनमोद दुहुँकोद सरसदास अलि बलिहारी ॥२०॥

श्रीबिहारी प्यारी पर हों वारी।
सदा प्रसन्न वदन विवि सुंदर संतत सब सुखकारी॥
हँसत लसत बन बसत कसत उर सुरत रंग छबि न्यारी।
सरसदास सुखरासि रहसि रस बरसत मिलि रंग भारी ॥२१॥

झूलत दोऊ नवल हिंडोलैं।
विमल पुलिन कल कमल कुंज मधि चितवत नैन सलोलैं॥
जोबन जोर झकोरनि देत आलिंगन करत कलोलैं।
सरसदासि सुखरासि रहसि नव सुनत मधुर मृदु बोलैं ॥२२॥

झूलत फूलत सुरति हिडोरें।
पुलकि पुलकि किलकत हिलिमिलि मन जोवन जोर झकोरें ॥
छूटी लट पट सिथिल भये अंग अंग अनंग निहोरें।
रहसत बिहँसत मिलत परस्पर उर कर चिबुक टटोरें ॥
अति रंग भरे ढरे खरे डांडी गहि निरखत विवि मुख ओरें।
सरसदास दरसत बिलास नित अति चंचल चित चोरें ॥२३॥

* दरबारी कान्हरो *

जोरी बिचित्र विराजत रंगनि अंगनि में नव नव छबि छाई।
भूषन सुरंग रगमगे बागे लागे उर विलसत सुखदाई ॥
मंद हँसनि मधुरी बातनि में मगन भये सहचरि बलि जाई।
रूप रुचिर वर विहरत चोज मनोजन में अति ही सरसाई ॥२४॥

नवल निकुंज नवल रगमगे दोऊ नव नव हास बिलास बढावत।
उठत तरंग अनंग नई छबि उपजत ताँन मधुर सुर गावत ॥
अति अनुपम प्यारी मुख निरखत पुलकि पुलकि पिय कंठ लगावत।
सरस विहार जुगल रंग भीनें लीनें अंक निसंक लडावत ॥२५॥

सोंधैं सहज सगबगी अलकैं।
बिथुरी सुखद वदन अम्बुज पर सोहत आनंद अंग अंग झलकैं ॥
कौतिक-रासि लाडिली पिय कें बढी मदन मन ललकैं।
सरस सुख्याल निहाल लाल मुख निरखत लगत न पलकैं ॥२६॥

माई आजु रसमसे रस बनि बैठन अंग अंग रोम रोम सुख भरे। कहाँ लौं कहूँ री और रहसि बहसि रस हाँसी ही के मिस मिलि जे जे रंग करे ॥ वार वार वदन निहारि मन वारि वारि अंक भरति पुनि पुनि आतुर ह्वै इत उत न टरे। सरसदास वारी विवस रस बस बिहारी प्यारी यहि विधि तन मन मोद भरे ॥२७॥

ललला लाल कौतिक भूले।
सहचरि आनंद भरी लडावत रूप रासि मिलि फूले ॥

सुरति विवस बोलत मृदु बैननि नैंननि रति अति आनंद मूले।
रीझि रीझि रस मत्त मगन भये सरस रंग में झूले ॥२८॥

* राग केदारो *

राजति नव निकुंज नव जोरी।
सुंदर स्याम रसीले अंग अंग नवल कुंवर तन गोरी॥
वदन माधुरी मदन सदन सुख सागर नागरि कुंवरि किसोरी।
सरसदास नैंननि सचुपावत कौतिक निपट नयोरी ॥२९॥

राजति अलक लडी अलबेली।
सिथिल अंग रति रंग संग पिय जीवनि प्रान नवेली॥
लटकि लटकि उर सांवल तन मन मिलि मदन मुदित बस खेली।
सरसदास नैननि सचुपावत बिहरत गर्व गहेली ॥३०॥

नृतत रस भरे रसिक बिहारी।
ताँन तिरप गति भेद अनागति घात लेत सुकुँवारी॥
थेई थेई करत धरें पग चंचल उपजत नूपुर रव झनकारी।
गावत कटि लटकावत नैंन नचावत प्रीतम प्यारी॥
मृदंग तार सुर सप्त संच मिलि तैसियै छिटकि रही उजियारी।
कोक कला कल केलि झेलि रस क्रीडत कुंवर दुलारी॥
द्रुमबेली फूली सुख बरसत चंपक बकुल गुलाब निवारी।
करत विनोद विपिन मन भाये सरसदास बलिहारी ॥३१॥

कुंज महल पिय प्यारी सोये।
सीतल सेज रची सुख सहचरि मुदित मदन मन भोये॥
लटपटात गात न अघात मिलि हँसत लसत पट अंग अंग गोये।
अति रस भरे बिहारी-बिहारिनि सरसदास मुख जोये ॥३२॥

छबीले छबि सों चाँपत पाय।
दो लर वर तमाल लाल की सोभा कही न जाय॥
अति कोमल कर परस मनोहर राखत कंठ लगाय।

वारत मन बलि जाइ निरखि मुख फूल्यौ अंग न समाय ।।
आनन्द मगन लाड़िली जीवनि सुख निधि मृदु मुसकाय ।
लीनों अंक आपनों बल्लभ राख्यौ उर लपटाय ।।
करत केलि सुखरासि परस्पर चौंप बढी चित चाय ।
सुरति रंग बिहरत मिलि अंग अंग उपजत नव नव भाय ।।
ललिता ललित माधुरी गावत ललनाँ लाल लडाय ।
सरसदास सुखरासि सहचरी देखत हियो सिराय ।।३३।।

झूलैं फूल डोल दोऊ फूल भरे ।
फूल बसन फूल आभूषन हँसनि दसनि में फूल झरें ।।
फूल्यौ फूल मनोज मोज रति कसि कसि अंगनि चोज करें ।
अलि गुन गावैं फूल बढावैं रीझि भीझि सरस रस रीति ढरें ।।३४।।

झूलें फूल डोल फूलेरी लाल लडैती संग ।
फूलन कौं महल फूलनि के बागे फूली सखी गावैं तान तरंग ।।
फूले मुख सुखदाइक अंग अंग मिलि फूले मन उदित अनंग ।
सरसदासि फूली छबि निरखत बिहरत प्रीतम सुरति सुरंग ।।३५।।

पिय प्यारी पौढे पल न लागत मुख देखि देखि मुसिक्यात ।
रूप की रासि प्रकास परम रस बिवस परस्पर पुलकि पुलकि लपटात।।
उपजत हैं मन मिलि तरंग अंग अंग रंगीले लसत गात ।
सुखद बिहार सुसार सरसदासि विलास निरखत नैंन सिरात ।।३६।।

पिय प्यारी सोये सुख चैन ।
लटपटाइ रहे रोम रोम मिलि मगन भये विहरत मन मैंन ।।
वदन काँति न समात नील पट ओढें छबि कछु कहत बनैंन ।
सरस सनेह कसत उर सों उर सहचरि लै राखे उर ऐंन ।।३७।।

मदन कुंज सुख पुंज गुंज अलि द्रुंजन खेल बढ्यौ सुखदाई ।
भूषन बसन कसत न्यारे प्यारे मिलि करत केलि मन भाई ।।

अंग अंग संग रंग छबि उपजंत मानों सुरंग ओढनी दुरंग उढाई। करत बिहार बिहारी-बिहारिंनि सरसदास नैंननि मुसकाई ॥३८॥

विमल पुलिन मंडल मधि राजत नागरी किसोर मोर मुकुट भूषन दुति काछनी बनाई। नृतत रस रंग भरे उरप तिरप सुलप लेत ताल सचित लाग डाट अति गति मन भाई ॥ ए अपने अपने रंग गावत मिलि तान तरंग बिहँस बढचौ सनमुख मुख भृकुटी नैन नचाई। करनि सों कर जोरत हँसि रहसि रीझि उर लागे लटकत तन मन मगन सरसदास सुखदाई ॥३९॥

॥ इति श्रीसरसदेवजू की बानी सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णदेवजू की बानी

* गुरु मंगल *

प्रथम जथामति श्री गुरु चरन लडाइहौं ।
उदित मुदित अनुराग प्रेम गुग गाइहौं ।। गुन
गौर-स्यांम सुखरासि तिन्हैं दुलराइहौं ।
देहु सुमति बलिजांउ आनँद बढाइहौं ।।
आनँद सिंधु बढाइ छिन छिन प्रेम प्रसादहि पाइहौं ।
जै श्रीवर बिहारिनिदासि कृपा तें हरषि मंगल गाइहौं ।।१।।

जै जै श्रीहरिदास रसिक कुल मंडना ।
अनन्य नृपति श्रीस्वामी सकल भै खंडना ।।
रसिक कमल कुल भानु सुप्रगट उदौ कियो ।
भ्रम तम श्रम सब नासि सबनि कौं सुख दियो ।।
दै सबनि सुख अति कृपा करि प्रगट बिहार सुनाइयो ।
जै जै श्रीहरिदास रसिक मन भाइयो ।।२।।

जानि बिहार गुपत अति भूतल प्रगट कियो ।
कीरति जग विस्तार सु रस रसिकन दियौ ।।
निरनै करि जस गाय सो परहित वपु धरचौ ।
धन्य धन्य कहैं सब रसिक अनन्य सु वर वरचो ।।
वर वरचौ धन्यधन्य कहिकहि छिनछिन प्रति दुलरावहीं।
जै जै श्रीहरिदास बंछित फल पावहीं ।।३।।

काम केलि माधुर्य्य सहज रति सर्वदा ।
प्रेम सुभाउ सरल मति सुधा गुन निर्मदा ।।
विस्व सकल सुख देखि छिया करि छाँडियौ ।
दंपति पति अभिराम अपनों--पन माँडियो ।।

माँडिपन अभिराम छिन छिन दंपति सहज लडावहीं ।
देखि इहि सुख रंग दोऊ मंद मधुर सुर गावहीं ।।४।।

जै जै श्रीवृन्दावन सहज सुहावनौं ।
नित्य बिहार अधार सदा मन भावनौं ।।
परम सुभग श्री जमुना पुलिन मंजुल जहाँ ।
विमल कमल कुल हंस सकल कूजित तहाँ ।।
विमल कमल कुल हंस कूजित सेवत खग मृग सुख भरे ।
मुदित मन बन मोर निर्तत राजत अति रुचि सों खरे ।।५।।

कुसुमित कुंज रसाल लता अति सोहहीं ।
अलि कुल कोकिल कीर कूजित मन मोहहीं ।
त्रिविध समीर बहत रस सुखद मनहि लियैं ।
बसंत सरद रितु सेवत चित वित मनहिं दियैं ।।
बसंत सरद सेवत सदा रितु सुख समुद्रहिं को गनैं ।
विविध भाँतिन भूमि राजत सोभा देखत ही बनैं ।।६।।

मंदिर नवल निकुंज मदन सेवत रहैं ।
मनि मुक्ता फल फलित सोभा गुन को कहैं ।।
श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनि अतिसै राजहीं ।
नित्त किसोर सहज रति सुख मैं भ्राजहीं ।।
नित्त किसोर सहज सदा रति गौर स्याँम तन सोहहीं ।
कंचन तन घन दामिनि रतिपति देखत छबि मन मोहहीं।।७।

अंग संग श्रीहरिदास बिहार करावहीं ।
मननि लियें अनुसार सहज दिन भावहीं ।।
सुख संपति रहें साजि समयो पाइ सुगावहीं ।
ताँन तरंग मधुर सुर राग सुनावहीं ।।
ताँन तरंग सुनाइ मधुर सुर कुंवर कुंवरि सुख पावहीं ।
रीझिरीझि स्याबासि कहि हँसि हार बसन पहिरावहीं।।८।।

प्रगट श्री बिहारिनिदासि कृपा को वपु धर्‍यौ।
श्रीकृष्णदास बडभाग सेवत नित अनुसर्‍यौ ॥
सील सुभाव गुन अर्पि प्रिया प्रेमैं लहैं।
चित वित दै रुख लै मन सेवत नित रहैं ॥
रहैं सेवत रुख लियैं नित संक न काहू की करी।
जै श्रीवरबिहारिनिदास चरन रति सूर ज्यों ब्रत ना टरी॥९॥

और बहुत अपनाइ जे मन बच क्रम अनुसरे।
मोसे पतित महासठ तेऊ अपने करे ॥
जैसे पारस परसैं तैं कंचन जानिये।
ऐसे किये श्रीनागरीदास निश्चै उर आनियैं ॥
उर आनि निश्चै जानि यह सुख चरन कमल सेऊँ सदा।
जैश्रीबरबिहारिनिदासि प्रगट नित सिंधु सुधा रस सर्वदा॥१०॥

मन वच क्रम करि यह जस जो नर गाइ हैं।
मन वंछित फल बेगि सदा सुख पाइ हैं॥
निजु धन सर्वसु जाँनि उमँगि दुलराइ हैं।
प्रेम लछिना भक्ति विपुल रस पाइ हैं॥
रस पाइ विपुल आनंद बाढ्यो जनम जनम के श्रम गये।
जै श्रीबर बिहारिनिदास कृपा तैं मन मनोरथ सब भये ॥११॥

॥ इति श्रीकृष्णदेवजू की बानी सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णदेवजू के छोटे गुरुभाई—

श्रीनवलदेवजू की बानी

※ कवित्त ※

मन में विचारि कैं विवेक टेक एक आछी ध्रुव हू तें अटल न टारी टरै आसनाँ। नाँनाँ रत मत जीव उपजि विनसि जांहि कर्मठ ज्ञानी हू को काल हू की सासनाँ ।। आसू को रसिक रस रीति ही में रस पीवै जगत अनन्यन की पूरी भई वासनाँ। नवल विहारीजू को प्रगट विहार गावैं साँचे श्रीहरिदास जिनकी सुदृढ उपासनाँ ।।१।।

अति गुप्त ते हू गुप्त श्रीजुगल के सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ प्रगट गाइबेवारे, समस्त रसिक अनन्य-उपासकन में अति साँचे सुदृढ़ रसिक अनन्य-उपासक जगत में एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही प्रगट भये हैं। सर्वोपरि विवेक द्वारा मन में निर्णय करि निज रसरीति की उपासना में आप ध्रुव ते हू ध्रुव अविचल अटल ऐसे रहैं हैं कि जिनकी या सुदृढ आसा कूँ कोटि-कोटि यत्न द्वारा हू कोऊ नाँइ टारि सकै है। अपने इष्ट के चरनकमलन में अनन्य प्रेम नाँइ करि, नाना मतन में रत रहिबेवारे जीव जगत में बेर-बेर उपज्यौ विनश्यौ करें हैं। कर्मठ-ज्ञानीन कूँ काल कौ भय बन्यौ रहै है। श्रीस्वामी आसुधीर जू के रसिक-अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की निज रसरीति में ही दृढ़ अनन्यता ते रस कूँ आप ऐसे पीवैं हैं, कि जिनकूँ देखि जगत के यावत रसिकन की वासना पूरी है गई।

※ छप्पय ※

तुही प्रेम परतीति तुही प्रेमै अवलोकै।
तुही प्रेम संगीत तुही गावत दिन कोकै ।।
तुव मिलि संग सुहाग तुही अनुरागहि गावै।
तुही हिलगि हितु जानि तुही तन मनहिं द्रिढावै ।।
श्रीबिहारिनिदासि प्रताप तुव अज्ञा लै सनमुख रह्यौ।
मन मोहन हितु जानि कै सु नवल सखी को सुख कह्यौ ।।२।।

श्रीस्वामीजी महाराज कौ प्रेम-जस बर्नन करिबे तें हमारी प्रानजीवन, नवल सखी, श्रीलाड़िलीजू कूँ अद्‌भुत सुख होइ है, बिनके सुख ते ही प्रान लाड़िले मनमोहन के रोम-रोम कौ हित जानि, आप श्रीस्वामीजू महाराज कौ जस बर्नन करते भये बोले कि—एकमात्र आपको ही अति विशुद्ध प्रेम में दृढ़ प्रीति एवं प्रतीति है। जासों आपही वाकूं अवलोकन करौ हो, वाही प्रेम कूं संगीत स्वरूप सों रात-दिन कोक-गुनन के अनुराग कूँ निरंतर गावो हो। आपसों मिलि कें ही दोऊन कौ सुहाग-अविच्छिन्न नित-नयौ बढ़्यौ करें है। आपही दोऊन के हृदय-हिलगनि की मर्म कूँ भलीभाँति समझि ताही अनुसार विहार में प्रवृत्त करि दृढ़ करि देवो हो।

आपकेही श्रीचरनकमल प्रताप-बलकौ आश्रय लै, हमारे प्राननाथ श्रीगुरुदेवजू सतत श्रीजुगल के रुख के सन्मुख रहैं हैं।

दरस परस रुचि सरस बोलि अमृत मुख बानी।
कर कमल सिर धरत भोर भ्रम जात न जानी।।
करी कृपा निजु जानि संग रसिकनि कौ पायौ।
श्री वृन्दावन विमल रस जस जुगल मिलि गायौ।।
दासि रसाल निजु गुन कहत पारस कंचन प्रगट तुव।
श्रीनागरीदास सनमुख भये जु साधन तिहि छिन सिद्ध हुव।।३।।

फिर अपने श्रीगुरुदेव स्वामी श्रीनागरीदेवजू कौ जस बर्नन करते भये आपने कह्यौ कि–आपके साँचे सन्मुख होत खेम आश्रितन के समस्त साधन तिहीं छिन सिद्ध है जाँइ हैं। जिनको दरस-परस एवं अति सरस-रसीली रुचि तथा श्रीमुखकमल की अमृत सदृश महामधुर तो बोलनि है, और जाके माथापै अपनो हस्तकमल राखि देवैं हैं, वाके हृदय की भ्रमन की भीर ऐसी सहज चली जाइ है, जो मालूम हू नाँइ परै है। ऐसे परमोदार श्रीगुरुदेव ने मोकूँ अपनो निज जन जानि, कृपा करि रसिकन कौ संग दै दीनौ, बिनसों मिलि कें श्रीवृन्दावन एवं श्रीजुगल के अति उज्ज्वल रस-जसन कूँ मनभामते हम गायौ करें हैं। ऐसे ही आपके अति रसाल दासीपने के निज गुनन कूँ बर्नन करत खेम, या भाँति शुद्ध स्वरूप प्रगट है जाइ है जैसे पारस लोहा कूँ कंचन बनाइ देवै है।

* सवैया *

कूर कृपन और दुखित जानि कैं सहज दियो वृन्दावन वास।

भावत सुद्ध सुभाव अनन्य अति बिभिचारी इन्द्री दै घास ।।
लीने गहि निरबाहि प्रिया बल जिनके मन रति यौं बिस्वास ।
काम सहायक देत कामना परम कृपाल नागरीदास ।।४।।

मोकूँ अति कूर, कृपन और दुखित जानि, श्रीस्वामी नागरीदेवजू ने अपनी सहज कृपा द्वारा सर्वोपरि निजमहल श्रीवृन्दावन को अखंड बास दै दीनौ। आपकूँ सहज,शुद्ध भाव की अनन्यता ही अति भावै है। जहाँ-तहाँ भटकिबेवारे बिभचारी लोग अपनी इन्द्रिन कूँ बिषयरूपी घास कूँ ही खवायो करै हैं। याही कारन सों दया-करुना-ममता में विबश होइ, अपनी श्रीस्वामिनी के कृपा-बल-भरोसा पै, मेरौ हाथ पकरि, निकट में राखि, आप सतत निभावैं हैं। जिन लोगन के मन में या प्रकार कौ दृढ़ बिस्वास सदाकाल आपको रहै है, बिनके समस्त मनोरथ लालसान की निरंतर सहायता करैं हैं, ऐसे परम कृपालु, दयालु हमारे गुरुदेव स्वामी नागरीदेवजू ही जगत में सुशोभित है रहैं हैं।

* छप्पय *

तुम जु प्रवीन गुन गाँन ,प्रिया पिउ मनहिं रिझावन।
तुम जु लियें रुख स्वास रहत इनके मन भावन ।।
तुमहि लडावत लाड सैंन हरिदासी को पावै।
तुम जु विलंब न प्रेम सहेली रंग ही गावै ।।
दासी रसाल नवल नित तुम सब भावन मन सुखकरन।
श्रीनागरीदास तुव आस यह सु करहु सुदृष्टि राखहु सरन ।।५।।

हे दया करुना के सागर ! मैं आपके ही चरनकमलन की आसा करिके सरन में आयो हूँ, याते मेरे माऊँ कृपाभरी दृष्टि सों देखि अपनी सरन में राखि लेउ। आप श्रीजुगल के गुन-गाइबे में ऐसे अति अद्भुत प्रवीन हो, जोकि बिनकूँ रिझाइ-रिझाइ, स्वाँसनि के स्वाँसन की रुख समझि, सतत बिनके मनभामते बने रहो हो, तापै हू श्रीस्वामीजू महाराज की सैन लै, श्रीजुगल कूँ सतत लाड़-लड़ाते रहौ हौ। बिचित्र रंग-मनोरथन में भरि जैसे-जैसे श्रीप्रेमसहेलीजू गावै हैं, तैसे-तैसे ही आप अबिलंब बिनके संग-संग गावन लगौ हौ। रससों भरी आप ऐसी रसाल दासी हो कि श्रीजुगल के मनोरथन कूँ समस्त रीतिभाँति सों मनभाँमते पूर्न करि-करि सुख देवो हो।

* सवैया *

श्रीनागरीदास सिरोमनि जू मोकों बनबास कृपा करि दीजै।

माँगत हौं करुना करि के तुमहीं दिन देखि सदा सुख जीजै ।।
रजधानी भली रज सेयै बनै अजू मोकों रजायसु तौ कछु कीजै ।
द्वार परे की अब लाज करो किन दीन दुखी दिन ही दिन छीजै ।।६।।

हे उदार सिरोमनि श्रीस्वामी नागरीदेवजू ! मोकूँ आप कृपा करिकें श्रीवृन्दाबनजू कौ बास दै देउ । मैं अति दीन, दुखी, आप ते प्रार्थना करि रह्यौ हूँ कि आप ऐसी कृपा करौ जो परम सुखदाई आपके दरसन सदाकाल करि-करि के सुख सों मैं जीऊँ । सर्वसिरोमनि श्रीवृन्दावन राजधानी की रज कूँ सेइबे ते ही मेरो यह परम सौभाग्य बनि सकै है । इतेक पै हू जब आप कछु नाँइ बोले तो अति कातर होइ स्वामी श्रीनवलदेवजू ने फिर प्रार्थना कीनी कि हे नाथ ! मोकूँ कछु आज्ञा तौ होनी ही चहिये । मैं आपके द्वार पै पर्यौ-पर्यौ, छिन-छिन छीज रह्यौ हूँ, या बात की हू आप लाज करौ, मैं अब कहाँ जाइ सकूँ हूँ ?

* राग विहागरो *

रंग भर्यौ लालन रंगीली प्यारी राधा ।

एक तन एक मन एक ही समान दोऊ नेक हू न न्यारे ह्वै सकत पल आधा ।। छबि सों छबीली भाँति नैनन में मुसकाति मुसकन ही मेंरंग बढ्यौ है अगाधा । तैसीयै नवल सखी तैसेई कुंज बिहारी तैसी मेरी प्राँन प्यारी पूजी मन साधा ।।७।।

* कवित्त *

एक ही सिंगार तन एक प्राँन एक मन एक ही सरूप कापै परत बखानी है । एक ही बरन अंग भूषन बसन सुरंग एक ही सुभाव प्रेम रंग रस सानी है । एक ही सुदृष्टि सखी नैन सों नैन जोरें एक ही समाज राग रंग सुखदानी है । नवल निहार दोऊ पटतर कौ न कोऊ श्रीबिहारिनिदास किंधौं बिहारिनि रानी है ।।८।।

।। इति श्रीनवलदेवजू की वाणी सम्पूर्ण ।।

श्रीनरहरिदेवजू की बानी

* राग सारंग *

जाकी मनमोहन दृष्टि परे ।
सो तो भयो साँवन को अंधो सूझत रंग हरे ।।
जड चैतन्य कछु नहीं सूझै जित देखै तित स्याँम खरे ।
विहवल विकल संभार न तन की घूमत नैंना रूप भरे ।।
करनी अकरनी दोउ सुधि भूलि विधि निषेध सब रहे धरे ।
श्रीनरहरिदास ते भये बावरे जे प्रेम प्रवाह परे ।।१।।

जो बड़भागी जन प्रेमनदी के प्रवाह में परि, मनमोहन श्रीबिहारीजी महाराज कूँ आँख भरि देखि लेवैं हैं, वे एक प्रकार के ऐसे बावरे है जाइ हैं कि जैसे सावन की हरियारी कूँ देखि, कोऊ अंधो है जाइ, वाकूँ जन्म भरि हरचौ-हरचौ ही मन में सूझै है । वा प्रेमी की ऐसी दसा है जाइ है कि जड़-चैतन्य काहू कौ ज्ञान नाँइ होइ, सब ठौर एकमात्र श्रीबिहारीजी ही दीखैं हैं । प्रेम में बिह्वल-बिकल होइबे के कारन बिनने अपने देह की हू सार-सम्हार नाँइ रहि, नेत्रकमल रूपमाधुरी ते भरे भये सतत घूम्यौ करैं हैं । ऐसे बड़भागी जनन कूँ तो बिधि-निषेध, करनी-अकरनी काहू प्रकार की सुधि ही नाँइ होइ है ।

सखी आज बने पिय साँवरे ।
रूप अनूप अधिक छबि राजत कुटिल केस मनों भाँवरे ।।
टेढी पाग ग्रीवा कटि टेढी चितवनि की बलि जाँव रे ।
श्रीनरहरिदास पिय की छबि निरखत प्यारी रूप समाँव रे ।।२।।

* राग बिलावल *

सोवत निसि नहि जानी जात ।
अलसाने जमुहात प्रिया पिय उठि बैठे सज्या परभात ।।
पसरी किरन अरुन अति राजत कुंज फूल फल कोमल पात ।
कोमल भाँन उदित तन सोभा स्याँम तनै दोऊ लिपटात ।।

भई प्रकास सकल द्रुमबेली बन सोभा सोभित सब गात।
चौंक चक्रित अति होत परस्पर फूले तन मन अँग न समात ।।
गावत सखी मधुर सुर मीठे रति जागे की जो है बात।
श्रीनरहरिदास गोरी की छबि पर कोटि मयंक भानु दुरि जात ।।३।।

* राग देव गंधार *

प्रिया पिय सुरति सेज उठि जागे।
घूमत नैंन अरुन अलसानैं मनो समर सर नागे ।।
सिथिल अंग छूटी सिर अलकैं वदन स्वेद कन लागे।
मानों विधु कुसुमनि करि पूज्यौ अंग अंग अनुरागे ।।
चितै परस्पर ब्रीडत दोऊ काम केलि रस पागे।
श्रीनरहरिदास अंग छबि निरखत गंड पीक सो दागे ।।४।।

* राग केदारो *

दोऊ सुरति सेज सुख सोये।
करत पाँन मकरंद प्रिया पिय अधर पाँन रस भोये ।।
मन सों मन तन सौं तन मिलवत मदन मान सब खोये।
श्रीनरहरिदासी सुख निधि विलसत नैंन कमल मुख जोये ।।५।।

* राग नट *

अरे कारे बदरा तोमें स्याम हिरानें।
ताही तें तूं अंतर गरब्यौ विरहिनि पीर न जानें ।।
परसि दुकूल दामिनि अति चमकत सतमख सारंग तानें।
मंद मंद मुरली घन गाजत बाजत मदन निसानें ।।
रंग रंग मिल सुख उपजत आँन रंग क्यों बानें।
श्रीनरहरिदास ते अंतर कारे कारे सों रति मानें ।।६।।

* राग विहागरो *

एक सखी राधा के भोरें गुहत स्याँम की बैंनी।
भूषन बसन संवारत अंग अंग चक्रित भई मृगनैंनी ।।

राधा हँसि मोहन तन चितवत सखिन दई कर सैंनी।
श्री नरहरिदासि पिय मन में ब्रीडत लियैं लाल कर लैंनी ॥७॥

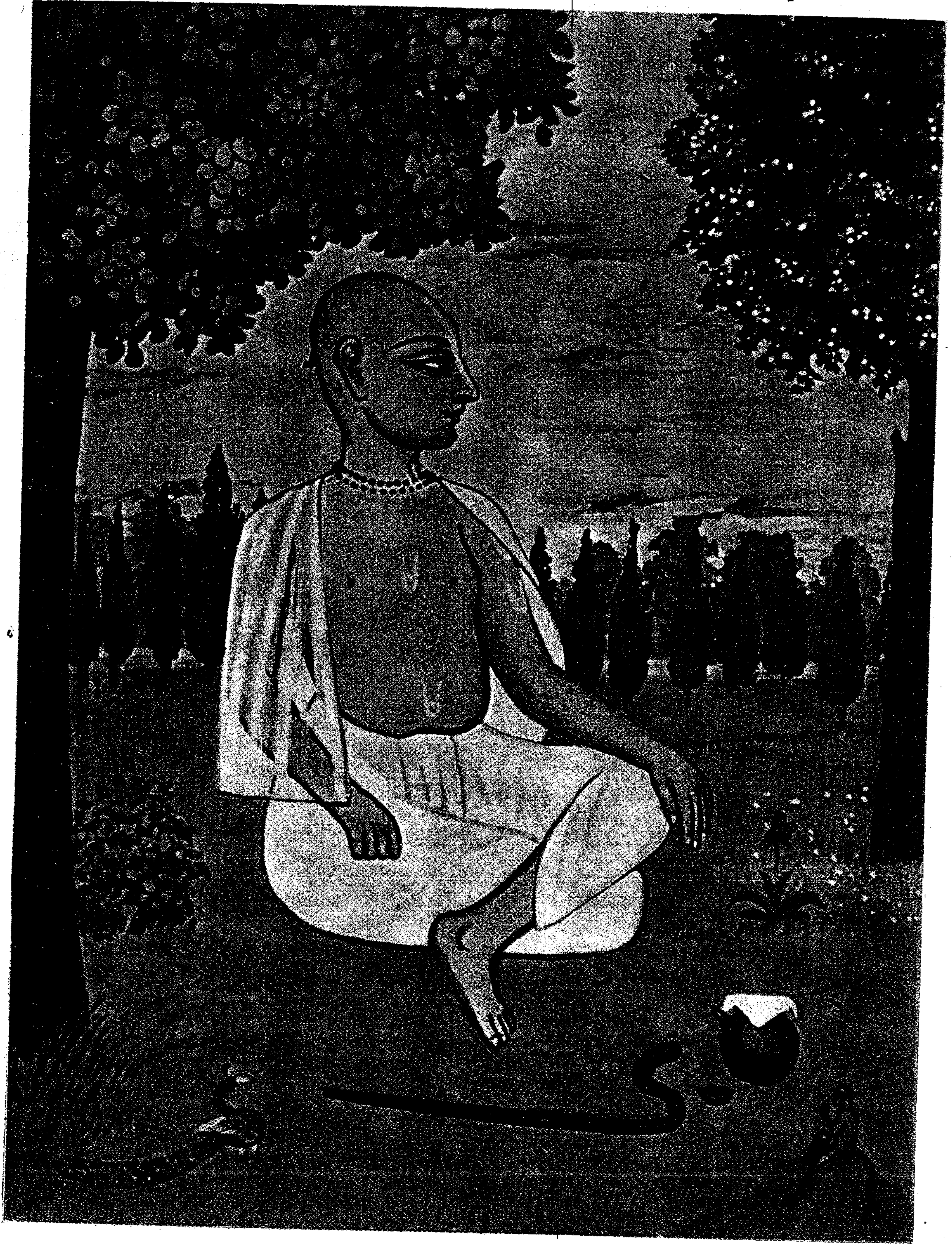
कुंजमहल के आँगन बाजत सुखद बधाई।
बीना ताल मृदंग मधुर सुर लागत परम सुहाई ॥
फूली सखी सब मंगल गावत आनंद उर न समाई।
करि सिंगार दूलह दुलहिन बैठे उमंग बढी अधिकाई ॥
श्रीनरहरिदासि निरखि तृन तोरत यह छबि वरनी न जाई।
नैंननि भरि सोभा रस पीवत प्यावत मन न अघाई ॥८॥

एक बात कहौं श्रवन लगि चित दै सुनौं पियारी।
सुभग फूल फूले वृन्दावन तैसियै सरद उजियारी ॥
चलि राधे अंतर सुख लूटैं सखी रहैं सब न्यारी।
मोहि तोहि जहाँ अपनपौं भूलै रहै न सुरति सँभारी ॥
जहाँ न खरिको होइ पंछी को यौं दुरि कहत बिहारी।
श्रीनरहरिदास पिय मन की जाँनी आगे सेज सँवारी ॥९॥

किहू बेर कही मानत न माँन गही हियो कठिन कछु औरई ठई री। पाइ गहि मनाइ आधीन किए माई तुम एक प्यारी नई माननि भई री ॥ जब देख्यौ अपनों रूप और न कोई त्रिया अनूप माँन की छरक तब हियैं तें गई री। हँसि बोली सुख की रासि मन भाई श्रीनरहरिदासि पल पल बाढी प्रीति नई री ॥१०॥

खेलत रास लाडिली लाल।
ताँन गाँन गुन सिखवत प्यारी तहाँ न कोई बाल ॥
ताल मृदंग संगीत विधि उघटत भूषन बजत रसाल।
उरप तिरप लै नचति सुलप गति उपजत सुख के जाल ॥
केलि कला रस बरषत हरषत परसत प्रेम विसाल।
श्रीनरहरिदासि निकट सुख निरखत स्याम सुभग उरमाल ॥११॥

॥ इति श्रीनरहरिदेवजू की बानी सम्पूर्ण ॥



स्वामी श्री नरहरि देवजू

श्री स्वामी नरहरिदेव जी की प्रशंसा

प्राचीन वाणी से उद्धृत–

सर्वोपरि विराजमान स्वामी जू को विपुल वंस हंस श्रीविहारिनदास खीर-नीर ज्यों कियो। भक्ति ग्यान को निधान जानि छानि ताइ करि प्रवान सो वरविहार सरसदास कौं दियो ॥ अर्ध उर्ध मद्धि लोक और लोक लोकपाल गुप्त प्रगट तीन काल काहूने सो ना छियो। नेति नेति श्रुति बखान सरस विपिन रसिक जान रस अमलान नरहरि नरेस ने पियो ॥१॥

श्री स्वामी गोविन्ददासजी–

बुंदेलखण्ड तन उदित मुदित संतन सुख दीन्यो।
तजि लोक लाज कुल कर्म वास वृन्दावन कीन्यो ॥
उज्वल रस की प्रीति रीति नवधा ते न्यारी।
श्रीराधा चरन प्रधान भजैं नित कुंजविहारी ॥
भगवत रूप उदार विमुख धर्मनि अति खण्डन।
अनन्य भजन दृढ़ करन देव नरहरि जग मण्डन ॥२॥
कीने भवन पवित्र दया करि जितु पगु धारे।
जिनको जीवनि लियो सरनि दरस त्रइताप निवारे ॥
तहाँ भक्ति प्रसिद्ध सबै परचे जु बताये।
जगन्नाथ के हुकुम दूरि के दरसन पाये ॥
भक्ति रूप निहकाम ह्वै तजि लोक लाज जग आस की।
ज्यों अन्ध हरन को तरन है भक्ति श्री नरहरिदास की ॥३॥
श्री कुंजविहारीदास आस दूजी नहिं कीनी।
हरि तन सनमुख भये पीठि सब जग को दीनी ॥
हरि भक्तनि सों पांति जाति कुल धर्म न मान्यौ।
पावत महा प्रसाद विदित सब जग में जान्यौ ॥

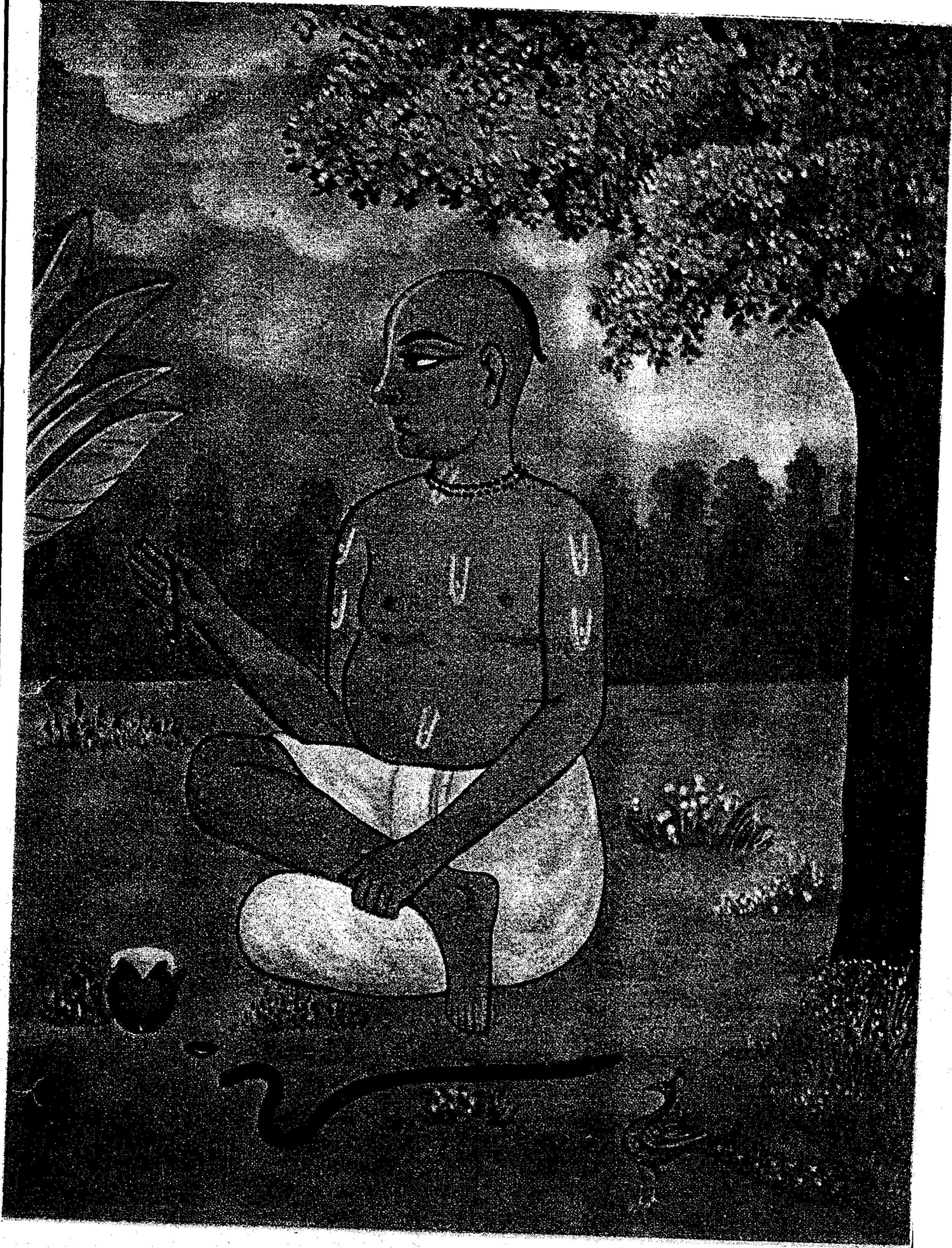
लोक वेद सों ना डरे विमुखनि सों नहि दीनता ।
श्री स्वामी नरहरिदास के देखी बडी अनन्यता ।।४।।
सब ग्रन्थनि को सार भक्ति चुनि रसकी लीनी ।
ग्यान कर्म द्वै कांड दृष्टि तिन नहिं तहाँ दीनी ।।
श्री वृन्दावन की भूमि लता जीव निर्मायक मानै ।
अरस परस नहिं भिन्न सुद्ध भगवत मय जानै ।।
महा महन्त जग अस्तुति करैं लोक फाँसि तोरी मेड की ।
श्रीस्वामी नरहरिदास जू करी भक्ति अति अैंड की ।।५।।

पारस के परसंग जैसे करि डारे हैं अनन्य नर विधि-निषेध छोडि के प्रसाद नाम नेम है । श्रीवृन्दावन वास ओ विलास रास रंग रसे जुगल प्रबीन को नवीन नेह नेम है ।। सोभा की मूरति संपूरन विराजमान सखिन अंग संग अैसे चुनि मिलि हेम है । भक्ति मर्याद विख्यात सन्त सेवन की स्वामी नरहरिदास दरस सर्व सिद्धि-छेम है ।।६।।

प्रगटे श्री नरहरिदेव उदार ।
श्री हरिदास ललित वपु धारचो महा प्रेम सुखसार।
श्री वृन्दावन सनमुख जिनने कीनें जीव अपार ।।
रसिक सिरोमनि की निज जीवनि निरखत नित्यविहार ।।७।।

श्री शील सखी जी–

जय जय नरहरिदेव प्रगट परचो दयो ।
आयसु दै जगदीस एक नर पाठयो ।।
कुष्टि व्याधि तें छूटि देह निरमल भई ।
कटी कर्म की फाँसि अविद्या सब गई ।।
गये तीनों ताप जाकैं हृदै पद पंकज बसे ।
भई तन की दसा औरें युगल रँग दृग रसमसे ।।
विसद पावन कर्म तिनके गाय नर जग उद्धरे ।
पाय पद अनुपम अलौकिक रूप दंपति के भरे ।।८।।



स्वामी श्री रसिक देवजू

श्री स्वामी रसिकदेव जू की प्रशंसा

प्राचीन वाणी से उद्धृत–

श्री स्वामी हरिदास कुल धर्म धुरन्धर धीर।
कलिजुग पवन न परसई दरसै रसिक सरीर॥
दरसै रसिक सरीर नाम सुनि ध्यान प्रकासै।
दरस परस चरणारविंद ह्वै उज्वल आसै॥
श्री मुख वचन श्रवन सुनत धारत निजु धामी।
श्री वृन्दाविपिन विलास के दाता श्री स्वामी॥१॥
निजु इष्ट भाव प्रवीन सेव्य स्यामाजू-विहारी।
प्रेम भक्ति रस-रीति सोई उर अन्तरधारी॥
सजन सुहृद सुसील सबनि सों मधुरी बानी।
राज-धान को त्याग गहैं सुध जीविका जानी॥
श्री हरिदास स्वामी पधति प्रगट अति दृढ वृन्दावन वास।
कलिकाल जीति हरि भजन वल नाम विदित श्रीरसिकदास॥२॥
प्रगट जगत कलिकाल परम धर्मी रस वरषत।
करत तोष अरु पोष हरष चरचा मन करषत॥
साधु संग अभिलाष करत आवैं दरसावैं।
कुंज केलि रस झेलि रहसि दंपति मनभावैं॥
असक्त न और प्रसंग कछू भले वास विपुन में जिनि कियो।
श्री रसिकदास जस अति सुखद नहि दुखाइ काहू लियो॥३॥
उज्वल रस के भाइ लाल ललना जु लडावत।
प्रेम मुदित अनुराग प्रीति रस चाह बढावत॥
संतनि को जु निवास दया जीवनि प्रतिपालै।
गुरु गोविंद एकत्त सेव्य करुना को आलै॥
श्री कुंजविहारनि लाडिली जिनकों सब भांतिन सुख दियो।
रस सिंधु केलि रस रूप ह्वै श्रीरसिकदास निज रस पियो॥४॥

सदाचार वैराग त्याग अनुरागै लियें।
सब सन्तनि सों हेत चित्त चरननि में दियें॥
प्रगट प्रेम जगमगत कहत मुख मधुरी बानी।
हाव भाव रस रीति प्रीति जिनहीं सों जानी॥
अर्जुन निरखत जुगल छवि सदा रहैं सुख पुंज में।
श्री रसिकदास राजैं सदा श्री वृन्दावन निधि कुंज में॥५॥

नव निकुंज सुख-पुंज में विलास रास ताही कौ प्रकास हियें और नाहीं आस है। विधि ओ निषेध सु तो नीकें करि छेदि डारे धारे उर प्रान प्यारे वचन मिठास है॥ अति ही अनन्य वितपन सेवा मानसी में सदा ही प्रसन्न रीति कीरति उजास है। उठत हुलास प्रिया माधुरी मृदुल हास रसिक रसिकदास विपुन सुवास है॥६॥

विविध विकार जात भ्रम भागत गात मदन मार नासत देखत दरस तैं। कामना पयानों करैं मोहादिक झूठ झरैं पाप के पहार गरैं चरन के परस तैं॥ आशंका आधि व्याधि जडता विषाद बाद मिटत अग्यान शीत पावत सरस तैं। प्रेम दृढ अनन्य महल रस-रीति जानें श्री रसिकदास दरस बानी के परस तैं।

दम्पति को प्रेम पियें छके स्वामी रसिकदास जानें रसरासि सो जग कों न जानहीं। श्रीवृन्दावन कल्पतरु सखियन की जहाँ भीर जैसो मनु जानै गुन तैसोई बखानहीं॥ प्यारी प्यारो खेल करैं खेल ही में प्रेम भरें प्रेम ही में व्याकुल जान तिनें रस सानहीं। वल्लभ मति हीन गुन कहां लौं बखानें जाइ भक्त भगवंत गति एकें सब जानहीं॥८॥

सब रसनि के निरनें करि रसिकनि सिखाइ देत बांधि रस ग्रंथिका ऐसी तुम पै बनि आवही। रस के बहु भेद भाइ कहिबें को अपार पार एक रस कह्यो जाइ एक कहिबे में न आवही॥ सरस रस-रीति-प्रीति अंग प्रिया ओर हू तें सरस रस रीति एक रसिकनि सुनावहीं। रसिक रसाल निहाल सदा रसहू में संग नव बाल लाल रससों खिलावहीं॥९॥

श्रीरसिकदेवजू की बानी

❊ रस की साखी ❊

रसिक निमिष नहिं बीछुरैं, ना दुरि बैठें और।
एतो माँन बिहार में, मुरत नैंन की कोर ॥१॥
रसिक रसीली बात सों, कहत प्रिया मुख मोरि।
करें बीनती साँवरो, नैननि में कर जोरि ॥२॥
सकल उदीपन मदन के, होत राग रस रंग।
रसिकबिहारी यह सुख विलसत, तहाँ मुरली नहिं संग ॥३॥
मेरे जिय में पिय बसैं, मैं पिय के जिय माहिं।
ऐसी अधिकी कौनि है जो, जुगल चित्त पगि जाहिं ॥४॥
दोइ भुज बिच दोइ भाँमिनी, तीजी स्याम के बीच।
ऐसी अधिकी कौनि है, मची समर की कीच ॥५॥
सखिन जु राधा ओर की, उलटि परी श्रुति चाह।
नख सिख ते स्यामा बनी, चाहत हरि पति नाह ॥६॥
मंद हँसनि मुख कमल की, मुरि चितवनि इहि ओर।
बसि करचौ तिहि भाँमिनी, लै गई प्राँन अकोर ॥७॥
मन सीसी राधा अतर, नख-सिख भरी बनाइ।
ताहि देखत मोह्यौ साँवरो, भँवर बास लपटाइ ॥८॥
बहु प्रवीन बैठी रहीं, काहू जानी नाहिं।
संकेती संकेत बदि, निकसि गये बीच माँहि ॥९॥
खटकौ नहीं उसास को, ना काहू सौं भाव।
गौर स्याँम मन में अरे, लख आवहु लख जाव ॥१०॥
उलटि लगे मन स्याँम सौं, प्रिया भाव व्है जाइ।
सखी भाव तब जानिये, पुरुष भाव मिटि जाइ ॥११॥

पुरुष भाव छूटै नहीं, मन में बस रही जोइ।
सखी भाव तब जानिये, निरविकार तन होइ ॥१२॥

॥ इति रस की साखी सम्पूर्ण ॥

※ सिद्धान्त के पद ※

※ राग सारंग ※

कल नहिं परत स्याम बिन देखै, रहे प्रान चकिचूर।
कठिन अजीरन भई रूप की, ओषधि लगत न मूर ॥
भेदत नहीं ज्ञान गीता को, सुनी कथा भरिपूरि।
रसिकबिहारी की छबि ऊपर, किये जतन सब दूरि ॥१॥

श्रीबिहारीजी महाराज के देखे बिना कैसे हू कल नाँइ परि, हमारे प्रान चकचूर है रहैं हैं। बिनके अति रस-रंगभरे महा मनोहर रूप कौ मन में ऐसौ कठिन अजीरन है गयौ है, जो औषधि स्वरूप उपाय कोऊ काम ही नाँइ देवै है। प्रेम कूँ सिथिल करिबेवारो ज्ञानरूपी औषधि साक्षात् श्रीगीताजी को कथा हू हमने भरपूर सुनी, किन्तु वोहू हमारे मन कूँ भेदन नाँइ करि सकी। याते अंत में हमने श्रीरसिकबिहारीजी महाराज की छबि-छटा के ऊपर यावत् साधनस्वरूप यत्नन कूँ भलीभाँति दूर करि दीने हैं।

※ राग बिहागरो ※

स्याँम हौं तुम्हरे गरैं परचौ।
जो बीती तुमही सों बीती मन मानैं सु करौ ॥
करी अनीति कछू मिति नाहीं नख सिख दोष भरौ।
मो तन चितै आप तन चितवो अपने विरद ढरौ ॥
कीजै लाज सरन आये की जिन जिय दोष धरौ।
अपनी जाँघ उघारैं सुख सागर तुमहीं लाज मरौ ॥

बिनती करौं काहि हौं मिलि कैं सब कोऊ कहत बुरौ।
रसिकदास की आस करुनानिधि तुमहीं ढरो सो ढरो ।।२।।

फिर आप श्रीबिहारीजी महाराज सों ही कहिबे लगे कि— हे प्राननाथ ! मैं आपके गरे परि गयौ हूँ, और आपसों भलीभाँति प्रतिज्ञापूर्वक प्रार्थना करू हूँ कि—काहू साध्य-साधनन के द्वार पै कबहूँ नाँइ जाय कें एकमात्र आपकी ही सरन में मेरी सब बीती है। अब आपके मन में जैसे आवै, तैसे ही करौ। मैं नख ते सिख पर्यन्त दोषन ते ही भरचौ भयौ होइबे के कारन इतेक अनीति कीनी है जाको कोऊ मित ही नाँइ करि सकै है। जब श्रीबिहारीजी महाराज ने कछु उत्तर नाँइ दीनौ, तब प्रार्थना करते भये आप फिर बोले कि—हे प्रभू ! मैं समस्त रीतिभाँति सों आपकी सरन में आइ परचौ हूँ, याकी लज्जा अपने मन में करि, मेरे दोषन के माऊँ जिन देखो ? क्यौंकि जैसे अपनी जाँघ उघारिबे ते अपने कूँ ही लज्जा आवै है, तैसे ही अपनी सरन आइबेवारे कूँ त्यागिबे ते आपकूँ ही लजावनो परैगो। मैं तो इतेक अति अधम एवं नीच हूँ, जोकि सब संसार मोकूँ बुरौ ही बुरौ बतावै है, याते काहू सों मिलि कें हू, आपसों प्रार्थना नाँइ करि सकूँ हूँ। मेरी तो केवल यही आसा है कि आप निरहेतुक अगाध-करुना के सागर हो, आप ही जो कछु ढरौगे सो ढरौगे, मैं काहू योग्य नाँइ हूँ।

भागि बडौ वृन्दावन पायो।
जा रज कों सुर नर मुनि बंछित बिधि संकर सिरनायो ।।
बहुतक जुग या रज बिनु बीते जन्म जन्म डहकायो।
सो रज अब कृपा करि दीनी अभै निसान बजायो ।।
आइ मिल्यौ परिवार आपनें हरि हँसि कंठ लगायो।
स्यामा स्याम जू बिहरत दोऊ सखी समाज मिलायो ।।
सोग संताप करो मति कोई दाव भलो बनि आयो।
श्रीरसिकबिहारी की गति पाई धनि धनि लोक कहायो ।।३।।

श्रीवृन्दावन अखंड बास करिबेवारे निज आश्रितन ते आप बोले कि—हे भाई! तुमने सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू कौ निज विलासरस-महल श्रीवृन्दावन कौ अखंड बास प्राप्त है गयौ है, या तुम्हारे बड़भाग्य कौ उनमान-साक्षात् श्रीशेष-महेश एवं ब्रह्मादिक हू नाँइ लगाय सकें हैं, कारन मायिक पुत्र-पौत्रादिक धन-संपत्ति जगत की इज्जत आदि कूँ पाय कें अपने कूँ बड़भागी मानें हैं, वाकूँ नाशवान, उद्वेगित एवं

भगवद्-भक्तिपथ सों बहिर्मुख करिबेवारी समझि, तुमने वामें अपनो मन नाँइ दीनौ। ऐसे ही स्वर्गादिकन की प्राप्ति कराइबेवारे कर्म-धर्मन में हू अपनो मन नाँइ जावन दीनौ, सो तो ठीक ही है, किन्तु सम्यक् प्रकार माया ते संबंध छुटाय, ब्रह्मानन्द प्राप्त कराइबेवारो ब्रह्मज्ञान कूँ हूँ, लाड़-प्यार सेवा-सुख आस्वादन ते विहीन समझि, भली-भाँति वाकूँ हूँ तुमने त्यागि दीनौं। ऐसे ही सर्वशक्तिमान्-सर्वगुण सम्पन्न श्रीभगवान की दासतारूपी भक्ति कूँ हूँ मनमाने सेवा-सुख में गौरव-भय-संकोचरूपी बाधा के कारन, वाहू सों मन हटाय प्रेमपथ के ही तुम पथिक बने।

जब प्रेम को हू सार, रस स्वरूप को ज्ञान तुम्हें भयो, तब तो कृपा-बल के कारन तुम्हारी बुद्धि रस में हू सर्वोपरि रस कूँ खोजिबे लगी। महतन के वर्णन द्वारा शृंगार रस कूँ सर्वोपरि जानि, तिनकी मूलस्वरूपा श्रीस्वामिनीजू कूँ समझि, बिनके हू संयोग-वियोगात्मक स्थूल-रस विलासन कूँ समस्त रीतिभाँति सों तुमने ताय-छानि करि, श्रीस्वामीजी महाराज की साँची कृपा द्वारा श्रीस्वामिनीजू के प्रथम समागम एकान्त रस-बिलास को निपट नित्यविहार के सर्वोपरि स्वरूप कूँ समझि, श्रीवृन्दावन में अखंड बसिबे को दृढ-अनन्य प्रन करि लीनौ, याते तुम समस्त बड़भागीपने के सारातिसार स्वरूप कूँ सहज प्राप्त है गये।

या रज की प्राप्ति के ताईं समस्त देवगण, ऋषि-मुनि एवं बड़े-बड़े महत्पुरुष सतत-बांछा ही कियो करें हैं। स्वयं श्रीब्रह्मा, शिवजी तो नित्य सदा-सर्वदा माथो नवाते रहैं हैं। या रज की प्राप्ति के बिना ही तुम्हारे अनन्त जुग-जन्म यों ही डहकते-डहकते बीत गये हैं। अब वो रज स्वयं श्रीनित्यविहारिनीजू ने अपनी निज कृपा के वसीभूत होइ, तुम्हें दै दीनी है, ताते तुम अपने मन में सदाकाल अभय निसान बजाओ। देखो! या श्रीरजरानी के अद्भुत प्रताप ते ही आज हम अपने परिवार स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज, स्वामी श्रीबीठलबिपुलदेवजू, श्रीगुरुदेवजू आदि समस्त सहचरि परिकर सों तो आय कें मिलि गये हैं, और स्वयं श्रीबिहारीजी महाराज ने अति प्रसन्न होइ, हँसि कें हमें कंठ सों लगाइ, जहाँ आप निज केलि करें हैं, तहाँ लै जाय सखी समाज में हमें मिलाइ दीनौ। याते मैं तुमसों कहूँ हूँ कि या जन्म में तुम्हारो बहुत ही सुन्दर दाउ बनि गयो है। अब तुमने काहू प्रकार कौ शोक-संताप अपने मन में कैसे हू नाँइ करनो चहिये।

हम तुमसों साँची बात कहैं हैं कि साक्षात श्रीरसिकबिहारीजी महाराज कें तन, मन, प्रान, रोम-रोम की गति स्वरूप सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू या रज के

प्रताप तें हमें प्राप्त है गई हैं, और तुम्हैं हू होंयगी, ताते तुम समस्त लोकन में धन्य-धन्य कहावोगे।

सखी री मन के स्याम सुखदाई।
प्रगट स्याम सों कौन मिलै अब बिछुरैं होत दुखदाई॥
निसि-दिन पलक एक नहिं छोडत षोषत मन के भाई।
अंतरगत बिहरत जु दुराने भेंटत कंठ लगाई॥
सोवत जागत संग ही डोलत जितहीं तित मन जाई।
इन्हैं उन्हैं यह भेद कहा है मदन तेज अधिकाई॥
बिरह दुख होत नहिं जातें ये चतुरन के राई।
श्रीरसिकबिहारी सो कहत बिहारिनि मिलिये बोल हराई॥४॥

हे सखी ! मन में जो श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू निरंतर बिहार करैं, वे ही स्याम सदाकाल सुखदाई होय हैं। याते अब हम प्रगट होइबेवारे स्याम सों यों नाँइ मिलै हैं जोकि बिनको बियोग हुए बिना नाँइ रहि सकै है। ये स्याम रातदिन एक पलक हू नाँइ छाँड़ि कें सतत हमारे मन कूँ पोषण कियो करें हैं। सबसों छुपे भये अंतरगत हृदय में कंठ सों कंठ लगाइ सतत विहार करते रहैं हैं। सोते-जागते जहाँ-जहाँ हमारो मन जाइ है, तहाँ-तहाँ हीं संग-संग डोल्यौ करैं हैं। यदि कोऊ ये बात कहै कि इनमें-बिनमें कहा भेद है, तो हम स्पष्ट कहैं हैं कि इनके मदन तेज अति अधिक स्वरूप सों निरंतर बढ़तो रहै है, जासों कामकेलि रस-बिलास कूँ छिनमात्र हूँ ये नाँइ त्यागि सकैं हैं। ऐसे चतुरन के सिरोमनि हैं कि बिरह-दुख कूँ तौ सपरस हूँ नाँइ होन देवैं हैं। हमारी प्रानेश्वरीजू श्रीबिहारीजू सों ऐसे कहती रहैं हैं कि सदा मौन होइ के ही हम-तुम दोऊ खेलते रहैं।

चाँपत चुपरत सेज पर श्रीबिहारीदास मुख मौन। —श्रीगुरुदेवजू

× × ×

नवल मनोजन मौज चोज हित नवल दरस मुख मौन।
नवल छैल छबि छुवत नवल अलि यह सुख बरनै कौन॥ —श्रीस्वामीनागरीदेवजू

* श्रीब्रज रस देस को अंग *

कारन कौन अनबोले मोहन, गहे कौन उर बात।
निसदिन निरखत बदन तुम्हारो, मिलत गात सों गात ॥
मन मधुकर या छबि को कीनौं, बास जु लेत सकात।
श्रीरसिकबिहारी बंक जिन राखो करुनामय मनु जात ॥५॥

* राग केदारौ *

एजू स्याम सलोने गात हो।
सखीन के मध्य रसिक कुंवर वर मंद मंद मुसकात हो ॥
बसन ढके अति अंग विराजत विधु बदरनु छ्वैरहात हो।
सोभित नैंन अरुन ललिचाने कहत कछू सकुचात हो ॥
बदन सलोनें दृग अति पैनै बेधि मरम को जात हो।
श्रीरसिकबिहारी छबि पर वारी रूप निरखि न अघात हो ॥६॥

अरी यह कौन सलौंने रूप।
हँसि हँसि बातैं कहत सखी यह कुंवर कहूँ को भूप ॥
स्याम अंग पीत पट राजत माथे मुकुट अनूप।
भृकुटी विकट नैंन रस वरसत वदन सुधा निधि ऊप ॥
कुंडल किरन कुटिल अलकावलि रही कपोलनि झूप।
श्रीरसिकबिहारी की छबि निरखत मदन तेज तन तूप ॥७॥

अहो हम जानत स्याम तिहारे मन की।
यह तो बात कहो तुम तासों जो न होय तुम्हरे घर की ॥
यह तो दुराव तासों करो जो न जानैं अधर पर की।
श्रीरसिकबिहारी यह टेव न गई री आँन धन या डर की ॥८॥

* राग विहागरो *

हाहा कारे बदरा मेरो भरत नैंन को कजरा।
तेरे बरन कहूँ स्याम भुलाने आँन कुंज के डगरा ॥
हौं माँननि कछु माँन कियौ आँन बाम के पगरा।
श्रीरसिकबिहारी बिहँसि मिले तब बुझि गई तपन भरम गयो सगरा ॥९॥

* निज रस रीति के पद *

स्यामा प्यारी मेरो तेरो जीय क्यों हू मिलि जाइ।
तू मोको हौं तोकों भावत रहैं परस्पर हियै समाइ॥
सुरत सनेह जिय अंतर पारे तापर मेरी कछु न बसाइ।
नव नव केलि रूप रस राधे राखत प्राननि लाड लडाय॥
श्रीरसिकबिहारी यह सुख बिलसत एक टक नैंना रहे लगाय।
यातैं त्रिपत होत नहिं कबहूँ उपजत अगनित भाय॥१०॥

तुम्हारो तो परचौ मान को सुभाव।
तुम्हारी खोट कै इनकी कहियै कौंन करे यह न्याव॥
एतो तिहारे रूप रस लोभी मुख जोवत दिन जाव।
छिन में रस बेरस करि डारत को पकरै कर बाव॥
समझि देखि राधे मन माँही बिनु पानी की नाव।
श्रीरसिकबिहारी रस बस कीनें अपनें अपनें दाव॥११॥

अरी माँन न कीजै रसीले स्याम सौं।
तुम तो हो स्याम की अँखियाँ ये बंधे तिहारे दाँम सौं॥
बिनु आगस जिय दोष धरति हो निरखि आप सी वाम सों।
श्रीरसिकबिहारनि जानि अपनपौ विहँसि मिली पिय धाँम सौं॥१२॥

स्यामा प्यारी आजु कछु रीझि देहैं री।
करि सिंगार दर्पन दिखरावत तेरे मन मानो है री॥
साखि दई ललिता हरिदासी श्रीनरहरिदासी यौं बात कहै री।
श्रीरसिकबिहारी यह वर माँगत मान गाँस जिनि हियैं गहै री॥१३॥

सोहत नैंन कमल रतनारे।
रूप भरे मटकत खंजन से मनौं बान अनियारे॥
माथे मुकुट लटक ग्रीवाँ की चितत‌ैं टरत न टारे।
अलि-गन मनु झुकि रहै वदन पर केस तें घूँघरवारे॥
छूटे बंद झीनों तन बागौ मुकुर रूप तन कारे।

ढरकि रही माला मोतिन की छकित छैल मतवारे ॥
अंग अंग की सोभा निरखत हरषत प्रान हमारे ।
श्रीरसिकबिहारी की छबि बरनत कोटिक कविजन हारे ॥१४॥

प्यारी जू तैं मोहि मोल लियो ।
तेरी कृपा मदन दल जीत्यौ तेरो जिवायो जियो ॥
उमडी सैन महा मममथ की तैं अधरामृत दियो ।
श्रीरसिकबिहारी कहत दीन ह्वै धनि स्यामा को हियो ॥१५॥

स्यामा स्याम रूप रस चाखैं ।
कुंज महल अकेले दोऊ तहाँ न कोऊ झाँखैं ॥
बैठी आप ठाढे लाल पकरि पकरि कर राखैं ।
ठाढे रहौ किंकनी सँवारौ मंद मधुर सुर भाखैं ॥
अंग अंग ललचाइ रहे मन उमगी उर अभिलाखैं ।
श्रीरसिकबिहारी यह सुख विलसत निकट भये सुख दाखैं ॥१६॥

बनि दुकूल बैठे परजंक ।
कमल नैंन अंग छबि निरखत प्यारी भरे जु अंक ॥
धन्य धन्य पिय मानि अपनपौ ज्यौं निधि पाये रंक ।
श्रीरसिकबिहारी यह सुख विलसत तहाँ निकट निसंक ॥१७॥

जानत मोहन मन के भाय ।
जोई जोई जिय उपजत प्यारी कैं चलत लाडिलो लियैं सुभाय ॥
चित आकर्षै और खेल ते मन की दसा रही ठहराय ।
तू मेरें हौं तेरे प्राननि भीतर भेंटे जाय ॥
कुंज-महल गंभीर सुखद सुख तहाँ जु बैठे आय ।
मच्यौ [illegible]क्षिनि खेल परस्पर फूले अंग न माय ॥
रति सुख समय कहत नहिं आवै प्रिया प्रान में लये समाय ।
श्रीरसिकबिहारी यह सुख विलसत देखत हियो सिराय ॥१८॥

लेत परस्पर अंग सुवास
मन तरंग उठत मनमथ की और न कछू प्रकास ।।
रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास ।
श्रीरसिकबिहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास ।।१९।।

* राग बसन्त *

श्रीबिहारीजू खेलत बसंत
रंग भरी सब सखी विराजत राधे जू रूप लसंत ।।
फूले जोवन मौर मंजरी अधर पान उलहंत ।
आयौ मदन मनों सैन साजि कैं चँवर चिकुर ढरंत ।।
छूटत मूक झूक सौरभ की नैन 'गुलाल उडंत ।
कूजत मधुकर मंजीर कोकिला बाजे बजत अनंत ।।
मच्यौ परस्पर खेल कटाक्षिन क्रीडत भामिनि कंत ।
श्रीरसिकबिहारी को सुख निरखत धीरज कौन धरंत ।।२०।।

* धमारि राग विहागरो *

होरी खेलनि स्याम हुलसि छबीली आई ।
अबीर गुलाल लिएँ नैननि में आजु करत मन भाई ।
बाजे बजत दुहुँ दिसि नीके मनमथ मोद बढाई ।
छबि तरंग छूटत पिचकारी भृकुटिन मार मचाई ।।
गावत गीत रस-रीति जीति के पुलकि किलकि सुखदाई ।
श्रीरसिकबिहारिनि की छबि निरखत ज्यौं दामिनि घन छाई ।।२१।।

* राग सारंग *

हो होरी खेलै साँवरो कुंवरि लाडिली साथ ।
ललिता चोंप लगाइ दुहुँ दिसि गहि पकराये हाथ ।।
प्रेम भरे जु फाग दोउ खेलत भई दुहूँ दिसि भीर ।
आनंद उमगि गही कर जेरी धरत निमिष नहिं धीर ।।
भरि पिचकें मनों सुरति की हो छुटत दृगन की कोर ।

उडत अबीर गुलाल फूल सतभाइ अतर के बोर ।।
मंद मधुर बाजे बजैं हो बाढचौ अति उत्साह ।
छाइ रह्यौ अनुराग परस्पर देत नेक नहिं चाह ।।
इहि बिधि खेल मच्यौ कुंजनि में रंगे प्रेम के रंग ।
यह सुख देखत सखी सबै दुरि रसिक बिहारिनि संग ।।२२।।

* राग मलार *

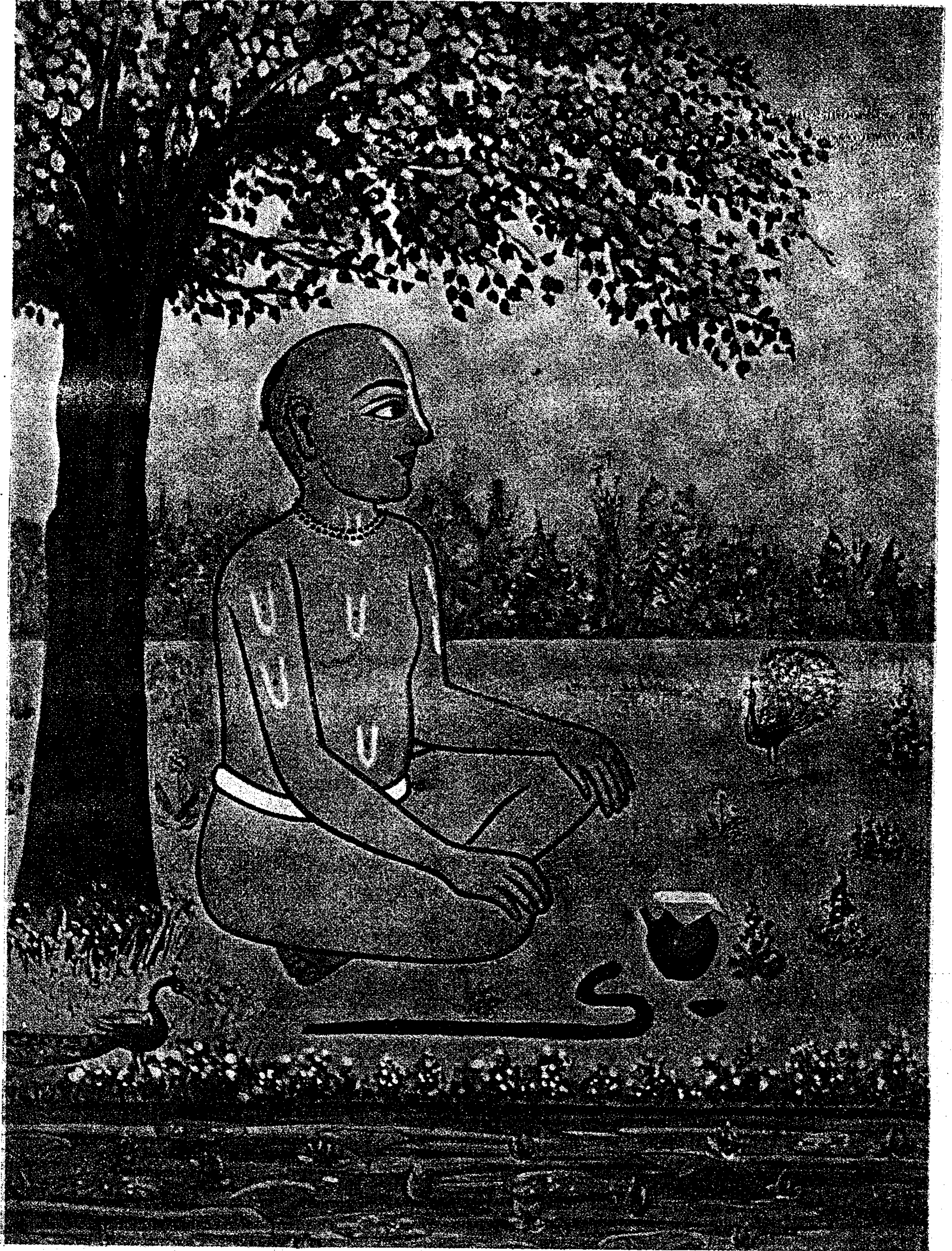
हिंडोरे झूलत तन सुकुमार ।
पुलकि पुलकि राधे उर लागत प्रीतम प्रान अधार ।।
भाइ बसन सजे मनसिज के उर वर हार सुढार ।
सुख में झूलत कुंवरि लाडिलो रमकत स्यांम उदार ।।
जुगल रूप अनूप विराजत मनमथ भेद अपार ।
श्रीरसिकबिहारी को सुख निरखत खरे कुंज के द्वार ।।२३।।

* राग गौरी *

मंद मंद गति धरति अवनि पग स्यामा जू देखत वन सोभा । प्रीतम कौ गहैं हाथ पाछै निजु सखी साथ चौंर सौं भौंर उडावत निकट झुकि आवत सौरभ के लोभा ।। कालिंदी के कूल नाना विधि फूले फूल रहसि कछु कहत बात मंद मुसिक्यात चितवत चित चोभा । श्रीरसिकबिहारी रूप उज्यारी बैठे पुलिन बिछाइ दुकूल आनन्द के गोभा ।।२४।।

* राग बिहागरो *

दूलह दुलहिन अधिक बनी ।
पूजन चली कलपतरु सुन्दरि औरहि ठान ठनी ।।
कियो है सखिन गठ जोर सबन मिलि आगे धन पाछे जु धनी।
गावत चली गीत मंगल के सबही सुघर सजनी ।।
रुनक झुनक पग धरत धरनि पर छबि पावत अवनी ।
छिरकि सुगन्ध मूल तरु पूज्यौ फूलनि माल घनी ।।
अंचल जोरि यहै वर मांगौं रहौ यह प्रेम सनी ।
श्रीरसिकबिहारिनि होहु न मान छक केल कला कमनी ।।२५।।



स्वामी श्री ललित किशोरी देवजू

श्री स्वामी ललितकिशोरीदेवजू की प्रशंसा

लोक वेद नवधा प्रसिद्ध सुख कौन तरै लीला अवतार।
कर्म धर्म की आस त्रास नित अति भै भीत बहुत संसार ।।
लोभी लोग भोग के लालच पचि मरते विद्या आचार।
जो न प्रगटती ललितकिशोरी तो न प्रगटतो नित्यविहार ।।१।।

प्रबल प्रताप कल दशहू दिशान मद्धि अमित विराग निधि प्रभुता अतूल हैं। दृगनि विशाल पर वारौं कंज-मालनि कौं कृपा की चितौनि चारु जन अनुकूल हैं ।। युगल अनूप रूप आसव कौं पान करि काहू की न आश मन तनहूँ की भूल हैं। जाहिर जहान में प्रशंसित महान सब ललितकिशोरी मुद मंगल कों मूल हैं ।।२।।

जय जय ललित किशोरीदास कौ मत निपट अगाध है।
औरै विविध प्रपंच तौ तरक विशाद है ।।
वानी विमल विभूति निरन्तर सुख सनी।
निसि दिवस पिय कौ प्यार गर्जतु सिर पै धनी ।।
धनी श्रीहरिदास सौं जिन आपनौं सुख सब दियौ।
महल केलि बिलास के सुख सौं सदा सींच्यौ हियौ ।।
मेघ ह्वै वरषैं विहारिनिदास जू 'पोषैं सदा।
दियो अपनो सुकृत सर्वस रसिक प्रमुदित सर्वदा ।।३।।

जय जय ललितकिशोरी पद नख शशि कौमुदी प्रकासी।
फूले कुमुद चकोर सदा जन जिन हिय भासी ।।
दूर भये त्रैताप पाप गये और के।
पारस सो भये पारस निपट मरोर के ।।
मरोर मन माते विरद बल ललित प्रिय अपनै करे।
तीनि पुर गाजत निडर ह्वै युगल छवि लोचन भरे ।।

करनी न जन की चित धरें लघु सुकृत बहु विध मानही।
जय ललित प्रिय नागरि सिरोमनि जियन की सब जानही ।।४।।

जय जय ललित किशोरीदास कलित कीरति जग छाई।
विचित्र विहारिनिदास विभौ विलसत मन भाई ।।
श्रीललिता रस गर्व भरे बनराज कलोलें।
दम्पति केलि विलोकि धीर मति नेंकु न डोलें ।।
बोलें वचन सम सुधा से सुनि पीय विहारी हरषहीं।
छिन छिन मुदित मन ह्वै लडैती कृपा अति रस बरसहीं ।।
प्रगट वृन्दाविपिन चिन्तामणि किसोरीदासजू अति जगमगे।
भये सुकृत सांचे सदा जिनके पंथ सुनि इनके लगे ।।५।।

जय जय ललितकिसोरीदास सुख कौ सुख-सागर।
उपजै रत्न अमोल अलौकिक नागर ।।
श्रीगुरु के रस वचन वेलि मर्यादा फूली।
विधि-निषेद जडकर्मन की गति भइ तहँ लूली ।।
भई गति लूली जु तिनकी निगम जे वंचित करे।
हरिदास नाम जिहाज बिन सुनियत न कोउ भव तरे ।।
इहि सिन्धु कर्मी कृपन कादर कुटिल मन अति डोलहीं।
प्रेमी रसिक जन सर्वदा मन मुदित ह्वै सुख लोलहीं ।।६।।

जय जय ललितकिसोरीदास विमल विरदावलि सोहै।
दीननि के प्रतिपाल दयाल न अैसौ कोहै ।।
मैं जडबुद्धि कृपनु कहाँ यह सम्पति पाऊँ।
तुम्हरी कृपा विलोकनि तै गुण गाय सुनाऊँ ।।
गाऊँ विसद गुन यथामति अति बिरदबल दृढ पाय कैं।
तुम दयानिधि अब कै जगत तें लेउ जनहि छुडाय कैं ।।
कीजै न अब कछु गहरु करुणासिन्धु सरणागति पर्यौ।
अब कै विनय सुन चित्त धरि सखि शील बडभागिनि कर्यौ ।।७

मंगल श्रीहरिदास को सकल गुननि की खानि।
ललितकिसोरी पद कमल सबकौ मंगल दानि ।।
सबकौ मंगल दानि रहत करुणा में भीनौ।
जे जन आये सरन तिनहिं आपुन सम कीनौ ।।
सोलसखी मति मन्द अति भव सागर ते उद्धरी।
आनन्द निधि सुख सरस-निधि ललित प्रिये करुणा करी ।।८

श्रीललित किसोरी कृपा सरूप। श्री स्वामी कौ दूजौ रूप ।।
सब रसिकन कौ है यह भूप। निर उपमा ये सहज अनूप ।।९।।

जय जय ललितकिसोरी केलि सुख मंडना।
ललित प्रेमकी दान भरम भै षंडना ।।
ललित रूप रस चन्द उदित अति छबि छई।
वरषत सुधा समूह किरनि अति सुख मई ।।
सुखमई किरण प्रकास चहुँ दिसि ललित रस वरषा करी।
फैलि फूलि प्रताप सौरभ रसिक कुमुदिनि रस भरी ।।
ललित रंग विलास विलसत वलित कर भुज दण्डना।
जय जय ललितकिसोरी केलि सुख मण्डना ।।१०।।

जय जय ललितकिसोरी ललित रस वपु धरचो।
ललित कृपा अनुसार सार रस विसतरचौ ।।
निज रसरीति प्रतीत प्रगट अति सुख सच्यौ।
सर्वसुसार विहार विदित अति रंग रच्यौ ।।
रच्यौ विदित विहार स्वामी सहज सुख निर्नै कियो।
महामधुर उपास अद्भुत प्रगट रसिकन रस दियौ ।।
पद रेंनु परसत मिटत कलमष सहज श्रम तम परिहरचौ।
जय जय ललितकिसोरी ललित रस वपु धरचौ ।।११।।

जय जय ललितकिसोरी ललित रस रंगनी।
सुरति सहायक सखी केलि सुख संगनी ।।

स्यामा अति अभिराम स्याम सुन्दर धनी।
तनु पराग मन फूल अलौकिक छवि बनी ।।
बनी अति अभिराम स्यामास्याम विरद विकासनी।
ललित रूप अनूप छिन छिन नवल नेह निवासनी ।।
पिय रंग अंग अनंग सींचत प्रिया प्रेम-तरंगनी।
जय जय ललितकिसोरी ललित रस रंगनी ।।१२।।

जय जय ललितकिसोरी रसिक सुख-दानजू।
पिय प्राननि के प्रान प्रिये मन-जानजू ।।
अंग संगी दिन रैन करत कल गानजू।
ललना लाल लुभाय ढरत उर आनजू ।।
ढरत भाय लुभाय ललना लाल मकरन्दन छकी।
सहज थिर सिरमंग सुन्दर सुरति सुख नाहिन थकी ।।
नित अति अनूपम रूप दम्पति करन आसव पानजू।
जय जय ललितकिसोरी रसिक सुख-दानजू ।।१३।।

जय जय ललितकिसोरी-सरन जे सुख जिये।
ललित प्रिये रंग भीज रीझि अंकौं लिये ।।
नित दम्पति सुख-रास विलासन सुख लहै।
ललितकिसोरी नाम समझि रसना कहै ।।
कहै रसना नाम अनुदिन ललित छबि नैनन छई।
रसद श्रीहरिदास सोभा निरख अलि बलि बलि गई ।।
आनन्द कन्द सुछन्द सम्पति सहज दम्पति रस पिये।
जय जय ललितकिसोरी सरन जे सुख जिये ।।१४।।

कर करुवो कोपीन एक रस विपुन विराजैं।
प्रियालाल धन धारि हृदै अति निर्भै गाजैं ।।
छिन छिन प्रति रस-रास केलि दंपति सुख निरखैं।
सब जीवनि पर दया दृष्टि ईन्द्र सम बरषैं ।।

अति उदार निरपेक्ष अति प्रिया प्रेम रंग रगमगे।
श्रीहरिदास वंस उद्दोत कर किसोरीदास जग जगमगे ।।१५।।

श्रीस्वामी हरिदासजू बहुरि कृपा वपु धार।
सहज दियौ निज जनन कौं दुर्लभ नित्य विहार ।।
दुर्लभ नित्यविहार निभैं गावत रहि छिन छिन।
प्यारी पियहि रिझाय आप रीझत पुनि निसिदिन ।।
निरखत दम्पति केलि सुख श्रीललितकिसोरी नामी।
अति उदार सुखसार वर प्रगट भये श्री स्वामी ।।१६।।

स्वामी धन धर्म रसरीति सौं प्रतीति प्रीति करुना कै दृढाय अति रंग विसतार्यौ है। नित्य कलकेलि रूप प्रगट दिखाय दीनों लीनों गहि हाथ जो सनाथ कै निहार्यौ है ।। वृन्दावन कुंज महामाधुरी कौ पान करैं अति सुख पुंज रूप दम्पति दुलार्यौ है। रसिककुलमनि-प्रकास श्री ललितहरिदासजू कौ प्रगट किसोरीदास कृपा-वपु धार्यौ है ।।१७।।

अगम ते अगम अति दुर्लभ निकुंज रस सुल्लभ दिखाय रूप रसिकन दृढायो है। घुरत निसान गुन विरद बखानें कौंन साधक अरु सिद्धन प्रसंसि सिर नायो है ।। सुभग सिंहासन निधिवन निकुंज धाम ललितकिसोरी नाम विरदवर पायो है। रसिक-नृपति वर वंस रसराज रानी रसिक तिलक दैं राज कौं पठायो है ।।१८।।

अति उदार सुख पुंज सुनिधिवन कुंज विराजैं।
मत्त मुदित रस उदित स्याम स्यामा सुख साजैं ।।
रसिक कुमुद विधु उदो मनों फूली उजियारी।
वरषत सुधा समूह सहज भ्रमु तमु निरवारी ।।
प्रिया लाड लाडत रहैं महा प्रेम अति रंग भर।
प्रगट रूप श्रीहरिदास कौ श्रीकिसोरीदास जस विरदवर ।।१९।।

जे जे आये सरन तेई निज अपनैं कीने।
निरखैं निसिदिन सुखद केलिरस-रूप नवीने ।।

छके रहैं महाभाय पियें मकरन्द स्वाद सुख।
एक रूप रस वैस प्रिये नित्य लियें रहत रुख ॥
अति उदार दीनों सहज कुंज सुजस रस उदोकरि।
श्री स्वामी हरिदासजू ललित रूप प्रगटे बहुरि ॥२०॥

रसिकमन हेत प्रगटे कृपारूप श्री हरिदास के वंस उद्दोतकारी।
नित्यकलकेलि की वेलि फूली मनों श्रवत मकरंद अलिगन जिवारी ॥
कुंजसोभा सुनिधि रसिकता की अवधि रहत उनमत्त आनंद उदारी।
श्रीललित वर जय किसोरी रटत नाम दृग कंज क्रीडत विहारिन विहारी ॥

लाडिली कौं लाड किधौं प्रीतम कौ प्रेम किधौं महामाधुरी तरंग आनन्द निकेतरी। सोभा कौ सिंगार किधौं अवधि रिझिवारता की रसिक-दुलारी प्यारी पिय सुख देतरी ॥ करुनानिधान गुन कहां लौं बखान करौं सुरति सुहाग फूल फूल्यौ रस खेतरी। श्रीललितकिसोरी रूप प्रगट कृपा अनूप राख्यौ रस वंस निज रसिकन सुहेतरी ॥२२॥

लाडिली कौ विनोद किधौं प्रीतम कौ प्रेम नित्य सरस गुन-गर्व रस चाडन समेत हैं। सेज कौ सुवास किधौं रंग कौ विलास आली सुख कौ निवास मन आनंद निकेत हैं ॥ रूप की निकुंज सोभा फूली हाव भावन सौं चाव चित चातुरी कौ आतुर अचेत हैं। ललितकिसोरी रूप प्रगटो कृपा अनूप रसिक अनन्यनि के आनन्द के हेत हैं ॥२३॥

श्री ललितकिसोरीजू कौ सुजस अपार पार कोऊ नहीं पावहीं। गौर सांवल स्वरूप रससिंधु कौ अधार काम-केलि की तरंग सोई हाव-भाव उपजावहीं ॥ करत गुन गान गम्भीर धीर लाल अधीर होत धीरजु गहावहीं। लाडिली के लाड की रसरीति प्रीति कौ विलास सब भाइन प्रवीन सो चाइन विलसावहीं ॥२४॥

किधौं हरिदास आप जपत विहार जाप विपुल विनोद किधौं मोद भरि भोरी है। किधौं श्रीविहारिनदास सरस सनेह रास अति मृदुहास महाचातुर चित चोरी है ॥ रस रूप अनूप रसिक स्वरूप भूप उपमा न

आन प्रान जीवन सु गोरी है। नागरी नवल नैन लखि लखि होत चैन श्रीकिसोरीदास किधौं नवलकिसोरी है ।।२५।।

एक ही स्वरूप भूप सरस अनूप दोऊ एक मन एक प्रान एक तनु गोरी है। एक ही शृङ्गार सुख-सार रिझवारि अंग अंगनि सुढार महा-चतुर चितचोरी है ।। एक प्रेम गान राग रागनी समान तान नैनन सौं नैन जोरैं सखी नव जोरी है। नागरी निहार सोभा उपमा सब थकित लोभा श्रीकिसोरीदास किधौं ललितकिसोरी है ।।२६।।

सरस ललित पद छाप विहारी-विहारिन गावैं।
नित्यविहार अधार निरख नव लाड लडावैं ।।
परम कृपाल दयाल दीन-बन्धु रस-सागर।
दरस परस जिन किये भये ते सब गुन आगर ।।
रसिक प्रान मन भावतौ जस वितान तिहुपुर छयौ।
अनन्यनृपति श्रीहरिदास कुल श्रीकिसोरीदास दिनकर भयौ ।।२७।।

ललित सरस पद छाप सहज स्वामी पद सर्वस।
श्रीविपुल विहारिनिदास सरस नागरि उर रस जस ।।
नित्यविहार अधार और दूजौ नहिं भावै।
मनों रसिक सिरमौर प्रगट दम्पति दुलरावै ।।
प्रेम मगन अति करुना घन रस वरषत हो हिये हरि।
श्रीकिसोरीदास रसरास की को करि सकै जु सरि ।।२८।।

अनन्य सिरताज श्रीहरिदास स्वामी सुधन्य रसिक कुल प्रगट सुखसार दानं। ललित मुख कमल कुल माधुरी अति अमल महा उनमत्त रस करत पानं ।। सरस सिंगार अंग अंग उरहार छवि निरख अति हरष सुख अमी वूठं। सरस गोरी किसोरी महामोंहनी सोंहनी लाल पर रहत तूठं ।। दया के सिंधु निधि दीन जन बन्धु दुख दमन सुख भमन अनुराग रूपं। परम कृपाल नव नागरी माल कर कमल दै सीस रस जुगल भूपं ।।२९।।

श्रीहरिदास के गर्व भर्यौ हंसि दीनों लडैती ने पत्र निसांको। केलि कलोलनि क्रीडत हैं नित रंग बढावत हैं दुहु घांको।। औरन को मन और पर्यौ इन प्रेम समुद्र को बांध्यौ है नाको। बाँके की बाँकी चितौनी में बोध्यौ सु दास किसोरी कौ पैंडो है बाँको।।३०।।

काहू के राम हैं काहू के स्याम हैं काहू आराधे निरंजन देवा। कोऊ परे लख पंथ प्रवाहनि स्वारथ लागि करैं गुरु सेवा।। बाँके के रंग की बाँकी तरंग वो बाँकी लडैतो कौ बाँको है भेवा। दास किसोरी के श्री हरिदास को नाम सुधारस नाम ही सेवा।।३१।।

श्रीगुरुदेव की साहिबी में अननेक अनन्य भयो अलबेला। एक ही रीति की प्रीति प्रतीति है बाँकी लडैती सों कीनौं है मेला।। नेह के पुंज निकुंज मढ्यौ हरिदास को सूत सपूत अकेला। दास किसोरी जू प्रेम-समुद्र में कूदि पर्यौ निसंक दै हेला।।३२।।

श्रीसहचरिशरणजी–

प्रेम की पताका दिन राति फहराति जाकी बाजत निसान मुद वृन्दावन धाम हैं। स्यामा-स्याम आँखिन में नाम जस लाखनि में भाषनि में जात बलिहारी जन ग्राम हैं।। परम प्रचंड तेज मारतंड हू ते अति सीतल ससी के सम सोभा अभिराम हैं। स्वामी हरिदास जू को दुतिय अनूप रूप ललितकिशोरी कैंधौं ललित ललाम हैं।।३३।।

कोमल अमल भूमि झूमि झूमि आये द्रुम त्रिविधि समीर वहै राधावर काज मे। कुंज कुंज कूजत विहंग बहु रंगनि के नाचत मयूर गण सुभग समाज में।। निरखि अनूप सोभा-साहिबी सनातन की सुर सिरताज हू को भोयो मन लाज में। राजत अनेक सुख साजत कृपा की निधि ललितकिशोरीदास निधिवनराज में।।३४।।



श्री ललितकिशोरीदेव जू की बानी

प्रथम कृपा प्रकासिये, श्री गुरु परम सुभाव।
प्रेम दृष्टि सो सींचिये, रसिक सिरोमनि राव ।।१।।
छिन छिन बीतत जुग समें तुम बिन नाहिंन और।
कृपा करहु बिचारि के परम रसिक सिरमौर ।।२।।

अपने श्रीगुरुदेव स्वामी श्रीरसिकदेवजू महाराज सों प्रार्थना करते भये आप बोले कि हे परम कृपालु, रसिक सिरोमनि जू ! आप मेरे कूँ प्रेम-दृष्टि सों सींचि कें, अपनी कृपा कौ प्रकास करौ। क्योंकि मोकूँ एक-एक छिन एक-एक जुग के समान व्यतीत है रह्यौ है। आपके अतिरिक्त जगतमें मेरो और कोऊ नाँइ है। याते हे रसिक सिरमौर ! मोकूँ अपनो जानि कें अपनी कृपा द्वारा अपनो करि लेउ।

महा अगिन ज्वाला उठी फोहा सम हौं आइ।
रसिक बिहारिनि ललित वर,तुमहीं लेहु बचाइ।।३।।
जिनको अपनों जानते प्राननि तें अधिकाइ।
तेई अब बैरी भये श्रीहरिदास सहाइ ।।४।।

मेरे हृदय में महा अग्नि की ज्वाला ऐसि उठि रही है, जासों मेरे प्रान रुई के फौहा की नाईं भस्म होइबे कूँ है गये हैं। हे ललितबर रसिकबिहारिनीजू ! आप ही कृपा करि मोकूँ बचाइ लेओ। जिन लोगन कूँ मैं अपनो प्रानन तें हू अधिक प्यारौ जानतो हो, परमार्थ के माऊँ लगिबे ते वे सब मेरे बैरी है गये हैं। हे श्रीस्वामीजू महाराज ! या समय एकमात्र आपही मेरी रक्षा करि सकौ हो।

रीझि रसिक हरिदास जू राख्यौ अपने संग।
मिलत मिलत आनंद अति छिन छिन बाढ़त रंग ।।५।।
रसिक सिरोमनि कृपा निधि संतनि कहौं सुनाय।
बिषै दाह में जलत ही लीनी तपनि बुझाइ ।।६।।

अति दीनताभरी मेरि पुकार सुनि दयालु-कृपालु एवं रिझवारन के सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज ने ताही छिन मोकूँ हृदय सों लगाइ अपनो करि लीनौ। तब तो आपसों मिलि, छिन-छिन अति अद्भुत आनंद-रंग मेरे बढ़न लग्यौ। याते मैं समस्त

संत-समाज सों सुनाइ के कहूँ हूँ कि रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज एकमात्र कृपा के ही सागर हैं। मैं बिषयरूपी महाअग्नि ज्वाला में जरि रह्यौ, मोकूँ आपने समस्त तापन सों निवारन करि बचाइ लीनौ।

श्रीस्वामी हरिदास गुरु श्रीबिपुल बिहारिनिदास।
इन बिन निरखौं केलि सुख तो जानौं बिषकी रास ॥७॥

साँचे प्रेम की दृढ़-अनन्यता के सर्वोपरि निज मर्म कूँ प्रकास करते भये आपने कह्यौ कि—श्रीस्वामीजी, स्वामी श्रीबिठलविपुलदेवजू एवं श्रीगुरुदेवजू ते बिहीन सर्वोपरि केलि सुख कूँ हूँ हम जहर सदृश समझें हैं। यदि कोऊ ये बात कहै कि—प्रथम तो श्रीस्वामीजी महाराज ने ही सर्वोपरि प्रेम-सुख-स्वरूप श्रीजुगल की केलि कूँ ही बताते भये जीवन कूँ उपदेश दीनौ है। दूजे समस्त रसिकन के मत में हू श्रीजुगल की केलि-सुख ही सर्वोपरिता ते वर्णन कियो गयौ है, तब वा अति अद्भुत सरस-रसीले सुख कूँ काहे कूँ तो आप ग्रहन नाँइ करें हैं, काहे कूँ जहर सदृश बुरौ बतावें हैं? कछु महत्पुरुषन के मत में ऐसौ तो सुनिबे में आयौ है, कि अपने श्रीगुरुदेव ते बिहीन श्रीहरि के हू दरसन करिबो नाँइ चाहें हैं, किन्तु आप केलि-सुख कूँ हूँ जहर सदृश काहे कूँ कहैं हैं? ता विषय में ऐसो समझनो चहिये—जैसे उत्तम कुल की पतिव्रता स्त्री-साक्षात् श्रीहरि के रूप कूँ हूँ देखि कैं, अपने व्रत तें तिलमात्र हू विचलित नाँइ होय है, ऐसे ही जालंधर राक्षस की स्त्री हू, त्रिभुवन मोहनकारी श्रीहरि के रूप कूँ हूँ देखि कैं, नेंक विचलित नाँइ भई, तब श्रीहरि ने जालंधर को ही रूप धारन करनौ परचौ। याही भाँति स्वयं श्रीविष्णु भगवान, एवं महादेवजू तथा श्रीब्रह्माजू, तीनौ हू मिलि कैं परम सती-साध्वी श्रीअरून्धतीजी कूँ अपने व्रत तें विचलित करिबे के ताईं भिखारी बनि, बिनके द्वार पै गये, और मर्यादा विहीन रीति सों नग्न होइ कें भिक्षा देबे के ताईं आग्रह कीनौ। श्री अरूंधतीजू ने अपने द्वार पै ते अतिथीन कूँ निरास चले जाइबे के डर तें, जैसे बिनने आज्ञा कीनी, तैसे ही कियौ, किन्तु आपके दृढ़ पातिव्रत प्रभाव-प्रताप के कारन, तीनौं ही श्रीब्रह्मा-विष्णु-महेश अपने किशोर वैस में नाँइ रहि सके, उल्टे गोदी के बालक होइ आँगन में खेलिबे लगे।

उपरोक्त प्रसंगन ते यह स्पष्ट है कि—अपने धर्म के साँचे अनन्य जनन कौ ऊँचे ते ऊँचौ रूप-गुन-सुख-स्वाद पै रीझनो तथा मन चलाइबो तो बहुत ही दूर की बात है? वाकूँ सुंदर समझिबो ही बिनकी अनन्यता कूँ ऐसी मध्यम कोटि की करि दे है, जैसे उत्तम कुल की पतिव्रता स्त्री अपने पति के अतिरिक्त यावत् मानवन तें लैकें

श्रीभगवत्स्वरूपन ताऊँ सुंदर समझिबे पै ही मध्यम कोटी में आइ-जाइ है। जामें श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य जनन कौ तो बहुत ही ऊँचौ व्रत होय है। वे श्रीस्वामीजू के बिना यावत्केलि सुखन कूँ हूँ जहर सदृश बोध करें, यामें कोऊ आश्चर्य नाँय है।

और तो और स्वयं श्रीनित्यबिहारिनीजू एवं श्रीनित्यविहारीजू हू प्रेमावतारी श्रीस्वामीजू महाराज कूँ ही दृढ़ अनन्यभाव तें सदाकाल ऐसे सेवैं हैं कि–बिनके अनन्य आश्रितन के अतिरिक्त अपनी निज रसरीति विहार की हवा हू, बिन प्रेमीन ते सपरस नाँइ करावें हैं, और न बिनके प्रेम कूँ ही आप सपरस करें हैं। ऐसो अति दुर्लभ नित्यविहार-रस कूँ रससागर श्रीस्वामीबीठलविपुलदेवजू, अनन्य मुकुटमनि श्रीगुरुदेवजू साँचे निज जनन कूँ सतत सहज दान दियौ करें हैं। याते आपने प्रगट पुकारि कें कह्यौ कि–श्रीस्वामीजू, श्रीबीठलविपुलदेवजू एवं श्रीगुरुदेवजू ते बिहीन केलि-सुख कूँ हूँ हम जहर सदृश समझें हैं।

श्रीस्वामी हरिदास चरन गहि पायो निजु विश्राँम।
गौर-स्याम निरखत रहूँ छूटे झूठे काँम ॥८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के चरनकमल की अनन्य सरन गहिबे ते ही समस्त विश्रामन में सर्वोपरि विश्राम श्रीनित्यबिहारिनीजू के निजमहल श्रीवृन्दावन में हमें प्राप्त भयौ है, जासों हमारी समस्त झूठी कामनायें सहज सुभाउ ही छुटि गईं हैं। याते अब हम साक्षात श्रीयुगल कूँ सतत निहारते रहैं हैं।

श्रीस्वामी हरिदास बिनु भूलि चहूँ जो और।
तो मोहि दीजै लाडिली नहीं नरक में ठौर ॥९॥
श्रीस्वामी अपनों कियो यह जानत सब कोइ।
अब अँग सँग करि लीजिये नेंक बिलंब न होइ ॥१०॥

फिर आप निज प्रानेश्वरी साक्षात् श्रीस्वामिनीजू सों ही कहिबे लगे कि हे लाड़िलीजू! मैं आपसों साँची-साँची कहूँ हूँ कि यदि भूल की हू भूल में श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त और काहू कूँ चाहूँ तो आप मोकूँ सद्गति देइबो तो दूर रह्यौ, नरक में हूँ ठौर मति दीजो, क्योंकि या बात कूँ समस्त जगत जानै है कि श्रीस्वामीजी महाराज ते अपनी अद्भुत कृपा द्वारा मोकूँ अपनो करि लीन्यौ है। याते हे प्रान-जीवनि! श्रीलाड़िली कृपा करिकें शीघ्र ते शीघ्र अब मोकूँ अपनो बनाइ लेवो।

श्रीस्वामी मनि अपनों कियौ बैठारयौ निज ठौर ।
कुँज केलि निरखत रहौं छूटी झूठी दौर ।।११।।
करता मन करता सही करता श्रीहरिदास ।
करता सुख इन सों लहै महा प्रेम रस रास ।।१२।।

समस्त स्वामी स्वरूपन में मनि स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज ने मोकूँ समस्त रीति-भाँति सों अपनो करि, निज ठौर पै बैठाइ दीनौ है । जासों मेरे मन की यावत झूठी दौर नष्ट होइ कें, निकुंज मंदिर में सतत श्रीजुगल के केलि को मैं निहारतो रहूँ हूँ । याते यह स्पष्ट है कि समस्त कर्त्तान में साँचे सही सर्वोपरि कर्त्ता श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं । महाप्रेम रसरास स्वयं श्रीजुगल हू इनसों ही निरंतर सुख लेवें हैं ।

श्रीस्वामी हरिदास हरि श्रीहरि के निज प्रान ।
जो समझै या संधि को सोई रसिक सुजान ।।१३।।

याही प्रसंग कूँ समझाते भये आप और हू बोले कि–हे भाई ! श्रीहरि वाही कूँ कह्यौ जाइ है जो तन, मन, प्रानन कूँ अपनी ओर आकर्षित करि लेवै है, याते हमारे श्रीस्वामीजी महाराज समस्त हरिन के हू हरि स्वरूप श्रीजुगल के हू तन-मन-प्रानन कूँ सतत आकर्षित कियौ करैं हैं । जाके कारन श्रीजुगल अपने निज प्रानन सदृस इनके माऊँ हीं निरंतर निहारते रहैं हैं । या प्रकार की ही स्वरूप-संधि कूँ समझिबेवारे महाबड़भागी जन ही सुजान रसिक समझे जाँय है ।

स्यामा स्याम अनन्य भजें भ्रम दूर कियौ तिनकी बलिहारी ।" —श्रीगुरुदेवजू

नेति नेति कहै बेद सब आगम सहित पुरान ।
नित्य केलि हरिदास की जानें सोई जाँन ।।१४।।

जा नित्य केलि कूँ, भगवत् तत्व कूँ बताइबेवारे आगम-निगम आदि समस्त पुराण नेति-नेति कहि कें ही बर्नन करें हैं, श्रीस्वामीजी महाराज की वा अति अद्‌भुत केलि कूँ जो महाबड़भागी रसिक अनन्य जाने हैं, वे ही सर्व-सिरोमनि जानकार हैं ।

कहत-सुनत सेवत जे यह सुख ते धनि कौतिकहार । —श्रीगुरुदेवजू

श्रीस्वामी हरिदास सकल सुख सार है ।
कृपा श्रीगुरुदेव कियो निरधार है ।।
श्रीस्वामी हरिदास आस महा धीर को ।
हरि हाँ सब रसिकनि सिरमौर सनेहीं पीर को ।।१५।।

श्रीस्वामी हरिदास हरषि जे गावहीं।
पावैं नित्य बिहार प्रिया मन भावहीं॥
श्रीस्वामी हरिदास कहै जो भूलि कैं।
हरि हाँ नित्यबिहार लहै रहै रस झूलि कैं॥१६॥

श्रीस्वामी हरिदास, एक बेर सुपने कहै।
पावै प्रेम बिलास, कुंज केलि सुख सहज हीं॥१७॥

स्वामी श्रीआशुधीरदेवजू के कृपापात्र श्रीस्वामीजी महाराज यावत दिव्याति-दिव्य सुखन के हू निज सार-सुख-स्वरूप हैं, या बात कूँ अनन्यमुकुटमनि साक्षात श्रीगुरुदेवजू ने कृपा करि, अपनी बानी में भलीभाँति निर्नय कीनौ है कि—सब रसिकन के सिरमौर श्रीस्वामीजू महाराज निज-अनन्य आश्रित जनन की समस्त पीरान कूँ अपने स्नेह सों ही हरन करि लेवें हैं। और जो जन प्रसन्न होइ-होइ श्रीस्वामीजू के जसन कूँ गावैं हैं, वे श्रीलाड़िलीजू के ऐसे मन भा—जाँय हैं कि आप रीझि, अपनो नित्यविहार ही वाकूँ दै देवें है। इतेक हू नाँइ श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूँ भूल की हू भूल एवं स्वप्न में जो कहैं, वे नित्यविहार रस में अवश्य झूलें हैं।

अर्थात् भूल में तथा सुपने में श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूँ लेबैवारे जनन ने अपने मन में, यह दृढ़ बिस्वास राखनो चहिये कि अब नित्यबिहार निश्चय ही प्राप्त होइगो, क्योंकि सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के निज-प्रान-स्वरूप यह श्रीहरिदास नाम कृपा करिकें हमारे मुख में आइ गयौ है, याते जहाँ नाम जाइ है, तहाँ नामी को प्रगट होइबो अनिवार्य है। नामी-नाम सदाकाल अभेद होइ हैं।

श्रीस्वामी हरिदास को हिय धरि दृढ विश्वास।
नित्य बिहारै पाइ है, सदा प्रिया को पास॥१८॥

निज आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि—तुम अपने हृदय में श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा-बल कौ ये दृढ़ बिस्वास राखो कि सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ निश्चय ही प्राप्त करि हम सदाकाल श्रीलाड़िलीजू के निकट ही रहैंगे।

श्रीस्वामी हरिदास भजि, भली भली सब होइ।
नित्य बिहारै पाइ है, प्रेम प्रीति निजु सोइ॥१९॥

श्रीस्वामीजी महाराज कौ भजन करिबे ते भली-भली तौ सब होय ही है, और श्रीजुगल कौ निज प्रेम प्रीति कौ भाजन होइ, सहजमें ही नित्यबिहार प्राप्तकरि लेइ है।

श्रीस्वामी हरिदास को, तन मन वचननि होय।
नित्य बिहारै पाइ है, रहो क्यों न परि सोय ॥२०॥

जो महतपुरुष अपने तन, मन, बचनन द्वारा एकमात्र दृढ़ अनन्य-भाव ते श्री स्वामीजी महाराज के ही है जाइ हैं, वे जन चाहे सदाकाल सोइबे सदृस कछु साधन-भजन नांइ करें, तौहू सर्वोपरि नित्यबिहार सहज प्राप्त करि लेइ हैं।

कुंज केलि रस माधुरी, पावैगो निजु सोय।
श्रीस्वामी हरिदास को, तन मन प्राननि होय ॥२१॥

फिर आप बोले कि–हे भाई! श्री वृन्दाबन कुंज-केलि की अद्भुत रसमय माधुरी कूँ वे ही जन पाइ सकेंगे, जो श्री स्वामीजी महाराज के तन, मन, प्रानन ते दृढ अनन्य हैं जाँयगे।

श्रीस्वामी के आसरै, सोवै पाँव पसारि।
वृन्दावन में परि रहै, अति चुपरी अरु चारि ॥२२॥

श्री स्वामीजी महाराज के कृपा-प्रताप बल पै इहलोक - परलोक की यावत् बातन ते निश्चित-निडर होइ श्री वृन्दावन में अखंड वास करि भलीभाँति पाँय पसारि कें सोवो।

श्रीस्वामी सनमुख भयैं, महा अभै पद देत।
अँग सँग नित्य बिहार में, ताही छिन करि लेत ॥२३॥

जो महाबड़भागी साधक तन, मन, प्रानन द्वारा अपने साँचे भाव ते श्री स्वामीजी महाराज की सरन चले जाँइ हैं, बिनकूँ आप कृपा करि ताही छिन अपने अंग-संग महा अभयपद स्वरूप नित्यबिहार में मिलाइ लेवें हैं।

जो साँचो सनमुख भयो, श्रीस्वामी की ओर।
गई अविद्या नसि सबै, भोर भये ज्यौं चोर ॥२४॥

जो जन साँचे भाव ते श्री स्वामीजी महाराज के सन्मुख है गये, तिन सबन की अविद्या ऐसे चली गई, जैसे भोर होइबे पै चोर भाजि जाइ हैं।

गई अविद्या नसि सबै, पाये सुख के ढेर।
अँग सँग लीने केलि में, तनक न लाई बेर ॥२५॥

श्री स्वामीजी महाराज की कृपा ते ऐसे साधकन की समस्त प्रकार की

अविद्या नष्ट होइ अद्भुत सुख के समूह के समूह सहज प्राप्त है जाँइ हैं। कारन आप अबिलंब अपने अंग-संग निज केलि सुख में बिनकूँ मिलाइ लेवैं हैं।

सिंह रूप हरिदास जू, गरजै हिरदै आइ।
हिरन रूप झीनी सबै, सहजहिं गई पलाइ ॥२६॥

जैसे वन में सिंह के गरजिबे ते हिरन आदि समस्त पसु सहज सुभाव ही डरपि कें भाजि जाँइ हैं, तैसे ही अति बिसुद्ध ते हू बिसुद्ध प्रेम-रस स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज जिनके हृदय में गरजैं हैं, तिनकी हिरनरूपी यावत् स्थूल एवं झीनी बासनायें सहज भाजि जाँइ हैं।

भजन करै हरिदास को पावै नित्य बिहार।
कुंजबिहारिनि लाडिली करि राखै उर हार॥२७॥

श्री स्वामीजी महाराज कौ भजन करिबे ते, सर्वोपरि नित्यबिहार सहज प्राप्त है जाय है, और स्वयं श्री नित्यबिहारिनीजू वाकूँ अपने हृदय को सदाकाल हार बनाइ के राखैं हैं।

प्रेम भये प्रीतम मिल्यौ, पाई सुख की रास।
कुंजबिहारिनि लाल सों,बिलसैं केलि विलास ॥२८॥

प्रीतम स्वरूप प्रेम प्राप्त भये पै, सुखरासि श्री कुंजबिहारिनि-बिहारीजू के अंग-संग केलि-बिलास कूँ सतत हम बिलसैं हैं।

जब चितयो हरिदास कों, तब कछु नांहि विकार।
छिन छिन अति आनन्द बढै, लहै महा सुख सार ॥२९॥

जब साधक साँचे मन ते चित्त लगाइ, श्री स्वामीजी महाराज के माऊँ देखन लगै है, तब वाके हृदय में कोऊ बिकार नाँइ रहि, महासुख कौ सार प्राप्त करि, छिन-छिन अति आनंद बढ़तो ही जाइ है।

जब समझै तब निकट है, बिन समझैं है दूर।
ललित केलि रस रंग कों, सहज प्रेम भरि पूर ॥३०॥

मानो साधक ने यह प्रस्न कीन्यौ कि—हे महाराज! श्री स्वामीजी के माऊँ साँचो होइ के मन कैसे लगै? तापै आपने कह्यौ कि अपने श्री गुरुदेव की साँची कृपा एवं रसिकन के संग ते, श्री स्वामीजी महाराज के अद्भुत प्रेम, रस, अनुराग, आसक्ति,

उदारता, कृपालुता आदि सर्वोपरि गुनन कूँ निस्चयात्मकरूप ते भलीभाँति समझिबे ते आपको स्वरूप निकट में ही दरसन लगै है। याही ते अति ललित केलि कौ अद्भुत प्रेम-रस-रंग हमारे हृदय में सदाकाल भरचौ रहै है, जिनकूँ ये गाँस समझ में नाँइ आय रही है, बिनकूँ ही आप अति दूर दीखें हैं।

कुंजबिहारिन हित कियो राखी आवनि जानि।
हम तुम दोऊ एक हैं रहैं ललित रस सांनि ॥३१॥

साक्षात श्री कुंजबिहारिन प्रान लाड़िलीजू ने या प्रकार कौ अद्भुत हित हमसों कीन्यौ है कि आवागमन के चक्कर सों बचाइ कें, मोते कह्यौ कि–हे सखी! हम-तुम दोऊ एकमात्र श्री हरिदासीजू के प्रानन कूँ ही लड़ाइबेवारी हैं, याते सदाकाल बिनके ही रस में सने रहैं।

कुंजबिहारी हित कियो, अब नहिं आवहिं जाहिं।
ललित केलि अँग सँग सदा, निरखै नैंन सिराहिं ॥३२॥

श्री कुंजबिहारी लाल ने हू मोते बड़ो हित कीनौ है, जोकि जगत में आइबे-जाइबे ते बचाइ, अपनी ललित केलि में ऐसे अंग-संग सदा राखि रहैं हैं, जाकूँ निहारि-निहारि हमारी आँखें सतत सिरायो करैं।

आवनि जावनि प्रेम सों, भागमानि ले जाय।
ललित किसोरी रंग सों, पोषै ताके भाय ॥३३॥

अब हमारो आइबो-जाइबो एकमात्र प्रेम के बसीभूत होइकें ही होइ सकै है। याते कोऊ महाबड़भागी जन ही हमें प्रेम सों बुलावैगो। हम हूँ वाके मन कूँ ललित-किसोरी रंग सों ही सतत पोषण कियौ करेंगे।

आवनि जावनि यों रही, कियो बिहारिन हेत।
हम तुमसौं ह्वाँ ही मिलैं, ललित केलि संकेत ॥३४॥

निज आश्रितन ते आप कहिबे लगे कि–हे भाई! सर्वोपरि श्री नित्यबिहारिनी प्यारीजू ने ऐसो हित हमसों बढ़ाइ राख्यौ है, जो हमारो आइबो-जाइबो तथा मिलिबो तुमसों एकमात्र प्रथमसमागम एकान्त रसबिलास निज महल में श्रीस्वामीजी महाराज की ललित कोमल-केलि में ही है सकैगो, कारन हमारे तन, मन, प्रान, रोम-रोम में वाही सर्वोपरि केलि विलास कौ निरंतर ऐसो चाव चढ़चौ रहै कि वा केलि

के अतिरिक्त और काहू प्रेम सुख कूँ अपने मन ते सपरस हू नाँइ होवन देवैं हैं। हमारी स्वामिनी नित्य बिहारिनी श्री प्यारीजू हू वाही केलि रस में मोकूँ सतत साने राखैं हैं। अर्थात् और-और अनेक महत्पुरुषन ने अपने आश्रितन कूँ श्रीभगवद् प्राप्ति कराइबे के ताईं, कर्म, धर्म, विधि, विधान आदिकन कूँ हू करिबे की आज्ञा या भाव सौं दै दीनी है कि साधारन प्रान के साधक प्रथम अवस्था में बिनकूँ त्यागिबे ते भय खाँयगे, जब शुद्धभक्ति कौ स्वरूप निरूपन करिबे लगे, तब बिनने हू ये कह्यौ है कि श्रीभगवान के चरन-कमलन ते सुद्ध दासभाव अपने हृदय में धारन करि, ताही अनुसार अपने स्वामी की नाम-गुन सेवा करते भये कर्म-ज्ञानादिक की भावना भली-भाँति मिटाय देउ। जैसे-जैसे तुम्हारे साधनन में गाढ़तरता आती जायेगी, तैसे-तैसेही श्रीभगवान कौ दया-करुणा-प्रताप हृदय में जागतौ जायगौ। फिर यदि तुम्हें सख्य-बात्सल्य एवं सिंगार रस की उपासकनकौ संग प्राप्त है जायगौ, तौ बिनके भावानुसार वाही भगवान की प्रेम-रसमय भावना करन लगौगे। अति सौभाग्य सों यदि तुम्हें कहूँ सिंगार रस-भाव रुचन लग्यौ, तौ वामें ये समझिबे की बात है कि अनेक भेद होते भये हू तीन भाव सिंगार रस में प्रधान होय हैं। प्रथम कान्ताभाव, दूजौ स्वकीया प्रकास में श्रीस्वामिनीजू की सखी-सहेली, सहचरी मंजरीभाव, तीजे श्रीनंदनन्दन-श्रीवृषभानुनंदिनीजू कौ नित्यकिसोर वैस सों श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मन्दिर के विलास की अष्ट यूथेस्वरी परिकर कौ सखी-सहेली-सहचरी मंजरीभाव की उपासना महतन ने बर्नन कीनी हैं। ऐसेही औरहू महत्पुरुषन ने अपने रसास्वादन की विलक्षणता समझि, परकीयाभाव की कल्पना करि अनेकप्रकारसों रस-जसनकूँ गायौ है। साधक के साधना की पराकाष्ठा,और इष्टकी पूर्णकृपा होयबेपै ही फलकीप्राप्ति बिन सबनने वर्नन कीनी है।

हमारे यहाँ एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के श्रीचरन-कमलन ते साँचौ दृढ़ अनन्य सम्बन्ध मानि, श्रीवृन्दावन में अखंडबास करिबे ते ही सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनीजू की निज रस-रीति में साधक कौ दृढ़ विस्वास है जाय है, विस्वास होत खेम श्रीस्वामीजी महाराज वाकूँ अपनो समझि, निज प्रेमदान दै, अपने समतूल करि, सारातिसार सर्वोपरि नित्यबिहार रस में वाकूँ मिलाय लेवैं हैं, याते हम निरंतर वाही ललित केलि में रहैं हैं, तुमहूँ श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा ते वा केलि को प्राप्त करौगे, तबहीं हमारौ-तुम्हारौ मिलन होय सकैगो।

बनी बनाई बनि रही, ललित प्रिय सों नित्य।
रोम रोम में रम रही, तन मन वचननि चित्त ॥३५॥

ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज सों सदाकाल ते हमारी नित्यप्रीति बनी-बनाई ऐसी बनि रही है, जोकि रोम-रोम तन, मन, प्रान, बचनन एवं चित्त में वे ही समाइ रहे हैं।

श्रीवृन्दावन बसि रंगसौं, श्रीजमुना रसहिं अहार।
ललित प्रेम कों पाइ है, अदभुत नित्य बिहार ।।३६।।

प्रेम, ममता में बिबस होइ आप बोले कि–हे भाई ! हमारी स्वामिनीजू कौं निज-महल या श्रीवृन्दावन में, और-और यावत सुख-दुःख, सम्बन्ध, लालसा, मनोरथन कूँ भलीभाँति त्यागि, प्रेम-विलास भाव के रंग में रँगे भये सदाकाल बसौ। साक्षात् रस-स्वरूप श्रीजमुनाजल कौ पान करौ। जासों श्रीस्वामीजी महाराज कौ अति ललितप्रेम प्राप्त होइकें, अद्भुत-नित्यबिहार रसमय सुखनकूँ सतत बिलसन लगौगे।

श्री जमुनाँ जमुनाँ जो कहै। महा प्रेम सुख पुंजै लहै ।।
छिन-छिन आनंद केलहिं चहै। ललितप्रिये अँग सँग नित्य रहै ।।३७।।

जो जन साँचे भाव सों रसमय श्रीजमुनाजी के नामकूँ लेवैंगे, बिनकूँ सुख-पुंज महाप्रेम निश्चय ही प्राप्त होइ, छिन-छिन श्रीजुगल के निज आनंद केलि की लालसा जागि, ललितप्रिये श्रीस्वामीजी के अंग-संग सतत रहैंगे।

नित्य बिहारिनि नित्य हम, नित्य रसिक हरिदास।
नित्य विपुल गुरुदेव जू, नित्य सुकेलि बिलास ।।३८।।

नित्य ही हमारी प्रानजीवन लाड़िलीजू, नित्य ही हम सतत बिनके संग-संग रहैं है। नित्य ही रसिकसिरोमनि श्रीस्वामीजू, रस-सागर श्रीबिपुलदेवजू, अनन्य मुकुट-मनि श्रीगुरुदेवजू तथा नित्य ही श्रीजुगल की केलि बिलास होय है।

रस सागर श्री बिपुल जू, अद्भुत सुख की खानि।
तोषत पोषत प्रिया लाल को, अति जाननि मनि जानि ।।३९।।

निज आश्रितन ते कहिबे लगे कि–हे भाई ! हमारे प्राननाथ रस-सागर श्रीबीठलबिपुलदेवजू दिव्यातिदिव्य अति अद्भुत सुख की अगाध खानि हैं। साक्षात श्रीप्रियालाल कूँ छिन-छिन तोषण-पोषण कियौ करें हैं। याते परमार्थ-जगत में जितेक जानिबे योग्य महत्पुरुष हैं, तिन सबनि में मनि स्वरूप आपही हैं।

दासि बिहारिनि लाडिली, सब रसिकन सिरमौर।
सुपने हूँ जानें नहीं, श्री स्वामी बिनु और ।।४०।।

सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू की अति-लाड़िली अनन्यदासी हमारे श्रीगुरुदेवजू समस्त रसिकन में सिरमौर हैं, जोकि श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त और काहू कूँ सुपने में हूँ नाँइ जानैं हैं।

साँची प्रीति बिहारिनदासैं।
कै करुवा कै कुंज कामरी कै थर श्री स्वामी हरिदासैं ॥ –श्रीव्यासजी

श्री स्वामी जीवनि प्रान हैं, गौर स्याम सुख दानि।
श्री बिपुलबिहारिनिदासि कों, कीनो सुख की खानि ॥४१॥

हमारे जीवन-प्रान श्रीस्वामीजी महाराज साक्षात् गौरस्याम श्रीजुगल कूँ मन-भामते सुख दियौ करैं हैं। बिनने ही श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू एवं गुरुदेवजू कूँ महारसमय सुख की खानि बनाय दीनौ है।

सहजादे श्रीहरिदास के, रसिकन के पातसाह।
अँग सँग निरखैं केलि सुख, छके रहैं महा भाइ ॥४२॥

श्रीस्वामीजी महाराज के साँचे अनन्य आश्रितजन समस्त रसिकन के सम्राट स्वरूप होय हैं, क्योंकि प्रथम समागम एकान्त रस-बिलास निज-महल के निपट नित्य-बिहार रस में सदाकाल श्रीजुगल के अंग-संग महाभाव में छके रहैं हैं।

अँग सँग निरखैं केलि सुख, कहैं सुनैं नहिं औंर।
श्री स्वामी हरिदास के, महा मत्त सिरमौर ॥४३॥

याही प्रसंग में आपने औरहू कह्यौ कि–हे भाई! श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्यजन, श्रीजुगल के अंग-संग की केलि कूँ देखि-देखिकें महामतवारेन के हू सिरमौर ऐसे बने रहैं हैं, जो और बात न तो कबहूँ कहैं ही हैं, न सुनैं ही हैं।

श्री स्वामी सुखरासि निधि, कुंज केलि को देत।
जो अनन्य निजु दास हैं, ताकौं कर गहि लेत ॥४४॥

श्रीस्वामीजी महाराज सर्वोपरि सुख की रासि एवं निधि स्वरूप हैं। जो जन दृढ़ अनन्य भाव ते आपके सरन आवैं हैं, तिनकूँ हाथ पकरि अपने पास बैठाइ, श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मन्दिर की रसमय केलि वाकूँ प्रदान करि देवैं हैं।

कुंज बिहारी लाल भजि, निर्भै ह्वै आनंद।
सम बुधि सबसों भाव करि, बसि बृन्दावन चंद ॥४५॥

हे भाई ! सबसों निर्भय होइ, महा आनन्द स्वरूप एकमात्र श्रीकुंजबिहारीलाल को या प्रकार ते भजन करौ कि–यावत् परमार्थीन में समान बुद्धि राखि, अपने भाव में दृढ़ अनन्य होइ, श्रीवृन्दावन में अखंड वास करौ।

श्री बृन्दावनचंद जू, महा प्रेम सुखदानि।
अपनोई गुन देत हैं, ललित रँगीली बानि ॥४६॥

समस्त धामिन में हू धामी चन्द्रमा-स्वरूप हमारे श्रीवृन्दावनजू की सहज सुभाउ ही ऐसी ललित रँगीली बानि है कि अपने निज आश्रितन कूँ बड़ी लालित्यता ते भरेभये अपनेहो गुननकूँ देइ-देइ कें महाप्रेम-सुखसों सुखी करि, निहाल करि देवें हैं।

श्री निधिबन रस की खानि हैं, सोभा परम अपार।
काम केलि बरषत रहैं, निरवधि नित्य बिहार ॥४७॥

श्रीनिधिबनराज एकमात्र रस हो रस की खानि होइबे के कारन, बिनकी सोभा परम अपार है तथा काम-केलि रसमय निरवधि नित्यबिहार की ही सतत बरषा करते रहैं हैं।

प्रिया-लाल के रंग सौं रंग-महल, रंग्यौ परम रसाल।
बिपुन रंग तासों रंग्यौ जो, रसिकन को उरमाल ॥४८॥

हमारी प्रानजीवन जोरी श्रीप्रियालाल के रंगसों परम-रसाल श्रीनिधिवनराज रंगमहल ऐसी अति विचित्रता ते रँगे रहैं हैं, कि–जो श्रीवृन्दावन समस्त रसिकन के हृदय में सतत हार स्वरूप हैं, वे एकमात्र श्रीनिधिवनराज रंगमहल के ही रंग सों निरंतर रँगे रहै हैं।

चाह अचाह की संधि में रहै। कुंजबिहारी को सुख लहै॥
जैसी देखै तैसी कहै। नित्य प्रिया के हित कौं चहै ॥४९॥

फिर आपने कह्यौ कि हे भाई ! हमारो मन चाह और अचाह की एक ऐसी बिचित्र संधि में सतत रहै है कि प्रानजीवन श्रीलाड़िलीजू के हित कूँ चाहि-चाहि कें सतत श्रीलालबिहारी के सुख कूँ तो हम प्राप्त करते रहैं हैं, और जैसी-जैसी आँखिन ते देखैं हैं, तैसी ही हम कहैं हैं।

जैति जैति रस रीति यह, जैति जैति सुख सार।
जैति जैति हरिदास हैं, निरवधि नित्य बिहार ॥५०॥

समस्त सुखन कौ सार स्वरूप श्रीवृन्दावन महल में निज रस-रीति की जय-जयकार मनाते भये आप बोले कि—श्रीस्वामीजी महाराज की जय हो, जय हो ! जिनने ऐसो महा-बिचित्र निरवधि नित्यबिहार सुख कूँ सबनि के ताईं जगत में स्पष्टरूप सों प्रगट कर दीनौ ।

श्री स्वामी हरिदास बिनु, लहै न निजु अनुराग ।
कहा बसै वृन्दाबिपिन, कहा कियैं बैराग ।।५१।।

फिर आप साधक समाज सों कहिबे लगे कि—हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज कौ दृढ़ अनन्य आश्रय लिये बिना, श्रीजुगल की निज रसरीति कौ अनन्य अनुराग कैसेहू प्राप्त नाँइ होइ सकै है, चाहे कोऊ अति उत्कट बैराग्य सों हू श्रीवृन्दावन में ही अखंड बास क्यों न करतौ होइ ।

ना पाई ना पाइ है, श्री स्वामी बिनु केलि ।
बिपुन बसौ वैरागजुत, ज्यों लरिकाई खेलि ।।५२।।

श्रीस्वामीजी महाराज की निज कृपा के बिना श्रीजुगल की निज केलि आज ताऊँ ना काहूकूँ मिली है और न मिलि ही सकै है, क्योंकि साक्षात श्रीनित्यबिहारिनीजू तथा नित्यबिहारीजू श्रीस्वामीजू के दृढ़ अनन्य संबन्ध के अतिरिक्त काहू को अपनो मानैं ही नाँइ हैं। याते केलि-सुख के ताईं श्रीवृन्दावन में बैराग सहित हू बसिबो एकमात्र बालकन कौ खेल सदृस ही है।

श्रीहरिदास सरन बिनु नित्यकेलि अतिदूरि ।
महामधुर रस बिवस वाम वर मधुरादिक की मूरि ॥
परसि न सकत पाँच भावनि ते स्वामी वंस हजूरि ।
दास किसोर होय जन जानत वस्तु हृदय भरपूरि ॥
लक्ष्मीपति ब्रजपति कौ दुर्लभ इनते कौन बड़ौ अधिकारी ।

× × ×

बिनु हरिदास बिहारै सेवत दरस परस नहिं मात ।
ते क्यों पावहिं महामाधुरी बन बसि संग न समात ॥ —श्रीगुरुदेवजू

जैसे चन्दा रैनु बिन, श्री स्वामी बिन भाव ।
चाहै नित्य बिहार कों, तौ श्री हरिदासै गाव ।।५३।।

जैसे चन्द्रमा रात्रि के बिना प्राप्त नाँइ होइ सकै है, तैसेही श्रीस्वामीजू के

अनन्य संबंधके बिना नित्यबिहार कौ भाव कैसेहू प्राप्त नाँइ है सकै है। याते हे भाई! यदि तुम्हें वास्तविक नित्यबिहार की ही लालसा है, तौ एकमात्र श्रीस्वामीजू के नाम, गुन, जसन कूँ अनन्य अनुराग सों सदाकाल गावो।

सनेह प्रेम रस रूप गुन, श्री हरिदासी हेत।
जितनो जो पावै तहाँ, तितनो ताको देत ।।५४।।

श्रीजुगल को परस्पर स्नेह, प्रेम, रस, रूप, गुन आदि यावत संपत्ति एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के ही हित की है। याते श्रीस्वामीजी महाराज ही जाको जितेक देवैं हैं, ताकूँ तितेक ही प्राप्त होइ है।

जो कछु होत बिहार में, उदौ होय जिय आंनि।
जैसे अनभो मौर कों, मेघन सों पहिचानि ।।५५।।

रसरासि श्रीजुगल के बिहार में जो कछु होइ है वे सब श्रीस्वामीजू महाराज के हृदय-कमल में ऐसे प्रगट होइ जाँइ हैं जैसे मेघन कौ आगमन कहूँ क्यों न होइ, मोरन को तत्काल पहिचान होइ जाइ है।

अति उदार हरिदास जू, वरषत नित्य बिहार।
जिह तन मन दृढ़ करि गहे, दियो महा सुख सार ।।५६।।

अति उदार सिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज कृपा बिवस सदाकाल श्रीजुगल के नित्यबिहार की ही सतत बरषा करते रहैं हैं, जिन बड़भागी जनन ने तन तथा मन सों दृढ़ता ते आपकूँ गहि लीनौ, तिनकूँ ही महासुखन कौ हू सार सुख प्राप्त है गयौ।

अति उदार हरिदास जू, नित्य बिहार के दानि।
सहज हेत जाने कहूँ, गहैं सु हँसि कें पानि ।।५७।।

श्रीस्वामीजी महाराज ऐसे अति अद्भुत उदार सिरोमनि हैं, जा काहू जन के हृदय में सहज नेकहू हेत आइ गयौ, ताको आप हँसि के हाथ पकरि नित्यबिहार कौ ही दान है देवैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, नित्य केलि के दानि।
लाड लडावत प्रिया लाल वर, महा प्रेम रस खानि ।।५८।।

महाप्रेम रस-खानि श्रीस्वामीजी महाराज, निजमहल में, परम लाड़िले श्रीजुगल कूँ सतत लाड़ लड़ायो करें हैं और निज आश्रितन को ताही रसमय केलि को निरंतर दान देवैं हैं।

श्रीहरिदास उदार मनि, रसिकन जीवन प्रान।
अँग सँग देत बिहार कों, महा प्रेम रस सान ।।५९।।

श्रीस्वामीजी महाराज समस्त उदारन में ऐसे मणि स्वरूप हैं जो यावत रसिकन के जीवन प्रान है रहे हैं, और अपने निज आश्रितन कूं महाप्रेम रस सों सानि कें अंग-संग के बिहार सुख सों ही सुखी करें हैं।

अति उदार मनि रसिक मनि, आचारज मनि भूप।
ललित प्रिये प्रगटी सहज, अद्भुत केलि अनूप ।।६०।।

जगत में जितेक उदार एवं रसिक तथा आचार्य भये हैं, और हैं, तिन सबन में मनि स्वरूप आप सबके सम्राट हैं। अति अद्भुत अनूप, सहज केलि सुख-स्वरूप साक्षात् श्रीललितप्रियेजू हो स्वयं जगत में प्रगटो हैं।

आचारज मनि रसिक मनि, सिद्धनि मनि सिरताज।
ललित प्रिये प्रगटी सहज, अद्भुत केलि के काज ।।६१।।

समस्त आचार्य तथा रसिक एवं जितेक सिद्ध जगत में भये हैं, सबन में मनि-स्वरूप, सिरताज श्रीस्वामीजी महाराज हैं। क्योंकि अद्भुत सहज केलि दान देबे के ताईं ही सहज सुभाउ आप प्रगटी हैं!

स्वामी मनि स्वामी सही, स्वामी श्री हरिदास।
तोषत पोषत प्रिया लाल कौं, अद्भुत केलि बिलास ।।६२।।

इहलोक-परलोक में जितेक स्वामी स्वरूप हैं तिन सबन में साँचे सही मनि-स्वरूप स्वामी एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं। कारन अति अगाध लालसा अनुराग में अधीर साक्षात श्रीजुगल कूं हूँ छिन-छिन आप अद्भुत केलि बिलास बिलसाइ-बिलसाइ कें निरंतर तोषन-पोषन करें हैं।

श्री मनि श्री हरिदास जू, सकल सुखन की रासि।
महा मत्त रस केलि में बंधी प्रिये मृदु हासि ।।६३।।

समस्त सुखन की रासि श्रीस्वामीजी महाराज यावत श्री स्वरूपन में मनि-स्वरूप हैं। जो सदाकाल रसकेलि में ऐसे महामत्त हुए रहैं हैं, जिनकी महामृदु हासि देखि-देखिकें साक्षात श्रीस्वामिनीजू के प्रान बिनमें बँधे रहैं हैं।

मंगल मनि आनंद मनि, कुंज केलि रस रास।
मधुर प्रेम बरषत सहज, ललित प्रिये मृदु हास ।।६४।।

समस्त मंगल एवं आनंद को मनि - स्वरूप कुंजकेलि रस - रासि, ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज, अपनी मृदुहास द्वारा ही महामधुर प्रेम रस की ही सतत वर्षा करते रहैं हैं।

रस निधि गुन निधि रूप निधि, लावन्य निधि सुख रासि।
सुहाग भाग अनुराग निधि, ललित प्रिये मृदु हासि ॥६५॥
रंग निधि प्रेम सनेह निधि, आनंद निधि सुख रासि।
प्रीति चाह हित मिलन निधि, ललित प्रिये हरिदास ॥६६॥

ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज की मृदु हासि रस, गुन, रूप, लावण्य, सुख, सुहाग-भाग, अनुराग सों भरी - पूरी है, रसमय सनेह आनंद निधि तथा प्रीति, चाह-हित-मिलन-निधि ललित प्रिये श्रीस्वामी जी महाराज ही हैं।

सोभा कौ सोभा सुप्रेम कौ प्रेम महा रस आनंद केलि विलासी।
सुख कौ सुख देत सरूप कौं रूप सनेह कौ सागर श्रीहरिदासी ॥
रस कौ रस सार महा रिझवार उदार बिहार बिहारिनि पासी।
अभै पद कौं जु अभै करि देत महामधुरे रस पीवत प्यासी ॥६७॥

यावत् श्रीभगवत्स्वरूपन की दिव्यातिदिव्य - अलौकिक शोभा कूँ हूँ सुशोभित करिबेवारी हमारे श्रीविहारी-विहारिनीजू की शोभा है। बिनकीहू प्रेम-रसभरी शोभा कूँ, अपने प्रेम-रस-द्वारा महारस-आनन्दकेलि-बिलास-विलसाइ २ छिन-छिन श्रीस्वामी जी महाराज बिनकूँ अति सुशोभित करते रहैं हैं। ऐसे ही सुख-स्वरूप श्रीजुगलकूँ नव-नवरंग ते सुखी करि, बिनके स्वरूप कूँ और रूपायमान करिबेवारे, सनेह कौ सागर एकमात्र आपही हैं। समस्त रसन कौ सारातिसार-रस की उदारता ते भरचो भयौ विहार विलसाइबेवारी आप श्रीनित्यविहारनीजू कें निरन्तर पास रहैं हैं। यावत् रीति-भाँति सों सर्वोपरि अभयपदस्वरूप श्रीजुगलकूँ प्रेम-विलास के अतिझीने दाव-उपाव बताइ-बताइ कें सतत अभय करतो रहैं हैं, तथामहामधुर रसकूँ हूँ पी-पी कें अति प्यासी बनी रहैं हैं।

महा रूप अति रस भरयौ, महा प्रेम अनुराग।
श्री स्वामी हरिदास को सोभित सदा सुहाग ॥६८॥
कुंज केलि निरखत सदा, प्रेम मत्त महा भाव।
श्री स्वामी हरिदास जू, रसिक सिरोमनि राव ॥६९॥

या बात कूँ समस्त रसिक महानुभाव भली भाँति जानैं हैं कि जहाँ जैसो प्रेम कौ स्वरूप होइ है, तहाँ तैसो ही रस तथा अनुराग होइ है, और जैसो रस-अनुराग कौ स्वरूप होइ है तैसो ही रूप होइबो अनिवार्य है। या न्यायानुसार श्रीस्वामी जी महाराज जब प्रेम रस अनुराग की अवधि स्वरूप हैं, तब बिनको ही रूप-महाप्रेम-रस सों भरचौ भयौ अति अद्भुत अनुराग स्वरूप होइबौ स्वाभाविक है। याही ते श्रीनित्यविहारनी जू को अभंग नित्य-बिहार रूपी सुहाग ते आप सदाकाल सुशोभित रहैं हैं। ताते महाभाव प्रेम में मत्त होइ, निजकेलि कूँ निरन्तर अवलोकन करते रहैं हैं। और याही कारन समस्त रसिकन के आप सम्राट स्वरूप हैं।

श्रीहरिदास सु प्रेम, महा रूप अति रस भरचौ।
कुंज केलि को नेम, रोम रोम में रमि रह्यौ ॥७०॥

श्रीस्वामी जी महाराज कौ सर्वोपरि प्रेम महारूप तथा अति रस ते भरचौ भयौ ऐसो है कि जिनकूँ एकमात्र श्रीवृन्दावन नव निकुंज केलि कूँ ही निहारिबे कौ दृढ़नेम रोम-रोम में रमि रह्यौ है।

रोंम रोंम में रमि रही, ललित प्रिये हरिदास।
इन बल सोवत चैंन सों, निरखैं नाही रास ॥७१॥

फिर आप बोले कि हे भाई! हमारे हू रोम-रोम में ललितप्रिये श्रीहरिदासी जू ही रमि रही हैं। हम इनके बल पै ही सदाकाल ऐसे सुख-चैन में सोवैं हैं कि हमारो मन और-और स्वरूपन के महारस को हू देखिबे कौ नाँइ चलै है।

श्रीहरिदास सुकेलि, महा प्रेम अति रस भरी।
आनंद निधि की बेलि, परम प्रिये सुखरासि अति ॥७२॥
श्री हरिदास बिहार, प्रिया प्रान उर हार री।
कुंज केलि सुख सार, आनंद उमगि ढरैं सदा ॥७३॥

श्रीस्वामी जी महाराज की सुन्दर केलि महाप्रेम अति रस ते भरी भई ऐसी आनन्द निधि की बेलि हैं जाकूँ हमारी प्रानप्यारी जू अति सुख स्वरूप समझि, सदाकाल अपने हृदय कौ हार बनाइ कें राखैं हैं। समस्त सुखन कौ सार स्वरूप कुंज-केलि-विहार के आनन्द में ही श्रीस्वामी जी महाराज सतत उमँगि-उमँगि कें ढरचौ करैं हैं।

छिन छिन रंग बढत रहै, अद्भुत रूप अपार।
ललित प्रिये हरिदास कें निरवधि नित्य बिहार ॥७४॥

ललितप्रिये श्रीस्वामी जू महाराज के ऐसो महा विचित्र नित्य बिहार नेरन्तर होइ है, जामें छिन-छिन अपार अद्भुत रूप रंग बढ़तो ही रहै है।

सुद्ध सरूप बिहार कौ, ललित प्रिये हरिदास।
सहज रूप रंग्यौ बिपुन कौ, महा प्रेम रस रास ॥७५॥

सबके मूल स्वरूप होइबे के कारन अति विसुद्ध ते हू विसुद्ध नित्य बिहार के स्वरूप, महाप्रेम रस-रास एकमात्र श्रीस्वामी जी महाराज ही हैं। तिनके ही अति विचित्र रंग सों साक्षात श्रीवृन्दावन जू सहज स्वाभाविक रँगे रहैं है।

जोति फुहारो बिपुन कौ, ब्रह्म सु ता परकास।
ललित केलि रस रूप निधि, अद्भुत प्रेम विलास ॥७६॥

जा श्रीवृन्दावन में अति ललित केलि रस-रूप-निधि कौ अद्भुत प्रेम-बिलास निरन्तर होतो रहै है, ता महल की महा विचित्र छबि-छटा या प्रकार की है, जाके ज्योति की किरनें फुहार की नाँईं सब ओर सतत जगमगाती रहैं हैं। तिनकी चाँदनी के प्रकाश कूँ ही ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म कहैं हैं!

मोहि रुचैं सोई करें, कुंजबिहारिनि वाल।
मेरे ही हित बिहरहीं, कुंज बिहारी लाल ॥७७॥

फिर आपने निज आश्रितन तें स्पष्ट कह्यौ कि हे भाई! अति विशुद्ध एवं पूर्णतम प्रेम स्वरूप रिझवारनि की चूरामनि, साँची प्रीति रीति कूँ भली भाँति जानिबेवारी निज महल की सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी जू सतत हमारी ममता में विवस रहिबे के कारन, हमें जो कछु रुचै है, सोई आप करे हैं। ऐसे ही श्रीकुंज बिहारीलाल जू हू मेरे ही हित के ताईं निरन्तर बिहार परायन हुए रहैं हैं।

अर्थात् मेरे प्रान इन दोउन कूँ प्रेम-बिहार में सतत खेलते भये, देखे बिना, छिनमात्र हू ऐसे नाँइ रहि सकैं हैं, जैसे पानी के बिना मछली नाँइ रहि सकै है।

कोऊ काहू कौ रुचै, मोहि रुचैं प्रिया लाल।
ललित केलि तन मन मिलें, कीने रसिक रसाल ॥७८॥

काहू कूँ तौ कोऊ और भलेही रुचते होइँ, किन्तु मोकूँ तौ एकमात्र श्रीजुगल ही रुचैं हैं। क्योंकि अति ललित-रसीली-केलि तन, मन सों मिलि कै, महाबिचित्र

माधुरी ते भरी भई ऐसी करें हैं, जासों साँचे रसिकन कूँ अति रसाल बनाइ दीनौ है।

तन रूपी तो महल है, मन रूपी प्रिया लाल।
ललित केलि बिहरैं सदा, कीने रसिक निहाल ।।७९।।

साक्षात ये श्रीवृन्दावन निज-महल तो हमें ऐसो प्यारो प्रतीत होय है, मानो हमारी देह स्वरूप ही हैं, जामें हमारे मन स्वरूप श्रीजुगल समस्त रसिकन कूँ निहाल करिबेवारे, अति रंगभरी ललित केलि कूँ निरंतर बिलसैं हैं।

मनोरथ रूपी प्रिया लाल हैं, मनोरथ रूपी निजु कुंज।
मनोरथ रूपी सज्या सुरंग, महा सुखनि की पुंज ।।८०।।

हमारे मनोरथ के स्वरूप ही तो निज नव निकुंज सुसोभित है रही हैं तथा हमारे मनोरथरूपी ही तामें महा-सुखन की पुंज सुरंग सैया सजि रही है और मेरे मनोरथ के स्वरूप ही यावत प्रेमिन के चूरामनि श्रीजुगल तहाँ निरंतर खेल खेलें हैं।

श्रीहरिदासी रंग सों, विलसत केलि अभंग।
कुंजमहल राजैं सदा, रसिक सिरोमनि संग ।।८१।।

श्रीवृन्दावन नव-निकुंज मन्दिर में प्राननाथ श्रीजुगल श्रीस्वामीजी महाराज के अगाध रंग-सागर में अभंगरूप ते केलि-बिलास बिलसैं हैं, जहाँ हमारे श्रीगुरुदेव श्रीरसिक सिरोमनिजू संग-संग खवासी करैं हैं।

कुंजमहल आनन्द निधि, छिन छिन रंग बढावै।
कुंजबिहारिनि ललित लाल कैं,तन मन हिय को भावै ।।८२।।

आनंद निधि हमारे श्रीकुंजमहल कौ ऐसो महाबिचित्र रस कौ स्वरूप है, जो श्रीकुंजबिहारिन-कुंजबिहारीलाल के छिन-छिन अद्‌भुत रंग को बढ़ातो ही रहै है, याते श्रीजुगल कूँ तन, मन एवं हृदय ते अति प्यारो लगे है।

हममें कुंज कुंज में हम हैं। कुंजबिहारी सोई मम हैं।।
ललित प्रिये के रसमें सम हैं। अब काहू को रही न गम है ।।८३।।

अपने निज मर्म के स्वरूप कूँ उल्लेख करते भये आप बोले कि हमारे हृदय में एकमात्र सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू कौ निजमहल ही भरचौ भयौ है, और देह सों हूँ हम निकुंज-महल में ही हैं। निकुंज महल के ही दृढ़ अनन्य बिलासी श्रीबिहारी-बिहारिनीजू ही हमारे प्राननाथ हैं। ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज के रस में ही हमारी समता है रही है, याते अब हमने काहू की गम नाँइ रही है।

उपरोक्त चौबोला के सम्बन्ध में "ललित प्रकास" में या भाँति बर्नन कियौ गयौ है कि जब आप भगवान-श्रीजगन्नाथजू की आज्ञा पाइ, नीलाचल ते श्रीधाम-वृन्दावन कूँ आइ रहे, तब मार्ग में श्रीभक्तमालजी की कथा आपने सुनी। जहाँ श्रीस्वामीजी महाराज के कथा प्रसंग में यह बर्नन आयो कि रसिकता में सर्वोपरि छाप एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की ही है। श्रीजुगल की केलि कूँ आप निरंतर अवलोकन करते रहैं हैं। ऐसे सर्वोपरिता के वाक्य श्रीस्वामीजी महाराज के सम्बन्ध में आप सुनि, बड़े अनुराग सों श्रीवृन्दावन माऊँ चल परे। वा समय श्रीस्वामीजी महाराज की गादी पै श्रीस्वामी रसिकदेवजू महाराज विराजमान हे। बिनके पास आइ माथो नवाइ के प्रार्थना कीनी कि मोकूँ अपने सरन में राखि लेओ। श्रीस्वामी रसिकदेवजू महाराज ने निज रस-रीति कों छुपाइ कें, व्रज-रस-देस कूँ उपदेस आपकूँ दीन्यौ, जब वासों आपके हृदय कूँ कोऊ सुख-संतोष नाँइ भयौ, तब आप श्रीगुरुदेव कूँ दंडवत करि, श्रीनिधिवनराज में जाइ, लतान कूँ अंक में भरि उपरोक्त चौबोला कूँ गावन लगे। श्रीस्वामी रसिकदेवजू ने आपके पीछे-पीछे अपने सिष्य कूँ भेज्यौ हो, बिनने आइकें जब ये सब बात महाराज कूँ सुनाई। तब आपने श्रीस्वामी ललित-किसोरीदेवजू कूँ बुलाइ, श्रीस्वामीजी महाराज के घर कौ निज महामंत्र, निज रस-रीति कौ उपदेस दै, अपने घर की बानी जो सबनि तें छुपाइ के धरि राखी ही, वो आपकूँ दै दीनी।

जुगल मंत्र स्वामी श्री मिश्रित, पुनि मिश्रित हरिदास।
यह निज मंत्र दियो करुनानिधि, आनंद कंद निवास॥
षट आचरज तिनकी बानी, राखी हुती छिपाइ।
दई निकासि रासि निज धन की, मन की बात बताइ॥

मो बंछी सोई करी, कुंज बिहारिनि बाल।
तन मन मिलि विहरत सुखै, कीनो रसिक निहाल॥८४॥

अब हमारे श्रीगुरुदेव श्रीस्वामी रसिकदेवजू ने अद्भुत करुना करि या प्रकार मोकूँ निहाल करि दीनौ है कि उदार सिरोमनि साक्षात् श्रीकुंजबिहारिनि बाल सों मेरौ प्रेम संबन्ध ऐसौ बाँधि दीनौ कि जो-जो अपने मन में बाँछा करूँ हूँ, सोई-सोई सब श्रीप्यारीजू मेरी पूरी करें हैं।

श्रीहरि श्रीहरिदास हैं, श्री हरि श्री हरि संग॥
श्री हरि कुंज सुहाग निधि, श्री हरि केलि अभंग॥८५॥

श्रीहरि सेज सुहावनी, श्रीहरि भूमि सुरंग।
श्री हरि निधिबन-राज हैं, गौर-श्यामँ के रंग ॥८६॥
श्रीहरि वृन्दाबिपिन नित, श्रीहरि जमुना पाँनि।
श्रीहरि लाड लडावई, कुंजबिहारिनि रानि ॥८७॥

सबके तन, मन, प्रानन कूँ भलीभाँति आर्कषित करिबेवारे प्रथम श्रीहरि श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं। दूजे श्रीहरि स्वरूप परस्पर श्रीजुगल हैं। तीजे सुहाग-निधि श्रीवृन्दावन-कुंज जामें छिन २ श्रीजुगलकी अभंगकेलि होइ है। ऐसेही श्रीनिकुंज-मन्दिर की सुरंग भूमि, जापै परम सुहावनो सुसीतल सज्या सजि रही है। याही भाँति गौर-स्याम के भाव रंग के स्वरूप श्रीनिधिबनराज हैं। अद्‌भुत नित हरि स्वरूप श्रीवृन्दाविपिन एवं श्रीजमुनाजी हैं, जिनकूँ स्वयं श्रीकुंजविहारिनि रानीजू सतत लाड़-लड़ायौ करैं हैं।

श्रीस्वामी हरिदास जू, महा प्रेम रस खानि।
कुंज महल राजत सदा, नित्य प्रिया सुख दानि ॥८८॥

श्रीस्वामीजी महाराज महा-प्रेम-रस की खानि हैं। सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू कूँ सदाकाल सुखी करि-करि कें निकुंज मन्दिर में सुसोभित रहैं हैं।

श्रीस्वामी हरिदास को, जो कोउ निजु करि होय।
रहे प्रिया के सुख सुखी, सहज अपनपो खोय ॥८९॥

श्रीस्वामीजी महाराज के जितेक साँचे निज जन होय हैं, वे सब सहज सुभाउ अपनपो खोइकें साक्षात नित्यबिहारिनीजू के सुख ते सुखी रहैं हैं।

ताही कों हरिदास जू, अंग संग लेत लगाइ।
छके रहैं अति रंग में, गौर श्याम के भाइ ॥९०॥

उपरोक्त महाबड़भागी जनन कूँ ही श्रीस्वामीजी महाराज अपने अंग-संग लगाइ लेवै हैं, जासों वे श्रीगौर-स्याम के रंग में सतत छके रहैं हैं।

हरि हरि हरि हरिदास हैं, सदा जुगल के संग।
कुंज महल राजैं ललित, निरखें केलि अभंग ॥९१॥

समस्त विस्व कूँ मोहित करिबेवारे साक्षात श्रीलालजू, तिनके हू तन, मन, प्रानन कूँ चोरिबेवारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू, बिनके हू मन-प्रानन कूँ सतत

आकर्षित करिबेवारे श्रीस्वामीजी महाराज सदाकाल श्रीजुगल के संग, निकुंज-महल में अति ललित अभंग केलि कूँ निहारि-निहारि सुसोभित रहैं हैं।

श्रीस्वामी हरिदास जू, कुंज केलि विश्राम।
तिनके चरन कमल मम उर बसो, रोम रोम अभिराम ॥९२॥

जो श्रीस्वामीजी महाराज श्रीवृन्दावन कुंजकेलि में ही सदाकाल विश्राम करैं हैं, बिनके ही श्रीचरन-कमल, मेरे हृदय में अति सुसोभितता तें निरंतर बिराजे रहो।

श्रीबिपुलबिहारिनिदास जू, लाडति जुगल सुहाग।
काम केलि गुन गान करि, प्रगट करत अनुराग ॥९३॥

श्रीस्वामी बीठलबिपुलदेवजू एवं श्रीगुरुदेवजू सदाकाल अति सरस रसीली कामकेलिकूँ ही गाइ-गाइकें श्रीजुगलके हृदयकमल में अद्भुत अनुराग उमगाते रहैं हैं।

भूलि हमारे हाथ ही, सब विधि करी बनाइ।
समुझ दई जब लाडिली, तब निजु सुख रही समाइ ॥९४॥

फिर आप निज आश्रितन ते कहिबे लगे कि–हे भाई ! हमने ही अपने हाथन ते समस्त रीतिभाँति सों भूल कीनी है। करुणानिधि प्रानजीवनि हमारी श्रीलाड़िलीजू नें कृपा करिकें जब हमें समझ दीनी, तब हम बिनके ही निज सुख में समाइ गये हैं।

हम सों कही श्री लाडिली, सदा हमारे संग।
जो तुमसें साँचौ रहै, ताहि लगावो अंग ॥९५॥

फिर आप स्पष्ट बताते भये बोले कि–साक्षात प्रानजीवनि लाड़िलीजू ने मोते यह बात कही है कि तुम मेरे सदाकाल संग-संग रहो,और जो भी जन तन, मन, प्रानन ते साँचो होइकें तुम्हारे आश्रय आवै ताही कूँ अपने संग लगाइ लेवो।

जे हरि गुर सों सांचे रहैं, तनकों झूठो जानि।
रहैं बिपुन आनँद में, तेई रसिक सुजानि ॥९६॥

जो बड़भागी जन अपने तन कूँ नासवान समझि, याकूँ सुखी राखिबे की चिन्ता नाँइ करि, श्रीहरि-गुरुन के सुख के ताईं निष्कपट-निस्पृह होय, साँचे रहैं हैं, तेई सुजान रसिक श्रीवृन्दावन में आनंद ते बसैं हैं।

श्रीवृन्दावन नित्य सुख, छिन छिन बाढैं रंग।
लाड़ लड़ावैं जुगल वर, श्रीहरिदासी संग ॥९७॥

जा श्रीवृन्दावन में नित्य सुख को रंग छिन-छिन बढ़तो रहै है, तहाँ श्रीस्वामीजी महाराज के संग-संग श्रीजुगल कूँ हम सतत लाड़ लड़ावैं हैं ।

जे अनुरागी साधु हैं, साँचौ हरि सों भाव ।
तिनकों बाधा कछु नहीं, सोवैं भावैं गाव ।।९८।।

जिन संतन के हृदय में श्रीहरि के प्रति साँचो भाव-अनुराग है गयौ है, तिनकूँ माया आदिक कोऊ बाधा नाँइ करि सकै हैं, चाहै वे सोवैं, चाहै गावैं ।

जे अनुरागी संत हैं, तिनकी यही सुरीति ।
दुखी न काहू लखि सकैं, सब जीवन सों प्रीति ।।९९।।

जे अनुरागी संत हैं, तिनकी यह परम सुन्दर रीति अवस्य होइगी, कि वे काहू कूँ दुःखी नाँइ देखिकें, जीवमात्र सों सहज स्वाभाविक प्रीति करैंगे ।

ग्याँन जोग वैराग तैं, मनवा उजलो होय ।
जे अनुरागी हरि भजैं, परम तत्व लहैं सोय ।।१००।।

ज्ञान, जोग, बैराग ते मन तो अवस्य उज्ज्वल है जाय है, किन्तु प्रेम अनुराग-पथ पै चलिबेवारे महतजन ही परम तत्व सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ प्राप्त करि लेइ हैं ।

रोम रोम आनँद भरि, दुख कौं डारि निकारि ।
जो कछु करैं सो हरि करैं, सिर को भार उतारि ।।१०१।।

ममता में बिवस होइ, निज आश्रितन ते आपने कह्यौ कि—हे भाई ! जो कछु होइ है, वो सब एकमात्र श्रीहरि को ही करचौ भयौ होइ है । याते तुमने व्यर्थ ही अपने कर्तृत्व को बोझ सिर पर लादि राख्यो है । समस्त बातन की चिंता कूँ भली-भाँति त्यागि, श्रीस्वामीजी महाराज के बल, भरोसा पै श्रीजुगल के रसमय आनंद कूँ रोम-रोम में भरि लेउ ।

भली भली सब हरि करैं, भूल अपनपौ लेह ।
प्रेम प्रीति रस रीति यह, बन में रहो कि गेह ।।१०२।।

यदि कोऊ ये बात कहै कि जब सब कुछ श्रीहरि ही करैं हैं, तब हमारो काहू बात को दोष हो ही कैसे सकै है ? तापै आपने कथन कियौ कि—हे भाई ! प्रेम-प्रीति, रसरीति के पथ पै चलिबेवारे सहज सुभाउ ऐसो मानैं हैं कि भली-भली तो सब एक-मात्र श्रीहरि ही करैं हैं, क्योंकि श्रीहरि बुरो करिबो जानैं ही नाँइ हैं । बुरी बातन माऊँ सहज सुभाउ जीव ही ढरचौ करै है । याते बुरो जो कछु बनि आवै, वो सब

अपनी ही करतूत समझनी चहिये। ऐसे समझिबेवारे चाहै वे घर में रहैं, चाहै वे वैराग्य लैं, बन में चले जाँइ, बिनको कहूँ बाधा नाँइ है।

सावधान जो हरि भजैं, अंत होइ जो भूल।
तन मन की सुधि ना रहै, ता छिन हरि अनुकूल ॥१०३॥

जो जन सावधान अवस्था में सतत श्रीहरि कौ भजन करैं हैं, वे अंत समय रोग, दोष ते दुखित असावधानी के कारन, यदि श्रीहरि कूँ भूल जाँइ तौ, वा समय श्रीहरि ही बिनके अनुकूल रहैं हैं।

मन इन्द्री कों बस करै, हरि सों नाँहि पिछानि।
तन छूटै कहाँ जाय फिरि, यहो भ्रम ना जानि ॥१०४॥

जो लोग साक्षात श्रीहरि सों तो काहू प्रकार को नातो-संबन्ध बाँधैं नाँइ हैं। अपने अभ्यास द्वारा सतत मन-इन्द्रिन कूँ बस करैं हैं। ऐसी स्थिति में देह छूटि जाइबे ते वे जन कहाँ जाँइगे, यह मन में भ्रमना ही बनी रहै है।

ग्यान जोग बैराग तैं, जो दुर्लभ हैं धाम।
तहाँ के बासी यह चहैं, ब्रज रज में विश्राम ॥१०५॥

ज्ञान, जोग बैराग्य ते जो श्रीबैकुंठ आदि धामन की प्राप्ति अति दुर्लभ है, वा बैकुंठ की अधीस्वरी स्वयं श्रीलक्ष्मीजू हू श्रीकृष्ण प्राप्ति के ताईं ब्रज-रज में बसिबे की चाहना राखैं हैं।

अनहोनी होनी करैं, होनी हू मिटि जाइ।
कुंजबिहारीलाल कै, जो निजु सुखै समाइ ॥१०६॥

जो बड़भागी जन श्रीकुंजबिहारीलाल के निज सुख, नित्यबिहार रस में समाये रहैं हैं, बिनकी असंभव बातन कूँ तो आप सहज संभव करि देवैं हैं और हानिकारक होनी कूँ हूँ मिटाइ देवैं हैं।

आपो बांधै हरि भजै, कहूँ न पावै ठाँव।
चलतैं चलतैं जुग गये, पाव पैड पर गाँव ॥१०७॥

जो लोग अपने कर्तापने के अभिमान ते चाहे साक्षात श्रीहरि कूँ हूँ क्यों न भजते होंइ, बिनकूँ श्रीहरि के दरबार में कहूँ ठौर नाँइ मिलै है। ऐसे जनन कूँ साधन करते २ यदि अनंत जुग हू व्यतीत है जांइ, तौहू श्रीहरि प्राप्त नाँइ होंइ हैं। बिसुद्ध प्रेम-भावसों नेंकहू लालसा करत खेम पाँव पैंड की नाँईं श्रीहरि हृदयमें ही प्रगट है जाँइ हैं।

साँचो ह्वै कैं हरि भजै, कहा रानाँ कहा रङ्क ।
माया काल छुबैं नहीं, मिटैं लिखे हू अंक ।।१०८।।

साँचे भाव ते श्रीहरि को भजन करिबेवारो चाहे राजा-महाराजा हो, चाहे अति रंक हो, मायाकाल बिनकूँ सपरस हू नाँइ करि सकें हैं, तथा बिनके कपाल के लिखे भये अंक हू सब मिटि जाँइ हैं ।

पूजैं देवी देवता, छाँड़े हरि गुरु संत ।
तन मन राचै झूठ सों, तिनके दुखै न अंत ।।१०९।।

जो लोग सर्वोपरि हर्त्ता-कर्त्ता श्रीहरि, गुरु, संतन कूँ छाँडि के, नासवान मायिक सुखनमें रचि, देवी-देवतानकूँ पूजें है, तिनके दुःखनकूँ कबहूँ अंत नाँइ आवै है ।

पूजैं देवी देवता कियो न हरि सों भाव ।
सूने घर को पाहुनों ज्यौं आवै त्यौं जाव ।।११०।।

जैसे काहू सूने घर में आइबेवारे मेहमान कूँ कोऊ आवभगत करिबेवारो नाँइ होइ है । जैसो आयो, तैसे ही लौटनो परै है । ऐसे ही श्रीहरि-गुरु संतन तें कछु भाव नाँइ राखि, केवल देवी, देवतान कूँ ही पूजें हैं, बिनकूँ श्रीभगवत-लोक में कोऊ पूछिबेवारो नाँइ होइ है ।

जे तन मन की कामना, ते सब धोइ बहाव ।
भलो समौ हरि मिलन कौं, फेर न ऐसो दाव ।।१११।।

फिर आप आश्रितन ते आज्ञा करते भये बोले कि—हे भाई ! श्रीबिहारीजी महाराज कूँ प्राप्त करिबे के ताईं, यह समय तुम्हारो बहुत सुन्दर बनि रह्यौ है । प्रथम तो मानव देह, दूजे श्रीवृन्दावन को बास, तीजे श्रीस्वामीजी महाराज के जनन ते तुम्हारो संबंध आदि सुन्दर सब बानिक बनि गये हैं। याते तुम अपने तन, मन की समस्त कामनान कूँ भलीभाँति धोइ कें बहाइ देउ । फिर ऐसो सुंदर समय बनिबो अति दुर्लभ है ।

जैसे अंजुली जल घटैं, ऐसैं ही घटि आव ।
अब चेतैं तो हरि मिलैं, फिर पीछैं पछिताव ।।११२।।
दामिनि की सी चमकि तन, ताहि कहा थिर मानि ।
ताही में हरि मिलत हैं, भूलें दुख की खानि ।।११३।।

जैसे अंजुलि को जल सतत घटतो ही जाइ है, तैसे ही या देह की आयु छिन-छिन घटि रही है। यदि अबहीं तुम चेत जाओ, तो साक्षात् श्रीहरि कूँ प्राप्त करि लेओगे, अन्यथा पछितामनो ही परैगो। यह देह दामिनो की चमक की नाँई नेकमें ही चली जाइबेवारी कूँ तुम काहे कूँ थिर मानि रहे हो। यदि तुम साँचे मन ते नेकहू श्रीहरि के माऊँ देखि लेबोगे तो वे परम दयालु-कृपालु श्रीहरि इतेक में ही रीझि तुम्हें अपनो बनाइ लेवैंगे। बिनकूँ भूलिबे ते ऐसी दुःख की खानि तुम है जाओगे, जोकि अनंत जुगन ताऊँ छूटि नाँइ पावौगे।

बार बार तोसों कह्यौ, भूल्यौ मन समुझाउ।
हरि गुरु टेरैं कहत हैं, फेरि न ऐसो दाउ ॥११४॥

हम तुमसों बार-बार कहैं हैं कि तुम अपने भूले भये मन कूँ क्यों नाँइ समझाइ रहे हो? साक्षात श्रीहरि एवं गुरु टेरि-टेरि कें कहि रहे हैं, "फिर ऐसो दाउ तुम्हें नाँइ मिलैगो।"

महा नरक को कोथला, ताही में रति मानि।
श्रीहरि गुरु सौं कपटै करैं, ते अति पापी जानि ॥११५॥
झूठ कपट कोलौं चलै, आखिर परगट होइ।
हरि गुरु सों जो यौं रहैं, तिनको ठौर न कोइ ॥११६॥
हरि गुरु सों भूले फिरैं, कामी जीव अपार।
मन इन्द्री के बस परैं, खोइ महा सुख सार ॥११७॥

यह देह एकमात्र अति घृनित पदार्थन ते भरी भई महा नरक को कोथला है, तौहू या देह ते प्रेम मानि कें, जो लोग श्रीहरि गुरुन सों कपट करैं हैं बिनकूँ जगत में अति पापी जानों। आखिर झूठ-कपट प्रगट हुए बिना नाँइ रहि सकै है। इतेक पै हू श्रीहरि गुरुन सों जो कपट राखैं हैं, तिनकूँ कहूँ ठौर नाँइ मिलै है। या प्रकार के अपार कामी जीव मन, इन्द्रिन के बसीभूत होइ, साक्षात श्रीहरि-गुरू कूँ भूलि, महासुखसार सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ ही खोइ बैठे हैं।

झूठो सुख यह बिस्व को, अपजस दुख की खानि।
हरि गुरु सों बिमुख भयें, भैया कौन गहै फिरि पानि ॥११८॥

या समस्त मायिक जगत कौ सुख एकमात्र झूठो, नासवान तथा दुःख एवं

अपजस ते भरचौ भयौ है। यामें आसक्त होइ जो लोग श्रीहरि गुरुन ते बिमुख है जाँइ हैं, तिनकूँ हाथ पकरिबेवारो कोई नाँइ होइ है।

जठर अगनि रछा करी, ताकौ क्यों न सम्हारि।
तन मन राच्यौ बिषय में, चल्यो जमानों हारि ॥११९॥

हे भाई ! परम कारुनिक जिन श्रीहरि ने जरते भये मैया की गर्भ-अग्नि ते तुम्हारी रक्षा कीनी, तिनकूँ अब तुम क्यों नाँइ याद करि रहे हो। तन, मन ते बिषयन में रचि-पचि के, अद्‌भुत महासुख प्राप्त करिबे जोग्य या मानव-देहरूपी समय कूँ यूँ ही खोइ रहे हो।

तन दीनों हरि मिलन कों, ताकों वृथा न खोइ।
ब्रह्मादिक वांछित रहैं, सो दुर्लभ भयो तोहि ॥१२०॥

जा मानव देह के ताईं, श्रीब्रह्मादिक हू सदाकाल बांछा कियौ करें हैं, वो अति दुर्लभ देह श्रीहरि को प्राप्त करिबे के ताईं तोकूँ मिल्यौ है, ताकूँ वृथा नाँइ खोमनो चहिए।

है नाहीं की संधि में, ऐसी है यह देह।
याही में हरि मिलत हैं, यासों तजो सनेह ॥१२१॥
सुपने लागी हाट, ताही में हरि पाइये।
संतन पकरी बाट, चरन कमल सेवें सदा ॥१२२॥

यह देह ऐसो क्षण-भंगुर है कि "है नाही" कहिबे में जितेक समय लगै है, तितेक में ही चली जाइ सकै है। यदि तुम यासों स्नेह त्यागि, श्रीहरि की साँची लालसा करौ तो इतेक में ही श्रीहरि मिलि जाँय हैं। यह जगत एकमात्र सुपने की सी हाट है, याही में श्रीहरि की प्राप्ति है जाय है। बड़भागी संतजन श्रीहरि की प्राप्ति को मार्ग पकरि, आपके श्रीचरन-कमलन कूँ सदाकाल सेवैं हैं।

भूलैं भूजी दह गई, समझैं दहकी गोद।
बिगरी बातें सब बनी, जब हरि चितये इहिकोद ॥१२३॥

जैसे भाजी कूँ आँच पै चढ़ाइ कें भूलि जाइबे ते, वो सब जरि जाइ है, तैसेही श्रीहरि कूँ भूलिबे पै मानव की सब आयु बेकार ही चली जाइ है। श्रीहरि के प्रभाव, प्रताप, रूप, नाम, गुन, माधुरी आदि कूँ समझिबे ते साधक बिनकी गोद में ही बैठि

जाइ है। श्रीहरि हू याके माऊँ देखन लगें हैं। तब याकी बिगरी भई सब बात सहज बनि जाइ है।

गुरु सेयैं हरि सेइये, हरि सेयैं गुरु नाहिं।
गुरु छांडै हरि कों भजैं, तिन सों दोऊ जाहिं ॥१२४॥

जो जन श्रीगुरुदेव कूँ साँचे भाव ते सेवते रहैं हैं, तिनको साक्षात श्रीहरि को हू सेवन सहज सुभाउ बनि जाइ है। किन्तु केवल श्रीहरि के सेवन ते श्रीगुरुदेव को सेवन नाँइ बनै है। इतेक ही नाँइ श्रीगुरुन कूँ छाँडि के, श्रीहरि कूँ सेवन करिबेवारेन ते दोनों ही चले जाँइ हैं। अर्थात श्रीगुरुन के सेवन के बिना, श्रीहरि अपने सेवन कूँ कछु मानैं ही नाँइ हैं।

गुरु अज्ञा जिनने करी, तिनको अति बडभाग।
गुरु आज्ञा ते हरि मिलैं, पावैं जुगल सुहाग ॥१२५॥

जो जन अटल-अचल भाव ते श्रीगुरुदेव की आज्ञा में सतत चलैं हैं, जगत में वो ही अति बड़भागी हैं, क्योंकि गुरून की आज्ञा में चलिबेवारेन कूँ श्रीहरि सहज प्राप्त होय, जुगलरूपी सुहाग सो वे सुसोभित है जाँय हैं।

जो कोऊ साँचौ हरिकौ होइ। ताकी सरि दूजो नहिं कोइ।
सेवा करै कछू नहीं मानें। ताही के हरि हाथ बिकाने ॥१२६॥

जो महतपुरुष तन, मन, धन एवं प्रानन तें साँचे श्रीहरि के है जाँइ हैं, तिनकी समता जगत में कोऊ करि ही नाँइ सकै है। वे जन भलीभाँति निरंतर आपकी सेवा करते भये हू कछु नाँइ मानिकें, सदाकाल सेवा के अभाव सों पछिताते ही रहैं है। ऐसे जनन पे स्वयं श्रीहरि हू बिकि जाँइ हैं।

औगुन तो लीजै नहीं, गुन में कीजे सीर।
गुन छाडै औगुन गहैं, तेई हैं बेपीर ॥१२७॥

साधक समाज कूँ सचेत करते भये आप बोले कि–हे भाई ! काहू के अवगुनन माऊँ नाँइ देखिकें, गुन काहू के कैसेहू क्यों न होइ, अवस्य ग्रहन करि लेनो चहिए, जो लोग गुनन कूँ छाँडि, अवगुनन कूँ ही बिचारचो करैं हैं। बिनको कोऊ इष्ट-गुरु नाँइ होइ है।

घटि बढि अछिर मति गनों, हरि अनुरागी चित्त।
घटि वढि अछिर जे गनैं, ते नाँहिं हरि के मित्त ॥१२८॥

याते काहू के गुन-दोषन माऊँ मन नाँइ दैकें श्रीहरि के अनुराग में ही चित्त कूँ लगाओ। जो लोग गुन-दोषन कूँ ही सतत बिचारते रहैं हैं, वे श्रीहरि के मित्र नाँइ होइ हैं।

जब लगि पर गुन दोष निहारै। तब लगि अपनी वस्तु बिचारै॥ –श्रीगुरुदेवजू

प्रेम दसा जिनकी भई, तिनकी अटपटी बानि।
पंडित पढि कै पचि मरे, प्रेम बिना मति हानि ॥१२९॥

जिन महतजनन की प्रेम दसा है जाइ है, बिनको कछु और ही प्रकार को अटपटो सुभाउ होइ है। पंडित लोग पढ़ि-पढ़ि कें कितेक हू पचि-पचि कें मरि जाँइ, किन्तु प्रेम बिना, बिनकी स्थिति कूँ नाँइ समझि सकैं हैं।

बादर की सी छाँह ज्यौं, तैसी है यह देह।
ताही में हरि पाइये, देखो अचरज एह ॥१३०॥
जिन हरि कों खोजत रहैं, ब्रह्मा सेस महेस।
ते हरि या देही मिलै, श्री गुरु के उपदेस ॥१३१॥

जैसे सूर्य के आगे बादर आइबे ते नेक देर के ताईं छाया है जाइ है, तैसे ही या देह को जीवन समझनो चहिए। तौहू बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जिन श्रीहरि कूँ साक्षात श्रीब्रह्मा, सेष, महेस आदि बड़े-बड़े देवगन सतत खोजते रहैं हैं, वे श्रीहरि श्रीगुरुन के उपदेस सों इतेक देर में ही मानवु कूँ प्राप्त है जाँय हैं।

हरि समझै हरि ही भयो, हरि भूलै दुख होइ।
देह तजै हरि को भजै, अति बडभागी सोइ ॥१३२॥

जिन महत्पुरुषन ने या देह सों ममता त्यागि, श्रीहरि के सर्वोपरि रूप, गुन, जसन कूँ भलीभाँति समझि, अपने हृदय में धारन करि लीने, वे जन तो साक्षात श्रीहरि के समान ही प्रभाव-गुन युक्त स्वरूप है जाँइ हैं। अन्यथा सबलोग दुःख के ही स्वरूप बने रहैं हैं।

बात करो हरि मिलन की, दुख तें देह निकारि।
आपा की सिर पोट है, ताकौं दीजै डारि ॥१३३॥

याते हे भाई! जो कछु बात करौ, वो एकमात्र श्रीहरि की प्राप्ति की ही करौ। श्रीहरि ही एकमात्र या मायारूपी दुःख-सागर ते निकारि सकैं हैं। तुमने जो अपने आपापने की पोट सिर ऊपर धरि राखो है ताकूँ भलीभाँति डारि देउ।

जो कछु करें सु हरि करें, हरि सब सुख दाता।
ताही को हरि मिलत हैं, जो इनके रंग राता॥१३४॥

मैं तुमसों कहूँ हूँ कि या बातकूँ भलीभाँति अपने मन में समझि लेउ, जो कछु होइ है, वो एकमात्र श्रीहरि को ही करचो भयौ होइ है। श्रीहरि ही समस्त सुखन के दाता हैं, किन्तु आप तिनकूँ ही मिलैं हैं, जो आपके ही रंग में रत-मत हुए रहैं हैं।

साध सती अरु सूरमा, इनकी रहनी बाँक।
जो ये रहनी तें डिगै, तों रहै न इनकी नाँक॥१३५॥
नाँक गये सोभा नहीं, बहुत करो सिंगार।
जगत हँसै निंदा करै, पृथ्वी मानैं भार॥१३६॥

परम बैरागी-अनुरागी संत, सती स्त्री एवं सूरबीर आदि इन सबन की रहनी जागतिक जीवन ते कछु और ही बाँकेपने की होइ है। यदि ये अपनी रहनी ते गिरि जाँइ तो इनकी समस्त प्रसंसा ऐसी धूर में मिलि जाइ है कि—जैसे नकटा व्यक्ति अपनो कितेक हू शृङ्गार करै वाकी सोभा नाँइ होइ सकै है। याही प्रकार ते अपनी रहनी ते गिरिबेवारे की सोभा नाँइ होइ सकै है। जगत में तो वाकी निंदा होइ सो तो होय है, किन्तु पृथ्वी हू भार मानै है।

गुरु सोई जो बिपिन बसावै। गुरु सोई जो साधु सेवावै॥
गुरु सोई जो हरिहि मिलावै। या करनी बिनु गुरु न कहावै॥१३७॥

फिर साधक समाज कूँ सावधान करते भये आपने स्पष्ट कथन कियो कि—हे भाई! जगत में तथा परमार्थ में बिना गुरु के कोई सफलता नाँइ प्राप्त करि सकै है, किन्तु गुरु बनिबेवारे जनन ने भलीभाँति सोच-समझ लेनो चहिये कि गुरु वे ही महत्-पुरुष है सकैं हैं जो निस्पृह, निष्काम भाव सों मायिक जीवन कूँ अपने आश्रय में लेइ, श्रीआचार्य चरनारविंद को संबंध दै, श्रीहरि के नाम, गुन, प्रभाव, प्रताप, प्रेम, रूप, स्वरूप आदिकन कूँ भलीभाँति समझाइ, निजमहल श्रीवृन्दावन में अखंडबास कराय, श्रीजुगल-चरनारविंद की प्राप्ति के साधनन में सतत लगाते रहैं। तदुपरांत वाके स्वरूप-अनुरूप निष्काम भाव ते संतन की सेवा करावै। अन्यथा यदि अपने आश्रितन कूँ या प्रकार परमार्थ माऊँ नाँइ लगाइ सकै तो बिनको गुरु कहाइबो ही बेकार है।

सिष्य सोई जो आज्ञा पारै। गुरु के बचन हिय में धारै॥
तन मन धन सब गुरु को मानैं। गुरु बिन और कछू नहिं जानैं॥१३८॥

गुरुही के सुख में नित रहै। गुरु बिन हरि हू को नहिं चहै ॥
ताको हरि गुरु नहिं बिसारैं। ऐसो सिष्य जगत को तारैं ॥१३९॥
ऐसो गुरु ऐसो सिष्य होई। प्रेम पदारथ पावै सोई ॥
यहरस रीति रसिकवर गाई। ललितकिसोरी के मनभाई ॥१४०॥

परमार्थ के साँचे लालायित जो शिष्य होंइ हैं, वे श्रीगुरुदेव के बचनन कूँ अपने हृदय में धारन करि, अपनो तन, मन, धन सब कछु श्रीगुरून को ही मानि, सदाकाल निभावैं हैं। अपने श्रीगुरुदेव के अतिरिक्त और काहू कूँ मानिबो तो बहुत दूर की बात है ? श्रीगुरुन के सुख के अतिरिक्त, साक्षात् श्रीहरि कूँ हूँ नाँइ चाहैं हैं। या प्रकार के महा श्रद्धालु सिष्य कूँ श्रीगुरु कबहूँ नाँइ बिसारैं हैं, और ऐसे ही सिष्य जगत को उद्धार करि सकैं हैं। याते ऐसे गुरु-सिष्य ही प्रेम-पदार्थ प्राप्त करैं हैं। हमारे श्रीगुरुदेव स्वामी रसिकदेवजू ने याही रस-रीति कूँ गायो है। ये ही रीति हमारे मन कूँ भाई है।

हरि गुरु सों सांचौ रहै, विघन न व्यापै कोइ।
हरि गुरु सों सांचौ नहीं, तो विघन दसों दिसि होइ ॥१४१॥
सांचे श्रीहरिदास हैं, सांचे ही सुख देत।
गौर स्याम सांचे सु अति, रीझि अंक भरि लेत ॥१४२॥

जो जन श्रीहरि गुरुन ते सदाकाल साँचे रहैं हैं। बिनकूँ कोऊ बिघन नाँइ व्यापै है। जो श्रीहरि गुरुन ते साँचे नाँइ रहैं हैं, तिनकूँ ही सब ओर ते बिघ्न आवैं हैं। अति विसुद्ध साँचोपनो प्रेम के अतिरिक्त कहूँ हो ही नाँइ है। याते प्रेम के मूल-स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज समस्त साँचेन के सिरोमनि, साँचे सरन आइबेवारेन कूँ अपनो निज साँचो सुख बिनकूँ दै देवैं हैं। स्वयं श्रीजुगल हू श्रीस्वामीजी महाराज के साँचे सम्बन्ध पै अति रीझि बिनकूँ अंक में भरि लेइ हैं।

हरि गुरुसों अनुराग अति, छिनु छिनु बाढै चाउ।
सम बुधि ह्वै कै सुख लहै, रसिक सिरोमनि राउ ॥१४३॥

जिन महतन के श्रीहरि-गुरुन के अनुराग में छिन-छिन चाव बढ़तो रहै है तथा और सबन में सम बुद्धि राखैं हैं, तेई रसिक-सिरोमनि है कें सदा सुख लेवैं हैं।

महा प्रेम सुख को चहै, तो श्री गुरु सेइ सुभाव।
इन सेयें ते पाइ हैं, कुंज बिहारी राव ॥१४४॥

फिर आपने कह्यौ कि यदि उपरोक्त महाप्रेम-सुख कूँ चाहते हो तौ रस-दाता अपने श्रीगुरुदेव के सहज सुभाउरूपी रुख कूँ सदाकाल सेवन करौ। बिनके ही सेइबे ते श्रीकुंजबिहारी राउ सहज प्राप्त है सकैंगे।

साँचौ श्री बृन्दाबिपुन, साँचेई सुख देत।
जो साँचो तन मन भजै, भूल न ताकी लेत ॥१४५॥

समस्त साँचेन के सिरमौर श्रीवृन्दावनजू, साँचे अनन्य निज आश्रितन कूँ साँचो सर्वोच्च नित्यबिहार सुख दै देवैं हैं। जो साँचे भाव सों तन, मन, द्वारा आपकूँ सेवैं हैं, वाते काहू कारन बस कछु भूल हू बनि जाइ, ताकूँ श्रीवृन्दावनजू नाँइ मानैं हैं!

जो साँचो साँचे पहिचानें। साँचो ललित केलि मन मानें॥
साँचो ह्वै अंग सँग नित रहै। साँचो सुख प्रिया को चहै ॥१४६॥
लडैती कहै लडैतीय कहावै। ललित लडैती मो मन भावै।
अँग सँग केलि लडैती देखै। छिन छिन बाढै सुख अलेखैं ॥१४७॥

जो जन सचाई के साथ बिसुद्ध अति साँचे स्वरूप कूँ पहिचान लेवैंगे तौ वे एकमात्र श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की अति ललित केलि के ही दृढ़ अनन्य है जाँयगे। साँचो बिसुद्ध प्रेमभाव सों श्रीस्वामिनीजू के सुख की सतत चाहना करते भये बिनके ही अंग-संग निरंतर रहैंगे। सदाकाल श्रीलाड़िलीजू के ही नाम-गुनन कूँ गावैंगे तथा आश्रितन ते हू श्रीलाड़िलीजू के रस-जसन कूँ गवावैंगे। हमारे हू मन में एकमात्र श्रीललित लड़ैतीजू तो भावैं हैं। बिनके ही अंग-संग केलि कूँ सतत हम देखैं हैं। जासों अपमित सुख छिन-छिन हमारे बढ़तौ रहै है।

कुंजबिहारिनि लाडिली, छिन छिन रंग बढाय।
श्री स्वामी कौ जान कैं, पोषैं मन के भाय ॥१४८॥
बिगरी लेहि सँवारि कै, श्रीकुंजबिहारिनि बाल।
और न ऐसो करि सकै, अपने को प्रतिपाल ॥१४९॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रितन कूँ साक्षात् सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनि लाड़िलीजू अपनो निज-जन जानिकें छिन-छिन रंग बढाइ-बढ़ाइ वाके मन के भावन कूँ पोषन कियौ करैं हैं, और वाकी समस्त बिगरी भई बातन कूँ सम्हारि के ऐसो प्रतिपालन करैं हैं, जो दूजो कोऊ करि ही नाँइ सकै है।

अनंत जन्म की भूलि कौं, छिन में डारैं खोइ।
श्री कुंजबिहारिनि लाडिली, तुम ते सब कछु होइ ॥१५०॥

फिर आप श्रीस्वामिनीजू सों ही प्रार्थना करते भये बोले कि–हे सर्वसमर्थ प्रानप्यारीजू ! आप एकछिन में ही अनंत जन्मन की भूल कूँ मिटाइ सको हो, याते मेरो प्रतिपालन समस्त रीतिभाँति सों आपही करौ।

कहत सुनत सब ही भलै, बिना प्रेम अनुराग।
तन मन मानैं अपनपौ, पावै जुगल सुहाग ॥१५१॥

यद्यपि बिना प्रेम, अनुराग के कहिबे-सुनिबेवारे सब भले ही हैं, किन्तु तन तथा मन सों श्रीस्वामिनीजू कों अपनो मानिबेवारे ही श्रीजुगलरूपी सुहाग कूँ प्राप्त करि सकैं हैं।

जब प्रिया मानैं अपनपौ, तब लाल रहें आधीन।
मन ईछित सुख कौं लहे, छिन छिन प्रीति नवीन ॥१५२॥

जाकूँ श्रीनित्यबिहारिनीजू अपनो मानि लेवैं हैं, तब श्रीलालजू तो वाके सतत आधीन ही रहैं हैं, तथा वो मनभामते सुख बिलसि-बिलसि कें छिन-छिन नई-नई प्रीति श्रीजुगल ते कियौ करैं हैं।

प्रिया प्रान प्राँननि मिलै, याही में चित देहि।
ललित केलि के रंग में, अद्‌भुत सुख को लेहि ॥१५३॥

फिर आप आश्रितन ते कहिबे लगे कि–हे भाई ! श्रीस्वामीजू के प्रानन ते अपने प्रानन कूँ मिलाइ, श्रीस्वामीजी महाराज की अति ललित रँगीली केलि में चित्त देवो, जासों निरंतर अद्भुत सुख कूँ बिलसोगे।

रसना तू प्रिय नाम रटि, नैंन लखौ प्रिय रूप।
तन मन मिलि प्रिय रंग सों, ललित रसिक वर भूप ॥१५४॥

हे मेरी रसना ! तू सदाकाल प्रानप्यारी श्रीप्रियाजू के नामकूँ ही रट्यौ करि, नैंन बिनके ही रूप कूँ निहारते रहो। मेरो तन तथा मन दोऊ मिलिकें, ललित-रसिकवर-भूप श्रीस्वामिनीजू के रंग में सतत रँगे रहौ।

तुव कृपा ते लाडिली तेरो सुख लहियै।
तू मेरी जीवनि प्रान है कासों यह कहियै ॥

ढील न कीजैं लाडिली हँसि कंठ लगैयै।
यही मनोरथ लाडिली अँग सँग नित रहियैं ॥१५५॥

हे प्रानप्यारीजू ! एकमात्र आपकी ही कृपा सों आपको सुख प्राप्त है सकै है। आपही मेरी जीवन-प्रान हो ! ये बात मैं काहू सों कहिबे योग्य हू नाँय हूँ। मेरी एकमात्र आपसों यही प्रार्थना है कि बिलंब नाँइ करि, मोकूँ हँसिकें कंठ सों लगाइ, सतत अपने अंग-संग राखौ।

भूल छुडावो लाडिली, समझ देउ भर पूरि।
यह बात तुम्हारैं हाथ है, मेरी जीवनि मूरि ॥१५६॥

हे मेरी जीवन-मूरि प्रानप्यारोजू ! मेरी समस्त भूलन कूँ छुड़ाइ कें, भरपूर समझ आप मोकूँ देउ, क्योंकि यह बात एकमात्र आपके ही हाथ में है।

सब रसिकन सिरमौर, श्री स्वामी हरिदास जू।
इन सम नाँहीं और, प्रिया लाल बिन दूसरौ ॥१५७॥

जैसे समस्त रसिकन के सिरमौर एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं, जिनकी समता करिबेवारो आज ताऊँ दूजौ कोऊ भयौ ही नाँइ है। ऐसे ही सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी एवं श्रीनित्यबिहारीजू की समता करिबेवारे दूजे और कोऊ स्वरूप नाँय हैं।

श्री स्वामी हरिदास की, सरि नहिं दूजो कोइ।
जाकों वै अपनौ करैं, सोंई उन सम होंइ ॥१५८॥

प्रेम के निज मर्म कूँ प्रकास करते भये आप बोले कि—श्रीस्वामीजी महाराज के समतूल जगत में न तो कोऊ है और न आगे कोऊ है सकै है। कारन जाकूँ वे अपनो करि लेइ हैं, वाकूँ अपने समान ही बनाइ लेवैं हैं।

जे कोई इनके भए, तिनकी सरि नहिं कोइ।
श्री ललितकिसोरी भाव सों, पावैगो निजु सोइ ॥१५९॥

जो महा बड़भागी जन साँचे श्रीस्वामीजी महाराज के है जाँइ हैं, तिनकी हू समता करिबेवारो जगत में कोऊ नाँइ है, क्योंकि बिनकौ प्रेम-रस-रंग हू श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रित हैबे पै ही प्राप्त है सकै है।

दूलह श्रीहरिदास हैं, सब ही रसिक बरात।
अँग सँग निरखत केलि सुख, महा प्रेम रँग रात ॥१६०॥

फिर आपने कह्यौ कि समस्त रसिकन में श्रीस्वामीजी महाराज ही दूलह स्वरूप हैं, और रसिकन कूँ तो बराती स्वरूप ही समझनो चहिये, कारन स्थूल-झीनी यावत् प्रकार की ईस्वरता एवं विधि-विधान, तत्वज्ञान आदिकन तें दूर, अति विसुद्ध पूर्नतम प्रेम-रस के मूल तथा सिंगार-रस को हू चरम-सीमा कौ पूर्न परिपाक–सर्वोपरि नित्यविहारमहारसकेदृढ़ अनन्य आपही हैं, क्योंकि श्रीबिहारी-बिहारिनीजू के स्वाँसन के हू स्वाँसन की रुख समझि,देह छायावत अंग-संग सतत निकट रहि,प्रथम-समागम-एकान्त-रस-विलास निजमहल श्रीवृन्दावन में महाप्रेम-रस सों निरंतर लाड़-लड़ावें हैं। बिनके ही रस-सागर की फुहार जहाँ-जहाँ उछटि कें परी, वाही प्रेम-माधुरी के रस-बिलास कूँ और समस्त रसिक बिलसैं-बिलसावैं हैं। ताते बिनकूँ बरातीन सदृस ही समझनो चहिये।

जैंसे विंजन लौंन बिन, ज्यौं कामिनि विनु कंत।
दूलह बिना बरात ज्यौं, रसिक बिना यों संत ॥१६१॥

जैसे नमक के बिना बिंजन, कंत के बिना कामिनी, दूलह के बिना बरात की सोभा नाँइ होइ है, ऐसे ही रसिक भये बिना संत सुसोभित नाँइ लगैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास बिनु, कहै सुनैं जो कोइ।
लहै न नित्य बिहार कों, कोटि जन्म जो होइ ॥१६२॥

श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन कौ दृढ़ संबंध आश्रय बिना लियें, कोटि-कोटि जन्म हू रसरीति कूँ कहैं-सुनैं, तौहू वे जन नित्यबिहार कूँ कैसेहू प्राप्त नाँइ करि सकैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, आनँद - सिंधु उदार।
जिहिं मानों निज अपनपौ, दियौ महा सुखसार ॥१६३॥

महा आनंद सागर, अद्भुत उदार चूरामनि, श्रीस्वामीजी महाराज जासों अपनपो मानि लेवैं है, वाकूँ महासुखसार, बिचित्र नित्यबिहार ही दै देवैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, अद्भुत प्रगटे आनि।
ललित केलि रसिकनि दई, महा प्रेम की खानि ॥१६४॥

श्रीस्वामीजी महाराज जगत में अति-अद्भुत प्रेम-रस के स्वरूप प्रगट भये हैं, जिनने महा प्रेम की खानि अति ललितकेलि रसिकन कूँ सहज ही दै दीनो है।

श्रीस्वामी को रीति, बिरलो कोई जानि हैं।
नित्य केलि सों प्रीति, सेवै तन मन बैंन सों ॥१६५॥

श्रीस्वामीजी महाराज की अति गुप्त रीति कूँ वे ही विरले कोऊ महतपुरुष जानें हैं, जो तन, मन, बचनन द्वारा सदाकाल दृढ़ अनन्य-भाव सों नित्यकेलि कूँ ही प्रेम सों सेवें हैं।

अद्भुत रस की खानि हैं, श्रीवृंदाबिपुन सु नित्त।
गौर-स्याम बिहरैं जहाँ, एक प्रान द्वै मित्त ॥१६६॥

समस्त धामिन को धामी स्वरूप, अति अद्भुत रस की खानि, श्रीवृन्दावनजू पृथ्वीमंडल पै सदाकाल प्रगट विराजमान रहैं हैं, जहाँ साक्षात श्रीजुगल एक-प्रान द्वै-देह स्वरूप सों ऐसे दृढ़ अनन्य होइ कें बिहार करैं हैं जो इनके अतिरिक्त और काहू धाम कूँ स्वप्न में हू नाँइ जानें हैं।

महा प्रेम आनँद भरे, इनके और न आन।
नेति नेति कहैं वेद सब, जानैं रसिक सुजान ॥१६७॥

श्रीवृन्दावनजू ऐसे महा बिचित्र प्रेम-आनंद ते भरे भये हैं, कि–जिनपै साक्षात् श्रीजुगल अतिरीझि ये नेम लै लीनौ है कि हम श्रीवृन्दावनजू के अतिरिक्त और काहू धाम कूँ स्वप्नमें हू सपरस नाँइ करैंगे। स्वयं श्रीभगवत्स्वरूप वेदनने हू श्रीवृन्दावनजू के प्रति नेति-नेति कहिकें ही बर्नन कीनौ है। या मर्म कूँ कोऊ बिरले ही सुजान रसिक महत्पुरुष जानें हैं। अर्थात् वा महल की ही कहा बिचित्रता है, जाकूँ श्रीजुगल त्यागि और-और धामन कूँ सेवन करें हैं। ऐसे ही वा विलास माधुरी कौ हू कौन सी विलक्षणता है जाकूँ श्री जुगल छाँडि, नाना स्थूल-रस संबन्धन के आधार बनि जाँय हैं। याही प्रकार वा परिकर के भाव में ही कहा सरसता, मधुरता एवं चतुरता है, जोकि नवदूलह-दुलहिनि सिरोमनि श्रीजुगल कूँ प्रथम-समागम एकान्त-रसविलास-निजमहल श्रीवृन्दाबन नवनिकुंज मन्दिर में ही निपट नित्यबिहार रस कूँ निरंतर नाँइ बिलसाइ कें, और-और-स्थूल रसन कूँ बिलसावें हैं। याते ये निर्विवाद निश्चय बात है कि–रसिक अनन्यनि कौ प्रान-जीवन आधार, श्रीवृन्दावन नव-निकुंज महल को ही अनन्य, श्रीस्वामीजी महाराज कौ निपट नित्यबिहार ही सर्वोपरि रस कौ स्वरूप है, जहाँ स्थूल-रस-वैस-संबन्ध-धाम एवं परिकर आदि काहू कौ प्रवेस ही नाँइ है सकै है। याते एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य आश्रित जन ही श्रीजुगलकूँ मन-भाँवते लड़ावैं, दुलरावैं एवं गावें हैं।

यह जोरी अविचल श्रीवृन्दावन, नाँहि आन सों काज।
श्रीबीठलविपुल विहारिनि के बल, दिन जलधर ज्यों गाज॥
मेरे नित्य किशोर अजन्मा। विहरत एक प्रान द्वै तनमा॥
कुंज कुटी क्रीडत खिन खिनमा। संतत बास बसत वन घनमा॥
श्री वृन्दावन जो सु कृपा करैं, तौ निज सुख मनहिं समाइ।
हम इनहीं की आस, अनत सुख सपनेहू न सुहाइ॥

वैकुंठ महावैकुंठ लौं, सब हीं थाने जानि।
रजधानी वृंदासुबन, अद्भुत रस की खानि॥१६८॥

जैसे जगत में राजधानी वाही कूँ कह्यौ जाइ है जहाँ सम्राट के रहिबे को निज स्थल होइ है। थाने जहाँ-तहाँ राज्य के सीमा पर्यन्त ठौर-ठौर होइ है। याही भाँति अद्भुत रस की खानि श्री जुगल की राजधानी स्वरूप तो साक्षात निज महल श्री वृन्दावनजू ही हैं। ऐश्वर्य प्रधान बैकुंठ-महाबैकुंठ आदि लोकन कूँ तो श्रीवृन्दावनजू के थाने सदृश ही समझनो चहिये।

श्रीबृन्दाबिपुन अगाध रस, लहै न कोऊ थाहि।
श्रीललितकिसोरी कृपा तैं, मन बच क्रम अवगाहि॥१६९॥

श्रीवृन्दावनजू ऐसे अगाध, अद्भुत रस के स्वरूप हैं जिनकी थाह कोऊ नाँइ लहि सकै है। याते मैं तुमसों मर्म की बात कहूँ हूँ कि एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा-बल ते ही मन-वाणी तथा देह द्वारा सतत अवगाहन करौ।

प्रेम सार सुख सार है, रूप सार रस सार।
श्रीललितकिसोरी प्रान है, निरवधि नित्य बिहार॥१७०॥

यावत सुख, प्रेम, रूप, रस-सार स्वरूप श्रीवृन्दावनजू कौ निरवधि नित्य विहार हमारी जीवन निधि है, और श्रीललितकिशोरीजू को निज प्रान है।

नित्य हीं राधा कृष्ण हैं, नित्य ही विपुन बिलास।
कोटि कोटि गोलोक लौं, एक पत्र परकास॥१७१॥

फिर आप निज आश्रितन ते कहिबे लगे कि हमारे श्रीराधा-कृष्णजू अनादि-काल ते, जोवन के जोर में बिभोर अगाध महारूप, रस, माधुरी ते भरे भये, नित्य-किसोर वैस सों एक रस श्रीवृन्दावनजू में निरन्तर बिलास करैं हैं। कोटि-कोटि गोलोक आदि तो जा श्रीवृन्दाबनजू के एक पत्र को ही प्रकास समझनो चहिये।

नहिं बकुला नहिं बीज है, अद्भुत रस यह आहि।
पावैगो सोई भिया, देहि हरिदासी जाहि ॥१७२॥

हमारे श्रीवृन्दावनजू के नित्य विहार रस में न तो छिलका स्वरूप कोऊ बकुला ही है, और न बीज स्वरूप गुठली ही है। सर्वोपरि अद्भुत-अतिझीनो रस ही रस है। जिन बड़भागी जनन कूँ श्रीस्वामी जी महाराज कृपा करिके देवे हैं, वे ही वा विचित्र रस कूँ पाय सकैं हैं।

बिछुरन रहित सुबस्तु है, सुनौ रसिक चितलाइ।
श्रीस्वामी हरिदास जू, प्रगट सुनाई आइ ॥१७३॥

हे रस के अनुरागी रसिक जनों! तुम चित्त लगाइ के हमारी बात सुनौ ? श्री स्वामीजी महाराज कौ नित्यविहार रस ऐसो है, जाकूँ श्री जुगल जल-जन्तून की नाईं छिनमात्र हू नाँइ त्यागि सकैं हैं, क्यौंकि अनादिकाल ते जा-रस के आस्वादन में विवश एक-प्रान द्वै देह स्वरूपसों निरन्तर विलसतेभये श्रीयुगलकूँ आज ताऊँ मिलिवो ही भान नाँइ भयो है, फिर तहाँ बिछुरिबे की तो बात ही कौन कहै ? या प्रकार कौ महा विचित्र-रस एकमात्र श्रीस्वामी जी महाराज ने ही चौरें पुकारि के सबन कूँ सुनाइ दीनौ है।

जैसे जल के जन्तु लौं, जल—बिन रहै न—प्रान।
याही अर्थे समझि लै, नित्य विहार निदान ॥ —श्रीगुरुदेवजू

श्रीस्वामी की रीति, सकल रीति को सार सुख।
गौर स्याम की प्रीति, सोई रसिक अधार है ॥१७४॥

श्रीस्वामीजू के निज रस रीति बिहार कौ सुख और-और यावत स्वरूपन के प्रेम बिलास-सुखरीति कौ सार सुख है, कारन गौर-स्याम श्री जुगल के निज प्रानन की प्रीति ही बिसुद्ध रसिकन के प्रानाधार होय है।

वेद भेद नहीं पावहीं, रसिक पचे सौ बार।
श्रीस्वामी हरिदास को, अद्भुत सुखद बिहार ॥१७५॥

श्रीस्वामी जी महाराज कौ ऐसौ अद्भुत सुखदाई सर्वोपरि नित्य बिहार है, जाकूँ न तो साक्षात वेदन ने ही भेद मिलै है और न रसिकजन हू सौ-सौ बार पचें, तौहू वाके मर्म कूँ लहि सकैं हैं।

श्रुति स्मृति बिचारत तत्व सब, पार न पावै कोइ।
श्रीहरिदासि प्रगट कियो, नित्यबिहारी सोइ ।।१७६।।

जा अद्भुत रस-तत्व कूँ श्रुति-स्मृति निरन्तर विचार करते भये हू पार नाँइ पाय रहैं हैं, वा सर्वोपरि नित्यविहारी कूँ, जगत में श्री स्वामी जी महाराज ने प्रगट करि दीनौ है।

बैकुंठ महा बैकुंठ तैं, गोलोक परैं है धाम।
ए सब सेवत बृन्दाबनहिं, जहाँ बिहरैं स्यामा स्याम ।।१७७।।

जा श्री वृन्दावन में श्री जुगल निरंतर विहार करैं हैं, ताकूँ बैकुंठ-महाबैकुंठ ते परे श्री गोलोक धाम आदि हू, सब सतत सेवन करैं हैं।

श्रीहरिदास नाम सुमिरन करो, सकल नाम को सार।
गौर स्याम फल देंइगे, अपने उर को हार ।।१७८।।

आश्रितन तें आपने कह्यौ कि-हे भाई ! सदाकाल श्री स्वामी जी महाराज के नाम कूँ तुम सुमिरन करौ। यह नाम समस्त सारन कौ हू सार स्वरूप है। अर्थात जैसे और-और यावत रसन कौ सार शृंगार रस है, गत्वा-गत्वा वाहू कौ सार स्वरूप महामधुर रस, बाको हू सार श्री जुगल कौ नित्य विहार रस है। तैसे ही समस्त नामन को सार श्री स्वामी जी महाराज कौ नाम है, क्यौंकि जाकूँ सुमिरन करिबे ते श्रीजुगल अति रीझि अपने हृदय कौ हार स्वरूप नित्यविहार रस ही वाको दे देवैं हैं।

यह रस रसिकन कियो निदान। यह रस सुनहुँ तजि अभिमान ।।
अभिमान तजि भजि सुनहु प्रानी जन्म-जन्म के श्रम मिटै।
प्रगट ललितारूप श्रीहरिदास निजु नामहि रटै ।।

श्रीहरि श्रीहरिदास भजि, सब भजिबे को सार।
रसिकन की जीवनि जुगल, पहिरावत उर हार ।।१७९।।

समस्त हरि स्वरूपन के सिरमौर श्री बाँके बिहारी जी महाराज, तिनके हू तन, मन, प्रानन कूँ आकर्षन करिबेवारी सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू, बिनके हू मन कूँ समस्त रीति भाँति सों चोरिबेवारे एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं। याते जितेक प्रकार के जगत में भजन है, तिन सबन कौ सार स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज कौ ही भजन है। आपके भजन करिबेवारेन पै रीझि, अति बिसुद्ध रसिकन के प्रान जीवन श्री जुगल बिन बड़भागिन कूँ अपने हृदय कौ हार स्वरूप नित्यबिहार ही पहिराइ देवैं हैं।

श्रीहरिदास नाम सुमिरन कियो, दीनों नित्य विहार।
श्रीबिपुल बिहारिनिदास कैं, सोई प्राँन अधार ॥१८०॥

अपनो दृष्टान्त देते भये, आप साधक समाज सों बोले कि हे भाई ! हमने श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूँ सुमिरन कीनौ इतेक पै ही रीझि श्रीजुगल ने निज नित्यबिहार रस हमें प्रदान कर दीनौ है। हमारे प्राननाथ श्रीस्वामीबीठलविपुलदेवजू तथा श्रीगुरुदेवजू को हूँ ये ही नाम प्रानाधार है।

तिनके चरनकमल सेवत सदा, बलि नागर सरस बिलास।
सोई सुख नरहरिदेव कैं, रसिकन पुरवत आस ॥१८१॥

श्रीस्वामीजी महाराज के ही श्रीचरनकमलन कूँ श्रीस्वामीनागरीदेवजू तथा श्रीस्वामीसरसदेवजू सतत सेइ-सेइ कें सर्वोपरि नित्यबिहार बिलास कूँ बिलसै हैं, ये ही सर्वोपरि सुख श्रीस्वामीनरहरिदेवजू के हृदय कमल में भरचौ रहै है, तथा याही महासुख द्वारा हमारे प्राननाथ श्रीस्वामीरसिकदेवजू समस्त रसिकन की आसा कूँ पूरन करैं हैं।

श्रीराधे राधे जो जन कहै। महा प्रेम रस सोई लहै ॥
प्रिया लाल तिनके सुख ढरैं। रीझि रीझि अंक में भरैं ॥१८२॥
छिन छिन अति आनँद बढावैं। श्रीकुंजविहारिनि निरखि सिहावैं।
यही बात सब सुख को सार। रसिकन जीवन प्राँन अधार॥१८३॥

जो महत-पुरुष साँचे मन ते महासुख सार सर्वोपरि नित्यविहारिनीजू के श्रीराधे-राधे नाम कूँ लड़ाइ-लड़ाइ कें कहैं हैं, वे ही श्रीनिकुंज मंदिर के सर्वोपरि बिहार को प्रेम-रस प्राप्त करैं हैं। साक्षात श्रीजुगल हू तिनके सुख के माऊँ ढरि रीझि-रीझि अंक में भरैं हैं, तथा छिन-छिन वाके अति आनंद कूँ बढ़ाइ, बिनके माऊँ देखि-देखि मन में बड़े सिहावैं है। ये ही बात समस्त सुखन को सार-स्वरूप यावत रसिकन कौ प्रान-जीवन-आधार है।

पिछली कों तू भूलि, आगे की सुधि मति करै।
ललित प्रेम रस झूलि, श्रीबृन्दावन बसि रंग में ॥१८४॥
यही बात मन मानि, महा प्रेम सुख पाइ है।
अति जाँननि मनि जानि, कुंवरि किसोरी लाडिली ॥१८५॥

निज आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि हे भाई ! पहिले तुमने कहा-कहा भले-बुरे कर्म कीने हैं, तिन सबन कूँ तो तुम भूलि जावो, जो कछु है गयौ सो है गयौ। आगे कहा होइगो, याहू को तुम बिचार मत करौ। श्रीस्वामीजी महाराज की अति ललित रंगीली प्रीति के रंग में रँगे भये श्रीवृन्दावन में अखंड बास करौ। हमारी या बात कूँ मानि लेबे ते, अतिजानंनि मनि-स्वरूप कुँवरि किसोरी लाड़िली कूँ जानि, महा प्रेम सुख ते सदाकाल सुखी रहोगे।

तन सुख मानैं दुख घनों, दुख को नाहीं अंत।
ये दुख सुख दोऊ तजे, हरि के मत सोई संत ।।१८६।।

देह के सुख की चिंता करिबे ते इतेक घनों दुःख है जाइ है, जाको कोऊ अंत ही नाँइ मिलै है। श्रीहरि के मत में वे ही संत हैं, जो देह के दुख-सुख दोऊन में मन नाँइ देवैं हैं।

सुख में दुख दुख में जु सुख, ते दोऊ दुख जानि।
विहारि दास दुख सुख परे, ता सुख सों रति मानि ।।

भावो गावो नाचि तूँ, भावो हँसि तू रोइ।
साँच बिना हरि ना मिलैं, अन्तरजामी सोइ ।।१८७।।

चाहे तुम नाचो गाओ, चाहे हँसो-रोओ, साँचे प्रेम के बिना अंतरयामी श्रीहरि नाँइ मिलें हैं।

जौलों मन राखै बहुत, तोलौं कछु न होइ।
मन राखै प्रिया लाल कौ, परम सुख लहै सोइ ।।१८८।।

जब ताऊँ तुम अपने मन कूँ बहुत ठौर लगाइ के राखोगे, तब ताऊँ कछु नाँइ होइ सकै है। श्रीजुगल में ही मन लगाइबे ते परम सुख सहज में प्राप्त है जाय है।

सब संतनि को मत यहै, या बिनु सबही भूल।
पति छाडे औरनि भजै, तिनकी मिटी न सूल ।।१८९।।

सब संतनि कौ एकमात्र ये ही मत है कि जो अपने पति कूँ छाड़ि कें औरनि कूँ भजै हैं, तिनके मन की सूल कबहूँ नाँइ मिटै है।

परचौ रहै हरि आसरै, मन इन्द्री कों जीति।
महा परम सुख पाइ है, रसिक सिरोमनि रीति ।।१९०।।

रसिक-सिरोमनि हमारे श्रीगुरुदेव की यही रीति है कि अपने मन-इन्द्रिन कूँ जीति कें श्रीबिहारीजी महाराज के भरोसे सदाकाल परे रहौगे तो निश्चय ही महा परम सुख प्राप्त करि लेओगे।

मरनों सबको है बन्यौ, जीयत न रहि हैं कोइ।
एकनि कौं तो हरि मिलैं, एक गये जनम खोइ ॥१८१॥

या जगत में सबन कूँ मरनो तो अवश्य ही परै है। सदाकाल जीमतो कोऊ नाँइ रहि सकै है। महा बड़भागी जन तो मानव देह पाइ कें श्रीहरि को साक्षात्कार करि लेवैं हैं। बहुत से लोग अपने जन्म कूँ बेकार ही खोइ के चले जांइ हैं।

दुख सुख हैं सब देह के, देही नाहीं नित्त।
श्रीकुँजविहारिनि लाडिली, तन मन वचननि चित्त ॥१८२॥

यावत दुख-सुख देह के ही संग हैं, जब देह ही नाँइ रहेंगी, तब ये दुख-सुख हू नाँइ रहि सकैंगे। याते तन, मन, बचनन द्वारा समस्त रीति भाँति सों तुम अपने चित्त में एकमात्र श्रीकुँजबिहारिनि लाड़िली को ही बसाइ लेओ, जो अंत ताऊँ निभाइबेवारी हैं।

तन छूटै तो परम सुख, रहै तो भजन अपार।
श्रीकुँजबिहारिनि लाडिली, जीवनि प्रान अधार ॥१८३॥

जो जन श्रीकुँजबिहारिनलाड़िलीजू कूँ अपनो जीवन-प्रान-अधार बनाइ लेवैं हैं बिनकूँ देह छूटि जाइबे पै तो परम सुख प्राप्त है जाइ है, और जब ताऊँ बिनको देह रहै है तब ताऊँ वे अपार भजन करैं हैं।

हरि गुरु संतनि सों सुरति, तिनकों हरि को पास।
संतनि के दोषी भये, तिन्हैं नरक में बास ॥१८४॥

जिन महत-जनन की सुरति श्रीहरि गुरु तथा संतनि सों लगी रहै हैं, ऐसे जनन कूँ सदाकाल श्रीहरि के पास ही समझनो चहिये। दुर्भाग्यबस जो संतनि के दोषी है जाँइ है, तिन्हें नरक में ही बास करनो परै है।

जो हरि राखैं निकट नित, तो नहिं करैं उतसाहु।
जो हरि फैंकें दूरि कों, तो नहिं करैं अभाउ ॥१८५॥
जाहीं में हरि प्रसन्न होइ सोई कीजै बात।
अपनी चाह न ऊपजै, याही में कुसलात ॥१८६॥

हरि प्रसन्न भएँ सुख बढै, चाह भयें अति दुख।
एक चाह हरि मिलन की, लीये रहै नित रुख ॥१९७॥

आश्रित जनन कूँ यदि श्रीहरि अपने निकट में राखैं तो अभिमान रूपी उत्साह नाँइ करनो चहिये। यदि काहू कारन सों श्रीहरि दूर भेज देवैं, तो बिन में अभाव हू नाँइ करनो चहिये। जा बात में आप प्रसन्न रहैं, आश्रित ने बिना ही बिचारे वाही काम कूँ प्रसन्नता पूर्वक करनो चहिये। श्रीहरि के इच्छा के विपरीत अपनी चाहना करिबे ते कुसल नाँइ होइ सकें है। क्योंकि श्रीहरि के प्रसन्न होइबे ते सदाकाल सुख बढ़तो ही जाइ है। अपनी चाह करिबेवारेन कूँ तो दुख ही भोगनो परै है। याते आश्रितन ने सतत एकमात्र श्रीहरि ते मिलिबे की ही चाहना मन में राखि, बिनके रुख अनुसार चलनो चहिये।

हरि गुरु सों अनुराग अति, छिन छिन बाढै चाइ।
सम बुधि ह्वै कैं सुख लहैं, रसिक सिरोमनि राइ ॥१९८॥

श्रीहरि-गुरुन तें अति अनुराग चाव छिन-छिन जिनकें बढ़तो रहै हैं, और जगत की समस्त बातन में समान बुद्धि राखैं हैं, वेई महतजन रसिक सिरोमनि-राव है-कें सुख लेवैं हैं।

पर उपकारी संत हैं, प्रगट भये जग आनि।
हरि जस उपदेसन लगे, अजर अमर सुखदानि ॥१९९॥

श्रीसंत भगवान औरनि को उपकार करिबे के ताईं ही जगत में प्रगट होइ, अजर, अमर, सुखदाई श्रीहरि के जसन कूँ उपदेस कियो करें हैं।

तन कैं मन कै बचन कैं, कीजे पर उपकार।
याही में हरि मिलत हैं, निश्चै करि उरधार ॥२००॥

तुम अपने मन में निश्चयात्मक रूप सों भली-भाँति या बात कूँ धारन करि लेओ कि तन-मन, बचनन द्वारा जाको जैसी रीति सों उपकार है सकें, निस्वार्थ भाव सों अवश्य करनो चहिये। याही ते श्रीहरि प्राप्त है जाँइ हैं।

काज परायो कीजिये, अपनो आलस खोइ।
श्रीबिहारीदास दुर्लभ लहै, भलो आपनो होइ॥

सकल झूठ परपंच तजि, हरि भजि, लाहो लेह।
ऐसो समौ न बहुरि है, पाई दुर्लभ देह ॥२०१॥

हे भाई देव दुर्ल्लभ ये मानव देह फिर नाँइ मिलि सकैगी, याते समस्त झूठे, परपंचन कूँ त्यागि कैं करुना-वरुनालय श्रीहरि के भजन को लाभ अबहीं मनभाँवतो प्राप्त करि लेवो। ऐसौ समय फिर कैसेहू प्राप्त नाँइ है सकैगो।

साँचो ह्वै हरि ध्याइ लै, झूठे होत अकाज।
ब्रह्मा सिव पूजत तिन्है, भक्तन सहित समाज ॥२०२॥

समस्त रीति भाँति सों तुम साँचे होय कैं श्रीहरि को भजन करो, बिनसों कपट करिबे ते तुम्हारे सब काम बिर्गार जाँय हैं। जिन श्रीहरि कूँ समस्त भक्तसमाज एवं ब्रह्मा, सिव आदि देवगन सतत सेवन करै हैं।

दुर्ल्लभ ब्रह्मादिकन को, सुल्लभ भयो सोई आइ।
कुँजबिहारी लाल भजि, इनहीं रीझि रिझाइ ॥२०३॥

ब्रह्मादिकन कूँ हूँ अति दुर्लभ श्रीकुंजबिहारी लाल तो कूँ सहज सुलभ है रहैं हैं, याते इनकूँ ही रिझाय-रिझाय कैं सतत भजन करौ।

दरसन करो कपोत के, उपजै जामैं भाउ।
प्रिया नाम इकटक रटै, सब पंछिन को राउ ॥२०४॥

जैसे कपोत प्रिया-प्रिया नाम कूँ ही सतत रटै है, वाकूँ देखिबे ते मन में भाव उपजि आवै है, ताते कपोत सब पंछिन को राव है।

एकै तू रसना रटै, परी कपोतैं बानि।
दृढ ब्रत राखैं हृदै में, एक बिहारिनि रानि ॥२०५॥

जैसे कपोत की रसना ने एक ही रट लगायबे की बानि परि गई है, तैसे ही तुम अपने हृदय में श्रीनित्यबिहारिनीजू के नाम की ही दृढ़ अनन्य रट सतत लगाय कैं राखौ।

जो ब्रत लेइ कपोत को, तों पावै सुख की रासि।
प्रिया प्रिया रसना रटै, बाढै प्रेम बिलास ॥२०६॥

यदि तुम कपोत की नाईं प्यारीजू के नाम कूँ रटिबे को दृढ़ अनन्य व्रत ले लो तो तुम्हैं अद्भुत अगाधसुख प्राप्त होइ निरंतर प्रेम-विलास को अनुराग बढ़तो ही जायगो।

औगुन भूलि न लेत हैं, यहै भक्त की रीति।
जैसे हरि सनमुख भयें, करत सौगुनी प्रीति ॥२०७॥

जैसे श्रीहरि सरन में आइबेवारे जनन के अनन्त अवगुनन कूँ नाँइ देखि कें, उल्टी बिनते सौगुनी प्रीति करै हैं। एसे ही साँचे भक्त काहू के अवगुनन कूँ भूलि कें हूँ नाँइ देखैं हैं।

ज्यों दिवाकर तिमिर कौं, नास करत परकासि।
ऐसै रसिकन मन निर्मल किये, श्री स्वामी हरिदास ॥२०८॥

जैसे सूर्य उदय होय कैं अन्धकार कूँ नास करि समस्त संसार में प्रकास ही प्रकास करि देवै हैं, तैसेही श्रीस्वामीजी महाराज ने प्रगट होइ कैं समस्त रसिकन के मन कूँ निरमल करि दीने हैं।

श्री स्वामी हरिदास के ते निजु करि जानै।
श्री स्वामी हरिदास बिनु कछु और न आनै ॥
श्री स्वामी हरिदास सों अति ही रति ठानै।
अंग संग श्री हरिदास कें यह परि गई बानै ॥२०९॥

श्रीस्वामीजी महाराज के निज जन बिनही महत्पुरुषन कूँ समझनो चहिये, जो श्रीस्वामीजी के अतिरिक्त और काहू कूँ अपने हृदय में नाँय लेवैं हैं, तथा श्रीस्वामीजू महाराज सों ही प्रेमरति ठान कैं बिन कैं ही नाम-गुनन कूँ अनन्य भाव ते गामते भये सतत अंग-संग रहैं हैं।

श्री कुंजबिहारिनि लाडिली, श्रीस्वामी हरिदास।
ए वे वे ए एक हैं बिलसत प्रेम बिलास ॥२१०॥

स्वयं श्री कुंजविहारिनिलाड़िलीजू ही साक्षात् श्रीस्वामीजी महाराज हैं, दोऊ एक प्रान सों एकरस प्रेम-बिलास कूँ ही सतत बिलसैं-बिलसावैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, नित्य केलि के दानि।
लाड लडावत प्रिया वर, महा प्रेम रस खानि ॥२११॥

महाप्रेम रस की खानि स्वरूप श्रीस्वामीजू महाराज निज अनन्य आश्रितन कूँ एकमात्र श्रीजुगल को सर्वोपरि नित्यकेलि को ही दान देवैं हैं, तथा सर्वसिरोमनि अपनी प्रानप्यारीजू के सतत नये-नये लाड़ लड़ामते रहैं हैं।

झूठ झूठ सब झूठ है, सुनियो संत सुजान।
एक भजन हरि के बिना, सब ही धूरि समान ॥२१२॥

फिर सुजान-सिरोमनि संतनि ते आपने कह्यौ कि हे भाई ! झूठ तो सब झूठ ही झूठ है। याते एक श्रीहरि के भजन विना सब कूँ धूरि के समान ही समझो।

औसर भलो बिचारि तू, स्वामी सरन संजोग।
पाँचो प्रेम चहोक लै, गौर स्याम निजु भोग ।।२१३।।

निज आश्रितन तें कहिवे लगे कि हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज के चरन कमलन की सरनरूपी तेरौ बड़ो ही सुन्दर अवसर बनि रह्यौ है। यातें अपनी पाँचों ग्यान इन्द्रिन कूँ श्रीजुगल के निज रस-बिलास-रूपी-प्रेम में भली-भाँति डुबोइ लेउ।

रसना करि जुग नाम रटि, नामी नैंननि देखि।
मन करि सुरति बिहार में, आनंद उर अवरेखि ।।२१४।।

रसना द्वारा तौ सतत श्रीजुगल के नाम कूँ रटौ। नैंनन सों चित्त लगाइ कें श्रीबिहारीजी महाराज के दरसन करो, और अपने मन कूँ महागूढ़ सुरत-रस बिहार में लगाइ अद्‌भुत अगाध आनंद कूँ सतत हृदय में भरि लेउ।

भूख गई नींदौ गई, गई जगत सौं प्रीति।
गौर स्याम तन मन बसे, रसिक सिरोमनि रीति ।।२१५।।

रसिक-सिरोमनि महतजनन की रीति ऐसी होइ है कि श्रीजुगल के आनंद में भूख-नींद तथा जगत की प्रीति आदि सब बिसरि जाइ हैं। तन-मन सों सदाकाल श्रीगौर-स्याम के रंग में रँगे रहैं हैं।

आरष पौरष सँब थके, कोउ न पावै ओर।
श्री स्वामी हरिदास बिन, गहैं रसिक नहिं ठौर ।।२१६।।

रसिक-सिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज की सर्वोपरिरस-रीति कौ आपके अनन्य आश्रितन के अतिरिक्त, आरष-पौरष तो विचारे खोजि-खोजि कें थकि ही गये, क़िन्तु रसिकन कूँ हू कोऊ अतो-पतो नाँइ मिल्यौ।

जुगल कहन रस रीति कौं, आरष पौरष भाखि।
श्री स्वामी रस रीति बिनु, ये सब दीजै नाखि ।।२१७।।

श्रीजुगल की रसरीति बताइबे के, ताईं यदि कोऊ आरष-पौरषन को प्रमान बर्नन करै तौ हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज की रसरीति में इन सब प्रमानन कूँ त्यागि देउ। अर्थात ये सब बेचारे श्रीस्वामीजी की रसरीति कूँ जानि ही नाँइ सकैं हैं।

दृष्टि न आरष पौरषै, भटकत भई न भेंटि। श्रीगुरुदेवजू–

जुगल नाम निसि दिन रटै, सेवै नित्य बिहार।
श्रीहरिदास नाम अंकित नहीं, काटि मुहर टकसार ॥२१८॥

यदि कोऊ श्रीजुगल के नाम कूँ हू रात-दिन रटतो होइ, और साक्षात नित्यबिहार कूँ ही सेवन करतो होइ, तौहू श्रीस्वामीजी महाराज के नाम-भाव अंकित भये बिना निज रसरीति बिहार की टकसार ते वाकूँ काटि दीयो जाइ है।

(अर्थात श्रीस्वामीजी महाराज ते दृढ़ अनन्य संबंध हुए बिना श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनि जू वाको अपनो मानैं ही नाँइ हैं)

बिन हरिदास बिहारैं सेवत दरस परस नहिं तात। —श्रीगुरुदेवजू

जुगल नाम ब्यंजन भयो, श्रीहरिदास नाम भयो लोंन।
भजन स्वाद रसना करै, गहै मन्त्र मुख मोंन ॥२१९॥

बिजन स्वरूप श्रीजुगल के नाम में श्रीस्वामीजी महाराज कौ नाम स्वादिष्ट करिबेवारो एकमात्र नमक सदृस ही है। याही ते महतजन श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूँ मिश्रित करि, भजन कों स्वाद ऐसो अद्‌भुत लेइ हैं, जो मंत्रवत मुख सों मौंन रहि, काहू सों कछु नाँइ बोले हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, रसिक सिरोमनि राउ।
अद्‌भुत सुखद बिहार को, उपदेसत नित भाउ ॥२२०॥

रसिक-सिरोमनि-राव श्रीस्वामीजू महाराज महा विचित्र सुखदाई नित्यबिहार कूँ ही सदाकाल निज आश्रितन कूँ उपदेस देवैं हैं।

जिन श्रवन सुनि धारन कियौ, दीनों नित्य बिहार।
जिन सुनि कैं मन ना दियो, ते भटकत बिना बिचार ॥२२१॥

जिन बड़भागी जनन ने सर्वसिरोमनि श्रीस्वामीजीमहाराज कौ सर्वोपरि अद्‌भुत नित्यबिहार उपदेस कूँ सुनि, अपने मन में धारन करि लीनौ, तिनकूँ तौ आपने साक्षात् नित्यविहार ही दै दीनौ। जिनने सुनके हू मन नाँइ दियौ, ते बिना बिचार के इत-उत माऊँ भटकते ही रह गये।

वेद पुराननि में सुन्यौं, संतनि मुख परमान।
श्रीहरिदास नाम ततसार है, सुमिरो रसिक निधान ॥२२२॥

वेद-पुरान तथा समस्त संतनि को एकमात्र यही मत है कि श्रीहरि के हू सार-स्वरूप बिनके दास होय है। बिनकी ही सेवा-भक्ति-भाव पै श्रीहरि अतिसय

रीझें हैं, तामें हमारे श्रीस्वामीजी महाराज तो सर्वोपरि श्रीहरि-स्वरूप श्रीविहारी-विहारिनीजू कूँ स्वाँसन के हू स्वाँसन की रुख अनुसार दृढ़ अनन्यभाव तें निरंतर लाड़ लड़ावें है। याते ये स्पष्ट है कि समस्त श्रीहरि के दासन के हू सार-स्वरूप एकमात्र श्रीस्वामीजू महाराज ही हैं। तुम मर्म समझिबेवारे ज्ञाता रसिक हो, मैं तुमसों निदान बात कहूँ हूँ कि-सबकौ सार श्रीस्वामीजू के नाम कूँ ही सदाकाल स्मरन करौ।

सब वेदनि को सार सुनि, सब अक्षिर को सार।
चारों अक्षिर सार ये, हरिदास नाम उर धारि ॥२२३॥

या नाम के ही प्रसंग में आपने और हू कथन कियौ कि समस्त वेद तथा अक्षर तत्व कौ सार मैं तुमसों कहूँ हूँ चार अक्षर कौ श्रीहरिदास नाम ही सब कौ सार है। तुम अपने हृदय में भली भाँति धारन करि लेउ।

जा मारग थाके मुनि गना, रसिकन पकरयौ कान।
श्रीस्वामी हरिदास जू, रसिकन मधि बखान ॥२२४॥

श्रीस्वामीजी महाराज की नित्यबिहार उपासना के मारग कूँ श्रवन करि, मुनि गनन के मन तो जके-थके रहि गये, रसिकन ने अपनी असमर्थता समझि कानन पै हाथ धरि लीने। वा अद्भुत नित्यबिहार-रस कूँ निसंकता-पूर्वक श्रीस्वामीजी महाराज ने रसिकन के बीच में स्पष्ट वर्नन कीनौ है।

बिखरी बानी मति कहै, श्री हरिदास नाम लौ लाइ।
श्रीकिसोरीदास उपदेस सों, इनही के गुन गाइ ॥२२५॥

आश्रित सों आप कहिबे लगे कि—हे भाई! कबहूँ काहू सिद्धान्त कूँ, कबहूँ काहू सिद्धान्त कूँ, ऐसी बिखरी बानी मति कहौ। सदाकाल एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के नाम में ही अपनी लौ लगाये राखौ। क्योंकि सक्षात् श्रीकिसोरीजू ने हमें उपदेस दीनौ है कि-इनके ही गुनन कूँ सतत गायौ करौ!

श्री हरिदासै छोडि कै, औरै भजिये काहि।
रसिकन कौ सिरताज हैं, सब मिलि पूजत जाहि ॥२२६॥

आदि अंत अरु मद्धि में, ऐसो रसिक न कोइ।
गौर स्याम तन मन मिलैं, प्रगट करत सुख सोइ ॥२२७॥

श्रीस्वामीजी महाराज को छाँड़ि कें और ऐसो सर्वोपरि रसिक है ही कौन! जाको भजन कियौ जाइ सकै? श्रीस्वामीजी ही एकमात्र यावत रसिकन के सिरताज

हैं। समस्त रसिक मिलि कें बिनकूं ही पूजें हैं। आदि, अंत, अरु मध्य में ऐसो रसिक आज ताऊँ कोऊ भयो ही नाँइ है। गौर-स्याम दोऊ श्रीजुगल तन-मन सों मिलि कें जा महाबिचित्र सुख कूँ निरन्तर बिलसैं हैं, वा सर्वोपरि सुख कूँ एकमात्र आपने ही जगत में प्रगट कीनौ है।

श्री हरिदासी केलि कौं, जानै बिरलो कोइ।
इनको ह्वै इनहीं भजै, पावैगो निजु सोइ ।।२२८।।

श्रीस्वामीजी महाराज की अति ललित रँगीली महा केलि कूं, वे ही विरले सर्वोपरि महतजन जानि सकेंगें जो इहलोक-परलोक में समस्त रीति-भाँति सों श्रीस्वामीजी महाराज के ही होइ के दृढ़ अनन्य-भाव ते बिनको ही भजन करेंगे,

सब विधि सब सुख देति, कुंजबिहारिनि लाडिली।
औगुन भूलि न लेति; जाकों निजु अपनौं करैं ।।२२९।।

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित जनन कूँ श्रीकुंजबिहारिनिलाड़िलीजू निज अपनो मानि, वाकी भूलि एवं अवगुनन माऊँ नाँइ देखि, समस्त रीति-भाँति सों सुखी करि-करि के सतत निहाल करैं हैं।

सोई रसिक प्रवीन, सेवै नित्य बिहार कौं।
रहै प्रिया लौ लीन, तन मन मिलि बिछुरै नहीं ।।२३०।।

जगत में वे ही चतुर चूरामनि अति प्रवीन रसिक हैं, जो दृढ़ अनन्य-भाव ते एकमात्र सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ हीं सदाकाल सेवैं हैं। साक्षात श्रीप्रियाजू सों भाव द्वारा लवलीन होइ, तन-मन सों कबहूँ नाँइ विछुरैं हैं।

बिछुरन मिलन जहाँ रहै, सुद्ध प्रेम नहिं होइ।
मिलत मिलत बढ़ै चाह अति, सुद्ध प्रेम है सोइ ।।२३१।।

जो चाहै सोई करैं, ललित केलि में नित्त।
कुंज महल राजैं सदा, गौर स्याम द्वै मित्त ।।२३२।।

फिर आप निज आश्रितन सों कहिबे लगे कि—हे भाई ! जा प्रेम में नवदूलह-दुलहिन अपने निज-बिलास मनोरथन के अतिरिक्त यदि और-और काहू अन्य कारन सों बिवस होइ के मिलैं,-बिछुरैं हैं, बिनको दृढ़ अनन्य बिसुद्ध प्रेम नाँइ कह्यौ जाइ सके है। जहाँ निरन्तर मिले रहिबे पै हू, परस्पर को अनुराग चाह-चटपटी, लालसा-मनोरथ आदिक उत्तरोत्तर या प्रकार बढ़ते रहैं हैं, जो अनादिकाल सों आजताऊँ

मिलिबो ही जिनने भान नाय भयौ है। वाही कूँ अति विसुद्ध पूर्नतम प्रेम कह्यौ जाय है। ऐसे अति अद्‌भुत प्रेम की केलि एकमात्र श्रीवृन्दावन नव निकुंज मंदिर में ही अनन्य भावसों निरन्तर सुसोभित रहै है।

यहै रीति हमरे मन भाई। उमग्यौं आनंद उर न समाई।
श्रीललितकिसोरी अति सुखदाई। गौर स्याम कों सदा सहाई।।२३३।।
जोई जोई रुचै सोई सोई करैं। कुंजबिहारिनि हित सौं ढरैं।
अंग संग केलि सदा बिहरैं। हँसि हँसि भुजा कंठ पर धरैं।।२३४।।
यहै बात निश्चै उरधार। जाने कोई जानन हार।।
रसिकसिरोमनि उर को हार। श्रीहरिदासी प्रीति अपार।।२३५।।

याही बिसुद्ध प्रेम की रीति हमारे मन में ऐसी भाइ रही है जाको आनंद उमँगि-उमँगि कें हृदय में नाँइ समाइ रह्यौ है। ललित किसोरी श्रीस्वामीजी महाराज याही हित केलि-सुख, गौर-स्याम कूँ दै-दै कै सदा सहाइ करें हैं। जोइ-जोइ श्रीजुगल कूँ रुचैं हैं सोई-सोई आप करें हैं। जासों श्रीकुंजबिहारिन लाड़िली सदाकाल बड़े हित सों इन पै ढरी रहैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज सतत अंग-संग केलि विलास करावें हैं। जासों दोऊ श्रीजुगल हँसि-हँसि के आपके कंठ में अपनी भुजा धरें हैं। हे भाई! अति मर्मभरी या बात कूँ अपने चित्त में दृढ़ता सों तुम धारन करि लेउ, क्यौंकि या सर्वोपरि प्रीति कूँ कोऊ विरलो जाननहार ही जानैं है। रसिक-सिरोमनि हमारे श्रीगुरुदेव कैं श्रीस्वामीजी महाराज की ही अपार प्रीति एवं ऐही रसरीति हृदय कौ हार है।

हम द्वारे श्रीहरिदास के, रसिकन मद्धि बखान।
सब द्वारे जासों लगे, गौर स्याम सुखदान।।२३६।।

आश्रितनते आप और हू कहिबे लगे कि—हे भाई! रसिकन के बीच में तुम स्पष्ट कहो कि—हम उन श्रीस्वामीजी महाराज के द्वारे के हैं, जिनके द्वारा ते ही समस्त परमार्थीन के द्वारे लगे भये हैं; क्यौंकि हमारे श्रीस्वामीजी महाराज सर्वसिरोमनि स्वय गौर-स्याम श्रीजुगल कूँ हू मन भाँमतो निरन्तर सुख दै-दै के सुखी कियो करें हैं।

करि पतिब्रत बिहार जुग, श्री हरिदासै सेइ।
ज्यौं चात्रिग स्वातै रटै, त्यौंहीं तू मन भेइ।।२३७।।

श्रीजुगल के नित्यबिहार तें उत्तम कुल की पतिब्रतावत दृढ़ अनन्य संबंध

बाँधि के ही श्रीस्वामीजू कूँ सदाकाल ऐसे सेवन करो, जैसे चातक स्वाँति के बूँद कूँ निरन्तर रट लगाये रहै है।

आदि अंत सब सोधि लै, श्रीहरिदास नाम ततसार।
हरि है कैं हरिदास हैं, निगम अगम निरधार ॥२३८॥

सब समय के परमार्थ प्रमानन कूँ तुम भली भाँति सोधि के देखि लेउ। सबकौ सार एकमात्र श्रीहरिदास नाम ही है निगम, अगम सबने निर्णय करि दीन्यौ है कि नित्य-सिद्ध कै तो साक्षात् श्रीहरि हैं, कै श्रीहरि के दास ही हैं।

लोक तथा परलोक में, सेऊँ श्री हरिदास।
ज्यौं राखैं त्यौं रहौंगो, दासि बिहारिनि पास ॥२३९॥

फिर आप अपनी आस्था कूँ परकास करते भये बोले कि भाई ! लोक तथा परलोक में श्रीस्वामीजी महाराज कूँ ही मैं सेऊँगो तथा श्रीगुरुदेव जू के सतत निकट रहिकैं जैसे वे राखैंगे तैसे ही मैं रहूँगो।

श्री हरिदासै ना भज्यौ, भजत फिरयौ बहु ठौर।
कहूँ सुखी ना होहुगे, सुनों अग्य मति बौर ॥२४०॥

जो जन श्रीहरि के दासन कूँ नाँइ भजि कैं और और अनेकन ठौर भजते फिरैं हैं वे जन कहूँ सुखी नाँइ होइकें अज्ञानताबस बिनकी बुद्धि बावरी ह्वै रही है।

हरे हरे सबसों कहैं, कहो हरे किहि ठौर।
सब जीवनि सों हरि कहैं, महा अज्ञ सिरमौर ॥२४१॥

महा अज्ञानिन के सिरमौर जन जीवन कूँ ही हरि कहै हैं, उन्हें तो ये हू ज्ञान नाँइ है कि श्रीहरि कहाँ ? कौन ठौर में और कहा बिनको स्वरूप है ? वैसे ही सब सों हरि-हरि कहै हैं। अर्थात् श्रीहरि कर्त्तु-मकर्त्तुम्-सर्वसमर्थ, सर्वसक्तिमान्, सर्व-नियन्ता, प्राणिमात्र को पालन - पोषण करिबेवारे, करुनावरुनालय, अद्भुत सर्वोपरि गुनन के सागर एवं महाविचित्र-माधुरी रूप ते भरे-पूरे बिनके स्वरूप हैं। जीव विचारौ तो काम, क्रोध आदि मायिक गुनन में लिप्त है रह्यौ है, ताते श्रीहरि कौ स्वरूप कैसे है सकै है ?

भक्त मुक्ति चाहैं नहीं, जे चाहैं ते कूर।
भक्त भजैं भगवान को, सदाई रहैं हजूर ॥२४२॥

जिनके मुक्ति पिसाचनी, तन मन रही समाइ।
सोई हरि सों विमुख ह्वै, फिरि पीछैं पछिताइ ।।२४३।।

जो साँचे श्रीहरि के भक्त होइ हैं, वे पिसाचिनी स्वरूप मुक्ति की चाहना अपने मन में कबहूँ नाँइ करें हैं। वे महतजन अपने प्रान जीवन श्रीहरि की रूप-माधुरी-आस्वादन करते भये, बिनकी ही सेवा में सतत सन्मुख रहैं हैं। ताहू पै जो भक्त, मुक्ति की चाहना मन में राखैं हैं, बिनकूँ श्रीहरि सों बिमुख एकमात्र कूर ही समझो। याते जो लोग श्रीहरि ते बहिर्मुख हैं, बिनके ही तन-मन में मुक्ति रूपी पिसाचिनी समाई रहै है, ताते बिनने पीछे पछितामनो परें है।

जो कोऊ हरिको लाड लडावैं। ताकी सरि दूजो नहिं पावैं ।।
हरि हरि हरि हरि सबही करैं। हरि के रूप नाहिं अनुसरैं ।।२४४।।
हरि हैं निजु करि प्रान पियारी। जाके वस हैं कुंजबिहारी ।।
हरि जाने हरि को सुख चहै। हरि के निकट सदाई रहै ।।२४५।।
श्रीवृन्दावन हरि हैं जोर। जामें बिहरैं जुगल किसोर ।।
श्री हरिदासी रंग बढावैं। निरखि निरखि आनंद उर लावैं ।।२४६।।
रीझि रीझि अतिही सुख पावैं। यह रसरीति सुनें और गावैं ।।
रसिकन चरनुकमल सिरनावैं। श्रीललितकिसोरी के मनभावैं ।।२४७।।

जो बड़भागी जन श्रीहरि कूँ लाड़-लड़ावैं है, बिनकी समता कोऊ करि ही नाँइ सकें है। श्रीहरि के नामन कूँ अनेक जन लेवें हैं, किन्तु श्रीहरि के रूप, गुन, जस-स्वरूप कूँ नांइ समझैं बिचारें हैं। निज हरि साक्षात प्रानप्यारी श्रीस्वामिनीजू ही हैं, जिनके सबकौ सिरमौर श्रीकुंजबिहारी लाल सतत बसीभूत रहैं हैं। याते यह स्पष्ट है कि जो जन श्रीहरि के स्वरूप कूँ जानि लेवें हैं, वे सब श्रीहरि को ही सुख सदाकाल चाह्यौ करें हैं। सतत श्रीहरि के निकट में रहि कबहूँ नाँइ बिछुरें हैं। निजमहल श्रीवृन्दावन तो और हू अति जबरदस्त हरि स्वरूप हैं, जिनकूँ श्रीजुगल छिनमात्र हू नाँइ छाँड़ि सकें हैं। वाही निजमहल में हमारे श्रीस्वामीजी महाराज छिन-छिन श्रीजुगल के रंग कूँ बढ़ाइ-बढ़ाइ, निहारि-निहारि फूले नाँइ मावें हैं, तथा रीझि-रीझि अति सुख पाइ, बिनकी ही रस-रीति कूँ सुनैं-अरु गावें हैं। ऐसे रसिकनि कें श्रीचरनकमलन में माथो नवाइबो हमारे मन कूँ भावे है।

चिंतामनि प्रिया आप हरि, मनि कुंजबिहारीलाल ।
ऐसो भेदि बिचारि कैं, हरि सेईये नव बाल ।।२४८।।

समस्त श्रीहरि स्वरूपन में मनि स्वरूप एकमात्र श्रीकुंजविहारी लाल ही हैं, बिनकी हू समस्त चिन्तान कूँ हरन करिबेवारी सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू चिन्तामनि स्वरूप हैं। या भाव तें सदाकाल दोऊ श्रीजुगल कूँ सेवो ।

जो छिन बीतें सो छिन हरिदास रटि, रहै न दूजी आस ।
कुंजविहारिनि लाडिली, लै बैठावै पास ।।२४९।।

आश्रितन ते आपने कह्यौ कि–हे भाई ! और समस्त आसान कूँ अपने मन तें भली-भाँति त्यागि कें एकमात्र श्रीहरिदास नाम कूँ ही छिन-छिन रटो, जासों सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू अति रीझि तुम्हें अपने पास बिठाइ लेवेंगी ।

मिले मिलाये मिलि रहे, कुंजबिहारिनि पास ।
लाड लडावें जुगल वर, अद्भुत सुख की रासि ।।२५०।।

जब तुम तन-मन-प्रान रोम-रोम तें बिनसों ऐसे मिलि जाओगे कि–जैसे कि सदाकाल के मिले भये ही हम हैं । तब श्रीकुंजबिहारिनजू कें निकट में ही रहि, अद्भुत सुख-रासि श्री जुगल कूँ मनमाने लाड़ लड़ावोगे ।

श्रीस्वामी हरिदास के, तिनको यही सुभाव ।
गौर स्याम तन मन मिलैं, मिलत मिलत बढै चाव ।।२५१।।

जो महा बड़भागी श्रीस्वामीजी महाराज के दृढ़ अनन्य जन हैं, तिनकौ सहज सुभाव ही ऐसौ होय है कि वे सदाकाल यही चाह्यौ करैं कि दोऊ श्रीजुगल तन-मन सों मिलें रहैं, तोहू मिलिबे कौ चाव छिन-छिन बढ़्यौ करै ।

श्रीस्वामी के जे भये, तिनकी यही सु रीति ।
ललित केलि हिय में धरें, सहज प्रिया सौं प्रीति ।।२५२।।

श्रीस्वामीजू के जो जन साँचे है जाँइ हैं, बिनकी सर्वोपरि रीति यही है जाय है कि अति ललित केलि हृदय में धरि श्रीप्रियाजू सों सहज प्रीति करन लगैं हैं ।

कुंजबिहारीलाल कों, जाने विरलो कोइ ।
सोई तो जानें भलें, श्रीस्वामी को होइ ।।२५३।।

श्रीवृन्दाबन नवनिकुंज मंदिर में अति सूक्ष्मरस-रीति को दृढ़ अनन्यता तें

बिहार करिबेवारे श्रीकुंजबिहारी लाल के स्वरूप कूं एकमात्र श्रीस्वामीजू के विरले ही कोऊ साँचे जन भली-भाँति जानैं-पहिचानैं हैं।

श्रीहरिदास नाम फूल्यौ कमल, जुग रस सागर माहि।
श्रीललितकिसोरी हृदै में, रसिक भँवर लिपटाहि ॥२५४॥

श्रीजुगल के निज रस-सागर में श्रीहरिदास नाम-रूपी कमल अद्‌भुत खिल्यौ भयौ है। वो कमल हमारे हृदय में ऐसी सुगंध दै रह्यौ है, जोकि भँवर स्वरूप रसिक जन वा सुगंध के लोभ में लिपटे भये संग-संग डोलें हैं।

जिहि रसना हरिदास रटि, और न दूजी भाखि।
श्रीविपुलबिहारिनि दासि कों, रसिकन दीजै साखि ॥२५५॥

हे भाई ! जा रसना ते श्रीस्वामीजी कौ नाम रटौ हौ, वा रसना तें और काहू के नाम गुनन कूं अपनो ध्येय मानि के कबहूँ-मति कहो। या बात कौ तुम पै यदि कोऊ प्रमान पूछै तो रसिकन के बीच में हू श्रीविपुलबिहारिनदासीजू कूं प्रगट चौरे प्रमान बताओ।

रसिकन में गाजत सदा, बिपुल बिहारिनिदास।
आनि न मानत और को, रटत रहत हरिदास ॥२५६॥

श्रीस्वामीविपुलबिहारिनदेवजू और काहू की आन न मानि कें, सदाकाल श्रीहरिदास नाम कूं ही रटते भये रसिकन के बीच में गरजते रहैं हैं।

हरिदास नाम निज उर धरचौ.तेईसुफल रसिक जगजानि।
बडभागी अनुरागी सदा, बिलसत जुग रस सानि ॥२५७॥

बड़भागी-अनुरागी महत-जनन ने सदाकाल श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूं श्रीजुगल के रस में सानि-सानि, अपने हृदय में धरि, जगत में सुफल रसिक है गये।

निर्दोषिक निहकाम ह्वै, भजो एक हरिदास।
चौरासी फाँसी कटै, बिलसो जुगल बिलास ॥२५८॥

फिर आप साधक समाज सों कहिबे लगे कि—हे भाई ! निरदोषिक-निष्काम है-कें एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज कौ भजन करौ, जासों तुम्हारी चौरासी लक्ष योनिन की फाँसी सहज कटि, श्रीजुगल के सर्वोपरि रस-केलि सुख कूं निरन्तर बिलसौगे।

भजिबो हो सो भजि लियो, रही न भजिबे आस।
भजी बिहारिनि लाडिली, श्रीस्वामी हरिदास ॥२५६॥

सर्वोपरि नित्यबिहारिनी स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज कौ भजन करिबे ते ही और-और यावत भजनन तें भली-भाँति निरास होइ, समस्त आसा-तृष्ना हमारी समाप्त है गई।

सरन गहो हरिदास की, माया छुवै न छाँह।
कुंजबिहारिनि लाडिली, बेगि गहैंगी बाँह ॥२६०॥

याते तुम एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज की सरन कूँ निश्चय पूर्वक गहि लेउ, फिर माया तो तुम्हारी छाया कूँ हू स्पर्स नाँइ करि सकैगी, और स्वयं श्रीकुंज-बिहारिन-लाड़िलीजू तुम्हारे हाथ पकरि, अपने पास बैठाइ लेवैंगी।

कुंजमहल हरिदास जू, सदाई हमरे संग।
छिन छिन आनँद अति बढै, अद्भुत प्रेम अभंग ॥२६१॥

अपनोई ही दृष्टान्त देते भये आपने आश्रितन कूँ समुझायौ कि–हे भाई! साक्षात् निकुंज महल में अद्भुत कृपा करि श्रीस्वामीजी महाराज सदाकाल हमारे संग रहै हैं, जासों छिन-छिन अति आनंद बढ़ि, अभंग प्रेम हमारे उमगतो रहै है।

रसिक सिरोमनि लाडिली, सो हमरे अँग संग।
कुंज महल राजैं सदा, निरखै केलि अभंग ॥२६२॥

रसिक-सिरोमनि श्रीलाड़िलीजू हमारे अंग संग सतत रहिबे के कारनँ कुंज-महल में अभंग केलि कूँ निहारि-निहारि कें सदाकाल हम सुसोभित रहैं है।

रसना तू हरिदास रटि, अँखियाँ जुग रस भोग।
ललितकिसोरी कृपा निधि, भलो बन्यो संजोग ॥२६३॥

हे हमारी रसना! कृपा की निधि ललितकिसोरी श्रीस्वामीजू के नाम कूँ सदा-काल रटती रहो, या समय बहुत ही सुन्दर संयोग बनि गयौ है, हे मेरी आँख! तुमहू श्रीजुगल के रस बिलास कूँ निरन्तर निहारती रहो।

श्रीबिहारी-बिहारिनि ना तजों, भजों प्रान हरिदास।
काम केलि की बेलि यह, फल गौर-स्याम सुखरास ॥२६४॥

तदुपरांत आप अपनी स्थिति कूँ प्रकास करते भये कह्यौ कि–हे भाई! हम श्रीविहारी-बिहारिनीजू कूँ छिनमात्र हू नाँइ त्यागि कें, निज प्रान-स्वरूप श्रीस्वामीजी

महाराज को ही दृढ़ अनन्य भाव तें सतत भजन करें हैं। काम-केलि रस-बेलि के फल गौर-स्याम दोऊ जुगल कूँ, आश्रितन के प्रति सदाकाल येई प्रदान करें हैं।

तुम बिन नैंना ना सुखी, कुंजबिहारिनि प्रान।
अंतरगति जानत सबै, कहा मैं करों बखान ॥२६५॥

हे प्रानप्यारी श्रीकुंजबिहारिनीजू आपके देखे बिना मेरे नेत्र कैसे हू सुखी नाँइ है सकैं हैं। मेरे अन्तर की आप सब जानौ हो, फिर और मैं आपते कहा कहूँ ?

कब देखौं भरि नैंन, गौर स्याम दोऊ लाडिले।
श्री हरिदासी ऐंन, करत बिहार अभंग जे ॥२६६॥

जो श्रीगौर-स्याम दोऊ लाड़िले श्रीस्वामीजी महाराज की गोदी में अनादि-काल सों अभंग बिहार करें हैं, बिनकूँ आँखि भरि-भरि के मनभामते कब मैं देखूँगो ?

नैना निरखैं रूप कों, जीभ लेत निज नाम।
अंगन सों श्री अंग मिलि, पायो मन बिश्राम ॥२६७॥

अब हमारी ये आँख तो श्रीजुगल के रूप कूँ निरन्तर निहारें हैं, जीभ आपके निज नाम कूँ सतत रटै है। जहाँ विन दोऊन के श्रीअंग तें अंग मिले रहैं हैं, तहाँ ही मेरौ मन विश्राम पावै है।

देखै तौ निजु केलि कों, और न देखै आन।
जैसे जल में मीन है, तैसे रसिक सुजान ॥२६८॥

चतुर चूरामनि-सुजान रसिकन की आसक्ति एकमात्र श्रीजुगल की निज केलि में ही ऐसी होइ है, जैसी मछली की पानी में। याते वे निज केलि के अतिरिक्त और काहू के माऊँ नाँइ देखैं हैं।

कुंज बिहारिनि लाडिली, जाकौ अपनो कोन।
ताको कर छाँडे नहीं, महा सु रसिक प्रवीन ॥२६९॥

अनेक जन्म की भूल कों, छिन में देइ मिटाइ।
कुंजबिहारिनि लाडिली, जिनके सदा सहाइ ॥२७०॥

परम प्रवीन रसिक-सिरोमनि श्रीकुंजविहारिनिलाड़िलीजू जाकूँ अपनो करि लेवैं हैं, ताको हाथ कँसेहू नाँइ छाँड़ि के, वाकी समस्त रीति भाँति सों रक्षा करती भईं अनन्त जन्मन की भूल कूँ एक छिन में ही मिटाय देवैं हैं।

बूडत ही विषधार में, लीनी भुजा पसारि।
कुंजबिहारिनि लाडिली, ऐसो मेरो यारि ॥२७१॥

श्रीकुंजबिहारिनिलाड़िलीजू ऐसी अद्भुत प्रेम करिबेवारी हैं, जोकि मैं विषय रूपी महाविष की नदी में डूब रह्यौ हो, स्वयं आपने ही हाथ पसारि कैं मोकूँ निकासि लीनौ।

कुंजविहारिनि बाल कों, सेवैं हित सों नित्त।
बिघन न आवै तास कों, तन में मन में चित्त ॥२७२॥

जो बड़भागी जन बड़े हित सों श्रीकुंजविहारिनि बाल कूँ सतत सेवैं हैं, विनकूँ तन, मन एवं चित्त में कैसेहू विघ्न नाँय आय सकैं हैं।

रोम रोम आनंद भयो, छिनु छिनु होत हुलास।
श्री कुंजबिहारिनि लाडिली, सदा हमारे पास ॥२७३॥
सदा हमारे पास है, कुंजबिहारिनि बाल।
लियें सुभाव रहै सदा, छिन छिन करत निहाल ॥२७४॥

श्रीकुंजविहारिनि लाड़िली हमारे सुभाव कूँ लिये भये सदा हमारे पास रहि, छिन-छिन निहाल करती रहैं हैं, ताते रोम-रोम में आनंद भरि हमारो छिन-छिन हुलास बढ़तो जाय है।

हम हमरी है लाडिली, कहैं सुनैं चितलाइ।
कुंज केलि निरखैं सदा, महा परम सुख पाइ ॥२७५॥

हमारे प्रान श्रीलाड़िलीजू ही हैं, याते हम सदाकाल चित्त लगाइ कैं बिनकी ही बात कहैं-सुनें है। बिनकी कुंज केलि कूँ ही निहारि-निहारि कैं सतत महा परम सुख पावैं हैं।

कुंवरि लडैती लाडिली, लाड लडी सुकुमार।
अँग सँग देनी केलि रस, महा प्रेम सुख सार ॥२७६॥

हमारी कुँवरि लडैतीलाड़िलीजू-अति सुकुमारी ऐसी लाड़-लड़ीली हैं जो महा प्रेम को हू सुखसार अंग-संग केलि रस कूँ ही सदाकाल देवैं हैं।

मेरी प्रिय है लाडिली, छिन छिन प्रीति नवीन।
मेरे सुख में अति सुखी, हों उनके सुख लीन ॥२७७॥

मेरी प्रान प्यारी श्रीलाड़िलीजू ही हैं, छिन-छिन नई-नई प्रीति करि, मेरे सुख में ही अतिसुखी होय हैं, और मैं बिनके ही सुख में सतत लीन रहूँ हूँ।

प्रिय हमरे अंतर रहै, हम प्रिय के अंतर।
अँग सँग निरखें केलि सुख, सदाँई रहत निरंतर ॥२७८॥

साक्षात् प्रानप्यारी सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू तन, मन, प्रान, रोम-रोम ते हमारे अंतर में रहैं हैं, तथा ऐसे ही हमहू बिनके अंतर में रहि कैं, अंग-संग केलि-सुख कूँ निहारते भये या भाँति एक भये रहैं हैं, कि हमारे-और बिनके बीच में काहू प्रकार कौ अन्तर रहै ही नाँइ है। अर्थात् सहचरी के तन, मन, प्रान रोम-रोम में सहज सुभाव श्रीलाड़िलीजू को सुख ही सदाकाल भरचौ भयो होय है और याही प्रकार श्रीलाड़िलीजू के हू तन, मन, प्रान, रोम-रोम में सहचरि को ही सुख भरचौ भयो रहै है।

हमरी बात भली बनी भई लडैती प्रान।
ताही तें अति सुख भयो मिली सु रसिक सुजान ॥
मिली सु रसिक सुजान जानि मनि जानि है।
हरि हाँ कुंजबिहारिनि बाल सु रसिक सुजानि हैं ॥२७९॥

जगत में हमारी बात बहुत ही सुन्दर बनि गई, जोकि स्वयं सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू हमारे प्रान-स्वरूप है गई हैं। समस्त जानिबे योग्य स्वरूपन में मनि स्वरूप सुजान रसिक-सिरोमनि श्रीप्यारीजू के मिलिबे ते हमें अति ही सुख प्राप्त है गयौ है।

कुंजबिहारिनि लाडिली, छिन छिन पोषत भाउ।
लियें सुभाव सदा रहै, रसिक सिरोमनि राउ ॥२८०॥

रसिक-सिरोमनिन की हू सिरमौर श्रीकुंजविहारिनलाड़िलीजू अपने निज जनन के सुभाव कूँ सदाकाल लिये भये छिन-छिन बिनके भाव कूँ पोषन करती रहैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास के, महा रसिक परवीन।
अँग सँग निरखैं केलि सुख, छिन छिन प्रीति प्रवीन ॥२८१॥

कुंज केलि के रस विना, और न हिय में लीन।
जे श्री स्वामी हरिदास के, ते या रस में हैं मीन ॥२८२॥

गौर स्याम इनके हितं, छिन छिन केलि कराहिं।
महा रूप अति रस भरे, इनके और न आहिं ॥२८३॥

जो श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित हैं ते ऐसे महा प्रवीन रसिक हैं, कि छिन-छिन नई-नई प्रीति सों श्रीजुगल के अंग-संग की केलि कूं ही सदाकाल निहारें हैं। वे कुंज केलिके रस बिना और काहू रस कूं अपने हृदय में नांय लेवें हैं। श्रीस्वामीजी महाराज के ही अनन्य जन या अद्भुत महारस में मीन की नाँई अनन्य भाव ते सदाकाल पैरें हैं। श्रीजुगल हू इनके प्रेम हित के ताँईं ही महारूपरस सों भरि, छिन-छिन नई-नई केलि करें हैं, कारन श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य जनन को और कोऊ जीवन आहार है ही नाँय।

निजु प्रिय कीनी अपनपौ, तन मन रही समाइ।
तू मेरी है प्रान सखी, पोषत मन के भाइ ॥२८४॥

रिझवार-चूरामनि श्रीस्वामिनीजू ने मोकूं निज अपनों करि मेरे तन तथा मन में समाइ, मेरे मन के भावन कूं समस्त रीति-भाँति सों पोषन करती भईं, मोसों कहैं हैं कि तू तो मेरी एकमात्र प्रान-सखी ही है।

सेवैं नित्य सरूप कौं और वृन्दावन चंद।
अँग सँग निरखैं केलि सुख, सदा रहैं आनंद ॥२८५॥

हम सदाकाल श्रीवृन्दावन-चंद में अखंड बास करते भये नित्य स्वरूप श्रीस्वामिनी लाल की केलि-सुख कूं सेवन करि-करि कें सतत आनंद में भरे रहैं हैं।

पूरन चंद आकास ज्यौं, घट घट में परकास।
हरि सेवौ ऐसै सबै, कुंज महल में बास ॥२८६॥

जैसे समस्त आकास में एक ही पूर्न चन्द्रमा को प्रकास छायौ रहै है, तैसे ही निकुंज महल के श्रीजुगल को ही प्रकास यावत श्रीभगवत स्वरूपन में घट-घट की नाँईं छाय रह्यौ है। याही सिद्धान्त के अनुसार ही समस्त श्रीहरि स्वरूप एवं जीवात्मा कूं मानते भये सदाकाल श्रीनिकुंज महल की ही भावना करौ।

जाही की प्रापति चहै, ताही कों निजु सेउ।
भूलि न साधै और कों, रसिकनि दीनों भेउ ॥२८७॥

रसिक जनन ने कृपा करि कें मोकूं उपासना कौ यह भेद बतायो है कि जा स्वरूप की साधक प्राप्ति करनो चाहै, ताही कौ तन-मन-वचनन द्वारा निज अनन्य

होइ कें, सदाकाल सेवन करनो चहिये। अपने इष्ट के अतिरिक्त और काहू कूँ तो भूल को भूल में हू नाँइ साधनो चहिये।

कुंज बिहारीलाल कों, सेवौ तन मन चित्त।
सदा सर्वदा सँग रहे, और न ,ऐसो मित्त ॥२८८॥

श्रीकुंजबिहारी लाल सदृस हित करिबेवारो और कोऊ नाँइ है। नेक हित करिबे ते ही सदा सर्वदा संग-संग रहैं हैं। याते तन, मन, चित्त सों दृढ़ अनन्य होइ, बिनकूँ ही सेवो।

कुंज बिहारी लाडिले, इनही को सब आहि।
निर्गुन सर्गुन आदि लै, और बताऊँ काहि ॥२८९॥

हमारे प्रान लाड़िले श्रीकुंजबिहारी को ही सब उजेरो है। निर्गुन-सगुन आदि समस्त भगवत स्वरूप बिनको ही प्रकास है, तब हम और कौन कूँ बतावें।

निहचै भजै बिहार कों, और न जानैं देव।
तन मन अर्पन रसिक कों, निर्भै ह्वै करि सेव ॥२९०॥

अपनो तन, मन, सर्वस्व श्रीस्वामीरसिकदेवजू के अर्पन करि, निर्भय होइ, निश्चयपूर्वक नित्यबिहार कूँ एसे दृढ़ अनन्यता ते भजो कि और काहू कूँ स्वप्न में हूँ नाँइ जानों।

सुभ असुभ दोऊ सुपन, नित्त बस्तु है और।
समझै कोऊ रीति यह, परम रसिक सिरमौर ॥२९१॥

सुभ और असुभ-कर्म दोनों ही सुपन के समतूल हैं। एक रस नित्यबिहार करिबेवारे स्वरूप बिनते बहुत ही दूर और ही हैं। या बात कूँ बिरले ही रसिक-सिरमौर जन समझि सकें हैं।

ऊपर कौ सुख दीप लौं, सदा बिघन को बास।
मन को सुख ऐसैं भैया, जैसैं मनि प्रकास ॥२९२॥

आन्तरिक प्रेम-भावना सों रहित होइ जो जन केवल ऊपर की सेवा-सुख में ही लगे रहैं हैं, बिनकूँ पैंड़-पैंड़ पैं विघ्न-बाधा भोगनी परें हैं। आन्तरिक भावना को सुख मनि प्रकास की नाँईं हृदय में जगमगातो रहै है।

कै सेवै हरि आपने, कै सेवै निजु संत।
और सबै साधन जिते, लहै नहिं दुख अंत ॥२९३॥

याते साधक कूँ कै तो अपने निज हरि स्वरूप श्रीबिहारी-विहारिनीजू कूँ, कैं श्रीस्वामीजी महाराज के निज अनन्य-उपासक संतन कों साँचे भाव सों सेवनो चहिये। और-और समस्त साधनन में केवल दुख ही दुख भरचौ भयौ है।

संतन बिन हरि ना मिलैं, हरि ने कही पुकार।
मो सेवत सुमिरत भैया, बूडेगो मझधार ॥२८४॥

साक्षात श्रीहरि या बात कूँ पुकारि-पुकारि के कहैं हैं कि-मेरी सेवा-सुमिरन करते भये हू जो निज संतनि कूँ नाँइ सेवोगे तौ माया के सागर में ही डूबनौ परैगो।

जो दोषी है संत को, हरि दोषी लख बार।
भजन करत सेवा करत, बूडैगो मझधार ॥२८५॥

संतन के दोषी जनन कूँ श्रीहरि, लाख बार अपनो दोषी मानें हैं। ऐसे जन भजन-सेवा करते भये हू मझधार में ही डूबैंगें।

कोटि भजन सेवा करो, कोटि जज्ञ अरु दान।
दुखवै काहू संत को, तो हरि नहिं करै प्रमान ॥२८६॥

संतन कूँ दुख दैवेवारे जन, यदि कोटि-कोटि श्रीहरि की सेवा भजन करैं, और कोटि-कोटि जज्ञ, दान करैं, तोहूँ श्रीहरि कछु नाँइ मानें हैं।

कोटि भजन एकादसी, कोटि तीरथ स्नान।
दुखवै काहू संत को, तो हरि नहिं करै प्रमान ॥२८७॥

याही प्रकार कोटि भजन एकादसी और तीरथ स्नान करिबेवारेन कूँ हूँ संत को दोषी होइबे पै श्रीहरि कछु नाँइ मानें हैं।

भजन यहै सेवा यहै, यहै सु हरि सौं प्रीति।
कोई जीव न 'दूखई, यह संतन की रीति ॥२८८॥

साँचे संतजन प्रथम भजन, सेवा, तथा श्रीहरि सों प्रीति याही बात में समझें हैं कि अपने मन, क्रम-बचन द्वारा काहू जीव कूँ, कोऊ प्रकार ते दुख नाँइ पहुँचे।

प्रतिमा सेवै कोटि लौं, कोटि तीरथ स्नान।
साधुन के सेये बिना, भक्ति न होइ निदान ॥२८९॥

फिर आप स्पष्ट बताते भये बोले कि–हे भाई ! मैं तुमसों यह निदान बात कहूँ हूँ कि चाहे कोऊ कोटि-कोटि प्रकार ते प्रतिमा सेवै, चाहे तीरथ स्नान करे-किन्तु संतनि के सेये बिना भक्ति नाँइ होइ सकै है। अर्थात साँचे भाव ते श्रीहरि की प्राप्ति

के ताँईं, मायिक सुख-दुख के संबंधन कूँ भली-भाँति त्यागि के श्रीगुरुदेव के सरन होइ, भिक्षुकन की नाँईं भिक्षा माँगते भये, श्रीहरि के ही बल भरोसे पै सतत फूले, जो संत भजन करैं हैं, तिन संतन के प्रति श्रीहरि अति कृतज्ञता मानि, बिनके सेये बिना काहू कूँ अपनी भक्ति नाँइ देवैं हैं। याही ते महतन ने भक्ति के साधनन में बतायौ है कि–श्रीहरि के भोग लगाइ, वा प्रसाद कूँ संतन ने पवाइ, तब हीं स्वयं पामनो चहियें। ऐसे ही फल-फूल-इत्र-वस्त्र आदि समस्त सेवान में समझनो चहिये। क्यौंकि प्रत्यक्ष स्वरूप सों श्रीहरि, भाविक संतन के हृदय में ही सदाकाल विराजैं हैं। ये समझि के ही भक्ति पथ के साधक कूँ चलनो चहिये।

अपरस सपरस जगत सब, अरुझि रह्यो जिय माहि।
गौर स्याम सपरस दोउ, प्रेमी परसि सिहाहि ॥३००॥

समस्त जगत अपरस, सपरस के भावन में हीं अरुझि रह्यौ है। बिसुद्ध प्रेम स्वरूप हमारे श्रीजुगल, एकमात्र प्रेमी-जनन कूँ हीं सपरस करि-करि के सिहावैं हैं।

बिहारिदास व्रज में बसत, मिले सपरसी स्याम।
परस न पावै प्रेम बिनु, अपरस दुःखी सकाम ॥

चाहि रुप अपरस रहैं, कबहूँ परस न होइ।
काम केलि भोगी रसिक, तन मन प्रान समोइ ॥३०१॥

प्रेमी रसिकजन अपने सुख की चाह तें सदा अपरस रहि, कबहूँ बाकूँ सपरस नाँइ करैं हैं। बिसुद्ध प्रेम-रसमय श्रीजुगल की कामकेलि में अपने तन, मन, प्रानन कूँ समोये भये अद्‌भुत सुख कूँ बिलसैं हैं।

अनन्हाये कबहूँ नहीं, न्हाए रहत सु नित्त।
सुद्ध करैं सब सुद्ध कों, कुंज बिहारिनि मित्त ॥३०२

ऐसे रसिकजन कबहूँ अनन्हाये नाँइ होइ कें, सदाकाल न्हाये भयेन सदृस परम पवित्र रहैं हैं। वे महत् सुद्ध स्वरूप और-और परमार्थ साधननकूँ हूँ अपने सर्वोपरि नित्यबिहार के रसमय साधनन ते सतत पवित्र करिबेवारे हैं, क्यौंकि सर्वोपरि श्रीकुंजबिहारिनीजू बिनकी मित्र हैं।

सेवै नित्य बिहार कों, और न जानै कोइ।
कुंजबिहारिनि बाल ने, तन मन लये समोइ ॥३०३॥

ऐसे बड़भागी जन नित्यबिहार उपासना के अतिरिक्त अपने मन ते और

काहू कूँ नाँइ जानै हैं, बिनकूँ साक्षात श्रीकुंजबिहारिनलाड़िलीजू स्वयं अपने तन मन-प्रान में समोइ के राखैं हैं।

समता बिना भजन अरु सेवा। खाली मंदिर ज्यौं बिन देवा ॥
ऐसें ही सब करतब जानों। हरि गुरु संत बिना यो मानों ॥३०४॥
जौलौं बस्तु पूरी नहीं पाई। तौलौं समता होइ न भाई ॥
जब समता निज हिय में आवै। तब हीं सुद्ध सरूप लखावै ॥३०५॥
बेद पुरान याही कों गावै। आवागमन भरम मिटि जावै ॥
रसिकसिरोमनि यौं समुझावै। ललितकिसोरी के मनभावै ॥३०६॥

फिर आपने कह्यौकि हे भाई! समता मन में आये विना श्रीहरि को भजन और सेवा ऐसी है, जैसे बिना ठाकुर कौ मन्दिर। श्रीहरि, गुरु, संतन के सेये बिना याही भाँति अपने साधनन कूँ समझो।

जब ताऊँ साँचो सर्वोपरि स्वरूप वस्तु कौ हृदय में नाँइ दरसै है, तब ताऊँ इहलोक-परलोक की यावत् वस्तु-बातन में साधक की समता नाँइ है सकै है, जब समता हृदय में आय जाय हैं, तबहीं इष्ट कौ सुद्ध स्वरूप दरसै है। और तबहीं आवागमन एवं भ्रम मिटै हैं। याही सिद्धान्त कूँ समस्त वेद-पुरान, और हमारे श्रीगुरुदेवरसिक-सिरोमनिजू अनेक प्रकार सों समझाइ-समझाइ कहैं है। हमारे हू मन में येही सिद्धान्त भली-भाँति भावै है।

रहनी कहनी एक सी, ज्यौं की त्यौं जो होइ।
सोई तो वस्तु पाइ है, जागो रहौ कि सोइ ॥३०७॥

जिन साधकन की सिद्धान्तानुसार रहनी-कहनी एक समान ही होय है, वे बड़भागी चाहै जागैं, चाहै सोवैं, बिनकूँ वस्तु प्राप्त है जाय है।

जब जागै तब प्रिया भजै, कै सोवै पाँव पसारि।
कुंजबिहारिनि लाडिली, नेक न भूलै यारि ॥३०८॥

हे भाई तितेक देर जागो, तितेक देर तो अपनी प्रानप्रियाजू को भजन ही करो, अन्यथा पाँय पसारि कैं सोवो। श्रीकुंजविहारिनिलाड़िलीजू कूँ नेकहू मति भूलो।

राग द्वेष हमरे नहीं, नहीं देह अभिमान।
नित्त प्रिया मिलि भाव सों, ललित सु रसिक सुजान ॥३०९॥

अति ललित रस के जो सुजान रसिक हैं, बिनके राग-द्वेष एवं देहाभिमान

लेसमात्र हू नाँइ होइ कें, अपने सरस-रँगीले-भाव द्वारा सदाकाल श्रीप्रियाजू सों ही मिलै रहैं हैं।

जे हरि के हैं आसरे, तिनको बिघन न कोइ।
जिन हरि सों दूजी करी, आतमघाती सोइ ॥३१०॥
हरि सेवैं हरि ही कहैं, हरि को तन मन देहि।
ताकौं हरि अपनो करै, रीझि अंक भरि लेहि ॥३११॥

जो जन सदाकाल श्रीहरि को ही आसरो मन में राखैं हैं, विनकूँ कबहूँ, काहू प्रकार कौ विघ्न नाँय आय सकै है। जिन लोगन ने श्रीहरि को आसरो छाँड़ि कै, कोऊ दूजो आसरो लै लीनों-तिनकूँ तो आतमघाती ही समझनो चहिये। क्योंकि तन-मन-अर्पन करि श्रीहरि कूँ सेइबे ते तो श्रीहरि ही प्राप्त होइ, अपनो करि, रीझि अंक में भरि लेवैं हैं।

हरि ही सब के प्रान हैं, हरि ही सब सुख दैंन।
हरि ही तन मन रचि रह्यौ, हरि ही बोलै बैंन ॥३१२॥

श्रीहरि ही सबकें प्रानस्वरूप हैं, श्रीहरि ही सब सुख देवेवारें हैं, हमारे तन-मन में श्रीहरि रचि रहैं हैं, याते मुख सों एकमात्र श्रीहरि ही हम बोलैं हैं।

हरि कों अपनों कीजिये, हरि हैं साँचे मित्त।
एक पलक नहिं बीछुरैं, ज्यौं रसिकन में चित्त ॥३१३॥

याते हम स्पष्ट कहैं हैं कि—श्रीहरि ही साँचे मित्र हैं, बिनकूँ ही अपनो बनानो चहिये, जैसे श्रोहरि को चित्त अपने रसिकनि में लग्यौ रहै है, तैसे तुमने हू अपने चित्त कूँ श्रीहरि में लगाये रहनो चहिए।

हमरे मन में हरि रहैं, हम हरि के मन माँहि।
एक छिनक नहिं बीछुरैं, गहैं रसिक की बाँहि ॥३१४॥

हमारे मन में सदाकाल श्रीहरि रहैं हैं, ऐसे ही श्रीहरि के मन में हम रहैं हैं, अपने श्रीगुरुदेवस्वामीरसिकदेवजू के बाँह-बल सों हम छिनकाल हू श्रीहरि ते नाँय बिछुरैं हैं।

हौं प्रभु को प्रभु मेरेई, भजिहौं न तजिहौं पास। —श्रीगुरुदेवजू

श्री हरि श्री हरि लाडिली, श्री हरि जिनके रंग।
श्रीहरि मानैं अपनपौ, रहैं पियारी संग ॥३१५॥

श्रीहरि एकमात्र श्रीलाड़िलीजू हीं हैं, जिनके रंग में रँगे भये श्रीहरि स्वयं श्रीकुंजविहारी, सतत बिनके संग-संग रहैं हैं, वे ही श्रीहरि मोते अपनपौ मानैं हैं।

हरि हरि हरि हरि सब कहैं, हरि को जानत नाँहि।
हरि हैं साँचो लाडिलो, गहैं रसिक की बाँहि ।।३१६।।

जगत में हरि-हरि सब ही साधक समाज कहैं हैं, किन्तु निज हरि के स्वरूप कूँ नाँय पिछानैं हैं। साँचे श्रीहरि स्वरूप स्वयं श्रीलाड़िलीजू ही हैं, जो श्रीस्वामी-रसिकदेवजू के हस्तकमल कूँ सतत पकरें रहैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास को, धर्म सुमेर समान।
और धर्म सब डूंगरी, यही बात परमान ।।३१७।।

जैसे और-और समस्त धर्मन ते विसुद्ध श्रीभगवद् भक्ति सर्वसम्मत ऊँची मानी जाय है। तैसे ही श्रीभगवद् स्वरूपन में हू श्रीकृष्न स्वरूप स्वयं भगवान् होइबे के कारन सबके मूल हैं। याते बिनकी भक्ति सहज सुभाव ही और-और भगवद् भक्तिन ते प्रधान होय है, तिन श्रीकृष्न स्वरूपते हू श्रीस्वामिनीजू के प्रधान भाव की भक्ति, और हू अधिक प्रभावसालिनी है, बिनते हू अति दूर-प्रथम समागम-एकान्त-रस-विलास निजमहल श्रीवृन्दावन के दृढ़ अनन्य बिलासी श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू अनादिकाल तें एकरस बिहार करें हैं, ताही रस के दृढ़ अनन्य उपासक एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं, याही ते आपको कथन है कि श्रीस्वामीजी महाराज को एकरस सर्वोपरि प्रेम रस धर्म, सुमेरु पर्वत के समान बहुत ऊँचो है, जाके सामने और-और यावत्-धर्म सहज सुभाव ही डूँगरी सदृस दरसैं हैं।

स्वामी धर्म धर्म को स्वामी। ललित केलि रस अति अभिरामी ।।
महा धाम धामिनि कौं धामी। श्री वृन्दावन सहज सुनामी।।३१८।।

श्रीविहारी-बिहारिनीजू की निज ललित केलिरस सों ही अति विभूषित श्रीस्वामीजी महाराज को धर्म, अन्य समस्त धर्मन को स्वामी स्वरूप है। ऐसे ही निज-महल श्रीवृन्दावन धाम समस्त महाधामिन के हू धामी स्वरूप जगत में विख्यात हैं।

लगी समाधि बिहार की, छुटै नहिं दिन रैंन।
गौर स्याम बिलसैं सदा, श्री हरिदासी ऐंन ।।३१९।।

श्रीस्वामीजू महाराज के प्रेम-रस-रंग-अनुराग-आसक्ति इतेक अद्भुत-अगाध स्वरूप की है, जिनके बिलास में सर्वसिरोमनि-रसिकसिरमौर श्रीजुगल कूँ अनादिकाल

ते अपनपै की सुधि नाँइ रहि, विलसते-बिलसते बिलसिबो, मिलते-मिलते-मिलिबो, देखते-देखते-देखिबो, भान नाँइ होय है । सदा-सर्वदा काम-केलि-रसबिलास में ही ऐसे निमग्न हैं, कि वामें बिनकी समाधि ही लगि, दूजी काहू बात कौ छिनमात्र के ताँई ज्ञान नाँइ होय है । याते ही इनकौ बाँकेबिहारी कहैं हैं ।

महा कँवल अति रस भर्यौ, सोभा सिंधु अपार ।
कुंज महल फूल्यौ सदा, ललित सु प्रान अधार ।।३२०।।

अपार सोभा को समुद्र, चरम सीमा के अति रस सों भर्यौ भयौ, महाकमल श्रीवृन्दावन निकुंज महल में सदाकाल फूल्यौ रहै है, वोही अद्‌भुत प्रफुल्लित कमल निपट नित्यविहार श्रीस्वामीजी महाराज को प्रान-अधार स्वरूप है ।

सुभ दिन मंगल है सदा, भजिये श्री हरिदास ।
वहै अमंगल जानिये, इन बिन दूजी आस ।।३२१।।

आश्रितन सों आपने कह्यौ कि—हे भाई ! श्रीस्वामीजी महाराज को भजन ही सदाकाल सुभदिन एवं मंगल स्वरूप है । अमंगल तो वाही को समझो-जो श्रीस्वामीजी महाराज कूँ छाँड़ि कें, और कोऊ दूजी आसा मन में आजाय ।

ग्यानी भूल्या ग्यान कथि, पंडित भूल्या वेद ।
श्री स्वामी हरिदास बिनु, क्यों करि पावै भेद ।।३२२।।

ज्ञानीजन तो ज्ञान द्वारा ब्रह्म के बिचार में ही अपने आप कूँ भूल रहे हैं ऐसे ही पंडित लोग वेदन के बाद-बिबाद में समस्त जन्म कूँ बिताय देवैं हैं । बिना श्रीस्वामीजी महाराज को दृढ़ अनन्य आश्रय लिये, नित्यविहार रस-रूपी-समाधि को भेद कोऊ नाँय पाइ सकैं हैं ।

ग्यानी है नाहीं की संधि में, आपो दियो भुलाइ ।
वेद दृढावै कर्म को, जन्म मरन नहि जाइ ।।३२३।।

ज्ञानी लोग तो है-नाहीं अर्थात्-अस्ति-नास्ति की संधि के बिचार में ही अपने जन्म कूँ पूरा करि देवैं हैं । वेद कर्मन कूँ ही दृढ़ावैं है, जासों जन्म-मरन कैसेहू नाँय छूटि सकै है ।

या जग जीवन है सुफल, भजिये श्री हरिदास ।
नहीं तो मरनों अति भलो, जम घट होत है त्रास ।।३२४।।

अरे मन अबकै तो हरिदास भजि, छोडि जगत की आस।
थिर नहिं कोई दीसता, क्यों बँधत मोह की फाँस ॥३२५॥

या जगत् में श्रीहरि के दासन को भजन करिबेते ही जीवन सफल होइ है, अन्यथा मरिबो ही भलो। क्योंकि श्रीहरि के दासन के अतिरिक्त मन लगाइबेते यमराज की मारखानी ही परैगी। हे हमारो मन तू अनन्त युगन ते जगत में भटकि चुक्यौ है। अब तू श्रीहरिदासन को ही भजन करि, और कोऊ स्थिर रहिबेवारो नाँइ है, इनकी मोह फाँस में फँसिबेते तो दुःख ही भोगने परैंगे।

अरे मन धीरज कौं पकरि, अधीरज तजि आस।
बडो भाग संजोग यह, भजि ले श्री हरिदास ॥३२६॥

अरे मन जिन-जिन आसान में तू अधीर ह्वै रह्यौ है, तिन सबन सों निरास है कै सन्तोष धारन करि, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के भजन करिबे में ही लगि जा। यह सुयोग बड़े भाग्यन सों प्राप्त भयौ है।

मन समझाये समझियै, अनसमझी तजि आस।
एकै तजि एकै भजो, एकै श्री हरिदास ॥३२७॥

बिना समझी समस्त आसान कूँ त्यागि, अपने मन कूँ भलीभाँति समझाओ, क्योंकि भजिबे योग्य जगत में एक सर्वसिरोमनि श्री स्वामी जी महाराज ही हैं, याते औरन की आसा कूँ त्यागि, दृढ़ अनन्य होइ, एक इनकूँ ही भजो।

निस बासर लौ लागी रहै, रसना श्री हरिदास।
कुंजबिहारिनि लाडिली, पुजई मन की आस ॥३२८॥

हमारी रसना कूँ रात दिन श्रीहरिदास नाम लेबे की लौ लगी रहै है। याते श्रीकुंजबिहारिनि लाड़िली हमारे मन की समस्त आसान कूँ पूरी करें हैं।

प्रापति में संसै नहीं, तन मन वचननि एक।
कुंजविहारिनि लाडिली, यही हमारी टेक ॥३२९॥

तन, मन, बचन द्वारा हमारी एकमात्र यही टेक है कि सर्वोपरि श्रीकुंजबिहारिनि लाड़िलीजू कूँ हम निश्चय ही प्राप्त करेंगे।

मात तात हरिदास हैं, पोषत जुग रस भाइ।
जोई जोई रुचि उपजत हियें, सोई सोई देत बुलाइ ॥३३०॥

हमारे माता-पिता जो कछु हैं, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं, क्योंकि श्रीजुगल के सर्वोपरि रस सों मेरे हृदय कूँ ऐसे पोषन करैं हैं कि—जो-जो रुचि मन में उपजै हैं, तिन सबन कूँ मानों बुलाइ-बुलाइ कें पूरी कर रहैं हैं।

बुरो बुरो सब ही कहैं, या जग ये ही रीति।
सदा भलौ हमें चाहिए, श्री हरिदासी प्रीति ।।३३१।।

या जगत की कछु रीति ऐसी है कि सबलोग औरन कूँ तो बुरौ-बुरौ ही कह्यौ करैं हैं, अपनो सदाकाल भलौ भलौ ही चाह्यौ करैं हैं, किन्तु भलौ भलौ श्रीस्वामीजी महाराज सों प्रीति करिबे ते ही है सकै है।

बहु बैरी या जगत में, सब करत आपनी चोट।
कवच नाम हरिदास कौ, बडो देह कों ओट ।।३३२।।

या जगत में अंतरंग-बहिरंग बहुत भाँति के बैरी हैं, और सबहीं अपनी-अपनी चोट समय पै कियौ करैं हैं, अतिविचित्र प्रभावसाली श्रीस्वामीजी महाराज को नाम रूपी कवच मन में पहिरे-रहिबे ते काहू बैरी की चोट नाँय चलिकैं, देह कूँ बड़ी भारी ओट बनी रहै है।

धृग जीवो या जगत में, भज्यो नहीं हरिदास।
जन्म गँवायो बाद हीं, विषया विषै की आस ।।३३३।।

जिन लोगन ने श्रीहरि के दासन कौ भजन नाँय कीनौं, विनको जगत में जीवन ही धिक्कार है। जहर सदृस विषयन की आसा में ही बिनने अपने जन्म कूँ बेकार ही खोय दीनौ है।

कौ मैं मैं हों कौन कौ, जाने बिन न कछु होइ।
कै वह पावै फलन कों, कै चल्यौ जमानों खोइ ।।३३४।।

जब ताऊँ तुम अपने मन में यह निश्चय नाँय करि लेवोगे कि मैं कौन तो हूँ, और वास्तविक में कौन को हूँ ? तब ताऊँ कछु नाँइ है सकै है। जिनने या बात कूँ समझ लीनीं, बिनने तो सर्वोपरि फल कूँ प्राप्त करि लीनो, और बहुत से लोगन ने या बात कूँ नाँय समझिबे के कारन अपनी या दुर्लभ मानव देह कूँ बेकार ही खोय दीनी।

माला अंकुस हाथ में, भजौ नाम हरिदास।
मन मतंग को बस करौ, बिलसौ जुगल बिलास ।।३३५।।

अंकुस स्वरूप माला कूँ हाथ में लैकें, सतत श्रीहरिदास नाम कूँ ही रटो, मतवारो हाथी सदृस अपने मन कूँ वस करि, श्रीजुगल के केलि-विलास-सुख कूँ सतत बिलसौ ।

जिहिं रसना हरिदास रटि, सो रसना धन मान ।
तनु मन आपौ बारि कें, मिलिये संत सुजान ।।३३६।।

हे सुजान सिरोमनि संत जनो ! जो रसना श्रीहरिदास नाम कूँ रटै है, ताही कूँ धन्य-धन्य मानो, और अपने तन-मन आपे कूँ वारनें करि, साक्षात् श्रीविहारीजी महाराज कूँ प्राप्त करि लेउ ।

जो कोई साँचौ हरि कौ होई । ताकों हरि भूलैं नहिं कोई ।।
जाके मन में नेकु कचाई । तातें दूरि भाजि हरि जाई ।।३३७।।

हरि सेवै हरि ही कहैं, हरि कौं तनु मन देइ ।
हरि गुरु मानें एक करि, जनम सुफल करि लेइ ।।३३८।।

हे भाई ! जो कोऊ साँचे भाव सों श्रीहरि के है जाँय हैं, बिनकूँ श्रीहरि नेकहूँ नाँय भूलें है । जिनके मन में श्रीहरि के होइबे में नेकहू कचाई होय है, बिनते श्रीहरि दूर रहैं हैं । याते श्रीहरि कूँ ही सदाकाल सेवो, तथा बिनकूँ हीं तन-मन दैकें श्रीहरि के नाम कहौ, एवं श्रीहरि–गुरुन कूँ एक समान समझि, अपने जन्म कूँ सुफल करि लेवो ।

हरि गुरु की करि सेव, यही परम पद सार है ।
और न दूजौ देव, श्री हरिदासै गाइयैं ।।३३९।।

समस्त परम-पदन कौ सार श्रीहरि गुरुन की ही सेवा करौ, और श्रीस्वामीजी महाराज के रस-जस-गुनन कूँ सतत गावो । इनके समतूल जगत में और कोऊ दूजौ देव नाँय है ।

सदाचार तू सोधि, श्रीहरि भजन सुसार है ।
इहि मत मनहिं प्रबोधि, वेद पुराननि गाइयैं ।।३४०।।

श्रीस्वामीजी महाराज ते लैकें अब ताऊँ सबके वचन, एवं सदाचार कूँ सोधि कें, भली-भाँति तुम देख लेवो ? श्रीबिहारीजी महाराज को ही भजन सबनि कौ सार है, वेद-पुरान हू याही बात कूँ भूयो-भूयो वरनन करैं है, याते तुम याही सिद्धान्त कूँ निश्चय पूर्वक अपने मन कूँ समझाय लेवो ।

जो तू आयो हरि सरन, तौ निर्भै पांव पसारि।
रसना करि हरि नाम रटि, नामी नैन निहारि ॥३४१॥
नैननि भीतर मिलि रह्यौ, दिष्टि न पावै सोइ।
यही संधि हरि मिलन की, जो मिलि जानें कोइ ॥३४२॥

यदि तुम श्रीहरि की सरन में आय गये हो तौ, सब बातनिंते निरभय होय, पाँय पसारि कें सोवो। जिह्वा ते बिनके नाम कूँ सदाकाल रटो, नेत्रन ते बिनके दरसन करो। श्रीहरि नेत्रन में ही समाय रहें हैं, किन्तु देखिबे में नाँय आवैं हैं, जो महतजन बिनते मिलिबो जानें हैं, वेई या संधि कूँ समझें हैं। अर्थात जिनके नेत्र बिनकूँ देखिबे के ताँई ही तरफराते भये टकटकी लगाये रहें हैं, बिनकूँ ही बे दीखें हैं।

श्री स्वामी हरिदास बिनु, जो अंत कहूँ मन जाइ।
तहाँ निरादर तासु छिन, गयें फेरि पछिताइ।३४३॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त और कहूँ मन जाइबे ते तहाँ ताही छिन निरादर होइ है, जासों पछितामनो परै है।

सब रसिकन को देव, श्री हरिदासै पूजियै।
गायौ श्री गुरुदेव, आगम निगम को सार है ॥३४४॥

श्रीगुरुदेवजू ने भली-भाँति निर्नय करि कें यह कह्यौ है कि-आगम-निगम कौ सार, सर्वोपरि नित्यबिहार-प्रकासक श्रीस्वामीजी महाराज समस्त रसिकन के इष्ट स्वरूप हैं। याते बिनको ही भजन करनो चहिये।

सकल समझि को सार सार है वेद को।
श्रीपति को है सार सार ब्रह्म भेद को॥
श्री राम-कृष्न को सार सार है रास को।
हरि हाँ, सब सारन कौ सार भजौ हरिदास कौ ॥३४५॥

श्रीहरि के स्वरूप कूँ समझिबेवारी बुद्धि ही सब बुद्धि को सार समझी जाइ है। [illegible] श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपति, स्वयं श्रीराम-कृष्न-रासबिहारी आदि समस्त अवतारनि के सार स्वरूप श्रीनित्यविहारी-बिहारिनीजूकूँ रुख-अनुसार सतत लाड़-लड़ावैं हैं, बिनकूँ सर्वोपरि समझि, भजन करिबेवारेन की बुद्धि ही यावत समझ की सार स्वरूप स्वाभाविक निर्विवाद है। याते आपको कथन है कि सबके सार श्रीस्वामीजी महाराज को ही भजन करौ।

कोई कहै बैकुंठ कोई कहै ब्रह्म है।
कोई कहै इह राम कोई कहै कृष्न है।।
कोई कहै यह कुंजनि कुंजनि रास कियो निरधार है।
हरिहाँ, सबै तजौ जंजाल भजो हरिदास कह्यौ सुखसार है।।३४६।।

कोऊ भगवान कौ निज स्वरूप बैकुंठनाथ, और कोऊ ब्रह्म बतावैं हैं,—कोऊ अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथजी और कोऊ स्वयं भगवान श्रीकृष्नकूँ बतावैं हैं, कोऊ कुंजनि कुंजनि रास-बिलास-करिबेवारे स्वरूप कूँ निर्धारित करैं हैं, इन सबन कूँ त्यागि के समस्त सुखन के सार स्वरूप महामधुर सार रसमय निपट नित्यबिहार के प्रगट कर्त्ता, एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज कूँ ही दृढ़ अनन्य भाव तें भजो।

नहिं चाहों बैकुंठ नहिं चहौं ब्रह्मानंद कौं।
नहिं चाहौं, वे राम नहीं आनँद नँद कौं।।
नहिं चाहौं कुंजनि कुंजनि रास विलास लौं।
हरि हाँ, श्रीहरिदास कह्यौ सोई गहूँ यही विस्वास लौं।।३४७।।

फिर अपनो निज ध्येय कूँ प्रकास करते भये आश्रित सों स्पष्ट कहिबे लगे कि हे भाई ! हम न तो बैकुंठ, न ब्रह्मानंद और न मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी एवं न स्वयं भगवान श्रीनंद-नंदनजू, ऐसे ही कुंज-कुंज में रास-विलास करिबेवारे स्वरूपन कूँ हू हम नाँइ चाहैं हैं। क्यौंकि हमें तो श्रीस्वाँमीजी महाराज ने श्रीजुगल को निज प्रान-आधार जो रस रीति बताई है, वाही में पूर्न विस्वास है। याते वाही कूँ दृढ़ अनन्य भाव तें सतत हम गहैं हैं।

काम केलि रस रीति कही हरिदास है।
गौर-स्याम सुख रासि यही निज आस है।।
सुनि रसिकन मन त्रास कोई नहिं लहि सकै।
हरि हाँ, प्रतिकूलन उर साल नहीं यह सहि सकै।।३४८।।

सुखरासि गौर-स्याम श्रीजुगल की प्रानाधार-स्वरूप जो काम केलि है, ताही रस-रीति कूँ श्रीस्वामीजी महाराज ने बर्नन कीनौ है। हमारे तन-मन-प्रान-रोम-रोम में सदाकाल अनन्य आसा, वाही काम-केलि रस-रीति की रहै है, जाकूँ सुनि रसिकन के मन में हू त्रास होइबे ते, वे नाँइ लहि सकैं, और-विरोधिन के हृदय में साल होइबे के कारन वे सहन ही नाँइ करि सके।

विहारिदास विहार कौ, उदय करन हरिदास।
साखि भक्त को भरि सकै, रसिकन के मन त्रास ॥
कुंज पुंज रस माधुरी गूढ़ रहसि को कहि सकै।
श्री स्वामी की कृपा बिना वृथा बावरौ सौ वकै ॥ –चाचा श्रीवृन्दवनदासजी

श्री हरिदास से श्री हरिदासहि गाइ हौं।
काँम केलि रस रीति हियें दृढ़ ध्याइ हौं ॥
कुंजबिहारिनि बाल लाड में रहोंगो।
हरि हाँ, कुंजबिहारी सुख की रासि सोई सुख लहोंगो ॥३४९॥

याते यह निश्चय बात है कि श्रीस्वामीजी महाराज के सदृस एकमात्र श्रीस्वामीजी ही जगत में प्रगट भये हैं।

ऐसो रसिक भयो नहिं ह्वै है भूमंडल आकास।

बिनकूँ ही हम गावैं हैं और काम केलि रस-रीति कूँ ही दृढ़ता पूर्वक निरंतर ध्यावैं हैं। साक्षात श्रीकुंजबिहारिनलाड़िलीजू के लाड़ में ही हम सतत रहैं है। सुखरास श्रीकुंजबिहारी लाल के सुख कूँ ही हम निरन्तर लहैं हैं।

श्री गुरु के उपदेस सों, सूक्षम भेद विचार।
एते आवरन महल के तहाँ, निरवधि नित्य बिहार ॥३५०॥
बार बार परनाम है, काहू निंदौं नाहिं।
हरि परिपूरन भक्त बस, सबै भक्त हरि माँहि ॥३५१॥
हरि संबंधी भाउ, जो कोऊ जैसें करै।
रसिक सिरोमनि राव, सब विधि पोषत सबनि कौं ॥३५२॥

साक्षात् श्रीबैकुंठनाथ, भगवान श्रीराम-कृष्न एवं महारास-बिलासी जो भी श्रीभगवत-स्वरूप हम कहि आये हैं, ये सब निरवधि नित्यबिहार महल के परकोटा स्वरूप में ही हैं। या सूक्ष्म-भेद-बिचार को उपदेस, कृपा करि हमें श्रीगुरुदेवजू ने दीनौ है। यातें हम काहू की निंदा नाँइ करकें बार-बार सबन कूँ प्रनाम करें हैं। श्रीहरि के समस्त भक्त परिपूरन स्वरूप होय हैं। और श्रीहरि अपने भक्तन में ही सदाकाल विराजें हैं। जो कोऊ श्रीहरि में जैसो भाव करें हैं, रसिक-सिरोमनि श्रीजुगल समस्त रीति-भाँति सों बिनके भावन कूँ पूर्न करें हैं।

प्रानेश्वरी श्रीप्यारीजू की अद्भुत प्रेम, रीझन कूँ प्रकास करते भये आपने कह्यौ कि जो-जो मनोरथरूपी रंग मो में छिन-छिन उदय होइ हैं, वे ही रंग-मनोरथ आप में ऐसे झलमलावैं हैं, जैसे सीसी में भरचौ भयौ रंग झलकै है। तन-मन सों हमारो एवं प्यारीजू को ऐसो अनिर्वचनीय एकत्व है रह्यौ है, जो कहिबे में कैसेहू नाँइ आइ सकै है। या बात कूँ एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के वे ही दृढ़ अनन्य रसिक जन समझ सकेंगे, जो श्रीस्वामीजी के अतिरिक्त और काहू कूँ न कहैं हैं, न सुनैं हैं।

श्री स्वामी की रीति भजौं यह जानि कै।
काम केलि सुख रासि यही उनमानि कै।।
सेज बिहार अधार सोई रस रीति है।
हरि हाँ, ललितकिसोरी कृपा भजौ जो प्रीति है।।३६५।।

श्रीकुंजबिहारिनीजू की निज कृपा तें यदि तुम्हारी श्रीस्वामीजी महाराज की रस-रीति में ही अनन्य प्रीति है तो एकमात्र सुखरासि श्रीजुगल की कामकेलि रस-रीति कूँ ही अपने मन में उनमान करि, दृढ़ अनन्य भाव ते सदाकाल भजो। क्योंकि जा बिहार को आधार ही केवल कामकेलि मनोरथरूपी सैया ही है, वाही कूँ निज रस-रीति कह्यौ जाइ है।

ए दोऊ मूरति प्रेम की दरस परस सुख रासि।
काम केलि की सेज पर बिलसावैं हरिदासि।।३६६।।
खान पान भोगी नहीं नहीं चलन की रीति।
काम केलि की सेज पर गौर स्याम की प्रीति।।३६७।।

हमारे श्रीजुगल अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-रस की ही एकमात्र मूर्त्ति हैं, जिनकौ परस्पर कौ दरस-परस ही अगाध सुख-सागर स्वरूप है। क्योंकि ये श्रीजुगल प्रथम समागम-एकान्त रस-बिलास-निजमहल की कामकेलि-रसमय-मनोरथरूपी-सेज पै ही निरन्तर खेलैं हैं, जहाँ अनादिकाल सों खान-पान की हू सुधि नाँइ होय है। तब या रसमय-सुख-सेज ते दूजे रस में चलिबे की तो बात ही कौन कहि सकै है? ताही सेज पै श्रीस्वामीजी महाराज स्वाँसन के स्वाँसन की हू रुख-अनुसार, अनंत प्रकार सों श्रीजुगल कूँ लाड़-लड़ाइ-लड़ाइ कें सतत बिलसावैं हैं। याही रीति अनुसार हमारे श्रीआचार्यन की बानीन में रस कौ स्पष्ट रूप सों बिसद बर्नन है।

खान पान गुन ग्रहै न ग्रासा। आनंद विग्रह बड़ा तमासा।।

× × ×
यहै अहार बिहार निरन्तर करत न फाक परेखों।
+ × ×
यह रस तुष्ट पुष्ट मेरे प्यारे तुम सुन्दरवर वेषौ। –श्रीगुरुदेवजू
रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास। श्रीस्वामीरसिकदेवजू

श्री स्वामी की रीति कहत कछु ना बनें।
नित्य बिहार अधार कोई यह ना जनें।।
कोई भाषै ब्रज रीति कोई कहै रास बिलास है।
हरिहाँ,श्रीहरिदास कह्यौसोई गह्यौ इहीमेरी जीवनिआसहै।।३६८।।
श्री स्वामी की रीति कहो कोई साखि है।
गायो श्री गुरुदेव यही निजु भाखि है।।
दूजो कह्यौ सु व्यास यही जिय जानियै।
हरि हाँ, तीजै गायो नाभा रसिक छाप सौं मानिये।।३६९।।

श्रीस्वामीजी महाराज के सर्वोपरि नित्यबिहार रस की कोई ऐसी अद्भुत झीनी एवं प्रेम-मर्म भेदी गाँस है, जो श्रीस्वामीजू की कृपा बिना न तो कहिबे में ही आइ सकै है, और न समझिबे में ही। याही कारन सों काहू कूँ श्रीव्रज-रसरीति सर्वोपरि दरसै है, काहूँ कू रास-बिलास। हमने श्रीस्वामीजी महाराज के कथनानुसार ही निज रसरीति उपासना, अपने हृदय में दृढ़ अनन्य भाव सों ऐसी धारन करि लीनी है, जो मेरी जीवन अधार ही बनि गई है।

यदि कोऊ ये बात कहै कि श्रीस्वामीजी महाराज की रसरीति को कहा तो प्रमान है, तथा किन-किन ने ता रस की उपासना कीनी है। तापै आपको कथन है, कि प्रथम तो अनन्य मुकुट मनि श्रीगुरुदेवजू ही विसद रूप सों समझाइ-समझाइ कें कहि आये हैं, एवं बिनने स्वयं याही रस कूँ दृढ़ अनन्य भाव ते सेयो है। हमारे और-और समस्त आचार्यन ने हू-बिनके ही कथनानुसार-अनन्यभाव ते याही रस की उपासना कीनी है। दूजे रसिकवर श्रीव्यासजी महाराज ने समस्त रसिकन के बीच में पुकारि के कह्यौ है कि–

"ऐसो रसिक भयौ न ह्वै है भूमंडल आकास"।

तीजे भक्तमालकार श्रीनाभाजी महाराज ने हू समस्त रसिकन में रसिकता की छाप श्रीस्वामीजी महाराज की ही बताई है।

दूलह नित्य बिहार है, और औतार बरात ।
ए विलसैं नित सार सुख, वे बिलसैं ज्यौं जात ।।३७०।।

जैसे विवाह में सार सुख कूँ तो एकमात्र दूलह-दुलहिन ही बिलसैं हैं। और बिनको ही मान-सम्मान गौरव होय है। ऐसे ही यावत् रसोपासनान में निज महल कौ नित्यविहार ही सर्व-सिरोमनि-रस है। और-और अवतारन के रसन कूँ तो ऐसे जानो जैसे विवाह में बरातीन कूँ सुख-सन्मान प्राप्त होय है।

गौर स्याम के प्रान, श्री हरिदासी में बसैं।
अति जाननि मन जानि, काम केलि रस लाडहीं ।।३७१।।

गौर-स्याम के प्रान एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज में ही सदाकाल बसैं हैं, कारन श्रीस्वामीजू अनादिकाल सों निरन्तर कामकेलि रस के ही लाड़ लड़ावैं हैं। याते रसिकनि में जितेक जानिबे योग्य स्वरूप हैं, बिन सबनि में आप मनि स्वरूप ही हैं।

श्रीस्वामी के धर्म की रीति। सुनियो रसिकौ करि परतीति ।।
गौर-स्याम के सदा समीति। काँम केलि लाडैं रस रीति ।।३७२।।

हे रसिकजनो ! आप लोग विस्वास पूर्वक सुनियों। श्रीस्वामीजी महाराज के धर्म की रीति ही यह है जो सदाकाल श्रीजुगल के संग रहि कैं, एकमात्र कामकेलि रसरीति के ही रूख-अनुसार लाड़ लड़ावो।

सकल धर्म कौ सार, श्री हरिदासै धारिये।
निरवधि नित्य बिहार, गौर स्याम कों लाडहीं ।।३७३।।

समस्त धर्मन कौ सार स्वरूप श्रीस्वामीजू महाराज के धर्म कूँ हृदय में धारन करौ। जासों ही श्रीजुगल कूँ निरवधि नित्यबिहार रस-द्वारा लाड़ लड़ावोगे।

धर्मी धारि धर्म कों कहै। निरवधि नित्य बिहारै लहै ।।
धर्मी धर्म एक ह्वै गहै । श्री हरिदासी धर्म धरि रहै ।।३७४।।

जो धर्मीजन श्रीस्वामीजी महाराज के धर्म को हृदय में धारन करि कें धर्म की बात कहैं हैं, वे ही निरवधि नित्यबिहार कूँ प्राप्त करैं हैं। याते हमने धर्मी तथा धर्म को एक ही स्वरूप मानि, श्रीस्वामीजी के धर्म कूँ हृदय में धारन करि लीनो है।

सकल धर्म कौ राज राज ब्रजराज कौ।
रास बिलास कौ राज धर्म सुख साज कौ ।।

बिपुल बिहारिनिदास धर्म यह आस कौ।
हरि हाँ, सब धर्मन कौ राज धर्म हरिदास कौ ।।३७५।।

यावत धर्मन को तथा व्रजराज एवं रासबिलास रसन को राजा स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज को ही धर्म है। याही धर्म की अनन्य आसा श्रीबीठलविपुल-देवजू एवं श्रीगुरुदेवजू कूं सतत लगी रहै है।

जोई चाहै सोई पावै । ललितकिशोरी के गुन गावै ।।
छिन छिन आनंद उरहिं बढावै । कुंजबिहारिनि कंठ लगावै ।।३७६।।

श्रीस्वामीजी महाराज को अनन्य धर्म हृदय में धारन करिबे ते जो चाहोगे, सोई प्राप्त करि, श्रीललितकिसोरीप्यारीजू के गुन गाइ-गाइ कें हृदय में छिन-छिन अद्भुत आनंद कूं बढ़ायो करोगे, और श्रीकुंजबिहारिनजू हू अति रीझि, अपने कंठ सों तुम्हें लगाइ लेवेंगी।

जैसे गुरु कहिये सही, तैसे श्री हरिदास।
जिनके सनमुख होत ही, पावै प्रेम बिलास ।। ३७७।।
सुद्ध सनेही रसिक बर, अँग संग ही करि लेत।
एक पलक बिछुरें नहीं, अपनो ही सुख देत ।। ३७८।।

समस्त अवगुनन कूं भली-भाँति हरन करि, इष्ट के सर्वोपरि सुख में लगाय देबेवारे, जैसे उदार सिरोमनि, साँचे सही गुरुदेव सद्गुरु मिलने चहिये, तैसे एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ही हैं। जिनके साँचे मन ते सन्मुख होत खेम-श्रीजुगल कौ अद्भुत प्रेमबिलास सुख सहज प्राप्त है जाइ है, क्योंकि अति श्रेष्ठ, सुद्ध सनेही श्रीस्वामीजी महाराज, अपने निज अंग-संग करि, अपनोई निज सुख वाकूं दै, पलमात्र हू नाँइ बिछुरैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास, रसिक सिरोमणि लाड़िले।
कुंज महल में बास, अंग संग निरखैं केलि सुख ।।३७९।।

रसिकसिरोमनि, प्रान लाड़िले श्रीस्वामीजी महाराज कुंजमहल में सदाकाल बसते भये अंग-संग श्रीजुगल की निज केलि सुख कूं ही निहारते रहैं हैं।

बहुत भाँति मन सों कही, छाडत नाहीं बानि।
तब ही तौ यह छाडि है, जब गहै बिहारिनि पानि ।।३८०।।

हमने अपने मन सों अनेक प्रकार ते कही, किन्तु यह अपनो सुभाउ नाँइ

छाड़ें हैं, याते यह निश्चय होइ है कि साक्षात सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू ही कृपा करि कें, याको हाथ पकरैंगी, तब ही यह अपने सुभाउ कूँ छाड़ैगो।

मन कों बसि तू कहा करै मन की बाँकी राह।
तनु मन अर्पन गुरुन कौ, तौ हरि पकरै बाँह ॥३८१॥

फिर आप आश्रितन ते कहिबे लगे कि–हे भाई! मन की बड़ी झीनी एवं बाँकी गैल हैं। याकूँ तुम बस नाँइ करि सकौ हौ। तन, मन, प्रान सर्वस्व श्रीगुरुदेव के अर्पन करि देवोगे तौ, तबहीं श्रीहरि तुम्हारो हाथ पकरैंगें।

तब तो भौंदू जगत में, अब रसिकन सिरताज।
कुंजबिहारिनि बाल नें, कीनी यही बिधि काज ॥३८२॥

तुम जगत के कार्यन में हू भोंदू हे, अब अति अद्‌भुत चूरामनि श्रीकुंजबिहारिनीजू ने स्वयं हाथ पकरि, अपनो नित्यबिहार दान दै, या प्रकार ते तुम्हारो काम बनाइ दीन्यौ, जो तुम रसिकन के हू सिरताज माने जावो हो। अर्थात श्रीजुगल कूँ निज केलि सुख सों बिनकी रुख अनुसार लाड़ लड़ावन लगे।

कृपा करौ तुम लाडिली, अँग सँग सुख दरसाय।
तनु मन बिलसौ एक रस, प्रीतम प्राँन समाय ॥३८३॥

हे कोटि-कोटि प्रानन ते हूँ प्रानप्यारीलाड़िलीजू! मोपै निज कृपा करि अपने अंग-संग कौ जो सुख तन-मन सों एक होइ, प्रीतम कूँ प्रानन में समोये भये निरन्तर बिलसौ हौ, ता सुख कूँ मोकूँ दरसाओ।

सुनो रसिक बर राउ, कुंज बिहारी लाडिले।
अब दीजे अपनो भाउ, लीजे बेग बुलाइ कैं ॥३८४॥

हे सर्व श्रेष्ठ एवं समस्त रसिकन के राव-लाड़िले, श्रीकुंजबिहारीजू! अपनी निज केलि कौ भाव मोय देइ कें बेगि बुलाइ लेओ।

भक्ति भाव बिन बानी कहै। कर्कस लागै हिय कौं दहै ॥
बिना सुहाग सिंगारहिं करै। काके पियहि अंक में भरै ॥३८५॥
अपनें पिय बिन काहि रिझाय। रोवत रैन गई विहाय ॥
श्रीहरिदास नाम गुन गाय। कुंजबिहारी लाड लडाय ॥३८६॥

भक्ति भाव सों बिहीन श्रीबानीजी कूँ कहिबेवारे को मुख सों इतेक कर्कस लगै हैं, जासों हृदय में दाह होइबे लगि जाइ है। कहिबेवारे कूँ हूँ सुख ऐसे नाँइ प्राप्त होइ

है, जैसे कोऊ विना सुहाग की स्त्री, शृंगार करि कें निज प्रीतम को अंक में भरि, सुख नाँइ भोग सकै है। अपने प्रीतम के बिना, बाकी सबरी रात रोते-रोते ही बीतै है। याते साँचे सरस-रसीले-भाव सों श्रीस्वामीजी के नाम गुनन कूँ गाइ-गाइ कें सर्वोपरि श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनीजू के लाड़-लड़ाओ।

कहा पढत बादत बहु बाद। बिना बिहारहिं नाहीं स्वाद।।
वृन्दाबिपिन युगल रसरीति। निहचै मन करि यह परतीति।।३८७।।
श्रीहरिदास उपासिक सेव। सब रसिकन कौ हैं यह देव।।
युगलबिहार सुभग वर लेव। श्रीललितकिसोरी दीनों भेव।।३८८।।

बहुत पढ़-पढ़ाइ कें, जो लोग केवल बाद-विवाद में लगि रहे हैं, बिनसों आप कहिबे लगे कि—हे भाई! सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ सेये बिना, या पढ़िबे में कोऊ स्वाद नाँइ है। वृन्दाबिपिन में श्रीजुगल की रसरीति में ही बिस्वास पूर्वक मन लगानो चहिये। श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य उपासक-जनन कूँ, समस्त रसिकन के देव-स्वरूप मानि कें सदाकाल सेवो। साक्षात श्रीललितकिसोरीस्वामिनीजू ने, हमें यह मर्म बतायो है कि इनके सेइबे ते तुम परमसुभग हमारे बिहार कूँ सहज प्राप्त करि लेओगे।

यही समुझ समझाऊँ तोहि। श्रीललितकिसोरी आज्ञा मोहि।।
श्रीहरिदास चरन लौं लाय। देखि बिहारिनि हियो सिराय।।३८९।।
या बिनु समुझि भर्म तू जानि। कुंजबिहारी सुख उनमानि।।
सदा अखंडित एक बिहार। प्रान प्रिया बिहरैं सुख सार।।३९०।।
बिछुरन मिलन कि नाही आस। कुंजबिहारी सुख की रास।।
काम केलि फूली हरिदास। प्रानप्रिया सु मध्य सुबास।।३९१।।

फिर आप आश्रितन ते कहिबे लगे कि—हे भाई! ललितकिसोरी श्रीस्वामिनीजू की जो आज्ञा मोकूँ भई है सोई तुमकूँ मैं समुझाऊँ हूँ। तुम एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के ही श्रीचरनकमलन में सदाकाल अपनी लौ लगाओ, क्योंकि जा लौ-कूँ देखि, श्रीनित्यबिहारिनीजू कौ हृदय भलीभाँति सिराय जाय है। या समझ के अतिरिक्त और समस्त बातन कूँ भ्रम ही मानो। जिनको सदाकाल अखंड बिहार होइ है, तिन श्रीबिहारीजी महाराज के सुख को तुम अपने मन में अनुमान करिकें देखो! कारन हमारी प्रानजीवन-प्यारीजू महासुख के हू सार सुख कूँ सतत बिलसैं हैं।

बिनके बिहार में बिछुरिबो-मिलिबो कबहूँ नाँइ होइ है। कामकेलि रस बिलास सुख में ही हमारे श्रीस्वामीजी महाराज सतत फूले-फूले रहैं हैं। जा सुख के मध्य में सुगंध स्वरूप एकमात्र श्रीस्वामिनीजू ही हैं।

आवना न जाना लैना न दैना। निरखैं केलि निकुंज सु ऐना ॥
कहत प्रिया सों मधुरे बैना। उपजै कोटिक मैन कीं सैंना ॥३८२॥

ललित रसिक मिलि दीनों चैना। माया काल इहाँ कछु भैना ॥
निर्भय सुख बिलसैं दिन रैंना। युग मुखचंद चकोर भये नैंना ॥३८३॥

अब हमारो न तो आवागमन ही होइ है और न काहू सों कछु लेनो-देनो ही रह्यौ है। हम एकमात्र निकुंज-महल में सदाकाल केलि-सुख कूँ ही निहारि-निहारि श्रीप्रियाजू सों ऐसे प्रेमरस-भरे-महामधुरबचन बोलैं हैं, जासों आपके हृदयकमल में कोटिक मैंननि की सैंना सहज उपजन लगै है। अपने गुरुदेव श्रीरसिकसिरोमनिजू के मिलिबे तें हमें ऐसो चैन भयौ है, जहाँ माया-काल कौ नेकहू भय नाँइ रहि, निर्भय होइ, रात-दिन सुख बिलसि-बिलसि हमारे नेत्र चकोर की नाईं श्रीजुगल मुखचंद कूँ सतत निहारते रहें हैं।

श्री स्वामी के पद कमल, हृदय धारि सुभ ठाँव।
गौर-स्याम दोउ लाडिले, तिनकौ लाड लडाव ॥३८४॥

जे हैं श्रीहरिदास के, तिनकी यही सुरीति।
अँग सँग निरखैं केलि सुख, सब जीवनि सों प्रीति ॥३८५॥

अपनों है निज केलि सुख, और न अपनों कोय।
चलै रीति हरिदास की, सोई अपनों होय ॥३८६॥

श्रीस्वामीजी महाराज के पद-कमलन कूँ हृदय-रूपी सुभ ठाँव में प्रेम सों बिराजमान करि, गौर-स्याम दोऊ लाड़िलेन कूँ मनमाने लाड़ लड़ाओ। जो श्रीस्वामीजू के साँचे जन होइ हैं, बिनकी यही सुन्दर रीति है कि श्रीजुगल के अंग-संग केलि सुख कूँ तो सदाकाल निहारते-रहैं हैं, और पसु-पक्षी-मानव आदि सब जीवनि सों प्रीति मानें हैं। याते हे भाई ! अपनो तो एकमात्र निजकेलि सुख, या श्रीस्वामीजी महाराज के रसरीति में चलिबेवारे रसिक अनन्यजन ही हैं, और कोऊ अपनो नाँइ है।

सब हीं सपनों जानि, श्री स्वामी हरिदास बिन।
हर्ष सोक नहिं मान, रूठैं तूठैं जगत के॥३९७॥
सोई अपनों जानि, जाकी हरि सों प्रीति है।
सत्रु मित्र सम मानि, सेवौ नित्य बिहार कौ॥३९८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त सब जगत स्वप्नवत् होइबे के कारन, काहू के रूठिबे एवं प्रसन्न होइबे ते मन में हर्ष-सोक नाँइ माननो चहिए। जगत में जिनकी श्रीहरि सों ही प्रीति है, बे ही जन अपने हैं, अन्यथा तो सत्रु-मित्र सबनि कूं एक समान ही समझि, दृढ़ अनन्य भाव ते एकमात्र नित्यविहार को ही सतत सेवो।

कोऊ काहू कौ नहीं, अपने लै पहिचानि।
विहारि विहारिनदास भजि, तजि लोक-वेद की कानि॥

आये तैं हर्षै नहीं, गये करें नहि सोग।
ललित किसोरी कें सदा, गौर स्याम संजोग॥३९९॥

काहू व्यक्ति एवं बस्तु के प्राप्त होइबे पै, तो प्रसन्न नाँइ होनो चहिये, और चले जाइबे ते सोक नाँइ करनो चहिये। श्रीस्वामीजी के जनन कूं तो सदाकाल गौर-स्याम के संयोग रस में ही मन लगाये रखनो चहिये।

सोई जगत जो जान, जाकों मैं मेरी लगी।
रसिकन की यह बान, मैं मेरी करि लाडिली॥४००॥

जागतिक मानव बिनहीं कूं समझो, जिनकूं मैं-मेरी लगी भई है। रसिकन के तो सहज सुभाउ ही मैं-मेरी श्रीलाड़िलीजू ही होइ हैं।

निरभैं सुख हरिदास कौ, जहाँ न भय कौ लेस।
गौर-स्याम विहरैं जहाँ, तहाँ मन कीनो परवेस॥४०१॥

श्रीस्वामीजी महाराज की रसरीति कौ सुख ऐसो निर्भय होय है, जहाँ भय लेसमात्र हू प्रवेस नाँइ करि सकै है। क्योंकि मन वा देस में पहुँच जाय है, जहाँ श्रीविहारी-विहारिनीजू निरंतर विहार करें हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, सदा सजीवन मूरि।
गौर-स्याम सुख रूप कौ, देत प्रेम भरि पूरि॥४०२॥

ऐसे श्रीस्वामीजी महाराज सदाकाल हमारे जीवन मूर हैं, जो साक्षात् गौर-स्याम कूं हूं भरपूर प्रेम निरन्तर प्रदान करते रहैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास जू, निरभै पद सुख सार।
याही परस जहाँ भै नहीं, निरवधि नित्य बिहार ।।४०३।।

सुखसार श्रीस्वामीजी महाराज निर्भय पद स्वरूप ऐसे हैं, जिनके श्रीचरन-कमलन कूँ सपरस करिबे तें कोऊ भय नाँइ रहि कें, निरवधि नित्यबिहार कूँ भाविक विलसन लगे है।

ब्रह्मलोक सिवलोक लों, सब ही हैं भै भीत।
श्रीस्वामी हरिदास भजि, जहाँ भै नहीं रहत समीत ।।४०४।।
निरभै पद सेवत रहौं, श्री स्वामी हरिदास।
माया काल कछु भै नहीं, जहाँ हमारो बास ।।४०५।।

ब्रह्मलोक,-सिवलोक आदि पर्यन्त समस्त लोक-भगवत माया ते सदा भयभीत ही रहैं हैं। श्रीस्वामीजी महाराज को भजन करो-जासों भय निकट में हू नाँइ आइ सकें हैं। याही ते हम निर्भय-पद श्रीस्वामीजी महाराज कूँ ही सदाकाल सेवें हैं, जासों माया-काल कौ कछु भय रहै ही नाँइ है।

हरि कौ है ताही सों मेल। ना तौ है माटी कौ डेल।।
गौर-स्याम के सुख को झेल। इनही सों बन्यौं निसिदिन खेल ।।४०६।।

जिन लोगन कौ श्रीहरि तें कोऊ मेल नाँइ है, वे तो एकमात्र माटी को डेल सदृस ही हैं। याते श्रीहरि के जनन ते ही हमारो मेल है, वे ही महतजन श्रीजुगल के सुख कूँ झेलें हैं, और बिनते ही रातदिन हमारो खेल बन्यौ रहै है।

झूठे कौ साँचौ करि जानैं। महा अविद्या में ते सानैं।
भारी सिला मूड पर आनैं। जनम जनम जे मरि पछितानैं ।।४०७।।

जो लोग महा अविद्या में सनि कें श्रीहरि ते बहिर्मुख झूठे जगत कूँ साँचो जानें हैं, बिननें अति भारी सिला कूँ अपने मूँड़ पै धरि, अनंत जन्मन ताऊँ मरि-मरि के पछितामनो परै है।

अनकरनी करनी करै, एक पेट के हेत।
सो जीत्यो इन रसिक जन, बसि वृन्दावन खेत ।।४०८।।

जगत के लोग पेट के ताईं, नाँइ करिबे योग्य श्रीहरि ते बिमुख कार्यन कूँ सतत कियो करें हैं। वा पेट कूँ इन रसिक जनन ने रस खेत श्रीवृन्दावन में बसि के सहज में ही जीत लीनों है।

पेट नचाये सब भैया, देस बिदेस लै जाइ।
सो जीत्यौ इन रसिक जन, कुंजबिहारी गाइ ॥४०८॥

पेट ने सबन कूँ ऐसो नचाइ राख्यौ है, जाके ताँई ही लोग देस-बिदेसन में दौरे-दौरे फिरैं हैं। वा पेट कूँ इन रसिकजनन ने श्रीकुंजबिहारी लाल कूँ गाइ-गाइ कें अनायास ही जीत लीनी हैं।

खान-पान की बिपति न मानत संपति स्याम तमाल।

पेटन कों भटकत फिरैं, धरैं भक्ति कौ स्वाँग।
हरि गुरु कों लाजत निलज, बिन संतोष अभाग ॥४१०॥

श्रीभक्ति महारानी को स्वरूप धारन करिकें हू पेट के ताँई जहाँ-तहाँ जो लोग भटकते डोलैं हैं, वे निर्लज्ज-दुर्भगे बिना संतोष कें अपने श्रीहरि तथा गुरु दोऊन कूँ लजावैं हैं।

तन मान्यौ बिषया सुखै, मन सिषिया जग कीन।
रिषिया बिषया में रम्यो, घर घर जाचत दीन ॥४११॥

जिनकी देह ने विषय सुख कूँ ही सुख मानि राख्यौ है, ऐसे लोग सिष्य की नाँई मन इन्द्रिन के परवस होइ, दीन भये घर-घर जाँचना करते डोलैं हैं।

सदा बसैं वृन्दाबिपिन, तजैं न कबहूँ खेत।
लाड लडावैं जुगल वर, लियें प्रिया कौ हेत ॥४१२॥

जो बड़भागी महतजन ऐसे अनन्य भाव तें श्रीवृन्दावन में वास करैं हैं, कि एक छिन के ताईं कबहूँ नाँइ तजैं है, वे ही महत्जन साक्षात् श्रीप्रियाजू सों प्रेम-संबंध मानि, श्रीजुगल कूँ मनमाने लाड़-लड़ावैं हैं।

कुंजबिहारिनि लाडिली, मेरी जीवन प्रान।
ताही के सुख में सुखी, मोहि रसिक की आन ॥४१३॥

मैं अपने श्रीगुरुदेवस्वामीरसिकदेवजू की सौगंध खाइ के कहूँ हूँ कि मेरी जीवन-प्रान एकमात्र श्रीकुंजबिहारिनलाड़िलीजू ही हैं। मैं बिनके ही सुख तें सदाकाल सुखी रहूँ हूँ।

हम जल प्रिया तरंग है, प्रिया जल हमहिं तरंग।
तन मन मिलि एकत्त सुखी, छिन छिन बाढ़त रंग ॥४१४॥

हम अपने तन-मन सों श्रीप्रियाजू ते मिलि कें ऐसे एकत्व है रहैं हैं कि—हम जल

स्वरूप हैं, तो वे हमारी तरंग स्वरूप हैं, वे जल स्वरूप हैं तौ,हम बिनकी तरंग स्वरूप हैं। हमारो-बिनको रंग छिन-छिन बड़तो रहै हैं।

जल तरंग लों सहज समागम निर्मल साँझ सबेरा। –श्रीगुरुदेवजू

चिंता तौ हरिदास की, और न चिंतै आस।
कुंजबिहारिनि लाडिली, सदा हमारे पास ॥४१५॥

हमारे मन में एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज के दरसन एवं लाड़-लड़ाइबे की चिन्ता के अतिरिक्त, और काहू बात की चिंता-आसा कबहूँ नाँइ होइ है। याही ते श्रीकुंजबिहारिन-लाड़िलीजू सदा हमारे पास रहै हैं।

श्रीहरिदासी सों जौ प्रीति। तौ विस्वास परम रस रीति ॥
इन बिन अनत करै परतीति। गौर-स्याम के नाहिं समीति ॥४१६॥
श्रीहरिदासी यह रस रीति। गौर-स्याम के अँग सँग प्रीति ॥
तनु मनु अरुझें रहें समीति। ललित किसोरी दृढ परतीति ॥४१७॥

श्रीस्वामीजी महाराज सों ही जाकी दृढ़ अनन्य प्रीति होइ है, ताही की परम रसरीति के उपासकपने को हम विस्वास करें हैं। क्यौंकि जिनको श्रीस्वामीजी के अतिरिक्त और कहूँ परतीति है, बाकूँ साक्षात श्रीनित्यबिहारी-बिहारिनीजू हू अपनों नाँइ मानें हैं। श्रीस्वामीजू की रस-रीति ही यह है कि गौर-स्याम के अंग-संग रस सों दृढ़-अनन्य प्रीति करिबो। ऐसे महाबड़भागी जन तन-मन सों अंग-संग-रस में सतत अरूझे रहैं हैं, बिनमें ही हमारो दृढ़ विस्वास है।

निश्चै तनु मन प्रेम सों, सुमिरि बिहारिनि बाल।
आजु कौ लाहौ लीजिये, कौनै देख्यौ काल्ह ॥४१८॥
जब निजु हरि अपने भये, तब धौं काकी आस।
सदा रहैं आनंद में, ललितकिसोरी पास ॥४१९॥

मैं तुमसों स्पष्ट कहूँ हूँ कि तुम निश्चय करि तन-मन-प्रान सों सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के सुमिरन को लाभ आज ही ले लेउ, काल्ह कौ दिन कौन ने देख्यौ है। जब श्रीहरि ही निज अपने है जाँयगे,तब और कोऊ आसा ही मन में नाँइ रहेगी। सदाकाल अद्भुत आनंद में भरे भये श्रीललितकिसोरीजू के पास रहोगे।

श्रीहरि गुरु अरु संत, इन्हें एक करि जानिए।
जे इनमें भेद मनंत, ते नाहीं हरि संत हैं ॥४२०॥

श्रीहरि एवं अपने श्रीगुरुदेव, तथा संत, इन तीनों को एक ही स्वरूप समझनो चहिये। क्योंकि ये एकही प्रेम-रस-भाव के स्वरूप होय हैं, याते इनमें भेद मानिबेवारेन कूँ—न तो संत ही अपनो मानैं हैं, न श्रीहरि ही अपनो मानैं हैं।

भजन करौ भोजन करौ, सोवौ पाँव पसारि।
देखो हरि गुरु कौ करचौ, सिर कौ भारि उतारि ॥४२१॥

अपने कर्त्तृत्वपने के भार कूं मूंड़ ते उतार, जो कछु होय, श्रीहरि कौ कियो मानि, बिनको ही भजन करि, प्रसाद लै, अति निश्चिंतता तें पाँव पसारि के सोवो।

ऐसे संतनि कों करि रोष, हरि कबहूँ रीझै नहीं।
उलटि अपनपो कोस, ज्यौं मुनि कों कृत्या लगी ॥४२२॥

ऐसी रहनी ते रहिबेवारे महत पुरुषन को अपराध करिबेवारेन पै श्रीहरि कबहूँ नाँइ रीझैं हैं। वे लोग अपने दोष के कारन स्वयं ही ऐसे बनि जाँइ हैं, जैसे महर्षि दुर्वासाजू ने भक्तराज श्रीअंबरीषजी पै कृत्या चलाइ, वे स्वयं अपने दुख के कारन बनि गये।

कोटि जन्म सेवौ हरी, संतन सों करि रोष।
हरि कबहूँ रीझैं नहीं, दिन दिन बाढ़ैं दोष ॥४२३॥

सेवा करौ सु कोटि लौं, कोटि जनम धरि देह।
संतन के सेये बिना, हरि नहिं करें सनेह ॥४२४॥

जर काटैं फल कों चहैं, सींचैं बृक्ष बनाय।
ऐसै श्रीहरि गुरु बिना, सेयें निर्फल जाय ॥४२५॥

सौति बिरानें पूत कों, गोदी लेय बनाइ।
ऊपर ही कौ लाड है, भीतर नाहीं भाइ ॥४२६॥

भक्तन बिन हरि ना मिलें, हरि बिन भक्त न होय।
भक्त हरी दोउ एक हैं, कहै भागवत सोय ॥४२७॥

हरि कौ हृदौ साधु हैं, साधुन के हरि प्रान।
साधुन के हित में रहैं, हरि हित रसिक सुजान ॥४२८॥

यदि कोऊ कोटि प्रकार ते, श्रीहरि की सेवा कोटि-कोटि जन्म ताऊँ करे, तौहू संतन के सेये बिना श्रीहरि सनेह नाँइ करें हैं। जैसे कोऊ वृक्ष कूं पालन-पोषन

करिकें वाके जड़ कूं तो काटि देवै, और फल की आसा राखै, ऐसे ही गुरु नाँइ करिबे के कारन, श्रीहरि को सेइबो निष्फल जाइ है। जैसे सौत पराये पूत कूँ गोदी में लैकें बनावटी लाड़-लड़ावै है, किन्तु साँचो लाड़ वाको नाँइ होय है, तैसे ही बिना संत-गुरुन के जो श्रीहरि को सेवें हैं, बिनको साँचो प्रेम नाँइ मान्यौ जाइ सकै है, क्योंकि जिनके हृदय में साँचो भाव होइगो, वे जन भावभक्ति-बताइबेवारे गुरुन में श्रीहरि ते हू अधिक भाव पहिले राखेंगे। याते ये निश्चय बात है कि—संत-गुरुन के बिना श्रीहरि, की भक्ति तथा श्रीहरिके बिना भक्त कैसेहू नाँइ है सकें हैं। श्रीमद्भागवतजू हू स्पष्ट कहैं हैं, कि भक्त एवं श्रीहरि दोऊ एक ही स्वरूप हैं। श्रीहरि के हृदय कमल में सदाकाल साधु बसैं हैं और साधुन के श्रीहरि प्रान समान होइ हैं। याते श्रीहरि सों हित करिबेवारे सुजान रसिक सदाकाल साधुन के हित में रहैं हैं।

हम हरि के हैं लाड़िले, हरि ही को करचौ होइ।
सो हरि हमरे हित सदा, रसिक सिरोमनि सोइ ॥४२९॥

जिन श्रीहरि कौ करचौ भयौ सब कछु होइ है, वे श्रीहरि लाड़-लड़ाइ-लड़ाइ के अपनेन कूँ हित कियो करैं हैं। ऐसे जनन कूँ ही रसिक-सिरोमनि कह्यौ जाय है।

हरि गुरु संतनि भाइ सों, सेवौ एकै जानि।
छिन छिन आनंद अति बढै, रीझि गहैं हरि पानि ॥४३०॥

याते हे भाई ! श्रीहरि, गुरु, संतन कूँ एक ही स्वरूप समझि कें सतत भाव सों सेवो। श्रीहरि रीझि कें तुम्हारौ हाथ पकरि लेवैंगे, तब छिन-छिन तुम्हारो आनंद बढ़तो ही जायगो।

कथनी तो पूरी दई, करनी दई न मोहि।
अब बाँह गहे की लाज है, कहा सुनाऊँ तोहि ॥४३१॥

जेते औगुन जगत में, तिते किये भरपूर।
ममत बध्यौ हरिदास कौ, राखत सदा हजूर ॥४३२॥

श्रीनित्यबिहारिनीजू सौं ही आप कहिबे लगे कि—हे प्रानप्यारीजू ! या जगत सों लेकें आपकी निज रसरीति ताऊँ कथनी तौ आपने हमें पूरी दै दीनी है, किन्तु करनी कछु दीनी ही नाँइ ? अपनी सरन में आपने मोकूँ राखि लीन्यौ है, याकी लाज अब आपकूँ ही है। मैं अब आपसों कहा कहूँ ? जितेक औगुन जगत में हैं, वे सब

मैंने भरपूर कीने हैं, तौहू श्रीस्वामीजी महाराज कौ ममत्व मोमें बँधि रह्यौ है, याते सदाकाल आप अपने सन्मुख राखे हैं।

जिते स्वाँस नासा चलें, तितें जपैं हरिदास।
तन मन प्रानिनि यौं मिले, ज्यौं फूलन में बास ॥४३३॥

हे भाई! जितेक नासिका में स्वाँस चलें हैं, श्रीस्वामीजी महाराज के नाम ते बिहीन एक हू स्वाँस मति जान देउ। श्रीहरिदास नाम कूँ अपने तन,-मन,-प्रान, रोम-रोम में ऐसे रमाइ लेउ, जैसे फूल के समस्त अंग में सुगंध रमी रहै है।

श्रीहरिदास नाम रसना रसे, चष दरसैं नित्य बिहार।
तनु मन कें तरषैं नहीं, परसें गौर-स्याम सुख सार ॥४३४॥

हमारी रसना श्रीस्वामीजी महाराज के नाम रस सों सदा रसाइत बनी रहे हैं। नेत्र सदाकाल नित्यबिहार को दरसन करते रहैं हैं। याते हमारो तन तथा मन और बात कें नेकहू नाँइ तरसि कें, सुखसार श्रीगौर-स्याम कूँ सतत सपरस करे रहें हैं।

सूर धीर हरिदास के, तजैं न हरि को खेत।
अति दारुन माया जीत कैं, चले नगारा देत ॥४३५॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य आश्रित धीर-सूरबीर श्रीहरि के रसखेत श्रीवृन्दावन कूँ कबहूँ नाँइ तजि, अति दारुन माया कूँ जीति, डंका बजाते भये निकुंज महल में चले जाँइ हैं।

माया नटिनी जगत में, नृत्तत नाना रंग।
जगत तमासे रचि रह्यौ, हरिजन हरि के संग ॥४३६॥

श्रीहरि की नटिनी माया नाना प्रकार के रंगन ते जगत में नृत्य करि रही है। जागतिक लोग वाही के तमासे में तन-मन ते रचि रहे हैं। श्रीहरि के जन माया के माऊँ दृष्टि नाँइ देइ कें, अपने इष्ट के संग लगे रहैं हैं।

श्रीस्वामी हरिदास के, ते प्रगट जगत जस जानि।
सेवैं नित्य बिहार कौं, तजि लोक वेद की कानि ॥४३७॥

श्रीस्वामीजी महाराज के अनन्य दासन को यह जस जगत में विख्यात है, कि वे लोक-वेद की समस्त कानि कूँ तज, सदाकाल एकमात्र सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ ही दृढ़ अनन्य भाव तें सेवैं हैं।

लोक वेद ताको लग्यौ, जाहि देह अभिमान।
श्री स्वामी हरिदास कैं, ते जाति पाति सों हानि ॥४३८॥

जिनको मन देह अभिमान में लगि रह्यौ है, वे ही लोग लोक-बेद में फँसे रहैं हैं। श्रीस्वामीजू के अनन्य जन तो जाति-पाँति सों कछु सम्बन्ध ही नाँइ राखें हैं।

एक भक्ति के बल बिना, झूठौ जग अभिमान।
बासर के परकास में, तारा कहा अयान ॥४३९॥

एक श्रीहरि की भक्ति के बल बिना और समस्त अभिमान जगत में ऐसे झूठे हैं,जैसे सूर्य के प्रकास में तारागन।

आदि अंत वृन्दाविपिन, निरदोषिक करि बास।
अद्भुत सुखद बिहार कों, देत तिन्हैं हरिदास ॥४४०॥

सृष्टि की रचना ते पूर्व और अन्त के पश्चात् सतत एकरस भूतल पै विद्यमान रहिबेवारे एकमात्र श्रीवृन्दावन धाम ही हैं। बिनमें समस्त प्रकार तें निरदोष रहि अखंड बास करिबेवारे जनन पै, अतिरीझि श्रीस्वामीजी महाराज अद्भुत सुखदाई, सर्वोपरि नित्यबिहार ही दै देवैं हैं।

श्री बृन्दाबिपुन के बास को, यही रीति सो जानि।
निरदोषिक निष्काम ह्वै, सेवौ रस की खानि ॥४४१॥

रसखान श्रीवृन्दावन में बसिवे की यहीं रीति है कि समस्त रीतिभाँति सों निरदोषिक एवं निष्काम ह्वै कें अनन्य भाव ते सतत सेवो।

परम कृपाल दयाल हैं, श्रीवृन्दाविपुन सुभाव।
श्रीहरिदास नाम हृदै धरो, सेवौ युग सुभ ठाव ॥४४२॥

श्रीवृन्दावनजू कौ स्वभाव ही परम दयालु-कृपालु है। यामें बसिकें श्रीहरिदास नाम को हृदय में धारन करि जुगलबिहाररूपी सुभ ठाँव को सदाकाल सेवो।

श्रीवृन्दाबिपुन बिहार निजु, सो श्रीस्वामी कौ रूप।
गौर-स्याम हृदै दोऊ, बिहरैं केलि अनूप ॥४४३॥

श्रीवृन्दावन को निजबिहार ही श्रीस्वामीजी महाराज कौ स्वरूप है। क्योंकि आपके श्रीहृदय-कमल में जुगल सदाकाल अनूप केलि करते रहैं हैं।

वृन्दाबिपुन सुभाव, सुभग कल्पतरु जानियें।
जाकौं जैसौ भाव, ताकों तिहि विधि पोषई ॥४४४॥

परिपूरन सुख धाम, घटि बढि जहाँ भासै नहीं।
तहाँ गौर स्याम बिश्राम, बिहरत दोऊ एक रस ।।४४५।।

जाकौ जैसौ भाव है, ताकौं तैसौ पोष।
जैसें भोजन भूख में, पाय होत संतोष ।।४४६।।

श्रीवृन्दावनजू की सुभाउ परम-सुभग-कलपतरु की नाँई है। जाको जैसो भाव होइ है, ताको तैसो ही रीतिभाँति सों पोषन करैं हैं। जहाँ काहू प्रकार की घटि-बढ़ि भाषै ही नाँइ है। ऐसे परिपूर्न सुखधाम में श्रीजुगल एकरस बिहार करते भये बिश्राम करैं हैं।

लाख बार हरि हरि कहौ, एक बार हरिदास।
अति प्रसन्न श्री लाडिली, सदा विपिन कौ बास ।।४४७।।

श्रीहरि कौ नाम लाखबार लैबे ते हू श्रीलाड़िलीजू ऐसी प्रसन्न नाँइ होंइ हैं, जैसी एकबार श्रीहरिदास नाम लैबे ते होंइ हैं, और रीझिकें वाकूँ श्रीवृन्दावन कौ बास सहज में दे देवैं हैं। क्योंकि श्रीस्वामीजी महाराज के प्रान एकमात्र आपके निज सुखमय नित्यबिहार रस सों ही, जल-जन्तु की नाँई जीवै है, याते श्रीस्वामिनीजू कूँ श्रीस्वामीजी कौ नाम अपने कोटि-कोटि प्रानन ते हू प्यारौ लगै है।

बृन्दाबिपुन बिहार कौ, प्रगट भयो अनुराग।
गौर स्याम के लाड कौ, जिनके सदा सुहाग ।।४४८।।

जिन महतपुरुषन कें श्रीवृन्दावन-बिहार कौ अनुराग प्रगट है जाइ है, वे जन श्रीगौरस्याम के लाड़-सुहाग सों सदा सुसोभित रहैं हैं।

ऐसे श्री हरिदास कौं, मन वच क्रम करि सेव।
ए गौर स्याम के लाडिले, गायौ श्री गुरुदेव ।।४४९।।

जिन श्रीस्वामीजी महाराज के रसमय नामकूँ सुनत खेम, सर्वोपरि श्रीनित्य-बिहारिनीजू इतेक अगाधरूप सों रीझैं हैं कि वाकूँ अपनो मानि, निजमहल श्रीवृन्दावन को अखंड बास दै देवैं हैं, तथा श्रीस्वामीजी के हृदय-कमल में ही सतत आप अनन्य प्रेम सों खेलैं हैं। ऐसे अद्भुत सुहाग सों सुसोभित श्रीस्वामीजी महाराज कूँ तुम तन, मन, बचनन द्वारा सतत सेवो। श्रीगुरदेवजू ने हू स्पष्ट कह्यौ है कि श्रीस्वामीजी महाराज गौरस्याम के अति लाडिले हैं।

श्रीस्वामी हरिदास बिनु, जिनु चह्यौ न हरि कौ रूप।
बिपुल बिहारिनिदास जू, गुरु निष्ठा के भूप ॥४५०॥

रससागर श्रीस्वामीबीठलबिपुलदेवजू एवं श्रीगुरुदेवजू गुरुनिष्ठा के सर्व-सिरोमनि सिरताज हैं। जिनने श्रीस्वामीजू के बिना स्वयं श्रीहरि के माऊँ हूँ आँख उठाइ के नाँइ देख्यौ।

हौं तो और स्वरूप पिछानत नाँइ, हरिदास बिना हरि को है कहाँ कौ। —श्रीगुरुदेवजू

ध्रुव पद जाकों सब कहैं, सो ध्रुव पद श्रीगुरुदेव।
श्री स्वामी हरिदास बिनु, करयौ न दूजौ सेव ॥४५१॥
निश्चै ध्रुव पद जानि, श्रीस्वामी हरिदास जू।
और न ध्रुव पद मानि, वृन्दाविपिन बिहार बिनु ॥४५२॥

जाके अटल - अचल पद कूँ सबलोग ध्रुवपद कहैं हैं, वो साँचो ध्रुवपद श्रीगुरुदेवजू ही हैं। जिनने श्रीस्वामीजी महाराज के अतिरिक्त और काहू कूँ स्वप्न में हूँ नाँइ जान्यौ। कें तुम निश्चयरूप ते श्रीस्वामीजू को ही ध्रुवपद जानो। क्योंकि श्रीस्वामीजी महाराज कौ श्रीवृन्दाविपिन नित्यबिहार सदृस और कोऊ समस्त रीति-भाँति सों अटल-अचल पद नाँइ है।

बृन्दाबिपिन बिहार की रीति। श्रीस्वामी की गहि परतीति ॥
रसिक सिरोमनि लहि रसरीति। श्रीललितकिसोरी रहै समीति ॥४५३॥

श्रीवृन्दाविपिन बिहार की रीति ही जिनके हृदय में अनन्य भाव सों सतत बिराजें हैं, बिन जनन कौ ही श्रीस्वामीजी महाराज ने साँचो विस्वास होए है। याते हम अपने गुरुदेव श्रीरसिक सिरोमनिजू की रस-रीति लहिकें ही सतत श्रीस्वामिनीजू के समीप रहैं हैं।

श्रीहरिदास रसिक सिरमौर। इनकी सम दूजौ नहिं और ॥
आरष पौरष देखि विचारि। जासों सबही मानी हारि ॥४५४॥
जाकौ वेद नेति कहि गावै। ताको स्वामी दिन दुलरावै ॥
जाकौ महिमा अपरंपारा। ताको हमरें नित्य बिहारा ॥४५५॥
जाके गुन नाम नहिं अंत। सो कुंजबिहारी स्यामा कंत ॥
जाकौ शेष सहस मुख बरनें। ताको हरिदासी सुख करनें ॥४५६॥

जाकौ बरन एक अनेक बतावैं। ताकौ दोइ बरन करि ध्यावैं ॥
जहाँ मन बुधि बानी नहीं प्रवेस। तहाँ गौर-स्याम धरैं द्वै वेस ॥४५७॥
जाकौ कहत पंग न पंगा। सो खेलैं स्यामा के संगा ॥
जाके धाम न सूर इंदु अग्नि प्रकासा। ताकें गौर स्याम रूप उजियासा॥४५८
जाकौ जन्म अजन्मा गावैं। ताकौ नित्य एक रस ध्यावैं ॥
जाकौ इदं तत्व नहिं कहई। ताकौ कुंज कुटी हम लहई ॥४५९॥
जाहि अचिष्टित कहि भक्तन हित चेष्टा।ताहि चिष्टित देखें काम प्रेमरस नेष्टा
माया तीन गुनन सों रहित। बिहरें श्रीहरिदासी सहित ॥४६०॥
श्रीवृन्दावन निर्भय सुख धाम। गौर स्याम रहैं अभिराम ॥
निर्भय ह्वै या रस कौ सेव। निर्गुन सर्गुन कौ है देव ॥४६१॥
यह बिपुलबिहारिनिदास की आस। सोई ललितकिसोरी दृढ़ बिस्वास ॥
मधुर बिहार कह्यौ सुख सार। जो रसिक सिरोमनि कौ उरहार॥४६२

श्रीस्वामीजी महाराज ऐसे समस्त रसिकन के सिरमौर हैं कि इनके समतूल दूजो कोऊ रसिक है ही नाँइ सकै है। हमने समस्त आरष-पौरषनकूँ बिचारि-बिचारि कें देखि लीन्यौ है कि वे सब आपके स्वरूप ताऊँ पहुँच ही नाँइ सके। क्योंकि जा सर्वोपरि तत्व कूँ बेद नेति-नेति कहैं हैं, ताकूँ श्रीस्वामीजू सतत दुलरावैं हैं। जाकी महिमा अपरम्पार बतायो जाइ है, ताको हमारे यहाँ निरंतर नित्यबिहार होइ है। जाके नाम - गुनन को कोऊ अंत नाँइ है, वो हमारी स्वामिनी श्रीस्यामाजू को कुंजविहारी कंत हैं। जाकूँ श्रीसेषजी महाराज हजार मुखन ते बर्नन करते भये हू पार नाँइ पावैं हैं, तिनकूँ हमारे श्रीस्वामीजू महाराज अनादिकाल ते सुख देवैं हैं। जाको एक बरन होतेभये हू अनेक बरन बतावैं हैं,तिन गौर-स्याम द्वै बरनकूँ हम सतत लड़ावैं हैं। जहाँ काहू को मन, बुद्धि, बानी कौ प्रवेस् नाँइ है, तहाँ गौर-स्याम द्वै बेष सों सतत सुसोभित रहैं हैं। जाकूँ ग्यानी लोग हाथ-पाँव कोऊ अङ्ग नाँइ बतावैं हैं, वे हमारी स्वामिनी के संग निरंतर खेलैं हैं। जाके धाम में चन्द्र, सूर्य, अग्नि काहू को प्रकास नाँइ पहुँच सकै है, तहाँ श्रीगौरस्यामरूप को उजियारो छायौ रहै है। जाको जन्म होते भये हू अजन्मा गावैं हैं, ताको हम नित्य एकरस ध्यावैं हैं। जाको निश्चित-रूप ते इदं तत्व करिकें कोऊ नाँइ कहि सकै है, ताकूँ हमने कुंज कुटी में प्राप्त करि लीने हैं। जाके लिये सबलोग ऐसे कहैं हैं कि वो अपने लिये कोऊ चेष्टा नाँइ करैं हैं—

जितेक चेष्टा करैं, वे सब भक्तन के ताईं ही करें हैं। तिनको हम निष्ठापूर्वक काम-प्रेम की चेष्टा ते भरे निरंतर देखें हैं। मायिक तीनों गुनन ते भलीभाँति रहित होइ अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेम-स्वरूप सों श्रीस्वामीजू के संग दोऊ सर्वोपरि सुखधाम श्रीवृन्दावन में निरंतर बिहार करें हैं। याते तुम सबसों सम्यक प्रकार भलीभाँति निर्भय होइ, श्रीस्वामीजू महाराज को सर्वोपरि नित्यबिहार-रस कूँ ही दृढ़ अनन्य भाव ते सेवो। क्योंकि यह रस निर्गुन - सर्गुन आदि सबन कौ इष्टदेव स्वरूप है। हमारे स्वामी श्रीबीटलबिपुयदेवजू तथा श्रीगुरुदेवजू कूँ सदाकाल याही रस की अनन्य आसा लगी रहै है, और हमारो हू याही रस में दृढ़ बिस्वास है। श्रीस्वामी रसिकदेवजू के हृदय कौ हार, सब सुखनि कौ सार, महामधुररस-बिहार हमने तुमसों कह्यौ है।

गुह्य रीति हरिदास की, बिरला कोई बूझ।
पूछि बिहारिनिदासि कों, जिन समझायौ मूझ ॥४६४॥

गुह्य ते अति गुह्य श्रीस्बामीजी की रसरीति ऐसी है जाको कोऊ बिरलो ही जान सकै है। यदि तुम समझिबो चाहो तो जिन श्रीगुरुदेवजू की बानी ने मोकूँ समुझायौ है, ताही सों समझो। अर्थात् प्रथम समागम एकान्त रस-बिलास निजमहल की रीतिकौ अतिगुप्त होइबो स्वाभाविक ही होय है। जाकूँ एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने भूतल पै प्रगट होइकें निज अनन्य आश्रित जनन कूँ दान दीनौ है ताकूँ भलीभाँति बिस्तारपूर्वक श्रीगुरुदेवजू ने ही भिन्न-भिन्न रूप सों बर्नन कीनौ है।

रसिक रीति हरिदास की, रसिकन कौ आधार।
नित्य बिहारीदास बिन, को कहि सकै बिहार ॥४६५॥

श्रीस्वामीजी महाराज के रसिकता की रीति समस्त रसिकन के प्रानाधार स्वरूप है, जाकूँ एकमात्र नित्यबिहार के अनन्य सेवी श्रीबिहारीदासन के अतिरिक्त और कोऊ नाँइ कहि सकै है।

सब ही कहत बिहार कों, कहो बिहार धौं कौन।
रतिपति भोगी युगल वर, हम सेवत हैं तौन ॥४६६॥

श्रीभगवान की छिन-छिन की समस्त लीलायें नित्य होइ हैं। या न्याय सों सबलोग अपने-अपने इष्ट के लीला-रसन कूँ नित्यबिहार कहिकें ही बर्नन करें हैं। किन्तु वास्तविक नित्यबिहार कौन सो है, यह बड़े समझिबे की बात है। जो सर्व-सिरोमनि स्वरूप श्रीजुगल अनमिष अँखियान ते निजमहल में अनादिकाल सों नित्य-

किसोर-बैस द्वारा एकरस काम-प्रेम रस बिलास कूँ ही बिलसैं-बिलसावैं हैं, तिनको ही बिहार तैल-धारावत एकरस होइबे के कारन नित्यबिहार मान्यौ जाइ है। बिनकूँ ही हम दृढ़ अनन्य भाव ते सदाकाल सेवैं हैं।

कोऊ ब्रज नायक कहैं, कोऊ रास बिलास।
समर केलि हरिदास की, सुमिर बिहारीदास ॥४६७॥
नाना रस सब ही कहैं, इक रस कहै न कोइ।
मनमथ सुखद बिहार कौं, कहैं दास हरि सोइ ॥४६८॥
जुगल प्रेम के प्रेम में, ते प्रेमी तू जानि।
अपनें सुख प्रेमी जिते तिते, स्वसुख प्रेमी मानि ॥४६९॥

जगत में बहुत से रसिक तो श्रीब्रज-रस लीलान कूँ ही गावैं हैं, कोऊ महा-रास-बिलास कूँ, किन्तु श्रीस्वामीजी महाराज तो केवल काम-केलि प्रेम-रस कूँ ही बर्नन करैं हैं। जाके ताईं तो तुम एकमात्र श्रीगुरुदेवजू के ही श्रीचरनकमलन कौ दृढ़ अनन्य आश्रय लेओ। और सबलोग एकरस कामकेलि नाँइ कहिकें, अनेक रस-मिश्रित ही रस गावैं हैं। महामन्मथ सुखद बिहार की दृढ़ अनन्य उपासना तौ एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने ही प्रगट कीनी है। याते जो सर्वोपरि रसिक श्रीजुगल के हार्दिक प्रेम-सुख ते ही प्रेम करैं हैं, तिनकूँ ही तुम बिसुद्ध प्रेमी जानो। अपनी इच्छा-नुसा[illegible]ड़-लड़ाइबेवारेन कूँ तो स्वसुख प्रेमी ही माननो चहिये।

श्री स्वामी हरिदास, भजौ रसिक चित लाइ कैं।
काम केलि रस रास, गौर स्याम कौ हित लिए ॥४७०॥
जिन्हैं न दूजौ भाव, एक सेज के सुख बिना।
सब रसिकन कौ राव, गौर स्याम के ततसुखी ॥४७१॥
सोधे सबै पुरान, ऐसौ रसिक न दूसरौ।
दसधा प्रेम समान, नवधा कों कहा साखि है ॥४७२॥
श्रीहरिदास नाम की छाप, जाकी रसना जगमगै।
ताकौ पूरौ जाप, दरसै नित्य बिहार कों ॥४७३॥

फिर आप रसिकन ते कहिबे लगे कि हे भाई! चित्त लगाइकें श्रीस्वामीजी कौ भजन करौ। वे ही गौर-स्याम कौ हित सतत लिये भये रसरास कामकेलि कूँ ही

निरंतर बिलसावें हैं। जिनके एक सेज-सुख के अतिरिक्त, दूजो कोऊ भाव नाँइ है। गौर-स्याम के अनन्य तत्सुखी होइबे के कारन, आप समस्त रसिकन के सिरमौर माने जाँय हैं। हमने समस्त पुरानन कूँ सोधि कें देखि लीन्यौ है कि–ऐसो रसिक आजताऊँ कोऊ दूजो नाँइ भयो है। क्योंकि जिनके प्रेम-रसरीति के आगे "दसधा" प्रेम हू अति साधारन दरसै है, फिर तहाँ नवधा की तो बात ही कहा है। याते जिनकी रसना पै श्रीस्वामीजी महाराज के नाम की ही छाप जगमगावै है, बिनको ही जाप नित्यबिहार प्राप्ति करिबे के कारन पूरो जाप मान्यौ जाइ है।

रसिक छाप हरिदास की, नाभा मुख परमान।
इन बिन रसिक न दूसरौ, सोधे बेद पुरान ॥४७४॥

श्रीनाभाजी महाराज ने रसिकन के बीच में रसिकता की छाप श्रीस्वामीजू की ही बर्नन कीनी है। हमने हू बेद-पुरानन कूँ सोधि के देख्यौ, ऐसो दूजो रसिक कोऊ नाँइ है।

ब्यास रसिक रसिकन कहै, एक रसिक हरिदास।
दूजो रसिक न देखिये, भू मंडल आकास ॥४७५॥

रस के मर्मज्ञ श्रीव्यासजी महाराज ने समस्त रसिकन ते कह्यौ कि सर्वोपरि साँचे अनन्य रसिक एक श्रीस्वामीजी ही जगत में प्रगट भये हैं। इनके समतूल दूजो रसिक भू-मंडल की तो कहा चलाई? आकाश में हू देखिबे में नाँइ आवै है।

हरिदास नाम अंकित भयो, सोई रसिक परमान।
आरष पौरष सब लखे, दरसै सबै समान ॥४७६॥
श्रीहरिदास नाम की छाप बिन, रसिक न कहिये कोइ।
ज्यौं उजक मुहर फुरमान बिन, सूबा अमल न होइ ॥४७७॥

जिनकी रसना पै दृढ़ अनन्य भाव ते श्रीहरिदास नाम ही अंकित है रह्यौ है, वे ही विसुद्ध अनन्य रसिक माने जाँइ हैं–यावत आरष पौरषन में तो सब समान ही देखिबे में आवें हैं। श्रीहरिदास अनन्य संबंध नाम-छाप के बिना या प्रकार ते कोऊ रसिक नाँइ कह्यौ जाइ है, जैसे बादसाही मोहर के बिना फरमायो भयो हुक्म ते हू सूबा को दखल नाँइ मिल सकै है। अर्थात श्रीस्वामीजी के अनन्य प्रेम संबंध के बिना सर्वोपरि नित्यबिहार के अनन्य बिलासी श्रीबिहारी-बिहारिनीजू की खास-खवासी काहू को प्राप्त नाँइ ह्वै सकै है।

देखि विचारि लिख्यौ जु मैं, याकौ यहै प्रमान ।
जैसे उजक मुहर बिन, गैर सही फुरमान ॥ —श्रीगुरुदेवजू

गौर-स्याम के सुख सुखी, काम केलि रस चाव ।
लाड लडावैं सेज सुख, जुगल प्रान इक भाव ॥४७८॥

श्रीस्वामीजी महाराज ही जगत में एक ऐसे सर्वोपरि रसिक भये हैं, कि जिन्हें सेज-सुख काम-केलि रसमय लाड़-लड़ाइबे कूँ ही सदाकाल चाव चढ़्यौ रहै है, और अपने निजप्रान श्रीजुगल के सुख ते सुखी रहिबे को सतत एकरस-भाव बन्यौ रहै है।

काम केलि रस सेज सुख, जिनकें लाड बिहार ।
गौर स्याम दोउ लाडिले, करत बिहार अहार ॥४७९॥

जिन श्रीस्वामीजी महाराज के कामकेलि-रसमय सेज सुख के लाड़-बिहार कूँ ही गौर-स्याम दोऊ लाड़िले जीवन अहार स्वरूप सों निकुंजमहल में सदाकाल बिलसैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास बिन, कहै न दूजौ और ।
अगम निगम ते दूर हो, ताहि कह्यौ ढिग मोर ॥४८०॥

श्रीवृन्दावन नवनिकुंज-मंदिर कौ एक रस नित्यबिहार, आगम-निगम ते हू अतिदूर, श्रीस्वामी जी महाराज के अतिरिक्त जाकूं और कोऊ नाँइ कहि सक्यौ, वाँ अद्भुत महारस कूं कृपाकरि, श्रीस्वामी रसिकदेव जू ने मोते कह्यौ है।

निगम कहत जिहि अगम करि, सुगम कहत हम जाहि ।
श्रीहरिदासो एक रस, बिपुन में सेवत ताहि ॥४८१॥

जाकूँ निगम अति अगम कहैं हैं, ताकूँ हम सुगम बतावैं हैं। क्योंकि हमारी प्रान सर्वस्व श्रीहरिदासीजू वृन्दावन में सतत एक रस बिनकूँ सेवैं हैं।

कुंजबिहारी लाडिले, बिहरत इक रस नित्त ।
रहत अजन्मा ललितवर, सत-चित्त-आनंद वित्त ॥४८२॥

लाडिले ललितवर श्रीकुंजबिहारीलाल अजन्मा स्वरूप सों नव निकुंज मंदिर में अति विशुद्ध प्रेम-रस कूँ ही बिलसैं-बिलसावैं हैं। सत्-चित्-आनन्द स्वरूप श्रीहरि विनकी ही संपत्ति हैं।

अजर अमर बृन्दाबिपिन, विहरत युगल बिहार।
ललितप्रिये हरिदास कें, तन मन प्रान अधार ।।४८३।।

अजर अमर श्रीवृन्दावन में गौर स्याम दोऊ श्रीजुगल सतत बिहार करें हैं। वे ही श्रीजुगल ललितप्रिये श्रीस्वामीजू के तन-मन-प्रान-आधार-स्वरूप हैं।

सब के साक्षी सबके प्रकासी, श्रीबृन्दावन सु नित्त।
गौर-स्याम बिहरैं सदा, जहाँ एक प्रान द्वै मित्त ।।४८४।।

जहाँ दोऊ स्नेही एक-प्रान-दो-देह स्वरूप सों श्रीजुगल सदाकाल बिहार करें हैं, वे श्रीवृन्दावन सबके साक्षी एवं सबके प्रकासक हैं।

निरगुन सरगुन बारि है, खेत विपिनि निज धाम ।।
गौर-स्याम दोउ फल जहाँ, महा रूप अभिराम ।।४८५।।

निर्गुन-सगुन आदि सब अवतार जा निज रसखेत वृन्दावन की बाड़ स्वरूप हैं, ता श्रीवृन्दावन में परम सुन्दर, महारुप अभिराम गौर-स्याम दोऊ फल स्वरूप सतत सुसोभित रहें हैं।

कहिबो सुनिबो तब कह्यौ, ह्वै करि परम कृपाल।
जिन हिय में धरि भाव सों, सोई भयो निहाल ।।४८६।।

यह जो कछु कह्यौ-सुन्यौ गयौ है, वह सब एकमात्र कृपा के वसीभूत है के हो कह्यौ गयौ है। जिन जनन ने या सिद्धान्त कूँ साँचे भाव ते अपने हृदय में धारन करि लीनौं, वेई सब निहाल है गये।

कहनी सो अनकहनी जानि। श्रीहरिदास कह्यौ हिये आनि ।।
प्रेम मई रस बोलै बैन। रसिकन सुनत श्रवन चित चैन ।।४८७।।
निरनों कीन्हों नित्य विहार। जाकौ वेद लह्यौ नहिं पार ।।
सोई वृन्दाबिपिन बिहारी। कुंजबिहारिनि जाकी प्यारी ।।४८८।।
ता बिन नेकु नाँहि रहि सकै। अद्भुत रूप देख नहिं थकै ।।
इच्छा वपु लीला सब करई। इच्छावान आप थिर रहई ।।४८९।।

फिर आप आश्रितन तें कहिबे लगे कि—हे भाई ! अति गुप्त बातन कूँ हमने तुमसों कह्यौ है, यह बात साक्षात श्रीस्वामीजी महाराज ने कृपा करि प्रेम-रस भरे वचनन द्वारा, हमारे हृदय में आय, ऐसे बोले कि—जिनकूँ सुनतखेम, रसिकन के चित्त बड़े

सुख चैन सों फूलि उठै। जा तत्व कौ बेद पार नाँइ पाइ सक्यौ, ता-नित्यबिहार को निर्नय करि आपने कह्यौ कि वेही श्रीवृन्दाबिपिन बिहारी हैं, जिनकी साक्षात श्रीनित्य-विहारिनीजू ऐसी प्यारी हैं, जोकि बिनके बिना आप छिन हू नाँइ रहि सकैं हैं, और बिनके अद्भुत रूप माधुरी कूँ देखि-देखि कैं कबहूँ नाँइ अघाइ, जके-थके से बने रहैं हैं। बिनही श्रीबिहारीजी महाराज की इच्छा सों और-और समस्त अवतार अनेक प्रकार की लीला सतत कियौ करैं हैं। इच्छावान आप स्वयं सदाकाल निकुंज महल में ही सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू के संग प्रेम-रस-खेल-खेलते रहैं हैं।

निर्गुन सर्गुन इच्छा जान। इच्छावान परें उन्मान ॥
चंद सूर कौ नहीं आभास। इच्छावान करै जहाँ बास ॥४९०॥

निर्गुन-सगुन आदि समस्त श्रीभगवत स्वरूपन कूँ श्रीबिहारीजी महाराज की इच्छा को ही स्वरूप समझो। इन सबन तें परे जहाँ चन्द्र-सूर्य को हू प्रकास नाँइ जाइ है, तहाँ इच्छावान श्रीबिहारीजी महाराज सतत सुसोभित रहैं हैं।

श्री स्वामी हरिदास कह्यो अति गूढ है।
ताहि न समझत भ्रमत वृथा अति मूढ है॥
कहा पढावत वेद भेद नहिं सूझई।
हरि हाँ जे सेवैं हरिदास तिन्हैं नहिं बूझई ॥४९१॥

श्रीस्वामीजी महाराज ने जगत में प्रगट होइ के जो अतिगूढ़ तत्व बतायो है, मूढ़ मतिवारे ताकूँ नाँइ समझि, वृथा ही भ्रमते रहैं हैं-जो लोग बेद कूँ पढ़ै-पढ़ावैं हैं, विनकूँ वा तत्व को भेद प्राप्त नाँइ है सके है। याते श्रीस्वामीजू महाराज कूँ अनन्य भाव ते सेइबेवारे जनन पै ही जाइ मर्म कूँ पूछनो चहिये।

आरष पौरष देखि रसिक कोई एक रे।
श्री स्वामी हरिदास गही जिन टेक रे॥
तेई रसिक तू जानि और सब बात है।
हरि हाँ नित्य बिहार सुसार लह्यौ जिन घात है ॥४९२॥

तुम आरष-पौरषन में रचि रहे हो, मैं तुमसों कहूँ हूँ कि रसिक कोऊ एक ही है, जिनने श्रीस्वामीजी महाराज के सरन की अनन्य-टेक अपने मन में धरि राखी है, बिनकूँ ही तुम रसिक समझो। और सब तो कहिवे की बात है, क्योंकि सब सारन को सर्वोपरि सार नित्यबिहार की घात कूँ बिनने ही लीनों है।

वेद कह्यौ जिहि नेति ताहि कहि देत हैं।
कह्यौ वेद यह आहि ताहि नहिं लेत हैं॥
निर्गुन सर्गुन वेद कह्यौ बिस्तारि रे।
हरि हाँ इन दोहुँन तें परे लह्यौ निरधारि रे॥४९३॥

जा तत्व कूँ बेद नेति-नेति कहै है, वाकूँ तो हम स्पष्ट रूप सों बर्नन करें हैं, और जाको बेद निरुपन करै है, ताको हम नाँइ लेवें हैं। बेद निर्गुन-सगुन अवतारन के बिस्तार कूँ हीं गावें हैं। हम इन दोउन ते परे तत्व को निर्धार करि गहि लीनो है।

वेद न कह्यौ सो हम किंयो, लोगन कौ मत छाड़ि।
विहारिदास हरिदास जस, कहत सभा में डाँटि॥
विहारिदास विहार में, वेद न पावैं जानि।
सखी जिवावैं प्रेम सों, महामधुर रस, रस छानि॥

यही वेद कौ भेद कह्यौ सुख सार है।
गहो प्रीति परतीति कियो निरधार है॥
बृन्दाबिपुन जुगल रस रीति सु नित्य बिहार रे।
हरि हाँ काम प्रेम रस धाम कियें श्रृंगार रे॥४९४॥

समस्त वेदन कौ मर्म एवं सब सुखन कौ सार, भलीभाँति निरधार करि, हमने तुमसों कह्यौ है। याते सम्यक् प्रकार विस्वास करि, प्रीतिपूर्वक अपने मन में ग्रहन करि लेउ। यह श्रीजुगल कौ निजरस-रीति-मय-निपट नित्यविहार, जामें एकमात्र काम-प्रेम-रस कौ ही श्रृंगार है रह्यौ है, वो ही रस श्रीवृन्दावनजू कौ निज स्वरूप है।

भजो रसिक यह जानि तजौ बहुवाद कों।
कस बाकस रस मींडि लह्यौ किन स्वाद कौं॥
डार पात गुठली बकुल मींगी रस लग्यौ बिहार रे।
हरि हाँ एक हो रस कौ देखि सकल विस्तार रे॥४९५॥

फिर आप रसिक जनन तें कहिबे लगे कि—हे भाई! समस्त बाद-बिवादन कूँ त्यागि, श्रीजुगल की रसरीति के नित्यबिहार कूँ हीं, सब रसन को सर्वोपरि सार समझि, अनन्य होइ ताही कौ भजौ। क्योंकि कस-बाकस स्वरूप परमार्थन कूँ मीड़ि कें रस निकारि, काहू ने स्वाद नाँइ लीन्यौ है। भक्तिरूपी वृक्ष को डार-पात-गुठली-

बकुल, मींगी आदि सबन के रस कौ सार-श्रीजुगल कौ एकमात्र नित्यबिहार रस ही है। जहाँ-तहाँ वाही रस को विस्तार फैलि रह्यौ है।

डार पात गुठली बकुल, मूल फूल फल छाँहि।
श्रीबिहारी ^ स्वादी लहैं, सुरस पके फल माँहि॥ श्रीगुरुदेवजू

कर्म ज्ञान कौ सार कह्यो निजु भक्ति है।
नारायन चौबीस धरैं इक सक्ति है॥
ताहू में कछु भेद कियौ श्रीकृष्न कह्यौ सो सार है।
हरि हाँ इन सबहिन कौ सार लह्यौ सुख सार विहार है॥४८६॥

कर्म-ज्ञान को सार श्रीहरि की सुद्ध भक्ति सबन ने मानी है। बिनहीं श्रीहरि की सक्ति के नारायन आदि चौबीस अवतार सास्त्रन में बर्नित है। तिन सबन कौ सार स्वरूप श्रीमद्भागवतजू में श्रीकृष्न कूँ स्वयं भगवान बतायो है। इन सबन को सर्वोपरि सुखसार श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कौ नित्यबिहार—श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें हमें प्राप्त भयौ है।

श्रीकुंजविहारी नाम सुमरि निज सार है।
सहस नाम मुख सेस लह्यौ नहिं पार है॥
ताही कौ हरिदास कह्यौ निरधारि कें।
हरि हाँ नित्य बिहारी नाम लह्यौ सुविचार कें॥४८७॥

हे भाई! सब सारन कौ सार निज सार स्वरूप एकमात्र श्रीकुंजबिहारी नाम कूँ ही अनन्य-भाव तें सुमिरन करौ। जाकूँ श्रीसेषजी महाराज सहस्त्र मुख सों निरंतर बर्नन करें हैं, तौहू पार नाँइ पावें हैं। ताही कूँ श्रीस्वामीजी महाराज ने निर्धार करि कें कह्यौ है। हमने हू बड़ो बिचारि-बिचारि के नित्यबिहारी नाम कूँ लह्यौ है।

जैसेंई प्रसाद, तैसेंई हरि जानिये।
भक्ति भाव कौ स्वाद, याते नाना रूप है॥४८८॥

जैसे एक ही पदारथ ते अनेक प्रकार के व्यंजन बनाइ कें श्रीहरि के भोग जब लगि जाँइ है, तब नाना भाँति के स्वाद को प्रसाद वो है जाय है। तैसे ही एक ही श्रीहरि कूँ नाना भाव के भेदन द्वारा, भक्तजन भिन्न-भिन्न रूप तें बिनके रस कूँ आस्वादन करि, अनेक रूप सों बिनके स्वरूप कूँ प्रतिपादन करें हैं,।

महा प्रेम अति सुख कौ सार, श्रीवृन्दावन नित्यबिहार ।।
ललितकिसोरी लाडन लाडैं । छिन-छिन रंग सवायौ चाडैं ।।४९९।।

फिर आपने कह्यौ कि–दिव्यातिदिव्य सर्वोपरि-सुखन को हू सार-स्वरूप श्रीवृन्दावनजू को महा प्रेममय नित्यविहार ही है। जहाँ श्रीस्वामीजी महाराज निरन्तर श्रीजुगल के अद्भुत लाड़-लड़ावें हैं, तथा छिन-छिन आपकौ रंग सवायो बढ़तो जाइ है।

जाकौं चाहैं लाडिली, ताकौं सब सुख होइ ।
प्रेम प्रिया बिन ना मिलै, यह जानत सब कोइ ।।५००।।
झूठौ छक कियो दूर कैं, साँचौ छक अपु दीन ।
कुंजबिहारिनि लाडिलो, ललित रसिक परबीन ।।५०१।।

अति ललित-रसिक प्रवीन श्रीकुंजबिहारिनलाड़िलीजू जाकूँ चाहैं-बिन कूँ ही सब सुख सहज प्राप्त है जाइ है। या बात कूँ सब कोऊ जानै हैं कि निजमहल कौ प्रेम श्रीप्यारीजू की कृपा बिना कैसे हू प्राप्त नाँइ है सकै है। वे ही अपने निज जनन की झूठी लालसान कूँ भलीभाँति मिटाइ, साँचो अनुराग स्वयं कृपा करि दै देवैं हैं।

ललित प्रेम कौ नेम गहि तब पावै रस रीति ।।
कुंज केलि सुख रासि कौ, छिन छिन बाढै प्रीति ।।५०२।।

ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज की प्रेम-रीति उपासना को दृढ़ अनन्य नेम धारन करि, भजन करोगे, तबहीं सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनीजू की रसरीति-कुंजकेलि की प्रीति तुम्हारे हृदय में छिन-छिन बढ़ैगी।

याही तै ए संत जन, बोलत बडरे बोल ।।
छके रहैं हरि रूपमें, निर्भै करैं किलोल ।।५०३।।

याही ते हमारे साँचे संतजन श्रीबिहारीजी महाराज के अद्भुत रूप में छकि, निर्भय किलोल करते भये सदाकाल गरजते रहैं हैं।

हरि जू के जानें बिना, भरमत है सब कोइ ।
जब जानें हरि ललित वर, तब ही अति सुख होइ ।।५०४।।

श्रीहरि के रूप-गुन-जस-महामाधुरी एवं उदारता-कृपालुता आदि कूँ नाँइ जानिबे के कारन ही सब लोग वैसे ही भ्रमते डोलि रहे हैं। सर्वश्रेष्ठ अति ललितवर श्रीहरि के स्वरूप कूँ जानि लेओगे, तबहीं सर्वोपरि सुख तें सुखी होओगे।

ललित कृपा कौ वपु धरचो श्री स्वामी हरिदास।
रसिक सिरोमनि स्वामि वर मम उर कियो निवास ॥५०५॥

अति सरस रसीली ललितवर कृपा के स्वयं वपु रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज ने उदारता के वसीभूत होइ, मेरे हृदय में निवास करि लीनौ है।

श्री स्वामी हरिदास जू, ललिता बपु परकास।
जुगल केलि तनु मन दई, पोषि रसिक रस रास ॥५०६॥

जिन श्रीस्वामीजी महाराज कौ प्रकास स्वरूप स्वयं श्रीललिताजू हैं, बिनने ही अति कृपा करि, श्रीजुगल की केलि हमें ऐसी दै दीनी है, जासों रसिक-रस-रासि गौर-स्याम कूँ रात-दिन हम तोषन-पोषन करते रहैं हैं।

परम गूढ रस रीति यह, प्रगट करी हरिदास।
ललितकिसोरी हिय धरी, मधुर सु प्रेम बिलास ॥५०७॥

यह परम-गूढ़-रसरीति एकमात्र एकान्त-रस-विलास श्रीनित्यबिहारिनीजू कौ निजमहल श्रीवृन्दावन निकुंजमंदिर में ही छुपी भई हुती। श्रीस्वामीजी महाराज ने ही प्रगट होइ कें, जाकों प्रकास जगत में कीनौ है। वाही महामधुर प्रेम-बिलास कूँ अपने हृदय में दृढ़ता तें धारन करि, हम निरन्तर सुख लूटैं हैं।

रसिक कमल फूले रहैं, जुग रस सागर बीच।
श्रीहरिदास सूर प्रगट सदा, सुखद मरीचन सीच ॥५०८॥

श्रीजुगल-रस-सागर में रसिक जनन के हृदयकमल सदाकाल फूले रहैं हैं, क्योंकि सूर्य स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज अपनी रसमयी कृपा रूपी किरनन द्वारा बिनके हृदयन कूँ सतत सिचन कियौ करैं हैं।

मधुर हंस मातें रहैं, पीवत मधु मकरंद।
कूजत मधुर सुहावनें, रसिक श्रवंन आनंद ॥५०९॥

हंस स्वरूप महामधुररसउपासक मधुररसमय सुगंध पी-पी के मतवारे होइ ऐसे कूजते रहैं हैं, जिनकूँ रसिकजन सुनि-सुनि के अद्भुत आनन्द में फूले नाँइ मावैं हैं।

श्रीहरिदास नाम रसना रटौ, जुग निरखौं सुखद सरूप।
तन मन प्राननि रमि रह्यो, परम रसिक वर भूप ॥५१०॥

दृढ़ अनन्यभाव सों श्रीस्वामीजी महाराज के नाम कूँ सतत रसना तें रटो।

परम सुखदाई श्रीजुगल के रूप कूँ भाव की आँखन ते निरंतर देखो। हमारे तन-मन-प्रान-रोम-रोम में वे ही परम रसिकवर-भूप रमि रहे हैं।

बानी जुग रस कहन कौं, मन रसना उपजी प्यास।
रसिक सजातिन सों कहौं, जे सेवैं हरिदास ॥५११॥
नैंननि मग चलिबो बन्यौं, गौर स्याम सुख देस।
तनु मन विषै अदृष्टि है, मिलिबो प्रेम अवेस ॥५१२॥

यदि तुम्हारे मन रूपी जिह्वा में श्रीजुगल के रस कहिबे की प्यास उपजै तो हे भाई! अपने बिन सजातीय रसिकन ते ही कहो, जो श्रीस्वामीजी महाराज कूँ दृढ़ अनन्य भाव तें सेवें हैं। हमारे श्रीगौर-स्याम के रस-सुख-देस में भावरूपी नैंननि के द्वारा ही चलिबे की रीति है, जिनकी दृष्टि अपने तन, मन, के सुख-स्वादन माऊँ लगि रही है, बिनसों श्रीजुगल सदाकाल अदृष्टि रहि, एकमात्र प्रेम-आबेसवारे-जनन ते ही मिलें हैं।

आए हैं इहिं देस जहाँ नहिं आस हैं।
बहुरि जाँहि वह देस जहाँ हरिदास हैं॥
वृन्दाबिपुन बिहार नित्य इक ठाँव रे।
हरिहाँ काम केलि की सेज जुगल चित चावरे ॥५१३॥

अब हम वा रस-देस की अनन्य उपासना एवं भावना में आइ गये हैं, जहाँ और कोऊ दूजी आस हृदय में रहि ही नाँइ सकै है। याते वाही रस-देस में अब हम जाँयगे, जहाँ श्रीस्वामीजी महाराज कौ सतत निवास रहै है। वो सर्वसिरोमनि नित्य एकरस सुभ ठाँव एकमात्र श्रीवृन्दावन नित्यबिहार ही है, जहाँ प्रेममय कामकेलि की सेज पै दोऊ श्रीजुगल बड़े चित्त के चाव सों निरन्तर विहार करें हैं।

गुरु हमकों उपदेस कियो वा देस कौ।
जहाँ न माया काल त्रिगुन परवेस कौ॥
जनम मरन गयो छूटि सरन हरिदास की।
हरिहाँ गौर-स्याम सुख रासि निरखि निजु आस की ॥५१४॥

हमारे श्रीगुरुन ने हू हमें वा देस को उपदेस कीनौ है, जहाँ त्रिगुनात्मक माया काल कौ प्रवेस हू नाँइ है सकै है। श्रीस्वामीजी महाराज की साँची सरन लेत खेम,

जन्म-मरनरूपी आवागमन सों छूटि, सुखरासि गौर-स्याम के निहारिबे की निज अनन्य आसा मन में है जाइ है।

गुरु हैं बडे दयाल अभै पद देत हैं।
निरमोही निसकाम कछू नहीं लेत हैं॥
अपनोई सुख देत कृपा करि ताहि रे।
हरिहाँ तन मन अर्पन गुरुहि कियो जिन जाहि रे॥५१५॥

दयालुन के सिरमौर हमारे गुरुदेव कूँ जो भी जन अपनो तन-मन-धन सर्वस्व अर्पन करि देवै हैं, ताकूँ आप अभय पद दै, कृपा करि अपने सुख ते ही वाकूँ सुखी करि देवै हैं। ताहू पै आप ऐसे निरमोही-निष्काम हैं कि कछु नाँइ लेवैं हैं।

घरी घरी गुरु कहत पुकारें तोहि रे।
बहुरि न ऐसौ समौ पूछि तू मोहि रे॥
पाई दुर्लभ देह भजौ हरिदास कों।
हरिहाँ हरि गुरु अज्ञा चलहु तजौ जम त्रास कों॥५१६॥

श्रीगुरुदेव पुकारि-पुकारि कें सतत कहैं हैं कि—हे भाई! तुम हमसों भलोभाँति पूछि लेउ? मानव-देह-रूपी समय मिलिबो बहुत ही कठिन है, या अति दुर्लभ देह सों श्रीस्वामीजी महाराज को भजन करौ, और श्रीहरि-गुरु की आज्ञा में सतत चलौ, जासों जमराज को कछु भय नाँइ रहैगो।

तौ ह्वै है दुख रूप, जो चितवै संसार तन।
ह्वै है सुख कौ रूप, जो भजि है हरिदास कौं॥५१७॥

यदि तुम मानव देह पाइ के संसार के माऊँ ही देखते रहोगे, तो अपने मन में निश्चय समझि लेउ कि दुख को रूप ही बनि जाओगे, और श्रीस्वामीजी महाराज को भजन करोगे तो दुख सों भलीभाँति छूटि, सुख स्वरूप है जाओगे।

जो जानैं अप रूप कों, तब हीं सब सुख होइ।
देह बुद्धि ह्वै जो करै, तामें सुख नहिं कोइ॥५१८॥

श्रीस्वामीजी महाराज के साँचे अनन्य जन अपने कूँ तबही समझो जब अपनी समस्त इन्द्री एवं मन सहचरी भाव के अनुसार है जाँइगे? तब तुम जो कछु करोगे, सो सब सुख रूप है जायगो। देहाभिमान सों तो जो कछु करचौ जाइ है, वामें दुख ही दुख होइ है।

महा नर्क में जीव है, तऊ जीवनि की आस।
हरि जन हरि के पास हैं, तन तें रहैं उदास ॥५१९॥

महाघृनित पदार्थन ते भरयौ भयौ तौ तुम्हारी यह देह, तापै ऐसे ही देहाभिमानिन में बास एवं तुम्हारी आसा लगि रही है, ये सब महानरक के समान ही होय हैं। जो जन श्रीहरि के है जाँइ हैं, वे सतत अपनी देह सों उदासीन रहि, मन सों सदाकाल श्रीहरि के पास ही रहैं हैं।

प्रीतम ही कौ नाँऊ ले, प्रीतम ही को सेव।
प्रीतम ही सों प्रेम करि, प्रीतम ही सुख देव ॥५२०॥
प्रीतम ही कौ नाँउ रटि, प्रीतम ही कौ देखि।
प्रीतम ही तनु मन मिलें, जन्म सुफल करि लेखि ॥५२१॥

हे भाई! याते तुम सदाकाल अपने प्रीतम के नाम कूँ ही लेइ-लेइ कें रटो। प्रीतम ही की दरसन-सेवा करो। प्रीतम सों ही प्रेम करि-करि कें अपने तन-मन सों सतत मिले रहो। अर्थात समस्त रीति भाँति सों प्रीतम ही कूँ सुख देओ, जासों तुम्हारो जन्म सुफल है जाइ?

अपनें पति कौं छाँडि कें, औरन कौं मन दीन।
सब ही मानें एक करि, गनिका की गति लीन ॥५२२॥
गनिका की गति लियैं ते, लोक परलोक नसाय।
हरि गुरु कों भेटै नहीं, जन्म जन्म पछिताय ॥५२३॥

जो जन अपने इष्ट कूँ छाड़ि के औरन कूँ मन देवैं हैं तथा गनिका की नाँई सबहिन कूँ एक करि मानें हैं। ऐसे लिवासीपने कूँ ग्रहन करिबे तें यह लोक-परलोक दोनों ही चले जाँइ हैं। क्योंकि इष्ट सों अनन्य प्रेम के बिना श्रीहरि-गुरु ते भेंट नाँइ होइबे के कारन, आवागमन नाँइ मिटि, विनने जन्म-जन्म पछितामनो ही परै है।

उद्धित होनें ते भैया, कछु न आवै हाथ।
हरि गुरु कों राजी करै, रहै सर्वदा साथ ॥५२४॥

जो-जन मनमुखी होइ मनमानी करिबे लगे हैं, तिनसों आप बोले कि—हे भाई! उद्धित होइबे ते कछु हाथ नाँइ आवै है, श्रीहरि गुरु कूँ राजी राखोगे तो सर्वदा-सुखी होइ, बिनके संग रहोगे।

जो साँचे हरि के भये, तिनकी यही सुरीति।
दया भाव सब सों करें, छिन छिन गुरु सों प्रीति ।।५२५।।

जो जन साँचे श्रीहरि के है जाँइ है, बिनकी एकमात्र यही सुन्दर रीति होइ है कि जीवमात्र पै सहज स्वाभाविक दया-भाव रखि, अपने श्रीगुरुदेव सों छिन-छिन नई-नई प्रीति करते रहैं है।

सुख लपेट्यौ दुःख है, सो ऐसेंई सुख जानि।
यामें तें मन काढि करि, हरि गुरु सों रति मानि ।।५२६।।

संसार में तो एकमात्र दुःख ही, सुख को रूप बनाये, जीवमात्र के मन में चुभि रह्यौ है। याते मायिक-सुखन कूँ दुःख को ही रूप समझो। मैं तुमसों कहूँ हूँ कि जागतिक सुख-दुःखन में ते अपने मन कूँ निकारि, श्रीहरि-गुरु के चरनारविन्दन में लगामनो चहिये।

जे हरि के निज दास, तिन सम और न दूसरौ।
सदा रहैं हरि पास, ताही बल गर्जत रहैं ।।५२७।।

जो महाबड़भागी जन श्रीहरि के अनन्य निजदास हैं, बिनके समतूल और कोऊ जगत में हो ही नाँइ सकै है। वे सदाकाल मन सों श्रीहरि के पास रहते भये, वाही बल सों गरजते रहैं हैं।

महिमा अपने साधु की, श्री हरि कही बनाइ।
आपन हूँ ते अधिक करि, वेद पुरानि गाइ ।।५२८।।

श्रीहरि के साँचे संतन की महिमा, साक्षात श्रीहरि ने ही अपने श्रीमुख ते बेद पुरानन में गाइ-गाइ कें, अपने ते हू अधिक प्रभावसाली बिनकूँ बतायो है।

हरि के जन सब तें सरस, कहैं सुवेद पुरान।
हरि हू मानें अधिक करि, हरि ही वचन प्रमान ।।५२९।।

समस्त बेद-पुरान या बात कूँ स्पष्ट कहैं कि श्रीहरि के जन सबते सरस होंइ हैं, और साक्षात श्रीहरि हू बिनकों अपने ते अधिक करि मानैं हैं।

साधु बानी निज मूल है, या मधि वेद पुरान।
हरि अंतर याके रहें, कही सु रसिक सुजान ।।५३०।।

रसिक-सुजान हमारे श्रीगुरुदेवजू हमसों भलीभाँति समझाइ कें, यह बात कही है कि सबकी मूल निज बानी संतन की ही मानी जाइ है। क्योंकि यह स्पष्ट अनुभव

करिकें ही कहें हैं, याते श्रीहरि तथा बेद-पुरानन कौ हू मत इनके अनुसार ही होइ हैं।

चारचौ सम्प्रदाय कौ हेत, सेवै हरि गुरु संत।
श्री वृन्दावन खेत, तन मन वचननि दृढ़ गहै ।।५३१।।

चारों वैष्णव संप्रदायन कौ हेत श्रीहरि-गुरु-संतनि के सेइबे को ही है। बिनमें अति बड़भागी वेई हैं, जो तन-मन-बचनन-द्वारा दृढ़ अनन्य होइ, रस खेत श्रीवृन्दावन कूँ सतत सेवैं हैं।

भक्त रहैं संसार में, हरि इच्छा कौ जानि।
माया काल डरैं नहीं, हरि अपनों करि मानि ।।५३२।।

अति दारुन या माया-काल ते भलीभाँति निडर होइ, श्रीहरि कूँ अपनो मानि, बिनकी इच्छानुसार रहते भये भक्तजन ही संसार में सदाकाल गरजते रहैं हैं।

ऐसें रहैं संसार में, हरि ही सों करि प्रीति।
और संगी सब यों गनें, जैसे मेला मीत ।।५३३।।

श्रीहरि के जन संसार में एकमात्र श्रीहरि सों हीं प्रीति मानि के रहैं हैं, और यावत संगी-साथिन कूँ मेला में मिलबेवारे मित्र सदृस ही जानैं हैं।

रहनी कहनी एक सी, तिनसों कहिये संत।
हरि रस रूप सुधा पियें, सदा रहें मैमंत्त ।।५३४।।

जिन महत जनन की रहनी-कहनी एक सी होइ है, बिनसों ही संत कह्यौ जाइ है। वे ही जन एकमात्र श्रीहरि के रसरूपी-अमृत कूँ पी-पी कें सदाकाल मत्त रहैं हैं।

तेई हरि के पांस हैं, जिनकौ हरि सों भाव।
देहो नाते सब तजै, हरि मिलिबे कौ चाव ।।५३५।।

जिन बड़भागी जनन ने देह-संबंधी नाते सब त्यागि, श्रीहरि सों भाव-संबंध बाँधि, बिनते ही मिलिबे कौ चाउ छिन-छिन चढ़्यौ रहै है, तेई जन श्रीहरि के पास रहैं हैं।

सबद भेदी जो निसदिन होई। महा परम सुख पावै सोई ।।
ताही कौं हरि के जन गावैं। जाही को हरि कंठ लगावै ।।५३६।।

महतन के बचनन के मर्म कूँ राति-दिन जो जन बिचारि-बिचारि कें अपने

हृदय में धारन करें हैं, तेई महापुरुष परम सुख कूँ प्राप्त करि लेइ हैं। ऐसे परमार्थी जनन कूँ ही श्रीहरि के जन गावें हैं। तिनकूँ ही श्रीहरि रीझि कें कंठ सों लगावें हैं।

बात बात सब कोउ कहैं, बात न समुझै कोइ।
बातन में घर ऊजरै, बातन में घर होइ ॥५३७॥

जगत में सब लोग बात ही कहैं हैं, किन्तु वास्तविक बात कूँ कोऊ नाँइ समझै है, एक बात तो ऐसी होइ है, जासों सब काम बिगरि जाँइ हैं, एक ऐसी होइ है जो बिगरे भये हू काम बनि जाँइ हैं। या मर्म कूँ समझिवेवारे की हो बात कूँ आदर होइ है।

हरि परमारथ हरि मिलन कौं, सो कीनौं व्यौहार।
गुन गांवत गुन ना कटैं, दुर्लभ भयौ बिहार ॥५३८॥

श्रीहरि के परमारथ कौ पथ, महतन नें श्रीहरि प्राप्त करिबे के ताईं ही जगत में प्रगट कीनौ हो। इन लोगन ने वाकूँ केवल व्यवहार ही बनाइ लीनौ है। याते श्रीहरि के गुन सतत गाते भये हू इनके मायिक गुन ही नाँइ कटें हैं, फिर सर्वोपरि नित्यबिहार तो बहुत ही दूर एवं दुर्लभ है।

जगत प्रतिष्ठा विष्टा भखैं, करै न हरि अनुराग।
भक्ति ज्ञान बैराग बिनु, बेचि खात हैं स्वाँग ५३९॥

जागतिक प्रतिष्ठा रूपी अति हेय बस्तु कूँ तो बड़े चाउ सोंये भक्षन करें हैं, किन्तु सर्वोपरि सुखदाई परमदयालु-कृपालु श्रीहरि तें अनुराग नाँइ करें हैं। मन में भक्ति, ग्यान, वैराग्य नाँइ होइबे के कारन, अति उज्जवल श्रीभक्ति महारानी के स्वाँग कूँ ही बेचैं-खावैं हैं।

नट नाचत ज्यों कपट करि, एक पेट के हेत।
सब जग बसि कियो झूठ में, साँच नहीं संकेत ॥५४०॥

जैसे नट एक पेट के ताईं ही अनेक प्रकार सों कपट के नाँच नाच्यो करै है, जामें सचाई को कोऊ-अंस हू नाँइ होइ है। तैसे ही झूठ ने समस्त संसार कूँ अपने बस करि राख्यौ है।

अजा तरिन चाहत सबै, तरी अजा नहीं जाइ।
अजा तरे हरि संत जन, अजा रही पछिताय ॥५४१॥

माया-सागर ते सबही पार जाइबो चाहैं हैं, किन्तु माया तरिबे में नाँइ आवै

है । माया कूँ एकमात्र श्रीहरि के साँचे संत ही ऐसे तरि जाँइ हैं, जो माया विचारी पछिताती ही रहि जाइ है ।

पंडित बाद बहुत तू करै । औरै खंडित नेंक न डरै ॥
सील सुभाउ नाहि जिय धरै । बादहि जनम नरक में परै ॥५४२॥
सब पढिबे कौं तत्व बिचार । हरि कौ भजन परम सुख सार ।
निश्चय करि यह जिय निरधार । नान संसै भर्म निवार ॥५४३॥

फिर आप पंडित समाज सों कहिबे लगे कि–हे पंडितजी ! आप वाद-बिबाद तौ बहुत करौ हौ, औरन के खंडन करिबे में नेंक हूँ नांइ डरौ है । सरस-सुसीतल, सील, सुभाउ कूँ अपने मन में नाँइ धारन करि, व्यर्थ ही नरक के पथ पै पाँव धरौ हो । समस्त पढ़िबे-पढ़ाइबे कौ सार तत्व को बिचारि करिबो ही है, जासों सर्व सुख-सार श्रीहरि कौ भजन करन लगौ । याते समस्त भ्रमन कूँ त्यागि निश्चयपूर्वक, श्रीहरि कौ भजन करिबो ही अपने मन में धारन करि लेउ ।

अघट घट रचना जाकी माया, ता हरि लेहु बिचारि ।
पसु तें मानुस जिहि कियौ, संसै कागद फारि ॥५४४॥

जिन श्रीहरि की महा अद्भुत प्रभावसालिनी माया ऐसो है, जो बात नाँइ है सकै है; ताकूँ हूँ रचि के दिखाइ देवै है, विन श्रीहरि कूँ तुम अपने मन में बिचार करौ । देखो ! मैं एकमात्र पसु सदृस हो, मेरे समस्त संसयन के कागद-फारि, बिनने मानुस बनाइ दीनौ ।

साधु संत को संग न तजिये । इन सों मिलि के हरि कों भजिये ।
दया दीनता मन में धरिये । संसै सागर पार उतारिये ॥५४५॥

याते हे भाई ! साधु-संतनि के संग कूँ कबहूँ नाँइ त्यागि, इनसों मिलि कें हीं श्रीहरि कौ भजन करौ । दया-दीनता अपने मन में धारन करि, संसय-सागर ते भली-भाँति पार उतरि जावो ।

हरि के दास सबनि सुखदाई । श्री मुख आपुन करत बडाई ।
भक्तनि पीछैं लागे डोलें । बार बार हरि यों कहि बोलें ॥५४६॥

साक्षात श्रीहरि अपने मुख सों संतन की प्रसंसा करते भये, बार-बार या बात कूँ कहैं हैं कि मेरे जन जीवमात्र कूँ सुखदाई होइ हैं । मैं सतत एकमात्र बिनही के पीछे लग्यो रहूँ हूँ ।

मन

भक्त चरनि जो रज मम उर परै। तो भवसागर जीव सब तरै।।
भक्तन महिमा को कहि सकै। सेस महेस गनेस सब थकै।।५४७।।
चारि मुक्ति की चाह न करैं। हरि को सेवन सोई चित धरैं।।
स्वर्ग नरक की आस न करई। काल जमन सों नेक न डरई।।५४८।।
राति दिवस हरि के गुन गावैं। पाँचो इन्द्री हरि रूप समावैं।।
काम क्रोध जहँ लोभ न पइये। त्रिगुन परे हरि को दुलरइये।।५४९।।
माया काल भय नहिं ब्यापै। हरि गुरु मंत्र जपत निजु जापै।।
साधन सिद्ध भयो मन प्रेम। छूटि गयो सब देही नेम।।५५०।।

परम दयालु-कृपालु-रिझवार-सिरोमनि श्रीहरि कहैं हैं कि—मेरे अनन्य-भक्तन की महिमा कोऊ कैसेहू नाँइ कहि सकै है। बिनके श्रीचरनकमलन की रज यदि मेरे हृदय पै परि जाइ तौ, समस्त जीव भवसागर ते पार तत्छिन है जाँइ। भक्तन की महिमा तो स्वयं श्रीसेस, महेस, गनेस आदि बड़े-बड़े देव-गन हू पार नाँइ पाइबे के कारन, कहते-कहते थकि गये हैं। भक्तन के हृदय में चारों प्रकार की मुक्ति की लालसा कबहूँ नाँइ होइ है। वे सदाकाल श्रीहरि के सेवन कूँ ही, अपने चित्त में धरि के राखैं हैं। स्वर्ग-नर्क की आस एवं त्रास नाँइ करि कें काल एवं जमदूतन ते नेंक हूँ नाँइ डरैं हैं। अपनी पाँचों इन्द्रियन कूँ श्रीहरि के रूप में समोइ के, रात-दिन बिनके गुनन कूँ हीं सतत गायो करैं हैं। ऐसे भक्तन के हृदय कमल में काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि ढूँढ़िबे पै हूँ नाँइ मिलै हैं। त्रिगुनात्मक माया ते परे श्रीहरि कूँ दुलराइ-दुलराइ कें ही वे सतत जीवैं हैं। माया-काल तें निर्भय होइ, श्रीहरि-गुरुन के नामरूपी महामंत्र कूँ ही निज जाप समझि, निरन्तर रट्यौ करैं हैं। जिनके समस्त साधन सहज सिद्ध होइ, मन में प्रेम उदय है गयौ है, बिनके देह के सब नेम छूटि जाँइ हैं।

श्रुति सुमृति सकल पुराना। संत समागम इहै प्रमाना।।
अनभव करि हरि को पहिचाना। नाना संसै भरम भुलाना।।५५१।।

यावत श्रुति-स्मृति-पुरान एवं संतजन सब याही बात कूँ प्रमानित करैं हैं कि अपने श्रीहरि कौ भाव अनुसार पहिचान; अनुभव करि, समस्त संसय एवं भ्रमन कूँ भूलि जाओ।

एक बेर स्वामी गुन गाइ। आवागमन भरम नसि जाइ।।
गौर-स्याम के सुखै समाइ। श्रीललितकिसोरी यौं समुझाइ।।५५२।।

ललितकिसोरी वचन प्रतीति । जहाँ निरन्तर जुग जुग प्रीति ।
गौर-स्याम विलसैं रस रीति । श्रीहरिदासी सदा समीति ।।५५३।।
इन वचननि नाहीं विस्वास । ते वै साधन सबै निरास ।।
जिनके ललितकिसोरी वचन की आस।तिनकें कुंजबिहारिनि जुग-जुग पास।।

स्वयं श्रीललितकिसोरीस्वामिनीजू ने मोते भलीभाँति समझाइ कें यह बात कही है कि—जो कोऊ एक बेर हू, मन लगाइ उमंग में भरि, श्रीस्वामीजी महाराज के गुनन कूँ गावै, वाके आवागमन के समस्त श्रम नष्ट होइ, हम दोऊन के सुख में समाइ जायगो ।

ताते आपने स्पष्ट कह्यौ कि—जो साक्षात् श्रीललितकिसोरीजी जुग-जुग सों प्रेम-प्रीति कूँ बिलसैं-बिलसावें हैं, बिनके श्रीमुखकमल के वचननि में विस्वास करिबेवारे महतजन श्रीजुगल के रस कूँ सतत बिलसते भये श्रीस्वामीजी महाराज के सदा-काल समीप रहेंगे । जिन जनन कूँ इन वचननि में विस्वास नाँइ होयगो, बिनके नित्यबिहार-उपासना-साधन सब निष्फल जाँयगे । क्यौंकि श्रीस्वामीजी महाराज के अति अद्‌भुत प्रेम-स्वरूप में विस्वास राखिबेवारे जनन के ही स्वयं श्रीनित्यविहारिनीजू सदा-सर्वदा पास रहैं हैं ।

हौं अनाथ तुम नाथ हो, करुनासिंधु उदार ।
ललितप्रिये हरिदास जू, पोषौ सुखद बिहार ।।५५५।।

हे करुनासिंधु उदार-सिरोमनिललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज ! मो अनाथ के एकमात्र आप ही नाथ हो, अद्‌भुत सुखदाई, सर्वोपरि समाधि-रस नित्यबिहार सों निज कृपा द्वारा मेरो पोषन करौ ।

काहू कों बल जोग बैराग कौ, नवधा भक्ति समीति ।
मम बल श्री हरिदास कौ, जुग जुग दृढ परतीति ।।५५६।।

जगत में काहू कूँ अपने ग्यान-जोग-बैराग्य कौ बल होइ है, काहू कूँ श्रीहरि की नवधा भक्ति कौ । मेरे एकमात्र श्रीस्वामीजी की कृपा कौ ही बल है, और हम वाही बल को अपने मन में जुग-जुग ताईं दृढ़ विस्वास राखें हैं ।

जा मारग मेरौ गुरु चल्यो, ता मारग हौं जाउँ ।
और जिते मारग सबै, तिन्हैं न हौं पतिआउँ ।।५५७।।

जा पथ पै हमारे श्रीगुरुदेवजू गये हैं, वाही पथ पै हम चलें हैं। और जितेक साधन-पथ हैं, तिनमें हम नेंक हूँ विस्वास नाँइ करें हैं।

वह मारग कितहू रह्यौ, जिहिं चलि गये श्रीहरिदास।
श्रीपति राम कृष्न अवतार लौं, कोऊ सु अटक्यौ रास ॥५५८॥

जा मारग में श्रीस्वामीजी महाराज चले हैं, वह मारग ताऊँ कोऊ पेहुँच ही नाँइ सक्यौ। अर्थात प्रथम-समागम एकान्त रस बिलास कौ अखंड नित्यबिहार अनन्य उपासना ताऊँ कोऊ नाँइ पहुँच सके। कोऊ श्रीबैकुंठनाथ, कोऊ श्री अयोध्यानाथ, कोऊ श्रीब्रजनाथ तथा रास बिलास में ही अटके रहि गये हैं।

बिहरत दोऊ रसिकवर, सहज अजन्मा रूप।
ताहि भजौं मैं एक रस, जो हरिदासी केलि अनूप ॥५५९॥

सर्वश्रेष्ठ-रसिकवर हमारे श्रीजुगल सहज अजन्मा रूप-नित्यकिसोर वैस सों श्रीवृन्दावन नवनिकुंज मंदिर में निरन्तर बिहार करैं हैं, जो श्रीस्वामीजी महाराज के ही अगाध रस की अनूप केलि है, ताही को हम सदाकाल एकरस अनन्य भावतें भजें हैं।

श्री स्वामी रस रीति सुनि, अचिरज आवत मोहि।
अगम निगम ते दूरि हीं, सो गहि पकराई तोहि ॥५६०॥

अति दुर्लभ ते हू दुर्लभ, अगम-निगम ते अति दूर सबन सों छुपी भई निज महल में निज रस-रीति को बिहार श्रीस्वामीजी महाराज ने अद्भुत कृपा में विबस होइ, तुम्हें दै दीनी है यह देखि हमें बेर-बेर आश्चर्य होय है।

श्री स्वामी हरिदास कौ, कीजौ भजन अघाइ।
कुंजबिहारी लाडिले, पौषेंगे सब भाइ ॥५६१॥

आप आश्रितन सों कहिबे लगे कि हे भाई! श्रीस्वामीजी महाराज कौ भजन भलीभाँति मन लगाइ अघाइ-अघाइ के करौ, जासों श्रीस्वामीजी के परम-लाड़िले कुंजबिहारी तुम्हें समस्त रीति-भाँति सों पोषन करेंगे।

जिते बचन गुरुदेव के, तिनही सौं परतीति।
वेद पुराननि जो कह्यौ, सो कह्यौ आपनी रीति ॥५६२॥
श्रीहरिदास वाक्य मिलते जिते, ते अपने उरधारि।
आरष पौरष बचन जे, ते सब देखि विचारि ॥५६३॥

बेद पुराननि में जो कछु बर्नन कियो गयो है, वो सब बिनने अपनी रीति अनुसार ही कह्यौ है। हमारी सर्वोपरि नित्यबिहार उपासना में एकमात्र श्रीगुरुदेवजू के बचनन कौ ही प्रमान मान्यौ जाइ है। क्योंकि श्रीस्वामीजी महाराज के रस-देस ताऊँ और कोऊ पहुँच ही नाँइ सक्यौ। याते श्रीस्वामीजी महाराज के मुख कमल के बचनन सों मिलते भये ही प्रमानन कूँ, तुम अपने हृदय में धारन करौ। हमने समस्त आरष-पौरष-बचनन कूँ भलीभाँति देखि लीनौ है।

वेद बतावत नेति करि, भेद लखै नहिं कोइ।
वृन्दाबिपुन बिहार नित, श्री हरिदासी जोइ ॥५६४॥
नेति नेति निगमन कियो, रह्यौ अपरमित सोइ।
श्री हरिदास बिहार में, तन मन लियो समोइ ॥५६५॥
है नाहीं सो कहि गयौ, ताकौ कहा प्रमान।
गौर स्याम अनुभौ मिलै, तजौ वेद विधि कान ॥५६६॥

सर्वोपरि नित्यबिहार अति अपरिमित एवं अति अगाध बहुत दूर, सबन सों छुपौ भयौ होइबे के कारन, बेदादिकन कूँ कोऊ अतौ-पतौ नाँइ मिल्यौ, ताते वे नेति-नेति कहि के ही रहि गये। ता नित्यबिहार कूँ श्रीवृन्दावन में श्रीस्वामीजी महाराज अवलोकन करि-करि कें निरन्तर लड़ावें हैं। बिन श्रीजुगल कूँ श्रीस्वामीजी की कृपा तें अनुभव करिकें हमने प्राप्त करि लीन्यौ है। याते तुम बेद-विधिन की समस्त कानि कूँ त्यागि देओ। बेद तो, है और नाहीं के तत्व कूँ ही बताइ के रहि गयौ है।

कर्म धर्म अरु ज्ञान सों, सरै न एकौ काज।
अंत समय हरि सों कहैं, तुम ही कों है लाज ॥५६७॥

कर्म-धर्म तथा ग्यान मार्ग में चलिबेवारेन को कोऊ काज आज ताऊँ नाँइ बन्यौ है। अंत समय श्रीहरि की ही सरन सबन ने लेनी परी है।

जो बुधि बिलसत जुगल दोउ, सोई बुधि गुरु उपदेस।
सिष्य बुद्धि त्रिविधा मिली, एक प्रेम आवेस ॥५६८॥

जा अद्‌भुत प्रेममय बुद्धि द्वारा श्रीजुगल निरन्तर बिलास करैं हैं। श्रीगुरुदेव ताही कौ निज आश्रितन के ताईं उपदेस देवें हैं। सिष्य के नये-नये अनुराग की बुद्धि वामें मिलि कें एक प्रेमावस में तीनों खेलैं हैं।

श्री हरि गुरु के आसरे, जो चाहै सो होइ।
इन बिन करतब जो करै, सो चले अंत में खोइ ।।५६९।।

श्रीहरिगुरुन के आश्रय के प्रताप सों सिष्य जो चाहै, सोई है जाइ है। इनकूँ त्यागि कें जो लोग चलैं हैं, वे अंत में अपनों सब कछु खोइ के ही जाँइ हैं।

रमता रमता सब कोउ कहै, थिरता बिरला कोइ।
थिरता ह्वै रमता कहै, साधु कहावै सोइ ।।५७०।।

सबही लोग जगत कूँ नासवान कहैं हैं, किन्तु केवल नासवान कहिबे ते चित्त सों स्थिर कोऊ नांइ होइ है। जो महतजन स्थिर होइ कें जगत कूँ रमता बतावैं हैं, वे ही साधु कहावैं हैं।

जिती प्रीति गुरु में भई, तिती प्रीति हरि जानि।
जिती प्रीति गुरु में नहीं, तिती न हरि में मानि ।।५७१।।
तन मन प्राननि एकता, गुरु सों कीजै प्रीति।
एक अंग घटती भई, तिती लहै रस रीति ।।५७२।।
गुरुन दई जो वस्तु है, जुगल प्रेम को बोल।
तीन लोक की को गनें, तन मन प्रान अमोल ।।५७३।।

साधक सों आप कहिबे लगे कि—हे भाई ! जितेक प्रीति तुम्हारी अपने श्रीगुरुदेव में है, उतेक ही श्रीहरि में समझो। जितेक प्रीति श्रीगुरुन में नाँइ है, उतेक ही श्रीहरि में न्यून समझो। याते हे भाई ! अपने तन-मन-प्राननि ते श्रीगुरुन के मन एवं प्रान सों एकता करि लेउ। यदि तुम्हारी श्रीगुरुन के प्रति एक अंग हू घटती रहि जावैगो, तौ रसरीति की प्रीति में हू तुम्हारी उतेक घटती है जायगी, क्योंकि श्रीगुरुन ने जुगल के अद्भुत प्रेमरूपो जो बस्तु तुम्हें प्रदान कीनी है, ताके आगे तीन लोक की तो कहा चलाई ? तन, मन, प्रानन ते हू, वो अति अमोल है।

इन विषइन सों पेट न भरई। तीनों लोंक भोग जो करई ।।
पातरि चाट न स्वान अघावै। मन की भूख नेंकु नहिं जावै ।।५७४।।
ओस के पानी प्यास न भाजै। जब लगि हरि सागर नहिं राजै ।।
नाना जोइनि विषै रस भरमैं। फिर फिर बँध्यौ जाइ दुखकर्मैं।।५७५।।

फिर आप साधकन सों बोले कि—यदि तुम तीनों लोकन के भोगन कूँ भोगि लेवो, तौहू इन विषयन सों, तुम्हारो पेट ऐसे नाँइ भरि सकै है, जैसे जूठी पातर कूँ

चाटि-चाटि कें स्वान की भूख नाँइ जाइ है। और जैसे ओस के पानी से प्यास कैसेहू नाँइ बुझि सकै है, तैसे ही श्रीहरि रस-सागर की प्राप्ति बिना, जीव कबहूँ सुखी नाँइ है सकै है। नाना प्रकार की जोनिन के विषय-रस में भ्रमतो भयौ यह जीव, दुखदाई कर्मन में जाइ-जाइ के बेर-बेर बँध्यौ करै है।

हरि गुरु बार बार समुझावै। याके मन में नेकु न आवै॥
विष कौ कीरा विषई रुचै। हरि रस अमृत नेंकु नहि सुचै॥५७६॥
बहुतक जन्म विषय रस बीते। हरि रस स्वाद नेंकु नहिं पीते॥
हरि रस स्वाद नेकु जब चाख्यो। तनु मन प्रान प्रीति सों राख्यौ॥५७७॥
नैन बैंन जे एक रस बोलैं। पाचौं इन्द्री रसै कलोलै॥
निर्भय भयौ अभय रस पीयौ। जन्म मरन सब छूटि गयो जियो॥५७८॥

श्रीहरि-गुरु, बार-बार समझावैं हैं, तौहू याके मन में ऐसे नाँइ आवै है, जैसें हरि-रस-अमृत होतें भये हू विष कौ कीरा सदाकाल विष कूँ ही खावै है। याही भाँति विषयन कूँ भोगते-भोगते याके अनन्त जन्म बीत गये हैं, तौहू श्रीहरि के रस कौ स्वाद नेंक नाँइ लेवै है। काहू महाबड़भागी जन ने श्रीहरि के रस कौ स्वाद नेंक हू चाखि लीन्यौ, वाने तो अपने तन-मन-प्रानिन ते हू प्यारो करिकें या रस कूँ राख्यौ है। बिनके नैंन, बैन रस ही रस बोलते भये, पाँचो इन्द्रिय रस में ही किलोल करै हैं। रस कूँ पी-पी के जन्म-मरन को हू भय छूटि, अजर, अमर होय, सुख स्वरूप है गये हैं।

गुरु के बचन सीस धरि लेई। भवसागरि तरि हैं नर तेई॥
अबकैं दाव भलो बनि आयो। गुरु की आज्ञा हिये समायो॥५७९॥

जो कृपापात्र जन अपने श्रीगुरुदेव की आज्ञा माथा पै धारन करि लेवैं हैं, तेई या दुस्तर-भवसागर तें पार है जाँइ हैं। श्रीस्वामीजी महाराज की कृपा तें अबकें हमारो दाउ बहुत सुन्दर बनि गयौ है। श्रीगुरुदेव की आज्ञा हमारे हृदय में समाइ गई है।

दीन दयाल संग नित राखैं। जुगल प्रेम मृदु हँसि हँसि भाखैं॥
यह रस पियो समुझि जिय जानी। आवागमन भीर भ्रम भानी॥५८०॥
वेद पुराननि कौ यह सार। रसिकन कियो यही निरधार॥
स्वर्ग नर्क की छोडौ आस। विषया रस सों होहु निरास॥५८१॥

दीन जनन पै अद्‌भुत दयालु हमारे श्रीगुरुदेव, सतत मोकूँ संग राखि कें, प्रसन्न होइ, हँसि-हँसि के श्रीजुगल कौ महामृदुल प्रेम-रस मोते कहतें रहैं हैं। तुमहू या महारस कूँ भलीभाँति समझि, जिय में जानि के निरन्तर पियौ। जासों आवागमन के समस्त भ्रमन की भीर तुम्हारी दूर है जाइगी। यह रस समस्त रसिकन ने बेद-पुराननि कौ सार निरधार कीनो है। याते विषै-रस सों समस्त रीति-भाँति सों निरास होइ, स्वर्ग, नर्क के भय एवं आसान कूँ त्यागि देउ।

अब हम कह्यौ फिरि नहिं कहैं। गौर-स्याम रूप रस लहैं॥
बारंबार कौन बकि मरै। परम प्रवीन एक व्रत ढरै॥५८२॥

निज आश्रितन तें कहिबे लगे कि–हे भाई ! अब हमने भलीभाँति समझाइ कें, तुमसों सब रस-सार बात कहि दीनी है, फिर नाँइ कहि सकेंगे। कारन श्रीजुगल के रूप, रस, आस्वादन में हमारो मन लग्यौ रहै है। बार-बार कहि के तों केवल बकि के ही मरनो है। परम प्रवीन विबेकी जन तो एक पोत सुनि कें ही दृढ़ अनन्य है जाय हैं।

सुनों बिवेकी एक विचार। निश्चै सुमिरौ नित्य बिहार॥
मानुष जनम सुफल करि जानों। श्रीललितकिसोरी सुख पहिचानौं॥५८३॥

हे विवेकीजनो ! एक अति बिचारिबे की बात है कि–समस्त श्रीभगवद्‌भक्तिन में रसोपासना सर्वसम्मत, निर्बिवाद सबन नें सर्वोपरि मानी है, और रसन में हू सर्व प्रधान शृंगार-रस है, ताकौ हू चरम सीमा कौ पूर्नतम स्वरूप-श्रीवृन्दावन नवनिकुंज-मंदिर में श्रीनित्यविहारिनोजू कौ निजसुखमय नित्यविहार ही सर्वोपरि मुकुटमनिरस है। याते वाकूँ ही निश्चय रूप सों दृढ़ अनन्य भाव द्वारा सदाकाल सुमिरन करि, अपने मानव जन्म कूँ सुफल करि लेवो।

तन करि मन कर बचन करि, धन करि साँचौ होय।
सोई पइहै केलि सुख, और लहै नहिं कोय॥५८४॥

फिर आप साधक समाज सों कहन लगे कि–हे भाई ! जो जन तन-मन-बचन एवं धन द्वारा अपने इष्ट-गुरुन ते सदाकाल साँचो रहैगो, वो ही सर्वोपरि केलि सुख कूँ प्राप्त करि सकैगो। और कोऊ नाँइ करि सकै है।

जाकौ धन जामें लगै, तहँ सौं साँचौ जानि।
बात बनाये ना बनें, होत दरस में हानि॥५८५॥

जब तुमने अपनो सर्वस्व श्रीबिहारीजी महाराज को ही मानि लीन्यौ है, तब तुम्हारो समस्त धन बिनकी तथा बिनके जनन की ही सेवा, लाड़ में लगनो चहिये, तब हीं तुम इष्ट-गुरुन के साँचे समझे जाओगे, अन्यथा केवल बात बनाइबे ते कछु नाँइ ह्वै सकै है।

अति ही दुर्लभ केलि सुख, रसिकन कियो निरधार।
श्री स्वामी हरिदास बिन, कहिबो सुनिबो भार ॥५८६॥

समस्त रसिकन ने या बात कूँ निर्णय करि दीनो है कि—सर्वोपरि श्रीनित्य-विहारिनीजू कौ केलि-सुख दुर्लभ ते हू अति दुर्लभ है। रसिक-सिरोमनि श्रीस्वामीजी ते अनन्य संबंध के अतिरिक्त वाको-कहिबो-सुनिबो हू भार है।

नख सिख कियो सिंगार तन, चंदन अगर लगाइ।
आदर बडौ प्रहार है, बिन अहार न सुहाय ॥५८७॥

जैसे भूख में अति विवस व्यक्ति कूँ चंदन-अगर लगाइ कें बड़े आदर सों श्रृंगार करै, तौहू वाकूँ बिना अहार के सब कछु प्रहार सदृस ही मालुम परै है। तैसे ही हमारे प्राननाथ श्रीबिहारी-बिहारिनीजू कूँ अहार स्वरूप नित्यबिहार के बिना सर्वोपरि आदर हू उल्टो प्रहार सदृस लगै है।

जो साँचौ गुरु सों रहै, राखै कछु न दुराव।
ताही कों हरि मिलत हैं, रसिक सिरोमनि राव ॥५८८॥
जितनों गुरु सौं अंतरो, तितनों हरि सों होय।
वेद पुरान अरु संत जन, यह भाषै सब कोय ॥५८९॥

जो बड़भागी साधक अपने श्रीगुरुदेव सों काहू प्रकार को दुराव नाँइ राखि के, समस्त रीति भाँति सों साँचो रहै है, वाही कूँ रसिक-सिरोमनि श्रीहरि प्राप्त होइ हैं। जिनको अपने श्रीगुरुदेव सों दुराउ रहै है, उतेक ही बिनकूँ श्रीहरि सों अंतर समझनो चहिये। या बात कूँ बेद-पुरान एवं संतजन सब कोऊ भूयो-भूयो कहैं हैं।

जो साँचौ हरि सों भयो, तन मन वचनन लीन।
ताही कौ गावै संत जन, सोई रसिक प्रवीन ॥५९०॥

जो बड़भागी श्रीहरि सों साँचे होइ के तन, मन, बचनन तें लीन ह्वै गये हैं, बिनकूँ ही संतजन गावैं हैं, तथा वे ही परम-प्रवीन रसिक समझे जाँइ हैं।

जो गुरु की अज्ञा चलै, आपौ डारै खोय।
ताकों हरि करें लाडिलौ, लहै परम सुख सोय।।५९१।।

जो परम श्रद्धालु जन अपने तन, मन, आपा कूँ खोइ कें श्रीगुरुदेव की आज्ञा में सदाकाल चलें हैं, ताकूँ श्रीहरि ऐसो अपनो लाड़िलो बनाइ लेवें हैं, कि वो परम-सुख कूँ प्राप्त करि लेय है।

तनु की मनु की बचन की, करी अविद्या दूरि।
कुंजबिहारिनि लाडिली, भर्‌यौ प्रेम भरपूरि।।५९२।।

हमारी प्राननाथ श्रीकुंजबिहारिनिलाड़िलीजू ने अपनो सर्वोपरि प्रेम हमारे हृदय में भरि कें, तन, मन, बचनन की समस्त अविद्यान कूँ दूर करि दीनी है।

अँग सँग दीनों केलि सुख, अति आनंद बढाय।
कुंजबिहारिनि लाडिली, पोषै मन के भाय।।५९३।।
ऐसी मेरी लाडिली, अपनोंई सुख देत।
जो साँचौ ह्वै अँग लग्यौ, भूल न मन में लेत।।५९४।।

श्रीकुंजबिहारिनीलाड़िलीजू अति अद्‌भुत उदारता-कृपालुता की निज स्वरूप हैं, जो भी जन आपके साँचे सरन आवें है, बिनकी भूलन कूँ मन में नाँय लाय, निज अंग-संग कौ केलि-सुख दै, मन के भावन कूँ पोषन करि-करि, वाके आनंद कूँ बढ़ाइ देवें हैं।

हरि हमरे हम हरि के प्रान। हरि हम दोऊ एक समान।।
तनु मन बिछुरन की है आन। जानें कोऊ रसिक सुजान।।५९५।।

अद्‌भुत प्रेममय श्रीहरि सों एकता दिखाते भये आप बोले कि–हे भाई! श्रीहरि हमारे प्रान हैं। ऐसे ही श्रीहरि के प्रान हम हैं। हम तथा श्रीहरि एक समान ही हैं। अर्थात सर्वोपरि श्रीनित्यबिहारिनी, नित्यबिहारीजू के हृदय सागर में हमारे ही सुख के ताँईं अनन्त मनोरथन की तरंग सतत लहरायो करै है। और हमारे हू तन, मन, प्रान, रोम-रोम में, बिनके ही सुख के ताँईं महानुराग उमड़तो रहै है। याते हम-दोऊ एक समान ही परस्पर केलि, मनोरथन के स्वरूप सदाकाल ऐसे बने रहें हैं, जो छिनमात्र के ताँईं हू कबहूँ नाँइ बिछुरें हैं, या रहस्य कू कोऊ सुजान रसिक ही समझि सकें हैं।

जापै हरि कृपा करैं, ताही पै होय सुकृत।
कहत सुनत अरु पढत हूँ, छाँडै नाँहि दुकृत ।।५९६।।

जापै श्रीहरि अपनी कृपा करैं हैं, ताही जन सों सब सुन्दर-सुन्दर कार्य बनै हैं। अन्यथा कहते-सुनते, पढ़ते-पढ़ाते हू जीवनि पै दुष्कृत्य नाँइ छुटै हैं।

साधु सेवै साधु कौं, पामर सेवै देह।
अमृत छाँडैं विष भखै, देखौ अचिरज एह ।।५९७।।

साधु सुभाव के व्यक्ति तन, मन, धन सों संतन कूँ ही सेवैं हैं। मूर्ख लोग अपनी देह कूँ ही लालन-पालन कियो करैं हैं। देखो, यह कितेक आश्चर्य की बात है कि मानव होइ कै हूँ अमृत कूँ छाड़ि कै विष कूँ ही खावैं हैं। (अर्थात संतनि की सेवा सों तो अति दुर्लभ साक्षात श्रीहरि हू प्रसन्न है जाइ हैं, देह कूँ सेवे तें नरकगामी जहर-सदृस विषयन की हीं पुष्टि होइ है।)

हरि मिलिबे की बेर यह, सुनियो संत सुजान।
दुर्लभ छिन ब्रह्मादिकन, सो सुल्लभ भयो आन ।।५९८।।

श्रीहरि मिलबे को, मानव देहरूपी जो अवसर छिन, काल के ताईं हू ब्रह्मादिकन कूँ दुर्लभ है, वो अवसर या समय तुम्हें सहज सुलभ मिलि रह्यौ है। याकूँ तुमने बेकार नाँहि खोवनो चहिये।

जो चाहै हरि मिलन कों, मैं मेरी कों छाँडि।
मैं मेरी कों बाँधि कें, बहुत भये हैं भाँडि ।।५९९।।

यदि तुम श्रीहरि सों मिलिबो चाहो तो या जगत में मैं कछु हूँ तथा यह मेरो है, या भाव कूँ भली भाँति छाड़ि देउ। क्योंकि मैं-मेरी बाँधि कें अनंत जीव ऐसे ही झूठे भाँड़ सदृस है के चले गये हैं। (अर्थात तुम साक्षात श्रीहरि के हो, और यावत जगत हू श्रीहरि को है। ताहू पै जो कोऊ अपने आप कछु बनै हैं और जगत की वस्तून कूँ अपनी बतावैं हैं, तिनसों अधिक अति झूठौ एवं बहिर्मुख कौन है सकै है।)

हरि के चोर भये ते प्रानी। जिन माया अपनी करि जानी ॥—श्रीस्वामीरसिकदेवजू

सब कहिबे कौ सार सुनि, हरि जस तू नित गाइ।
भव सागर के तरन कों, दूजौ नाँहि उपाइ ।।६००।।

फिर आप बोले कि हे भाई! हमारे सब कहिबे की सार बात एकमात्र यही

कि–श्रीबिहारीजो महाराज के जसन कूं सदाकाल उमँगि-उमँगि कें गावो। भवसागर ते पार जाइबे के ताँई और कोऊ उपाय नाँइ है।

हरष सोक सों न्यारे रहैं। कुंजबिहारिनि कौ सुख लहैं॥
एही प्रीति रस रीति हमारी। अँग सँग बिहरें प्रीतम प्यारी॥६०१॥
अद्भुत रूप रंग रसमाते। तन मन मिलि अति ही किलकाँते॥
छिन छिन आनंद उरहिं बढावैं। ललितकिसोरी के मन भावैं॥६०२॥

श्रीकुंजबिहारिनीजू के अद्भुत, अगाध, सुख कूं सतत लहते भये, जगत के हर्ष-सोक तें हम सदाकाल न्यारे रहैं हैं। यही हमारी प्रीति एवं रसरीति है, और याही ते श्रीप्रिया-प्रियतम हमारे अंग-संग रहैं हैं। जो निरन्तर अद्भुत, रूप, रस, रंग में मतवारे होइ, सदाकाल किलकाते भये, छिन-छिन महाआनंद कूं बढ़ावैं हैं, वे ही महत जन सदा हमारे मन कूं भावैं हैं।

चूल्हा तौ फूकैं नहीं, नहीं दर्ब कों लेंह।
कुंज बिहारिनि लाडिली, अपनी जूठन देंह॥६०३॥

आश्रितन तें आप कहिबे लगे कि–हे भाई! हम चूल्हा तो कबहूँ नाँइ फूकें हैं, और न काहू ते द्रव्य कूं ही लेवें हैं। श्रीनित्यबिहारिनीजू के महा प्रसाद कूं पाइ सतत सुखी रहैं हैं।

माटी सों माटी रची, देखौ अचिरज एह।
हरि मिलिबे की देह यह, सो खोवत नस्वर नेह॥६०४॥

देखो! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि–यावत जगत माटी स्वरूप पंच भूतात्मक-पदार्थन ते बन्यौ भयौ वाही में रचि-पचि रह्यौ है। श्रीहरि ते मिलिबे योग्य या देह कूं नश्वर नेह में बेकार ही खोइ रहे हैं।

सिर के साँटे प्रेम, आरति ह्वै के लीजिये।
ज्यौं पारस परसें हेम, लोहो सो ता छिन भयो॥६०५॥

यदि महा उज्जवल सर्वोपरि साँचो प्रेम प्रान-देबे ते हू मिलतो होइ, तो आर्त है कें, लै लेनो चहिये। जैसे पारस के परस होत खेम लोहा तत्काल स्वर्न है जाइ है, तैसे ही प्रेम के सपरस होत खेम सर्वोपरि सहचरि भाव तुम्हारो है जावैगो।

लाखन में कोइ एक, हरि रंग राता रूप सों।
भाषन करत अनेक, रीति चलत नहिं प्रेम की॥६०६॥

लाखन में कोऊ एक महा बड़भागी श्रीबिहारीजी महाराज के रूप, रंग में रत होइ है। केवल भावन करिबेवारे ही अनेक मिलें हैं, किन्तु प्रेम की रीति में कोऊ नाँइ चलै है।

जिन जैसौ सुख मान्यौं, तिनकों हरि तैसौ सुख दीन।
गौर स्याम रस माधुरी, कोई है लवलीन ॥६०७॥

श्रीहरि के माऊँ चलिबेवारे जनन ने जैसो सुख-मान्यौ, तिनकूँ आपने ताही रीति कौ सुख दीन्यौ। गौर-स्याम श्रीजुगल की निजरस माधुरी में कोऊ बिरलो ही लवलीन होइ है।

कथा कीरतन नाम रति, कोई रूप ध्यान चितलाइ।
कोई रसिक बिहार में, जुगल सु प्रेम लडाइ ॥६०८॥

जगत में साधक अनेक प्रकार के होइ हैं। काहू की रीति कथा, कीर्तन, नाम में होइ हैं, कोऊ रूप ध्यान में, किन्तु सर्वोपरि नित्यबिहार रसमय श्रीजुगल के लाड़, कोऊ बिरले ही रसिकजन लड़ावें हैं।

प्रेम रीति अति कठिन है, सुनों विवेकी संत।
हरी समानें दास में, दास रूप भगवंत ॥६०९॥

हे विवेकी संतजनों! मैं आपसों कहूँ हूँ कि–प्रेम रीति बहुत ही कठिन है। जैसे प्रेम के बसीभूत होइ, स्वयं श्रीहरि अपने अनन्य दासन के तन, मन, प्राननि में सदाकाल बसें हैं, तैसे ही अनन्य दास श्रीहरि के तन-मन-प्राननि में बसें हैं।

तन मन आपो अर्पिये, हरि सों लगें पुराना नेह।
तब जुगल प्रेम रस पीजिये, जहाँ न तन मन गेह ॥६१०॥

समस्त रीति भाँति सों तुम अपने तन-मन आपै कूँ श्रीहरि के अर्पन करि देवोगे तो, सदा-सदा के ताँई तुम्हारो श्रीहरि सों प्रेम होइ, वा निजमहल में निरन्तर श्रीजुगल-रस कूँ पीवोगे, जहाँ मायिक-तन-मन एवं घर आदि काहू कौ प्रवेस नाँइ है कें, सब प्रेम-स्वरूप ही हैं।

स्वामी जो सुख मेरे हिय धर्‌यौ, सो सुख कहूँ न होइ।
रसिक भक्त जेते बिपिन, ते सब देखे जोइ ॥६११॥

सर्वोपरि रसमय धाम श्रीवृन्दाबन में जितेक सर्व-सिरोमनि शृंगार-रस के रसिक भये हैं, तिन सबन के रसदेस कूँ, हमने भलीभाँति छान ताइ कें देखि लीनौ।

श्रीस्वामीजी महाराज ने जो अद्भुत महामधुर सार-रस को नित्यबिहार सुख मेरे हृदय में धरचौ है, वह सुख कहूँ ढूँढिबे पै हू देखिबे में नाँइ आयौ।

अर्थात बहुत से महतजन श्रीमद्भागवतजू में बर्नित रासपंचाध्यायी के अनुसार गोपी-भाव द्वारा श्रीगोपीरमण की उपासना करें हैं। ऐसे ही अनेक महानुभाव लोक-वेद-रीति अनुसार श्रीनंदनंदन-श्रीवृषुभाननंदिनीजू के संबंधरूपी स्वकीया प्रकास-रस कूँ सेवैं हैं।

काहू-काहू महत्पुरुषन ने परकीया प्रकास में श्रीस्वामिनीजू के परमोज्ज्वल-सर्वसिरोमनि स्वरूप कूँ विचार नाँइ करि–जोकि स्वयं भगवान एकमात्र श्रीनंद-नंदनजू के अतिरिक्त, जीवन की तो कहा चलाई ? साक्षात् श्रीभगवतस्वरूपन की हू आपके माऊँ कान्ताभाव सों देखिबे की क्षमता नाँइ है। ऐसे आपके स्वरूप में बिरह-बाधान की ही विसेषता में प्रेम-रस को उल्लास समझि, केवल परकीयाभाव की कल्पना करि एक प्रकार की उपासना प्रबाहित करि दीनी है। जाको आधार "ब्रह्म वैवर्त्त पुराण" में बर्नित भगवान श्रीकृष्ण के द्वारपाल श्रीदामा द्वारा ही दियो भयो श्राप बतायो जाय है। जाकूँ आपके छायास्वरूप ने ही भुगत्यौ है।

काहू-काहू रसिक-महानुभाव ने श्रीस्वामिनी-अधरामृत-महासिंधु में बिहार करिबेवारे भगवान श्रीकृष्णस्वरूप की उपासना बर्नन कीनी है। ऐसे ही और हू रसिक-महानुभावन ने श्रीस्वामिनी हृदयकमल की महामधुर-मकरंद के भ्रमरस्वरूप श्रीलालजू की उपासना निरूपन कीनो है। इन समस्त महानुभावन के बर्नन द्वारा ये हू स्पष्ट होइ है कि येही जोरी समय - समय पै श्रीब्रज में प्रगट होइ समस्त रसन की आधार बनि जाइ है। याते यह स्पष्ट है कि श्रीवृन्दावन-नवनिकुंज-महल को बिलास एवं नित्यकिसोर वैस की अनन्य यह जोरी नाँइ है सकी।

हमारे श्रीस्वामीजी महाराज ने निजमहल ते प्रगट होइ, अद्भुत-अगाध कृपा करि, प्रथम-समागम-एकान्त-रस-बिलास निजमहल श्रीवृन्दावन के महामधुर-रस-सार निपट-नित्यबिहार को जो अति सूक्ष्म रस है, जामें दोऊ श्रीजुगल नवजोबन के जोर में विभोर, उन्नत नवकिसोर वैस सों अनादिकाल ते अनिमिष अँखियन द्वारा निहारते-निहारते एवं तन, मन, प्रान, रोम-रोम ते मिलते-मिलते, न तो निहारिबो ही और न मिलिबो ही भान करैं हैं। ऐसे महाबिचित्र अनुराग के सर्वोपरि नित्यबिहार कूँ सहज में ही अपने निज आश्रितन कूँ एकमात्र आपने ही दीनौ है, जो कहूँ देखिबे में हू नाँइ आवै है।

कछु रस गायो सुक बरनि पंचाध्यायी के माँहि ।
सो रस फैल्यौ जगत में जयदेव आदि ललचाँहि ॥
रसिक भक्त जेते भये तिन तिन भज्यौ आपनें भाव ।
जुगल कल्पतरु एक हैं तामें नहीं दुभाउ ॥
सोड़स बिधि श्रृंगार की कबि सो बरनत ताहि ।
वृज सुन्दरि गोपिन रमें किधौं बखानत आहि ॥
एक नाइक बहु प्रीति जहाँ एक श्रृंगार रस नाहिं ।
एक चकोर चंदा बहुत निरखि सकै कहि काहि ॥
कुंजबिहारिन बदन बिधु अगनित चंद प्रकास ।
बरषत सुधा समूह रस पिय चकोर बहु प्यास ॥
एकहि चंद चकोर इक दृढ़ पतिव्रत बिचारि ।
कुंजबिहारी एक रस कुंजबिहारिन यारि ॥
रस सिंगार कहि एक रस दूजो दरसै नाँहि ।
तन मन प्राननि एकता हम सुमिरत हैं ताँहि ॥
रस श्रृंगार हरिदास को गौर स्याम इक प्रान ।
तन मन अरुझे कामरस पोषत रसिक निधान ॥
इक रस कहियत ताहि को जहँ दूजो रस नहिं होइ ।
काम प्रेम जहाँ एकरस तन मन प्रान समोइ ॥
एक रस बिन जे रस कहैं सोरस निरस जान ।
श्री हरिदासी एकरस जहाँ काम केलि रस खान ॥
गौर स्याम श्रृंगार रस काम प्रेम रस भोग ।
जहँ भूषन दूषन कबि कहैं सो हरिदासी सदा संजोग ॥
कोऊ बरनै ब्रजराज को कोऊ रास बिलास ।
अनंग रंग हरिदास के एक सेज की आस ॥
श्री हरिदास उदारमनि प्रगट भये इहि हेत ।
दुर्लभ ते दुर्लभ महा सो सुख रसिकन देत ॥



* श्री स्वामी जू की वधाई *

ललित प्रिये हरिदास जू, नित्य केलि सुखदानि।
कुंज बिहारिनि लाडिली, प्रगटी रस की खानि ।।१।।

अद्‌भुत रस की खान, ललितप्रिये स्वयं श्रीकुंजविहारिनलाड़िलीजू ही श्रीस्वामी हरिदास स्वरूप सों नित्य केलि कूँ प्रदान करिबे के ताँई या भूमंडल पै प्रगट भईं हैं।

भादों सुकल अष्टमी भू पर प्रगटे श्रीहरिदास।
घर घर प्रति अति होत कुलाहल नर नारीनि हुलास ।।
उदित मुदित दुति भान किरनि ज्यों पूरन प्रेम प्रकास।
बिपुल बिनोद भयो सबहिन कें संग बिहारिनिदास ।।२।।

सर्वोपरि नित्यबिहारिनीजू के ही निज प्रान, रसिक कुल-कमल-दिवाकर श्रीस्वामीजी महाराज के या धराधाम पै महामंगलमय अति सुभदिन भादो सुक्ल-अष्टमी को प्रगट होइबे ते सबनि के मन में या प्रकार को आनंद उमड़यौ कि समस्त नरनारी महा आनंद में विह्वल होइ, घर-घर एवं गली-गली में अति उल्लास में भरि कुलाहल करन लगे। जैसे सूर्य के उदय होत खेम समस्त अंधकार स्वतः नष्ट होइ, भूमंडल पै सब ठौर प्रकास छाइ जाइ है, तैसे ही आपके उदय होत खेम, स्वामी श्रीबीठलविपुलदेवजू, आदि समस्त श्रीनित्यविहारिनीजू के अनन्य आश्रितन के हृदय में पूर्नतम प्रेम कौ प्रकास छाय, अति विसाल विनोद बढ़ि गयो।

रस निधि स्वामी अष्टमी आई।
भादों सुकल पक्ष रसिकन हित ललित केलि संग लाई ।।
साधुन के अनुराग भयो अति प्रेम बढ्यौ अधिकाई।
श्री हरिदास रसिकवर प्रगटे गौर स्याम सुखदाई ।।३।।

अनादिकाल तें निजमहल में जो छुपी भइ निज केलि ही, कृपा में विवस होइ रसिकन के श्रीहृदय कमल कूँ सुसीतल करिबे के ताँई, रसरूपा, रसनिधि महा-मंगलमय सुभ दिवस श्रीस्वामी अष्टमी वा केलि कूँ संग लाई है। रसिकेश्वरी-रसरू-पिनी-गौर स्याम सुखदाइनी, स्वयं श्रीहरिदासीजू के प्रगट होइबे ते संत-जनन के हृदय में उत्तरोत्तर प्रेमानुराग बढन लग्यौ।

महल तें प्रगटे श्री हरिदास ।
सुख सागर नागर रंग भीनें अद्भुत प्रेम बिलास ।।
सहज सनेह प्रीतम आनंद निधि गौर-स्याम लियें पास ।
ललित केलि रसकन कों दीनी निज वृन्दावन बास ।।४।।

महाबिचित्र सुखरासि, नागरि सिरोमनि, अद्भुत प्रेमबिलासनी, रस-रंग-भीनी श्रीहरिदासीजू या भाँति निजमहल ते प्रगट भई हैं, जो आनंद-निधि गौर-स्याम अपने प्रियतम कूँ संग में ही ल्याइ, अति ललित केलि एवं निज वृन्दावन कौ बास, रसिकनि कूँ, सहज में ही दै दीनौ है ।

भूपर प्रगटी ललित किसोरी ।
लोक लोक अति आनंद बाढ्यौ भई रंगीली जोरी ।।
लियें सुभाव रहत नित पिय कौ तैसो ये रहै गोरी ।
कुंज महल रस दुर्लभ सब तें रसिक बिना कहै कोरी ।।५।।

या धराधाम पै ललितकिसोरी स्वयं श्रीहरिदासीजू के प्रगट होइबे पै, समस्त लोक-लोकान्तरन में तो आनंद कौ समुद्र उमड़ि पर्‌यौ, और दोऊ श्रीजुगल, निजमहल में परस्पर सुभाउ कूं लिये, महारंग में भरि, अति बिचित्र केलि करन लगे । इतेक अति दुर्लभ कुंजमहल कौ रस, रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज के अतिरिक्त रसिकम के ताँई और कौन कहि सकै हो ?

रसिकवर प्रगटे ललित उदार ।
बरषत घन ज्यौं अति आनंदहि महा प्रेम सुख सार ।।
जो साँचौ सनमुख भयो कोउ दीनों नित्य विहार ।
दास बिहारिनि अंग संग राजत छिन छिन प्रीति अपार ।।६।।

अति ललित, उदार-सिरोमनि श्रीस्वामीजू महाराज ने भूतल पै प्रगट होइ, सुख-सार-महाप्रेम-आनंद की बरषा घनघोर घटा की नाँई रसिकन हित आपने बरषाई है । जो भी जन श्रीस्वामिनीजू की निज कृपा प्रेरित आपके साँचे सन्मुख आये, तिन सबन कूँ निपट नित्यबिहार रसकौ दान दै, अगाध सुख सों निहाल करि दीने । और छिन-छिन नई-नई अपार प्रीति सों भरे भये श्रीगुरुदेवजू सतत आपके अंग-संग सुसोभित रहैं हैं ।

प्रगट भई ललित प्रिये रंग भीनी ।
कुंजबिहारिनि आपु बपु धारयौ छिनछिन प्रीति प्रवीनी ।।
महाभाग्य बडभाग्य सिरोमनि तिनहीं इनको चीन्हीं ।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि सदा केलि लवलीनीं ।।७।।

साक्षात, सर्वोपरि अति रंग भीनी ललिप्रिये स्वयं श्रीनित्यबिहारिनीजू ही श्रीहरिदासी स्वरूप सों छिन-छिन नई-नई प्रीति उदय करती भईं भूतल पै प्रगट भईं हैं। ऐसे आपके अति विचित्र स्वरूप कूँ महा बड़भागी, सौभाग्यसाली महत जनन ने ही भलीभाँति पहिचान्यौ है। कारन यावत रसिकन के सिरमौर श्रीस्वामीजू महाराज श्रीजुगल की निज-केलि-सुख में सदाकाल लवलीन रहैं हैं।

अति भली भई नित्य ललिते प्रगटी भाग्य हमारे जागे री ।
अब मिलि है पिय कुंजबिहारी रोंम रोम अनुरागे री ।।
चितवन हँसनि लसनि सुखरासी काम केलि रस पागे री ।
श्री हरिदास रसिक की जीवनि हँसि हँसि कंठनि लागे री ।।८।।

अति प्रसन्नता सों भरि आश्रितन सों आप बोले कि—हे भाई ! हम सबनि के चरमसीमा कौ बड़भाग अब उदय भयौ है जो कि—निज केलि की दृढ़-अनन्य अति लाड़िली श्रीललिताजू निजमहल ते या भूमंडल पै स्वयं प्रगट भई हैं। याते अब पूर्न विस्वास है गयो है, कि हमारे प्रानप्रियतम श्रीकुंजबिहारी-बिहारिनीजू सहज सुलभता ते हमें प्राप्त है जाँयगे। हमारी प्रानेश्वरी श्रीहरिदासीजू की चितवनि, हँसनि, लसनि ऐसी कामकेलि रस में पगी भई सुखरासि है, जाकूँ देखि रीझि-रीझि नव दूलह-दुलहिन दोऊ श्रीजुगल परस्पर कंठ सों कंठ लगाये निरन्तर खेलते रहैं हैं।

प्रगटी ललित ललित ललिते ।
महा प्रेम अद्भुत रस छाकी गुन निधि सुख सलिते ।
प्रियालाल को लाड लडावत उमँगि उमँगि मिलिते ।।
श्री हरिदास रसिक वर नागर कुंज केलि कलिते ।।९।।

अति ललित ते हू अति ललित अद्भुत प्रेम रस में छकी भईं, समस्त गुनन तें भरी पूरी सुख की सरिता स्वरूप स्वयं श्रीललिताजू ही या पृथ्वी-मंडल पै प्रगट भईं हैं। नव दूलह-दुलहिन श्रीप्रिया लाल को छिन-छिन नये-नये लाड़न तें आप या भाँति लड़ावैं हैं, जो दोऊ उमँगि-उमँगि नई-नई प्रीति सों सतत मिलैं हैं। ऐसे रसिक

बर नागर श्रीस्वामीजू महाराज नवनिकुंजमंदिर की केलि कलोलनि में निरन्तर सुसोभित रहैं हैं।

महल में बजत बधाई नीकी।
प्रियालाल अति ही आनंदे उमंगि बढी निजु ही की ॥
गुप्त रीति प्रगट भई सुख निधि सहज सु बनाबनी की।
श्री कुंजबिहारिनि ललित लाडिली करी रसिक के जीकी ॥१०॥

श्रीस्वामीजी महाराज के प्रगट होइबे पै निजमहल में श्रीजुगल कौ हृदय-कमल तो महा विचित्र उमंग में भरि गयौ, और समस्त सहचरि समाज मिलि, बड़े आनंद में बधाई गाइबे लग्यौ। साक्षात सुखनिधि नवदूलह-दुलहिन की गुप्त रसरीति जगत में प्रगट भई, या महा बिचित्र सुख के आनंद में सर्वोपरि उदार-सिरोमनि श्रीनित्यबिहारिनीजू ने अपने प्रानप्यारे प्रियतम कूँ मनभामते रस विलास सुखन सों सुखी कीनौ।

श्री हरिदास महल तें प्रगटे विपुन निसान बजाये जू।
अद्भुत प्रेम दियो तिनहिन कों जे जे सरनें आये जू ॥
बिपुल बिहारिनिदास सरस के भये मनोरथ भाये जू।
श्री नागरि नरहरिदास रसिकवर सबके हिये सिराये जू ॥११॥

रसिक अनन्यनृपति श्रीस्वामीमी महाराज के महल ते प्रगट होत खेम रस-मयधाम स्वयं श्रीबिपिनराज आनंद में भरि बधाई के नगाड़े या कारन सों और हू अधिक बजावन लगे कि–अब हम साँचे सरन में आइबेवारेन कूँ अद्भुतातित-अद्भुत निजमहल की गुप्त रस-रीति कौ प्रेम दान दै, सबनि कूँ निहाल करि सकैंगे। और आपके प्रगट होइबे ते श्रीविपुल-विहारनिदास एवं सरस-नागरी-नरहरि, रसिकदेवजू आदि सबन के हृदयकमल भलीभाँति सिराइ गये।

आज बधाई कुंज महल में बाजत परम सुहाई जू।
ललित प्रिये रस रासि उदौ करि नित्य केलि दरसाई जू ॥
श्रीबियुलबिहारिनिदासि सरस मिलि महाप्रेम झरि लाईजू।
श्रीनागर नरहरिदास रसिक कै आनंद उर न समाई जू ॥१२॥

सर्वोपरि आनंद में भरि समस्त सहचरि समाज सहित श्रीजुगल निकुंजमहल में आज परम उल्लास सों बधाई यों कहि कहि के बजाइ रहे हैं कि–हमारी प्रान

जीवनि रस रासि ललितप्रिये श्रीहरिदासीजू ने नित्यकेलि रसिकन कूँ दरसाइ दीनी है। रससागर श्रीविपुल बिहारनदास, एवं नागरि, सरस आदि सब मिलि महाप्रेम की झरि लगाइ रहे हैं। और हमारे श्रीस्वामीनरहरिदेवजू, श्रीरसिकदेवजू, के हृदय कमल में तो यह आनंद समाइ नांइ रह्यौ है।

आज बधाई रंग महल में बाजत परम सुहाई जू।
गौरस्याम को आनंद प्रगट्यौ सब सखियन मिलिमंगल गाईजू
देति असीस सदा चिरजीवौ इह आनंद लेहु लडाई जू।
श्री हरिदासी को निज जोरी करत केलि मन भाई जू ॥१३॥

निधिबनराज श्रीरंगमहल में समस्त सखी समूह मिलि कें परम सुहावनी बधाई गान करती भई कहि रही हैं कि–गौरस्याम जोरी को निज आनंद आज श्रीहरिदास स्वरूप सों जगत में प्रगट भयो है। बार-बार असीष देती भई कहैं हैं कि यह निज आनंद सदाकाल चिरजीवो, तथा या अद्भुत आनंद कूं मनभामती सदाकाल लड़ाती रहौ। इनके ही अति आनंद में श्रीजुगल रीझि-रीझि कें सतत केलि कियौ करें हैं।

प्रगटे श्री हरि श्री हरिदास।
गुप्त रीति प्रगट दरसाई अद्भुत प्रेम विलास ॥
छिन छिन प्रति दुलरावत गावत तन मन हियें हुलास।
अति आनंद भयो सबहिन कें ललित किसोरी पास ॥१४॥

साक्षात श्रीहरि ही श्रीस्वामी हरिदास स्वरूप सों जगत में प्रगट होइ, अपनी निज-एकान्त रसबिलास महल की अति अद्भुत गुप्त रीति कूं कृपा करिकें रसिकन के ताईं प्रगट दरसाइ दीनी है, और बड़े बिचित्र अनुराग, हुलास सों गाइ-गाइ कें छिन-छिन प्रति श्रीजुगल कूं दुलराइ-दुलराइ लड़ावै हैं। या प्रकार रसमय-सुख कूं देखि-देखि समस्त रसिकन के हृदय आनंद सों फूले नांइ माय रहे, और स्वयं श्रीललित-किसोरीस्वामिनीजू तो सदाकाल बिनके संग-संग ही रहैं हैं।

आजु की कृपा मोपै कही न जाई।
श्री हरिदास रसिकवर प्रगटे मेरे हित अति ही सुखदाई ॥
छिन छिन प्रति आनंद बढावत पोषत मन के भाई।
श्रीललितकिसोरी नित्य केलि में रीझि रीझि हँसि कंठ लगाई ॥१५॥

फिर आप आश्रितन ते बोले कि–हे भाई ! आज जो महा बिचित्र कृपा मोपै, भई है, वह कैसे हू कहिबे में नाँइ आइ सकै है । मोकूँ ऐसो प्रतीत होइ है कि–परम सुखदाई रसिकवर श्रीस्वामीजी महाराज, मेरे ताईं अति आनंद देबेवारे प्रगट भये हैं, छिन-छिन प्रति आनंद कूँ बढ़ाइ-बढ़ाइ कें मेरे मन कूँ आप पोषन कियौ करैं हैं । जाके कारन ही साक्षात श्रीललितकिसोरी स्वामिनीजू अति रीझि-रीझि, हँसि-हँसि नित्यकेलि में मोकूँ कंठ सों लगाइ लीनौ है ।

प्रगट भये श्री स्वामी हरिदास ।
गौर स्याम अँग सँग दरसावत बरषत केलि बिलास ।।
छिन छिन प्रति अति मोद बढावत महा मधुर मृदुहास ।
श्रीबिपुलबिहारिनिदास रसिकवर हिये सु प्रेम हुलास ।।१६।।

श्रीस्वामीजी महाराज ऐसे प्रगट भये हैं, जो कि रसिक-सिरोमनि श्रीजुगल कूँ सदाकाल अपने अंग-संग दरसाते भये बिनकी केलि बिलास की बरषा कियौ करैं हैं. अपनी महामधुर-हास्य कौमुदी द्वारा छिन-छिन प्रति दोऊन के बिचित्र मोद कू बढ़ाते रहैं है । जिनके गुननि कूँ सुनि, रसिकवर श्रीबिपुलबिहारिनदासीजू के हृदयकमल में प्रेम को हुलास सतत बढ़्यौ करै है ।

प्रगट भई ललित प्रिये हरिदासी ।
रसिकन कें आनंद भयो अति पाई सुख की रासी ।।
छिन छिन गावत प्रति दुलरावत हियें सु प्रेम हुलासी ।
बिपुल बिहारिनिदास को जीवन नित्य विपुन की बासी ।।१७।।

नित्य श्रीवृन्दावन की सुखरासि, ललितप्रिये श्रीहरिदासीजू के जगत में प्रगट होइबे तें समस्त रसिकनि के हृदय कमलन में अति बिसाल आनंद बढ़ि गयो है, जासों बड़े प्रेम के हुलास में भरि छिन-छिन प्रति दुलराइ-दुलराइ कें आपके गुननि कूँ गायौ करैं हैं । श्रीस्वामीबीठलविपुलदेवजू एवं गुरुदेवजू के तो नित्य प्रान जीवन स्वरूप ही आप हैं ।

प्रगट भई प्यारी ललित उदार ।
गुप्त रीति प्रगट करि सुखनिधि निरवधि नित्य विहार ।।
अति आनंद भयो संतन के बाढयौ प्रेम अपार ।
रसिक सिरोमनि को निज जीवन पाई प्रान अधार ।।१८।।

परम उदारसिरोमनि, ललितप्रिये प्रान-प्यारी श्रीहरिदासीजू जगत में प्रगट होइ कें श्रीजुगल की सुखनिधि गुप्त केलि रसरीति कौ निपट निरवधि नित्यबिहार रसिकन के ताँई आपने प्रगट करि दीनौ है। जासों संतनि के हृदयकमल में अपार प्रेमानन्द बढ़ि गयो। हमारे गुरुदेव श्रीरसिकसिरोमनिजू के तो निज जीवनि प्रानाधार स्वरूप ही आप प्राप्त भई हैं।

सुखरासि नवेली प्रगट भई।
अति आनंद बढ्यौ संतन कैं छिन छिन प्रीति नई॥
सहज लाडिली नित्य बिपुन की जीवन प्रान मई।
परम उदार ललित हरिदासी रसिकन केलि दई॥१९॥

सुखरासि नवेली श्रीहरिदासीजू के प्रगट होइबे तें संतन के हृदय में इतेक बिसाल आन्नद बढ़ि गयो, जासों छिन-छिन नई-नई प्रीति श्रीजुगल ते करिबे लगे श्रीवृन्दावन की प्रान जीवनि, सहज लाड़िली ललित उदार श्रीहरिदासीजू ने रसिकन के ताँई निजकेलि कूं दान दै सर्वोपरि रस के रसिक अनन्य बनाइ दीने हैं।

हमारे स्वामि सिरोमनि आए।
अति आनंद भरे सुखरासी महा प्रेम झर लाए॥
श्री रसिकसिरोमनि परम प्रीति सों हँसि हँसि कैं बतराए।
श्रीललितकिसोरी की निज जीवन कुंज केलि दरसाए॥२०॥

समस्त स्वामिन के हू स्वामी-सिरोमनि, अति बिचित्र आन्नद स्वरूप सुखरासि सुखनिधि, हमारे श्रीस्वामीजी महाराज ही एक ऐसे जगत में प्रगट भये हैं, जिनने सर्वोपरि पूर्नतम प्रेम के आनन्द को झर ही लगाय दीनौ है। हमारे गुरुदेव श्रीरसिक सिरोमनिजू पै आप रीझि, हँसि-हँसि के परम प्रीति सों बतरायो करें हैं, और हमारी तो एकमात्र जीवन-निधि ही हैं। जिनने अगाध कृपा करि श्री वृन्दावन नवनिकुंज मंदिर की केलि कूं सहज में ही दरसाइ दीनौ है।

श्रीहरिदास सदा सुख मेरे।
बरषत घन सम अति आनंदहि जुग रूप सुधा रस घेरें॥
रसिकन के हिय पोषत तोषत गौर स्याम लियें नेरें।
ललित किसोरी की निज जीवन महा प्रेम के फेरें॥२१॥

निज आश्रितन ते आप कहिबे लगे कि–हे भाई ! हमारे तन मन प्रान, रोम-रोम में सदाकाल अद्भुत सुखसिंधु स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज हो बसैं हैं, जो श्रीजुगल के रूप-रसामृत आनंद कूँ घनघोर घटा की नाईं निरंतर वरषायो करैं हैं। अपने प्रान जीवन दोऊ श्रीजुगल कूँ संग लै, रसिकन के हृदय कमलन कूँ सतत तोषन पोषन करते रहैं है। मेरे तो निज जीवन स्वरूप आप ऐसे हैं, जो सतत मेरो मन भ्रमर की नाईं आपके ही प्रेम में मडरायो रहै है।

धन्य धन्य दिन घरी धन्य धन्य छिन पल धन्य धन्य श्रीहरिदासी अवतरी। धन्य धन्य जुगल रस बरषत इन्द्र सम धन्य धन्य रसिकन हिय अवनी भरी ॥ धन्य धन्य बिपुल बिहारिनिदासी धन्य धन्य यह जिनन वरी। धन्य धन्य नर नारी मंगल गावत नाचत धन्य धन्य कहि कहि अनुसरी ॥ धन्य धन्य दसों दिसा भई प्रगट नई रस रीति धन्य धन्य नित्य बिहार लैं उचरी। धन्य धन्य रसिक ललित की जीवनि धन्य धन्य निरखि निरखि नैंन सुफल करी ॥२२॥

वो सुभ दिन, पल, छिन, घरी सब महा अद्भुत धन्यातिधन्य हैं, जामें साक्षात श्रीहरिदासीजू या धराधाम पै अवतरित भई हैं। जिनने इन्द्र के समान महाबिचित्र-रस की बरषा करि-करि कें रसिकनि के हृदयरूपी भूमि कूँ भलीभाँति भरि दीनौ है। धन्य धन्य श्रीविपुलबिहारिनदासीजू एवं महाबड़भागी बिन महतपुरुषन कूँ है, जिनने आपकूँ उत्तमकुल की पतिव्रतावत दृढ़ अनन्य भाव ते बरन करि लीनौ है। धन्य-धन्य बिन नर-नारिन कूँ है, जो आज महामंगलमय बधाई गान करि-करि धन्य-धन्य कहते भये आपके सन्मुख आये हैं। धन्य-धन्य बिन दसो-दिसानकूँ है,जहाँ-जहाँ नई-नई निज रसरीति को निपट नित्यबिहार महतजन उच्चारन कर रहैं हैं। धन्य-धन्य हमारे प्रानजीवन गुरुदेव श्रीरसिकसिरोमनिजू हैं, जिनने श्रीस्वामीजू महाराज के दरसन करि-करि कें अपने नेत्रन कूँ सफल करि लीने हैं।

हमारे बिहारी उत्सव आज
अति प्रसन्न भई नित्य लाडिली सुधरचौ सब ही काज ॥
महा प्रेम अनुराग बढचौ है बनि गयौ सब ही साज।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि दियौ कुंज कौ राज ॥२३॥

आज श्रीबिहारपंचमी श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज के महामंगलमय प्राकट्य-
होत्सव कौ अति अद्भुत सुभ दिन है। क्योंकि सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू ही
ति प्रसन्न होइ, स्वयं प्रगट भई हैं, याते श्रीरसिकनि के हृदय-कमल में महाप्रेम-
नुराग बढ़िबे ते बिनके सबही साज भलीभाँति सजि गये हैं। हमारे रसिकसिरोमनि
स्वामीजू महाराज ने आनंद में भरि, रीझि के निज अनन्य आश्रितन कूँ कुंजमहल
ी राजतिलक ही दै दीनौ है।

प्रगटे बांके श्रीबाँकेबिहारी सब सुखकारी जू।
गनित कला कला नहीं घटती कोटिक चंद जात बलिहारी जू।।
प अनूप अमी रस बरषत हरषत रसिक कुमुद फुलवारी जू।
म बिलास हास दसनन की कुंद कली हीरा मुख बीरा देखि
रति त्रिसकारी जू। चतुरदस बैस उमंगि जोवन की मूरति सूरति
ूब खुमारी जू।। गौर सरूप अनूप अंतर उर बिहरत मेटत मेड
द की वारी जू। जोई जोई करत सोई सब छाजत भगतन हित
ित ब्रतधारी जू।। बाँके विरद वेद विधि वरनत परसत नाहीं कहत
ुनत थकि हारी जू। नट नागर अद्भुत सुख सागर आगर सरस
सिक रस भारी जू।। श्री वृन्दाविपुन बिहारिनि रानी अंक भरे
बिहरत भुज चारी। श्री हरिदास ललित की जोरी रसिक अनन्यन
ाननि प्यारी ।।२४।।

सब सुखकारी अति बाँके रस के स्वरूप हमारे श्रीबाँकेबिहारीजी महाराज
ाज जगत में प्रगट भये हैं। जिनकी अनन्त कला कबहूँ-कैसेहू नाँइ घटि, या प्रकार
छिन-छिन बढ़ती रहै हैं, जिनपै कोटानुकोटि चन्द्रमा बलिहारी जाँइ है। जिनको
नूपरूप अमित अमृत-रस की बरषा करतो रहै है,जासों रसिक-कुमुद-फुलवारी प्रसन्न
ोय सतत फूली रहै है। प्रेम बिलासमय हास्यकौमुदी सों दसनन की उजियारी में पान
बीरा की ऐसी महाविचित्र सोभा है रही है, जाकूँ देखि, कुंदकली एवं हीरान की
छबि-छटा तिरस्कृत होइ है। प्रथम तौ नित्य-नव किसोरवैस, तापै नवजोवन रंग
ी उमँग, ताहू पै खूब खुमारीभरी सूरत, समस्त रसिकन के मनकूँ रससागर में
ड़ेल रही है। अद्भुत अनूप गौर स्वरूप उर अंतर में ऐसे विचित्र-प्रेम-रसमय बिहार
रै है, जासों वेद की समस्त मर्यादा मिट गई हैं। ये हमारे श्रीबिहारीजी महाराज

भक्तन के हित करिबे कौ सदाकाल-व्रतधारन किये भये जो कछु करैं हैं,सब सोभा पावै है। इनके अति बाँके बिरदकूँ बेद अनेकन प्रकार ते बरनन करि-करिकैं थकि गये हैं। आप सरसता में सबनि ते आगर,नटनागर,अद्भुत सुखसागर, रसिक सिरोमनि, भारी रस के स्वरूप हैं। श्रीवृन्दावननित्यबिहारिनीजू के प्रेम में बिबस होइ, अंक में लै, निरन्तर बिहार करैं हैं। ललितप्रिये श्रीस्वामीजी महाराज की यह अद्भुत जोरी रसिक अनन्यन कूँ प्राननि ते हूँ अति प्यारी है।

प्रगट भये श्री कुंज बिहारी।
रूप अनूप सकल गुन सींवाँ सब अवतारिन के अवतारी॥
नित्य किसोर निरंतर विहरत अपनी प्रान प्रिया उरधारी।
जनम करम जिनके परि-पूरन चहुँ ओर जगमगात सहचारी॥
एकहि रूप अनेक रूप धरि भक्तनि हित लीला विस्तारी।
श्रीवृन्दाबिपुन विहार सार रस रसिकन जीवनि जीव जियारी॥
श्री हरिदास कलपतरु जोरी रसना वरनै सु कहा विचारी।
ललित विनोद मोद रस छाके श्रीरसिक सखी छिन छिन बलिहारी॥२५॥

यावत अवतारन के अवतारी, सकल गुन सींवाँ, अनूप रूप, श्रीबाँकेविहारीजी महाराज निजमहल ते प्रगट भये हैं। अपनी निज प्रानप्रिया श्रीबिहारिनीजू कूँ हृदय में बिराजमान करि, नित्य-किसोर-बैस सों निरन्तर बिहार करैं हैं। भक्तन के हित अनेक अवतार धारन करि अनंत लीलान कूँ जिनने विस्तार कीन्यौ है। स्वयं आप सब रसन कौ सार, रसिकन कौ जीवन-धन, श्रीवृन्दावन कौ नित्यविहार, सतत एक-रस बिलस्यौ करैं हैं, जिनके चारों ओर सहचरि समाज रुख अनुसार सतत लाड़ लड़ावैं हैं। कल्पवृक्ष-स्वरूप श्रीस्वामीजी महाराज की या जोरी के अद्भुत गुनन कूँ रसना द्वारा कोऊ कवि कैसेहू बरनन नाँइ करि सकै है। अति ललित-विनोद मोदरस में छकी भईं श्रीरसिक सखी छिन-छिन या जोरी पै बलिहारी जाँइ हैं।

प्रगटे श्री नरहरिदेव उदार।
गौर स्याम अंग संग छबीले देत महा सुखसार॥
कुंज महल में सदाई राजै अद्भुत प्रेम अपार।
श्रीकुंजबिहारिनि ललित किसोरी रसिकन प्राँन अधार॥२६॥

परमोदार सिरोमनि श्रीस्वामी नरहरिदेवजू महासुख-सार, अतिछबीले श्रीगौर-
र कूं अंग-संग लै महल ते प्रगट भये हैं। अद्भुत अपार प्रेम सों कुंजमहल में दोउन
ड़ाइ-लड़ाइ सदा सुशोभित रहैं हैं। आप स्वयं श्रीकुंजबिहारिनि-ललितकिशोरी
कन की प्रानाधार-स्वरूप हैं।

प्रगटे श्री नरहरिदेव उदार।
श्रीहरिदास ललित वपु धार्यौ महा प्रेम सुख सार॥
श्री बृन्दावन सनमुख जिनने कीने जीव अपार।
श्रीरसिक सिरोमनि की निजु जीवनि निरखत नित्यविहार॥२७॥

महाप्रेम-सुखसार-स्वरूप स्वयं श्रीस्वामीजी महाराज ही अति ललितवपु
वामी नरहरिदेवजू स्वरूप सों जगत में प्रगट भये हैं। जिनने उदारता में बिबस
, अपार जीवन कूं श्रीवृन्दावन के सन्मुख करि, सर्वोपरि सुख सों निहाल करि
ी है। हमारे गुरुदेव श्रीरसिकसिरोमनिजू के आप निज जीवन स्वरूप ऐसे हैं, जिनकी
ते बे सर्वोपरि नित्यविहार कूं अवलोकन कियो करें हैं।

प्रगटे श्री नरहरिदेव रँगीले।
परम कृपाल उदार सिरोमनि प्रिया प्रेम गरबीले॥
श्री वृन्दावन की निधि एई अद्भुत रूप छबीले।
श्री रसिकसखी अंग संग सहज ही ललित केलि मनमीले॥२८॥

सर्वोपरि श्रीनित्यविहारिनीजू के प्रेम-गर्ब ते भरे अति गरबीले, सरस रंग ते
ीले, अद्भुत रूप छबीले श्रीवृन्दावन की साक्षात निधि परम कृपालु उदार शिरोमनि
स्वामी नरहरिदेव जू या धराधाम पै प्रगट भये हैं। रसिक सखी हमारे श्रीगुरुदेव
लत केलि में मन मिलाये भये सहज स्वाभाविक ही आपके अंग-संग रहैं हैं।

श्रीमत रसिकदेव प्रगटे।
गौर स्याम को अति सुखदाई तिनही के रंग जटे॥
रोंम रोंम प्रति आनंद बरषत नित्त सुकेलि रटे।
श्री हरिदास ललित बपु धार्यौ अवधि प्रेम अघटे॥२९॥

गौर-स्याम श्रीजुगल कूं अद्भुत सुखदाई प्रेम-स्वरूप हमारे श्रीस्वामी रसिक-
जू पृथ्वीमंडल पै प्रगट भये हैं। दोऊन के रंग में सतत जुटे भये, रोम-रोम सों
नंद की वर्षा करि-करि, नित्यकेलि की सदाकाल रट लगाये रहैं हैं। ऐसो प्रतीत

होय है कि स्वयं श्रीस्वामी जी महाराज ने ही प्रेम की अवधि स्वरूप ललित वपु कूँ धारन कीनौ है।

जै जै जै श्री निधिवन राज।
गौर-स्याम कौ अति सुखदाई सब विधि करन दुहुनि के काज ।।
महा रूप रस रासि छबीले अद्भुत जामैं प्रेम समाज।
श्रीकुंजबिहारिनि ललित रसिकवर तुमही कौं है हमरी लाज ।।३०।।

श्रीजुगल के यावत् मनोरथन कूँ समस्त रीति भाँति सों पूर्ण करिबेवारे दिव्याति-दिव्य-प्रेम-निधिन के सिरमौर महारूप-रासि श्रीनिधिवनराज की जय हो, जय हो, जय हो ! जामें छबीले श्रीजुगल की अद्भुत प्रेम-समाज निरन्तर लगी रहै है। बिनके ही आश्रय में मैं सतत परचौ रहूँ हूँ, याते हे श्रीकुंजबिहारिन ललित रसिकबर ! आप कूँ ही मेरी लाज है।

हमारे हरि हैं सदा सहाई।
जोई जोई रुचै करै पुनि सोई पोषत मन के भाई ।।
हरषि हरषि अनुराग बढ़त जीवनि अति सुखदाई।
श्री हरिदासी ललित किसोरी हँसि हँसि कंठ लगाई ।।३१।।

साक्षात श्रीहरि ही सदाकाल हमारी सहायता करिबेवारे हैं। जो भी कछु हमें रुचै है, सोई-सोई पूरन करि हमारे मन कूँ तोषन-पोषन कियो करें हैं, तथा प्रसन्न होइ-होइ कें मेरे अनुराग कूँ सतत बढ़ामते रहैं हैं, जासों हमारो जीवन अति सुखदाई व्यतीत है रह्यौ है। ललितकिसोरी श्रीहरिदासीजू ने मोकूँ हँसि-हँसि के हृदय ते लगाइ सब भाँति सुखी करि दीनौ।

तुव कृपा ते लाडिली तेरौ सुख लहियै।
तू मेरी जीवनि प्रान है कासौं यह कहियै ।।
यहै मनोरथ लाडिली अंग संग नित रहियैं।
ढील न कीजै लाडिली हसि कंठ लगैयै ।।३२।।

हे मेरी प्रानजीवन श्रीलाड़लीजु ! आपकी कृपा सों ही आपकौ सुख हमें प्राप्त है सकै है। आप ही एकमात्र जीवनि प्रान हो, फिर ये बात हम और कौन ते कहि सकें हैं। हमारो केवल एक ही मनोरथ है कि आपके ही अंग-संग सदाकाल रह्यौ करूँ। मानों इतेक कहिबे पै हू जब श्रीस्वामिनीजू ने कोऊ उत्तर नाँइ दीनौ, तब आप

ति आतुर होइ कहन लगे :– कि हे प्रान-लाड़िलीजू ! आप ढील नाँइ करि, मोकूँ सि कें कंठ सों लगाइ लेउ।

श्री स्वामी हरिदास कौ रस स्वामीयै जानैं।
और न इन बिन लहि सकै जौं कोटि बखानै।।
तन मन बचननि रंग सौं इन सौं मन मानै।
ताही कौ तिहि छिन करै प्रिया आपु समानै।।३३।।

रसिक अनन्यनृपति चूरामनि श्रीस्वामीजी महाराज कौ अति विचित्र-गोपनीय, तिझीनौ एकान्त महल कौ रस आपके अतिरिक्त और कोऊ नाँइ जानै है। आपकी ज कृपा के बिना और-और रसिकन ने कोटानुकोटि प्रकार ते रस कौ बर्नन कीने, हू वे नाँइ लहि सकै। जो कोऊ अति बड़भागी कृपापात्र-जन तन-मन-बचन सों दृढ़ नन्य होइ, बड़ी उमंग रंग में भरि, श्रीस्वामीजू को अपनो प्रानजीवन मानि लेवै ताकूँ साक्षात श्रीलाड़िलीजू तत्क्षण अपने समान बनाइ, रस की समस्त गाँसन कूँ ान करि देवैं है।

सबकी जानै सबकी मानै। श्री कुंज बिहारी सौं रति ठानै।
इन बिन और देखन की आनै। गौर स्याम के रूप लुभानै।
महा प्रेम अति रस मैं सानै। प्रान प्रिये हँसि हँसि उर आनै।।
श्री हरिदास कृपा की बानै। श्री ललितकिसोरी रीझि रिझानै।।३४।।

निज आश्रितन सों समझाते भये आप बोले कि–हे भाई ! सबके रस-देसन की त समझि, सबकी ठीक मान लेउ। किन्तु अपनी प्रेम-रति तौ एकमात्र श्रीवृन्दावन -निकुंज-मंदिर के दृढ़ अनन्य श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सों ही ऐसी ठानों, जो इनके तिरिक्त और काहू कूँ तौ देखिबे की हू सौगन्ध खाइ, इनके ही रूप में लुभाइ जाव। महतजन या अद्भुत महाप्रेमरस में सने भये होइ हैं, बिनकूँ ही हमारी प्रानप्यारी हँसिकें हृदय ते लगाइ लेवैं हैं। हमारे श्रीस्वामीजी महाराज कूँ एकमात्र कृपा रबे की ही बान परी भई है। तिनकी ही कृपा तें हम साक्षात ललितकिसोरी स्वामिनीजू कूँ रिझाय-रिझाय कें रीझि रहे हैं।

जाकें श्री हरिदास सहाई। ताहि कहा गम है रे भाई।
सो तो अति आनंद में डोलै। महा प्रेम भरे वचननि बोलै।।

छिन छिन प्रिय वर रंग बढावै । कुंज बिहारिनि के मन भावै ।।
श्रीललितकिसोरी इह रसभीनी । मिलत मिलत में चाह नवीनी।।३५।।

जिन महाबड़भागी जनन कूँ श्रीस्वामीजी महाराज सहाइ करें हैं, बिनकूँ इहलोक, परलोक में काहू प्रकार की गम ही नाँइ रहै है । वे तो अति आनंद में भरे श्रीवृन्दावन में निर्भय होइ डोलें हैं; और महा-प्रेमभरे बचनन तें सदाकाल बोलें हैं । और वेई श्रीस्वामिनीजू के अति मन भाइबे के कारन, बिनके प्रेमरंग कूँ आप छिन-छिन बढ़ायो करें हैं । क्योंकि ललितकिसोरी श्रीस्वामिनीजू हमारे श्रीस्वामीजीमहाराज के रस में सतत भीगी रहैं हैं, याते बिनके अनन्य जनन सों मिलते-मिलते हू आपके मन में नई-नई चाह बढ़ती जाइ है ।

जिनकी रुचि संतन सों भारी । तेई हरि के हैं हितकारी ।।
तेई महा परम सुख पावैं । अपनों प्रीतम लाड लडावैं ।।
जिनको हरि गुरु सों नहिं भाव । माया काल तिनहिं को खाव ।।
भूलि न तिनहीं के ढिग आवै । तिनकै दोषी दूर नसावै ।।
तिनके दोषिन कौ नहिं ठौर । रक्षा करे सु को है और ।।
यह निजु बात कही समुझाइ । भाग्यवान सों सुनियो आइ ।।
बेद पुरान कुवा सम जानि । बिन गुन काहू देत न पानि ।।
संतन बानी प्रगट प्रवाह । सब जीवन कों करत निबाह ।।
तेई तो सर्वोपरि जान । तिनही को प्रिया हँसि गहैं पान ।।
कुंज महल रस दुर्लभ भाई । तामें नहिं कछु और समाई ।।
छिन छिन बाढै रूप सवाई । निरखत लाल न नेकु अघाई ।।
ललितकिसोरी कंठ लगाई । विलसत केलि महा सुखदाई ।।३६।।

जिन महत-जनन की भारी रुचि संतनि के सत्संग एवं सेवा में होइ है, वेई जन श्रीहरि के साँचे हितकारी समझे जाँइ हैं । ऐसे ही जन अपने प्रीतम स्वरूप इष्ट कूँ लाड़ लड़ाइ-लड़ाइ कें महाप्रेम सुख सों सुखी रहैं हैं । बिनके माऊँ माया-काल भूल में हू नाँइ देखि सकै है, तथा ऐसेन के दोष दूर ते ही नष्ट होइ जाँइ हैं । भक्तन के अपराधिन कूँ रक्षा करिबेवारो और नोऊ नाँइ होइ सकै है । जैसे दुर्वासाजी की रक्षा अंबरीष महाराज ने ही कीनी । याते जिनकूँ श्रीहरि-गुरु-संतन में भाव नाँइ होइ है, बिनकूँ ही माया-काल खावैं है ।

कोऊ

निज मर्म की ये बात हमने भलीभाँति समझाइ कें तुमसों कही है। जो बड़-गी कृपापात्र जन होइंगे, तेई हमारी या बात कूँ समस्त रीति भाँति सों अपने हृदय धारन करि लेमेंगे।

बेद पुरान के बचन तो कूँवा के समान होइ हैं, बिना ग्याता पुरषन के कोऊ इ समझि सकै है। संतन की बानी श्रीगंगा-जमुना की नाँई जगत में प्रगट, प्रवाहित रही है, जामें समस्त जीवन कूँ सहज में ही निर्वाह होइ सकै है। संतन की वाणी जिनकूँ दृढ़ बिस्वास होइ है, तेई जन परमार्थिन में सर्वोपरि सौभाग्यसाली समझे इ हैं। बिनकूँ ही श्रीनित्यबिहारिनीजू हँसि हाथ पकरि, हृदय ते लगाइ लेवें हैं। न श्रीनित्यबिहारिनीजू के महल कौ रस सबते दूर एवं दुर्लभ है। वा रस में और हू की समाई नाँइ होइ सके है, ता महल में श्रीस्वामिनीजू कौ अद्भुत रूप छिन-न या प्रकार ते बढ़तो रहै है, जाकूँ स्वयं लाल अनमिष अँखियन ते निरन्तर हारते-निहारते कबहूँ नाँइ अघावैं हैं। बिनही श्री ललितकिसोरी प्यारी जू ने प्रेम बिबस होइ हमें हृदय ते लगाय लीनौं,ताते हम महासुखदाई केलि कूँ सतत विलसैं-लसावैं हैं।

जो कछु प्रिया करैं सोई होई।
आपौ बाँधि बहुत डहकाए पीछैं तिनकी भई है बिगोई ॥
जे तुम्हरे सुख में सुख पावैं तिनकी सरि दूजौ नहिं कोई ॥
श्रीकुंजबिहारिन ललित लाड़िली तन मन वचननि प्रान समोई ॥३७॥

आश्रितन ते आप कहिबे लगे कि :– हे भाई ! हमारी प्रानप्यारी श्रीस्वामिनी ही जो कछु करैं हैं, सोई होइ है। अपनी करतूत रूपी अभिमान में बँधि कें बहुत लोग ऐसे ही डहकि-डहकि कें मारे गये हैं, ताते तिनकी बड़ी फजीती भई है। जो भागी जन श्रीस्वामी जू के सुख में सुख मानें हैं, तिनकी समता करिबेवारो या त में और कोऊ नाँइ है सकै है। ऐसे महतपुरुषन कूँ ही स्वयं श्रीकुंजबिहारिन-ललाड़िली जू अपने तन-मन-बचननि एवं प्राननि में समोइ राखे हैं।

श्री हरिदास चरन सुखदाई।
जिन जिन धरे हिये में दृढ करि कुंज केलि निरखें रसदाई ॥
महा प्रेम अनुराग महाई प्रान प्रिये सब ही निधि पाई।
दास बिहारिनि सहज उजागरि यही रंग रंगि रंगि गुन गाई ॥३८॥

रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज के चरन-कमलन की सरन ऐसी महासुखदाई है, कि जिन बड़भागी जनन नें बिनकी सरन दृढ़ अनन्य भाव तें गहि लीनी, तिन सबनि नें महारसदाई कुंज-केलि कूँ आँखि भरि-भरि कें निहारचौ है। बिनकूँ ही महाप्रेम-अनुराग उदय होइ, अद्‌भुत-आनंद-निधि-स्वरूप प्रानप्यारी जू प्राप्त भई हैं। श्रीस्वामीजू के ही चरन-कमलन की कृपा-प्रसाद तें सहज उजागर श्रीगुरुदेवजू अगाध रंग-सागर में रंगि-रंगि के सतत आपके गुनन कूँ गायो करें हैं।

हमारो महल सदा सुखदाई।
प्रिया लाल कों रंग बढावत छिन छिन प्रीति सवाई ॥
छलकत छींट परी आनंद की ब्रज में नाँहि समाई।
यह गुप्त रीति हरिदास प्रगट करि रसिकन के मन भाई ॥३९॥

हमारो महल सदाकाल महा विचित्र सुखदाई है। साक्षात् श्री युगल के रँग कूँ ही ऐसो बढ़ातो रहै है, कि दोऊन की प्रीति छिन-छिन बढ़ती ही जाइ है। या महल के अति अद्‌भुत अगाध आनंद-सागर की छींट उछटि कें साक्षात श्री ब्रज में हू नाँइ समाई। या प्रकार की अति गुप्त सर्वोपरि निज रस रीति एकमात्र श्रीस्वामीजी महाराज ने ही जगत में प्रगट कीनी है, जो समस्त रसिक अनन्यन कें अति मनभाई है।

श्री निधिवनराज की जै रहियै।
जामें नित्य बिहार निरंतर काम कहानी कहियै ॥
श्रीहरिदास सुभायक अँग सँग और कहा हमें चहियै।
श्रीकुंजबिहारिनि प्रान पियारी उमँगि उमँगि दुलरैयैं ॥४०॥

निज आश्रितन ते आज्ञा करते भये आप बोले कि हे भाई! श्रीनिधिवनराज की सदाकाल जय-जयकार मनाते रहो, जहाँ श्रीजुगल कौ निरंतर नित्यबिहार होइ है, तहाँ बैठि कें श्रीयुगल की काम-प्रेम-रसमय बिलास की परस्पर चर्चा करि श्रीकुञ्जबिहारिनीजू कौ नयो-नयो दुलार करौ। श्रीस्वामीजी महाराज सहज सुभाउ ही ऐसे जनन के अंग-संग रहैं हैं, फिर तुम्हें और काहू बात की आवश्यकता ही नाँइ रहैगी।

लडैती जू सुनिये बात हमारी।
जैसे दई केलि सुखरासी अपनी जानि सँभारी ॥

तैसेई देहु देह सों भूलन यहै लेहु हिय धारी।
श्री कुंजबिहारिनि रसिक सिरोमनि ललित महा हितकारी ॥४१॥

अपनी प्रानप्यारी श्रीलाड़िलीजू सों प्रार्थना करते भये आप बोले कि हे
नधन ! जैसी सुखरासि निज केलि आपने मोकूँ अपनी समझि, अति अद्भुत कृपा
र दे दीनी है। तैसे ही या देह के अभिनिवेस कूँ हूँ आप भलीभाँति मिटाइ देवो।
ावतरसिकनकी सिरोमनि श्रीस्वामिनीजू आपही ललित-महाहित करिबेवारी हो।

रसिकवर वैद मिल्यौ सुखदाई।
निसदिन राखैं नारि हाथ में मुख देखत हरषाई ॥
औषद दई महा हित रस सों चाह बढी अधिकाई।
ललित केलि सुखरास छबीली तन मन वचननि भाई ॥४२॥

अतिश्रेष्ठ रसिक, कृपालु-दयालु, महासुखदाई बैद स्वरूप श्रीगुरुदेव हमें ऐसे
हैं, जो रातदिन हमारी नारी हाथ में राखें हैं। अर्थात् सतत कृपा भरी दृष्टि
हमें सम्हारते ही रहैं हैं। जिनके श्रीमुखचंद कूँ देखि-देखि कें हमारो चित्त बड़े
न्द में फूल्यौ नाँइ मावै है। श्रीजुगल कौ महा-रस-रूपी औषधि बड़े हित में
न-सानि कें सतत या भाँति दियो करें हैं, जासों उत्तरोत्तर हमारे अनुराग बढ़तो
ाय है। याते विचित्र सुखरासि-छबीली अति-ललितकेलि हमारे तन-मन-बचनन
माइ गई है।

मन तें भलो कीनी वीर।
महा मधुर रस पान कीनों छाडि बिषिया नीर ॥
गौर स्याम हित चित्त दीनों जान निजु यह पीर।
ललित केलि के रंग रण में मढ्यौ सुभट सुधीर ॥४३॥

फिर आप अपने मन सों ही कहिबे लगे कि हे भाई ! तैने बहुत ही भली
-जो कि विषयरूपी पानी कूँ त्यागि, महामधुररस कूँ भलीभाँति पीवन लग्यौ।
निज पीड़ा कूँ समझि, तैने श्रीजुगल सों अपनो हित एवं चित्त ऐसो लगाइ
किं अति ललित-केलि-रंग-रन में सुभट-सुधीर बीरन की नाँई मढ़ि गयो।

अनन्यनि कौ धन कुंजबिहारी।
रिदास प्रेम रस सागर सोभित अँग सँग प्रीतम प्यारी ॥

बिपुलबिहारिनिदास प्रगट नित्य सरसदास सुख की बरषारी ।
श्रीनागरी-नरहरिदास रसिक कुल मंडन जीवन प्रान सुकेलि हमारी ।।४४।।

श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्जमन्दिर में ही निरंतर बिहार करिबेवारे अति बिसुद्ध पूर्नतम प्रेमस्वरूप श्रीकुंजबिहारी एकमात्र उत्तम कुल की पतिव्रतावत दृढ़ अनन्यनि कें ही धन हैं। याही ते प्रेम-रस-सागर श्रीस्वामीजी महाराज के अंग-संग दोऊ श्रीजुगल सतत सुसोभित रहैं हैं। तैसे ही रससागर श्रीस्वामीबीठलविपुलदेवजू, अनन्य-मुकुटमनि श्रीगुरुदेवजू तथा श्रीस्वामी नागरीदेवजू, सरसदेवजू आदि जिनके हो रस-सुखकी सदाकाल बरसा कियो करें हैं। श्रीस्वामी नरहरिदेवजू एवं रसिक कुलमंडन श्रीस्वामीरसिकदेवजू की प्रानाधार श्रीजुगल की निज केलि ही हमारी प्रानजीवन है।

प्रिया बिन सुद्ध प्रेम नहिं पावै ।
भुव मंडल बैकुंठलोक लौं उँच नीच केतौ किन धावै ।।
एतौ मिलैं मिल्योई चाहत छिन छिन प्रीतम रंग बढावै ।
श्रीकुंजबिहारिनि ललित लाडिली तन मन वचननि हियौ सिरावै।।४५।।

या पृथ्वी मंडल ते लैकें श्रीबैकुंठलोक पर्यंत चाहे कितेक हू लोक-लोकान्तरन में ऊँचो नीचो कोऊ क्यों न चल्यौ जाइ, पै यह निर्विवाद, नितांत - सत्य है कि सर्वोपरि विसुद्धातिविसुद्ध पूर्नतमप्रेम, श्रीवृन्दावन की अनन्य विलासिनीं श्रीनित्य. बिहारिनीजू के बिना कैसेहू कहूँ प्राप्त नाँइ है सकै है। क्योंकि जिनके प्रेम में बसीभूत स्वयं श्रीलालजू तन-मन प्राननि तें निरंतर मिले रहिबे पैं हू मिलिबे के लिये आकुल-व्याकुल होइ सतत नये नये रंग भावन ते श्रीप्यारीजू के रंग कूँ बढ़ायो करैं हैं। याही सुखसों श्रीकुंजबिहारिन ललितलाड़िली हमारे तन-मन-प्राननि कूँ सतत सिरातीं रहैं हैं।

हमारे अनन्य नृपतिवर श्री स्वामी ।
नित्य बिहार विलास विलासी अद्भुत रस अभिरामी ।।
श्रीवृन्दावन सदाई राजत कुंज केलि कौ धामी ।
महा प्रेम सुखरासि रंग निधि श्रीहरिदासी नामी ।।४६।।

सर्वसिरोमनि, सर्वश्रेष्ठ-रसिकबर हमारे श्रीस्वामीजी महाराज यावत रसिक अनन्यनि में मुकुट-मनि राजाधिराज हैं। अति अद्भुत-अभिरामी, रसमय सर्वोपरि

त्यविहार कूँ ही विलसते-विलसाते भये, कुंजकेलि के धामी स्वरूप सों आप सतत
ज श्रीवृन्दावन में सुसोभित रहैं हैं। सुखरासि-महाप्रेम रंग निधि, श्रीहरिदासी नाम
जगत में विख्यात हैं।

श्री स्वामी के लाडिले गुरुदेव उदार।
अँग सँग केलि बिलोकहीं बिलसैं सुख सार॥
उमँगि उमँगि अंकौ भरें प्रिया प्रान अधार।
ललितकिसोरी प्रेम सौं अति रंग अपार॥४७॥

उदार सिरोमनि-अनन्य-मुकुटमनि श्रीगुरुदेवजू श्रीस्वामीजू महाराज के
ति ही प्रानलाड़िले हैं। सदाकाल आपके ही संग श्रीजुगल की केलि कूँ अवलोकन
र-करि कें रससारसुख कूँ सतत बिलसैं हैं। साक्षात श्रीस्वामिनीजू अपने प्राना-
र समझि, प्रेम में उमँगि-उमँगि आपकूँ अंक में भरें हैं। श्रीललितकिसोरीजू की
की ऐसी रीझनि ते महल में अति अपार रंग बढ़तो जाइ है।

स्वामिनि करुना करौ तुम मोकों।
हौं अनाथ नाथ नहिं कोऊ मन इन्द्री कों रोको।
रूप अनूप नैन दरसावौ अँग अँग अवलोकों॥
नस्वर देह नेह रति भूलौं मिलि बिछुरें नहिं तोकों।
जहाँ तहाँ प्रीति करी दुख पायौ अब तुव कृपा कटाछि सु ओकों॥
भवसागर बूडत तुम राखौ चरन कमल दे नौंकों।
श्री ललितकिसोरी मधुर सहेली मिलि बिलसौं रस कोकों॥४८॥

हे मेरी प्राननाथ श्रीस्वामिनीजू! मोपै कैसेहू आप करुनाकृपा करौ, मैं अति
नाथ हूँ, आपके अतिरिक्त मेरो कोऊ नाथ नाँइ है। दुर्जय मेरे मन-इन्द्रिन कूँ एक-
त्र आपही रोकि सकौ हौ। अपने अति अनूप-रूप कूँ ऐसौ दरसावो, जासों आपके
अङ्गन कूँ मन भरि-भरि कें अवलोकन कियौ करूँ। या नासवान देह में मेरी
ति-मति है रही है, याको काहू प्रकार भूलि, आपसों मिलि कें एक छिन हू नाँइ
छुरूँ। जहाँ-तहाँ प्रीति करि-करि कें हमने महान दुख भोगे है, अब आप अपनी
पाकटाक्ष द्वारा अपने श्रीचरन-कमलन को आश्रय रूपी नौका देकें, भवसागर में
ते भये मोकूँ राखि लेओ। फिर आपकी महामधुर-प्रान सहेलिन ते मिलिकें कोवा-
कूँ सदाकाल बिलसूँ-बिलसाऊँगो।

साधौ यह मत हमकों नीकौ लागै ।
लोक लाज कुल कानि कर्म तजि श्री कुंज बिहारी सों अनुरागै ।।
माया काल अरु तृष्णा डाँइनि सहज छोडि तजि भागै ।
श्रीललितकिसोरी संग छाँडि कर कहा कुटिल कामिनि संग पागै ।।४९।।

फिर संत-समाज सों आपने कथन कियौ कि–हे भाई ! हमने तो एकमात्र यही मत नीकौ लगै है कि–लोक-लाज-कुल-कानि, कर्म आदिक एवं मायाकाल-तृष्ना-डाइन कूँ भलीभाँति त्यागि निकुंज-मंदिर में सतत बिहार करिबेवारे श्रीबिहारी-बिहारिनीजू सों अनुराग करनो चहिये। साक्षात् श्रीललितकिसोरीस्वामिनीजू कूँ छोड़ि कें, या नरकगामिनी, कुटिल-कामिनी ते पगिबे ते तो, समस्त प्रकार तें हानि ही हानि है ।

जै जै श्री बृन्दावन चंद ।
महा रूप सुख रासि छबीले नित्य ही विहरत आनंद कंद ।।
जामें बसि जे अनत देत मन तेई हैं अति ही मति मंद ।
रसिक सिरोमनि श्री हरिदासी कीनें सहज प्रेम के फंद ।।५०।।

जय हो-जय हो श्रीवृन्दाबनचंदजू की ! जहाँ महारूप-सुखरासि-छबीले आनंद-कंद श्रीजुगल नित्य निरन्तर बिहार करें हैं, और रसिकसिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज ने सहज प्रेम कौ फंदा फैलाइ राख्यौ है। ऐसे अति अद्भुत निजमहल श्रीवृन्दावन में वसि कें, जो जन अपने मन कूँ अनत लगावें हैं, ते जन दुर्भगे अति ही मंद मति हैं

श्रीहरिदास भजौ मन मेरे ।
परम प्रीति रस रीति छबीली पैहौ अद्भुत सुख घनेरे ।।
श्री वृन्दावन कुंजमहल में रहि हौ सदा प्रिया के नेरे ।
ललितकिसोरी रसिक सु हित में इन बिन कोउ रहो कि डेरे ।।५१।।

अरे मेरे मन ! तू श्रीस्वामीजी महाराज कौ ही भजन कर, जासों छबीली परमप्रीति-निज रसरीति के अति अद्भुत-अगाध-सुख तोकूँ सहज प्राप्त हैं जायँगे, और श्रीवृन्दावन-निज-कुंजमहल में तू सदाकाल प्रानप्यारीजू के पास रहैगो। जब वे रसिक-सिरोमनि साक्षात श्रीललितकिसोरीजू तुमसों हित करेंगी, तब और कोऊ कितेक हू क्यों न रुठे रहौ, कछु नाँइ विगारि सकेंगे ।

श्री हरिदास सरन जे आये ।
कुंजबिहारी ललित लाडिले अपने जानि निकट बैठाये ।।
कुंज केलि निरखें निसि बासर अति आनंद हिये में छाये ।
दास बिहारिनि सब सुखरासी प्रानप्रिये हँसि कंठ लगाये ।।५२।।

श्रीस्वामीजी महाराज के जे जन साँचे सरन में आये, तिन सबन कूँ अति ललित लाड़िले श्रीबाँकेविहारीजी महाराज ने निज अपनो जानि, बड़े प्यार सों बुलाइ पास बैठाइ लीने हैं । वे महा बड़भागी जन रातदिन निकुंज-केलि कूँ निहारि-निहारि अद्भुत आनंद में या प्रकार ते भरि जाँय हैं, जैसे समस्त सुखन की रासि श्रीगुरुदेवजू कूँ प्रानलाड़िलीजू के हृदय ते लगाइबे ते वे आनंद स्वरूप है गये ।

महल हमारे गुदी परचौ है ।
हम भूलैं यह भूलैं नाहीं तन मन वचननि आँनि अरचौ है ।।
छिन हीं छिन आनँद बढावत गौर-स्याम सुख हियें भरचौं है ।
श्रीहरिदासी रसिक केलि में ललितकिसोरी कों प्रान करचौ है ।।५३।।

श्रीवृन्दावन निकुंज महल मेरे मन के ऐसे पीछे परि गये हैं जो देह कृत्य आदि काहू कारन सों मैं भूलिबो हू चाहूँ, तौहू ये मोकूँ नाँइ भूलै हैं । मेरे तन-मन-बचनन के आगे सदाकाल अड़े ही रहैं हैं । अति ललितलाड़िले श्रीगौर-स्याम कौ महाबिचित्र-सुख, मेरे हृदय में भरि, छिन-छिन आनंद कूँ बढ़ायौ करैं है, महामाधुरी ते भरी अति रसीली ललित-केलि में श्रीस्वामीजी महाराज ने मोकूँ अपनों प्रान बनाइ लीन्यो है ।

माई धामिनि कौ धामी धाँम धाँम वृन्दावन हैं ।
प्रिया लाल रंग भरे राजें सदाई जहाँ एक जिय एक प्रान एक तन मन हैं ।
महारूप रस रास सुख के बिलास दोउ मिले रस सिंधु आनंद के घन हैं ।
ललित हिये में आई लालन की भई भाई रोम रोम फूले ऐसे पाये रक धन है ।।५४।।

श्रीवृन्दावन के सर्वोपरिता कूँ प्रकास करते भये निज आश्रितन के प्रति बड़े ममता भरे वचनन द्वारा आपने कह्यौ कि–हे भाई ! परम रसमय, निज प्रेम स्वरूप हमारे श्रीवृन्दावनजू समस्त धाम-धामिन के धामी एवं निजमूल आराध्यस्वरूप हैं । जा धाम की महामाधुरी में बिबस होइ, दोऊ श्रीजुगल परस्पर तन, मन, प्रान तें

एक होय कें, अति रंग में भरे सदाकाल सुसोभित रहैं हैं। महारूप, रसरासि, सुख के बिलासी दोऊ श्रीजुगल मिलि कें अगाध, रसानंद सिंधु की घनघोर घटा की नाँई निरन्तर बर्षा कियो करैं हैं। या श्रीवनराज में स्वामिनी श्रीललितकिसोरीजू लाल के मनोरथ स्वरूप होइ, आनंद में भरि रोम-रोम ते फूली भई हमें ऐसी मिली हैं, जैसे काहू महारंक कूँ अटूट धन प्राप्त है जाय।

तो सी तुही हरिदास दुलारी।
तेरी सरि दूजौ नँहि कोई तेरेई रस बस कुंज बिहारी॥
तेरौ रूप कहत नँहि आवै तैसीये तेरी प्रीति महा री।
तैंसीये ललित केलि सुखरासी रसिकसिरोमनि प्रान अधारी॥५५॥

हे प्रानजीवनधन श्रीप्यारीजू! आपके सदृस एकमात्र आप ही हैं! स्वयं श्रीकुंजबिहारीलालजू आपके प्रेमरस में सतत बिबस हुये रहैं हैं। आपके अनूपरूप की निकाई कोऊ कैसेहू नाँइ कहि सकै है।

गुन तौ कछु बरनौ पै रूप की निकाई न जात कही।
अंग अंग माधुरी मनोहर कापैं परत लही। –श्रीगुरुदेवजू

तैसी ही आपकी महाप्रीति अति अद्भुत है। सुखरासि आपकी ललित केलि रसिक सिरोमनि श्रीस्वामीजी महाराज के प्रानाधार स्वरूप है।

श्री हरिदास हमारे प्रीतम।
परम उदार रसिक वर नागर रीझि रीझि कीनी आपुन सम॥
अँग सँग केलि निरन्तर बिहरत कुंजबिहारिनि प्राननि में रम।
सुख कौ सार समूह ललित रस ताहि पाय अब रही कौन गम॥५६॥

रसिकबर, नागर परम उदार, प्रानाधार हमारे प्रीतम श्रीस्वामीजी महाराज ने रीझि रीझि कें मोकूँ अपने ही समान बनाइ लीनौ है। ताते साक्षात् श्रीकुंजबिहारिनिजू हमारे प्राननि में रमि कें अंग-संग निरन्तर केलि करैं हैं। ऐसो महाबिचित्र अद्भुत सुखसार समूह-ललितरस पाइ कें अब हमें काहू की गम नाँइ रही है।

साधो भजन करैं सोई जीतै।
बात बनाये हाथ न आवै अंत चले उठि रीतै॥
मन इंद्री के बस ह्वै प्रानी खोवत हरि से मीतै।
श्रीहरिदासी रसिक केलि बिन और कहा लै कीतै॥५७॥

हे साधो भाई ! या जगत में जो जन श्रीहरि के भजन करैंगे, वे ही या माया, काल कूँ जीति सकैंगे। जो लोग केवल बात बनाइ-बनाइ कें अपने समय कूँ यों ही गँवाइ देवैं हैं, बिनके हाथ कछु नाँइ परि कें अंत में रीते ही चले जाँइ हैं। अपने मन-इन्द्रिन के बस होइ के ये प्रानी, परमदयालु-कृपालु साक्षात् श्रीहरि सदृस मित्र कूँ यों ही खोइ बैठे है। याते मैं तुमसों स्पष्ट कहूँ हूँ कि—श्रीस्वामीजी महाराज की अति ललितरस-केलि की ही अनन्य-लालसा अपने मन में धारन करि लेवो। और कछु लैबे ते ऐसो अद्भुत लाभ नाँइ है सकै है।

हमारे महल कौ नातौ साँचौ।
याही के बल गरजत सब सों आवै नाहीं आँचौ॥
कुंजबिहारी ललित लाडिली इनही हिय में खाँचौ।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि मन मिलि पोषत पाँचौ॥५८॥

निज आश्रितन तें आपने कह्यौ कि—हे भाई ! श्रीवृन्दाबन नवनिकुंजमहल के अनन्य नातेवारेन ते ही हमारो साँचो नातो है। क्यौंकि महल के नाते-बल पै ही हम सदाकाल गरजते रहैं हैं। ताते ही काहू प्रकार माया की आँच हमारे नाँइ आवै है। ललितलाड़िली श्रीप्यारीजू एवं श्रीकुंजबिहारीजू कूँ अपने हृदय में तुमहूँ भलीभाँति खाँचि लेउ। रसिकसिरोमनि श्रीस्वामीजू के मन सों मन मिलाइ, अपनी पाँचो इन्द्रिन कूँ प्रेम-रस तें पोषन करौ।

प्रिया कहा करें मन बस नाँही।
करनी कछू बनै नहिं मोपै मन बच क्रम सब अवगांही।
एक उपाय एही है स्वामिनि अपनी जानि गहो बांही।
श्रीहरिदास रसिक अनन्य बिन और ठौर हमकों नाँही॥५९॥

हे प्रानप्यारी लाड़िलीजू कहा करें ! हमारो मन कैसेहू बस में नाँइ आवै है। मन-बचन-क्रम समस्त रीति भाँति सों हमने अवगाहि के देखि लीनौ, कोऊ करनी मोपै नाँइ बनि सकै है। एकमात्र आप मोकूँ अपनी जानि कें, मेरो हाथ पकरि लेउ। याके अतिरिक्त और कोउ उपाय नाँइ है। क्यौंकि रसिक अनन्य श्रीस्वामीजी महाराज कूँ छाड़ि, और कोइ हमें ठौर नाँइ है।

राधे रूप रंगीली बाला । राधे कुंज बिहारी लाला ।।
राधे अद्भुत रूप रसाला । राधे प्रान प्रिया उरमाला ।।
राधे विलसत केलि विसाला । राधे परी प्रेम रस जाला ।।
राधे परम उदार कृपाला । राधे छिन छिन करति निहाला ।।६०।।

साँचे मीत विहारी पाये ।
जब ही ते वे तब ही ते हम करत सो मन के भाये ।।
लियँ सुभाव रहत निसि बांसर अति आनंद बढाये ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि हँसि हँसि कंठ लगाये ।।६१।।

जँ जँ विपुन बिहारी जू ।
तन मन बिलसत अति सुखरासी रोंम रोंम हितकारी जू ।।
अति आनंद भरी रसमाती छिन हूँ होति न न्यारी जू ।
श्रीललितकिसोरी की निजु जीवनि कुंजबिहारिनि प्यारीजू ।।६२।।

परसाद विहारिनि रानी कौ ।
अति आनंद बढै छिन ही छिन महा प्रेम सुखदानी कौ ।।
जाकी सोभा कहत न आवै अद्भुत रूप निमानी कौ ।
श्रीललितकिसोरी लाडलडावति अति जाँननि मन जानीकौ ।।६३।।

हमारी नित्य लडैती प्यारी ।
जाकी प्रीति नई नई छिन छिन रोंम रोंम हितकारी ।।
अद्भुत रूप रंग कौ सागर जीवनि प्रान अधारी ।
श्री हरिदासी ललित किसोरी कबहूँ होति न न्यारी ।।६४।।

प्रीतम के निज प्राँन हौ मेरी राधे रानी ।
प्रीतम जाके हित लीयै रहैं मन की जानी ।।
प्रीतम लाड लडावहीं सहजै परी बानी ।
प्रीतम सौं मिलि बिलसहीं अति सुख की खानी ।।
प्रीतम रंग बढावहीं आनंद की दानी ।
प्रीतम केलि सुजान है ललित मन मानी ।।६५।।

हमारो रसिक सिरोमनि प्यारो ।
लीयें सुभाव रहत निसिवासर तन मन अति हितकारी ॥
जोई जोई रुचै करैं पुनि सोई जीवनि प्रान अधारी ।
श्रीहरिदासी ललित किसोरी छिन हूँ होति न न्यारी ॥६६॥

राधे रसिक सिरोमनि प्यारी है ।
अति आनंद भरी सुखरासी छिन हूँ होत न न्यारी है ॥
महा रूप छिन ही छिन बाढे अद्भुत प्रीति सौं भारी है ।
श्रीललितकिसोरी तनमन मिलि कै विहरत केलिविहारी है ॥६७॥

राधे रसिक सिरोमनि रानी ।
अद्भुत रूप रंग कौ सागर महा प्रेम सुख सानी ॥
मिलत मिलत में चाह चौगुनी मिलिबे ही की बानी ।
श्रीललितकिसोरी प्रीति बढावति अति जाननिमनि मानी ॥६८॥

लडैती जू कौ महल महा सुखरासी ।
जिहि विधि चाहै प्रिया आपु कौ तैसीयै केलि विलासी ॥
छिन छिन प्रीति नई नई बरषत तन मन होत हुलासी ।
श्रीललित किसोरी रंग बढावति सदा सर्वदा पासी ॥६९॥

मेरी प्रिये प्रान सुखरासी ।
मेरे ही हित में नित विहरत तन मन होत हुलासी ॥
मेरे ही रंग रहति छबीली कुंजमहल की वासी ।
मेरी रसिक सिरोमनि राधे अद्भुत केलि विलासी ॥७०॥

राधे रसिक सिरोमनि रानी ।
अद्भुत रूप रंग रस छाकी निजु मिलिबे की बानी ॥
सहज सनेही परम लाडिली महा प्रेम सुखदानी ।
श्रीहरिदासी लाड लडावति अति जाननिमनि जानी ॥७१॥

निर्गुन सर्गुन आदि दै सब अपने ही अंग ।
गौर स्याम राजैं विपुन मैं सदा आपने संग ॥

छिन छिन प्रेम बढत रहै नित्य अपने ही रंग।
श्रीललित किसोरी भाव सों विहरै प्रेम अभंग ।।७२।।

ललित प्रिये कृपा करै तब सब बनि आवै।
कुंज केलि रस माधुरी आनंद में गावै ।।
कुंज महल में लाड सों नित लाड लडावै।
श्री रसिक सिरोमनि रंग सों मिलि हियो सिरावै ।।७३।।

धँनि धँनि धँनि धँनि श्रीहरिदासी। अद्भुत केलि बिलास बिलासी ।।
महा प्रेम अति सुख की रासी। साँवल गौर सदाई पासी ।।
श्रीविपुलबिहारिनिदासी सुखासी। रंग रसिकवर सहज निवासी ।।७४।।

तुमसी तुमहीं श्री हरिदासी। अद्भुत केलि महा सुखरासी ।।
प्रिया लाल कों लाड लडावैं। कुंजविहारिनि के मन भावैं ।।
छिन छिन रंग चढै अति भारी। हँसि हँसि भुजा कंठ में धारी ।।
ता छिन कौ सुख कहत न आवै। रसना एक कहाँ लौं गावै ।।
याही रस में भीज्यौ रहै। मिलत मिलत मिलिबौई चहै ।।
श्री वृन्दावन सदाई राजैं। कुंजमहल में निसि दिन गाजैं ।।
रसिक सिरोमनि कौ हित दान। सब सखियन के जीवनि प्रान ।।
कहन सुनन को इन बिन आन। ललितकिसोरी परम सुजान ।।७५।।

सुनिये श्रीहरिदास दुलारी। निजु राधापति कुंजबिहारी ।।
अब ही अंग संग कर लीजै। तातें नेंकु बिलंब न कीजै ।।
तुम कुंज महल की रानी। महा प्रेम अति ही सुख सानी ।।
नित्य लाल सुख दानी। हों अद्भुत रूप निमानी ।।
रसिक रंगीली बाला। मिलि कीजै हमें निहाला ।।
हे ललित किसोरी प्यारी। छिन हूँ नहिं कीजै न्यारी ।।७६।।

मैं मेरी हरिदास उदार।
जाही कों निज अपनी कीनी दीयौ महा प्रेम सुख सार ।।

ही कों प्रिय मानि अपनपौ करि राखें उरहार।
ललितकिसोरी रसिक प्रान मिलि बिलसत नित्य बिहार ।।७७।।

ो हरिदास दुलारी की जै। अद्भुत नित्यबिहारी की जै ।।
सिक सिरोमनि प्यारी की जै। तन मन अति हितकारी की जै ।।
है बात हिय में धरि लीजै। अँग सँग केलि निरन्तर दीजै ।।
हा प्रेम रस मिलि कें पीजै। तुम्हें निरखि-निरखि कै जीजै ।।
लितकिसोरी अपनी कीजै। रीझि रीझि अँक भरि लीजै ।।७८।।

ा रस कौ अनभौ परमान। जानें कोऊ रसिक सुजान ।।
ी वृन्दावन सुख कौ धाम। जामें बिहरत स्यामा स्याम ।।
हा प्रेम अति ही अभिरामा। सकल मनोरथ पूरन कामा ।।
ललितकिसोरी लाड लडावत। तन मन मिलि बिलसत बिलसावत ।।७९।।

हम हरि के हरि हमरे प्यारे।
रि हमरे हित रहत सदाई हम हरि के अति ही सुखकारे ।।
म हरि हरि हम केलि निरन्तर छिन हूँ कबहूँ होत न न्यारे।
रि हैं कुंजबिहारिनि रानी रसिक सिरोमनि प्रान अधारे ।।८०।।

इन नैंनन कों परि गई बानि।
गौर स्याम रस रूप माधुरी निरखि न नैंकु अघानि ।।
जागत सोवत अँग सँग जोवत भूली लोक वेद कुल कानि।
श्रीललितकिसोरी मधुर सहेली दीनी काम केलि रस खानि ।।८१।।

रसिक वर सुनिये कुंजबिहारी।
जो कछु करौ रुचै सो मोही तुम तौ अति हितकारी ।।
अँग सँग केलि निरन्तर विहरत यहै बात उरधारी।
श्रीललितकिसोरी श्रीहरिदासी छिन हूँ होत न न्यारी ।।८२।।

जै जै श्री हरिदास बिहारिनि जू।
जिनकी कृपा चहत सांवरौ नित्य पिया की प्यारनि जू ।।

तन मन एक एक हैं दोउ रोंम रोंम हितकारनि जू।
श्रीललितकिसोरी रसिक प्रान मिलि अँग सँग केलि निहारनि जू ।।८३।।

जै श्री हरिदासी राधे जू।
महा प्रेम भरि अति सुखरासी अद्भुत रूप अगाधे जू ।।
परम कृपाल उदार रसिक वर हरत लाल की बाधे जू।
श्री कुंजबिहारिनि ललित किसोरी पुरई मन की साधे जू ।।८४।।

भजि मन श्री स्वामी हरिदास।
रसिक सिरोमनि आनंद की निधि कुंज महल में बास ।।
निरखें कुंज केलि माधुरी सदा पियारी पास।
श्रीललितकिसोरी परम लाडिली बिलसत प्रेम बिलास ।।८४।।

जो कछु करैं सु हरि करैं हरि सब सुखदाई।
तिनके काज सँवारि हैं जिनके मन आई ।।
प्रेम प्रीति हिय में धरें चरननि लपटाई।
उमँगि उमँगि आनंद में हरि के गुन गाई ।।
छिन छिन आव बिहात है भूल्यौ क्यों रहाई।
अब समझै तौ समझ लै पाछैं पछिताई ।।
ऐसौ समौ न बहुरि है दाव भलौ लगाई।
कोटि जतन हरि बिन करो कछू बनै न भाई ।।
परम उदार कृपाल ह्वै हरिदास बताई।
जो साँचौं सन्मुख भयो लियो कंठ लगाई ।।८६।।

ललितप्रिये कृपा करें तब सब बनि आवै।
कुंज केलि रस माधुरी आनंद में गावै ।।
कुंज महल में लाड सों नित लाड लडावै।
श्रीरसिक सिरोमनि रंग सों मिलि हियो सिरावैं ।।८७।।

श्रीप्रियालाल बिन सब ही फीके।
अद्भुत रूप रंग रस अद्भुत अद्भुत लाड महल में नीके ।।

कुंजबिहारिनि प्राननि प्यारी करत मनोरथ सब ही जीके।
श्रीललितकिसोरी अति बडभागी पाये रसिक सिरोमनि ही के ।।८८।।

तन मन है सब प्रिया को हौं प्रिया की दासी।
मो पै कछु बनें नहिं सुनिये रस रासी ।।
माया अति बलवान है कियो चाहति हाँसी।
कृपा कीजै ललित जू राखौ निजु पासी ।।८९।।

मोहि अपनी करि जानिये हरिदास दुलारी।
तुव अँग सँग निसि दिन रहौं देवो केलि महारी ।।
अमित प्रेम बाढै छिन छिन सुख होत हियारी।
कुंजबिहारिनि ललित लाडिली प्रानन तें प्यारी ।।९०।।

बनराज हमारे प्यारे हैं।
नित्य सदा भूतल पर राजत महा प्रेम रस भारे हैं ।।
जो कछु रुचै करें ये सोई तन मन अति हितकारे हैं।
श्रीकुंजबिहारी कौ निजु जीवनि छिन हूँ होत न न्यारे हैं ।।९१।।
सोभा निधिवनराज की कापै बरनी जाई।
महा प्रेम आनंद भरि छिन छिन हिय हुलसाई ।।
श्री प्रिया लाल के रंग सों अति हीं छबि छाई।
ललित किसोरी प्रान हैं सखियन सुखदाई ।।९२।।

श्री हरिदास के सरन आवरे।
और कछू भूलै मति भाषै श्री कुंज बिहारी लाल गावरे ।।
कुंज केलि निरखें निसि बासर सुख पावै निज महा भावरे।
दास बिहारिनि अँगसँग राजत सब रसिकन सिरमौर-रावरे।।९३।।
अनन्य नृपति वर लाडिले तुम नित्य बिहारा।
प्रिया लाल के हेत कौं रस-रासि उदारा ।।
प्राननि प्रान अधार हौ अंसन भुज धारा।
ललितकिसोरी भाव सौं विलसत सुख सारा ।।९४।।

महा सुख प्रिया नाम अधार ।
अति आनंद रूप निधि रस निधि सकल सार कौ सार ॥
जाकी रसना भूलि हूँ निकसै होइ प्रिया उरहार ।
श्रीललित रसिकवर की निजु जीवनि अद्भुत नित्यबिहार ॥९५॥

भजि लै कुंज बिहारिनि बाल ।
अद्भुत रूप रंग रस माती चितवनि बंक बिसाल ॥
पाई रंक निसंक अंक धन करि राखो उर माल ।
श्रीललितकिसोरी लाड लडावत सहज सनेही ख्याल ॥९६॥

अपनें हाल मस्त सुखदाई ।
अपनें रंग रहत निसि वासर अपनें ही प्रेम सहाई ॥
अपनी प्रिया लाल हित अपनें अपनी केलि मनभाई ।
अपनीये रसिक सखी हरिदासी अपनीये रीझि रिझाई ॥९७॥

कृपा कीनी लाडिली अपनी निजु जाँनी ।
महा प्रेम आनंद भरी अद्भुत सुख सानी ॥
तन मन वचननि एकता यह अकथ कहानी ।
ललित किसोरी प्रान है बिलसत मन मानी ॥९८॥

सोई रहै महा आनंद में एक लाडिली जाहि राखै ।
और उपाव करौ किन कोऊ गौर स्याम रस रूप न चाखै ॥
निरखैं केलि निकुंज माधुरी जाहि प्रिया अपनों करि राखै ।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि सबही विधि पुजवति अभिलाखै ॥९९॥

साधो कथा कहै सो कीजै । तातें महा प्रेम रस पीजै ॥
गौर स्याम सोभा को सागर सहज हियें धरि लीजै ।
ललित प्रिये सुख रासि छबीली इनकों तन मन दीजै ॥१००॥

साधो भाई ऐसौ महल हमारो ।
निरगुन सरगुन वारि है जाकी कहै न वेद विचारो ॥

अद्भुत प्रेम रंग रस अद्भुत अद्भुत नित्य बिहारौ।
ललित प्रिये सुख रासि रसिकवर करि राख्यौ उरहारौ ॥१०१॥

नित्य विहार निरन्तर मेरो।
ाद्भुत प्रेम रंग रस अद्भुत अद्भुत रूप सुधा कौ घेरौ ॥
ालित प्रिये सुख रासि रसिकवर ये कृपा करि छिन छिन हेरौ।
ास बिहारिनि तन मन राची कोउ प्रसन्न रहौ कि रूठेरौ ॥१०२॥

सहज बिहार निरन्तर मेरौ।
ान मन मिलि विहरत दोउ प्रीतम छिन छिन प्रेम घनेरौ ॥
ीवन प्रान सुकेलि हमारी दास बिहारिन कियों निबेरौ।
दा प्रसन्न ललित हरिदासी कोउ दहिनों रहौ कि डेरौ ॥१०३॥

बिहारिनि संग निरन्तर मेरें।
जाकी कृपा लाल रहें वंच्छित जीवत याही हेरें ॥
निकसि न सकत रूप सागर तें परे प्रेम रस फेरें।
ऐसी ललित किसोरी प्रीतम कहा जगत के डेरें॥१०४॥

मेरी ललित प्रिये हरिदासी रस की रासि भली री।
नित्य सुकेलि बिलास बिलसत रंग रली री ॥
कुंज बिहारिनि बाल जीवनि प्रान अली री।
सुख कौ सार समूह किसोरी तुव गुन है महली री॥१०५

तुम सों बात सबै बनि आवै तुमहीं लेहु सुधारि।
आपौ बाँधि बहुत दिन बीते अब तौ मानी हारि ॥
जो कछु करौ होउ पुनि सोई कुंजबिहारिनि यारि।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि चौरे कही पुकारि ॥१०६॥

हरि कौं भजै सोई तौ नीकौ।
सोई जीतै माया काल कौं लगै जगत सब फीकौ ॥
पति कौं सेवै सोई पतिवर्ता यौं अधिकार है जी कौ।
कुंजबिहारिनि ललित लाडिली प्रान अधार है पी कौ ॥१०७॥

विसै वासना तजौ सासना हरि भजि करौ आपनों काज।
महा परम वैराग भजौ अनुराग सबन कौ राज॥
श्रीहरिदास के चरन सरन तजि और ठौर नहिं पावौ।
श्रीरसिक सिरोमनि ललितकिसोरी कुंज केलि जस गावौ॥१०८॥

धन्य धन्य लडैती मेरी है।

अपनी जानि बिहारिनि रानी कृपा दृष्टि करि हेरी है।
छिन छिन प्रीति करत अलबेली सदाई रहत सु नेरी है।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि तन मन इनही केरी है॥१०९॥

जै जै जै वृन्दावन आनंदचंद। जिनकी कृपा सदा आनंद॥
जामें बिहरें प्रियालाल कंत। प्रेम मगन भये खेलें बसंत॥
रसिक सिरोमनि बाल प्रवीन। छिन छिन अद्भुत रूप नवीन॥
तन मन बचननि प्रीतम लीन। सब विधि सब सुख तिनकौं दीन॥
श्री हरिदासी कौ जस गावै। सोई इनकों निज करि पावै॥
ललितकिसोरी लाड लडावै। कुंजबिहारिनि के मन भावै॥११०॥

नमो नमो जै श्री वृन्दावन रस बरषत घन घोरी।
नमो नमो जै कुंज महल नित नमो नमो जामें सुख होरी॥
नमो नमो जै कुंजबिहारिनि नमो नमो प्रीतम चित चोरी।
नमो नमो जै श्री हरिदासी नमो नमो इनही की जोरी॥१११॥

मैं तो नित्य बिहार सार गलताँन समाना।
गौर-स्याम रस सागर आगर विलसौं मन माना॥
अमित प्रेम रस पियों जियों सब तजौं वेद कुल काना।
वाद विवाद कछु नहिं जानौं मैं हौ चतुर सुजाना॥
वेद पुरान कहो मति कहियो मुहि अनभौ है परमाना।
कुंजबिहारी बिहारिनि दोउ हैं मेरे जीवनि प्राना॥
अजर अमर निर्भय पद पायौ रसिकन में सुलताना।
[illegible]

एरी मेरो वृन्दावन सुख धाम ।
प्रियालाल कों लाड लडावत सब विधि पूरन काम ।।
महा प्रेम सोभा कौ सागर रोंम रोंम अभिराम ।
ललित रसिकवर जू की जीवनि कुंज केलि बिश्राम ।।११३।।

जै जै श्री वनराज हमारे ।
जिनकी कृपा बिहार विलोक्यौ श्री हरिदास सम्हारे ।।
छिन छिन नई नई प्रीति प्रिया को प्रानन हूँ ते प्यारे ।
श्रीरसिक सखी अँग सँग सहज हीं कबहूँ होत न न्यारे ।।११४।।

यति जयति श्रीहरिदास दुलारी । जयति जयति प्रिय ललित हमारी ।।
यति जयति श्री कुंजबिहारी । जयति जयति सुख बरषत भारी ।।
यतिजयति केलि सहज निहारी । जयतिजयति श्रीरसिक उदारी।।११५।।

जै जै जै हरिदासि पियारी ।
ै जै कुंजबिहारी लाडिलो जै जै जै यह प्रीति तिहारी ।।
ै जै रंग बढत छिन ही छिन जै. जै सोभा सिंधु अपारी ।
ै जै रसिक सखी की जीवनि जै जै केलि महा सुखकारी ।।११६।।

जै जै कुंजबिहारिनि रानी ।
ै जै नवल लाडिलौ प्रीतम जै जै केलि महा कल ठाँनी ।।
ै जै श्री हरिदास रसिक वर प्रिया प्रेम के सब सुख दानी ।
ै जै दास विहारिनि अँग सँग निसि दिन निरखत काम कहानी ।।११७।।

जै जै नित्य किसोरी बाला ।
ै जै ललित लडावत निसिदिन जै जै बिलसत तन मन लाला ।।
ै जै कुंज [illegible] सुखरासी जै जै सेज परे जाके पाला ।
ै जै निधिवनराज रँगीले जै जै रसिक निहाल निहाला ।।११८।।

माई [illegible]

रखत नैन जियें प्रेम रस पान कियैं बिलसत चित दियें अति
हतकारी जू ।। रीझि रीझि अंक भरें प्रानन सों प्रान अरें सुख कौ

समूह धरें परम उदारी जू । ललित आनंद पाइ मिले दोउ एक भाइ छिन छिन बाढै चाइ रूप की उज्यारी जू ।।११९।।

मेरी गति तुही है लडैती प्रान प्यारी जू ।

भई है कृपाल राधे हितु कौ हितु जानि सकल सुख निधान परम उदारी जू ।। सहज सनेही दोउ रूप ही के रस पियें उमँगि उमँगि अंसनि भुज धारी जू । ललित रसिक वर सदाई समीप रहैं मिलत मिल्यौई चाहैं जीवन हमारी जू ।।१२०।।

प्रिया जू की चितवनि प्रेम की सुधारी है ।

चितवत चित हरें, प्रानन आनंद करें, ताही रंग भरें, आली देह सुधि हारी है । लपटि महा रस बेली ललित सुखद झेली विवस बिहार बढ्यौ रूप एक सारी है ।। नवल निकुंज दोउ जानत न कौन कोउ दासी हरि सावधान रीझि रीझि वारी है ।।१२१।।

मैं मेरी हरिदास सदाई ।

कुँज केलि तन मन मिलि बिलसत कुंजबिहारिनि सहज सुभाई ।।
रूप सिंधु में नेह तरगें तोषत पोषत पिय की भाई ।
रसिक सिरोमनि ललितकिसोरी महा प्रेम आनंद झर लाई ।।१२२।।

यह सुख री हों काहि सुनाऊँ । रसिक अनन्यनि सों मिलि गाऊँ ।।
तिनकी कृपा प्रेम पद पाऊँ । गौर स्याम कौं लाड लडाऊँ ।।
उनकौ सुख उनहीं दुलराऊं । पलक छिनक कहुँ बिछुरि न जाऊँ ।।
निरखों केलि सहज मन भाऊँ । श्रीललितकिसोरी तन मन प्रान समाऊँ ।।

श्री हरिदास बिहारिनि रानी हैं ।

अद्भुत रूप रंग कौ सागर महा प्रेम रस खानी हैं ।।
कुंज महल में लाड लडावति गौर स्याम सुख दानी हैं ।
श्रीललितकिसोरी रसिकसिरोमनि अति जानन मनजानी हैं ।।१२४

श्री हरिदास सहज मेरी जीवनि ।

अति उनमत्त महा सुख रासी कुंज केलि रस पीवनि ।।

हरषि हरषि अनुरागहिं बरषत अवधि प्रेम की सींवनि ।
दासि बिहारिनि प्रान छबीली जैसै पन्नग की मनि ।।१२५।।

श्री हरिदास हमारे प्रान ।
कुंज केलि रस रूप माधुरी बरषत रसिक सुजान ।।
महामत्त उनमत्त छबीले करत मधुर कल गान ।
दासि बिहारिनि सहज लाडिली जीवन यही निदान ।।१२६।।

मोहि भरोसौ स्वामी जी कौ ।
करि हैं अपनों आप बरोबरि प्रान अधार है पीकौ ।।
विषै वासना जारि खेह करि उपजै हैं हित नीकौ ।
श्रीरसिकबिहारी-बिहारिनि तन मन और लगै सब फीकौ ।।१२७।।

श्री स्वामी हरिदास रसिक बर नागरा ।
जीवन प्रान अधार प्रिया उर कौ हरा ।।
अद्भुत रूप रसाल रंग कौ सागरा ।
कुंज केलि सुख रासि सबन तें आगरा ।।१२८।।

श्री स्वामी हरिदास रसिक बर गाइये ।
तातें नित्य केलि रस रीति महा सुख पाइये ।।
कुंजबिहारिनि बाल सु लाल लडाइये ।
रीझि रीझि भरि अंक करत मन भाइये ।।१२९।।

राख्यौ लाड बिहारिनि रानी ।
जोई रुचै करै पुनि सोई क्यों न करै लालै सुख दानी ।।
कुंज महल कौ राज तिलक दियौ महा प्रेम अति रस में सानी ।
बार बार हँसि कहत लाडिली ललितकिसोरी मो मन मानी ।।१३०।।

मेरी राधिके प्रवीन ।
अपनें ही हित में नित राखत छिन छिन अद्भुत प्रीति नवीन ।।
मिलत मिलत आनंद अति बाढै पायें जल ज्यौं मीन ।
ललित केलि प्राननि मिलि बिहरत आप बरोबरि कौन ।।१३१।।

साधो दुख करो मति कोई ।
जिन जिन देह धरी तिन छाँडी थिर नहिं रहिया कोई ।।
याहि छाडि हरिचरननि लागै तिनकी सरि दूजो नहिं कोई ।
श्रीकुंजबिहारिनि ललितकिसोरी तन मन प्रान समोई ।।१३२।।

रसिकवर और कहा चहिये ।
हित चित की तुम नीके जानत तुम्हरे संग रहिये ।।
तुम ही सों मिलि आनंद पावै तुम्हरौ सुख लहिये ।
श्रीकुंजबिहारिनि लाडिलो तन मन कर गहिये ।।१३३।।

मेरी लडैती अति सुकुमार साहबनी रस भीनी ।
मेरेई हितु हितु करतलाल सों परम उदार महा परबीनी ।।
मेरेई रंग रहत निसि बासर छिन छिन प्रीति नवीनी ।
मेरेई कुंजबिहारी लाड सों रीझि अंक भरि लीनी ।।१३४।।

मेरे प्रान जीवन धन राधे ।
महा रंग रस रासि रसिकवर अद्भुत रूप अगाधे ।।
ललित लाल कौ अति सुख दैनी सब ही पुजवत साधे ।
श्रीहरिदास परम बडभागी सहज सनेही लाधे ।।१३५।।

नित्य अचाह प्यालौ पियो ।
अपनी जानि बिहारिनि राजी अपने हाथ दियो ।।
छिन छिन रंग चढै अति भारी आनंद उमंगि हियो ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि आप समान कियो ।।१३६।।

श्री वृन्दावन रस धाँम अति अभिराम री ।
गौर-स्याम सोभा कौ सागर बिहरत आठों जाम री ।।
ललित प्रिये सुखरासि छबीली अवधि काम निष्काम री ।
प्रियालाल कों तन मन मिलवत रसिक सिरोमनि बाँम री।।१३७।।

सुनों रसिक हरिदास बिहारी ।
भूलें देह केलि निज निरखैं हँसि हँसि भुजा कंठ पर धारी ।।

तुम सम और दूजौ नहिं कोई तन मन वचननि अति हितकारी ।
श्रीललितकिसोरी की निजु जीवनि कुंजबिहारिनि प्रानन प्यारी ॥१३८॥

लडैती तेरी कृपा कहिय न जाइ ।
छिन छिन प्रति अति पोषत तोषत आनंद उर न समाइ ॥
अपनी कहि कहि रंग बढावत हँसि हँसि कंठ लगाइ ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि छकी रहें महा भाइ ॥१३९॥

लडैती जू बिलम करौ मति कोई ।
लीजै बेगि बुलाइ पियारी तुमही करौ सोई होई ॥
परम उदार रसिकवर नागरि प्राँनन माँझ समोई ।
श्री हरिदासी ललितकिसोरी नित्य केलि मिलि जोई ॥१४०॥

हौं तो श्री हरिदासी जू की दासी ।
राखी अँग सँग नित्य केलि में कीनी अद्भुत प्रेम बिलासी ॥
रीझि रीझि मेरी मेरी कहि छिन छिन हियें हुलासी ।
श्रीकुंजबिहारिनि-ललितकिसोरी सदा निरन्तर पासी ॥१४१॥

लडैती जू आज करत मन भाई ।
अँग सँग लीन्ही नित्य केलि में हँसि हँसि कंठ लगाई ॥
परम प्रसन्न श्री हरिदासी छिन छिन प्रीति बढाई ।
श्रीरसिकसिरोमनि सब सुख दीनों आनंद उर न समाई ॥१४२॥

सुख सार बिहार हमारो है ।
अँग सँग नित्य किसोर किसोरी जीवन प्रान अधारो है ॥
हुलसि हुलसि उर लगत लाल के हित की जानत प्यारो है।
श्रीहरिदासी रसिक लाडिली इनकौ एही अहारौ है ॥१४३॥

लडैती मेरी प्रानजीवन धन प्यारी ।
तनहुँ लडैती मनहु लडैती छिन हूँ होत न न्यारी ॥
कुंज महल में सदाई राजैं लालन के उरहारी ।
श्री हरिदासी ललितकिसोरी या रस की अधिकारी ॥१४४॥

जयजय श्रीहरिदासी रंगी की। अद्भुत केलि अभंगी की ।।
गौर-स्याम कों अति सुख दैंनी महा भाग्य सिरमंगी की।
श्रीबिपुल बिहारिनिदास रसिकवर सदा प्यारी संगी की ।।१४५।।

जय जय श्रीहरिदास लडैती जू।
जिनके चरनन तकत साँवरौ याही ते रहत बडैती जू ।।
नित्य किसोरी इनही के हित इनही की बात गडैती जू।
याही ते ललित महा गरबीली अपनेंई रंग मडैती जू ।।१४६।।

जय जय श्री हरिदास रंगीली की।
जिनके बल विहरत दोउ प्रीतम अद्भुत छैल छबीलो की।।
जिनकी हँसनि कुँवरि कौ मोहै सदा रहत गर्बीली की।
श्रीललितकिसोरी की निजु जीवनि याही रस अरबीली की ।।१४७।।

जय जय श्रीहरिदास रसिकवर की।
श्री वृन्दावन नित्य बिराजैं गौर स्याम आनंद भर की ।।
महा प्रेम सोभा कौ सागर जीवन प्रान अधार हमर की।
अँग सँग बिपुल बिहारिनिदासी ललितकिसोरी निजु घर की।।१४८।।

लडैती जू मेरेई हित में ।
छिन छिन प्रति आनंद बढावत फिरि फिर हित चितमें ।।
तुम मेरी हौं तेरी स्वामिनि सदा रहैं सु हितमें।
ललित रसिकबर श्रीहरिदासी इन मिलि दिन बितमें ।।१४९।।

प्रिया जू वचन तिहारे सही ।
तिनही बल गरजत रहैं सबसों टेक हमारी रही ।।
छिन छिन प्रीति करौ सुखरासी कापै परत कही।
श्रीहरिदासी रसिक केलि में अँग सँग लै निबही ।।१५०।।

लडैती जू अब तो बिलंब न कीजै।



तुमही मिलैं परम सुख उपजैं तुमहिं निरख कै जीजै ।
श्रीहरिदासी रसिक केलि मिलि महा प्रेम रस पीजै ।।१५१।।

छाडौ भूलिबे की बाँनि ।
झूठे तन कों पोषो तोषो होत सब विधि हाँनि ।।
कहा जगत के रीझे खीजे कहा जगत के माँनि ।
सेवो ललितकिसोरी राधे महा सु सुख की खाँनि ।।१५२।।

रसिकवर हरि सुमिरें बडभागी ।
हरि ही कहें सुनें अरु हरि ही हरि ही सों लौ लागी ।।
हरि ही कों नित लाड लडावत हरि ही के अनुरागी ।
श्री हरि हरि हैं ललितकिसोरी काम केलि रस पागी ।।१५३।।

लडैती तेरी रीति महा सुखदाई ।
जब तें धरी हिये में दृढ करि आनँद उर न समाई ।।
कहौं कहाँ लौं नित्य किसोरी तेरी कृपा कही नहिं जाई ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि हँसि हँसि कंठ लगाई ।।१५४।।

लडैती तेरे चरन महा सुखदाई ।
जिनहि निरखि लाल भये प्रीतम करत केलि मन भाई ।।
कबहुँक सपरस करि आनंद में राखत कंठ लगाई ।
तेई चरन हमारे मस्तक अब डर करै बलाई ।।१५५।।

लडैती जू लाड करत अति नीकौ ।
ना काहू करचौ न करै कोउ अवधि प्रेम की लीकौ ।।
जोई जोई कहौं करै पुनि सोई महा परम हित ही कौ ।
श्री कुंजबिहारिनि श्री हरिदासी तोषत पोषत जी कौ ।।१५६।।

मैं तो श्री हरिदास नाम रंग राता ।
नख सिख लौं गुन गन आलिकृत कियो सिंगार सुगाता ।।
जगमग जगमग चहूँ ओर होइ निरखि न रसिक अघाता ।
श्रीललितकिसोरी रचि रुचि पहिरायो संत सजातिन को सुखदाता ।।१५७।।

हरि गुन मो मन में बसै अति ही हितकारी।
ताही के आनन्द में सब विस्व विसारी॥
गौर स्याम दोउ मित्र हैं अँग सँग पिय प्यारी।
ललित किसोरी प्रान हैं निजु कुंज बिहारी॥१५८॥

हमारे धन वृन्दावन प्यारी।
खरचत खात घटै नहिं कबहूँ बाढत छिन छिन अति अधिकारी॥
ताही कौ अभिमान सदाई ताही बल बस कुंज बिहारी।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि प्राँन प्राँन मिलि कीनो यारी॥१५९॥

हमारौ मेल मिलाप है तो सों प्यारी।
तेरेई गर्व भरे हैं सुनि अति हितकारी॥
तेरे सुख में सुख सदा हे जीव जिवारी।
रसिक सिरोमनि लाडिली श्री हरिदास दुलारी॥१६०॥

नीकी जानों सोई करौ सुनि प्रीतम प्यारी।
करता-मन करता तुही अति ही हितकारी॥
लियें सुभाव सदा रहै तेरौ भरतारी।
श्री ललितकिसोरी भाव सौं मिलि जीव जिवारी॥१६१॥

श्री हरिदास रसिक वर प्रगटे नित्य सुकेलि उदारा हो।
जोई जोई सनमुख भये कुंवरि के देत महा सुख सारा हो॥
गौर स्याम कौ हैं निजु आनंद करि राखो उर हारा हो।
सखी सिरोमनि परम लाडिली ललित प्रानते प्यारा हो॥१६२

या जग सबही सपना लागा हो।
जाकों तन मन सिर हों अपौं तिन ही सों मन भागा हो॥
हो अचेत चेतन ह्वै बैठा त्रिगुन परे व्है जागा हो।
श्रीललितकिसोरी कृपा करी श्रीहरिदास नाम लव लागा हो॥१६३॥

साधो या जग बडौ तमासा हो।
जिनकों तन मन अपनों मानें तेई रहत उदासा हो॥

अमृत तजि विषया रस पीवहि अहंकार मन बासा हो ।
श्रीललितकिसोरी कृपा दृष्टि सों सूझ्यौ जग उपहासा हो ।।१६४।।

या जग देखी निपट अटपटी रीति ।
नस्वर देह नेह रति मानी विषयनि सौं अति प्रीति ।।
जुगल प्रेम सुख दाता सब दिन तिनसों करत अनीति ।
अहमेव हंकार भुलानों मन मत्सर बहु करत समीति ।।
संत सजातिनकी संगति तजि स्वारथमें पचि घर घर गावत गीत ।
झूँठौ ताहि साँच करि जान्यौ साँचे सों नहिं मिलत सुचीति ।।
रूखे बदन जहाँ तहाँ विलसै खिसलै ज्यों बारू की भीति ।
यह संसार असार पच्यौ है भटकत जन्म भ्रमत गयो-बीति ।।
कोउ कैसै हू रहौ नाहिं परोजनि मोहि श्रीहरिदास बचन परतीति ।
श्रीललितकिसोरी कृपा बाहु बल गयो जगत में जीति ।।१६५।।

गौर स्याम तन एक मन, नेक न बिछुरि सुहाइ ।
कुंजबिहारी नाम जुग, हीये धरयौ समाइ ।।१६६।।
अँखिया भीजी जुग रूप रस, सीजि गईं दिन रैंन ।
खीजि गई उठि बिरह की, रीझि लई उर ऐंन ।।१६७।।
नैंनन में अंजन रहौ, गौर स्याम दोऊ प्रान ।
एक पलक नहिं बीछुरौ, तुम हौ चतुर सुजान ।।१६८।।
जो हरि कौ तू दास है, तौ हरि ही कौ आराधि ।
और जिते देवी देवा, तिन्हें न भूलैंहु साधि ।।१६९।।
इह अनन्यता जानिये, अपनें इष्टहि सेइ ।
और आराधन जो करै, तौ विभिचारिनि गति लेइ ।।१७०।।
श्री गुरु इष्ट उपासना, इहि अपनों ब्रत प्रतिपार ।
जन्म जन्म कौ दुख मिटै, जुगल प्रान उरधार ।।१७१।।
जन्म मरण जासों गयो, सोई साचों इष्ट ।
देवी देवा थिर नहीं, तू क्यों भरमत धृष्ट ।।१७२।।

श्री हरिदास उदारमनि, प्रगट भये इहि हेत ।
दुर्लभ ते दुर्लभ महा, सो सुख रसिकन देत ॥१७२॥
श्री स्वामी हरिदास भजि, तजि कामिन कौ संग ।
कोटि काम सुख पाइ है, ललित केलि रस रंग ॥१७३॥
श्रीहरिदास नाम आराधि लै, साधन सहजहि सिद्ध ।
कोटि तिमिर भ्रमकौं हरैं, रसिकन मध्य प्रसिद्ध ॥१७४॥
हरि गुरुचरननि प्रीति अति, सुरति प्रेम लौ लाय ।
कुंजविहारी लाड़िले, तन मन लियो समाइ ॥१७५॥

* रस की साखी *

निजु वृन्दावन धाम, गौर स्याम बिहरैं जहाँ ।
महा प्रेम अभिराम, डार पत्र फल फूल सब ॥१॥
रूप अनूप केलि नित देखि । गौर स्याम आनंद बिसेखि ॥
तन मन उरझे अति उर रेख । जुगजुग जनम सुफल करि लेख॥२॥
सुखद बिहार सदाई होइ । गौर स्याम दोउ प्रान समोइ ॥
यह अनुराग कह्यो नहिं जाइ । राग बियोगी सहज सुभाइ ॥३॥
गुन की सीमा प्यारी देखि । लालन सीखैं सदा बिसेखि ॥
आदि अंत पावै नहिं कोइ । गुन ही बिलसत प्रान समोइ ॥४॥
रहत अपरिमित केलि गुन, लहि न सकै पिय ताहि ।
अद्भुत गुन रस रूप निधि, भामनि सहज सुभाहि ॥५॥
गुन सों रूप प्रकासित होइ । जगमगाय पिय नैंननि सोइ ॥
दरस परस की बाढी चाइ । गुन-गनि अंगनि परसे जाइ ॥६॥
रोम रोम जगमगत दोऊ, रतिपति मिलत सुहाग ।
रवि ससि घन अरु दामिनी, बारों जुग अनुराग ॥७॥
श्रमजलकन झरनी तरनी तरें । सखिजन अँचर पवन कर ढरें ॥

जब सुरति विवस दोऊ ह्वै जाइ। सखियन अंकन आइ समाइ ॥
गावन लागीं मीठे गीत। रतिपति जागे जो रस रीति ॥६॥

सुरति विवस सुख लै भई, रतिपति कियो विश्राम।
श्री हरिदासी अंक भरि, गावत चारौ जाम ॥१०॥

सखी शृंगार बिबिध कछु करैं। जौलों सुरति इतै नहिं ढरैं ॥
अद्भुत बेनी गुही रसाल। मानों अलि के बैठे बाल ॥११॥
द्वै लर मोतियन जूरा लौं गुही। इक लर बैंनी बीच में पुही ॥
मानों द्वै लर उडगन बैठी पांति। इकलर तारा न्यारी साँति ॥१२॥
कोमल पीठि कमल दल सेज। मानों मधुप सैंन करि हेज ॥
भाल बेंदी मृगमद बनीं। मानों कामि सजी है अनी ॥१३॥
भोंहन धनुष चढी है कोर। बाफिन बान फोंक धरे जोर ॥
मृगनैंनी उपमा नहिं जोग। ए पिय अनुरागी सदा संजोग ॥१४॥

दृग खंजन चंचल अवधि, लज्जित मृदु मुसक्यान।
ललित विलोकत नैन भरि, प्रीतम जीवन प्रान ॥१५॥

नासा कीर धीर ह्वै रह्यौ। अधर बिंब मानों झुकि कै चह्यौ ॥
बेसरि मोती परम सुढार। मानो पल्लव फूटी डारि ॥१६॥
मृदु मुसिकनि चौंका की कोंध। पिय नैनन लागी चकचौंध ॥
कंठ सुनील पोति जगमगै। निरखत लाल लोंयन रगमगै ॥१७॥

अधरनि की मुसिकनि यहै, रति कौ सदा सुहाग।
नैंन अरुन मैंननि भरे, फूले अंगनि पराग ॥१८॥

हीरन दुलरी उर पर ढुरी। मानों द्वै धारा सुरसरी ॥
उपमा अमित कहा लों देइ। मानों बग पंगति कछु लेइ ॥१६॥
मणि ताटंक श्रवन जगमगैं। रवि की किरन ताहि नहिं लगै ॥
अलकैं सौरभ ढरी सुढार। नागिन सुत कीन्है त्रसकार ॥२०॥
कमल कपोल तिल अलि छौंना। हलै न डुलै रहै मुख मौंना ॥
चारु सु चिबुक स्याम रंग बिंदु। मानों अलि सुत बोध्यो फंदु ॥२१॥

भुज मृनाल कोमल मधु रची । मनों सुर्नकार जंत्री सों जची ॥
अरुन कमल अँगुरिनि दल फूल । नखमनि उज्वल हंस अनुकूल ॥२२॥
नील बरन चूरी कर बनी । पहुचिन पहुँची जुग रस सनी ॥
बिबि उरोज कमल की कली । कोमल सौरभ रस में बली ॥२३॥
स्याम रंग जोवन मंजरी । मनों पंख पसारि सैन अलि करी ॥
नील कंचुकी राखै ढाकि । मानों पिय मन दीनों आँकि ॥२४॥
अरुन वरन फूलन की सारी । ढिग ढिग लगी पचरंग किनारी ॥
उपमा दोऊ अमित अपार । रवि ससि दामिनि लज्जित मार ॥२५॥
लहंगा महंगा स्याम के रंग । लालन सेवैं ललना संग ॥
त्रिवली उदर नाभि गंभीर । छबि की भोंरी परत अधीर ॥२६॥

कोटिक कवि वरनन करैं, सो सुख कह्यो न जाइ ।
कुंजबिहारी लाल कैं, तनु मन रह्यो समाइ ॥२७॥

कटि केहरि लज्जित है ताहि । निरउपमा यह उपमा आहि ॥
सुभर नितंबनि गज की चालि । निरखत लज्जित मंद मरालि ॥२८॥
पग नूपुर रव बोलत हंस । लालन सुनि बारत सरवंस ॥
करभ जंघ छबि मन को हरषैं । अति सुढार एडिनि रंग बरषैं ॥२९॥
अरुन कमल कोमल अति तली । पिय मराल कर रुचि सों रली॥
दस नख जोति इन्दु परकासैं । पिय चकोर नैननि रस रासैं ॥३०॥
नख सिख कंचन अंचन औटी । अधिक पीत कछु अरुन रचौटी ॥
चंपक कुसुम वरन तनु उपमा । कवि जन दीनी सोऊ कछु रूपमा॥३१
अलप सिंगार कह्यो विस्तारि । जोंलौं रतिपति ना सुरति संभार ॥
रतिपति अंगनि दल दल भरचौ। फेरि सिंगार सुरति नहिं धरचौ॥३२

तन सिंगार मनमथ लजे, भामिनि विधि बिनु भाइ ।
तन मन व्याकुल निरखि पिय, मंद मुसकि उर लाइ ॥३३॥

भूषन कौ भूषन है स्वामिनि । पिय अंग भूषित जगमग भामिनि ॥
मानों कंचन नीलमनि जरी । गौर-स्याम सोभा अति भरी ॥३४॥

और सिंगार कहा कवि बरनें । प्रीतम अंग एई रुचि करनें ।।
यह सिंगार दुहुँनि रुचिकारी । अति रुचि पहिरचौ रसिकबिहारी ।।३५।।
और सिंगार जिते कछु करे । सुरति अंत तेऊ रुचि ढरे ।।
गौर स्याम दोउ सुखद सरूप । भोगत भोगी केलि अनूप ।।३६।।

केलि प्रान मिलि द्वै करैं, आनंद में भये येक ।
सहचरि गुन न्यारे करैं, बिलसत केलि अनेक ।।३७।।
सखी बखानत बिरद जस, श्रवन सुनत चितचाव ।
रतिपति रुचि बाढी उलटि, अंगनि दरस्यो भाव ।।३८।।

प्रथमहि संगम दूलह दुलहिनि । मनसिज रूप रङ्ग छबि उलहिनि ।।
लज्जित प्रेम मंद मुसकावैं । प्रीतम नवतन नेह बढावैं ।।३९।।
इकटक चितै पलक फिरि झंपै । मदन विनोद अधरनि कंपै ।।
रोमनि पुलकि अंग में ललकैं । अनंग रंग नैननि में झलकैं ।।४०।।
जोवन बाग रूप कौ फूल्यो । पिय अलि सौरभ झुकि अनुकूल्यौ ।।
चिबुक टटोरत छंद बंद छोरें । माननि मान भौंह कछु मोरें ।।४१।।
पियकर जोरि चरन तन तकें । स्वामिनि देख मान फिर थकें ।।
कल कपोल उरज कर परसें । नीबी नाभि और अंग दरसैं ।।४२।।
प्यारी पियहिं अंक भरि लियो । मानों रंक महा धन दियौ ।।
कसत प्रान छाती सों छाती । बिलसत अपनी निर्भै थाती ।।४३।।

उर अधरन अंगन कसें, तन मन व्याकुल प्रान ।
षट अंगनि के मध्य में, जुग रस प्रेम समान ।।४४।।

केलि बेलि अति रति उर बाला । बहु विधि लपटी स्याम तमाला ।।
ललना रंग चढचौ अति भारी । लालन देखि जात बलिहारी ।।४५।।
अतुलित बल को करें बिहार । दोऊ प्रबल कोऊ न हार ।।
अबला प्रबला काकों कहिये । दोऊ सम करि आनंद लहिये ।।४६।।
मनहु सूर जुद्ध सम मिले । ऐसे सुख में ए दोऊ झिले ।।
भोगी स्याम भोग है प्यारी । पोषित प्रान लाल हितकारी ।।४७।।

स्वामिनि सब सुख पूरन दान । पिय की जीवनि रसिक निधान ।
निरउपमा अँगसँग दोऊ राजैं । उमा रमा ब्रज जुवती लाजैं ।।४८।।
ए प्रेमी प्रेम कहाँ लगि कहिये । सदा अपूरित पूरित लहिये ।।
अगिनित गुन कौ सहज बिहार । श्री हरिदासी कौ उरहार ।।४६।।
गुन सों पोहित दोऊ प्रान । इक रस विलसैं रसिक सुजान ।।
तन मन उरझे नहिं सुरझाइ । अंगनि अंग मिले अकुलाइ ।।५०।।

इह रस दोऊ विवस हैं, नेंकु न लेत उसास ।
श्री हरिदासी लाड तैं, दरस परस सुखरास ।।५१।।

जब दरसें तब परसन चाह । जब परसें तब दरसनि चाह ।।
तन मन मिले मिलन की आस । अंग अंग सिथिल मंद चलैं स्वास ।।५२।।
संगम सुख सूचित मन माही । रतिपति पुलकित है तन बाही ।।
गुन तरङ्ग भरि उमग्यो अंग । नाना केलि झेलि रति रङ्ग ।।५३।।
बहुबिधि अंग आलिंगन चिपटे । मानहु दामिनि सों घन लिपटे ।।
अधरति सुरति जाइ घुरि रही । सुख सरूप अनुभव पुर लही ।।५४।।

सुरति विलोकत केलि कों, तन मन पुलकित काम ।
नाना गुन रति साजि कैं, विलसैं अँग सँग अभिराम ।।५५।।

गुनकों सुमरि उलटि फिरि आई । मानहु निसा गवन दिन लाई ।।
जगमगाइ तन मन में जटी । मानहुँ सूर किरन की छटी ।।५६।।
अलप विहार करयौ गये भूलि । फिरि भरि उमग्यौ हिय अनकूलि ।।
कबहुँ सुरति नैंनन में जाई । रति के चिन्ह देखि अकुलाई ।।५७।।
कहुँ अंजन कहुँ पीक सों भरे । मनों दृग खंजन अधर सों लरे ।।
कबहुँक सुरति बैंननि में बोलें । कबहुँक अंग सुमिर सुख डोलें ।।५८।।
गंडनि खंड रदन करि ओपे । आतुर काम जनों रति कोपे ।।
अंकित नख छाती सों खगे । पिय सो देखि मैंन तन जगे ।।५६।।
नैन बैन चंचल कर करे । विह्वल प्रेम आतुर ह्वै ढरे ।।
चंचल प्रेम को यही सुभाव । छिन छिन अतन उठत चित चाव।।६०।।

छल बल तर्कें परस के हेत। मुख छबि दरसि अंग संकेत ॥
बातन मदन मोद उपजावैं। घातन दृगन कटाछि चलावैं ॥६१॥
छल बल देखि स्वामिनी हँसी। मानहु कोटिक दामिनि लसी ॥
कछुयक लाल सकुचि मन गये। प्रिय हिय हुलसि भुजनिभरि लये॥६२॥
नायक वचन रटैं अति आतुर। रति उपजावन कों हैं चातुर ॥
प्रगट प्रेम रंग बाहिर धरचौ। ढक्यौ प्रेम रङ्ग भीतर भरचौ ॥६३॥
ज्यौं सीसी रंग भरयौ है माँही। भीतर है बाहिर झलकाँही ॥
जैसें कुंदन बीच लाल रङ्ग झलकै। ऐसें तिय हिय प्रेम है ललकैं ॥६४॥
प्यारी प्रेम धीर उर माँही। अंतर है पै प्रगटै नाँहो ॥
धीरज प्रेम कि यही सुरीति। ऊपर लज्जित अंतर प्रीति ॥६५॥
ज्यौं फूलन में सौरभ बसै। यौं प्यारी प्रेम नैंन में लसैं ॥
यह प्रेम के नेम बिछुरि न देइ। उमँगि उमँगि अंकौ भरि लेइ ॥६६॥
बिपुल विनोद मोद सुख सार। प्रेम सहेली प्रान अधार ॥
नागरि सरस निरख सुख लेंइ। गौर स्याम सुख में सुख देंइ ॥६७॥
रुख लै सुखै करैं विस्तार। काम केलि रस पोषि अहार ॥
गौर स्याम दोउ रस की खानि। सखी लडावैं मन की जानि ॥६८॥
मधुर बिहार करैं दिन रैंन। रसिक सिरोमनि के उर ऐंन ॥
कुंजबिहारिनि सुख की रास। श्रीललितकिसोरी जीवनि आस ॥६९॥
रस सिंगार कहै बहु भेद। समझो रसिक मर्म यह छेद ॥
ऐक सेज पर सब सुख सार। कोविदि विद्यानिधि करें बिहार ॥७०॥
श्री गुरु कृपा लही रस रीति। जुग जुग मम मन दृढ परतीति ॥
श्री वृन्दाबिपन कल्पतरु छाह। पुरन सुख पोष्यौ हिय माह ॥७१॥

कवि सिंगार रस जे कहैं, छंद कबित्तै गीत।
श्री हरिदास नाम अछिर नहीं, रस सिंगार न समीत ॥७२॥
षोडष विधि सिंगार की, कवि सो बरनत ताहि।
ब्रजसुन्दर गोपिन रमें, किधौं बखानत आहि ॥७३॥

इक नायक बहु प्रीति जहँ, एक सिंगार रस नाहिं।
इक चकोर चंदा बहुत, निरखि सकै कहि काहि ॥७४॥
कुंजबिहारिनि वदन बिधु, अगनित चंद प्रकास।
बरसत सुधा समूह रस, पिय चकोर बहु प्यास ॥७५॥
एकहि चंद चकोर एक, दृढ पतिब्रत बिचारि।
कुंजबिहारी एक रस, कुंजबिहारिनि यारि ॥७६॥
रस सिंगार कहि एक रस, दूजौ दरसै नाहिं।
तन मन प्राननि एकता, हम सुमिरत हैं ताहि ॥७७॥
रस सिंगार हरिदास कौ, गौर स्याम इक प्रान।
तन मन अरझे काम-रस, पोषत रसिक निधान ॥७८॥
इक रस कहियत ताहि कौं, जहँ दूजौ रस नहिं होइ।
काम प्रेम जहँ एक रस, तन मन प्रान समोइ ॥७९॥
इक रस बिन जे रस कहैं, सो रस नीरस जानि।
श्रीहरिदासी एक रस, जहाँ काम केलि रसखानि ॥८०॥
गौर स्याम सिंगार रस, काम प्रेम रस भोग।
जहँ भूषन दूषन कवि कहैं, सो हरिदासी सदा संजोग ॥८१॥
कोउ वरनैं ब्रजराज कौं, कोऊ रास बिलास।
अनंग रङ्ग हरिदास कैं, एक सेज की आस ॥८२॥
बहु विधि सखी समूह रस, नाना कुंजनि केलि।
गौर स्याम तब हीं सुखी, क्रीडत भुज ग्रीव मेलि ॥८३॥
एक रस क्रीडत जुगल वर, हरिदासी इक भाइ।
करजावलि ग्रीवा गहैं, अँग सँग प्रान समाइ ॥८४॥
इहि रस बिलसत प्रान दोउ, नव जोवन रति जोर।
काम प्रेम रसमय रसिक, पइये ओर न छोर ॥८५॥
पग नूपुर चूरी करन, कंठ नील-मनि पोति।
करनफूल बेसरि लसत, निरखि विवस पिय होत ॥८६॥

लहँगा सारी कंचुकी, सहज सिंगार सुहाग।
स्वामिनि इते सिंगार तन, पिय उपजावन राग ।।८७।।
नवसत साज सिंगार विधि, कियें मंद मुसक्यानि।
वरषत सुधा अनूप रस, कुंजबिहारिनि रानि ।।८८।।
राधे रूप रसाल, छिन छिन उठत तरंग अति।
अद्भुत नैन विसाल, ललित किसोरी प्रान है ।।८९।।
राधे परम सुजान, अँग सँग बिलसत केलि सुख।
अति जाननि-मनि जान, ललित किसोरी हित भरी ।।९०।।
सबही विधि सुख दैन, कुंजबिहारिनि लाडिली।
बिलसत अति रस ऐंन, ललितकिसोरी भाव सों ।।९१।।
दृष्टि भरी है रूप रस, मनसिज रंगे बिहार।
तन मन हुलसे परस कों, एक प्रेम एक सार ।।९२।।
सुमिर सुमिर हिय हुलसि कें, मन ही माहि सिहाइ।
तन मन पिघले मैंन रति, परस हेत अकुलाइ ।।९३।।
मंद मंद मुसकात दोऊ, सुरति केलि मिलि भाइ।
ललितप्रिये लखि नैंन भरि, करहु केलि बलि जाइ ।।९४।।
हुलसि हुलसि हिय में उठें, द्रुगन बीच अवलंब।
मैंन रङ्ग अंग अंग रँगे, व्रीडत क्रीड बिलंब ।।९५।।
प्यारी मम जीय व्याकुल काम बस, तुव परसन के हेत।
कुंजबिहारिनि लाडिली, कब करि हौ संकेत ।।९६।।
सुरति भई जब केलि की, बसन असन नहिं ठाँव।
अतन रङ्ग अंगनि लसनि, कसनि उमंगि चितचाव ।।९७।।
भरि भरि देखत नैन, मंद मंद मुसिक्यात री।
बोलत मधुरें बैन, ऐसे ही सुख लीजिये ।।९८।।
जुग बानी रस में सनी, बोलत हँसि मृदु बैन।
ललितकिसोरी श्रवन सुनि, तन मन उपजत चैन ।।९९।।

कबहूँ आतुर झुक झुकें, कबहूँ सकुचि मंद मुसिक्यात ।
रूप रङ्ग आलस भरे, परस सकें नहिं गात ॥१००॥
भामिन बैठी पिय अंक में, मैंन रंग के भाव ।
मनों घन दामिनि विछुरि मिले, भुज भरि भेंटत चाव ॥१०१॥
दरस परस झुकि झुकि मिलैं, तन मन हियें समाइ ।
उमगि उझकि अंगनि भरे, झमकि तमकि अकुलाइ ॥१०२॥
भरि भरि बिलसत अंक, गौर स्याम दोउ गातरी ।
कामिनि कंत निसंक, ललित किसोरी लाडहीं ॥१०३॥
सुरति अंत दोऊ रसमसे, दरस मंद मुसिक्यात ।
ललितकिसोरी ऐंन उर, तन मन परसत गात ॥१०४॥
हमरे सुख कौ बपु बन्यो, कुंजबिहारिनि बाल ।
ललित किसोरी लाडिली, अद्भुत रूप रसाल ॥१०५॥
प्रिया आसिक मासूक हम, छिन छिन आनंद देत ।
कुंजबिहारिनि लाडिली, अङ्कौं भरि भरि लेत ॥१०६॥
गौर स्याम हमरे हितैं, हमरे हित करैं केलि ।
ललित किसोरी लाडिली, रहो प्रेम रस झेलि ॥१०७॥
जैसो प्रिय कौ रूप है, तैसो रूप हमार ।
अँग सँग विलसत केलि सुख, महा प्रेम रस सार ॥१०८॥
तन मन मिलि बिलसत रहैं, अद्भुत सुखद बिहार ।
ललित किसोरी भाव सों, बाढत चाह अपार ॥१०९॥
जुग मुख चंद चकोर दृग, पीवत सुधा अनूप ।
उडुगन सहचरि जगमगै, गौर बरन इक रूप ॥११०॥
तन मन प्रानति जुगल मिलि, ललित प्रिये हरिदास ।
नैन बैन सैंननि लिये, लाडत प्रेम प्रकास ॥१११॥
प्रति दूजौ श्री बपु धरें, बैठी गुननि प्रकासि ।
जुगल केलि पोषत हियें, ललित प्रिये हरिदास ॥११२॥

सब गुन पूरन ललित वर, कुंजबिहारिनि हेत।
कुंजबिहारी पौष कौं, करत प्रान संकेत ॥११३॥
हृदय सरोवर हरिदास जू, जुग मुख कमल सु फूल।
विपुल प्रेम पोषत हियें, गुन गन रवि अनुकूल ॥११४॥
जा छिन सुरति विवस दोउ, ता छिन कैरत सम्हार।
गावत गुन गंभीर जुग, उमगति अगनित मार ॥११५॥
जो सुख बिलसत प्रान दोउ, सो ललित प्रिये हरिदासि।
सुख पोषत सुख जुगल वर, काम केलि रस रासि ॥११६॥
मनसिज कहिये मन फुरति, सुरति भई रति केलि।
मदन सदन तन अंग भरयौ, नैन बैंन रस झेलि ॥११७॥
नख सिख व्यापक एक रस, ताकों कहत अनंग।
हाव भाव विहसैं दोउ, ज्यौं जल मधि तरंग ॥११८॥
अतन कहत कवि तन नहीं, नख सिख व्यापक गात।
नैंन बैंन सैंननि चलैं, दरस परस मुसिकात ॥११९॥
बिरह सु कहिये काम रति, प्रेम कहत संजोग।
काम प्रेम रस केलि मिलि, फिर नहिं होत बियोग ॥१२०॥
दरस सु कहिये प्रेम रस, परस केलि सुख काम।
गौर स्याम आसक्ति अति, रोंम रोंम अभिराम ॥१२१॥
मैंन अंत आसक्त ज्यों, यों बिहँसे दोउ प्रान।
ललितकिसोरी भाव सों, एक रस रसिक निधान ॥१२२॥
समर प्रेम रसमय भये, तन मन प्रान अधार।
क्रीडत कामिनी कंत दोउ, ताकों कहत बिहार ॥१२३॥
ज्यौं फूलन सौरभ बसै, त्यौं काम प्रेम के बीच।
नख सिख व्यापक दृगनि में, प्रगट केलि रस सींच ॥१२४॥
जुगल अँग कलमलात दोउ, उमग्यौ हिय कौ भाव।
गूढ केलि आतुर भये, बिहँसि मिलै चित चाव ॥१२५॥

सरस लाडिले सरस वर, सरस सु केलि उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१२६॥
नवल लाडिले नवल वर, नवल सुकेलि उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्भुत नित्य बिहार ॥१२७॥
ललित लाडिले ललित वर, ललित सुकेलि उदार।
जै जै श्रीहरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१२८॥
नित्य किसोर नवीन ये, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१२९॥
रूप रंग रस खानि ये, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३०॥
गुन गंभीर प्रवीन अति, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३१॥
सुख सागर नागर नवल, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३२॥
सहज सनेही लाडिले, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास को, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३३॥
महा प्रेम बिलसत सहज, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास कौ, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३४॥
तन मन उरझि न सुरझहीं, साँवल गौर उदार।
जै जै श्री हरिदास को, अद्‌भुत नित्य बिहार ॥१३५॥
प्रिया लाल हैं धन सही, धनी सही हरिदास।
महा लाड अति चाइ सों, बिलसत केलि बिलास ॥१३६॥
खिलारी श्री हरिदास हैं, खेल लाडिली लाल।
राखत अद्‌भुत रंग में, जानि महा निजु हाल ॥१३७॥
प्रिया लाल हरिदास हैं, सु हों ललिते निज प्रान।
मेरे अँग सँग नित रहें, परम सु रसिक सुजान ॥१३८॥

प्रान हमारे लाडिली, देह बिपुन की आहि।
ललित केलि निरखें सदा, छिन छिन बाढै चाहि ॥१३९॥
नित्य बिहारिनि लाडिली, अद्भुत रस की खानि।
कुंजमहल सुख पुंज में, गहें ललित को पानि ॥१४०॥
कुंजबिहारिनि लाडिली, जीवन प्रान अधार।
ललित लाल आनंद भरि, विलसत अति सुख सार ॥१४१॥
कुंजबिहारिनि लाडिली, अद्भुत केलि उदार।
ललित लाल की भाँवती, करि राखी उर हार ॥१४२॥
कुंजबिहारिनि लाडिली, रूप रङ्ग रस खानि।
रीझि रीझि अंकौं भरें, गहें ललित कौ पानि ॥१४३॥
लाल-ललित लाडें ललित, ललित लडावत प्रेम।
ललित प्रिये आनँद भरी, ललित केलि को नेम ॥१४४॥
ललितविहारिनि ललितबिहारी, ललितहीं सेज सुरंग।
ललित रूप रस वस भये, विलसत केलि अभंग ॥१४५॥
ललित कुंज सुख पुंज है, ललितहि भूमि रसाल।
ललित रंग दोऊ रँगे, ललित केलि उरमाल ॥१४६॥
ललित रंग के फूल सों, फल लाग्यौ उर लाल।
उमँगि उमँगि अति रस ढरी, कुंजबिहारिनि बाल ॥१४७॥
ललित लता लपटी सहज, महा रंग के भाइ।
मिलत मिलत आनँद अति, तन मन रहे समाइ ॥१४८॥
गौर-स्याम सुख रासि कें, अति ही आनंद नित्त।
ललित रंग में रंगि रहे, एक प्रान द्वै मित्त ॥१४९॥
ललित लता उरझी रहैं, सुरझैं नहिं दिन रैन।
ललित केलि सींचत रहैं, चितै चितै मुख नैन ॥१५०॥
ललित नयन की सैंन लै, संथा पिय मोहें प्रान।
ललित रंग वरषन लगे, दोऊ रसिक निधान ॥१५१॥

ललित केलि रस रूप निधि, निरखें सहज सुभाइ।
प्रेम सरोवर छाडि कैं, को मान सरोवर जाइ ।।१५२।।
जैसे कामिनि काम रति, प्रीतम उर सुख देति।
तैसै लडक बावरी मांन में, तन मन अति हरि लेति ।।१५३।।
गर्व सिरोमनि लाडिली, दीन सिरोमनि लाल।
ललित प्रिये अँग सँग सदा, छिन छिन करत निहाल ।।१५४।।
तुम माननि सहज सुभाइ में, पिय संभ्रम कियौ मान।
ललित केलि रस विलसिये, मंद हँसनि मुसिक्यान ।।१५५।।
देखि ललित मुसक्यान कों, सुख भयो हिय में आइ।
उमँगि उमँगि अंकों भरें, रोंम रोंम अकुलाय ।।१५६।।
सम किसोर गुन रूप हैं, काम केलि रन सूर।
स्वामिनि कृपा कटाछि सर, भाग्य मानि पिय भूर ।।१५७।।
ललित केलि विलसन लगे, सहज कामिनी कंत।
अंग अंग अरझनि भई, सुरझनि हिय हुलसंत ।।१५८।।
महा बडभागी लाल अति, नित्य प्रिया के संग।
ललित लाड के रङ्ग सो, विलसत केलि अभंग ।।१५९।।
महा बडभागी लाल यों, सदा सहाइक संग।
श्री हरिदासी पोष तें, बाढत छिन छिन रङ्ग ।।१६०।।
याही तें हरिदास जू, सब रसिकन सिरमौर।
कुंज केलि अँग सँग सदा, करत लाल की गौर ।।१६१।।
अति प्रसन्न श्री लाडिली, झलकति लाल हियें।
श्री स्वामी अँग सँग सदा, निरखत केलि जियें ।।१६२।।
अनन्य नृपति वर लाडिले, जीवन प्रान सु मोर।
अँग सँग बिलसत केलि सुख, सहज प्रिया चितचोर ।।१६३।।

जीवन प्रान हमार, कुंज बिहारिनि लाडिली।
बिलसत नित्य बिहार, ललित प्रिये बडभाग अति।।१६४।।

सहज बिहारिनि सहज बिहारी, सहज ललित रस रङ्गी।
सहज कुंज सज्या सहज, सहज सुकेलि अभंगी ॥१६५॥
धन्य बिहारिनि धन्य बिहारी, धन्य ललित रस रासि।
धन्य कुंज सज्या सुधन्य, धनि धनि भूमि बिलास ॥१६६॥
एतो धन हमारें रहैं। कुंज बिहारिनि कौ हित चहैं॥
कुंजबिहारिनि अति सुखदाई। ललित लाल के करि मन भाई ॥१६७॥
ललित लाल इनहीं रङ्ग रहैं। छिन छिन हेत प्रिया कौ चहैं॥
कुंज केलि सहज ये करें। ललित किसोरी के उर ढरें ॥१६८॥
परम कृपाल उदार अति, बोलत मधुरे बैंन।
ललित रीझि रीझनि रिझैं, चैन न पावत मैंन ॥१६९॥
मिलत मिलत मिलिबौ चहैं, मिलैं मिलन की भूल।
मिले ललित वर रङ्ग सों, छिन छिन बाढत फूल ॥१७०॥
अति भोरे प्रवीन अति, महा प्रेम रस लीन।
हित बिहरत मिल सखी कै, दुहुँ दुहुँनि सुख दीन ॥१७१॥
ललित केलि अद्भुत कही, ललितहि कियो प्रकास।
ललित प्रीति परतीति गहि, ललित रसिक रस रासि ॥१७२॥
ललित रँगीली प्रीति कौ, को करि सकै बखान।
रसिक सिरोमनि कृपा तें, जानें सोई जान ॥१७३॥
रसिक सिरोमनि कृपा कौ, जानों यहै उपाव।
कुंजबिहारीलाल के, उमँगि उमँगि गुन गाव ॥१७४॥
मिलत मिलत में चाह अति, ललित रँगीली प्रीति।
कुंजबिहारीलाल की, यह तो अद्भुत रीति ॥१७५॥
कहा कहूँ या मिलन कों, जो मिलिबौ जिय होइ।
तन मन सों प्रीतम मिलै, तऊ मिलन की खोइ ॥१७६॥
परम नेह की बात यह, मोपै कही न जाइ।
तन मन सों प्यारी मिली, तऊ लाल अकुलाइ ॥१७७॥

मिलैं तौ जिय व्याकूल रहै, बिछुरें नहीं रह्यौ जाइ।
प्यारी जहाँ अपनपौ भूलई, ता सुख रहैं समाइ ॥१७८॥
रसिक रूप रस बिलसहीं, एक प्रान एक अंग।
सुख सज्या सेवत सखी, दोउ पगे रँगीले रंग ॥१७९॥
सुख ही में चित चौंकि परचौ, प्रिया कहाँ मिलित।
प्रान पलटि दोऊ मिले, मिलें मिलन की चिंत ॥१८०॥
सुख ही सों चितई तिन्हैं, सुख ही में भये लीन।
काम प्रेम सुख सिंधु में, यौं विहरत ज्यौं मीन ॥१८१॥
कुंजबिहारिनि स्वामिनी, अपनी निजु कीनी।
अद्भुत रूप दिखाय कैं, अति हीं रस भीनी ॥१८२॥
सुरति समानी रंग में, रंग सुरति के माहि।
ललित लाल आनंद अति, फूले अंग न समाहि ॥१८३॥
सुरति केलि अँग अँग रची, ललक ब्रीड दुहुँ ओर।
श्रम जलकन बरषत मन हरें, नागर नवल किसोर ॥१८४॥
कुंजबिहारिनि लाडिली, परम उदार कृपाल।
पोषत तोषत लाल कों, रसिक सिरोमनि बाल ॥१८५॥
जमुना सुख की संधि है, तट गौर स्याम द्वै रूप।
मनमथ उठत तरंग जहँ, दोऊ बिहरत केलि अनूप ॥१८६॥
मन सों उमग्यो मनहि मिल्यौ, यह गौर स्याम कौ काम।
ज्यौं सूरज की किरन में, प्रगट नीर बिश्राम ॥१८७॥
मेला रहै बिहार में, अंगन कौ संकेत।
प्रेम सेज गुंजत रहें, श्री हरिदासी हेत ॥१८८॥
सब सुख कौ सुख सार सुनि, अखियाँ निरखि सिराँइ।
लगी टकटकी प्रेम की, पलक बीच अकुलाइ ॥१८९॥
अनूप रूप कैसे लखैं, जुगल दृष्टि है एक।
छबि तरंग पल पल उठें, लोचन चहें अनेक ॥१९०॥

तन तो कामकेलि परसें सुखी, नासा सौरभ स्वास अहार।
नैन बदन सुधा रस पीवहीं, इहि विधि सहज बिहार ॥१९१॥
सब सुख सार अधार है, निरवधि नित्य बिहार।
ललित प्रिये हरिदास कें, आनंद परम अपार ॥१९२॥
नित्य बिहारिनि लाडिली, कुंज केलि सुख देत।
तन मन मिलि बिलसत दोऊ, ललितकिसोरी हेत ॥१९३॥
कुंज बिहारिनि लाडिली, परम उदार कृपाल।
अँग सँग बिलसत केलि सुख, कीने रसिक निहाल ॥१९४॥
अंग अंग अवलोकि कें, नख सिख लेत समाइ।
काम केलि आतुर विवस, निरखि सखी बलि जाइ ॥१९५॥
उमँगि उमँगि अकुलात दोउ, काम केलि की चाइ।
छाती सों छाती कसैं, अंगनि अंग समाइ ॥१९६॥
कुंज केलि सुखरासि निधि, बरषत हरष उदार।
श्री बिपुल बिहारिनिदास की, जीवन प्रान अधार ॥१९७॥
काम केलि रस रीति कौं, प्रगटे श्री हरिदास।
रसिकन की जीवन जुगल, बलि बिपुल बिहारिनिदास ॥१९८॥
श्री हरिदास के लाडिले, मेरे अँग सँग नित्त।
उमँगि उमँगि रस विलसहीं, एक प्रान द्वै मित्त ॥१९९॥
एक प्रान द्वै मित्त हैं, अद्‌भुत रूप अपार।
बिलसत तन मन रंग सों, महा प्रेम सुख सार ॥२००॥
गौर-स्याम सुख रासि अति, इनसे एई जानि।
रूप बढै इत चाह उत, इन्हैं मिलन की बानि ॥२०१॥
जे चाहत हैं या रसहि, तिनके सुनों सुभाव।
श्रीहरिदासी प्रेम बिन, और न तिनके भाव ॥२०२॥
श्रीस्वामी सकलगुनन की रासि हैं, कहैं परम रसीली बात।
प्रिया लाल सुनि चाव अति, तन मन पुलकित गात ॥२०३॥

श्रीस्वामी हरिदास जू, प्रिया प्रान सुख दैंन।
हँसनि लसनि बोलनि रस बरषत, उमगत अगनित मैंन ।।२०४।।
खेल खिलारी बस रहै, ऐसैं जुगल किसोर।
श्री हरिदासी लाड सों; नहिं जानें निसि भोर ।।२०५।।
ए दोऊ अनुराग में, अदल बदल ह्वै जाँहि।
सखी लडावत लाड सों, निरखत नैंन सिराँहि ।।२०६।।
मिलत मिलत में चाह अति, मिले मिलैं अकुलाँहि।
सुपनों किधों सतभाइ यह, सोचत हैं मन माँहि ।।२०७।।
अद्भुत रस अद्भुत मिलनि, अद्भुत सुख कौ सार।
अद्भुत प्रीति बढै सदा, अद्भुत नित्य बिहार ।।२०८।।
छिन छिन उत्सव रसिक कें, महा केलि के भाव।
गौर स्याम तन मन मिले, मिलें मिलन कौ चाव ।।२०९।।
भोगत भोगी एक रस, उमँगि उमँगि अकुलात।
तृपति न कबहूँ होत पिय, तन मन व्याकुल गात ।।२१०।।
माला आलाही भई, बाला धारें अंग।
ज्यौं ज्यौं लाल विलोकहीं, छिन छिन बाढत रङ्ग ।।२११।।
सेज भाव निसि दिन रहें, काम केलि रस भोइ।
भोजन भाव नीरस जहाँ, तन मन प्रान समोइ ।।२१२।।
कित सिंगार स्नान है, नहिं जागें नहिं सोइ।
मनसिज रँगे विहार में, अंगनि अंग संजोइ ।।२१३।।
कहा कहों कहत न बनै, अद्भुत सुख की रासि।
मैंन धीर नहिं धर सकै, जहाँ लाडत श्री हरिदासि ।।२१४।।
पीपर पात न थिर रहै, हलति रहैं दिन रैंन।
यौं विलसत नित्य विहार कों, गौर स्याम तन मैंन ।।२१५।।
लडिक बावरी लाडिली, लाडत पिय के लाड।
मृदु मुसिकनि बतियाँ कहें, काम केलि की चाड़ ।।२१६।।

विवि उरोज कर कमल गहि, निरतत अंग सुधंग।
सखी बिलोकत मौंन गहि, अद्भुत केलि अभंग ॥२१७॥
जीवनि प्रान अधार है, श्री हरिदासी केलि।
रोंम रोंम लपटी रहै, प्रिया प्रेम की बेलि ॥२१८॥
ज्यौं देही में प्रान है, रोंम रोंम रह्यो पोइ।
गौर स्याम ऐसें मिले, सब सखियन प्रान समोइ ॥२१९॥
प्रानन कों पलटत सखी, ज्यों ढोली के पान।
व्याकुल विकल बिहार बिन, अति आतुर रसिक निधान ॥२२०॥
दृष्टि रुप कौं पान है, तन काम केलि को भोग।
यह रस रीति बिहार की, गौर स्याम संजोग ॥२२१॥
तान तरङ्गन मन परच्यौ, पिय व्याकुल विकल अधीर।
उमड्यौ सागर विरह कौ, रोंम रोंम झर नीर ॥२२२॥
गौर स्याम द्वै द्रुम लता, मिलि फूले अंग सुदेस।
मधुप काम आसक्त अति, गुंजै प्रेम अवेस ॥२२३॥
नित्त विहारिन नित नई, नित्त कुंज में केलि।
अँग सँग राजत रसिक कैं, महा प्रेम रस झेलि ॥२२४॥
ललित भाव रस रङ्ग में, छिन छिन उठत तरंग।
रोंम रोंम प्रिया लाल कैं, सेवत सहज अनंग ॥२२५॥
ललित केलि बिलसत रहैं, तापर चाह अपार।
त्रिपति न मानत नेंक हू, लेत महा सुख सार ॥२२६॥
कबहूँ उमँगि उमँगि अंगनि मिलें, कबहूँ उर कर परसि कपोल।
कबहूँ परिरंभन चुंबन रसिक, छिन छिन करत किलोल ॥२२७॥
तन मन अरुझे प्रान दोउ, सुरझत व्याकुल होइ।
अरुझनि सुरझनि की मिलन, सखी लडावत सोइ ॥२२८॥
अंग अंग अरुझानि में, सुरझत बनें न कोइ।
पलटत प्रान विहार में, तन मन लेत समोइ ॥२२९॥

आसन गुन सुरझन रहैं, अरुझनि विलसत अंग ।
श्री हरिदासी लाड सों, करत बिहार अभंग ॥२३०॥
काम प्रेम रस रूप निधि, गुन चित उठत तरङ्ग ।
जलचर प्रीतम प्रान दोऊ, विलसत केलि अभंग ॥२३१॥
जहाँ काम तहाँ प्रेम है, जहाँ प्रेम तहाँ काम ।
इन दोउन की संधि में, बिलसत स्यामा स्याम ॥२३२॥
बिछुर न देत सु प्रेम है, अंगनि उमंगि सु काम ।
रस सागर विलसत रसिक, रोंम रोंम अभिराम ॥२३३॥
मधुर सनेह विहार कौ, क्रीडत कामिनि कंत ।
सब भाइनि चाइनि मिलत, लाडत सखी अनंत ॥२३४॥
काम केलि रस विलसि दोउ, उठि जागे परभात ।
ससि जुग वदन चकोर द्दग, दरस मंद मुसकात ॥२३५॥
मुख अंबुज बिथुरी अलक, मानों अलि के वृन्द ।
तिन्हैं निवारन पिय लगे, छबि लोचन परे हैं फंद ॥२३६॥
आलस भीजे नैंन जुग, कबहूँ खुलि मुँदि जाति ।
अधर अंग झुकि झुकि मिलै, मंद बिहँस मुसिक्याति ॥२३७॥
सूचत रैंन बिहार कौं, सुरत अंत में आइ ।
लालन गुन ललना गुनी, रति विपरीत के भाइ ॥२३८॥
गुन तरङ्ग भरि हिय उठें, प्रिया प्रान मुसिक्याति ।
कोक कला परबीन अति, तन किरन काम की काँति ॥२३९॥
काम भाव हुलसत हियें, स्यामा स्याम विहार ।
उर परसैं द्दरसैं अंगनि, उमगत कोटिन मार ॥२४०॥
भामिनि बैठी चाव सों, जेठी पिय कौ भाव ।
तन मन ऐंठी मैंन रति, तैठी हुलसे राव ॥२४१॥
साँवल सेज्या सुभग तन, लीनी आप बिछाइ ।
नृत्तत भामिनि अंक भरि, सप्त सुरनि के भाइ ॥२४२॥

फूलन फूली लाडिली, स्याम अंग अनुकूल।
काम केलि उमँगे हियें, झूलत गहि भुज मूल ।।२४३।।
उघटत गति संगीत की, बाजत ताल मृदंग।
उरप तिरप लावनि निपुन, निरतत गतिनि सुधंग ।।२४४।।
राज रूप स्वामिनि तपै, अदलि करें पिय नैंन।
कर जोरें विनती सदा, दीन वचन मन मैंन ।।२४५।।
दृग खंजन चंचल भये, अधरन फरकत मैंन।
सखी विलोकत नैंन भरि, पिय सों करि करि सैंन ।।२४६।।
तन सों तन बिछुरें नहीं, मन सों मन लिपटानि।
ललित किसोरी बाल की, सहज सुभायक बानि ।।२४७।।
अंचल चंचल कर गहें, कहत प्रिया सों बात।
हम तुम दोऊ एक रस, विलसैं तन मन गात ।।२४८।।
अंतर मन चंचल अवधि, तन कों धीरज देखि।
ललिता लखि पिय सैंन सों, जनम सुफल करि लेखि ।।२४९।।
कनक बेलि लपटी विमल, साँवल सुभग तमाल।
गुन रस सींचत सखी सब, मिलि फूले अंग रसाल ।।२५०।।
तरवर लपटी बेलि ज्यों, सुरझावत कुम्हिलाय।
गौर-स्याम अरुझे दोउ, सुरझैं नहीं सिहाय ।।२५१।।
अंग अंग की गाड में, बिहरत स्यामा-स्याम।
सखी विलोकत नैंन भरि, महा मधुर रस काम ।।२५२।।
छिन छिन सेवत सबै रितु, नित्य प्रिया के हेत।
तन करि मन करि वचन करि, लाल महा सुख देत ।।२५३।।
आल बाल सखि हृदै है, गौर स्याम द्रुमबेलि।
फूल फलनि नित डहडहे, सींचत रतिपति केलि ।।२५४।।
केलि बेलि फूले रहें, अंग अंग अभिराम।
आनँदसिंधु अपार फल, गौर-स्याम सुख धाम ।।२५५।।

ईषद हासि प्रकासि फूल, बिवि उरोज फल बाल।
चख दरसें सौरभ पियें, मधुप प्रान हैं लाल ॥२५६॥

नख सिख सौरभ स्वामिनी, काम केलि रस फूल।
मधुकर स्याम तमाल मत्त, घूमत गहि भुज मूल ॥२५७॥

धँनि धँनि स्वामिनि लाडिली, पिय की जीवन मूरि।
काम केलि पोषति रहै, उर लपटि रही भरि पूरि ॥२५८॥

अंग अंग फूले दोउ, गूढ भाइ कसि प्रान।
मानों दामिनि भवन में, वरषि सुमेघ समान ॥२५९॥

झलमलात जुग अंग मिलि, कलमलात रति मार।
चमचमात दामिनि भवन, रमिरमात घन बिहार ॥२६०॥

हरषि उछकि वरषत दोउ, तडित भवन घनस्याम।
पुलकि ललकि नभि कमल लों, अंग करत विश्राम ॥२६१॥

गूढ भाव की केलि यह, समझौ रसिक सुजान।
गौर-स्याम समुझें दोउ, कैं सखियन नैंन समान ॥२६२॥

कबहुँ तन मन प्राननि एकता, रहै आनँद सिंधु समाइ।
कबहुँ गुन गन केलि सुरति भई, उमगि उठे अकुलाइ ॥२६३॥

आनँद के लिये एक हैं, दोइ केलि के हेत।
हरिदासी ज्यों हँसनी, खीर नीर करि देत ॥२६४॥

हरिदासी कौ वपु बन्यो, गौर-स्याम सुख लाड।
लाड लडावत एक रस, काम केलि की चाड ॥२६५॥

कहिबे कौ तौ तीन हैं, सुख मिलि विलसें एक।
तन मन विलसैं दोइ मिलि, मन करि विलसें एक ॥२६६॥

ततसुख विलसें मनमई, स्व सुख तनहिं विलास।
गौर-स्याम तन सुख-सुखी, ततसुखी श्री हरिदास ॥२६७॥

श्री हरिदासी बसि परै, गौर-स्याम दोउ प्रान।
ततसुखी लाड लडावहीं, लाडें रसिक निधान ॥२६८॥

गौर-स्याम नैंननि बसै, झलमलाइ दोउ रूप।
काम केलि विलसत रहैं, अद्भुत सुखद अनूप ।।२६९।।
दरस परस आनँद निधि, मनसिज विहरत सेज।
परम रसिक नागर दोउ, श्रीहरिदासी हेज ।।२७०।।
एक सेज के सुख बिना, और न दूजौ हेत।
तन मन प्रानन एकता, गौर-स्याम सुख देत ।।२७१।।
कबहूँ अंग अंग अंकौं भरें, विलसत नाना केलि।
कबहूँ हरिदासी उर में ढरें, लटकि रहें द्रुम बेलि ।।२७२।।
वदन विलोकत नैन इत, उत अंतर सुमिरत केलि।
अंग अंग फूल्यौ अतन, झूल्यौ रति रस- झेलि ।।२७३।।
कबहूँ झुकि झुकि आवत नैन, अंग उमगि आतुर भये।
झलमलात तन मैंन, श्रम जल कन रति चिह्न री ।।२७४।।
अंतर उरझे प्रान दोउ, सुरझि न अंग समाइ।
लाज बसन अटक्यो सखी, झटक मिलैं नहिं आइ ।।२७५।।
मंद मंद मुसक्यात दोउ, पिय नैंननि पग लागि।
प्रिया कटाछिन चोज के, नटति खिलति रति जागि ।।२७६।।
अति प्रवीन है लाडिली, रतिपति चाह बढाय।
लाड मान रूखी भई, कपट प्रगट मुसकाय ।।२७७।।
पिय आतुर धीरज नहीं, देख मंद मुसिक्याँनि।
कनखइयन चितवनि सखी, वरषत रस की खानि ।।२७८।।
सखी सीख सैंननि दई, छाँडि कपट को मान।
चतुर कहों भोरी कहों, प्रिय की जीवनि प्रान ।।२७९।।
विनु माननि व्याकुल रहैं, मिलत ही मिलत अधीर।

पिय अधीर धीरज नहीं, चंचल कर सुभाव।
मान नहीं तँह मान कहि, इन्हैं न क्या समुझाव ।।२८१।।

तुम तो परम कृपाल हौ, पिय की जीवनि मूरि ।
औगुन पर तुम गुन करौ, लपटि रहौ भरपूरि ।।२८२।।
मंद मंद मुसक्याइ कें, पिय उर लिये लगाय ।
मानों दामिनि भवन में, घन तन रह्यौ समाय ।।२८३।।
चमकि चमकि घन में उठें, वरषत मनमथ केलि ।
रमकि रमकि झूलत दोऊ, अंस अंस भुज मेलि ।।२८४।।
रतिपति केलि हिंडोरना, हरिदासी झुलवति जाहि ।
कविनि हिंडोरा जे कहे, हम नाहिं झुलावत ताहि ।।२८५।।
गौर-स्याम हिंडोरना, काम प्रेम रस भोग ।
वारों कोटि हिंडोरना, इनसों रहत वियोग ।।२८६।।
कामिनि कंत हिंडोरना, सखी अंग अंग संजोग ।
हाव भाव झोंटा दोऊ, झूलत प्रेम प्रयोग ।।२८७।।
जुग जुग अटल हिंडोरना, झूलें तन मन प्रान समाइ ।
गौर स्याम आनंद निधि, काम केलि रस चाइ ।।२८८।।
नित्यविहार हिंडोरना, यही कह्यौ समुझाइ ।
रसिक झुलावो सेज पर, हरिदासी के भाइ ।।२८९।।
अनुभव करि देखो रसिक, काम प्रेम रस केलि ।
दंपति सुख आनंद मय, झूलत नवल नवेलि ।।२९०।।
अद्भुत रस हरिदास को, होरी डोल हिंडोल ।
सेज भाव निसिदिन दोऊ, मनमथ करत किलोल ।।२९१।।
डोल कहत कवि झूलिबो, अरु पग डग डोलनि नाँउ ।
रूप रंग झूलत दोऊ, चलत दृगन की चाउ ।।२९२।।
कबहुँक भामिनि उर लगैं, कबहूँ लडकमान झुकि जाति ।
कबहुँ कनखईयन चितवनि सखी, कबहूँ अंग अंग अंगराति ।२९३।
पिय नैननि सुख बहुत है, नख-सिख निरखि निसंक ।
मदन तेज तन तपत है, प्यारी सींचि सु केलि अभंग ।।२९४।।

करुनासिंधु उदार अति, मंद मंद मुसिक्याय।
प्रीतम जीवन प्रान मम, तन मन रहो समाय ॥२९५॥
ज्यौं ब्रह्म व्यापक जगत में, कहूँ न खाली कोइ।
त्यौं गौर-स्याम सखियन मई, तन मन प्रान समोइ ॥२९६॥
वे जंत्री ये जंत्र हैं, ए जंत्री वे जंत्र।
मनसिज जंत्र बजावहीं, गावैं गुन गन तंत्र ॥२९७॥
गौर-स्याम के लाड कौ, सखियन के इह नेम।
करत बिहार अखंड दोउ, समर केलि कौ प्रेम ॥२९८॥
काम प्रेम रस केलि कौ, करत बिहार अभंग।
ललित प्रिये हरिदास कें, गौर-स्याम अंग संग ॥२९९॥
सखी बिलोकत नैंन भरि, केलि करैं दोउ प्रान।
आनंद में जब लय भये, तब सखी, रही सावधान ॥३००॥
अंक भरें श्रम जल निवारें, चूंबे नैंन कपोल।
करो बिहार अभंग दोउ, वारों तन मन प्रान अमोल ॥३०१॥
जुगल प्रेम भोगत रहें, तन मन नैंननि रूप।
सखी भोग गावत गुननि, निरखत केलि अनूप ॥३०२॥
मेरे नैंनन में बसौ, गौर-स्याम को प्रेम।
आसक्ति विलोकौं नैन भरि, अंग जटित नग हेम ॥३०३॥
छिन छिन बाढै रूप अति, तैसिय बाढै चाह।
याही सुख में हैं परे, सदा अधीन सुनाह ॥३०४॥
चाह बढै अति लाल कें, देखि प्रिया को रूप।
इनसे येई हैं लखे, दोऊ रसिक अनूप ॥३०५॥
नैंननि पिय पाँयनि परें, नैंननि ही मुसिक्याइ।
स्वामिनि करुना उदार निधि, उर लालन लिये लगाइ ॥३०६॥
जो आरति है जगत में, सो आरति हम नाँहि।
गौर स्याम आरति हियें, सो आरति मन माँहि ॥३०७॥

काम केलि आरति जुगल, दरस परस सुख लैंन।
यह आरति श्री हरिदास कें, डुलरावें दिन रैंन ।।३०८।।
हरिदासी आरति सुनों, गौर-स्याम लियें भाव।
आरति एक बिहार की, दूजो नाँहि समाव ।।३०९।।
अतन अंत जाके नहीं, रूप निरखि न अघात।
दरस परस रस सिंधु में, गौर-स्याम सुख गात ।।३१०।।
मनसिज उमँगत अंग भरि, आनन्द सिंधु अभंग।
केलि बेलि लहरें उठें, विलसैं नाना रंग ।।३११।।
कंदर्प प्रेम अरु केलि रस, गौर-स्याम बस प्रान।
कोक भाव भोगी दोऊ, भोगत रसिक सुजान ।।३१२।।
आदि अंत जाकौ नहीं, गौर-स्याम रति काम।
बहु विधि केलि बिहार की, फिरि आनँद लै विश्राम ।।३१३।।
पर इच्छित जहँ काम है, इक रस रहै न कोइ।
गौर-स्याम सकाम दोउ, रतिपति प्रान समोइ ।।३१४।।
इक नायक बहु नायिका, सबै कामिनि काम।
भाव काम ताकों कहत, ब्रज बधू पोषत स्याम ।।३१५।।
कुंजबिहारी कुंज में, विहरत सेज बिहार।
कुंजबिहारिनि लाडिली, करि राखी उर हार ।।३१६।।
दरस परस अरुझे दोउ, सुरझ न नेकु सिहांहि।
काम प्रेम फँदे रूप रस, भरि भरि अंक समांहि ।।३१७।।
सम किसोर जोरी सदा, नित सद् जोवन प्रकास।
गौर-स्याम आनंद में, सुरझ न हियें हुलास ।।३१८।।
ज्यौं ससि भीतर अमी है, त्यों गौर-स्याम के बीच।
तन मन अरुझि न सुरझई, सेज समर की कीच ।।३१९।।
कबहुँक निरखत नैंन भरि, अद्भुत रूप अनूप।
कबहुँक अँग अँग रति रंग में, भोग समर रस भूप ।।३२०।।

यह रस विलसैं रैंन दिन, इक रस भोगी भोग।
गौर-स्याम आनँद निधि, तन मन प्रान संजोग ॥३२१॥
सहज संजोगी भोगता, भोगि भोगि अकुलात।
प्रेममयी रतिपति दोउ, उमँगि उमँगि भरि गात ॥३२२॥
रसिक सिरोमनि लाडिलो; लडिवयात पिया रति भाव।
मनोज चोज विनती करें, अंग भरन चित चाव ॥३२३॥
नाभि कमल त्रिवली उदर; मोहन सोहन अंग।
पाइनि पर बिनती करें, स्वामिनि समर रङ्ग को संग ॥३२४॥
कबहुँक स्वामिनि श्रवन सुनि, नैंननि में मुसिक्याय।
कबहुँक गूढ भाव आतुर करै, सुमरि लाल अकुलाय ॥३२५॥
हाव भाव भृकुटी चलें, अंचल उर न ठहराइ।
विवि उरोज दरसत रसिक, परस न सकुचि लजाइ ॥३२६॥
काम केलि सुमिरन करें, कटि लटकन कौ भाव।
हाहा स्वामिनि करुनानिधि, अंग सुअंग समाव ॥३२७॥
सैन देत मृदु स्वामिनी, भाग्यमान पिय भूरि।
सकल अङ्ग भरि भामिनी, काम प्रेम रस पूरि ॥३२८॥
कोक बेलि लपटी विमल, स्वामिनि परम उदार।
मनों ससि चकोर पोषन चल्यौ; पूरन चंद विहार ॥३२९॥
जहाँ सितकार न पाइये, दिन दुलहिन सुकुमार।
दिन दूलहु सुन्दर स्याम वर, भोग प्रिया उरधार ॥३३०॥
प्रथम समागम रैंन दिन, अङ्गनि अङ्ग समाहि।
अनंग रूप बाढत रहै, निरखत नैंन सिहाँहि ॥३३१॥
रूपवंत गुनवंत दोउ, सम किसोर रस खाँनि।
चाहिवंत रति कंत पिय; पियत मंद मुसिकाँनि ॥३३२॥
रूप रग गुन रस भरो; स्वामिनि परम उदार।
अंसनि भुज पिय देत रति, समर केलि उरहार ॥३३३॥

रोम रोम झलम[illegible]त दोउ, [illegible] रङ्ग रति चाव।
मनों प्रभाकर [illegible] सिंधु में, [illegible] न रैन समाव ।।३३४।।
पुलकि पुलकि छ[illegible]याँ लगैं, [illegible]याँ रति मृदु चोज।
उमँगि उमँगि भोगत रसिक, मोज मनोजनि सोंज ।।३३५।।
रूपवंत स्वामिनि सदा, तृषितवंत पिय काम।
हरिदासी के भाव में, विलसत आठों जाम ।।३३६।।
जुग बिहार जुग जुग नयो, भयो न कबहूँ अंत।
हरिदासी उर में सदा, भोगत कामिनि कंत ।।३३७।।
मिलत जात मिलिबो चहैं, मिलत न आवत अंत।
आनंद सिंधु अभंग रस, गौर स्याम रतिवंत ।।३३८।।
तन मन फूले नित नये, मनमथ सरद बसंत।
अलि अवली परिमल लुब्ध मिलि, लपटत कामिनि कंत ।।३३९।।
अँग अँग प्रेम फूलि फूले रहैं, मनसिज उठत सुगंध।
मन मधुकर लोभी रसिक, पिवत एक रस बंध ।।३४०।।
तन मन अरुझे रसिकवर, काम प्रेम रस चाहि।
जुगल प्राँन आनंदमय, सुरझ न हियें समाहि ।।३४१।।
सुरति विवस आनंद मई, रही न अंग संभारि।
सखी लखी मन जानकें, लीन्ही भुजा पसारि ।।३४२।।
वसन सँवारत भूषन सजे, गावत जुगल बिहार।
काम केलि विलसत रहौ, मम जीवन प्रान अधार ।।३४३।।
निरखि हरषि अँग अँग दोउ; सुरति फुरति रतिभाव।
मृदु मुसकनि चितवनि कनख, जीवनि रसिकसिरोमनि राव।३४४।
काम कलमली उर बसै, अरु लसै नैंन रति बैंन।
कुंजबिहारिनि लाडिली, लाडत पिय उर ऐंन ।।३४५।।
तन तन प्रान एकत्व रस, विलसत हैं दिन रैंन।
अतन अंत अङ्गन नहीं, सुरझ होत तन तैंन ।।३४६।।

सब सुनियत जे भोगता, एक रस रहत न भोग।
तुम तन मन प्रानिनि मिलि रहे, छिन छिन रटत बियोग ॥३४७॥
अति उदार भामिनि वचन, पिय सुनि बोले बैन।
प्यारी तन मन जीवनि प्रान हौ, नैंनन के हौ नैन ॥३४८॥
रूप सुधा पीवत रहौं, तृपति होत नहीं नैंन।
ससि चकोर उपमा नहीं, ये मिले रहैं दिन रैंन ॥३४९॥
तन सों तन अरुझ्यौ रहैं, सरुझि नेंकु नहिं चैंन।
ज्यों बेली भूपर परी, तरु बिन चढै न तैंन ॥३५०॥
मेरे उर लपटी रहौ, कनक बेलि रति दैंन।
तरु तमाल यह सुभग तन, लसौ मैंन के ऐंन ॥३५१॥
सब ही विधि सुख रूप, कुंज बिहारिनि लाडिली।
विलसत केलि अनूप, प्रीतम सों तन मन मिली ॥३५२॥
मेरे अँग सँग लाडिली, कुंज बिहारिन बाल।
विलसत केलि रसाल अति, प्रीतम के उर माल ॥३५३॥
पट झटकत हटकति तिय, खटकत पिय के मान।
लटकि लटकि पाँइन परें, स्वामिनि हठ मत ठान ॥३५४॥
मेरे मन करषति तिय, कपट लपटि कौ मान।
करुनासिंधु उदारवर, वरषत मृदु मुसिक्यान ॥३५५॥
अनदोसन दोषन कहे, छिन छिन ठानति मान।
तेरे सुख में मैं सुखी, समुझौ चतुर सुजान ॥३५६॥
प्यारी तन मन प्राननि मिलि रहो, न्यारी होहु न नेक।
हिल मिल विलसैं एक रस, यही गहो निज टेक ॥३५७॥
परिरंभन चुबंन अधर, रहत कलमली काम।
तन मन अरुझि न सुरझिए, यों प्रान रहत विश्राम ॥३५८॥
मिलत रहो मिलिबौ चहौ, खटकत अनमिलिनी सी रीति।
कुंजबिहारी लाडिले, तेरी अद्‌भुत प्रीति ॥३५९॥

जल तरङ्ग जो कोउ गनें, अरु गनैं जो तन के रोंम ।
प्रेम बिथा मेरी नहीं गनें, प्यारी यह भाषत हों तोंम ।।३६०।।
प्रीतम तन मन मेरे प्रान हो, तुम्हें न भूलों नेकु ।
जा भाँतिन तुम सुख चहौ, ता भाँतिन सुख लेकु ।।३६१।।
प्यारी तो सम नाँहि उदार कोउ, मो सम जाचिक नाँहि ।
तन मन प्रानन रमि रहो, उर संपुट के माँहि ।।३६२।।
प्यारी दरस रूप सुखनैंन हैं, पै तन कों धीरज नाँहि ।
मनभव काम न चैन जिय, अति व्याकुल अकुलाँहि ।।३६३।।
मनभव समर जु तन बसै, तौ मन ही मन मिलि जाहु ।
तन तें तन जो ना मिलैं, समर न हिये समाहु ।।३६४।।
प्यारी दरस रूप सुख नैंन हैं, परस विना नहिं चैंन ।
सकल अंग सुख दान दें, यह भाषौं दिन रैंन ।।३६५।।
ऐसी जिय में होत रहे, जो जिय सों जिय मिलि जाँइ ।
तन सों तनहि समाइ ल्यौं, तो नैंना अति अकुलाँइ ।।३६६।।
नैंननि रूप अहार है, निरखि निरखि सुख पाइ ।
तन कौ भोगी तन सुखी, बिन भोगें अकुलाइ ।।३६७।।
सदा अमानी मान बिन, तासों कैसो मान ।
दया दृष्टि देखति रहौ, मम जीवनि तुम प्रान ।।३६८।।
मीनकेतु के जलनि में, तन मन व्याकुल गात ।
तव कटाछि सर में बिंधे, तक तक मारत घात ।।३६९।।
करुना रस बरषत रहौ, स्वामिनि परम उदार ।
राखौ अपने बाँह बल, दै अधर-सुधा आधार ।।३७०।।
रहत निरन्तर एक रस, गौर स्याम इक प्रान ।
काम केलि विलसत रहें, मंद हँसनि मुसकान ।।३७१।।
हरषि हरषि हियरें उठें, नियरे गहि भुज मूल ।
छाती प्रान समान दोउ, थाती रसमय झूल ।।३७२।।

सदा निरन्तर स्वामिनी, गुन गन सहज समाज।
ललित प्रेम के नेम गहि, विलसि रसिक रस राज ॥३७३॥
काम कलमली अंग बसे, लसे हँसे बिनु बैंन।
पुलकि ललकि नखसिख दृगन, गवन नहिं दिन रैंन ॥३७४॥
प्रेम चटपटी एक रस, तृपत होत नहिं प्रान।
सेज बिहूना रस जिते, ते ते करी न कान ॥३७५॥
मेरो मन जासों रँग्यो, जो रँग्यो जुगल के बीच।
प्रेम केलि की सेज पर, मची समर की कीच ॥३७६॥
काम केलि की सेज बिनु, और न इन्हें सुहाय।
भूषन बसन न तन धरें, अँग सँग मिलि अकुलाय ॥३७७॥
कुंजबिहारी सुख मई, आनंद प्रिया सरूप।
काम प्रेम की संधि में, विहरत सहज अनूप ॥३७८॥
समर अंत नहिं कंत है, विहरत सेज विहार।
प्रिया प्रान रस बीच में, कर राखी उर हार ॥३७९॥
रसमय सुखमय आनंदमय, रहति एक ही भाव।
रसिक सिरोमनि लाडिले, सब भोगनि के राव ॥३८०॥
दरस परस सुख सिंधु में, प्रेम चटपटी चाव।
संभ्रम माननि मान तजि, करत खटपटी राव ॥३८१॥
प्रिया हँसति बोलति बचन, कहँ प्रीतम मन दीन।
मान नहीं संभ्रम तजो, मैं जल तुम हो मीन ॥३८२॥
कमल न उपजे नीर बिनु, कमल बिनु जल नाँहि धंनि।
श्री सोभा तब जगमगे, येक संग दोउ जन्नि ॥३८३॥
काम प्रेम रस विलसहीं, एक प्रान द्वै देह।
अति आनंद में लै भये, जहाँ दोइ एक सनेह ॥३८४॥
तन मन भूले कुंज ग्रह, चित चंचल नहिं जीय।
ज्यौं सलिता मिलि सिंधु कों, जहाँ दोइ एकन होय ॥३८५॥

आसय में दोउ एक हैं, देह सु भिन्न बिचार।
आनँद विग्रह नित नये, फेरि केलि बिस्तार ॥३८६॥
गौर-स्याम रसखानि दोउ, कहत बनै नहिं बैन।
मन बुधि बानी सब थकी, निरखि थके दोउ नैन ॥३८७॥
तन मन प्रानन एक मिलि, सने सु मधुर सनेह।
हाव भाव लपटनि छुटनि, दरस परैं दोइ देह ॥३८८॥
गौर-स्याम वरषत रसै, वचन कहत घन घोर।
ज्यों घन दामिनि वरसि कै, चमचमात चहुँ ओर ॥३८९॥
गौर-स्याम के रूप कौ, मंडप छयो सु येक।
ता अंतर बिहरत रसिक, अद्भुत केलि अनेक ॥३९०॥
तरवर पर बेली चढी, पलु छिन बढती जाय।
गौर-स्याम सुख द्रुम अरुझि, सुरझि न हिये सिराय ॥३९१॥
अंग राग अनुराग रंगि, रँगे रँगीले रङ्ग।
सुरति विवस सुख में भई, भूले तन मन संग ॥३९२॥
इहि रस विलसत रैन दिन, जिन्हें न दूजो भाव।
काम प्रेम के बस परे, इन बिन सबै दुराव ॥३९३॥
ज्यौं अनादि हैं जुगलवर, त्यौं अनादि है काम।
प्रेम सिंधु मनसिज तरङ्ग, बिहरत स्यामा स्याम ॥३९४॥
रूप बगीचा स्वामिनी, गुन मन्दिर सु लसंत।
फूल फलन सो भरि रही, झूमत रति उर कंत ॥३९५॥
कोटि काम जकि थकि रहे, निरखि बिहारी रूप।
ते प्रीतम तिय बस करे, अद्भुत सुखद अनूप ॥३९६॥
काम रूप मुरली जहाँ, फूल रही अंग माँहि।
नव वन नव निकुंज में, नव जुवती केलि कराँहि ॥३९७॥
सखी पंछी भँवर धुनि, जहाँ न सुनिये कोइ।
तिहि गहवर बन खेलिये, तन मन प्रान समोइ ॥३९८॥

जहँ दुचितो चित न भयो, रह्यो प्रेम भरि पूरि।
मनसिज विहरें केलि रस, मम तुम जीवन मूरि ॥३६६॥
कछु प्रीतम तुम छल कियो, अलक सँवारत ओट।
प्रिये कहति मुसक्याय कैं, प्रीतम गई न खोट ॥४००॥
नाभि कमल पर दृष्टि करि, बोली रसमय बैन।
और भाँवति मन मिलन की, प्रीतम है चित चैन ॥४०१॥
प्यारी मृदु मुसिक्यानि करि, नीवी बंदन खोल।
देखत खेलत हँसत सुख, प्रीतम ओडत बोल ॥४०२॥
कुंजबिहारिनि वचन सुनि, पिय बोले मुसिक्याइ।
मिलि खेलत मन सुख लह्यौ, सो सुख कह्यौ न जाइ ॥४०३॥
प्यारी हँसि हँसि अंक भरि, प्रीतम लिये लगाइ।
परिरंभन चुम्बन सरस, मिलत मिलत न अघाइ ॥४०४॥
नव केसरि पिय अंग में, प्रिया अँग चौवा रंग।
भरत परस्पर रगमगे, मिले न रङ्ग अभंग ॥४०५॥
तीनों सुर एकत्व गति, नृत्यत ध्रुव अपार।
लाग डाट उरप तिरप, सुलप विलस सुख सार ॥४०६॥
काम केलि नृत्यत रसिक, गति में गति उपजाय।
ताल मन्दिर सुर नितंब लगि, राग रागिनी गाय ॥४०७॥
जो गति नृत्यत जुगल वर, सो गति विरले देखि।
रास मुकुट मुरली धरें, वा गति छाया रेखि ॥४०८॥
काम रूप मुरली अधर, चुंबन सुर धुनि होय।
मुकुट जटित गुन गननि सुख, रास जुवति जन जोइ ॥४०९॥
आल बाल हिय कुंज में, द्रुम बेली फूली अंग।
नील कंचन मनि खचित, मंडल नृत्य गति अनंग ॥४१०॥
रति विपरीत रास रचि, नीके प्यारो लाल नच्यौ।
कुंजबिहारी देखि कै, याही भाँति जच्यौ ॥४११॥

अद्‌भुत गति यह सब कही, नृत्यत सेज बिहार।
काम प्रेम रस केलि की, अंग अंग आहार ॥४१२॥
भाव काम उमग्यो हियें, रोंम कदम्बतर फूल।
तातर ठाढे लाल हैं, सुमिरि सुरति अनुकूल ॥४१३॥
एक सेज बैठे दोउ; बात सु कही परोक्ष।
रस में विरस न कीजिये, कपट करे रस ओछ ॥४१४॥
चलि अक्षिर ये समुझिये, मन करौ एक ही भाव।
मनावत प्रेम सहेली रुख लिये, भुज भरि प्रीतम चाव ॥४१५॥
चलि राधे कोकिल जहाँ, बोलत चात्रिक मोर।
मेघ गरजि मृदंग सुर, मनमथ उमँग किसोर ॥४१६॥
उद्दीपन अनुकूल है, तौ बिन सब प्रतिकूल।
मैं जानी पिय प्रकृति की, वेग सँवारि दुकूल ॥४१७॥
प्रीतम मग जोवत सखी, तेरी लगी समाधि।
आलिंगन रस सुमिरि मन; जुग मिलि अंग सु साधि ॥४१८॥
सखी वचन सों श्रवन सुनि, प्रिय के मूंदे नैंन।
ढूँढत वन में तिय मिली; विहरी में सुख चैंन ॥४१९॥
प्रीतम चाहत केलि को, ताही वश भये प्रान।
ललिता लखि प्रिय सैंन दै, समुझौ चतुर सुचान ॥४२०॥
नूपुर शब्द सुनाइ कैं, प्रीतम किये चैतन्य।
ढिग बैठी है भामिनी; आवत जात सु जन्य ॥४२१॥
दई सु कहिये प्रेम को, दई सु कहिये बात।
ताके आगे न्याव है, समझि विरह की घात ॥४२२॥
उमँगि मिली है स्वामिनी, प्रीतम उर लपटाय।
संभ्रम दियो मिटाइ कै, ध्रुव पद केलि कराइ ॥४२३॥
प्रात उठे दोउ रसिक वर, भुज बंदन गये छूटि।
आलस सुख में रगमगे, काम प्रेम रस लूटि ॥४२४॥

सुजान

रति राते हैं राति में, तासों कहिये राति।
सुरति विवस सुख सोय कै, रति जागे परभाति ॥४२५॥
मनसिज उमग्यौ चित्त में, तन सों किरन प्रकास।
गौर-स्याम दोउ जगमगे, दुलरावैं हरिदास ॥४२६॥
सखी पंछी भँवर गन, वन दरसैं बहु भाँति।
दिन सोभा सत परस्पर, रतिपति केलि सुराति ॥४२७॥
जहाँ न सून्य प्रकास है, इक रस जगमग जोति।
रवि ससि किरनि न परसि सकै, जुग वर रूप उदोति ॥४२८॥
सघन कुंज ग्रहलता मिलि, लपटि रही बहु भाँति।
मंडल नाना रतन जटित, झलकि रही है काँति ॥४२९॥
गौर-स्याम राजत तहाँ, रूप गुननि की पोट।
काम प्रेम रस केलि की, जोवन जोर झझोट ॥४३०॥
जोवन मद माते रहें, पीवत अधर सुधा रस सानि।
कुंज केलि क्रीडत रसिक, रूप रंग गुन खानि ॥४३१॥
जेते मद त्रयलोक में, तिनके हैं सिरताज।
पलक माँहि मिटि जाँहि वे, जुग मद जुग जुग राज ॥४३२॥
अगाधसिंधु जुग राज रस, कहूँ न पैये थाह।
ता रस के दोउ मीन ये, निर्भय ह्वै अवगाह ॥४३३॥
रूप भँवर गंभीर रस, बूड्यौ मन जुग बीच।
सखी सहायक गुन गान करि, और केलि में सींचि ॥४३४॥
यह आवर्त विहार रस, रूप गुननि की खानि।
सखी जननि के बाँह बल, विहरत जुग मन मानि ॥४३५॥
तन मन बिछुर न भावई, परे प्रेम के फंद।
सखी सुजीवन प्रान धन, विहरत आनंद कंद ॥४३६॥
श्री वृन्दावन रस खानि हैं, भरि जु रह्यौ फल फूल।
गौर स्याम रस केलि को, सदा रहत अनुकूल ॥४३७॥

कछु इक रस वरनन करौं । श्रीललितकिशोरी कृपा अनुसरौं ॥
अद्भुत रस के केलि विलासी । साँवल गौर महारस रासी ॥४३८॥
केलि बेलि रस हिय में बाला । बाढत चली पिय स्याम तमाला ॥
अरुझी अंस भुजा के मांही । अरुझि अरुझि सुरझत ये नाहीं ॥४३९॥
कनकबेलि सी उर में लपटी । मानों दामिनि घन सों चिपटी ॥
चमकि चमकि रस बरसें केलि । रमकि २ जु लै भुजमेलि ॥४४०॥
अंग अंग आलिंगन देहीं । उमँगि उमँगि अंकन भरि लेहीं ॥
जब मुसिक्याइ बचन रस कहई । दसन दमकिहीरन छबिलहई॥४४१॥
पिय रस केलि बैन अस बोलें । कोक पढें रस काम कलोलें ॥
प्यारी सुनत श्रवन सुखदाई । कछु बोली नहिं मृदु मुसिक्याई ॥४४२॥
प्यारी बचन कहत अस बोली । प्रीतम रस की करैं कलोली ॥
हम तुम एक प्रान द्वै देही । काम प्रेम रस परम सनेही ॥४४३॥
विलसैं रस रस ही के माँही । रस को अंत न पावैं थाही ॥
रस है हमरी जीवनि मूरि । तन मन प्रान रह्यौ भरपूरि ॥४४४॥
इकरस विहरत रस की सींवा । नेकु न बिछुरत भुज गहि ग्रीवां ॥
प्रेम चटपटी जियके माँहि । आहि प्रेम कछुकही न जाहि ॥४४५॥
मिलन माँहि अनमिलनी रहई । यह अचिरज कहि कासों कहई॥
जो रस पीवैं सोई जानै । बिनु पीवैं कैसे पहिचानै ॥४४६॥
हम तुम दोउ रस की खानि । रस आलिंगन चुंबन जानि ॥
याही रस में हम तुम रहैं । या बिनु और कछू नहिं चहैं ॥४४७॥

रस की मूरति जुगल वर, रस विलसत दिन रैंन ॥
गौर स्याम रस खानि के, और न उपजे ऐंन ॥४४८॥

प्रीतम वचन कहत कछु मीठे । या रस बिन सब लागत सीठे ॥
माँन भामिनी जे पिय सों ठानें। ते रस कछु नाँहीं पहिचानें ॥४४९॥
जिनके प्रीतम पास निवासी । तिनको कहि कैसी परिहासी ॥
प्रीत बढावनि हितके मानिनि।पियकी प्रीति परखि जब भामिनि॥

कमल काँति मुख की अलसानी। निरखत प्रिया मंद मुसक्यानी ॥
अहो प्रीतम तुम प्रान हमारे। तुम मम जीवनि जिय के प्यारे ॥४५०॥
सकल गुननि के रूप निवासी। छिन छिन गुन गन करौ प्रकासी ॥
वचन रचन रस अति सुख पावैं। कोक भाव मनमथ उपजावैं ॥४५१॥
बैन तुम्हारे परम अनूठे। ललित ललित पद अति रस गूंठे ॥
प्रिया वचन सुनि लालन बोले। कोक कोस मनो भाव कलोले ॥४५२॥
रस की केलि करैं कलोला। हँसि हँसि मृदु रस बोलत बोला ॥
हम तुम दोउ यह रस विलसैं। मुख छबि निरखि अवर अँग दरसैं ॥
परस्पर परसि सरस रस पीवैं। अधर - सुधा - रस पीवत जीवैं ॥
या रस पियें विरह नहिं परसै। अंगनि अंग मिलैं रस सरसैं ॥४५३॥
भरि भरि भुज अंकन उर कसैं। गौर स्याम घन दामिनि लसैं ॥
परिरंभन चुंबन रस गाता। मिलत मिलत नहिं नेकु अघाता ॥४५४॥
यह रस विलसैं रसिक रसीले। अंग अंग रस रास गसीले ॥
जोवन जोर करत दोउ वीर। काम केलि रन के हैं धीर ॥४५५॥

रन रस में हैं धीर दोउ, नेकु न होत अधीर।
काम प्रेम रस केलि के, सुभट जुरे हैं वीर ॥४५६॥

किंकिनि चूरी नूपुर धुनि। जनु विरद बखानत गुन गन गुनि ॥
अद्‌भुत सखीजन देखि विहारा। कीनों अपने उर को हारा ॥४५७॥
यह रस रसना कहँ लगि कहई। जो कहई तो अंत न लहई ॥
करै अपरिमित रस की केली। तरुन तमाल लपटी रस बेली ॥४५८॥

उमँगि उमँगि रस विलसहीं, रसिक रसीली बाल।
कनक बेलि सी लसति है, प्रीतम स्याम तमाल ॥४५९॥

साँवल गौर लपटी उर सोभा। कंचन मरकत मणि जिमि ओभा ॥
जगमग जगमग चहुँ ओर होय। रूप अनूप न वरन सकै कोय ॥४६०॥
स्याम-गौर की झाँई परई। एक रूप द्वै वरनन करई ॥
गोरी-स्याम स्याम है गोरी। प्रतिबिंबित दरसै इक दो री ॥४६१॥

अंगन परसें एक रस; रूप पलटि द्वै भेद।
उलटि उलटि रस विलसहीं, गूढ मरम रस छेद ।।४६२।।

मृदु रस विलसें रसिक बिहारी। कुंज केलि रस के अधिकारी ।।
विविध भाँति आलिंगन करई। जोइ जोइ रुचि जिहि रस में ढरई ।।४६३।।
अद्भुत रस के हैं दोउ नायक। एक कुंज के सखा सुभायक ।।
समकिसोर जोवन रंग भीने। घूँमि झूमि विहरत हिय लीनैं ।।४६४।।
उर कटि उरझि सुरझि नहीं चहैं। बारम्बार यहै रस लहैं ।।
यह रस विनु कछु नहीं सुहाई। अंगनि अंग मिलैं अकुलाई ।।४६५।।

अति आनंद रस केलि में; जुग मिलि एक समान।
कुंजबिहारिन चित भयो, जमुना के अस्नान ।।४६६।।

कुंज बिहारी देखे आवत। बात अटपटी कहि बतरावत ।।
नाम कहौ यह काकी ललना। रूप रङ्ग रस झरति सु झरना ।।४६७।।
कछुयक बात सखी जब बोली। प्रिया कहै तुम रहो अबोली ।।
वाय बावरे गाँव के जैसे। जानि बूझि बातैं कहै ऐसे ।।४६८।।
इतने में सखि छीटा खेलैं। प्यारी वचन कहै मति रेलैं ।।
लै बुडकी जमुना के माँही। चौंकि परी पिय दै गलबाँही ।।४६९।।
क्यौं चौको मेरी प्रान सु प्यारी। पूछत बात जु लाल बिहारी ।।
कहा डरपि कछु सुपनों देख्यो। अपने उर क्यों तपनों रेख्यो ।।४७०।।

कही बात समझाय के, कछु सपनों देख्यो आज।
सखी देखि तुम देखि कै, जमुना जुरचौ समाज ।।४७१।।

सुनि कै बात लाल उर लाई। जनु बिछुरी निधि सु करि कै पाई ।।
रहसि विहसि रस केली करई। पुलकि किलकि रस उर में भरई ।।४७२।।
परम रसाला रस की बाला। भाग्यमानि पिय पाई भाला ।।
निरखति नैननि रूप लुभाने। भाग्यमानि पिय अपने मानैं ।।४७३।।
दुति प्रिय तन अस झलक सुहाई। चंद किरन जनु झलमल झाई ।।
तन की अद्भुति लावण्य लुनाई। मोतिन की सी झलमलताई ।।४७४।।

भूषन बिनु भूषित अँग सोहै। अद्भुत रूप अनूपम मोहै ।।
देखि देखि मन नाँहि अघाई। माधुरी तन में सरस सदाई ।।४७५।।
तिय तन जोति सु कही न जाई। गौर तन की मनो सेज बिछाई ।।
देखी मानों नाँहिन देखी। अति रमनी पिय तन में पेखी ।।४७६।।
नख सिख अंगनि परम सुहाई। कविजन बरनत सुंदरताई ।।
कर परसत मनो परसत नाँही। अति मृदु कोमल तन में आही ।।
कमल फूल जो कर पर धरई। अति सुकुंवारि सकुच जिय डरई ।।
सिसिक नासिका स्वासा भरै। फूल भार कर कैसै धरै ।।४७७।।

सुफल रहो यह रूप, भोगी सुकृति स्याम तन।
सदा सुहाग अनूप, कुंज बिहारिनि सुघर वर ।।४७८।।

दिन दूलह दिन दुलहिन प्यारी। प्रथम समागम सकुच निवारी ।।
कछुयक बाल सलज्जस रहै। प्रीतम के उर लपटी चहै ।।४७९।।
मंद मुसकि पलकैं फिर झंपै। नौतन नेह अधर उर कंपै ।।
पियकर कमल सु उरजन परसैं।मुख छबि निरखि अवर अंग सरसैं।।
माननि भृकुटी बंक विलोकै। प्रीतम हिय के प्रेमहि रोकै ।।
सकुचि लाल नैंननि पग परैं। प्रिया प्रसन्न अंक में भरैं ।।४८०।।
नैंननि नैंन मिले रस बरषैं। परम सनेह परस्पर परसैं ।।
तन मन प्रान एक जब होय। दूजो भाव न॰ उपजै कोय ।।४८१।।
जो कछु बात प्रिया उर रहै। सो प्रीतम अपने मुख कहै ।।
परस्पर प्रेम बढत जब चल्यौ। मन मन मुदित रङ्ग झलमल्यौ ।।४८२।।

प्रेम सार सुख सार सार हित चाह परस्पर।
सनेह सार गुन सार सार रस रूप महाभर ।।
आनंद सार रङ्ग केलि निधि नाम रसिक निज अभैकर।
ऐसे श्री हरिदास को मन सहज प्रान करि हिये धरि ।।४८३।।
बिहार बाँकौ सहज ही निगम अगम तें अति अगम।
अति ही निपुन ह्वै बिपुन बसत नित्य तउ न पावत गम ।।

ललित केलि अभिराँम ललित की ओर ढरैं इम।
श्रीहरिदास सुहागिन के संग गौर स्याम रस रूप वैस सम ॥४८४॥

श्री हरिदास से श्रीहरिदासै।
जानि बिहार गुपत महा प्रगटै रस रीति की प्रीति निवासै।
श्रीकुंजबिहारी बिहारिनि के हित प्रेम पगे रहें रंग बिलासै॥
लहें सुख सार सु नित्य बिहार प्रिया उरहार बँधे मृदु हासै।
निरन्तर केलि निहारत चाह सों श्री हरिदास से श्रीहरिदासैं ॥४८५॥

श्री कुँजबिहारी के द्वार बिना हम जाहि कहां इहां रंग भरे हैं।
श्रीहरिदास कृपानिधि सागर औगुन मोर न चित्त धरे हैं॥
दीन्ही प्रिया निज प्रेम प्रसादहि, आनंद के परिवाह ढरे हैं।
जीवनि प्रान सुकेलि हमारी, अरु लोकहु वेद तें नांहि डरे हैं ॥४८६॥

जोवन मदमाते अनंग रङ्ग राते सूचत बिहार मंद मंद मुसिक्यात री। केलि की खुमारी नेंकु नांहि उतारी नउतन सनेह की ठगारी कहत बात तुतरात री। कबहुँ पलक झुकि झँपत नैंन आलस उनींदें रति रैंन पग डगमगात रूप झलमलात गौर स्याम गात री। सुरति सुख सागर सब हाव भाव आगर अंसन भुज झूमि झूमि झूमिका से अंग अंग में समातरी ॥४८७॥

प्यारी तेरौ बदन चंद देखे अगनित चंद कौ प्रकास तेरे प्रकास के आगे छिप जात है। अघट अनंद अमो रस बरषि बरषि हरषि हियौ मेरौ आली सरस सरसात है॥ रूप परम अनूप उपमा को कोई नाँहि उमा रमा सरसुती सची, ब्रज जुवती सुनि सुनि दरस कों जिय अकुलात है। ऐसौ मुख लालन के नैंन हैं चकोर ललितकिसोरी चितचोर निरखि निरखि मधुर रस पीवत न अघात हैं ॥४८८॥



※ अथ सिंगार रस के पद ※

रस रसिकन कों रस पान है, रस ही भोजन भोग।
रस बिन नेंकु न रहि सकें, गौर स्याम संजोंग ॥१॥

लडैती आनंद निधि सुखरासी।
महा प्रेम भरी सहज छबीली सदा ही प्रीतम पासी ॥
अद्‌भुत रूप रसीली भामिनि बँधे मधुर मृदु हासी।
श्रीललितकिसोरी रसिकसिरोमनि विलसत केलि विलासी ॥२॥

लडैती जू की बात लडैतीयै जानै।
तन मन मिले मिलन की आसा लाल न होत अघानै ॥
जिहि जिहि भाँति महा सुख पावै सोई सोई बातै ठानै।
श्री हरिदासी रंग बढावति अति जाननिमनि जानै ॥३॥

श्रीकुंजबिहारिनि ललित लाडिली अद्‌भुत रूप रसाला।
हँसनि लसनि मुसकनि रस बरसत लालै करति निहाला ॥
उमँगि उमँगि दोउ मदन लडावत दोउ दोउन उरमाला।
श्रीललितकिसोरी के हित विहरत जानि महा निजु हाला ॥४॥

बिहारनि फूलनि फूली नीकी।
जैसी रुचि उपजति लाल कै तैसीये रुचि है ती की ॥
तन मन मिलि बिहरत दोउ प्रीतम उमँग बढी है ही की।
श्रीहरिदासी ललितकिसोरी अवधि प्रेम की लीकी ॥५॥

रंगीली सकल सुखनि की खानि।
उमँगि उमँगि वरषत प्रीतम पर अति जाननिमनि जानि॥
तन सौं तन मन सों मन मिलयौं रहो अंक में आनि।
श्रीहरिदासी के हित विहरत श्री कुंज बिहारिनि रानि ॥६॥

तू जानै तू जानै मेरी रसिक रँगीली तू जानै ॥
तू तौ परम उदार स्वामिनी रीझि रीझि अंकौ आनै ॥

तू तौ केलि विलासनि प्यारी विलसत जैसे मन मानै ।
तू सी तूही किसोरी राधे ललित बिहारी सुख सानै ।।७।।

जै राधे मेरी प्रान अधार ।
अद्भुत रङ्ग रूप रस बरषत महा प्रेम अति सुख कौ सार ।।
सहज सनेही सहज आनंद निधि सहज रसिक प्रीतम उर हार ।
श्रीकुंजबिहारिनि ललितकिसोरी छिन छिन बिलसत नित्यबिहार।।८।।

आजु महा मंगल भयौ माई ।
भई प्रसन्न सिरोमनि राधे यह सुख कह्यौ न जाई ।।
परम प्रीति सौं विलसत दोउ प्रेम बढ्यौ अधिकाई ।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि उमँगि उमँगि आनन्द झरलाई ।।९।।

लडैती जू तेरी रङ्ग भरी मुसिक्यानि ।
तन मन अति आनंद बढावति अद्भुत सुख की खानि ।।
परम प्रवीन किसोरी राधे अति जाननिमनि जानि ।
श्रीरसिक सिरोमनि की निजु जीवनि कुंजबिहारिनि रानि ।।१०।।

उत्तममनि उत्तम सही श्री राधे रानी ।
महा प्रेम आनंद भरी अद्भुत सुख सानी ।।
छिन छिन प्रीति नई नई सहजै जिहि बानी ।
श्री ललितकिसोरी भाव सौं विलसत मन मानी ।।११।।

स्यामा प्यारी राधिके सुख रासि हमारी ।
रोंम रोंम तन मन मिलि अति ही हितकारी ।।
अद्भुत प्रेम प्रकासिनी निजु प्रीतम प्यारी ।
श्री ललितकिसोरी प्रान हैं यह जिय जियारी ।।१२।।

तन मैं तन नैननि मैं नैना । मन मैं मन बैननि मैं बैना ।।
ऐसैं रहौ रसिक वर चैना । श्रीललितकिसोरी के उर ऐना ।।
उपजत कोटिक मैननि सैना । छिन छिन आनन्द अति ही लैना ।१३।

आजु महा मंगल है माई । विलसत केलि सदा मन भाई ॥
रीझि रीझि पीय कंठ लगाई । छिन छिन आन्नद उरहि बढाई॥१४॥

सुख रासि हमारी प्यारी जू ।
अति आनन्द भरी रस माती रोंम रोंम हितकारी जू ॥
छिन छिन प्रीति नई नई उपजति जीवनि जीय जियारी जू ।
श्री ललितकिसोरी के हित विहरत छिन हूँ होत न न्यारी जू ॥१५॥

रूप रासि सुखरासि किसोरी ।
अति आनंद की दाँनि सुभायक देति लाल कों प्रीति न थोरी ॥
महा प्रेम भरि रसिक सिरोमनि तैसीये तैसी मिलि भली जोरी ।
श्रीहरिदासी की निजु जीवनि कुंजबिहारिनि चित की चोरी ॥१६॥

बिहारिनि रङ्ग भरी मुसक्याइ ।
अति आनंद रूप रस माती फूली अंग न माइ ॥
जानि महा हित नित्य लाडिले उमँगि मिले अकुलाइ ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि तन मन हियो सिराइ ॥१७॥

विहारिनि रंग भरी मुसकानि ।
उतते उमँगि उठी लखि लालन कै अद्भुत रस की खानि ॥
परम उदार प्रवीन रसिकवर अति जाननिमनि जानि ।
राखे कंठ लगाय प्रान द्वै ललित महा सुख सानि ॥१८॥

हमारी बिहारिनि रङ्ग भरी ।
परम प्रसन्न लाल तन निरखी हँसि हँसि भुजा धरी ॥
अति अनुराग भयो प्रीतम कैं मानत धन्य घरी ।
ललित किसोरी प्रान प्रान मिलि रीझि सु अंक भरी ॥१९॥

बिहारिनि तेरेई रङ्ग रँगी ।
तेरेई हित में नित्य लाडति तेरेई प्रेम पगी ॥
तेरे सुख में सुख पावत तेरेई काम जगी ।
तेरेई कृपा तै ललित किसोरी हँसि हँसि कंठ लगी ॥२०॥

लडैती रंग सों आई ।
चितवनि हँसनि बोलनि रस बरषत अति आनंद बढाई ।।
तैसेई परम प्रवीन लाडिले उमँगि मिले अकुलाई ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि निरखत हीय सिराई ।।२१।।

लडैती लाड सों आई ।
हँसनि लसनि रस बरषि छबीली करत लाल मन भाई ।।
तन मन अति बस करे लाडिले मिलि मिलि कें किलकाई ।
श्री ललितकिसोरी इहि सुख विलसत आनंद उर न समाई ।।२२।।

लडैती जू सुख सखि लाल तिहारे ।
जाही भाँति महा सुख पावो सोई करत हैं प्यारे ।।
और बात हो कहों कहाँ लों रोंम रोंम हितकारे ।
श्रीललितकिसोरी की निजु जीवन अद्भुत नित्य बिहारे ।।२३।।

जो चाहौ सोई करौ नित्य कुंज बिहारी ।
तुम्हरे हित में लाडिली अति ही सुखकारी ।।
परम उदार सिरोमनि प्रिया सदा तिहारी ।
ललित किसोरी रंग सों मिलि प्रान पियारी ।।२४।।
श्री हरिदास के लाडिले नित कुंज बिहारी ।
रंग केलि बिहरत रहौ हित आनंदकारी ।।
कृपा कीजै लाल पै हे प्राँन पियारी ।
दास बिहारिनि सुख लहै यह प्रीति तिहारी ।।२५।।
श्री कुंज बिहारिनि लाडिलो रस रूप नवेली ।
उमँगि उमँगि आनन्द सों प्रीतम सँग खेलो ।।
परो प्रेम के सिंधु में सुख सार सों झेलो ।
श्री ललित किसोरी प्रान हैं अति गर्व गहेली ।।२६।।

कुँज महल में मंगलचार ।
गौर स्याम तन मन लपटाने वे उनके वे उनके हार ।।

महा परम रस लेत लाडिले उमँगि उमँगि आनंद सुख सार ।
श्री हरिदासी ललितकिसोरी इनही के ये प्रान अधार ॥२७॥
रसिक सिरोमनि लाडिली अति ही सुख रासी ।
जीवनि प्रान अधार है प्रिय केलि बिलासी ॥
मन की जानि सबै करैं प्रीतम सदाइ पासी ।
ललित किसोरी भाव सों हिये प्रेम हुलासी ॥२८॥
जो कछु करै सु लाडिली मो मन की प्यारी ।
तन मन बचनन एकता मिलि जीव जियारी ॥
लियें सुभाव रहें सदा अति ही हितकारी ।
ललित किसोरी रंग सों बिलसत सुख भारी ॥२९॥
पोति लडैती नें दई अपनी निजु जानी ।
महा प्रेम आनन्द भरी अद्‌भुत रस सानी ॥
अँग सँग केलि बिलोकहीं अति ही सुखदानी ।
श्री हरिदासी भाव सों हँसि हँसि उर आनी ॥३०॥
बात की बात बिहारिये जानें ।
ज्यों ज्यों होत रुखाई यहाँ त्यों त्यों अति ही हित मानें ॥
छिन छिन प्रति आराधनि करि करि अद्‌भुत रस रस ही में सानें।
श्रीललितकिसोरी रसिकसिरोमनि परम प्रवीन रीझि उर आनें॥३१॥
प्यारी प्रीतम प्रीतम प्यारी । इनकी रीति सबनि तें न्यारी ।
हँसि हँसि भुजा अंस पर धारी । ता छिन कौ सुख कहूँ कहा री ॥
तन मन मिलि बिलसत हितकारी । बाढ्यौ आनंद सिंधु महारी ।
रंङ्ग भरी जब इतै निहारी । रसिक सखी या छबि पर वारी ॥३२॥
सुख कौ सार समूह किसोरी ।
रूप निधान रंग कौ सागर परम विचित्र महा अति भोरी ॥
छिन छिन लाल करत आधीनी सदा प्रसन्न रहौ तुम गोरी ।
कुंजबिहारिनि ललित लाडिली तुम बिन और कहौ मेरो को री॥३३॥

आजु प्रिया सुख सार दियो ।
कुंजबिहारी तन मन फूले रोंम रोंम आनन्द हियो ।।
रुचि बाढी दुहुँ ओर महा रति तृपति होत न नेंकु जियो ।
श्रीहरिदासी ललितकिसोरी प्रान प्रान मिलि रीझि भरि अंक लियो ।।३४।।

रसिक-वर करत केलि मन भाई ।
महा प्रेम सुख सिंधु परे हैं आनन्द उर न समाई ।।
अधरपान दै नित्य किसोरी मंद मंद मुसिक्याई ।
हुलसि हुलसि बिलसत रसमाते श्री हरिदास सहाई ।।३५।।

हमारें श्री हरिदास महा सुखदाई ।
जोई जोई रुचै करैं हित सोई पोषत मन के भाई ।।
हरषि हरषि अनुराग बढावत चितवनि रस बरषाई ।
श्रीललितकिसोरी कुंजबिहारिनि मिलत मिलत न अघाई ।।३६।।

प्रीति की रीति रँगीलीये जानें ।
लिये रहत हित नित्य ललित कौं तन मन धन इनही कौं माने ।।
तैसोये ललित महा सुख दैनीं अद्भुत रूप रङ्ग रस सानें ।
और न इन्हें सुहाय रसिक कौं आन्नद केलि सहज ही आनें ।।३७।।

मेरी ललित महा सुखदाई ।
जाके हित दोउ रहत लाडिले करत केलि मन भाई ।।
जीवन प्रान किसोरी राधे हँसि हँसि कंठ लगाई ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि बडभागी काहू पाई ।।३८।।

लडैती तेरे नैना री अति फूले ।
प्रगट करत हिय के अनुरागहि रङ्ग हिंडोरें झूले ।।
निरखि लाल आनन्द बढायो भाग्य हमारे खूले ।
श्री हरिदासी के रस पोषे सदा केलि अनुकूले ।।३९।।

कुंजबिहारिनि सब सुखरासी अद्भुत रूप रसाला ।
मंद बिहँसि हँसि चितै छबीली लालै करत निहाला ।।

अति बडभागी रसिक सिरोमनि करि राखी उर माला।
श्रीललितकिसोरी लाड लडावत जानति है निजु हाला ॥४०॥
श्री हरिदासी अति रस रासी नित्य सुकेलि विलासी।
प्रीतम पासी बँधी मृदु हासी ललित सखी निजु खासी॥
इनकी बात इनहीं बनि आवै भाग्यमान कोउ पावै।
श्रीकुँजबिहारिनि लाड लडावै निरखत नैन सिरावै ॥४१॥
रंग नवेली प्रिय अलबेली नित्य लाल सुखदानी।
उमँगि उमँगि अंकौं भरि प्रीतम महा प्रेम रस सानी॥
तन मन मिले मिल्योई चाहै मिलि बिलसन की बानी।
ललितकिसोरी लाड लडावत अति जाननिमनि जानी ॥४२॥
जै जै श्री हरिदासि हमारी।
जै जै केलि बढावत निसिदिन कुँजबिहारिनि प्राननि प्यारी॥
जै जै रूप बढै छिन ही छिन तैसीयै लाल के चाह अपारी।
जै जै रसिक रँगीली बाला महा प्रेम सुख की वर्षा री ॥४३॥
आज अद्भुत रस रीति देखि छबीली।
झूलत सुरत हिंडोरना प्रिय लटकि लटकि गर्बीली॥
उमँगि झोटा देत प्रीतम लेत परम रसीली।
ललितकिसोरी निरखि सोभा काम केलि अरबीली ॥४४॥
आजु सखी आये मेह सुहाये।
गौर घटा उमगी आनन्द में महा प्रेम झरि लाये॥
राजत धनुष चहुँ दिसि नीके छिन छिन रंग सवाये।
श्रीललितकिसोरी रसिक सिरोमनि करत लाल मन भाये ॥४५॥
रँगीले दोउ झूलत सुरति हिंडोरें।
फूल फूल आनंद बढावत निरखि रहत प्रिय ओरें॥
कुंज बिहारिनि प्रान प्रान मिलि मुसिकत हैं मुख मोरें।
श्री हरिदासी के रस माते सुख कौ सिंधु झकोरें ॥४६॥

अति रङ्ग बिहारिनि बाल बरषत लाल पैं।
इकटक निरखत सहज लाडिली भाग्य लिखो है भाल पैं।।
चूंमि चूंमि तरुवा हिय लाये माथे धरे हैं बिसाल पैं।
ललितप्रिये या छबि पर बारी रीझि रसिक सु ख्याल पैं।।४७।।

प्यारी सहज ही मृदु मुसिक्याइ मोहन बसि करे।
जब अनुराग भरी ढरी हित सों विवस भये अंकौ भरे।।
मानत भाग्य धन्य धन्य हम ही आज प्रिया अपने करे।
ललित केलि निसि बासर विहरत श्रीरसिक सखी के हियें अरे।।४८।।

नित कुंजबिहारिनि बाल खेलत लाल सों।
महा प्रेम भरि भरि पिचकारी छिरकत दृगन विसाल सों।।
सहज सनेह सोंधे में सोंधी रंग रँगीले हाल सों।
ललितप्रिये अँग सँग सुख विलसत अद्भुत चाह रसाल सों।।४९।।

रस मत्त बिहारिनि बाल मो हिय में रहौ।
हुलसि हुलसि आनंद महा ह्वै लपटि लपटि मो तन चहौ।।
रोंम रोंम सुख पाय छबीले हँसि हँसि के बातें कहौ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि तन मन मिलि यह सुख लहौ।।५०।।

रंग होरी हो रंग होरी खेलत स्यामा गोरी।
अति लडकाइ धरी भुज पिय पै रस बरषत घन घोरी।।
प्रान प्रान मिलि तन मन फूले दृष्टि दृष्टि सों जोरी।
ललितकिसोरी के हित बिहरत प्रीति बढी दुहुँ ओरी।।५१।।

लाडिली अलबेली हमारी।
मंद मंद मुसिक्याइ छबीली कृपा दृष्टि निहारी।।
हित के हित हित सों मिलि बिहरत सहज लाल उरहारी।
श्री हरिदासु रसिक की जीवन प्राननि हूँ ते प्यारी।।५२।।

मेरी कुंज बिहारिनि नित्य किसोरी। ललित लाल के चित की चोरी।।
गौर स्याम की अद्भुत जोरी। महा प्रेम भरि खेलत होरी।।

मुरि मुरि मुसकत हैं मुख मोरी। दास बिहारिनि ही की ओरी ॥
श्रीरसिक सखी अति रस में बोरी। ता सुख कौ कहै ऐसौ को री ॥५३॥

जै जै जै लडैती प्यारी की।
कुंज बिहारिनि अति हितकारिनि अद्‌भुत रूप उज्यारी की ॥
नित्य लाल कौं रंग बढावत हँसि हँसि भुजा सु धारी की।
श्रीललितकिसोरी रसिक सिरोमनि जीवनि प्रान हमारी की ॥५४॥

मैं जानी मैं जानी लडैती जू मैं जानी।
तुम तो परम उदार किसोरी अद्‌भुत हित की खानी ॥
छिन छिन रङ्ग बढै अति भारी रहौ प्रेम सुख सानी।
श्रीहरिदासी रसिक सिरोमनि मिलि बिलसन की बानी ॥५५॥

सरि कौन करै मेरी प्यारी की।
जाको रूप रूप कों मोहै पलक न लगै बिहारी की ॥
अद्‌भुत प्रीति देखैं बनि आवै तन मन अति हितकारी की।
श्रीकुंजबिहारिनि ललित लाडिली जीवनि प्रान हमारी की ॥५६॥

करत रसिकनी रसिक रसीली बतियाँ।
काम केलि की रुचि उपजावत उमँगि मिलत दोउ छतियाँ ॥
छके विनोद मोद मद माते पिय प्यारी की रतियाँ।
श्रीललितकिसोरी मिलि अवलोकति कुँज बिहारी घतियाँ ॥५७॥

लडैती के लडैते की जै रहियै।
जाके हित में नित्य लाडिली यह सुख कासौं कहियै ॥
निरखि निरखि रस मत्त छबीली उर आनन्द बढैयै।
श्री हरिदासी प्रान प्रान मिलि तन मन हियो सिरैयै ॥५८॥

मेरी लाडिली सुख दैन।
जब लडकाइ धरत भुज पिय पर उमगत मैंनन सैंन ॥
उर सों उर मिलि प्रान प्रान सौ ऐसै ही रहै चैन।
श्रीललितकिसोरी लाड लडावत कहि कहि मीठे बैंन ॥५९॥

लडैती करत केलि मन भाई ।
बाढो ललक दुहूँ दिसि नीकी कहतें कही न जाई ।।
एक प्रान तन एक भये हैं आनन्द उर न समाई ।
श्रीकुंजबिहारिनि ललितकिसोरी हँसि हँसि कंठ लगाई ।।६०।।

देखत हूँ नित्य प्रान प्रिया कौ ।
उमँगि उमँगि बिलसत रस माते तन मन बचननि एक जिया कौ ।।
मिलत मिलत मिलबौई चाहें मिलैं सुख है सहज हिया कौ ।
परम रसिक ललिते हरिदासी हँसि हँसि कंठ लगाय लिया कौ ।।६१।।

विलसत केलि महा सुखदाई । गौर स्याम के मन की भाई ।
यह आनन्द कह्यौ नहिं जाई । फूले अंग अंग न समाई ।।
निरखि सखी रंध्रनि सुख पाई । यह सुख सदा रहौ मन भाई ।
मिलैं मिलन की चाह बढाई । और कछू इन्हैं न सुहाई ।।
उर सों उर कसि कसि अकुलाई । मीन नीर ज्यों जियहि जिवाई ।
ऐसे लाल रहें लपटाई । भूषन बसन दियो गँवाई ।।
इतनों अंतर सह्यौ न जाई । श्रीललितकिसोरी हँसि कंठ लगाई ।।६२।।

छाडिये हठ नवल किसोरी ।
अति व्याकुल भयो लाल लाडिलौ तेरी बात कहै अब को री ।।
मोहू कों श्रम भयौ सखी री होहु प्रसन्न चितै इहि ओरी ।
ललित रङ्ग तन मन मिलि बिहरत जैसो ये तैसी मिली भली जोरी।।६३।।

मिलि खेलन कौं चलि प्रीतम प्यारी जू ।
तन मन पीर उठी मनमथ की रोम रोम अकुलानी जू ।।
रहसि बिहँसि हँसि हँसि उर लटकि पुलकि लपटानी जू ।
सुंदर स्याम तमाल कनक की बेलि अँग अँग अरुझानी जू ।।
हाव भाव आलिंगन चुँबन देत नहीं अघानी जू ।
लेत अवलंब अंग मिलि संगम जल थल मिलि सुख मानी जू ।।
भूषन बसन सुहाइ न परस्यो नैंन बैंन सिथलानी जू ।

सुख सागर सूचत संजोगी सीतल सेज सुहानी जू ।।
पिय के अंक निसंक लाडिली मोहन की सुखदानी जू ।
निसि बासर कछु जात न जानें काम केलि रुचि मानी जू ।।
कबहुँक बदन निहारि बिलोकत बोलत, मधुरी बानी जू ।
कबहुँक अँग संग मिल बैठत बिहँसत ज्यों घन दामिनि जू ।।
सखी सहेली सहचरि यह सुख निरखत निपट सयानी जू ।
श्रीकिसोरीदास रसिकन की जीवनि नित्यविहार बखानी जू ।।६४।।

श्रीकुंजबिहारिनि सब सुख कारी ।
सदा सर्वदा इक रस राजें अँग सँग प्रीतम प्यारी ।।
महा रूप रस पान करत हैं छिन छिन चाह अपारी ।
श्री हरिदासी लाड लडावत तन मन ह्वै बलिहारी ।।६५।।

आज रस बरषत केलि विलासी ।
हँसनि लसनि मुसक्यानि छबीली प्रीतम हियें हुलासी ।।
निरखि लाल तन मन अति फूले पाई सुख की रासी ।
श्री हरिदासी लाड लडावत कुंजमहल की बासी ।।६६।।

बिहारिनि लाडिली रस माती ।
अति आनन्द भरी सुखरासी मंद मंद मुसकाती ।।
अद्‌भुत रूप कहत नहिं आवै प्रीतम सँग किलकाती ।
ललितकेलि तनमन मिलि विहरत छिन छिन प्रति हुलसाती।।६७।।

हमारे बाँट परी मुसक्यानि ।
निरखैं केलि निकुंज माधुरी अद्‌भुत रस की खानि ।।
अँग सँग श्रीहरिदास रसिकबर सहज सुभायक बानि ।
अपनी जानि बिहारिनिदासी दियो प्रेम सुख सानि ।।६८।।

रस मत्त बिहारिनि प्यारी है ।
नैंक लखें बस भये लाडिले अद्‌भुत रूप उज्यारी है ।।

उमग्यौ रंग सरोवर हिय में मृदु मुसकनि कछु न्यारी है ।
श्रीहरिदासी के हित विहरत जीवनि प्रान हमारी है ।।६९।।

श्री बिहारिनि लाडिली अलबेली ।
अद्भुत रूप बढै छिन ही छिन मधुर प्रेम रस झेली ।।
उमँगि उमँगि सुखरासि छबीली कंठ कंठ भुज मेली ।
ललित लाल आनन्द अति दैनी सदा रहत मन हेली ।।७०।।

तो सी तुही मेरी प्रान पियारी
तन मन मिलैं मिल्यौई भावै छिन हू कबहूँ होत न न्यारी ।।
महा रूप रस पान करत हैं तउ तृपति न होत बिहारी ।
परम कृपाल रसिकवर नागरि क्यों न होहु हरिदास दुलारी ।।७१।।

सुख रूप बिहारिनि रानी है ।
तन मन मिलि बिहरत आनन्द में महा प्रेम रस सानी है ।।
कुंजबिहारिनि नित्य लाडिली अति जाननमनि जानी है ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि ललित केलि मन मानी है ।।७२।।

प्यारी अति सुख रूप निमानी ।
जोवन सद छिन ही छिन वरषत अद्भुत रस की खानी ।।
प्रीतम प्राँननि पोषत तोषत देत सकल सुख दानी ।
श्रीललितकिसोरी मन की जानी नैंननि चितै मंद मुसिक्यानी ।।७३।।

मेरी कुंजबिहारिनि स्वामिनी । ललित लाल मन भावनी ।।
रोंम रोंम अभिरामनी । निरखत नैंन सुहावनी ।।
मंद मंद मुसकावनी । रूप सुधा बरषावनी ।।
कोटि काम उपजावनी । अंग अंग अरुझावनी ।।
हुलसि हुलसि उर आवनी । हँसि हँसि कंठ लगावनी ।।
बिलसत सुख दिन जामनी । श्री वृन्दावन धामनी ।।
नित्य किसोरी नामनी । रसिक सिरोमनि भामिनी ।।७४।।

मेरी श्रीहरिदास दुलारी। मेरी कुंजबिहारिनि प्यारी ।।
रोंम रोंम अति ही हितकारी। मेरी आनंद उमँगि उदारी ।।
मेरी बिलसत रस अति भारी।मेरी जीवनि प्रान अधारी।।
मेरी छिन हूँ होत न न्यारी। मेरी रसिकसिरोमनि उज्यारी।।७५।।

श्री हरिदास बिहारिनि रानी। महा प्रेम अति सुख में सानी ।।
अद्भुत रूप रङ्ग की खानी। तन मन मिलि विहरन की बानी ।।
नित्य केलि में आनन्द दानी। रीझि रीझि अंकौ भरि आनी ।।
श्रीललितकिसोरी के मन मानी। रसिक सिरोमनि परम सुजानी ।।७६।।

खेलत लाडिली रस मत्त सु घूमत नैना।
दुहूँ ओर अनुराग बढ्यौ है चैन न पावत मैना ।।
मिलि मिलि मिलि मुसक्यात छबीले कहत रँगीले बैना।
कुंज बिहारिनि ललितकिसोरी सदा लाल सुख दैना ।।७७।।

रसिक उदार री सुख सार।
प्रीतम कों आनंद बढावत उमँगत अगनित मार ।।
ये महा रूप अति रस के भोगी छिन छिन चाह अपार।
श्रीकुंजबिहारिनि ललितकिसोरी बिलसत नित्य बिहार ।।७८।।

फूल महल फूले पिय प्यारी।
फूली सेज फूल पुनि बरषत फूले फूल भई हितकारी ।।
फूल की मुसकनि चितवनि फूल की फूलि फूलि अंसनि भुजधारी।
फूली ललित फूल लखि फूलनि फूल फूलि फूलनि पर वारी ।।७९।।

रसिकनी रसिक करत हैं कल केलि।
उमँगि उमँगि अंगनि भरि लेहीं पग नहिं परस नवेलि ।।
कसत हँसत इत उत नहिं चितवत अद्भुत सुख द्रुम बेलि।
श्री किसोरीदास तन मन धन बारत जीवनि प्रान हमेलि ।।८०।।

पुलकि लगत उर लालबिहारी।
काम प्रेम रस विवस मनोहर अपनी प्रान प्रिया उर धारी ।।

विविध अंग आलिंगन प्रीतम कसत मिलत भुज चारी।
श्रीकिसोरीदास रति बरनें को कवि निरखि हरखि सुख भारी ॥८१॥

ललित रस भीनी हो प्यारी रूप नवीनी।
लखि लालन आनन्द अति बाढ्यो फूलि अंक भरि लीनी ॥
ताही के सुख में सुख पावत परम रसिक परवीनी।
श्री हरिदासी तन मन मिलि विहरत हँसनि बधाई दीनी ॥८२॥

देखि री सखी कौतुक आज बानिक बनें।
रति विपरीत भाय भामिनि नैंन बैंनन जनें ॥
गौर स्यामल गात बिहँसैं अंग अंगनि पनें।
नील पीत अरुन झाँई परत नहिं कछु गनें।
मानौं दामिनि भवन में समिटि बैढ्यौ घनें।
जनों नाभि नीबीबंद झलकैं सुभग सुन्दर ठनें ॥
सकल गुन की रासि स्वामिनि समर माननि हनें।
आइ झुकि भुज अंस कसन अधर मधुर रस सनें ॥
अमित क्रीडा कहाँ लो रसना बखानैं जानि मन की मनें।
श्री ललितकिसोरी अचल जोरी निरखि कौतुक तनें ॥८३॥

लडैती जू रङ्ग रहै सोई कीजै।
तुम तो सब विधि तोषत पोषत तुम्हरी कृपा सौं जीजै ॥
प्रान प्रान मिलि नैंन नैंन सों इहि विधि सुख कों दीजै।
श्रीललितकिसोरी रसिक सिरोमनि रीझि अंक भरि लीजै ॥८४॥

बिहारिनि लाड सों लाडी।
सहज लाल बस करे जीति के कुँजमहल माडी ॥
अति आन्नद भरी सुखरासी महा प्रेम चाडी।
श्रीललित भुजा हँसि धरी रङ्ग सों इहि छबि मन गाडी ॥८५॥

ए दोउ परम सुख में परे।
चाहत यही रहैं हम ऐसें प्रान प्रानिनि अरे।

मन में हरषि सिहात हँसि हँसि उमंगि अंको भरे।
श्री हरिदास रसिक की जीवनि सहज हिय में ढरे ॥८६॥

जै जै श्री हरिदास दुलारी की।
जै जै कुँजबिहारी प्यारी की। जै जै हँसि चितवन सुखकारी की॥
जै जै अंस अंस भुज धारी की। जै जै आनंद उमंगि उदारी की॥
जै जै रोंम रोंम हितकारी की। जै जै रसिक सखी बलिहारी की ॥८७॥

राधे कुंजबिहारिनि रानी।
छिन छिन प्रति अनुराग बढत है रूप रङ्ग रस सानी॥
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि महा प्रेम सुख-दानी।
श्रीललितकिसोरी आन्नद की निधि अति जाननिमनि जानी ॥८८॥

मेरी बिहारिनि मेरी मेरी।
तन मन मिलि बिहरत रस माती हँसि हँसि छिन छिन मो तन हेरी॥
हित की जानि करै रुचि सोई सदाई रहत प्रान सों भेरी।
श्रीललितकिसोरी रसिक सिरोमनि याही सुख में रहत अनेरी ॥८९॥

देखौ देखौ लडैती जू के रङ्ग।
छिन छिन पिय कों तोषत पोषत उमँगि उमँगि लगि अंग॥
रोंम रोंम सुख पाय छबीले भागमाँनि सिर मंग।
श्री हरिदासी ललितकिसोरी विलसत केलि अभंग ॥९०॥

हमारी राधे राधे राधे।
महा प्रेम रस रासि छबीली अद्भुत प्रेम अगाधे॥
ललित केलि प्रीतम मिलि विहरत मधुर बचन निकसत आधे आधे।
श्री हरिदासी रङ्ग बढावत पूरन सब सुख साधे ॥९१॥

लडैती रंग सौं माती।
बोलनि हँसनि लसनि सुख रासी प्रीतम तन किलकाँती॥
छिन छिन प्रति अनुराग बढावत विलसत अनअन भाँती।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि याही रस हियें सिराती ॥९२॥

छबीली छकनि छकी मुसिक्याइ ।
निरखि विविस प्रीतम कों अति ही उपजत अगनित भाइ ।।
रीझि रीझि आँकों भरि लीने उमँगि मिले अकुलाइ ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि सहज सहाइक पाइ ।।९३।।

हमारी स्वामिनि री सुख सार ।
इनहीं निरखि निरखि कें जीवत एई प्रान अधार ।।
तन मन मिले मिलन की आसा अद्भुत प्रेम अपार ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि सेवत नित्य बिहार ।।९४।।

रस रासि नवेली तेरे बल अलबेले ।
एक प्रान मिलि मदन लडावत महा मधुर रस झेले ।।
बाढचौ सुख कछु कहत न आवै प्रान प्रिया हँसि हेरे ।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि कुंज महल में डेरे ।।९५।।

घूमत नैंन रूप रस माते ।
चाहत मिल्यौ मिलन ही की रति छिन छिन प्रति हुलसाते ।।
परम उदार सिरोमनि सुख निधि मंद मंद मुसिक्याते ।
जाल्यों लाल ललित के हित कों इनहीं के रंग राते ।।९६।।

जुगलबिहार किसोर किसोरी । श्री वृन्दावन नित्य ही जोरी ।।
ललित भाव में निस दिन रहैं । हँसि हँसि के दोउ बातें कहैं ।।
हमकौं हैं हरिदासी प्यारी । तन मन वचननि अति हितकारी ।।
जो याहि रुचै सोई अब कीजै । याकौं सुख याही कों दीजै ।।
यह तो हम हम ही यह आहि । याकी पटतर दीजै काहि ।।
यहै बात निजु हिय मैं धारैं । अँग सँग नित्य बिहार बिहारैं ।।
कृपा दृष्टि जब प्रिया निहारैं । रीझि रीझि पिय प्राननि वारैं ।।
उमँगि उमँगि अंकों भरि लेहीं । रोंम रोंम सचुपावैं जेही ।।
महा मत्त उनमत्त छबीले । कुंजमहल राजैं गरबीले ।।
काम केलि रस भोये रहहीं । श्रीललितकिसोरी यह सुख लहहीं ।।९७।।

श्री हरिदास लडैती प्यारी है ।
रङ्ग भरी सुख रास छबीली नित्य लाल हितकारी है ।।
उमँगि उमँगि बिलसत रसमाती छिन छिन चाह सु भारी है ।
श्रीरसिकसिरोमनि ललितकिसोरी जीवनि प्रान हमारी है ।।९८।।

मेरी अखियाँ रूप के रंग रंगी ।
निरखि सरूप कुँवरि राधे कौ याही माँझ पगी ।।
छिन छिन प्रति अवलोकि माधुरी ना सोई ना जगी ।
श्रीहरिदासी ललित केलि मिलि याही में जगमगी ।।९९।।

भोजन जेंइये पिय प्यारी ।
अति आनंद भरे रस कौरनि परम रंग हितकारी ।।
चितै चितै लालन तन मुसकनि त्यों त्यों सुख होत हियारी ।
कुंजबिहारिनि ललित किसोरी जीवन प्रान हमारी ।।१००।।

रस में रस पियें कुंजबिहारी ।
रस की बात घात पुनि रस की रस ही सों रस दृष्टि निहारी ।।
रस की प्रीति रीति सब रस की रस ही उमगत सहज हियारी ।
रसकी सखी रसिक हरिदासी रस भयो ललित प्रिये उरहारी ।।१०१।।

श्रीबिहारिनि आछी फूलनि फूली ।
जैसेई रंग रहै निसि-बासर तैसेई रंग रहै अनुकूली ।।
छिन छिन आनंद देत लाडिली महा प्रेम रस झूली ।
यह सुख निरखत रसिक सिरोमनि तन मन गति गई भूली ।।१०२।।

आजु कछु केलि अधिक मन भाई ।
हाव भाव परवीन किसोरी रति विपरीति उमँगि हिय आई ।।
कंचन मनिन खचित हरि मंडल जुग अंगन मार सु कीच मचाई ।
अंसनि अंस कसत भुज दंडनि स्याम भुजा पीछें अरुझाई ।।
लटकनि अटकनि झटकनि ठमकनि पग के नूपुर शब्द घोर मनों हंसनि कलह मचाई । मृदंग तार सुर बीना बाजत गावत भाँमिनि सुरन सुहाई ।।

मीठे बचन तत्तथेई बोलत कटि मोरति उर जोरति अधरनि चुँबनि मृदु मुसक्याई। नैंननि सैंननि बिनु बैंननि आतुर चातुर ताँडव भाव सुरति दौराई ।। उरप तिरप भौंहनि की मोरनि कर जोरनि नागरि आगरि अंग सुधंग नचाई। कबहुँक मुख भरि गंड दसनि गहि पीक लीक छबि छाई ।। मानहु नील अरुन मनि जरिया उपमा कही न जाई। अलकनि झलकनि स्याम कपोलनि स्यामा स्याम मिलि रंग अनंग बढाई। अद्भुत सुख सागर कछु कहत न आवै कहिबे कों मनसा अकुलाई। नृत्य गीत संगीत सिरोमनि प्यारी सरस निपुन अति माई। श्री ललितकिसोरी को सुख सर्वोपरि तन मन वारि प्रान सुखदाई ।।१०३।।

हमारी लडैती साहिबनी।
जाके लाल अधीन सदाई ऐसी है परवीनी ।।
रोंम रोंम आनंद भरी है छिन छिन रूप नवीनी।
श्री हरिदासी रसिक सिरोमनि ललित केलि रस भीनी ।।१०४।।

लडैती जू की साहिबी अटल बनी।
याही के सुख में सुख पावत सुंदर स्याम धनी ।।
छिन छिन नई नई प्रीति करत अति कापै परत गनी।
श्री हरिदासी के संग विलसत कुंज केलि अपनी ।।१०५।।

श्री बिहारिनि रंग केलि रस भीनो।
मुख सों मुख उर सों उर जोरति रीझि अंक भरि लीनो ।।
अति आनंद बढचौ दुहुँ ओरी छिन छिन प्रीति नवीनो।
ललितकिसोरी देत महा सुख परम प्रेम परवीनो ।।१०६।।

इन्हें और न कछुवै सुहाइ री मेरे नैंन रंगे हैं केलि सों।
तन मन मिलि बिहरत दोउ प्रीतम कंठ कंठ भुज मेलि सों ।।
महा भाग्य फल लह्यौ लाल जू अदभुत बेलि नवेलि सों।
ललितप्रिये अति ही सुख देनी प्रेम सुधा रस रेलि सों ।।१०७।।

नित्य सरद नित तीज है नित होरी सु बसंत।
नित्य केलि छिन छिन नई जाके सुखहि न अंत ॥

* राग बसंत *

आयो आयो बसंत रंग सु अति भरयो।
प्रिया लाल तन मन हुलसानें बाढ्यो प्रेम सहज नयो ॥
फूले नैन रूप रसमाते कुटिल कटाछिन जब चह्यौ।
ललितप्रिये सुख कों सुख दीनों रसिक सखी के हियें रह्यौ ॥१०८॥

तन मन आज फूल्यौ बसंत। पुलकि पुलकि हिये हुलसंत ॥
नख सिख अनंग रंग झलमलाइ। बिन परसें अंगनि कलमलाइ ॥
नैंन बैंन भये अधर कंप। इकटक चितै नहिं पलक झंप ॥
झुकि झुकि आवत अंस बाहु। अधर मधुर रस पियत चाहु ॥
मानो कोकिल बोलत बसंत काल। कल कपोल चुंबनि रसाल ॥
उर उमँग्यौ रति जोवन मौर। मानौ बसंत अति रुचि बैठ्यौ ठौर ॥
तहाँ दृष्टि चलि चाहि कोकिल संचार। जहाँ लाल कर परसि मर्दत मार ॥
भँवर गुँजत चूरी झनकार। मानों बाजत मृदंग सुरतार ॥
नूपुर सब्द मानों बोलत हंस। अंग फूले पराग परसि बेग संस ॥
कामिनि कंत पहिर्‌यौ सुहाग। अंग अंग दोउ रँगे हैं राग ॥
उमँगि उमँगि कसि उर लपटंत। आतुर चातुर खेलत बसंत ॥
अंग भरि भरि अंकनि समात। चोज मनोजनि छिन छिन ललचात॥
नैंननि भरि भरि उडावत गुलाल। पूरन सुख पिय लिख्यो भाल ॥
निसि बासर दोउ रहत संग। जुग जुग बिहार अद्भुत अभंग ॥
श्रीहरिदास सहज अनुराग। ललितकिसोरी के उर लाग ॥१०९॥

एरी सखी नित्य बिहारिनि बाल बरषत रूप रसाल री रँग होरी।
एरी सखी चंचल नैंन विसाल निरखत लाल निहाल री रँग होरी ॥
एरी सखी अद्भुत सुख की रासि मधुर मधुर मृदु हास री रँग होरी।
एरी सखी हुलसि हुलसि लडकात आनंद उर न समात री रँग होरी ॥

एरी सखी अंस अंस, भुज देत अंकौ भरि भरि लेत री रँग होरी।
एरी सखी मिलत मिलत न अघात रोंम रोंम फूले गात री रँग होरी ॥
एरी सखी बाढ्यौ है रङ्ग अपार उपजत कोटिन मार री रँग होरी।
एरी सखी परे हैं प्रेम रस जाल प्रान प्रिया उर माल री रँग होरी ॥
एरी सखी इनसे एई आहि पटतर दीजै काहि री रँग होरी।
एरी सखी ललित सुकेलि अभंग रसिक सखी अँग सँग री रँग होरी ॥११०॥

भली परी हरिदासी को बानि।
सदाई केलि निरन्तर अँग सँग बिलसत सुख मन मानि ॥
रूप अनूप रसिकवर प्यारी कुंजबिहारिनि रानि।
श्री ललितकिसोरी अति बडभागी महा प्रेम की खानि ॥१११॥

महल लडैती कौ भलौ अति ही सुखदाई।
छिन छिन प्रेम बढंत रहै करैं सब मन की भाई ॥
प्रिया लाल आनंद में मिलि मिलि किलकाई।
श्री हरिदासी भाव सौं चढै रंग सवाई ॥११२॥

आजु दोउ सुरति केलि रगमगे चंदन चित्र बनें।
श्रमजलकन विंदु ढरकि उरऊपर मानों उडगन सभा ठनें॥
कुमकुम रङ्ग प्रिया तन सोभित मलय सु स्याम तनें।
श्री ललितकिसोरी बलि बानिक पर विलसौ प्रेम पनें ॥११३॥

आजु दोउ रसमसे रसिया रङ्ग के रस भीनें।
अंग अंग अनंग निसि बासर आनन्द सिंधु विहरत उर मीनें ॥
हरषि निरखि संजोग बिहारी अंस भुजनि करजावलि दीनें।
श्री ललितकिसोरी की दोउ जीवनि बिलसावत उर लीनें ॥११४॥

आजु दोउ अद्भुत सेज केलि रति ठानी।
स्याम भाव स्वामिनी विहसत विपरति रति सुख दानी ॥
बसन असन कर कमल सँवारत अँग सु उमँगि समानी।
कटि जुग अरु नील कंचन मनि रचि खचि चित्रबिचित्रनि बानी॥

नाभि कमल जगमगत बिहारी निरखत दृष्टि लुभानी।
अगनित अनंग रंग गति भूली बिस्मृति मन नहिं जानी ।।
चपल अचपल नैंन चकचौंधी संभ्रम मान तजो तुम मानिनी।
गौर सु अंग स्यामता भीतर मुहि समझावौ स्वामिनी ।।
अंस भुजा झुकि लीने प्रीतम अधरनि चुंबनि दै मुसिकानी।
मन ही मन पिय समुझि रसिकवर सकुचि भोर भ्रम भाँनी ।।
करि मनुहार वारि पिय तन मन अद्भूत गूढ अंग गुन गानी।
रवि ससि तडित पुंज मनु भामिनि घन ऊपर लपटानी ।।
कोमल बैंन नैंन रंग भीनें हँसि बोलत मृदु काम कहानी।
ललना करुनासिंधु रस सागर सदा रहौ सुख सानी ।।
सुफल जनम अपनों करि प्यारे धनि-धनि प्यारी सों कहि मानी।
हम तुम दोउ भोग भोगता भोगत हैं रस खानी ।।
हम दिन दुलहिन तुम दिन दूलहु उलटी बात बखानी।
यही सुहाग रहौ निसि बासर मुहि अपने उर आनी ।।
उघटौ गति संगीत सिरोमनि ताँडव नृत्य सरस मँडरानी।
ललना श्रवन सुनत उठ बैठी लालन के जिय जानी ।।
कोक कला कोविद निधि प्यारी उरप तिरप भौंहैं थहरानी।
कटि की लटकनि पग की पटकनि नृत्य सुधंग सुलप घहरानी ।।
नूपुर की धुनि सप्त सुरनि मिलि जिमि हंस हंसनी बारत बानी।
ताल मृदंग नितंब उछकि गति मदगज की चालनि भानी ।।
अद्भुत सुख बिलसैं दोउ मिलि कैं विपरीत चाह बिहानी।
मंगल गीत सखी सब गावैं तुम दोउ कुंज महल ठकुरानी ।।
अंचल चंचल पवन ढुरावैं भूषन बसन विविध सब बानी।
श्रीललितकिसोरी की जोरी पर तन मन वारि मिलो सब प्रानी।११५।

राधे परम सुख कौ सार।
जाहि हित में रहत प्रीतम जीवनि प्रान अधार ।।

रूप रङ्ग रस रहति माती अद्भुत नित्य बिहार।
श्रीरसिकसिरोमनि ललितकिसोरी वरषत केलि उदार ॥११६॥

ललित लडैती लाडिली सुखरासि हमारी।
कुंज केलि बिहरैं सदा भरि भरि अँकवारी ॥
छिन छिन प्रीति नई नई बाढै अति ही अपारी।
रसिक सिरोमनि प्रान है ए जीव जिवारी ॥११७॥

साँझी हमरै नित्य बिहार। गौर स्याम की संधि बिचार ॥
बिछुरन मिलन की नाँही रीति। गौर-स्याम दोउ रहै समीति ॥
रवि ससि को नाहीं परवेस। गौर स्याम दोउ एकहि देस ॥
दिन और राति जहाँ नहिं देख। तहाँ गौर स्याम साँझी उर रेखि ॥
बिहरैं प्रीतम सुख की रासि। घन दामिनी लज्जित है तासि ॥
गौर स्याम साँझी दोउ बरन। अद्भुत रस वरषत सुख करन ॥
नाना रंगनि अंगनि फूल। नैंननि निरखत गहि भुज मूल ॥
यह गौरस्याम की साँझी गाव। ललितकिसोरी पावो भाव ॥११८॥

है साँझी जो साँझी गावै। गौर स्याम की संधि समावै ॥
काम केलि रस रीति लडावै। श्रीललितकिसोरी के मन भावै ॥११९॥

सब सखी मिलिकै मंगल गावैं। मदन मोद छिन छिन उपजावैं ॥
नख सिख कुसुम प्रिया तन फूले। मधुकर स्याम रहत अनुकूले ॥
अँग अँग सौरभ पीवत स्वासा। रसिक सखी मिलि पुजवति आसा ॥
श्रीललितकिसोरी लाड लडावति। गौर स्याम मिलि साँझी भावति ॥



श्री ललितमोहनीदेवजू की बानी

श्री हरिदास करैं सो होइ। श्रीबिहारी बिहारिनि कौ मुख जोइ ।।
श्री वृन्दावन रहिये सोइ। नित उठि पोजैं जमुना तोइ ।।१।।

सब ही संत हैं रस भरे, सब ही रस की खानि।
रंगमहल में बिहारी बिहारिन, बिहरैं रसिक सुजान ।।२।।

हमरे हरष न सोग।
आठ पहर गरक रहैं बिहारी बिहारिनि कौ सुख अमोग ।।३।।

होनी ही सो हो गई, होनी होइ सो होइ।
भोग लगै सो पाइये, श्रीबिहारी बिहारिनि कौ मुख जोइ ।।४।।

※ सिद्धांन्त के पद ※

अपनी ओर की दोऊ भूले। श्री हरिदास सहज अनुकूले ।।
श्री बिपुल बिहारिनि सुख कौ मूले। सरस रंग आनँद में झूले ।।
श्रीनरहरि रसिक सिरोमनि केलि। गौर-स्याम कञ्चन की बेलि ।।
नित ही होरी नित ही फाग। श्रीललितमोहिनी को नित्य सुहाग ।।५।।

करवा गूदरा मेरे भैया काहू की न समाई।
एक गौर स्याम सुखदाई छिन छिन तिन्हैं लडाई ।।
काहू बात की चिंता कीजै ताहू की न समाई।
काहू सों कछू उपेछा कीजै वाहू की न समाई ।।
और तौ चाहौ सो करौ यातैं नाहिं समाई।
श्रीललितकिसोरी भली बनाई, श्रीदासमोहनी सदा सुख पाई।।६।।

सब के साक्षी सब के प्रकासी सब के नियन्ता कुंज महल के बासी।
गौर-स्याम सुख रासी।
श्री ललितकिसोरी खरे उपासी। दास मोहनी सदाई पासी ।।७।।

बिछी पुलिन वृछन की छाया।
श्रीस्वामीजू के प्रसाद सों सुखी रहत है काया ।।
काया साढे तीन हाथ को माया।
भजन करै तौ ऊबरै नातर सब जग खाया ।।
श्री ललितकिसोरी दाउ बताया।
दास मोहनी सदा सुख पाया ।।८।।

गुरुन की कृपा गुरुन कौ जस।
श्री गुरु करैं सो होय ना काहू कौ बस ।।९।।

कुँज महल में बैठक राखैं कुँज महल में केलि।
गौर स्याम लपटे रहैं मानौं कनक की बेलि ।।१०।।

जिनही देखि हरि देखियै तिनहि भाव सों देखि।
ए वे वे ए एक हैं श्री मुख कही विसेखि ।।११।।

श्री वृन्दावन में परि रहै, देखि बिहारी रूप।
तासु बराबर कौ करै, सब भूपन कौ भूप ।।१२।।

हमारे यहाँ के साधु प्रसाद न चाहैं। न वस्त्र कौ अडंगा लगावैं ।।
मगन भये गुन गावैं। प्रिया चरन छिन छिन सहरावैं ।।
बसि वृन्दावन अनत न जावैं। ललित मोहिनी तिन्हैं लडावैं ।।१३।।

साधु साधु सब एक हैं, ठाकुर ठाकुर एक।
संतन सों जे हित करैं, सोई जानि विवेक ।।१४।।

जाहि वृन्दावन नहिं भावै। सो यहाँ काहे कों मूँड मुडावै ।।
रूपे से चाँवर सोने सी दारि। तन मन धन संतनि पर वारि ।।१५।।

जिकरि फिकरि सब छाँडि कै, ललित केलि गुन गाव।
श्री वृन्दावन में बसि रहौ, नाँहिन और उपाव ।।१६।।

राजा परजा बादशाह, सब कोउ आवै जाय।
श्री कुँजबिहारिनि लाडिली, पोषत मन के भाय ।।१७।।

अबलियौ अबलियौ अबलियौ रे, ऐसी जो जिय होय ।
वृन्दावन में पैंडहूँ, पल मति बिछुरौ कोय ।।१८।।
भजन करौ भोजन करौ, गावो तान तरङ्ग ।
निसि दिन लव लागी रहै, रसिक बिहारी सङ्ग ।।१९।।
औगुन तौ लीजै नहीं, गुन कौ लीजै उठाइ ।
श्री कुंजबिहारिनि लाडिली, पोषत मन के भाइ ।।२०।।
गुरु निरमोही चाहिए, शिष्य न छाँडै नेह ।
बिलगायै बिलगै नहीं, एक प्रान द्वै देह ।।२१।।
सौ पापनि कौ मूल है, एकही पैसा रोक ।
हरि जन बाँध्यौ गाँठि सो, तौ छूटै हरि सों थोक ।।२२।।
ललित सरोवर ललित वन, ललित लाडिली रूप ।
ललित बिराजै बिपुन में, ललित बिहारी भूप ।।२३।।

श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी । श्रीललितमोहिनी केलि-निहारी ।। राति जागै दिन सोवै । श्रीकुंजबिहारी कौ मुख जोवै ।।२४।।

चलौ साधौ निधिवन जाइयै । श्रीस्वामीजू कौ दरसन पाइयै ।। श्रीकुँज-बिहारिनि लाड लडाइयै । श्रीवृन्दावनबसि अंत न जाइयै ।।२५।।

करुवा गूदरा अमृती चीपी, कठुला माला बाँकी ।
ललित केलि निरखत रहैं, रङ्ग महल की झाँकी ।।२६।।
ना काहू सौं रूसनौ, ना काहू सौं रङ्ग ।
श्री ललितमोहिनी दास की, अद्भुत केलि अभंग ।।२७।।
निंदा करै सो धोबी कहिये, अस्तुति करै सो भाट ।
अस्तुति निंदा दोउन ते न्यारौ, सोइ साधु निराट ।।२८।।
नैंन बिहारी रूप निरखि, रसन बिहारी नाम ।
श्रवन बिहारी सुजस सुनि, निसिदिन आठौं जाम ।।२९।।
श्री कुँजबिहारी भजन करि, श्री कुँजबिहारी देखि ।
श्री वृन्दावन बास करि, जन्म सुफल करि लेखि ।।३०।।

बैठत उठत चलत, श्रीकुंजबिहारी की जिकरि।
वृन्दावन में परि रहै, ना कछु द्वंद न फिकरि ।।३१।।
धरौ बुरौ धरिबौ बुरौ, आवै सोई पाव।
श्रीकुंजबिहारी लाल के, उमँगि उमँगि गुन गाव ।।३२।।
दिन अथयौ संध्या भई, बोलन लागे मोर।
बिहारी बिहारिनि रंग महल में, मिले नैंन की कोर ।।३३।।
कहा त्रिलोकी जस किये, कहा त्रिलोकी दान।
कहा त्रिलोकी बस किये, जु करी न भक्ति निदान ।।३४।।
गुरु राखै फूटौ करवा, लगावैं रज।
चेला रंगे बाँकी, बनावे सज ।।३५।।
तन झूठो मन झूठ है, झूठो यह संसार।
रंग महल में बिहारी बिहारिनि, निश्चय यह उरधार ।।३६।।
बिहारीजी से बिहारीजी। स्वामीजी से स्वामीजी ।।
औरनि ते आँखि मूँदि इनहिं निहारी जी ।।३७।।
लम्बी ग्रीवाँ। वैराग की सीवाँ ।।३८।।
हौं बूडन कौं बहु करौं, हरि नहिं बूडन देहिं।
ज्यौं ज्यौं उझकौं कूप में, त्यौं त्यौं कर गहि लेहिं ।।३९।।
चतुर चिंता ना करै, उमँगि उमँगि गुन गाइ।
जान हार रहि है नहीं, आवन हार न जाइ ।।४०।।
निरनै बस्तु और धर्म कौ, ए दोऊ सिद्धान्त।
तर्क बाद भई नास सब, वेद अन्त वेदान्त ।।४१।।
किरपा ने कृपा करी, गयो मूँड को भार।
श्रीवृन्दावन में बसि रहौ, निरखौ नित्य विहार ।।४२।।

* सिंगार रस के पद *

बिहारी तेरे नैंना रूप भरे।
निरखि निरखि प्यारी राधे कों अनत न कहूँ टरे ।।

सुख कौ सार समूह किसोरी उमँगि उमँगि अंकौ भरे।
श्रीललितमोहिनी की निजु जीवनि उर सों उरजि अरे ।।४३।।

रूप के जाल पर्यौ मन मेरो।
जोवन रस पीवत न अघातौ मुसकनि हूँ अरुझेरौ ।।
श्रीकुंजमहल रतिपति दल छायौ बिबस भयौ बिबि नेरो।
श्री ललितमोहिनी सब सुख दीनौं दुहुँन नेह घनेरौ ।।४४।।

खेलत आजु प्रिया नव रङ्गी।
चमकत रमकत लगी स्याम उर ललित मोहिनी संगी।
जोवन झलक ललक सुंदर की बाढ्यौ रंग अनंगी।
यह सुख पीवत जीवत हम सब देखत केलि तरंगी ।।४५।।

हों हू आई देखन स्याम।
सुंदर नैंन बिसाल साँवरौ सब बिधि पूरन काम ।।
हा हा करति तकति गति अनगति प्रान प्रिया सुख धाम।
श्रीललितमोहिनी कौ सुख पूरन जामें बिहरें आठौं जाम ।।४६।।

पिय पियरी सेज बनाई आज।
पियरी झलक चमक सब पियरे पियरे बसन बने सब काज ।।
पियरे फूल बने सब तन में पियरी सोभा सहज समाज।
श्रीललितमोहनी यह सुख देखत स्याम तनें पियरे सब साज ।।४७।।

यह आनंद कह्यौ न परै री।
सेज महल क्रीडत दोउ प्रीतम सेवत सुमरि हरै री ।।
कोटि अनंग बलि बलि या छबि पर रस बरसत तनै भरे री।
श्री ललितमोहिनी यह सुख बिलसत देखत नैन सिरे री ।।४८।।

रोम रोमनि अरुझि विलसत कामिनी।
तन में तन मन में मन बसि रहे रस बाढ्यौ सुख जामिनी।
गावत सब सुर तार मिली रस बिहँसत हँसत प्रकास स्वामिनी ।।
श्रीललितमोहिनी यह छबि जोहनी खेलौ हँसौ सुखधाम धामिनी ।।४९।।

आयौ बसंत मदन दल साजे दुहुँ दिसि ह्वै गई भीर ।
अबीर गुलाल उड़त नैंननि सों रस विवस विसरि गये चीर ।।
खेलत हँसत हँसावत सब मिलि धरत नहीं मन धीर ।
श्री ललितमोहिनी को सुख बाढ्यौ धन्य आजु दिन वीर ।।५०।।

प्रिया लाल खेलत बसंत ।
झाँझ मुरज डफ बाँसुरी अरु बीना मुहचंग लसंत ।।
बजत नचत नव नव गति अद्भुत दोऊ मिलि हुलसंत ।
श्रीललितमोहिनी कौ सुख बाढ्यौ पूरन रस विलसंत ।।५१।।

होरी आई रङ्ग भरी खेलत तन सुकुमार ।
बादर लाल गुलाल के छाये वरषत धार फुहार ।।
उमँगि उमँगि वरषत रङ्ग भारी छूटत कर पिचकार ।
श्रीललितमोहिनी के हित विहरें ये उनके वे उनके हार ।।५२।।

मान न कीजै प्रान पियारी जू ।।
मेरी जीवन प्रान मोहनी तेरे बल बलिहारी जू ।।
तुम समझाओ सखी जुगति करि या रस विवस बिहारीजू
श्रीललिमोहनी नैंन सैंन दै सुख उपजावत भारी जू ।।५३।।

प्रान प्रिया सखि आजु बनी ।
ओढे नीलाम्बर विहरत रति काम केलि रस माँझ सनी ।।
उमँगि उमँगि मिलि कुँवरि स्याम तन औरैं ठान ठनी ।
श्रीललितमोहनी लाड लडावत त्यौं त्यौं बरषत प्रेम घनी।।५४।।

उमँगि उमँगि आये चहुँदिसि बदरा स्यामघटा अनंग भरे ।
तड़ित चमकत रूप सुधा भरि बन सोभा सब हरे हरे ।।
रंग हिंडोरे झूलत दोउ चकित होइ सखी ठान ठने ।
श्रीललितमोहनी सुख बरषावत गावत अति आनंद भरे ।।५५।।

पावस ऋतु आई बूँदें सुहाई बरषत रसधारा धर ।
झुमकि हिंडोरें रमकि झुलावत झूलत स्यामा कुंवरि कुँवर ।।

नाचत मोर पपीहा बोलत गावत ललकि मलार मननि हर ।
श्रीललितमोहनी के सुख भीजे सीतल भये अनंग अंग भरि ।।५६।।

होरी खेलत रसिक रासि वर नागर जुगल किसोर ।
तन सीसी भरि रस जोवन सों खेल बढ्यौ दुहुँ ओर ।।
सब सखी उमँगि उमँगि मिलि गावत नाचत मोर चकोर ।
श्रीललितमोहनी रंग बरषावत अबीर गुलाल चहुँ घोर ।।५७।।

जागो जी जागो भोर भयौ ।
आलस खोलौ श्री मुख बोलौ अब जिन करौ ऐसौ हियौ ।।
मान किये न बनैं मम जीवन या रस बस हों जियौं ।
श्रीललितमोहनी यौं समझावत करिये जू इनकौ कह्यौ ।।५८।।

जैसे मेरे जिय में तू बसत है ऐसे हों तेरे जिय में बसत हौं कैधौं नाहीं ।
तेरी छबि मेरी अँखिया भरि रही कछु न सुहाइ मेरौ जीवन तौ ताहीं ।।
सुनि मेरे प्रानपति प्यारे तूही मम जीवन तूही प्रान तन माहीं ।
श्रीललितमोहनी कौ सुख बिहरौ अब जिन करौ बिलंब कहत समुझाहीं।।५९

मत्त भये तन मन न सँभार ।
उपजत अति आनंद दुहूँ दिसि ए उनको वे उनको हार ।।
वारौं कोटि अनंग मदन दल डारौं तुव लगि सब सुख बार ।
श्रीललितमोहनी के घर आनँद यह सुख सार बिहार निहार ।।६०।।

जै जै श्री कुंजबिहारिनि प्यारी ।
जै जै कुंज महल सुखदाई जय जय लालन कुँजबिहारी ।।
जै जै वृन्दावन सुख सागर जै जै जमुना सिंधु सुखारी ।
जै जै श्रीललितमोहनी धनि धनि सुखदायक सिरमौर हमारी ।।६१।।

आजु बधाई बृन्दावन सुख सिंधु हिलोर ।
प्रिया लाल तन मन हुलसाने मनसिज मेघन घोर ।।
सब सखी उमँगि उमँगि गुन गावैं नाचत मोर चकोर ।
श्रीललितमोहनी के उर बिहरत नैंन कमल चित चोर ।।६२।।

आजु बधाई श्री वृन्दावन ।
कुंजमहल श्रीबिहारीबिहारिनि केलि करत छिन ही छिन ।।
श्रीहरिदासी लाड लडावत इनही कौ ये हैं धन ।
श्रीललितमोहनी की निजु जीवन ये वे वे ये एक मन ।।६३।।

आवनौ जावनौं कहूँ नाहीं हरि पोषत मन के भाई ।
रंग महल मैं श्रीहरिदासी कीनी परम बधाई ।।
सदा केलि कल करत एक रस सखियन मिलि गुन गाई ।
श्रीललितमोहनी यह सुख बिलसत छिन छिन पर बलिजाई ।।६४।।

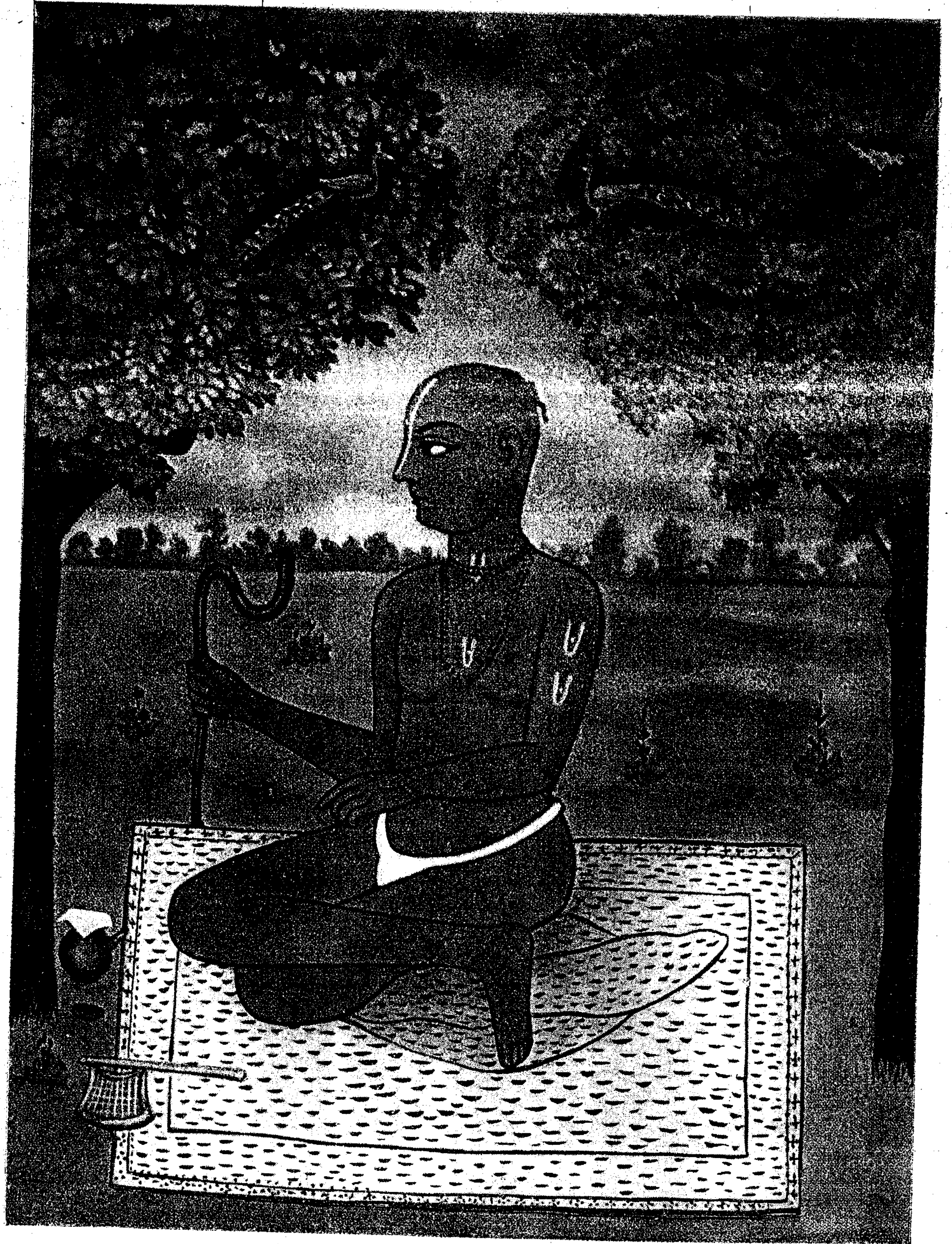
आजु समाज सहज मन भायौ ।
कुँवरि किसोरी गोरी भोरी निरखि हरखि हँसि कंठ लगायौ ।।
अपने अपने मेल मिली सब तान तरंगनि रंग बढायौ ।
श्रीहरिदासी रसिकसिरोमनि तन मन ब्रचननि हियौ सिरायौ ।।६५।।

रंग हिडोरना री झूलत लाडिली पिय के संग ।
मंद मंद झूलत फूलति है पहिरें बसन सुरंग ।।
अंग अंग सुख बरषत हरषत छबि की उठत तरंग ।
सुख में झूलत कुंवरकिसोरी भरि भरि लेत उछंग ।
श्रीललितमोहनी प्यारी पिय को निरखत केलि अभंग ।।६६।।

घन गरजत मोर कोइल कूजत अति वरषत नान्ही नान्ही बूंदैं ।
पावस ऋतु उमँडि घुमडि आई हरी२भूमि सुहाई लागति सुरंग चूनरी सूंदैं
करत सिंगार परस्पर दोउ रतिपति छबि दामिनि दुति ऊँदैं ।
परम उदार श्रीमोहनीस्वामिनि निरखि निरखि सुख लपटि२ रस रूँदैं।।६७







स्वामी श्री ललित मोहिनी देवजू

सर्वोपरि नित्यविहारिणी-रस-सागर के पदों की सूचिका वर्णमाला

श्रीकेलिमालजी

श्री स्वामी बीठलविपुलदेवजू की बानी

श्री स्वामी बिहारिनदेवजू की बानी

॥ अथ सिद्धान्त के दोहा ॥

॥ सिद्धान्त के कवित्त-सवैया ॥

॥ सिद्धांत के पद ॥

॥ रस की साखी ॥

॥ रस के सवैया ॥

पद	पृष्ठ सं०

श्री स्वामी नागरीदेव जू की वाणी

।। सिद्धान्त की साखी ।।

॥ श्री सरसदेव जू की बानी ॥

सिद्धान्त के **॥ कवित्त सवैया ॥**

" रस के कवित्त-पद "

॥ श्री नवलदेव जू की बानी ॥

॥ कवित्त ॥

॥ श्री नरहरिदेव जू की बानी ॥

॥ सिद्धांत व आचार्यों की बधाई के पद ॥

॥ सिंगार के पद ॥

श्री ललित मोहनी जू की बानी

॥ सिद्धांत ॥

॥ सिंगार के पद ॥

